बी.एस.सी. तृतीय वर्ष
प्राणीशास्त्र, द्वितीय प्रश्नपत्र

पारिस्थितिकी एवं व्यावहारिक प्राणीशास्त्र

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Mukesh Dikxit
   Professor,
   Shyama Prasad Mukharjee Govt.
   Science & Commerce College,
   Benazir Bhopal.
2. Dr. K.K. Mishra
   Assistant Professor,
   Shyama Prasad Mukharjee Govt.
   Science & Commerce College,
   Benazir Bhopal.
3. Dr. Mukesh Napit
   Assistant Professor,
   Shyama Prasad Mukharjee Govt.
   Science & Commerce College,
   Benazir Bhopal.

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal.
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal.
3. Dr. Shailendra Kaushik
   Assistant Director,
   Department of Student Support,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.
4. Dr. Mukesh Dikxit
   Professor,
   Shyama Prasad Mukharjee Govt.
   Science & Commerce College, Benazir Bhopal.
5. Dr. K.K. Mishra
   Assistant Professor,
   Shyama Prasad Mukharjee Govt.
   Science & Commerce College, Benazir Bhopal.
6. Dr. Mukesh Napit
   Assistant Professor,
   Shyama Prasad Mukharjee Govt.
   Science & Commerce College, Benazir Bhopal.

COURSE WRITER

Dr. Manoj Kumar Ahirwar, Department of Zoology, Government Autonomous P.G. College, Satna (MP), Working as Guest Faculty of Zoology (as Assistant Professor) as per the Scheme of MP Higher Education.

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. (Developed by Himalaya Publishing House Pvt. Ltd.) and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

पारिस्थितिकी एवं व्यावहारिक प्राणीशास्त्र

Syllabi	Mapping in Book
Unit-I पारिस्थितिकी संकल्पना 1. पारिस्थितिकी के अजैविक एवं जैविक घटक एवं कारक 2. पारिस्थितिक तंत्र में उर्जा का प्रवाह : खाद्य श्रृंखला, खाद्यजाल एवं पिरामिड़ 3. जैव-भू-रासायनिक चक्र – कार्बन, ऑक्सीजन, नायट्रोजन, फास्फोरस। 4. जनसंख्या की अवधारणा-जनसंख्या/जनसंख्या वृद्धि, लक्षण, एवं प्रभावित करने वाले कारक 5. समुदाय : समुदाय के लक्षण	**इकाई 1** : पारिस्थितिकी तंत्र की आधारभूत अवधारणाएँ **(पृष्ठ 3–153)**
Unit-II आवास पारिस्थितिकी 1. स्वच्छ जलीय आवास 2. समुद्रीय आवास 3. स्थलीय आवास 4. भारत के पारिस्थितिकीय विभाजन 5. जैवविविधता-प्राकृतिक संसाधन तथा उसका संरक्षण जंगलों के विशेष सन्दर्भ में	**इकाई 2** : आवास पारिस्थितिकी **(पृष्ठ 154–249)**
Unit-III वन्यजीव एवं पर्यावरण 1. वन्यजीव प्रोटेक्शन एक्ट, राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य – मध्यप्रदेश 2. भारत की संकटग्रस्त प्रजातियाँ 3. प्रदूषण के प्रकार – वायु, जल, मृदा तापीय एवं ध्वनि प्रदूषण। 4. शहरीकरण एवं उसका मानव (जनसंख्या) और पर्यावरण पर प्रभाव	**इकाई 3** : वन्यजीव एवं पर्यावरण **(पृष्ठ 250–338)**
Unit-IV जलसंवर्धन- Aquaculture 1. झींगा संवर्धन – स्वच्छ जलीय झींगा संवर्धन, झींगा मत्स्यन, संरक्षण एवं प्रोसेसिंग (प्रक्रमण) 2. मोती संवर्धन एवं मोती उद्योग (Pearl = मोती) 3. मेंढ़क संवर्धन 4. मेजर कार्प कल्चर, तालाब का प्रबंधन, मछली मत्स्य परिरक्षण एवं प्रक्रमण 5. जलशाला, देखरेख एवं प्रबंधन।	**इकाई 4** : जल कृषि **(पृष्ठ 339–464)**

Unit-V आर्थिक कीट विज्ञान

इकाई 5 : आर्थिक कीट विज्ञान

(पृष्ठ 465–568)

1. रेशम कल्चर – रेशम कीट की प्रजातियाँ, जीवन-चक्र, बाम्बेक मोराई, इतिहास एवं भारत में रेशम उद्योग
2. मधुमक्खीपालन – मधुमक्खी का जीवन चक्र, विधियां एवं रख-रखाव, मधुमक्खी के उत्पाद, एवं उसके शत्रु
3. लाख संवर्धन – लाख कीट का जीवन – चक्र एवं लाख कीट का पादप पोषक
4. सामान्य पीड़कः भंडारित अनाजों के पीड़क-साइटोफिकस ओराइजी, तथा ट्राइवोलियम केस्टैनियम,

   सब्जियों के पीड़कः पीरिस ब्रेसिकी एवं डैकस कुकुरबिटी
5. कीटपीड़कों का जैविक नियंत्रण।

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 पारिस्थितिकी तंत्र की आधारभूत अवधारणाएँ **3–153**

1.0 परिचय
1.1 उद्दे य
1.2 पारिस्थितिकीय तंत्र की आधारभूत अवधारणाएँ
1.2.1 पारिस्थितिकीय तंत्र
1.3 पारिस्थितिकीय तंत्र के घटक
1.4 तालाब का पारिस्थितिकीय तंत्र
1.5 चरागाह घास लैन्ड का पारिस्थितिकीय तंत्र
1.6 समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र
1.7 वन का पारिस्थितिकीय तंत्र
1.8 मरूस्थलीय पारिस्थितिकीय तंत्र
1.9 पारिस्थितिकी : परिचय
1.10 परिभाषा
1.10.1 इतिहास
1.11 पारिस्थितिकी की आधुनिक अवधारणा
1.11.1 संगठनों का स्तर
1.11.2 पारिस्थितिकी की शब्दावली
1.11.3 पारिस्थितीकी के सहभाग
1.12 पारिस्थितिकी के क्षेत्र
1.13 पारिस्थितिकी एवं मानव
1.14 अजैविक कारक
1.14.1 अजैविक कारक
1.14.1.1 ताप
1.14.1.2 ताप के प्रभाव
1.14.1.3 प्रकाश के प्रभाव
1.14.1.4 जल
1.14.1.5 आर्द्रता
1.14.1.6 मुद्रा या मिट्टी
1.14.1.7 प्रवाह
1.14.1.8 दाब
1.15 जैविक कारक
1.15.1 अन्तःजातीय सम्बन्ध
1.15.2 अन्तरजातीय सम्बन्ध
1.15.2.1 सहयोगी अन्तरजातीय कारक
1.15.3 असहयोगी अन्तरजातीय कारक
1.15.3.1 विरोध
1.15.3.2 पोषक के प्रकार
1.15.3.3 परजीवन का पोषक पर प्रभाव
1.15.4 सहभोजिता के प्रकार
1.16 ऊर्जा प्रवाह एवं आहार श्रृंखला
1.16.1 परिचय एवं परिभाषा
1.16.2 ऊर्जा प्रवाह
1.16.3 ऊष्मागतिकी के नियम

1.16.4 जीवनीय ऊर्जा
1.16.4.1 ऊर्जा को व्यक्त करने की इकाइयाँ
1.16.4.2 प्रकृति में ऊर्जा प्रवाह
1.16.4.3 ऊर्जा का रूपान्तरण
1.16.5 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह
1.16.5.1 खाद्य श्रृंखला या फूड चेन
1.16.5.2 समुद्र आहार श्रृंखला
1.16.5.3 चरागाह खाद्य श्रृंखला
1.16.5.4 वन खाद्य श्रृंखला
1.16.5.5 पोखर या झील में खाद्य श्रृंखला
1.16.6 खाद्य जाल
1.16.7 पारिस्थितिक पिरामिड़
1.17 जैव-भू-रासायनिक चक्र
1.17.1 परिचय एवं परिभाषा
1.17.2 पोषक द्रव्य
1.17.3 पोषक द्रव्यागार या भण्डार
1.18 गैसीय चक्र
1.18.1 कार्बन डाइऑक्साइड चक्र
1.18.2 नाइट्रोजन चक्र
1.18.2.1 नाइट्रोजन के स्त्रोत
1.18.2.2 नाइट्रोजन का जैविक तंत्र में प्रवेश
1.18.2.3 नाइट्रोजन का स्थिरीकरण
1.18.3 नाइट्रोजन का अजैविक तंत्र में प्रवेश
1.19 तलछटीय या अवसादी चक्र
1.19.1 फॉस्फोरस चक्र
1.19.2 फॉस्फोरस के स्त्रोत और चक्रीय परिभ्रमण
1.19.3 ऑक्सीजन चक्र
1.20 जीवसंख्या (समष्टि) अवधारणाएँ एवं जीवसंख्या के लक्षण
1.20.1 समष्टि के लक्षण
1.20.2 जीवसंख्या का घनत्व
1.20.3 समष्टि घनत्व की अन्य अभिव्यक्ति
1.21 समष्टि या जीवसंख्या घनत्व का मापन
1.21.1 प्रत्यक्ष गणना
1.21.2.1 सैम्पलिंग विधि
1.21.2.2 यादृच्छिक प्रतिचयन अथवा निदर्शन विधि
1.21.2.3 सैम्पल निष्कासन विधि
1.21.2.4 अंकन एवं पुनः प्रग्रहण विधि
1.21.2.5 पीटरसन की बन्धक चिन्हांकन विधि
1.21.2 प्लॉट नमूना विधि
1.21.3 आपेक्षिक जीवसंख्या घनत्व विधियाँ
1.21.3.1 समष्टि घनत्व के प्रभावी कारक
1.21.4 जन्म दर
1.21.5 मृत्यु दर
1.21.6 आयु–अनुपात
1.21.7 जीवसंख्या या समष्टि–परिवर्तन या दोलन
1.21.8 आयु–वितरण
1.21.9 आयु स्तूप या पिरामिड़
1.21.10 जैविक क्षमता
1.21.11 जनन क्षमता व उत्पादकता
1.21.12 जीवसंख्या या समष्टि परस्पर क्रियाएँ

1.21.13 जीवसंख्या या समष्टि आकार का नियमन
1.21.14 समष्टि वितरण या छितराव
1.21.15 समष्टि प्रसार या प्रकीर्णन
1.21.16 नैसर्गिक संख्या – वृद्धि क्षमता
1.21.17 जीवसंख्या वृद्धि आकार
1.21.18 वहन क्षमता
1.21.19 जीवसंख्या नियन्त्रण
1.22 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.23 सारांश
1.24 मुख्य शब्दावली
1.25 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.26 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 आवास पारिस्थितिकी **154—249**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 स्वच्छ जलीय आवास
2.2.1 परासरण नियमन
2.2.2 स्थिर स्वच्छ जलीय आवास
2.2.3 तालाब के जीव–समूह
2.2.4 झील का क्षेत्रीयकरण
2.2.4.1 जीवीय घटक
2.2.4.2 झीलों का वर्गीकरण
2.2.4.3 कच्छ एवं अनूप
2.3 लेन्टिक आवास की विशेषताएँ एवं अनुकूलताएँ
2.3.1 गतिमान जलीय आवास
2.3.2 स्वच्छ – जलीय अनुकूलन
2.4 स्थलीय आवास
2.4.1 बायोम्स
2.4.2 मरूस्थल
2.4.2.1 मरूस्थलीय जलवायु
2.4.2.2 मरूस्थलीय प्राणियों के अनुकूलन
2.5 समुद्रीय आवास
2.5.1 समुद्रीय आवास–स्थान की वि ोषताएँ
2.5.2 समुद्र के विभिन्न क्षेत्र
2.5.3 वेलापवर्ती क्षेत्र की पारिस्थितिकी
2.5.4 महासागरीय क्षेत्र समुदाय या जीवजात
2.5.4.1 सुप्रकाि ात क्षेत्र
2.5.4.2 अप्रकाि ात क्षेत्र
2.5.5 वेलापवर्ती प्रदे ा का जीवजात
2.5.5.1 प्लवक या प्लैंकटॉन
2.5.5.2 प्लवकीय अनुकूलन
2.5.5.3 तरणक या नेकटॉन
2.5.5.4 तरणकीय जीवजात
2.5.5.5 तरणकीय अनुकूलन
2.6 नितलस्थ क्षेत्र की पारिस्थितिकी
2.6.1 वेलांचली क्षेत्र
2.6.1.1 सुवेलांचली क्षेत्र
2.6.1.2 सुवेलांचली क्षेत्र का जीवजात
2.6.1.3 सुवेलांचली क्षेत्र के प्राणियों में अनुकूलन

2.6.1.4 उपवेलांचली क्षेत्र
2.6.1.5 अनुकुलन
2.6.2 गहरे समुद्री क्षेत्र की पारिस्थितिकी
2.6.2.1 गहरे सामुद्रिक अनुकूलन
2.7 एफोटिक क्षेत्र
2.7.1 ऐबीसल आवास की वि ोषताएँ
2.8 वेलासंगम या इस्चुराइन जल
2.8.1 वेलासंगमों का वर्गीकरण
2.8.2 वेलासंगमों के प्राणीजात
2.8.3 वेलासंगम – निवासियों के अनुकूलन
2.9 मैंग्रोव साहचर्य
2.10 भारत के पारिस्थितिकीय क्षेत्र
2.10.1 हिमालय पर्वत तन्त्र
2.10.1.1 पूर्वी हिमालय
2.10.2 प्रायद्वीपीय भारतीय उप–प्रदे ा
2.10.2.1 प्रायद्वीप भारत
2.10.2.2 भारतीय मरूस्थल
2.10.3 उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन प्रदे ा
2.10.4 अंदमान और निकोबार द्वीप समूह
2.10.5 सुन्दरबन के मैग्रोव अनूप
2.11 प्राकृतिक संसाधन एवं उनका संरक्षण
2.11.1 प्राकृतिक संसाधन
2.11.1.1 उपयोगिता की निरन्तरता के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण
2.11.1.2 उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण
2.11.2 संरक्षण
2.11.3 जैविक विविधता
2.11.4 वन
2.11.4.1 वन आच्छादन
2.11.4.2 वनों का महत्व
2.11.4.3 वनों का विनाश
2.11.4.4 वन संरक्षण
2.11.4.5 वन संरक्षण के उपाय
2.11.5 मृदा संरक्षण
2.11.5.1 मृद्रा संरक्षण के उपाय
2.11.6 जल
2.11.6.1 जल संरक्षण
2.11.6.2 जल संवर्धन
2.11.7 खनिज संसाधन
2.12 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.13 सारांश
2.14 मुख्य शब्दावली
2.15 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.16 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 वन्यजीव एवं पर्यावरण **250–338**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 वन्य जीवन का महत्व
3.3 भारत के प्रमुख वन्य जन्तु

3.4 वन्य जीवन संरक्षण
3.5 भारत में वन्य जीवन का संरक्षण
3.6 वन्य जीवन संरक्षण का प्रबन्धन
3.7 संकटापन्न प्रजातियों के लिए विशिष्ट परियोजनाएँ
3.8 मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ का वन्य जीवन
3.9 भारतीय वन्य जीव मण्डल
3.10 वन एवं वन्य जीवन नियम
3.11 भारत की संकटापन्न प्रजातियाँ
3.12 जैव विविधता का संरक्षण–स्थानास्थ एवं बहिः स्थानास्थ संरक्षण
3.13 प्रदूषण के प्रकारः वायु, जल, मिट्टी/मृदा, तापीय एवं ध्वनि प्रदूषण
3.14 वातावरणीय प्रदूषण
3.15 वायु प्रदूषण
3.16 जल प्रदूषण
3.17 मृदा प्रदूषण
3.18 तापीय प्रदूषण
3.19 शोर प्रदूषण
3.20 प्रदूषण नियन्त्रण
3.21 नगरीकरण तथा मानव जनसंख्या
3.22 मानव जनसंख्या
3.23 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.24 सारांश
3.25 मुख्य शब्दावली
3.26 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.27 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 जल कृषि **339–464**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 जल संवर्धन का इतिहास
4.2.1 जल संवर्धन की सम्भावनायें
4.2.2 उच्च जल संवर्धन उत्पादकता हेतु नियोजन
4.2.3 वर्तमान रणनीति एवं भविष्य हेतु योजनाएँ
4.3 झींगा संवर्धन : स्वच्छ जलीय झींगा संवर्धन, झींगा मत्स्यन, संरक्षण एवं प्रक्रिया
4.3.1 व्यावसायिक महत्व के झींगे
4.4 स्वच्छ जलीय झींगे का संवर्धन
4.5 संवर्धन प्रौद्योगिकी
4.5.1 झींगा संवर्धन हेतु तालाब प्रबन्धन
4.6 झींगा मत्स्यन
4.6.1 जलयान
4.6.2 मत्स्य संभार
4.7 झींगों का परिरक्षण तथा प्रसंस्करण
4.8 झींगों के परजीवी तथा बीमारियाँ
4.9 मोती संवर्धन तथा मोती उद्योग
4.9.1 मोती उत्पादक स्थल एवं जन्तु
4.10 मोती उत्पादक जन्तु

4.11 मोती निर्माण
4.12 मोती संवर्धन
4.12.1 मोती के प्रकार
4.12.2 मोतियों का प्रसंस्करण एवं कृत्रिम रंजन
4.12.3 मोती शुक्तियों के दुश्मन जन्तु
4.13 मोती उद्योग
4.14 संवर्धित प्रजातियाँ
4.15 राना टिग्रीना की जैविकी
4.16 मेंढ़कों का संवर्धन
4.17 मेंढ़कों का अन्तर्कक्षीय संवर्धन
4.18 प्रजनन एवं चयन
4.19 मिश्रित संवर्धन
4.19.1 बीमारियाँ
4.19.2 उपयोग (आर्थिक महत्व)
4.20 संवर्धन योग्य मछलियों के विशिष्ट लक्षण
4.21 सफरी (कार्प) पालन
4.21.1 अन्य मछलियों पर कार्प मछलियों की उपरिता
4.21.2 कृत्रिम निषेचन की प्रक्रिया
4.22 पोनों को रोपणशालाओं में स्थानान्तरण करने हेतु सावधानियाँ
4.23 जलशाला निर्माण हेतु आवश्यक सामग्री
4.23.1 जलशाला टैंक
4.23.2 सजावटी सामान
4.23.3 जलशाला स्थापन
4.23.4 जलीय पौधे
4.23.5 जलशाला की मछलियाँ
4.24 जलशाला प्रबन्धन
4.25 जलशाला मछलियों का प्रजनन
4.25.1 अण्डे तथा बच्चों की देखभाल
4.26 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.27 सारांश
4.28 मुख्य शब्दावली
4.29 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.30 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 आर्थिक कीट विज्ञान **465—568**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 रेशम उत्पादन करने वाले शलभ
5.3 शहतूत रेशम—कीट
5.3.1 रेशम ग्रन्थि तथा रेशम
5.4 रेशम उद्योग तथा इसका प्रबन्धन
5.4.1 रेशम—कीट की व्याधियाँ
5.4.2 रेशम कीट के शत्रु
5.4.3 रेशम के उपयोग
5.5 भारत में रेशम उद्योग
5.6 मधुमक्खी
5.6.1 मधुमक्खियों की प्रजातियाँ

5.6.2 मधुमक्खियों का सामाजिक संगठन
5.7 मधुमक्खी के उत्पाद
5.8 मधुमक्खी पालन
5.9 आधुनिक विधि से मधुमक्खी पालन हेतु आवश्यक उपकरण
5.9.1 छत्ते का प्रबन्धन
5.9.2 मधुमक्खियों की बीमारियाँ
5.9.3 मधुमक्खियों के शत्रू
5.10 भारत मे मधुमक्खी पालन
5.11 लाख कीट की वर्गीकृत स्थिति
5.11.1 लाख कीट की संरचना
5.11.2 जीवन वृत्त
5.11.3 पोषक पौधे
5.12 लाख
5.12.1 लाख के उपयोग
5.12.2 लाख कीट की किस्में एवं फसलें
5.12.3 लाख की खेती
5.12.4 लाख कीट के शत्रु
5.12.5 लाख के उपयोग एवं आर्थिक महत्व
5.13 भारत में लाख उद्योग
5.14 सीटोफिलस ओराइजे लिन्नेस
5.14.1 जीवन वृत्त
5.15 ट्राइबोलियम कैस्टेनियम हर्बस्ट
5.15.1 जीवन वृत्त
5.16 सब्जियों के पीडक
5.17 पियरिस ब्रेसिके लिन्नेस
5.17.1 जीवन चक्र
5.18 डेकस कुकरबिटे कॉक
5.18.1 जीवन वृत्त
5.19 तिलहन फसलों के पीड़क
5.19.1 तिलहन फसलों के प्रमुख पीड़क
5.20 कीटपीड़कों का जैविक नियन्त्रण
5.20.1 जैविक नियन्त्रण के आवश्यक तत्व
5.20.2 जैविक नियन्त्रण के कारक
5.20.3 जैविक नियन्त्रण की योजना
5.20.4 जैविक नियन्त्रण के प्रभाव
5.20.5 जैविक नियन्त्रण समस्याएँ
5.20.6 जैविक नियन्त्रण के लाभ
5.21 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.22 सारांश
5.23 मुख्य शब्दावली
5.24 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.25 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

मध्यप्रदेश शासन, उच्च शिक्षा विभाग (भोज विश्व विद्यालय) के केन्द्रीय अध्ययन मण्डल द्वारा स्वीकृत नवीन वार्षिक पाठ्यक्रमानुसार बी. एस. सी. (B. Sc.) T.D.C तृतीय वर्ष के विद्याार्थियों के लिए लिखी गयी एक अति उपयोगी एवं महत्वपूर्ण पुस्तक है।

प्रस्तुत पुस्तक में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को दो प्रश्न–पगों, प्रथम प्रश्न–पत्र–आनुवंशिकी (Genetics) तथा द्वितीय प्रश्न–पत्र–परिस्थितिकी एवं व्यावहारिक प्राणी विज्ञान (Ecology and Applied Zoology) में विभाजित किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक ''परिस्थितिकी एवं व्यावहारिक प्राणी विज्ञान'' में निर्धारित पाठ्यक्रम की समस्त सामग्री का प्रस्तुतीकरण (Presentation) विद्यार्थियों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुए सरल, सहज, बोधगम्य, क्रमबद्ध, स्पष्ट (Claear) एवं रूचिकर ढंग से किया गया है, जिससे विद्याथियों के साथ–साथ एक साधारण मानव भी समझ सके। पाठ्य–सामग्री को युक्तिसंगत एवं तर्कसंगत बनाने के लिए यथास्थान आवश्यक उदाहरणों एवं चित्रों का समावेश इस प्रकार से किया गया है कि विद्यार्थियों को समझने, सीखने एवं याद करने में बड़ी आसानी से तथा रूचिकर ढंग से अपने वास्तविक अधिगम के उद्देश्य की प्राप्ति कर सके।

पाठ्यक्रम से संबंधित सामग्री को सुव्यवस्थित ढंग से इस प्रकार क्रमशः सुनियोजित किया गया है जैसे– परिचय, परिभाषा, उद्देश्य, पाठ्य–सामग्री परिचर्चा (Discussion), सारांश (Summary of Lesson), कठीन शब्दावली (Keywords) आदि के साथ–साथ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न, लघु उत्तरीय प्रश्न एवं बहु विकल्पीय (Multiple Choice Questions MCQ) या वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्नों का समावेश किया गया है जिससे विद्यार्थी द्वारा उन्हें हल कर सके एवं ज्यादा से ज्यादा अभ्यास करने के बाद उनमें पर्याप्त आत्म–निर्भर, आत्मविश्वास उत्पन्न हो सके तथा वे परिक्षा में उच्चतम अंक अर्जित कर सके।

हम सभी जानते है कि पुस्तक निर्माण की प्रक्रिया एक जटिल एवं सतत् प्रक्रिया है। यद्यपि पुस्तक को त्रुटि रहित बनाने के लिए भरसक (पूर्ण) प्रयास किया गया है किन्तु स्वाभाविक रूप से कुछ गलतियों के छूटने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता है। इस हेतु विषय विशेषज्ञों, मनीषियों, प्राध्यापकों, अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं सहयोगियों की प्रतिक्रियाओं एवं उनके सुझावों परामर्शो का सदैव हृदय (Heartly) से स्वागत रहेगा। मै अपने उन सभी साथियों व पाठकों का कृतज्ञ रहूँगा जो इन त्रुटियों के निराकरण तथा पाठ्य–सामग्री की गुणवत्ता में वृद्धि करने हेतु अपना अमूल्य सुझाव व सहयोग देरा मार्गदर्शन करते रहेंगे।

पुस्तक के लेखन के समय स्वतंत्र रूप से अनेक लेखकों एवं सभी प्रकाशकों की पुस्तकों एवं कार्यों का चिन्तन एवं अध्ययन किया गया है, इसके उपरान्त पुस्तक का सृजन किया गया है। अतः सभी लेखकों एवं प्रकाशकों में प्रति नम्रतापूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पुस्तक सृजन/निर्माण को इस कड़ी में मै अपने महाविद्यालय की प्राचार्य डॉ. (श्रीमती) नीरजा खरे जी का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे हमेशा अपना मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद प्रदान किया। साथ ही आभार की अगली कड़ी में मै अपने महाविद्याालय शासकीय (स्वशासी) पी. जी. महाविद्यालय, सतना के प्राभीशास्त्र विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. शिवेश प्रताप सिंह (Ph.D., D.Sc.) जी को भला कैसे भूल सकता हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को लिखने के लिए प्रेरित किया तथा समय–समय पर अपना अमूल्य समय प्रदान कर मार्गदर्शन किया एवं अपना स्नेह मुझ पर हमेशा बनाये रखा। जिसकी बदौलत शायद मैं ऐसा कर पाया।

डॉ. मनोज कुमार अहिरवार
(M. Sc., M. Phil B.Ed & Ph.D)
अतिथि विद्वान-प्राणीशास्त्र विभाग
शा. (स्वशासीद्ध पी. जी. महाविद्यालय
सतना, (म.प्र.), भारत

इकाई 1 पारिस्थितिकीय तंत्र की आधारभूत अवधारणाएँ (Basic Concept of Ecosystem)

संरचना (Structure)

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 पारिस्थितिकीय तंत्र की आधारभूत अवधारणाएँ
1.2.1 पारिस्थितिकीय तंत्र
1.3 पारिस्थितिकीय तंत्र के घटक
1.4 तालाब का पारिस्थितिकीय तंत्र
1.5 चरागाह घास लैन्ड का पारिस्थितिकीय तंत्र
1.6 समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र
1.7 वन का पारिस्थितिकीय तंत्र
1.8 मरूस्थलीय पारिस्थितिकीय तंत्र
1.9 पारिस्थितिकी : परिचय
1.10 परिभाषा
1.10.1 इतिहास
1.11 पारिस्थितिकी की आधुनिक अवधारणा
1.11.1 संगठनों का स्तर
1.11.2 पारिस्थितिकी की शब्दावली
1.11.3 पारिस्थितीकी के सहभाग
1.12 पारिस्थितिकी के क्षेत्र
1.13 पारिस्थितिकी एवं मानव
1.14 अजैविक कारक
1.14.1 अजैविक कारक
1.14.1.1 ताप
1.14.1.2 ताप के प्रभाव
1.14.1.3 प्रकाश के प्रभाव
1.14.1.4 जल
1.14.1.5 आर्द्रता
1.14.1.6 मुद्रा या मिट्टी
1.14.1.7 प्रवाह
1.14.1.8 दाब
1.15 जैविक कारक
1.15.1 अन्तःजातीय सम्बन्ध
1.15.2 अन्तरजातीय सम्बन्ध
1.15.2.1 सहयोगी अन्तरजातीय कारक
1.15.3 असहयोगी अन्तरजातीय कारक
1.15.3.1 विरोध
1.15.3.2 पोषक के प्रकार
1.15.3.3 परजीवन का पोषक पर प्रभाव
1.15.4 सहभोजिता के प्रकार

टिप्पणी

1.16 ऊर्जा प्रवाह एवं आहार श्रृंखला
- 1.16.1 परिचय एवं परिभाषा
- 1.16.2 ऊर्जा प्रवाह
- 1.16.3 ऊष्मागतिकी के नियम
- 1.16.4 जीवनीय ऊर्जा
  - 1.16.4.1 ऊर्जा को व्यक्त करने की इकाइयाँ
  - 1.16.4.2 प्रकृति में ऊर्जा प्रवाह
  - 1.16.4.3 ऊर्जा का रूपान्तरण
- 1.16.5 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह
  - 1.16.5.1 खाद्य श्रृंखला या फूड चेन
  - 1.16.5.2 समुद्र आहार श्रृंखला
  - 1.16.5.3 चरागाह खाद्य श्रृंखला
  - 1.16.5.4 वन खाद्य श्रृंखला
  - 1.16.5.5 पोखर या झील में खाद्य श्रृंखला
- 1.16.6 खाद्य जाल
- 1.16.7 पारिस्थितिक पिरामिड़

1.17 जैव-भू-रासायनिक चक्र
- 1.17.1 परिचय एवं परिभाषा
- 1.17.2 पोषक द्रव्य
- 1.17.3 पोषक द्रव्यागार या भण्डार

1.18 गैसीय चक्र
- 1.18.1 कार्बन डाइऑक्साइड चक्र
- 1.18.2 नाइट्रोजन चक्र
  - 1.18.2.1 नाइट्रोजन के स्त्रोत
  - 1.18.2.2 नाइट्रोजन का जैविक तंत्र में प्रवेश
  - 1.18.2.3 नाइट्रोजन का स्थिरीकरण
- 1.18.3 नाइट्रोजन का अजैविक तंत्र में प्रवेश

1.19 तलछटीय या अवसादी चक्र
- 1.19.1 फॉस्फोरस चक्र
- 1.19.2 फॉस्फोरस के स्त्रोत और चक्रीय परिभ्रमण
- 1.19.3 ऑक्सीजन चक्र

1.20 जीवसंख्या (समष्टि) अवधारणाएँ एवं जीव संख्या के लक्षण
- 1.20.1 समष्टि के लक्षण
- 1.20.2 जीवसंख्या का घनत्व
- 1.20.3 समष्टि घनत्व की अन्य अभिव्यक्ति

1.21 समष्टि या जीवसंख्या घनत्व का मापन
- 1.21.1 प्रत्यक्ष गणना
  - 1.21.2.1 सैम्पलिंग विधि
  - 1.21.2.2 यादृच्छिक प्रतिचयन अथवा निदर्शन विधि
  - 1.21.2.3 सैम्पल निष्कासन विधि
  - 1.21.2.4 अंकन एवं पुनः प्रग्रहण विधि
  - 1.21.2.5 पीटरसन की बन्धक चिन्हांकन विधि
- 1.21.2 प्लॉट नमूना विधि
- 1.21.3 आपेक्षिक जीवसंख्या घनत्व विधियाँ
  - 1.21.3.1 समष्टि घनत्व के प्रभावी कारक
- 1.21.4 जन्म दर
- 1.21.5 मृत्यु दर
- 1.21.6 आयु–अनुपात
- 1.21.7 जीवसंख्या या समष्टि–परिवर्तन या दोलन

1.21.8 आयु–वितरण
1.21.9 आयु स्तूप या पिरामिड़
1.21.10 जैविक क्षमता
1.21.11 जनन क्षमता व उत्पादकता
1.21.12 जीवसंख्या या समष्टि परस्पर क्रियाएँ
1.21.13 जीवसंख्या या समष्टि आकार का नियमन
1.21.14 समष्टि वितरण या छितराव
1.21.15 समष्टि प्रसार या प्रकीर्णन
1.21.16 नैसर्गिक संख्या – वृद्धि क्षमता
1.21.17 जीवसंख्या वृद्धि आकार
1.21.18 वहन क्षमता
1.21.19 जीवसंख्या नियन्त्रण
1.22 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.23 सारांश
1.24 मुख्य शब्दावली
1.25 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.26 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय (Introduction)

यह विज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसके अन्तर्गत पेड-पौधे एवं जीव जन्तुओं का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पडता है और पर्यावरण का जीव जन्तुओं पर क्या प्रभाव पडता है, दोनों के बीच परस्पर अन्योन्य क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

पारिस्थितिकी (Ecology) जीवविज्ञान की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत जीवधारियों का, उनके अजैविक व जैविक वातावरण से सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। पारिस्थितिकी में प्राणियों के आवास, व्यवहार, आदि का अध्ययन इस दृष्टि से किया जाता है कि प्रकृति में उनका संतुलन उचित ढंग से किस प्रकार बना रहता है। पारिस्थितिकी के अन्तर्गत जीवों के समूहों, जैसे– आबादी और समुदाय (Community) एवं उनको प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

पॉपुलेशन (Population) शब्द लैटिन भाषा के शब्द पॉप्युलस (Populus) से बना है। पारिस्थितिकी के अनुसार, जीवों का वह समूह (किसी एक प्रजाति), जो किसी विशेष स्थान पर निवास करता है, को उस जाति का उस स्थान विशेष मे आबादी या जनसंख्या (Population) कहा जाता है। पॉपुलेशन में पाए जाने वाले सभी सदस्य एक जाती के हों तो ऐसी पॉपुलेशन प्रायः मोनास्पेसिफिक पॉपुलेशन (Monospecific Population) कहलाती हैं। लेकिन जब पॉपुलेशन में पाऐ जाने वाले सदस्य कई जातीयों (Species) के हों, तो ऐसी पॉपुलेशन पॉलीस्पेसिफिक पॉपुलेषन (Polyspecific Population) कहलाती है। जीव संख्या की बनावट एवं उसका वितरण, स्थान–विशेष में घनत्व (Density), जन्म दर (Birth Rate), मृत्यु दर (Mortality), आयु का वितरण, समय व स्थान निर्भर हैं।

"किसी जीव प्रजाति की कार्यात्मक इकाई के सदस्यों के उस समूह को, जो वातावरण से सीधे अनुक्रियाएँ करते हुए स्थान–विशेष के प्राकृतिक स्त्रोतों का समान रूप से उपयोग करते हों, समष्टि (Population) कहलाते हैं।"

मैकनॉटन 1973 (Mac Naughton, 1973) ने समान, आनुवंशिकी के उस समूह को, जो समय विशेष और स्थान विशेष पर पाए जाते हैं, समष्टि बताया है।

इसी प्रकार क्रेब्स (Krebs, 1976) के अनुसार, "किसी विशेष समय और स्थान पर प्रजाति (Species) विशेष के समूह को वहाँ की जीवसंख्या या समष्टि कहते हैं।"

"किसी दिए गए विशिष्ट स्थान और समय पर समान जीन भण्डार (Gene pool) जीव के सदस्य समूह के उन सदस्यों की संख्या के योग को समष्टि कहते हैं, जिनमें प्रजनन के माध्यम से जीन्स के आदान-प्रदान से प्रजाति की निरन्तरता बनाए रखने की क्षमता होती है।"

1.1 उद्देश्य (Objectives)

पारिस्थितिकी (Ecology) अथवा पारिस्थितिकीय तंत्र (Ecosystem) का अध्ययन निम्नलिखित महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है–

- पारिस्थितिकीय तंत्र अथवा पारिस्थितिकी जीव विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखाओं में से एक हैं जिसका उद्देश्य पर्यावरण के जैविक घटक एवं अजैविक घटकों के बीच परस्पर संबंधों की जानकारी देना है जो कि पर्यावरण में पाए जाने वाले घटकों को समझाने/समझने में मदद करता है।
- पारिस्थितिकी/पारिस्थितिकी के माध्यम से उर्जा प्रवाह कैसे होता है? भू-जैव-रासायनिक पदार्थों का चक्रीयकरण आदि के महत्व एवं उपयोगिता को समझने में सहायक होता है।
- पर्यावरणीय निम्नीकरण को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से नुकसान पहुँचाने वाले कारकों का पता लगाने मे महत्वपूर्ण योगदान है।
- पारिस्थितिकी (Ecology) के अध्ययन से विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली जैवविविधता के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।
- Ecosystem (पारिस्थितिकीय तंत्र) के माध्यम से खनिज लवणों (Mineral Salts), पेट्रोल, डीजल, कोयला आदि के प्राकृतिक भंडारों का पता लगाने में अर्थात्, प्राकृतिक संसाधनों की खोज करने में सहमत है।
- जंगलों का विनाश (Deforestation) प्राकृतिक साधनों का दोहन में, जनसंख्या के अत्यधिक वृध्दि के कारण पर्यावरण संतुलन में लगातार कमी होना एवं पर्यावरणीय दबाव आदि के संकट को पारिस्थितिकीय तंत्र के द्वारा भली-भांति समझा जा सकता है।
- पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक घटकों के बीच संतुलन स्थापित करना पारिस्थितिकी का प्रमुख उद्देश्य है।

- विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों एवं सामान्य जनमानस (जनता तक) आदि में पर्यावरण के प्रति प्रेम, सकारात्मक सोच का पैदा करना तथा वृक्षारोपण, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति करना, जागरूकता लाने, संगोष्ठी करना, सेमिनार आदि के माध्यम से पर्यावरणीय छति को कम करना आदि प्रमुख उद्देश्य हैं।
- Global warming, over Explosion of population (भूमण्डलीकरण) अत्यधिक जनसंख्या विस्फोट, कृषि के क्षेत्रों में अन्धाधुन्ध रासायनिक कीटनाशकों, उर्वरकों के प्रयोग एवं छिडकाव के कारण भूमि का बंजर होना एवं गैर कानूनी दंग से प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करना आदि सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलुओं के विषय में इकोलॉजी के अध्ययन से पता चलता है। तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

1.2 पारिस्थितिकीय तंत्र की आधारभूत अवधारणाएँ (Basic Concepts of Ecosystem)

1.2.1 पारिस्थितिकीय तंत्र

Introduction

इकोसिस्टम (Ecosystem) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन 1935 में ए.जी. टैन्सले (A.G. Tansley) ने किया था। कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने इकोसिस्टम (Ecosystem) के लिए माइक्रोकोज्म (Microcosm) एवं बायोसिस्टम शब्दों का भी प्रयोग किया है। पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) पारिस्थितिकी की वह मूल क्रियात्मक इकाई है जिसमें जैविक समुदाय (Biological Communities) अपने अजीवित (Abiotic) पर्यावरण से आपस में सम्बन्धित होता है। अतः एक जैविक समुदाय (Biological community) अपने अजैव (Abiotic) पर्यावरण के साथ एक पर्यावरण तंत्र को प्रदर्षित करता है। इस तंत्र के अन्तर्गत जीवित एवं अजीवित तत्व आते है।

क्लार्क (1954) के अनुसार, "पारिस्थितिकीय तंत्र-समुदाय एवं वातावरण की क्रियात्मक सक्रियता है।"

ओडम (Odum, 1963) के अनुसार, "पारिस्थितिकीय तंत्र वह मूल क्रियात्मक इकाई है, जिसमें जैविक एवं अजैविक वातावरण सम्मिलित हैं। दोनों एक-दूसरे के गुणों को प्रभावित करते हैं। तथा दोनों पृथ्वी पर जीवन के निर्वाह के लिए आवश्यक हैं।"

एस. मैथेवान (S. Mathavan, 1974) के अनुसार, "पारिस्थितिकीय तंत्र, समस्त जीवों, वातावरण के सब भागों में एवं उनके मध्य पारस्परिक क्रियाओं का कल योग है।"

अन्य शब्दों में, "जीवित जीव का उसके भौतिक एवं जैविक वातावरण के साथ पारास्परिक संबंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं।"

टिप्पणी

1.3 पारिस्थितिकीय तंत्र के घटक (Components of Ecosystem)

पारिस्थितिकीय तंत्र का अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है तथा इन्हीं के अनुरूप इसके घटकों का स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है। ओडम (Odum) के अनुसार, पारिस्थितिकीय तंत्र को पोषण के आधार पर दो घटकों (Components) में विभाजित किया जा सकता है जो निम्न प्रकार हैं –

1. **स्वपोषी घटक (Autotrophic Component)**– इस घटक के मुख्य सदस्य हरे पौधे हैं जो प्रकाष-संश्लेषण की क्रिया करते हैं। ये सरल कार्बनिक पदार्थों से जटिल कार्बनिक पदार्थ बनाते हैं। ये सदस्य उत्पादक (Producers) कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त इस घटक में प्रकाश-संश्लेषण करने वाले कुछ जीवाणु एवं रसायनी-संश्लेषण जीवाणु (Chemosynthetic bacteria) जो अकार्बनिक पदार्थों के उत्पादन में सहयोग करते हैं, भी सम्मिलित हैं।
2. **विषमपोषी घटक (Heterotrophic Component)**– इस घटक के अन्तर्गत कवक, कुछ जीवाणु तथा समस्त जन्तु सम्मिलित हैं। ये सभी उपभोक्ता (Consumers) कहलाते हैं, क्योंकि ये उत्पादकों द्वारा निर्मित पदार्थों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष (Direct and Indirect) रूप में पोषण के लिए उपभोग करते हैं। उपभोक्ताओं को गुरू उपभोक्ता (Macroconsumers) तथा सूक्ष्म उपभोक्ता (Microconsumers) की श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

किन्तु संरचनात्मक दृष्टिकोण के अनुसार, पारिस्थितिकीय तंत्र के निम्न घटक होते हैं– (1) अजीवीय घटक तथा (2) जीवीय घटक।

1. **अजीवीय घटक (Abiotic Component)**– इनके अन्तर्गत निम्नलिखित दो प्रकार के कारक आते हैं–
   (अ) भौतिक कारक (Physical Factors), तथा
   (ब) रासायनिक कारक (Chemical Factors)।

   (अ) भौतिक कारक (Physical Factors)– वे सभी भौतिक कारक जो किसी-न-किसी रूप में जैविक क्रियाओं को प्रभावित करते है, भौतिक वातावरण का निर्माण करते हैं। इनमें प्रमुख है– ताप (Temperature), प्रकाश (Light), वर्षा (Rains) तथा आर्द्रता (Humidity) आदि।

   (ब) रासायनिक कारक (Chemical Factors)– रासायनिक कारकों को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है–
   (i) अकार्बनिक पदार्थ तथा (ii) कार्बनिक पदार्थ।

   (i) अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic Substances)– इसके अन्तर्गत जल, तत्व तथा गैसें आती हैं। तत्वों में महापोषी तत्व (Macronutrient elements), जैसे– कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर आदि तथा लेशपोषी तत्व (Micronutrient element), जैसे– जिंक, मैंगनीज, कॉपर, बोरॉन

आदि प्रमुख है। गैसों में ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइ-ऑक्साइड तथा अमोनिया आदि महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic Substances)– जो पदार्थ जैविक तथा अजैविक घटकों में सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं, कार्बनिक पदार्थ कहलाते हैं, जैसे– लिपिड्स, कार्बोहाइड्रेट्स आदि।

2. **जीवीय घटक (Biotic Component):** इसमें जीवों की निम्न श्रेणियाँ सम्मिलित है –

(अ) उत्पादक, (ब) उपभोक्ता, (क) उपघटक एवं (ड) रूपान्तरक।

(अ) उत्पादक (Producers)– उत्पादक पारिस्थितिकीय तंत्र के वे सजीव सदस्य है जो सरल अकार्बनिक यौगिकों से जटिल कार्बनिक पदार्थों के रूप में अपना भोजन बनाने में पूर्णतया समर्थ होते हैं। इस प्रकार के स्वपोषी जीव (Autotrophic organism) होते है। पारिस्थितिकीय तंत्र में उत्पादक प्रायः फोटोसिन्थेटिक पौधे होते हैं। पारिस्थितिकीय तंत्र के अन्तर्गत पादक प्लवक (Phytoplankton) या जड़ों वाले पेड़-पौधे, उथले जल में तैरने वाले पौधे, समुद्र में शैवाल (Algae), घास के मैदानों में विभिन्न प्रकार की घास तथा जंगलों में बड़े-बड़े पेड़ उत्पादक (Producer) हैं। विभिन्न पारिस्थितिक तत्वों में पाए जाने वाले पेड़-पौधे आकृति एवं संरचना में बहुत भिन्नता दर्शाते हैं।

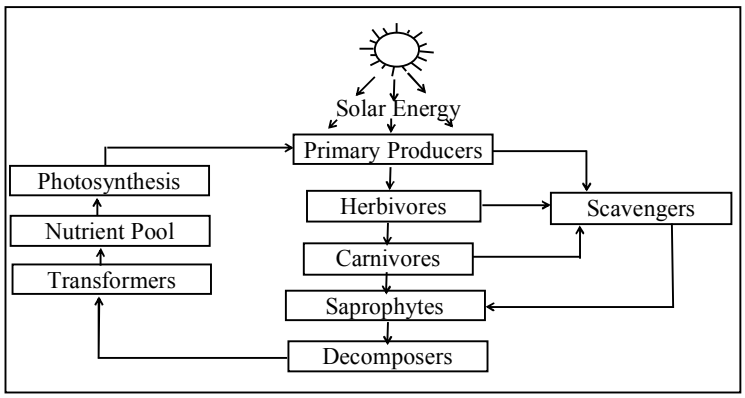

चित्र क्र. 1.1: एक पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न जैविक घटकों में पोषण संबंध की व्यवस्था (A generalized scheme of nutritional relationships amongst principal biotic components of an ecosystem)

(ब) उपभोक्ता (Consumers)– पारिस्थितिकीय तंत्र के उपभोक्ता (Consumers) वे सजीव सदस्य हैं, जो उत्पादकों (Producers) के द्वारा संश्लेषित भोजन का उपयेाग करते हैं। ये प्रायः एक तंत्र में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणी हैं। उपभोक्ताओं को विभिन्न वर्गों में रखा जा सकता है–

1. **शाकाहारी प्राणी (Herbivores Animals)**– ये प्राणी अपने पोषण के लिए केवल वनस्पतियों का सेवन करते हैं। इसलिए वे पारिस्थितिकीय तंत्र में प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer)

होते हैं। जंगल में हिरन प्राथमिक उपभोक्ता है, चूहा बगीचों का तथा प्रोटोजोअन्स, क्रस्टेशियन्स तथा मोलस्क, जोहड़, तालाब व समुद्र के प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer) है। ये समुद्रों तथा तालाबों में पायी जाने वाली शैवाल (Algae) खाते हैं। प्राथमिक उपभोक्ता द्वितीयक उपभोक्ताओं (Secondary consumers) का भोजन बनते हैं।

2. **प्राथमिक माँसाहारी (Primary Carnivores)**– ये प्राणी द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumers) कहलाते हैं, जैसे – अनेक मछिलियाँ, सरीसप, पक्षी, कुत्ता, बिल्ली आदि। ये प्राथमिक उपभोक्ता अथवा शाकाहारी प्राणियों का भक्षण करते हैं।

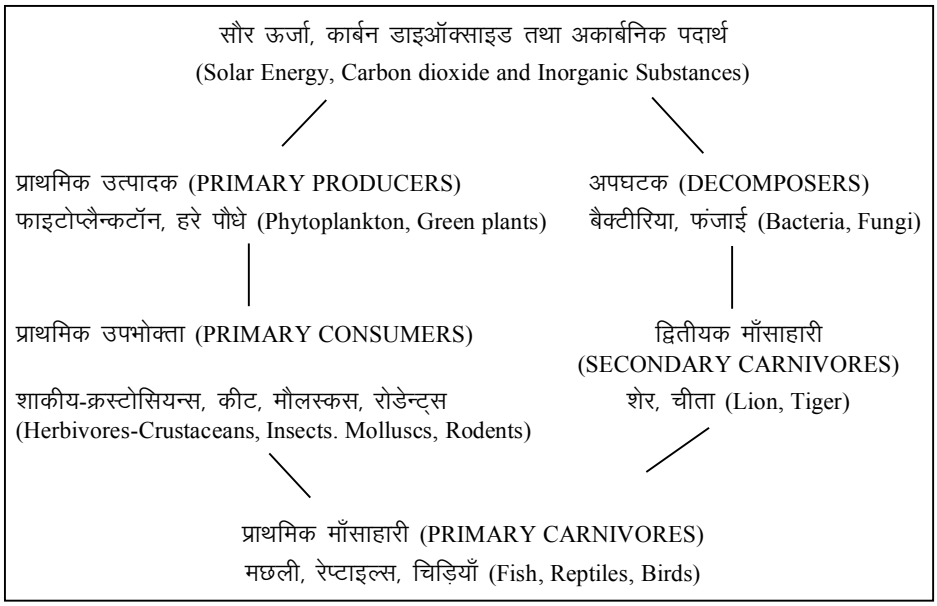

चित्र क्र. 1.2: स्वयं निर्भर इकोसिस्टम के मुख्य चरण तथा अवयव
(A generalized scheme showing main steps and components of a self-sufficient ecosystem)

3. **द्वितीयक माँसाहारी (Secondary Carnivores)**– इन प्राणियें का भोजन प्राथमिक माँसाहारी प्राणी होते हैं। इन्हें तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumers) कहते हैं, जैसे– चीता, शेर आदि। पारिस्थितिकीय तंत्र में उत्पादक तथा उपभोक्ता का सम्बन्ध खाद्य श्रृंखला (Food chain) कहलाता हैं। जब विभिन्न प्रकार के उपभोक्ता एक ही प्रकार के उत्पादक से अपना भोजन प्राप्त करते हैं तो इसे खाद्य जाल (Food web) कहते हैं, जैसे– लकड़भग्गा शेर के द्वारा छोड़े गये भोजन अवशेषों को अपने भोजन के रूप में लेता हैं। द्वितीयक तथा तृतीयक उपभोक्ता को गुरू उपभोक्ता (Macroconsumers) अथवा फेगोट्राफ्स (Phagotrophs) भी कहते हैं।

(क) उपघटक (Decomposers) – ये भी पारिस्थितिकीय तंत्र के सजीव प्राणी होते हैं। इस घटक के अन्तर्गत सूक्ष्म जीव, बैक्टीरिया (Bacteria), फंजाई (Fungi) आदि आते हैं। ये जीव उत्पादक (Producer) तथा उपभोक्ता

(Consumer) के मृत, क्षय होते हुए शरीर पर क्रिया करते हैं तथा जटिल पदार्थों के अपघटन से सरल पदार्थ बनाते हैं। इस सरल पदार्थों को वातावरण में मुक्त कर दिया जाता है तथा उत्पादक इनका उपयोग कर लेते हैं। अपघटकों को सेप्रोस्ट्रॉफ्स (Saprotrophs) या सूक्ष्म उपभोक्ता (Microconsumers) या ओस्मोट्रॉफ्स (Osmotrophs) भी कहते हैं। अपघटक उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के शरीर के पदार्थों को अवषोषित करके स्वयं अपने भोजन के प्रयोग में लाते हैं, तथा दूसरे पदार्थों को उत्पादकों के पुनः प्रयोग के लिए वातावरण में स्वतंत्र, कर देते है। कुछ कार्बनिक पदार्थ भी इन प्राणियों के द्वारा वातावरण में स्वतंत्र किए जाते हैं जो या तो पारिस्थितिकीय तंत्र के दूसरे घटकों के लिए उत्तेजक का कार्य करते हैं या ऊर्जा स्त्रोत होते हैं।

(ड) रूपान्तरक (Transformer)– क्लार्क (Clarke) के मतानुसार, खाद्य श्रृंखला (Food chain) में भाग लेने वाले अन्तिम प्राणी रूपान्तरक (Transformers) होते हैं। ये अपघटकों (Decomposers) के अन्तिम उत्पादों पर क्रिया करते हैं तथा उन्हें ऐसे अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थों में बदल देते हैं, जिनका उत्पादकों द्वारा प्रयोग किया जा सके। ये रूपान्तरक जीवाणु, कवक (Fungi) आदि होते हैं।

इस तरह पारिस्थितिकीय तंत्र में पौधे मुख्य उत्पादक (Producers) हैं, जन्तु उपभोक्ता (Consumer) हैं, तथा सूक्ष्म जीव अपघटक एवं रूपान्तरक (Decomposers and transformer) हैं।

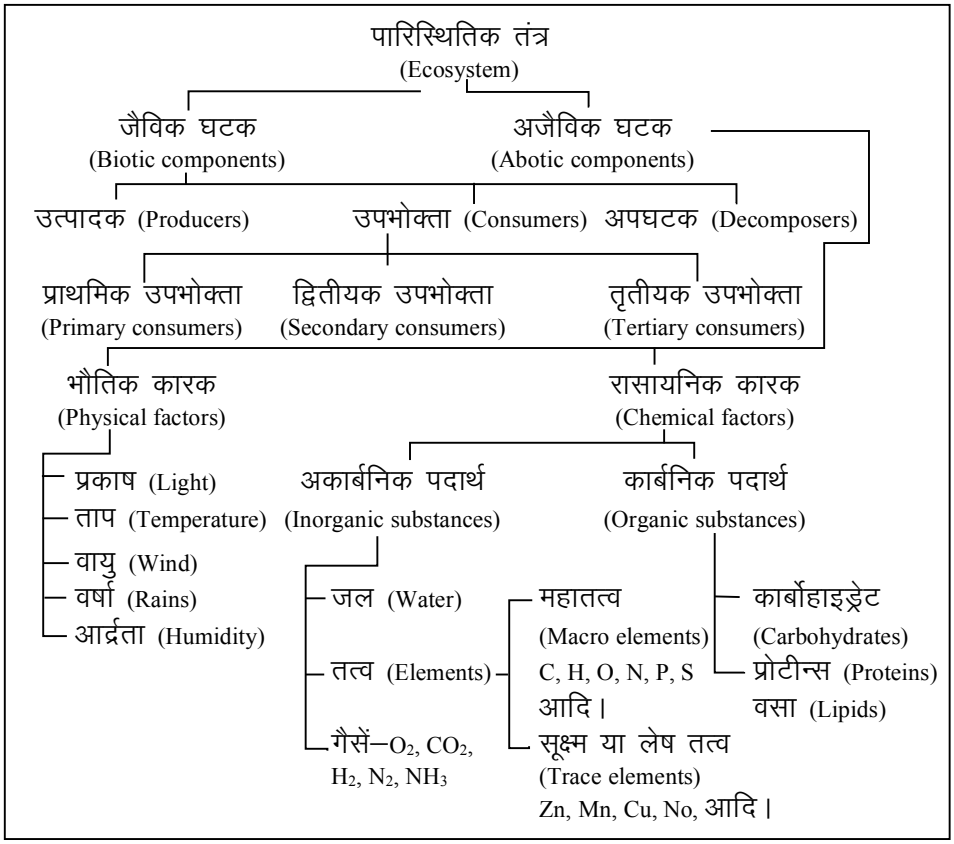

टिप्पणी

1.4 तालाब का पारिस्थितिकीय तंत्र (Ecosystem of Pond)

जलाशय या तालाब (Pond) स्वच्छ जल या अलवणीय जल, इकोतंत्र का उदाहरण है। यह इकोतंत्र आत्मनिर्भर एवं आत्मनियन्त्रक तंत्र है। जलाशय इकोतंत्र में दो मुख्य भाग होते हैं जो निम्नलिखित है–

1. **अजीवीय घटक (Abiotic Component)**– जलाशय में प्रकाश, तापमान, जल का pH, मूल अकार्बनिक पदार्थ जैसे– जल, कार्बन, कार्बन डाइऑक्साइड, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कैल्शियम, फॉस्फेट आदि तथा मूल कार्बनिक पदार्थ, जैसे– अमीनो अल्म, हयूमिक अल्म, कार्बोनिक अल्म आदि अजीवीय घटक हैं। ये पोषक तत्व घोल अथवा कणों के रूप में पाए जाते हैं। ठोस एवं जटिल पदार्थों से पोषक पदार्थो की मुक्ति, प्रकाश द्वारा ऊर्जा-प्राप्ति, दिन की लम्बाई, तापमान चक्र तथा जलवायु सम्बन्धित अन्य स्थितियाँ जलाशय के पारिस्थितिकीय तंत्र के कार्य की दर का निर्धारण करती हैं।

2. **जीवीय घटक (Biotic Component)**– स्वच्छ जल के जलाशय में जीवीय घटक के अन्तर्गत पाए जाने वाले जीवों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

   1. उत्पादक (Producers)
   2. उपभोक्ता (Consumers) तथा
   3. अपघटक (Decomposers)

   1. **उत्पादक (Producers)**– इस श्रेणी के अन्तर्गत जलाशय में विभिन्न प्रकार की हरी वनस्पतियाँ सम्मिलित हैं, जैसे– पादप-प्लवक, तन्तुमय शैवाल, प्लवमान पौधे, जलनिमग्न पौधे तथा तटीय एवं निर्गत पौधे।

      (i) पादप-प्लवक (Phytoplankton)– ये अत्यन्त सूक्ष्म तैरने वाले पौधे हैं, जो जलाशय के उन सभी भागों में पाए जाते हैं, जहाँ प्रकाश पहुँचता है। इनमें से अधिकांश शैवाल (Algae) हैं तथा इनकी अधिकता होने पर जल का रंग हरा प्रतीत होता है। *उदाहरण–* ऑसिलैटोरिया (Oscillatoria), वॉलवॉक्स (Volvox), क्लॉस्ट्रियम (Clostrium), ऐनाबीना (Anabaena), यूडोराइना (Eudorina) आदि।

      (ii) तन्तुमय शैवाल (Filamentous algae)– इसमें विभिन्न प्रकार के तन्तुमय शैवाल सम्मिलित है। *उदाहरण–* स्पाइरोगाइरा (Spirogyra), कारा (Chara), निटेला (Nitella), ऊडोगोनियम (Oedogonium) आदि।

      (iii) प्लवमान पौधे (Floating plants)– ये जल की सतह (Surface) पर तैरने वाले विभिन्न प्रकार के पौधे हैं। *उदाहरण–*

पिस्टिया (Pistia), लेम्ना (Lemna), वोल्फिया (Wolffia), ऐजोला (Azolla) आदि।

टिप्पणी

(iv) जल-निमग्न पौधे (Submerged plants)– ये जड़विहीन तथा जड़युक्त पौधे हैं जो जल में डूबे हुए रहते हैं। *उदाहरण*– वैलिसनेरिया (Vallisnaria), यूट्रिकुलेरिया (Utricularia), सिरेटोफाइलियम (Ceratophyllium), हाइड्रिला (Hydrilla) आदि।

(v) तटीय तथा निर्गत पौधे (Marginal and Emergent plants)– इसके अन्तर्गत वे पौधे सम्मिलित हैं, जो जलाशय के तट के समीप पाए जाते हैं तथा इनका कुछ जल भी सतह के ऊपर रहता है। *उदाहरण*– आइपोमिया (Ipomea), टाइफा (Typha), जूसिया (Jussiaea), ऐकोरस (Acorus) आदि।

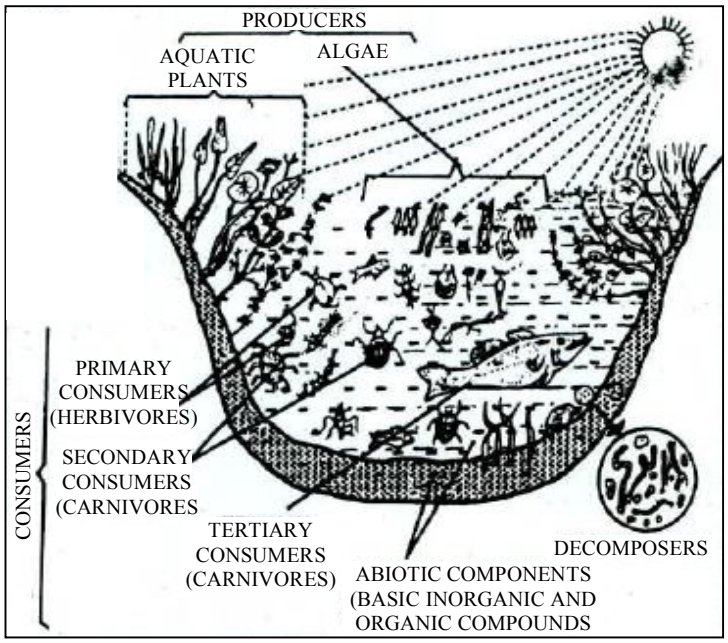

चित्र क्र. 1.3: तालाब का पारिस्थितिकीय तंत्र (Ecosystem of Pond)

2. **उपभोक्ता (Consumers)**– इसमें जलाशय में पाए जाने वाले जन्तु सम्मिलित हैं, जो प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक उपभोक्ता हैं। इन्हें तीन विभिन्न श्रेणियों – प्राणि-प्लवक, तरणक तथा नितल में विभाजित किया जा सकता है, जो कि निम्न प्रकार हैं –

(i) प्राणि-प्लवक (Zooplankton)– ये अत्यन्त सूक्ष्म तथा जल की सतह पर तैरने वाले जन्तु हैं। *उदाहरण*– ऐक्टीनोफ्रिस (Actinophrys), डेफ्निया (Daphnia), आदि।

(ii) तरणक (Nekton)– वे जन्तु जो अपने विभिन्न उपांगों की सहायता से जल में सक्रिय रूप से तैरते हैं, इसमें सम्मिलित हैं। *उदाहरण*– कीट, कीट-लार्वे, मेंढक, मछली इत्यादी।

(iii) नितल जीव (Benthos animals)– इसमें वे जन्तु सम्मिलित हैं जो जलाशय के तल में रहते हैं। *उदाहरण*– क्रस्टेशियन्स (Crustaceans), एनेलिड्स (Annelids), मौलस्क्स (Molluscs), कीट-लार्वे (Insect-larvae), प्लेनिरिया (Planaria), मछलियाँ आदि।

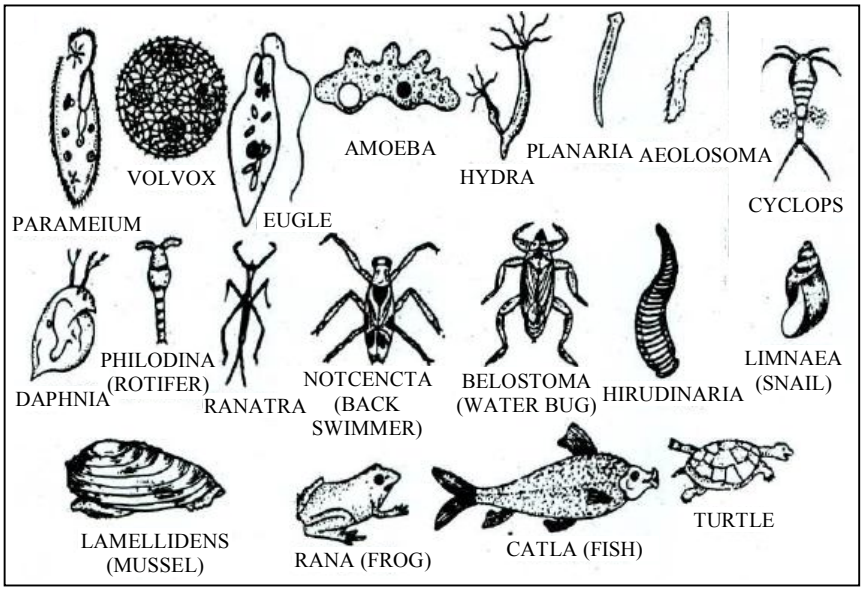

चित्र क्र. 1.4: अलवणीय जलाशय में निवास करने वाले कुछ जन्तु
(Examples of some animals which inhabit the fresh water ponds)

3. **अपघटक (Decomposers):** इसके अन्तर्गत वे जीव आते हैं जो जटिल अपघटित पदार्थों के कुछ भाग को अवशोषित करके उसे सरल पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं, इनके द्वारा खनिज पदार्थ जलाशय के माध्यम में पुनः वापस आ जाते हैं। इनमें मुख्यतः जीवाणु, कवक एवं ऐक्टिनोमाईसिटीज सम्मिलित हैं। *उदाहरण*– ऐस्परजिलस (Aspergillus), पेनिसीलियम (Penicillium), क्लेडोस्पोरियम (Cladosporium), राइजोपस (Rhizopus), फ्यूजेरियम (Fusarium), आदि।

1.5 चरागाह घास लैन्ड का पारिस्थितिकीय तंत्र (Ecosystem of Grassland)

चरागाह स्थलीय पारिस्थितिकीय तंत्र का एक उदाहरण है। इस इकोतंत्र में भी दो प्रमुख घटक होते हैं, जो कि, निम्न प्रकार हैं–

1. अजीवीय घटक (Abiotic Component), तथा
2. जीवीय घटक (Biotic Component)।

1. **अजीवीय घटक (Abiotic Component)**– इसके अन्तर्गत विभिन्न तत्व, जैसे– कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा नाइट्रेट, फॉस्फेट, जल, कार्बन डाईऑक्साइड एवं कुछ सूक्ष्म तत्व सम्मिलित हैं।

2. **जीवीय घटक (Biotic Component)**– चरागाह के जीवीय घटक के अन्तर्गत मुख्यतः उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटक आते हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

   (अ) उत्पादक (Producers)– चरागाह पारिस्थितिकीय तंत्र में मुख्य उत्पादक घास (Grass) की विभिन्न जातियाँ एवं प्रजातियाँ है। इसके अतिरिक्त कुछ शाक (Herbs) एवं झाड़ियाँ (Shrubs) भी उत्पादक हैं।

   (ब) उपभोक्ता (Consumers)– इसमें चरागाह में रहने वाले सभी प्रकार के जन्तु सम्मिलित हैं, जिन्हें क्रमशः प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक उपभोक्ताओं की श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

   (i) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers)– इसमें शाकभक्षी (Herbivores) जन्तु, मुख्यतः चरने वाले (Grazing) जन्तु आते हैं जैसे– गाय, भैंस, हिरण, खरगोश तथा कुछ कीट, जैसे– लैप्टोकोरिसा (Leptocorisa), ऑक्सीरोकिस (Oxyrhochis), डिसडर्कस (Dysdurcus), दीमक (Termites), मिलीपीड (Millipede) आदि।

   (ii) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)– इसमें माँस भक्षी जन्तु आते हैं जो शाक भक्षियों अर्थात प्राथमिक उपभोक्ताओं का भक्षण करते हैं। *उदाहरण*– छिपकली, सर्प, मेंढक, सियार, लोमडी, कीट भक्षी (Insectivores) पक्षी इत्यादी।

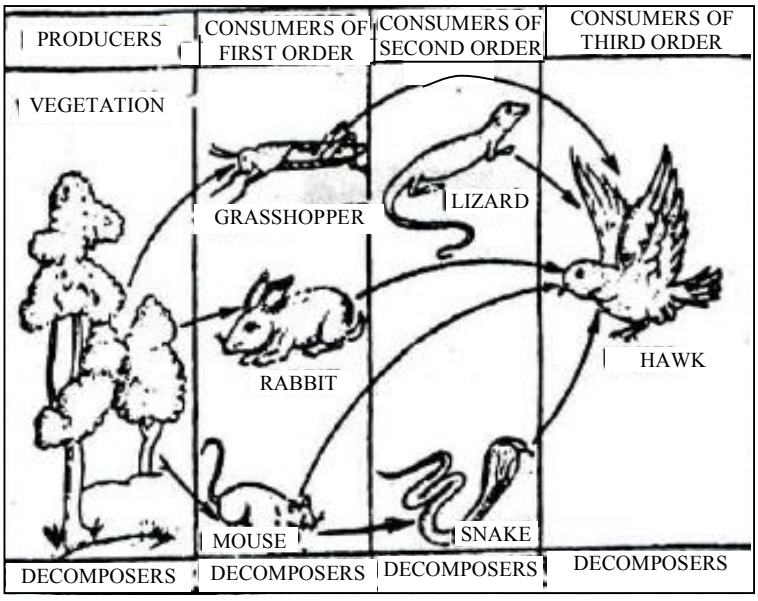

चित्र क्र. 1.5: चरागाह पारिस्थितिकीय तंत्र में एक छोटी खाद्य श्रृंखला
(A small food chain in a grassland ecosystem)

(iii) तृतीय उपभोक्ता (Tertiary Consumers)– इसमें वे माँसाहारी जन्तु आते हैं, जो द्वितीयक उपभोक्ताओं का भक्षण करते हैं। चरागाह पारिस्थितिकीय तंत्र में इस श्रेणी के अन्तर्गत मुख्यतः माँसभक्षी (Carnivores) पक्षी, जैसे– बाज़, उल्लू, मोर आदि सम्मिलित हैं।

3. **अपघटक (Decomposers)**– इसके अन्तर्गत मुख्यतः जीवाणु एवं कवक आते हैं जो उत्पादक एवं उपभोक्ताओं के मृत शरीर के सड़ने से प्राप्त जटिल कार्बनिक पदार्थों को सरल खनिजों में अपघटित करते हैं। ये खनिज इकोतंत्र में उत्पादकों को पुनः उपलब्ध हो जाते हैं।

1.6 समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र (Marine Ecosystem)

1. **अजैविक घटक (Abiotic components)**– इसके अन्तर्गत प्रकाश, ताप, लवणीयता (Salinity), घुलित ऑक्सीजन आदि आते हैं। समुद्री जल की लवणीयता लगभग 3.5 प्रतिशत (स्वच्छ जल की लवणीयता 0.5 प्रतिशत) होती है। लवणों में सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड्स, सल्फेट्स, फॉस्फेट्स, बाइकार्बोनेटस् तथा कार्बोनेट्स प्रमुख रूप से होते हैं, जिसमें सर्वाधिक मात्रा (27 प्रतिशत) सोडियम क्लोराइड की होती हैं।

2. **जैविक घटक (Biotic Components)**– इसके अन्तर्गत निम्न को सम्मिलित किया जाता है –

   (i) उत्पादक (Producers)– समुद्र की विभिन्न गहराइयों में विभिन्न प्रकार के उत्पादक पाए जाते हैं। ये अपना भोजन स्वयं संश्लेषित करते हैं। समुद्र में पाए जानेवाले स्वपोषी जीवों में पादपप्लवक (Phytoplanktons), जैसे– डायेटम्स तथा समुद्री खरपतवार, जैसे– लाल एवं भूरी शैवाल (Red and Brown Algae) आदि होते हैं।

   (ii) उपभोक्ता (Consumers)– ये विषमपोषी जीव होते हैं। ये निम्नवर्णित हैं–

   (a) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers)– ये शाकाहारी होते हैं और उत्पादकों को खाते हैं, जैसे– कोपीपॉड्स (Copepods); यूफॉसिड्स (Euphausids), जैसे– क्रस्टेशियन (Crustaceans); टेरोपॉड्स (Pteropods) एवं हेटरोपॉड्स (Heteroponds), जैसे– मोलस्क, फोरामिनीफेरा (Foraminifera) तथा रेडियोलेरिया (Radioloaria), जैसे– कवचयुक्त प्रोटोजोअन आदि।

   (b) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)– ये माँसाहारी होते हैं और प्राथमिक उपभोक्ताओं कों खाते हैं– जैसे– हेरिंग (Herring), शाड (Shad) आदि मछलियाँ।

(c) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers)– ये द्वितीयक उपभोक्ताओं का शिकार करते हैं। कॉड (Cod), हैडौक (Haddock), हैलीबॅट (Halibut) आदि मछलियाँ; सिल्वरसाइड्स (Silversides), किलीफिश (Kilifish), फ्लॉउनडर्स (Flounders) जैसे– समुद्री पक्षी एवं व्हेल (Whale), सील (Seal) आदि।

(iii) अपघटनकर्ता (Decomposers)– जीवाणु (Bacteria) मुख्यतया पेरीफाईटिक (Periphytic) होते हैं जो तैरते हुए पौधों से चिपके या सड़े-गले पदार्थों में पाए जाते हैं। कवकों (Fungi) की संख्या नगण्य होती हैं।

1.7 वन का पारिस्थितिकीय तंत्र (Forest Ecosystem)

1. **अजैविक घटक (Abiotic Components)**– मिट्टी और वातावरण में पाए जानेवाले सभी अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थ पौधों के लिए आवष्यक होते हैं। वनों में प्राणियों की मृत्यु के कारण तथा पौधों से कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। पादप समुदाय के जटिल स्तरण (Stratification) के कारण प्रकार की, दशा में विभिन्नता पायी जाती है।
2. **जैविक घटक (Biotic Components)**– ये निम्नानुसार पाए जाते हैं–

(i) उत्पादक (Producers)– वनों में वृक्ष मुख्य रूप में उत्पादक का कार्य करते हैं।

(ii) उपभोक्ता (Consumers)– ये तीन प्रकार के होते हैं –

(a) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers)– प्राथमिक उपभोक्ता के रूप में शाकाहारी जन्तु आते हैं।

(b) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)– इनमें माँसाहारी जन्तु जैसे– साँप, छिपकली, पक्षी, लोमडी, आदि आते हैं जो शाकाहारी जन्तुओं का भक्षण करते हैं।

(c) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers)– इस श्रेणी में उच्चतम उपभोक्ता जैसे– शेर, चीता आदि आते हैं।

(iii) अपघटनकर्ता (Decomposers)– अनेक प्रकार के जीवाणु एवं कवक मिट्टी में रहकर पत्तियों एवं मृत प्राणियों के शरीर का अपघटन करते हैं। जीवाणुओं में बैसिलस (Bacillus), स्यूडोमोनॉस (Pseudomonas) तथा कवकों में एस्पर्जिलस (Asperillus), फ्यूजेरियम (Fusarium), आल्टरनेरिया (Alternaria) आदि प्रमुख हैं।

टिप्पणी

1.8 मरूस्थलीय पारिस्थितिकीय तंत्र (Desert Ecosystem)

मरुस्थलीय पारिस्थितिकीय तंत्र की संरचना अन्य प्रकार के पारिस्थितिकीय तंत्रों से भिन्न होती हैं। इसका प्रमुख कारण ताप तथा जल जैसे महत्वपूर्ण कारकों की पराकाष्ठा होता है। इसके अन्तर्गत निम्न होते हैं–

(i) उत्पादक (Producers)– उत्पादक के रूप में मुख्यतया झाडियाँ (Shrubs) घास एवं वृक्ष तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में कैक्टस पाए जाते है। निम्न कोटि के पादपों में लाइकेन (Lichens) तथा मॉस (Mosses) भी पाए जा सकते हैं।

(ii) उपभोक्ता (Consumers)– मुख्यतया सरीसृप एवं कीट उपभोक्ता के रूप में पाए जाते हैं। कुछ पक्षी एवं ऊँट भी उपभोक्ता के रूप में पाए जाते हैं।

(iii) अपघटनकर्ता (Decomposers)– इनकी संख्या मरुस्थल में बहुत कम होती है। उच्च ताप पर जीवित रहने वाले कुछ जीवाणु एवं कवक भी पाए जाते हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. इकोसिस्टम शब्द सर्वप्रथम किसने दिया?
   (अ) एच.टी. ओडम (ब) कार्ल मोथियस
   (क) ए.जी. टैन्सले (ड) इ.पी. ओडम
2. पारिस्थितिकीय तंत्र के दो घटक हैं–
   (अ) जैविक एवं अजैविक (ब) खरपतवार एवं वृक्ष
   (क) प्राणी एवं पौधे (ड) मेंढक एवं मानव
3. पारिस्थितिकीय तंत्र का तात्पर्य है–
   (अ) अनेक पौधों एवं प्राणियों के सहवास से
   (ब) पौधों, प्राणियों एवं सूक्ष्म जीवियों के विभिन्न समुदाय एवं उनके भौतिक रासायनिक वातावरण से
   (क) पौधों एवं सूक्ष्मजीवियों के विभिन्न समुदाय एवं उनके भौतिक-रासायनिक वातावरण से
   (ड) उपर्युक्त में से किसी से भी नहीं
4. एक ताबाल है–
   (अ) एक बायोम
   (ब) एक अप्राकृतिक पारिस्थितिकीय तंत्र
   (क) एक प्राकृतिक पारिस्थितिकीय तंत्र
   (ड) पादप एवं प्रणियों का समुदाय

5. एक पारिस्थितिकीय तंत्र में प्रकाश-संश्लेषी पौधे होते हैं–
   (अ) परभक्षी (ब) प्रारम्भिक विघटक
   (क) उत्पादक (ड) केवल विघटक
6. निम्न में कौन सा पारिस्थितिक क्रम होता हैं?
   (अ) उत्पादक – विघटक – उपभोक्ता
   (ब) उपभोक्ता – उत्पादक – विघटक
   (क) विघटक – उपभोक्ता – उत्पादक
   (ड) उत्पादक – उपभोक्ता – विघटक
7. एक वन्य पारिस्थितिकीय तंत्र में हरे पौधे होते हैं–
   (अ) प्रारम्भिक उत्पादक (ब) उपभोक्ता
   (क) प्रारम्भिक उपभोक्ता (ड) विघटक
8. Ecology शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया?
   (अ) हीकल (ब) टीटर
   (क) टेन्सले (ड) क्रेब्स ने
9. संपारिस्थितीकी के अंतर्गत आता है–
   (अ) एक जाति (ब) अनेक जातियाँ
   (क) अनेक समुदाय (ड) कोई नहीं

1.9 पारिस्थितिकी : परिचय (Ecology : Introduction)

पारिस्थितिकी या– विज्ञान अरस्तू एवं अन्य यूनानी दार्शनिकों के समय से ज्ञात है। जर्मन वैज्ञानिक अर्नेस्ट हेकल (Ernest Haeckel) ने 1869 में सर्वप्रथम 'Ecology' शब्द का प्रयोग किया था। 'Ecology' शब्द की उत्पत्ति एक ग्रीक शब्द 'Oikos' से हुई है, जिसका अर्थ 'घर' (House) है। 19 वीं सदी में जीव-विज्ञान की इस शाखा को Natural History कहा जाता था। इसके पश्चात जीव-विज्ञान के बढ़ते हुए ज्ञान के साथ-साथ जीव-विज्ञान की इस शाखा का ज्ञान भी विस्तृत हो गया। फलस्वरूप इस शाखा का अध्ययन भी जीव-विज्ञान की अन्य शाखाओं के समान अतिमहत्वपूर्ण हो गया है।

1.10 परिभाषा (Definition)

पारिस्थितिकी (Ecology) को प्रायः इस प्रकार परिभाषित किया जाता है– "पारिस्थितिकी (Ecology) पौधों एवं जन्तुओं के आपसी सम्बन्धों एवं उनके वातावरण के साथ सम्बन्धों का अध्ययन है।" इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं– "यह (पारिस्थितिकी) प्राणियों के आपस के सम्बन्धों एवं उनके वातावरण

से सम्बन्धों का अध्ययन है।" वातावरण में जीवीय एवं अजीवीय वातावरण सम्मिलित है। इनमें अन्तरजातीय (Interspecific) सम्बन्धों पर जोर दिया जाता है। किसी भी प्राणी का वातावरण अन्ततः प्राणी विशेष के बाहर की सभी वस्तुओं से बना होता है। सम्पूर्ण वातावरण के वे भाग, जो प्राणी के लिए अपरोक्ष (Indirect) रूप में आवश्यक होते हैं, प्रभावी वातावरण बनाते हैं। पारिस्थितिकी (Ecololgy) प्राणी समूहों के जैविक एवं पृथ्वी पर होने वाले क्रियात्मक प्रक्रमों से सम्बन्धित है। ई.पी. ओडम (1963) के अनुसार– "पारिस्थितिकी (Ecology) प्रकृति की संरचना एवं क्रियाओं का अध्ययन है।" यहाँ प्रकृति का अर्थ जीवित जगत् से है। पारिस्थितिकी की सबसे छोटी एवं आधुनिक परिभाषा– "वातावरणीय जैविकी (Environmental Biology) है।"

पारिस्थितिकी को "जीवीय समुदायों का अध्ययन (Study of Biotic Communities)" या "प्रकृति के कार्यों का अध्ययन (Study of Functions of Nature) अथवा "सामुदायिक जीवसंख्या का विज्ञान (Science of Community Population)" भी कहा जाता है। वस्तुतः पारिस्थितिकी जन्तुओं एवं वनस्पतियों तथा उनके वातावरण से सम्बन्धों का ज्ञान है।

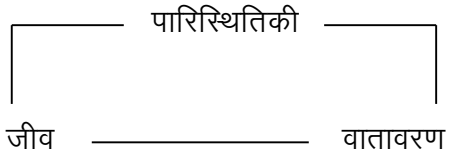

1.10.1 इतिहास (History)

मनुष्य के पारिस्थितिकी ज्ञान का प्रमाण वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। भारतीय औषधि-विज्ञान के जनक चरक एवं थियोफ्रैस्टस (Theophrastus), हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates) तथा अरस्तू (Aristotle) जैसे ग्रीक दार्शनिकों ने अपने-अपने लेखन द्वारा पारिस्थितिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सन 1859 में हिलेरी (Hilaire) ने जीवों तथा उनके वातावरण के मध्य सम्बन्धों के अध्ययन के लिए इथोलॉजी (Ethology) शब्द का प्रयोग किया तथा उसी समय मिवार्ट (Mivart) ने भी हेक्सिकोलॉजी (Hexicology) शब्द दिया, जिसे उसने 1894 में परिभाषित किया। गिबार्ट के अनुसार जीवों को उसके वातावरण में ताप एवं प्रकाश जैसे भौतिक कारकों एवं उन्हे हानि तथा लाभ पहुँचाने वाले जीवों से सम्बन्धों के अध्ययन को हेक्सिकोलॉजी कहते है। जर्मन जीवशास्त्री रीटर (Reiter) ने 1868 में ऑइकोलॉजी (Oikologie) शब्द का प्रयोग पारिस्थितिकी अध्ययन के लिए किया। ठीक एक वर्ष बाद अर्नेस्ट हीकेल (Ernest Haeckel) ने इकोलॉजी (Ecology) शब्द को परिभाषित करते हुए इसकी पूर्ण व्याख्या की।

1935 में ए.जी. टैन्सले (A.G. Tansley) ने पारिस्थितीकी तंत्र या इकोसिस्टम (Ecosystem) शब्द प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् पारिस्थितिकी अध्ययन को एक नई दिशा मिली तथा उत्पादकता एवं ऊर्जा सम्बन्धीं अध्ययनों को भी पारिस्थितिकी-विज्ञान से जोड़ा जाने लगा। इस दौरान हुए विकास में ओडम

(Odum), गोले (Golley), हैसलर (Hasler), लिन्डमैन (Lindman), पार्क (Park), क्रेब्स (Krebs) तथा भारत के प्रो.आर. मिश्रा (बनारस) एवं एफ.आर. भरूचा (मुंबई) के योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बारेट (Barett) ने 1978 में एक नया शब्द नूसिस्टम (Noosystem) प्रस्तावित किया। बारेट के अनुसार, किसी भी पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ने वाले जैविक, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक पभावों का समाकलित अध्ययन नूसिस्टम कहलाता हैं।

कार्ल मोबियस (Carl Mobius) ने 1877 में सर्वप्रथम जन्तु समुदाय (Animal Community) के पक्ष में अपना मत रखा तथा 1880 में बायोसिनोसिस (Biocoenosis) शब्द दिया। 1902 में श्रोटर तथा किर्चनर (Schroeter and Kirchner) ने समुद्र तल पर स्थित पादप समुदाय का उल्लेख करने हेतु सिनइकोलॉजी (Synecology) शब्द प्रस्तुत किया। कॉवल्स (Cowles, 1899), टैन्सले (Tansley, 1904) तथा क्लेमेन्ट (Clement, 1905) ने समुदाय में अनुक्रमण (Succession in Community) के महत्व पर प्रकाश डाला.

1.11 पारिस्थितिकी की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of Ecology)

वर्तमान समय से पारिस्थितिकी को ''संगठन स्तर के वर्णक्रम (Spectrum of levels of organisation)" के सन्दर्भ में वर्णित किया जाता है। इस वर्णक्रम में जीवीय घटक (Biotic component), अजीवीय घटक (Abiotic component) तथा जीवीय तंत्र (Biosystems) सम्मिलित हैं। जीवीय घटक के अन्तर्गत जीन्स (Genes), कोशिकायें (Cells), अंग (Organs), जीव (Organisms), जीवसंख्या या आबादी (Populations) तथा समुदाय (Communities) होते हैं। ये प्रत्येक संगठन स्तर पर अजीवीय घटक से पारस्परिक क्रियाओं द्वारा विशिष्ट जीवीय तंत्र बनाते हैं। जीवीय तंत्रों में आनुवंशिक तंत्र, कोशिका तंत्र, अंग तंत्र, जीवसंख्या तंत्र तथा पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystems) आते हैं। जैसा कि निम्न चित्र 1.6 से स्पष्ट है, पारिस्थितिकी का सम्बन्ध जीव से आगे तंत्र स्तरों से होता है अर्थात इसमें जीवीय तंत्र (Organismic systems), जीवसंख्या तंत्र (Population systems) तथा जीव समुदाय या पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystems) आते हैं।

टिप्पणी

1.11.1 संगठनों का स्तर (Level of Organisation)

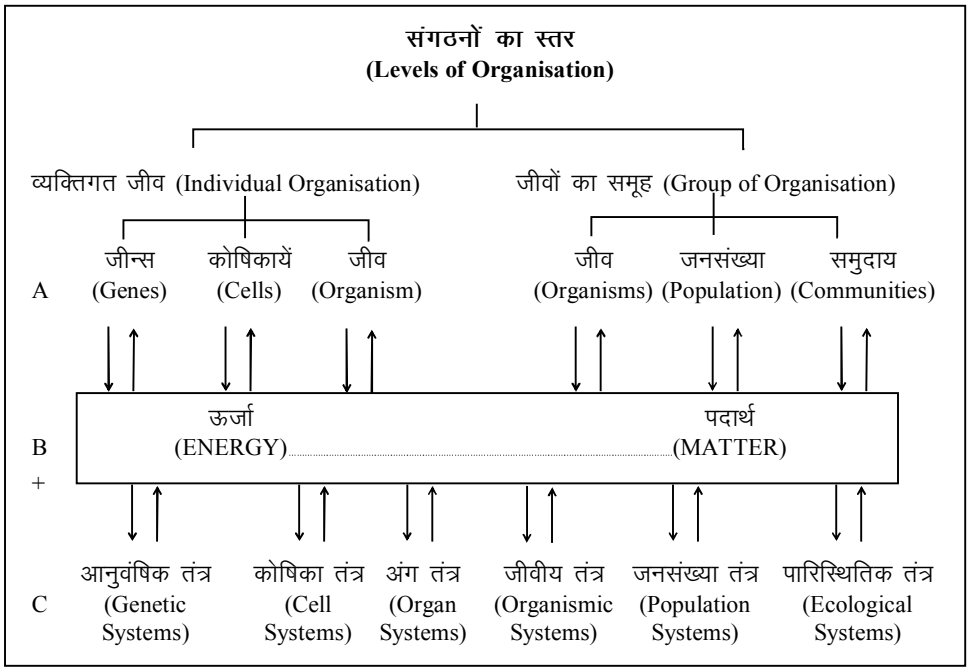

चित्र क्र. 1.6: संगठन स्तर के वर्णक्रम – (A) जैविक घटक, (B) अजैविक घटक, (C) जैव तंत्र (Spectrum of levels of organisation– (A) Biotic component, (B) Abiotic components and (C) Biosystems)

1.11.2 पारिस्थितिकी की शब्दावली (Terminology of Ecology)

पारिस्थितिकी के अध्ययन से पूर्व इसकी शब्दावली अर्थात इसमें प्रयुक्त होने वाले शब्दों से परिचित होना बहुत आवश्यक है। पारिस्थितिकी में प्रयुक्त होने वाले कुछ प्रमुख शब्द एवं उनकी व्याख्या निम्न प्रकार है–

1. जीवधारी (Organism)
2. वातावरण (Environment)
3. समुदाय (Community)
4. जीव-संख्या या आबादी (Population)
5. जैविक सृष्टि (Biosphere)
6. पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)
7. पारिज (Ecades)
8. प्रारूप (Ecotypes)
9. इकोटोन (Ecoton)
10. जीवोम (Biome)
11. जीवभार (Biomass)

12. जैव भूरासायनिक चक्र (Bio-geochemical cycles)
13. पारिस्थितिकीय निकेत (Ecological Niche)

टिप्पणी

1. **जीव अथवा जीवधारी (Organisms)**– जीव (Organisms) वह भौतिक-रासायनिक अस्तित्व (Physio-chemical entity) है, जो स्वनियन्त्रित एवं स्वप्रजननशील है। जीवधारी का शरीर वातावरण के निर्जीव एवं भौतिक घटकों के सम्मिश्रण से बनता है। प्रत्येक जीव जाति-विशेष की आबादी (Population) की एक इकाई (Unit) की तरह है।

2. **वातावरण (Environment)**– जीव का वातावरण भौतिक एवं जैविक घटकों के सम्मिश्रण से बनता है और वातावरण के समस्त घटकों का मिला-जुला प्रभाव जीव पर पड़ता है। वातावरण एवं उसमें निवास करने वाले जीव के बीच बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

3. **समुदाय (Community)**– किसी क्षेत्र में रहने वाले समस्त जीवों की आबादियों के समूह को समुदाय कहते हैं। समुदाय के समस्त जीव (पेड़-पौंधे एवं जन्तु) वातावरण के प्रत्येक घटक का उपयोग करते हुए आपस में सन्तुलन बनाए रखते हैं।

   प्रत्येक समुदाय आकार एवं क्रियाओं में अन्य समुदायों से भिन्नता प्रदर्शित करता है। वातावरण का पूर्ण लाभ उठाने के लिए समुदाय के जीवों में अनेक प्रकार की विभिन्नताए एवं अनुकूलन पाए जाते हैं।

4. **जीवसंख्या अथवा आबादी (Population)**– यह जीवों का ऐसा समूह है, जिसमें एक ही जाति (Species) एवं प्रजातियों (Sub-species) अथवा निकट सम्बन्धी प्रजातियों के सदस्य सम्मिलित होते हैं।

   किसी भी आबादी की वृद्धि उसकी जन्म-दर (Natility) तथा मृत्यू-दर (Mortality) के अन्तर पर निर्भर करती है। प्राकृतिक अवस्था में किसी आबादी में अत्याधिक जन्म दर (Maximum natility) नही पहुँच पाती, क्योंकि जनसंख्या वृद्धि से वातावरण की धारण-क्षमता (Carrying capacity) कम हो जाती है और अनेक कारकों के संयुक्त प्रभाव के कारण वृद्धि-दर स्वनियिमत हो जाती है तथा आबादी सीमित रहती है।

5. **जैविक सृष्टि (Biosphere)**– यह पृथ्वी का वह क्षेत्र है, जिस पर पारिस्थितिक तंत्र (जैविक समुदाय + अजैविक वातावरण) विद्यमान है।

6. **पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem)**– यह मूल क्रियात्मक इकाई है, जिसमें जीवीय (Biotic) तथा अजीवीय (Abiotic) वातावरण सम्मिलित हैं, जो एक-दूसरे के गुणों को प्रभावित करते हैं तथा दोनों पृथ्वी पर जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक हैं। पारिस्थितिक तंत्र जीवमण्डल अथवा जैविक सृष्टि का एक अंश है। किसी पारिस्थितिक तंत्र का नाम आवास, जलवायु अथवा वनस्पति-प्रारूप (Flora) के आधार पर रखा जाता है।

   किसी पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य श्रृंखला (Food chain) के विभिन्न स्तर के जीवों में ऊर्जा प्रवाह का अनुपात (Ratio between energy flow) जब

टिप्पणी

प्रतिशत में दर्शाते हैं, तो उसे उस तंत्र की अपनी कुल पारिस्थितिकी दक्षता (Gross Ecological efficiency) कहते हैं। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र की अपनी अलग मूल पारिस्थितिक दक्षता होती है जो 1 से 13 प्रतिशत तक पायी जाती है।

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य श्रृंखला 5 स्तरों से अधिक बड़ी नहीं होती है। विकास की प्राथमिक अवस्था में यह प्रायः छोटी तथा 2 या 3 स्तरों की तथा चरम अवस्था में 5 स्तरों की होती है।

7. **पारिज या इकेड (Ecades)**– एक ही आनुवंशिक कोश (Genetic pool) के जीवों की वह जीवसंख्या जो बाहय रचनाओं में विभिन्नता प्रदर्शित करती हो, पारिज या इकेड कहलाती है।

8. **इकोटोन (Ecotone)**– दो समुदायों के मध्य के अन्तर्वर्ती समुदाय को संक्रमिका या इकोटोन (Ecotone) कहते हैं।

9. **जीवोम या बायोम (Biome)**– स्थान विशेष पर पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के समुदाय जो लगभग एक समान वातावरणीय दशाओं में रहते हैं, जीवोम या बायोम (Biome) कहलाते हैं। ये समुदाय अनुक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं में पाए जाते है।

10. **पारिस्थितिक प्रारूप या इकोटाईप (Ecotype)**– किसी जाति के सदस्यों की वह जीवसंख्या जो आनुवंशिक भिन्नता प्रदर्शित करे, पारिस्थितिक प्रारूप कहलाती है।

11. **जीवभार (Biomass)**– किसी भी समय किसी भी जीवसंख्या में पायी जाने वाली जीवित पदार्थों की मात्रा खड़ी फसल (Standing crop) कहलाती है। खड़ी फसल को प्रति इकाई क्षेत्र में उपस्थित संख्या अथवा भार के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। भार के रूप में जब इसे प्रदर्शित किया जाता है, तब इसे जीवभार (Biomass) कहते हैं।

12. **जैव-भूरासायनिक चक्र (Bio-geochemcial Cycle)**– जीवद्रव्य के मूलभूत तत्वों सहित सभी रासायनिक तत्व कुछ विशिष्ट चक्रों द्वारा वायुमण्डल से जीवों में तथा जीवों से पुनः वातावरण में प्रवाहित होते रहते हैं। इन्हीं चक्रों को जैव-भू-रासायनिक चक्र कहते हैं।

13. **पारिस्थितिकीय निकेत (Ecological Niche)**– ऐसे बहुआयामी स्थान अथवा क्षेत्र को, जिसमें वातावरणीय कारक किसी जीव को अनिश्चितकाल तक जीवित रहने की सुविधाएँ प्रदान करते हैं, पारिस्थितिकीय निकेत (Ecological Niche) कहते हैं।

1.11.3 पारिस्थितीकी के सहभाग (Sub-divisions of Ecology)

अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से पारिस्थितिकी को अनेक सहभागों अथवा शाखाओं में बाँटा गया है। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार पारिस्थितिकी का अध्ययन निम्नलिखित दो सहभागों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

1. **स्वपारिस्थितिकी (Autoecology)**– इसके अन्तर्गत किसी एक जीवधारी अथवा एक जाति के जीवधारियों एवं उसके वातावरण से सम्बन्ध के विषय में अध्ययन किया जाता है।

2. **संपारिस्थितिकी (Synecology)**– इसके अन्तर्गत जीवों के समुदायों एवं उनके वातावरण से सम्बन्धों के बारे में अध्ययन किया जाता है।
संपारिस्थितिकी के अध्ययन को परिस्थिति के अनुसार दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

   (i) जनसंख्या पारिस्थितिकी (Population Ecology)– इसमें किसी एक जाति के जीवों की आबादी (जीवसंख्या) एवं उनकी पारस्पारिक क्रियाओं (Interactions) के बारे में अध्ययन किया जाता है।

   (ii) समुदाय पारिस्थितिकी (Community Ecology)– इसके अन्तर्गत किसी समुदाय की विभिन्न जातियेां (वनस्पतियेां एवं जन्तुओं) एवं उनकी पारस्परिक क्रियाओं के बारे में अध्ययन किया जाता है।

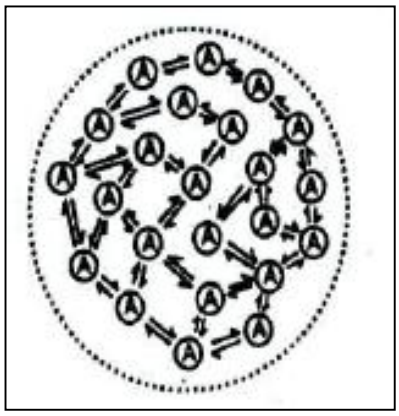

चित्र क्र. 1.7: आबादी और स्पीशीज 'A' के सदस्यों के बीच प्रतिक्रियाओं का चित्रण-जनसंख्या पारिस्थितिकी (Diagrammatic representation of the population and interactions between the individuals of a species 'A' – Population ecology)

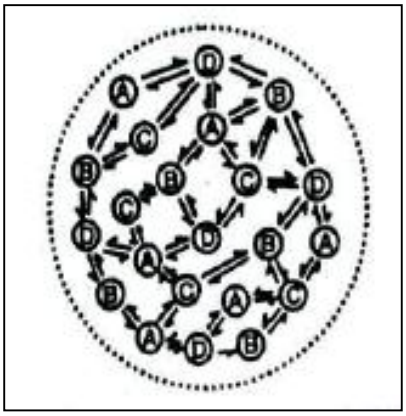

चित्र क्र. 1.8: चार स्पीशीज 'A', 'B', 'C' तथा 'D' से निर्मित एक समुदाय में स्पींशीज के सदस्यों की परस्पर प्रतिक्रियाओं का चित्रण-समुदाय पारिस्थितिकी (Diagrammatic representation of a community consisting of four different species 'A' 'B' 'C' and 'D' and their interaction with each other – Community ecology)

कुछ अन्य वैज्ञानिकों के मतानुसार पारिस्थितिकी का अध्ययन जन्तुओं एवं पादप के सन्दर्भ में निम्नलिखित सहभागों के अन्तर्गत किया जा सकता है –

1. **पादप पारिस्थितिकी (Plant Ecology)**– इसमें समस्त प्रकार की वनस्पतियों एवं उनके वातावरण से सम्बन्धों के बारे में अध्ययन सम्मिलित है।

टिप्पणी

2. **प्राणि पारिस्थितिकी (Animal Ecology)**– इसमें सभी प्रकार के जन्तुओं एवं उनके वातावरण से सम्बन्धों के विषय में अध्ययन किया जाता है।

किन्तु पारिस्थितिकी में वनस्पतियों एवं जन्तुओं का पृथक्-पृथक् रूप में अध्ययन करना बहुत कठिन है, क्योंकि इनके बीच अनेक अन्तर्क्रियाएं (Interactions) होती हैं। अतः पारिस्थितिकी के उपर्युक्त सहभाग अब वैज्ञानिक दृष्टि से मान्य नहीं हैं। आधुनिक धारणा के अनुसार पारिस्थितिकी के अध्ययन को अनेक सहभागों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें से कुछ प्रमुख सहभाग निम्न प्रकार हैं–

(i) आवासीय पारिस्थितिकी (Habitat Ecology)– इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के आवासों के वातावरण (Atmosphere) के विषय में अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ– स्वच्छ जलीय पारिस्थितिकी (Fresh water ecology), लवण जलीय या समुद्री पारिस्थितिकी (Marine ecology), मरुस्थलीय पारिस्थितिकी (Desert ecology), वन पारिस्थितिकी (Forest ecology) आदि।

(ii) जनसंख्या पारिस्थितिकी (Population Ecology)– इसके अन्तर्गत जीवों के विभिन्न समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में अध्ययन किया जाता है। इसमें जीवों की संख्या एवं उसको प्रभावित करने वाले कारकों तथा जीवों के वितरण के विषय में भी अध्ययन किया जाता है।

(iii) पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिकी (Ecosystem Ecology)– इसमें पारिस्थितिक तंत्र की रचना एवं क्रियाओं तथा जीवीय एवं अजीवीय घटकों (Biotic and Abiotic components) के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

(iv) उत्पादन पारिस्थितिकी (Production Ecology)– यह पारिस्थितिकी का एक अपेक्षाकृत नवीन सहभाग है तथा इसमें विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों की कुल उत्पादकता (Gross productivity) का अध्ययन किया जाता है। इसके द्वारा किसी पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता को बनाए रखने तथा उसमें वृद्धि करने के समुचित उपाय किए जाते हैं।

(v) पारिस्थितिकी और्जिकी या ऊर्जा विज्ञान (Ecological Energetics)– यह भी पारिस्थितिकी का एक नवीन सहभाग हैं। तथा इसमें पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह एवं संरक्षण के विषय में अध्ययन किया जाता है।

(vi) प्राकृतिक संसाधन पारिस्थितिकी (Natural Resources Ecology)– पारिस्थितिकी के इस सहभाग के अन्तर्गत प्राकृतिक संसाधनों (Natural resources) एवं उनके संरक्षण (Conservation) के बारे में अध्ययन किया जाता है। इसे संरक्षण पारिस्थितिकी (Conservation Ecology) भी कह सकते हैं।

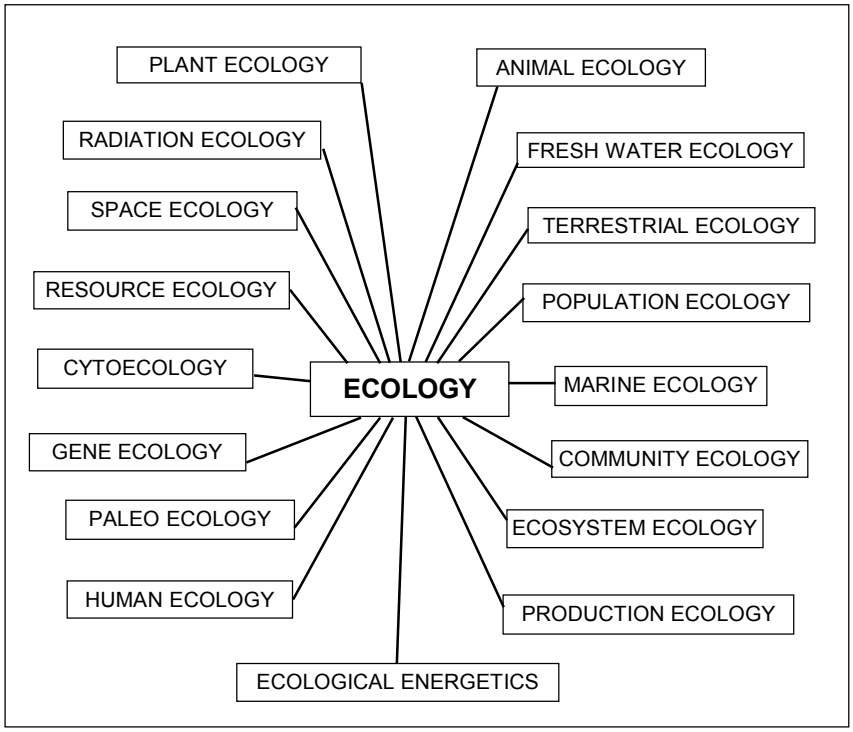

चित्र क्र. 1.9: पारिस्थितिकी के कुछ महत्वपूर्ण उपभाग
(Some Important Sub-divisions of Ecology)

(vii) समुदाय पारिस्थितिकी (Community Ecology)– इसके अन्तर्गत जीव सामुदायों एवं उनके वातावरण से सम्बन्धों के बारे में अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें समुदाय की संरचना, पोषण एवं ऊर्जा वितरण का भी अध्ययन करते हैं।

(viii) भौगोलिक पारिस्थितिकी (Ecogeography)– इस सहभाग के अन्तर्गत जीवों के भौगोलिक वितरण का अध्ययन पारिस्थितिकी के सन्दर्भ में किया जाता है।

(xi) जीवाश्म पारिस्थितिकी (Palaeo-ecology)– इसमें आदिकालीन जीवों एवं उनके उस समय के वातावरण के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन से जीवों की उत्पत्ति के समय एवं जैवविकास की प्रक्रिया को समझने में सहायता मिलती है।

उपरोक्त सहभागों के अतिरिक्त पारिस्थितिकी के अन्य महत्वपूर्ण सहभागों में वर्ग्रीकरण पारिस्थितिकी (Taxonomic Ecology), कार्यिकी पारिस्थितिकी (Ecophysiology), रासायनिक पारिस्थितिकी (Chemical Ecology), मानव पारिस्थितिकी (Human Ecology), प्रदूषण पारिस्थितिकी (Pollution Ecology), जीन पारिस्थितिकी (Gene Ecology), विकिरण पारिस्थितिकी (Radiation Ecology) आदि सम्मिलित हैं।

टिप्पणी

(x) कोशिकाय पारिस्थितिकी (Cyto-ecology) – इसके अन्तर्गत किसी प्रजाति अथवा जीवसंख्या की कोशिकीय संरचना पर पड़ने वाले वातावरणीय प्रभावों का अध्ययन किया जाता हैं।

1.12 पारिस्थितिकी के क्षेत्र (Scope of Ecology)

आधुनिक समय में पारिस्थितिकी के अध्ययन का महत्व बहुत बढ़ गया है, क्योंकि मनुष्य की प्रायः सभी क्रियाएं उसके वातावरण के घटकों से प्रभावित होती रहती हैं। वातावरण के विभिन्न घटकों से ही उसका शरीर निर्मित है तथा उसकी आवश्यकतायें, जैसे– वायु, जल, खाद्य पदार्थ, निवास, वस्त्र आदि सभी वातावरण से ही पूर्ण होती है।

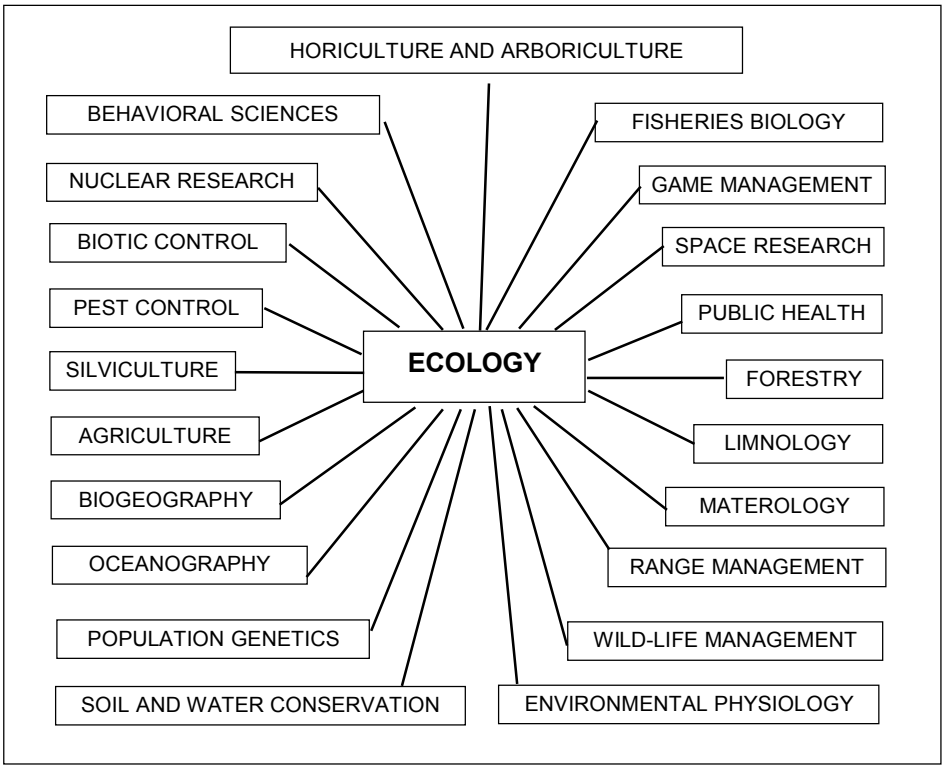

चित्र क्र. 1.10: पारिस्थितिकी और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों के बीच परस्पर सम्बन्ध (Interdependence between Ecology and other Related Fields)

मनुष्य वातावरण का एक महत्वपूर्ण उपभोक्ता है, अतः उसे पारिस्थितिकी का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। पारिस्थितिकी के अध्ययन से वातावरण के प्रदूषण एवं उसका नियम, प्राकृतिक संशोधनों का दोहन एवं संरक्षण, विभिन्न स्थानों पर जीवसंख्या आकलन, जातियों के विकास पर अनुकूलन के पभाव आदि के विषय में ज्ञान मिलता है। पारिस्थितिकी के अध्ययन के महत्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसका उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में होता है, जैसे– खेती (Agriculture), वन विज्ञान (Forestry), वन्य जीवन व्यवस्था (Wild life

management), मत्स्य विज्ञान (Fisheries), समुद्र-विज्ञान (Oceanography), अन्तरिक्ष शोध (Space research), उद्यान विज्ञान (Horticulture), मृद्रा एवं जल संरक्षण (Soil and Water conservation), वातावरण कार्यिकी (Environmental Physiology) आदि में अत्यन्त आवश्यक है।

1.13 पारिस्थितिकी एवं मानव (Ecology and Man)

मानव वातावरण का एक प्रभावशाली घटक है। उसने अनेक विधियों द्वारा प्राकृतिक साधनों का उपयोग किया है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने जंगल साफ किए, पेड़-पौधों को हटाकर भूमि को कृषि योग्य बनाया तथा विभिन्न प्रकार की फसलें उगाकर भोजन के लिए आत्म-निर्भर बन गया है। अपने मनोरंजन तथा स्वास्थ के लिए उसने विभिन्न प्रकार के बाग-बगीचे लगाए, जिसके कारण वहाँ पर रहने दाले जन्तुओं को स्थान छोड़ना पड़ा। मानव ने अपने आहार तथा मनोरंजन के लिए जन्तुओं का आखेट किया, जिसके कारण अनेक महत्वपूर्ण जातियाँ समाप्त हो गयी हैं। मनुष्यों की बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगिक विकास प्राकृतिक सम्पदाओं का अत्याधिक प्रयोग, प्रदूषण, परमाणु परीक्षण इत्यादि के कारण प्रकृति का स्वाभाविक संतुलन प्रभावित हो रहा है जिसके फलस्वरूप आज के युग में अनेक पारिस्थितिक समस्याएं (Ecological problems) उत्पन्न हो गयी हैं। अतः मनुष्य का यह नैतिक एवं सामाजिक दायित्व है कि वह पारिस्थितिकी के ज्ञान के उपयोग द्वारा वातावरण के संतुलन को नष्ट होने से बचाए।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

10. निम्न में से किस वैज्ञानिक द्वारा सर्वप्रथम 'इकोलॉजी' शब्द का प्रयोग किया गया?

    (अ) अर्नेस्ट हेकल (ब) चार्ल्स एल्टन

    (क) चार्ल्स डार्विन (ड) जे.बी. लैमार्क

11. समुदाय होता हैं–

    (अ) किसी क्षेत्र में रहने वाले एक ही जाति के विभिन्न जीवों का समूह

    (ब) किसी क्षेत्र में रहने वाले समस्त जीवों की आबादियों का समूह।

    (क) वह मूल क्रियात्मक इकाई जिसमें जीवीय एवं अजीवीय वातावरण होते हैं।

    (ड) वातावरण के विभिन्न घटकों के समूह।

12. संपारिस्थितिकी के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं–

    (अ) जीवों के समुदायों एवं उनके वातावरण से सम्बन्धों के बारे में

    (ब) एक जाति के जीवों एवं उनके वातावरण से सम्बन्धों के बारे में

    (क) प्राकृतिक संसाधनों एवं उनके उचित संरक्षण के बारे में

    (ड) पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह एवं संरक्षण के बारे में

13. संपारिस्थितिकी के दो प्रमुख प्रकार हैं–
    (अ) उत्पादन पारिस्थितिकी एवं समुदाय पारिस्थितिकी
    (ब) भौगोलिक पारिस्थितिकी एवं विकिरण पारिस्थितिकी
    (क) कार्यिकी पारिस्थितिकी एवं रासायनिक पारिस्थितिकी
    (ड) आबादी पारिस्थितिकी एवं समुदाय पारिस्थितिकी
14. स्वपारिस्थितिकी (Autoecology) के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं–
    (अ) किसी एक जीवधारी अथवा एक जाति के जीवधारियों एवं उसके वातावरण से सम्बन्धों के बारे में
    (ब) किसी एक जाति के जीवों की आबादी एवं उनकी पारस्परिक क्रियाओं के बारे में
    (क) किसी एक समुदाय की विभिन्न जातियों (वनस्पतियों एवं जन्तुओं) तथा उनकी पारस्परिक क्रियाओं के बारे में
    (ड) समस्त प्रकार की वनस्पतियों, उनकी पारस्परिक क्रियाओं एवं उनके वातावरण से सम्बन्धों के बारे में
15. आदिकालीन जीवों एवं उनके उस समय के वातावरण के विषय में अध्ययन करते हैं–
    (अ) रासायनिक पारिस्थितिकी के अन्तर्गत
    (ब) कार्यिकी पारिस्थितिकी के अन्तर्गत
    (क) विकिरण पारिस्थितिकी के अन्तर्गत
    (ड) जीवाश्म पारिस्थितिकी के अन्तर्गत
16. किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य श्रृंखला–
    (अ) 3 स्तरों से बड़ी नहीं होती (ब) 5 स्तरों से बड़ी नहीं होती
    (क) 7 स्तरों से बड़ी नहीं होती (ड) 9 स्तरों से बड़ी नहीं होती
17. "पारिस्थितिकी प्रकृति की संरचना व कार्य का अध्ययन है।"– यह कथन किस वैज्ञानिक का हैं?
    (अ) अर्नेस्ट हीकेल (ब) ई.पी. ओडम
    (क) ई. वार्मिंग (ड) चार्ल्स एल्टन

1.14 अजैविक कारक (Abiotic Factors)

वातावरण अनेकों जैविक और अजैविक कारकों का एक जटिल समूह है। इन मुख्य कारकों को चित्र 1.11 के अनुसार विभक्त किया गया है। सर्वप्रथम पर्यावरणीय कारकों (Environmental factors) को दो मुख्य समूहों में विभक्त किया गया है–

1. अजैविक कारक (Abiotic factors), तथा
2. जैविक कारक (Biotic factors)।

1.14.1 अजैविक कारक (Abiotic Factors)

इनको दो मुख्य उप-समूहों में बाँटा गया है–

(i) भौतिक कारक (Physical factors) तथा

(ii) रासायनिक कारक (Chemical factors)।

(I) भौतिक कारक (Physical Factors):

भौतिक कारक– ताप, प्रकाश, जल, आर्द्रता, मिट्टी, वायु, प्रवाह एवं दबाव आदि मुख्य भौतिक कारक हैं, जो जीवधारियों को जीवनपर्यन्त प्रभावित करते हैं और वृद्धि, विकास, स्वास्थ, विकिरण आदि क्रियाओं को नियन्त्रित करते हैं।

1.14.1.1 ताप (Temperature)

ताप वास्तव में वातावरण की ऊष्मा को नापने का पैमाना है, जिसको हम फारेनहाइट या सेलसियस डिग्री (Fahrenheit or Celcius) से प्रदर्शित करते हैं। ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप हैं और जीवन की परम आवश्यकता है। सभी जीवधारियों को गर्मी सूर्य के प्रकाश के विकिरण द्वारा प्राप्त होती है और इसी ऊर्जा से सभी जैविक क्रियाएँ चलती हैं। **जैवमण्डल** (Biosphere) के विभिन्न भागों में ताप अलग-अलग होता है। तापक्रम ठण्डे समुद्रों में –3°C, स्वच्छ जलों में 0°C तथा साइबोरिया के भू-भागों में –7°C, से भी नीचे चला जाता है। इस पकार कुछ रेगिस्तानी क्षेत्रों में दिन में 85°C तक का उच्चतम तापमान देखा गया है। पृथ्वी की सतह के धरातल से प्रत्येक 150 मीटर की ऊँचाई पर लगभग 1°C के हिसाब से तापमान कम होता जाता है। यही कारण है कि पहाड़ों पर मैदानी इलाकों की अपेक्षा अधिक ठण्ड रहती है। ताप का जीवधारियों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

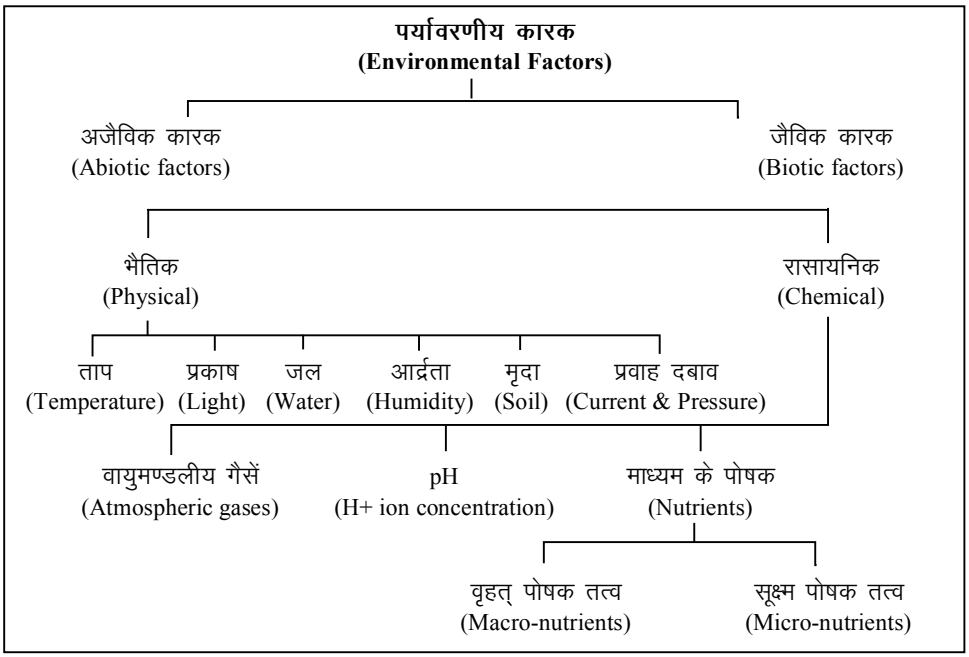

चित्र क्र. 1.11: Outline Classification of Environment Factors

टिप्पणी

प्रत्येक प्राणी में तापक्रम, सहनशीलता की एक सीमा या परिसर (Range) में होता है, जिसे वह सहन कर सकता है और जीवित रह सकता है। ताप-सहनशीलता के आधार पर प्राणियों को पृथुतापी (Eurythermal) तथा तनुतापी (Stenothermal) के रूप में बाँटा गया है। वे प्राणी, जो तापक्रम के लम्बे परिसर को सहन कर सकते हैं, पृथुतापी (Eurythermal) कहलाते हैं; जैसे– साईक्लोप्स, ऑइस्टर, टोड, छिपकली, मनुष्य आदि। कम लम्बे या सीमित तापक्रम परिसर या सहनशीलता वाले प्राणी तनुतापी (Stenothermal) कहलाते हैं, जैसे– घोंघे, कोरल, दीमक, मछलियाँ तथा कुछ रेप्टीलिया वर्ग के जन्तु।

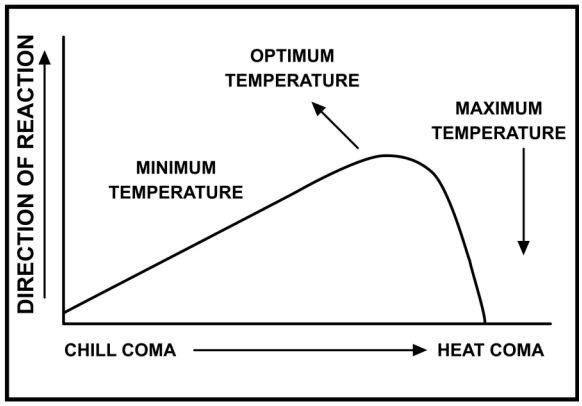

चित्र क्र. 1.12: प्राणियों की कार्यिकी पर तापक्रम का प्रभाव
(Effect of Temperature on Physiology of Animals)

जिस तापक्रम पर प्राणी अपनी जीवन-क्रियाएँ दक्षतापूर्वक सम्पन्न करता है, उसे अनुकूलतम (Optimum) तापक्रम कहते हैं। अपने सहनशीलता-परिसर की न्यूनतम सीमा के नीचे तथा उच्चतम सीमा के ऊपर प्राणी की क्रियाएँ मन्द पड़ जाती हैं या रूक जाती हैं।

वह न्यूनतम तापक्रम जिस पर प्राणी अनिश्चित काल तक सक्रिय अवस्था में रह सकता है, न्यूनतम प्रभावी तापक्रम (Minimum effective temperature) कहलाता है। सहनशीलता परिसर की न्यूनतम सीमा के नीचे प्राणी निष्क्रियता की स्थिति में प्रवेश कर जाते हैं तथा इस स्थिति को शीतलन मूर्छा (Chill coma) कहते हैं। तापक्रम को न्यूनतम प्रभावी सीमा तक बढ़ाने पर प्राणी की क्रियाएँ फिर से पूर्ववत् की जा सकती हैं।

वह अधिकतम तापक्रम जिस पर प्राणी अनिश्चित काल तक सक्रिय अवस्था में रह सकता हैं, अधिकतम प्रभावी तापक्रम (Maximum effective temperature) कहलाता है। इससे अधिक तापक्रम पर प्राणी ऊष्मा मूर्छा (Heat coma) की स्थिति में प्रवेश कर जाता है, लेकिन तुरन्त शीतलन करने से वह फिर से सक्रिय हो जाता है।

अधिकांशतः वह तापक्रम सहनशीलता परिसर, जिसमें प्राणी अपनी जीवन-क्रियाएँ सुचारू रूप से चला सकते हैं, 10° – 37° हैं।

टिप्पणी

1.14.1.2 ताप के प्रभाव (Effects of Temperature)

(i) ताप का उपापचय (Metabolism) पर प्रभाव– सभी जीवधारियों की उपापचयी क्रियाएँ एक विशिष्ट तापक्रम पर ही सम्पन्न होती है। असमतापी (Poikilothermal or cold blooded) जन्तुओं में ताप की उच्चता के साथ ही उपापचय क्रियाओं की गति बढ़ जाती है। मेंढ़क में ताप की अत्याधिक कमी से जाड़े में सभी उपापचय क्रियाएँ धीमी पड़ने के कारण ही उसे शीतकालीन सुप्त अवस्था (Hibernation) में जाना पड़ता है। इसी प्रकार घरेलू छिपकलियाँ भी जाड़े में ताप की कमी के कारण सुप्त अवस्था में चली जाती हैं। उपापचय क्रियाओं में इन्ज़ांइम्स की कार्यक्षमता भी ताप के उतार-चढ़ाव से प्रभावित होती है। यकृत (Liver) में पाए जाने वाले आर्जीनिज (Arginase) नामक एन्जाइम की आर्जीनिन नामक ऐमीनो ऐसिड पर प्रक्रिया 17°C से 47°C तक बढ़ाने से क्रियाशीलता कम हो जाती है।

(ii) ताप का वृद्धि और विकास पर प्रभाव– जीवधारियों को साधारण विकास और वृद्धि के लिए अनुकूलतम ताप की आवश्यकता है।

(a) मौलस्का समूह के ऑयस्टर (Oyster) में ताप के तनिक परिवर्तन से वृद्धि की गति तुरन्त प्रभावित होती है।

(b) ड्रेगनफ्लाई (Dragonfly) कीट पर तो ताप का प्रभाव व्यापक पैमाने पर होता है। इन कीटों का जीवन-चक्र उन स्थानों पर जहाँ अपेक्षाकृत गर्म मौसम होता है, केवल एक वर्ष में ही पूरा हो जाता है। इसके विपरीत ठण्डे प्रदेशों में जीवन-चक्र पूरा करने में दो वर्ष लगते है।

(c) इसी प्रकार ट्राऊट (Trout) मछली के अण्डे 15°C ताप पर 5°C ताप की तुलना में लगभग चार गुना अधिक तेजी से वृध्दि करते हुए विकसित होते है।

(d) कोरल (Corals)– केवल उन्हीं समुद्रों में विकसित होते हैं, जहाँ जल का ताप 21°C या कुछ ऊपर रहता है।

(iii) ताप का लैंगिक परिपक्वता (Sexual maturity) पर प्रभाव– अलग-अलग जातियों (Species) के युग्मकों की परिपक्वता एक निश्चित ताप पर होती है। इसी कारण विभिन्न जातियों में अलग-अलग मौसम में प्रजनन होता है। जीवधारियों की प्रजनन क्षमता भी ताप पर निर्भर करती है।

उदाहरणार्थ– क्रोटोगोनस ट्रेचीटेरस (Chrotogonus trachytenus) कीट में 20°C से 30°C तापक्रम पर लैंगिक परिपक्वता तो आ जाती हैं, लेकिन मादा कीट में अधिकतम अण्डों के उत्पादन के लिए 20°C ताप ही अनुकूलतम होता है।

(iv) ताप का लैंगिक अनुपात (Sex Ratio) पर प्रभाव– कुछ जन्तुओं मे ताप का प्रभाव लैंगिक अनुपात पर पड़ता है। क्रस्टेसिया (Crustacea) वर्ग डेफनिया (Daphnia) और साइक्लोप्स (Cyclops) साधारण ताप पर अनिषेकजनन (Parthenogenesis) द्वारा केवल मादा सन्तति उत्पन्न करते हैं परन्तु ताप बढ़ने पर

टिप्पणी

लैंगिक जनन द्वारा नर व मादा (Male and Female generation) दोनों की सन्तति उत्पन्न होती है।

(v) ताप का जन्तुओं के व्यवहार (Behaviour) पर प्रभाव– ताप सभी जन्तुओं के व्यवहार को प्रभावित करता है।

साईबेरिया आदि ठण्डे देशों में जाड़ों के आगमन के साथ ही चिड़ियों के झुण्ड गर्म प्रदेशों की ओर चल देते हैं और अप्रवास (Migration) करते हैं।

कुछ साँप, जैसे– रेटिल सर्प, वाइपर आदि घोर अँधेरे में भी अपने शिकार का बिल्कुल ठीक पता ताप के विकिरण से लगा लेते हैं। इन साँपों का भोजन मुख्यतः स्तनधारी समतापी जन्तु होते हैं। असमतापी जन्तु जाड़े के आगमन के साथ निष्क्रिय हो जाते है और गर्मी के दिनों में क्रियाशील रहते हैं।

(vi) जन्तुओं के वितरण (Distribution) पर ताप प्रभाव– जीव जन्तुओं के वितरण पर ताप का प्रभाव स्पष्ट है। असमतापी जन्तुओं के वितरण पर ताप अधिक प्रभावकारी होता है।

ऐटलांटिक लोबस्टर (Atlantic lobster) 0°C से 17°C तक ताप वाले क्षेत्र में ही पाया जाता है।

कोरल 21°C से कम ताप वाले समुद्रों में नहीं पाए जाते हैं, इसलिए ठण्डे समुद्रों में नहीं मिलते हैं।

रेप्टीलिया वर्ग के अधिकांश जीव गर्म प्रदेशों में वितरित होते हैं। जन्तुओं और पौधों के भौगोलिक वितरण पर ताप एक अति प्रभावशाली सीमाकारी कारक के रूप में कार्य करता हैं।

(vii) ताप के कुछ अन्य प्रभाव– ड्रोसोफिला (Drosophila) नामक मक्खी में ताप से आनुवंशिकी प्रक्रिया में जीन्स का उत्परिवर्तन हो सकता है। ठण्डे प्रदेशों के रहने वाले जन्तुओं का शारीरिक विकास और वृद्धि गर्म प्रदेश के जन्तुओं से अधिक होती हैं।

(viii) शरीर परिमाण पर ताप का प्रभाव– पक्षियों तथा स्तनधारियों में, एक जाति के सदस्यों में गर्म प्रदेशों के निवासियों की अपेक्षा ठण्डे प्रदेशों के निवासियों के शरीर का परिमाण (साइज) बड़ा होता है तथा सम्बन्धित जातियों के बड़े शरीर वाले प्राणी ठण्डी जलवायु में पाए जाते हैं। परन्तु ठण्डे प्रदेशों में रहने वाले असमतापी छोटे परिमाण के होते हैं। ठण्डे प्रदेशों में रहने वाले स्तनधारियों के कान, गर्दन, पूँछ तथा पाँव छोटे होते हैं तथा सामान्यतया संहत (Compact) शारीरिक रचनाएँ इनका अभिलक्षण होता है। विश्व के विशालकाय जन्तु प्रायः ठण्डे प्रदेशों में ही मिलते हैं।

(ix) वर्ण (Colouration) पर प्रभाव– जीवधारियों के रंग पर भी ताप का प्रभाव पडता है। झींगा मछ़ली (Prawn) का रंग ताप के बढ़ने पर हल्का होता जाता है। वाकिंग स्टिक (Walking stick) कीट 25°C पर भूरे रंग का तथा 15°C पर काले रंग का दिखाई पड़ता है।

(x) वातावरण की आर्द्रता पर ताप का प्रभाव (Effect of Temperature on Humidity)– प्रायः देखा गया है कि आर्द्रता (Humidity) एवं प्रकाश के साथ तापक्रम कुछ प्राणियों के रंजन (Colouration) को प्रभावित करता है। ठण्डे व शुष्क प्रदेशों के निवासियों की अपेक्षा उष्ण कटिबन्ध में पाए जाने वाले स्तनधारी, पक्षी तथा कीट अधिक गहरे रंगों को धारण करते हैं तथा इनमें अधिक वर्णक पाए जाते हैं।

(xi) चक्रान्तरण (Cyclomorphosis)– कुछ प्लवकीय प्राणियों में वर्ष की ऋतुओं के साथ-साथ शारीरिक रूप में परिवर्तन होता है। उदाहरणतया, **क्लेडोसेरा (Cladocera)** प्राणियों का सिर सर्दी में गोलाकार होता है। वसन्त ऋतु में इस पर शिरस्त्राण (Helmet) जैसा एक छोटा बहिर्निवेश (Projection) बनता है, जो ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम बड़ा हो जाता है। शरद ऋतु में यह बहिर्निवेश छोटा हो जाता है तथा सर्दी प्रारम्भ होते ही हेलमेट समाप्त होकर सिर का गोलाकार रूप पुनः प्राप्त कर लिया जाता है। इस प्रकार के आकारिकीय परिवर्तन को चक्रान्तरण (Cyclomorphosis) कहा गया है।

ड्रोसेफिला मेलैनोगैस्टर (Drosophila melanogaster) में तापक्रम नेत्रों में फलकों की संख्या को, अवशेषी नेत्रों की साइज को तथा अधिसंख्य (Supernumerary) टाँगों की उपस्थिति या अनुपस्थिति को प्रभावित करता है।

(xii) आयु (Longivity)– गर्म प्रदेशों में रहने वाले प्राणियों की अपेक्षा ठण्डे प्रदेशों में पाए जाने वाले प्राणी दीर्घायु होते हैं, ऐसी मान्यता हैं।

प्रकाश का मुख्य स्त्रोत सूर्य ही है, जिससे विकिरण द्वारा ऊर्जा प्राप्त करके पौधे भोजन बनाते हैं। वास्तव में प्रकाश द्वारा संश्लेषित ऊर्जा ही सभी जीवधारियों के जीवन का मूलभूत आधार है। साधारणतः हम आँख से दिखने वाली बैंगनी नीली, आसमानी नीली, हरी, पीली, नारंगी तथा लाल रंगों की किरणों को ही प्रकाश कहते हैं। परन्तु वास्तव में, सूर्य के प्रकाश में अनेकों अन्य किरणें भी सम्मिलित रहती हैं। कॉस्मिक किरणें (Cosmic rays), गामा व X-किरणें (Gama and X-rays), अल्ट्रावाइलेट (पराबैंगनी), इन्फ्रा-रेड किरणें, ताप तरंगे (Heat waves), विद्युत चुम्बकीय तरंगें आदि भी सूर्य से पृथ्वी पर निरन्तर विकिरित होती रहती हैं। परन्तु जीव-वैज्ञानिकों के लिए मुख्यतः आँखों से दिखने वाली सतरंगी किरणें, इन्फ्रा-रेड तथा अल्ट्रा-वाइलेट किरणें ही महत्वपूर्ण हैं।

1.14.1.3 प्रकाश के प्रभाव (Effects of Light)

प्रकाश भी ताप के समान एक अति महत्वपूर्ण भौतिक कारक है। विश्व के सभी जीवधारियों का भोजन पौधों से प्रकाश संश्लेषण द्वारा ही प्राप्त होता हैं। इसके अतिरिक्त जन्तुओं और वनस्पतियों की अनेकों जैविक क्रियाओं पर प्रकाश का सीधा प्रभाव निम्नानुसार पड़ता हैं–

(i) प्रकाश का उपापचय पर प्रभाव– हरित पौधों में प्रकाश-संश्लेषण प्रकाश की उपस्थिति में ही हो सकता है अर्थात भोजन निर्माण की उपापचय क्रियाओं के लिए प्रकाश एक आवश्यक कारक हैं। इसी प्रकार विभिन्न

जन्तुओं में एन्जाइम्स की कार्यिकी (Enzymatic-metabolism), लवणों की घुलनशीलता तथा गैसों की अनुक्रिया पर भी प्रकाश की तीव्रता का सीधा प्रभाव होता है। प्रकाश की तीव्रता बढ़ने पर विभिन्न एन्जाइम्स की क्रिया तीव्र हो जाती है और लवणों की घुलनशीलता भी बढ़ जाती है। परन्तु गैसों की घुलनशीलता पर प्रकाश की तीव्रता का विपरीत प्रभाव पड़ता हैं।

(ii) प्रकाश का जन्तुओं के रंजन और शरीर–रचना पर प्रभाव– गुफाओं (Caves) में रहने वाले जन्तुओं में प्रकाश की अनुपस्थिति के कारण उनकी त्वचा रंगहीन हो जाती है और इनकी आँखें भी लगभग निष्क्रिय अवशेषी (Vestigeal) रूप में रह जाती है। भूमण्डल के विभिन्न भागों में प्रकाश की तीव्रता की भिन्नता के कारण जन्तुओं के अभिरंजन (Colouration) में भी भिन्नता आ जाती है। गहरे समुद्र में जहाँ प्रकाश नहीं होता है, अधिकतर जन्तु अन्धे होते हैं। अतः प्रकाश विशेषकर त्वचा के रंगों और आँखों की रचना पर विशेष प्रभाव डालता हैं।

(iii) प्रकाश का वृद्धि और परिवर्तन पर प्रभाव– साल्मोन मछली के लार्वा (Salmon's larva) तीव्र प्रकाश में तेजी से वृद्धि करते हुए परिवर्धित होते हैं, परन्तु अँधेरे या मन्दिम प्रकाश में इनका परिवर्धन रूक जाता है और मृत्यु दर बढ़ जाती हैं, परन्तु माइटीलस (Mytilus) एवं कुछ अन्य मौलस्का में तीव्र प्रकाश का परिवर्धन और वृद्धि पर विपरीत प्रभाव होता है।

(iv) प्रकाश का प्रचलन (Locomotion) पर प्रभाव– जन्तुओं की प्रचलन की क्रिया पर प्रकाश के प्रभाव को प्रकाश गतिक्रम (Photokinesis) कहते है। यह प्रभाव विशेषकर छोटे जन्तुओं पर अधिक स्पष्ट होता है। पिनोथीरस केकड़े के लार्वा प्रकाश की तीव्रता बढ़ाने पर अधिक तीव्र प्रचलन करते हैं और तीव्रता घटाने पर अति धीमी गति से चलते हैं। टिड्डियों (Locusts) के झुण्ड बादलों द्वारा प्रकाश अवरुद्ध होते ही उड़ान बन्द कर देते हैं और बादल हटने पर दुबारा उड़ना शुरू कर देते हैं।

(v) प्रकाश का उपापचय (Metabolism) पर प्रभाव– प्रकाश उपापयच को भी प्रभावित करता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण प्रकाश संश्लेषण है, जिसमें प्रकाश की उपस्थिति आवश्यक है। प्राणियों में वर्ण का उत्पादन होता है और अभिरंजन विकसित होना भी उपापचय पर प्रकाश के प्रभाव का उदाहरण है।

(vi) दृष्टि (Vision) पर प्रकाश का प्रभाव– प्राणी में दृष्टि संवेदी अंग विकसित होना वातावरण में उपलब्ध प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर करता है। समुद्र की गहराइयों तथा गुफाओं में रहने वाले प्राणियों के नेत्र अवशेषी और विलुप्त हो जाते हैं। कई मछलियों एवं क्रस्ट्रेशियन्स के नेत्रों में शलाकाओं (Rods), शंकुओं (Cones) एवं वर्णकों का विशेष समायोजन होता है, ताकि वे 500-700 मीटर तक की गहराई तक भी, जहाँ प्रकाश बहुत कम होता है, वस्तुओं को देख सकें। कई मछलियों में अन्तःसर्पी नेत्र

(Telescopic eyes) होते हैं। उल्लू, लॉरिस आदि कुछ स्थलीय प्राणियों में भी बड़े व उभरे हुए नेत्र पाए जाते हैं, ताकि वे रात में देख सकें।

(vii) फोटोपीरियडीसिटी (Photoperiodicity)– प्रकृति में कई भौतिक चक्र (Rhythms) प्रकाश से सम्बन्धित होते हैं। यह भली प्रकार विदित है कि प्रकाश एवं अंधेरे की दैनिक चक्र जल में एवं थल पर पौधों की क्रियाओं को नियन्त्रित करती हैं तथा दैनिक अवधि (Length of day) भी कई क्रियाओं को नियन्त्रित करती है। दैनिक अवधि का नियन्त्रणकारी प्रभाव फोटोपीरियोडिसिटी कहलाता है। कई पक्षियों एवं स्तनधारियों के जनन-चक्र, प्रवास (Migration), परों तथा बालों में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन, दिनचरता, रात्रिचरता, निद्रा इत्यादि दीप्तिकालिक क्रियाओं के ही उदाहरण हैं।

(viii) प्रकाश के अन्य प्रभाव–

(i) अनेकों पौधों पर प्रकाश-कार्यकालता (Photoperiodism) का प्रभाव होता है। कुछ फसलों के लिए लम्बा प्रकाश-कार्यकाल आवश्यक है, परन्तु अन्य फसलों को अल्प प्रकाश-कार्यकाल की आवश्यकता होती है। इसी कारण अलग-अलग मौसम में प्रकाश मात्रा (काल) भी भिन्न -भिन्न होती हैं। इसलिए अलग-अलग मौसम में अलग-अलग प्रकार की फसलें होती है। कुछ पौधे जिन्हें अल्प-प्रकाश चाहिए, जैसे– कॉसमॉस, सोयाबीन आदि लघु-दिवसीय (Short-day length) तथा कुछ पौधे जिन्हें अधिक प्रकाश चाहिए जैसे मूली, सलाद आदि दिर्घ-दिवसीय (Long-day length) पौधे कहलाते हैं। प्रकाश-कार्यकालता पर पौधे में वृद्धि हॉरमोन, जिसे फ्लोरोजन कहते हैं, की उत्तेजना निर्भर करती हैं। यही हॉरमोन पौधों को वृद्धि बिन्दु की ओर अग्रसित करता है तथा पुष्पों को खिलने के लिए प्रेरित करता है। प्रकाश के प्रभाव का फसलों के लिए अत्याधिक आर्थिक महत्व है। प्रचुर उत्पादन के लिए प्रकाश-कार्यकालता और लघु-दिवसता या दीर्घ-दिवसता का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी आधार पर पान के पीले पत्तों का उत्पादन करके उन्हें हरे पान की तुलना में अधिक आर्थिक लाभ पर बेचा जाता है।

(ii) विभिन्न जन्तुओं का शरीर यद्यपि त्वचा द्वारा सुरक्षित रहता है, फिर भी प्रकाश की कुछ मात्रा त्वचा भेदकर जीवद्रव्य (Protoplasm) में प्रविष्ट होकर अनेकों प्रभाव डालती है। साधारणतः प्रकाश किरणें जीवद्रव्य, उत्तेजना, क्रियाशीलता और ताप बढ़ा देती हैं, परन्तु अल्ट्रावाइलेट किरणों से जीवधारियों के डी.एन.ए. में उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) भी सम्भव है।

1.14.1.4 जल (Water)

पृथ्वी का लगभग 73 प्रतिशत भाग जल से ढका हुआ है और समस्त जैव भूमण्डल (Biosphere) के जीवधारियों के लिए सीधे या परोक्ष रूप से जल का बहुत महत्व है। वास्तव में बिना जल के जीवन सम्भव नहीं है। वैसे भी जन्तुओं का

सबसे बड़ा प्राकृतिक निवास जल में है। पृथ्वी पर जल का वितरण सब जगह एकसमान नहीं है। कहीं-कहीं पर जल स्त्रोतों की गहराई एक मीटर भी नहीं है, जबकि विश्व के कुछ समुद्र 9750 मीटर (या लगभग 7 मील) तक गहरे हैं। दुनिया के सभी समुद्र एक दूसरे से मिले हुए हैं और उनकी सारी जलराशि थल से लगभग 300 गुना अधिक जैव-आवास (Habitat) का निर्माण करती है। समुद्रों के सभी भागों और गहराइयों में कोई न कोई जीवधारियों का समूह अवश्य पाया जाता है। पृथ्वी के स्वच्छ जल के स्त्रोत, जिनमें पोखर, झीलें, नदियाँ आदि सम्मिलित हैं, तुलनात्मक रूप से बहुत छोटे हैं।

जल के विशिष्ट गुण– जल में कुछ विशेष गुण होते हैं, जिसके कारण यह जीवन को तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभावित करता है। इसके भौतिक गुणों में हवा से अधिक भारीपन, पारदर्शिता, लसीलापन (Viscosity) तथा ताप सम्बन्धी उल्लेखनीय गुण बहुत महत्वपूर्ण है। विभिन्न यौगिक जल में आसानी से विसरित हो जाते हैं, क्योंकि जल एक सर्वघोलक है, जल ताप का कुचालक हैं और उष्मा का संग्रह करता है। अधिक प्लावकता के कारण जल में विभिन्न प्राणी सुविधापूर्वक तैर सकते हैं और पारदर्शी होने से जलीय प्राणी सरलतापूर्वक देख सकते हैं। जल की अत्याधिक शयानता (Viscosity) स्वतंत्र विचरण में बहुत अधिक सहायक है। इस गुण के कारण प्राणियों को शारीरिक चोट का कोई खतरा नहीं रहता है।

पृथुजलीय और तनुजलीय जीव– प्रत्येक प्राणी को जल की आवश्यकता होती है। इसलिए प्राणियों का वितरण जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। उपलब्ध जल के परिमाण की दृष्टि से पृथुजलीय (Euryhydric) प्राणियों का सहनशीलता परिसर विस्तृत होता है, जबकि तनुजलीय (Stenohydric) प्राणियों में जल के लिए सहनशीलता परिसर संकीर्ण होता है। थल पर पौधों का वितरण प्रत्यक्ष रूप से जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। विशेष प्रकार की वनस्पति, विशेष प्रकार के जन्तुओं का संभरण करती है। इसलिए स्थलीय जन्तुओं के वितरण में भी अप्रत्यक्ष रूप से जल की उपलब्धता का महत्व होता है।

जल की उपलब्धता और बायोम (Availability of Water and Biome)

क्षेत्र विशेष में जल की उपलब्धता वर्षा के परिमाण, आर्द्रता तथा मृद्रा के प्रकार पर निर्भर करती है। वार्षिक वर्षा के आधार पर थलीय आवास को निम्न प्रकार के विभिन्न बायोम (Biomes) में विभक्त किया गया है–

0″ – 10″ वार्षिक वर्षा	– मरूस्थल
10″ – 30″ वार्षिक वर्षा	– घासस्थल, सवाना या खुली वनस्थली
30″ – 40″ वार्षिक वर्षा	– उष्ण कटिबन्धीय
50″ से उपर वार्षिक वर्षा	– नम वन

पौधों के लिए उपलब्ध जल की मात्रा केवल वार्षिक वर्षा की मात्रा पर ही निर्भर नहीं करती, बल्की मृदा की जलधारण-क्षमता (Water-retaining capacity) पर भी निर्भर करती है। मृदा की जलधारण-क्षमता मृदा के प्रकार पर निर्भर करती हैं।

1. **जल के ताप सम्बन्धी गुण (Temperature Related Characters of Water)**– समुद्री जल का हिमांक (Freezing point)1.9°C होता है, जिसका ठण्डे प्रदेशों में जाड़े में विशेष लाभ होता है। चूँकि जल 4°C पर सबसे अधिक घनत्व धारण करता हैं, अतः समुद्र की ऊपरी सतह पर बर्फ जमने पर भी 4°C ताप वाला जल अपेक्षाकृत अधिक भार के कारण नीचे तल में चला जाता है और बर्फ के हिमखण्ड ऊपर जल की सतह पर तैरते रहते हैं। अतः जैविक क्रियाओं के लिए उपयुक्त जल उपलब्ध रहता है और प्राणी जमकर नष्ट होने के खतरे से बचे रहते हैं।

2. **जल की उच्च तापग्राहिता (Heat Holding Capacity)**– एक ग्राम जल एक कैलोरी ऊष्मा धारण करता है। वातावरण के तापक्रम को स्थिर रखने में जल सहायक होता है। समुद्र व झीलों का तापमान जल की उच्च तापग्राहिता के कारण ही स्थिर रहता है। इसी प्रकार मानव के शरीर का तापमान स्थिर होना भी जल के मुख्यतः इसी गुण के ऊपर निर्भर करता है।

3. **समुद्री जल का खारापन (Salinity of Marine Water)**– समुद्री जल का खारापन सभी जगह लगभग 3.5 प्रतिशत रहता है। समान खारेपन के कारण ही जन्तुओं का विशाल क्षेत्र में वितरण सम्भव होता है।

   विभिन्न प्रकार के जलों में विभिन्न लवणों के आयनों की सान्द्रता निम्नानुसार होती है–

सारणी क्र. 1.1: विभिन्न सान्द्रता

(Different Concentration of Na^+, K^+, Ca^{++}, Mg^{++}, Cl^-, SO_4^{--}, CO_3^-,)
(gm/*l* में व्यक्त)

क्रमांक	जल	कुल सान्द्रता	Na^+	K^+	Ca^{++}	Mg^{++}	Cl^-	SO_4^{--}	CO_3^{--}
1	मृदु जल (Soft water)	0.065/*l*	0.016	-	0.01	0.005	0.019	0.007	0.012
2	कठोर जल (Hard water)	0.301/*l*	0.021	0.016	0.06	0.014	0.041	0.025	0.119
3	समुद्री जल (Sea water)	34.85/*l*	10.5	0.3	0.4	1.27	18.98	2.65	0.71
4	नमक की झीलों (Salt lakes) का जल	197/*l*	65.5	3.8	0.065	4.47	110.08	13.0	-

4. **जल का सर्व विलायक (Universal solvent)**– गुण भी अति उपयोगी है। खाद्य पदार्थ, खनिज और भिन्न गैसें जल में घुलकर ही जीवद्रव्य में प्रविष्ट होती है। जल से अच्छा कोई अन्य विलायक नहीं है। जल में O_2 घुले होने के कारण मत्स्य आदि जलीय प्राणी जल में जीवित रह पाते हैं।

   पर्यावरण में वायु में सान्द्रता के आधार पर ही जल में गैसों की घुलनशीलता व संतृप्तता होती है। जैसा कि अग्र सारणी से स्पष्ट है कि वायुमण्डलीय व जलीय सान्द्रता के बीच एक सामंजस्यता स्थापित हो जाती है।

सारणी क्र. 1.2: सामजस्य सान्द्रता (Equilibrium Concentration)

क्रमांक	गैस (Gas)	वायुमण्डीलीय सान्द्रता (Atm. Conc.)	जल में संतृप्तता (Saturtion in Water)
1.	O_2	210 cc/ *l* 21%	7 cc/ *l* 32.9%
2.	N_2	780 cc/ *l* 78%	14 cc/ *l* 65.7%
3.	CO_2	0.3cc/ *l* 0.03%	0.3 cc/ *l* 1.4%

   उपर्युक्त सारणी से यह भी ज्ञात होता है कि वे गैसें जल में सरलता से अधिक विलय हो जाती हैं जो कि जीवन के लिए आवश्यक होती हैं।

5. विभिन्न अंगों में आवश्यक तत्वों का **संवहन** (Transport) जल के माध्यम से ही होता हे। मिट्टी में उपस्थित खनिज खाद्य पदार्थ जल में घुलकर ही पौधों के अंगों में पहुँचते है। वातावरण से अजैविक पदार्थ पारिस्थितिकीय तंत्र (Ecosystem) के जैविक भाग में जल में घुलकर विलयन के रूप में प्रवेश करते हैं।

6. जल का उच्च **पृष्ठीय तनाव** (Surface tension) जीवधारियों के लिए महत्वपूर्ण होता हे तथा भूमिगत जलराशि को भी सुरक्षित बनाए रखने में सहायक होता है। पृष्ठीय तनाव विभिन्न आन्तरिक कार्यिकी (Internal physiology) तथा जैव रासायनिक क्रियाओं (Biochemical reactions) पर गम्भीर प्रभाव डालता है।

जल के प्रभाव (Effect of Water)

(i) जल जीवधारियों को अनेकों प्रकार से प्रभावित करता है। रेगिस्तानी (मरूस्थलीय) क्षेत्रों में जल की कमी के कारण जन्तुओं और पौधों में जल-संरक्षण (Water-conservation) के लिए अनेकों अनुकूलन पाए जाते हैं, जिन्हें मरूस्थलीय अनुकूलन (Desert adaptation) कहते हैं।

(ii) जन्तुओं का भौगोलिक वितरण भी जल से प्रभावित है।

(iii) कुछ स्थलीय जन्तु पर्याप्त जल में ही प्रजनन, परिवर्धन और वृद्धि करते हैं। अतः मेंढक – जैसे प्राणी का प्रजनन वर्षा पर ही निर्भर रहता हैं।

टिप्पणी

1.14.1.5 आर्द्रता (Humidity)

आर्द्रता का सामान्य अभिप्राय वायु में उपस्थित जल-वाष्प की मात्रा से होता है। इसे दो प्रकार से दर्शाया जाता है–

(i) सम्पूर्ण आर्द्रता (Absolute humidity), तथा

(ii) सापेक्ष आर्द्रता (Relative humidity)

(i) सम्पूर्ण आर्द्रता (Absolute humidity)– एक दिए हुए स्थान पर वायु की प्रति इकाई में उपस्थित जल-वाष्प की मात्रा का भार सम्पूर्ण आर्द्रता कहलाती है।

(ii) सापेक्ष आर्द्रता (Relative humidity)– सापेक्ष आर्द्रता को समान ताप और दाब पर संतृप्त बिन्दु की आर्द्रता की तुलना में किसी स्थान या मौसम में वायु में जल-वाष्प की वास्तविक प्रतिशत मात्रा दर्शाती है।

सापेक्ष आर्द्रता ही विशिष्ट प्रकार की वनस्पति और जीव-जन्तुओं की उपलब्धि और वितरण को निर्धारित करती है–

1. **उभयजीवी प्राणी (Ambhibians)**– मच्छर और भूमिगत अकशेरूक प्राणी आर्द्रता की उपस्थिति व अनुपस्थिति से अत्याधिक प्रभावित होते हैं।
2. **कई प्राणियों में आर्द्रता के लिए स्पष्ट सहनशीलता** सीमाएँ भी पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ– (i) लेपिस्मा (Lepisma) नामक कीट जिसे अंग्रेजी में सिल्वर फिश (Silver fish) कहते हैं, के प्रजनन के लिए 80 प्रतिशत से 90 प्रतिशत अपेक्षित आर्द्रता अनुकूलतम परिस्थिति होती है। (ii) आपेक्षित आर्द्रता में वृद्धि कर देने से ट्राइबोलियम (Tribolium) नामक संग्रहित अनाज के भृंग (Grain beetle) में डिम्भक अवस्था (Larval stage) का परिवर्धन तेज होता है।
3. **लार्वा (Larva)**– यदि नवजात लार्वा (Larva) को 70 प्रतिशत से कम आपेक्षित आर्द्रता मिले तो ये मर जाते हैं। यदि इनकी सतह एक बार गीली हो जाए तब ये मर जाते हैं। आपेक्षिक आर्द्रता में वृद्धि कर देने से ट्राइबोलियम (Tribolium) नामक आटे के भृंग (Flour beetle) में डिंभक अवस्था का परिवर्धन तेज हो जाता है। समुचित आपेक्षिक आर्द्रता से उत्तरजीविता भी बढ़ जाती है। 70 प्रतिशत तक की आपेक्षिक आर्द्रताओं द्वारा अण्डे तथा प्यूपा अवस्थाओं की उत्तरजीविता कुछ ही प्रभावित होती है। 80 प्रतिशत से ऊपर वाली आर्द्रताओं पर अण्डों तथा प्यूपा की जीवन-क्षमता अत्यधिक कम हो जाती है।

1.14.1.6 मृद्रा या मिट्टी (Soil)

जल, वायु और तेज ताप आदि की भाँति मृदा या मिट्टी भी जीवधारियों के लिए परम आवश्यक कारक है। अधिकांश वनस्पति और जन्तुओं का मिट्टी में स्थायी निवास हैं।

साधारणतः पृथ्वी की ऊपरी सतह को मृदा या मिट्टी कहते हैं। परन्तु ऊपरी परत के अतिरिक्त मिट्टी के निर्माण में मौसम, कार्बनिक पदार्थो और जीवधारियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः मिट्टी को सही रूप में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

"पृथ्वी की सबसे ऊपरी सतह की परतों को मृदा या मिट्टी कहते हैं, जिसका निर्माण मिट्टी से ठीक नीचे स्थित चट्टानों के विघटन और उन पर कार्बनिक पदार्थों और सूक्ष्म जीवधारियों की निरन्तर अनुक्रिया (Interaction) के फलस्वरूप होता है तथा जिसमें अधिकांश वनस्पतियाँ और जन्तु स्थायी रूप से निवास करते हैं।"

मृदा का निर्माण (Formation of Soil)

वास्तव में मृदा का निर्माण एक जटिल प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें अनेकों यान्त्रिक (Mechanical) कारकों के साथ सूक्ष्म जीवों, जैसे बैक्टीरिया और कवक का जैविक क्रियाओं में महत्वपूर्ण योगदान होता है। पृथ्वी की सबसे ऊपरी चट्टानों के खनिज पदार्थ सम्भवतया ऑक्सीकरण की प्रक्रिया से विघटित होते हैं। कार्बन डायऍक्साइड (CO_2) चट्टानों को विघटित करने में अत्याधिक महत्वपूर्ण कारक के रूप में मानी जाती है। विघटित चट्टानों पर जल के माध्यम से रासायनिक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है। ताप का उतार-चढाव भी रासायनिक क्रियाओं को प्रेरित करके चट्टानों के विघटन को योगदान देता है। इस प्रकार चट्टानों के खनिजों के छोटे-छोटे कणों पर बैक्टीरिया और लाइकेन्स (Lichens) (कवक और शैवाल से बना पौधा) विकसित होकर अन्य जीवधारियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। केचुए, कनखजूरा तथा बिलों में रहने वाले प्राणी (Burrows) मिट्टी को उलट-पलट करके मिट्टी में वायु प्रविष्ट कराते हैं और मृत पौधे, पत्तियों और अन्य कार्बनिक पदार्थो (Humus) को मिट्टी में मिलाकर मिश्रण तैयार करने में भी सहायक है।

मृदा परिच्छेदिका (Soil Profile)

मृदा की उदग्र (Vertical) काट में स्तरों का एक विशेष क्रम दिखाई देता है, जिन्हें संस्तर (Horizons) कहते हैं। सतह से नीचे की ओर संस्तरों का यह क्रम मृदा परिच्छेदिका कहलाता है। मृदा परिच्छेदिका में निम्न संस्तर देखे जा सकते हैं–

1. **क्षैतिजिक या A-संस्तर**– यह मृदा का सबसे ऊपरी भाग है जिसमें वनस्पति उगती है और यह जैविक क्रियाओं का मुख्य स्थान है। इसका रंग गहरा काला होता है और इसमें मृत कार्बनिक पदार्थ या हयूमस (Humus) अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है, इसे कई परतों में विभाजित किया जा सकता है–

   A-OO सबसे ऊपरी परत है, जिसमें गिरी हुई पत्तियाँ और कार्बनिक अवशेष होता है जो कि आंशिक रूप से विघटित होता है। (यहाँ O का अर्थ Organic से हैं,)। A-OO के नीचे A-O परत पाई जाती है। इसमें कार्बनिक पदार्थ विघटन की विभिन्न प्रावस्थाओ में पाया जाता है। इसमें सूक्ष्मजीव जैसे जीवाणु, कवक एक्टिनोमाईसिटीज पाए जाते हैं।

2. **A-संस्तर (A-horizon)**– यह खनिज संस्तर होता है। चूँकि इस संस्तर में घुलनशील लवण क्ले या A_1 आदि निम्न दिशा की ओर कम होते चले जाते है, अतः इसे ऐल्यूविएशन या विक्षालित (Alluviation) क्षेत्र भी कहते है। इसकी ऊपरी परतों के नीचे खनिज पदार्थो की परत होती है, जिसे फिर से विभिन्न उपस्तरों A_1, A_2 और A_3 मे विभाजित किया जा सकता है। इसे हयूमिक अथवा मैलेनीकृत क्षेत्र (Humic or melanized) कहते हैं। यह गहरे भूरे अथवा काले रंग का स्तर होता है। A_2संस्तर कुछ रासायनिक यौगिक और कार्बनिक पदार्थों के नीचे की परतों में रिसाने के कारण हल्के रंग का होता है। इसे पोडोसोलिक अथवा ऐल्यूवियल क्षेत्र (Podosolic or Alluvial zone) कहते है। A_3 (परत) बहुधा नहीं पायी जाती है और जब उपस्थिति होती है तो A व B के बीच मध्यवर्ती का काम करती है।

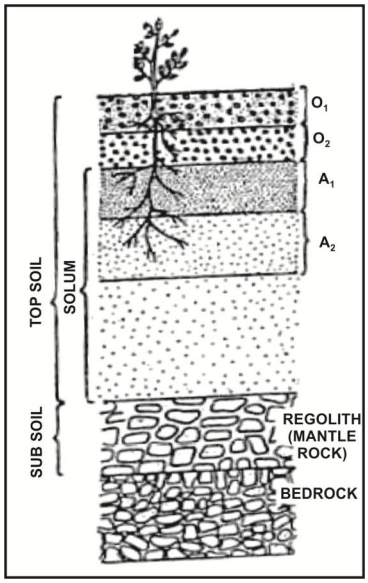

चित्र क्र. 1.13: एक व्यापक वन की मृदा परिच्छेदिका के विभिन्न क्षेत्र
(Various areas of a soil profile of a tropical forest)

3. **B-संस्तर– ये A**-संस्तर के नीचे पाया जाता है। इसमें मृदा व हयूमस के साथ लोहा और ऐल्यूमीनियम यौगिक भी पाए जाते है। इसे भी B_1, B_2 व B_3 परतों में विभाजित किया जा सकता है। B_2, B की अंन्तर्वर्ती है, लेकिन यह B तुलना में A से ज्यादा मिलती है। B_2 गहरे रंग का स्तर है। इसमें गुरुत्वीय जल द्वारा लाए गए विघटित पदार्थ (Leached material) की अधिकतम मात्रा पाई जाती है। B_3 संस्तर में कुछ विक्षलित पदार्थों के साथ चट्टानों के टुकड़े भी होते हैं। मिट्टी के A और B-संस्तर मिलकर यथार्थ मृदा (True soil) या सोलम (Solum) कहलाते हैं।

4. **C-संस्तर**– यह स्तर अक्सर मोटा होता है व बड़े आकार के विघटित (Weathered) खनिज पदार्थ का बना होता है।

5. **D-संस्तर**– यह मृदा परिच्छेदिका का सबसे नीचे का संस्तर है। यह चट्टानों का बना होता है। (चित्र 1.13)

टिप्पणी

मिट्टी के प्रकार एवं संरचना (Types and Constitutions of Soil)

मिट्टी के मुख्य पदार्थों में चट्टानों से विघटित खनिज, जीवधारियों से निर्मित कार्बनिक पदार्थ, जल और वायु होते हैं। मिट्टी की सरंध्रता (Porousness) खनिज कणों के आकार और संगठन पर निर्भर करती है और जल संग्रहण क्षमता विघटित पदार्थों के अनुपात पर आधारित होती है। साधारणः मिट्टी निम्न तीन प्रकार की होती है–

1. **चिकनी मिट्टी (Clay soil)**– इस मिट्टी में ऐल्यूमिनियम सिलिकेट के अति सूक्ष्म कण होते हैं, जिनके कारण यह चिकनी और अधिक जल धारण शक्ति वाली मिट्टी कहलाती है। इसमें क्ले या ऐल्यूमिनियम सिलिकेट 30 प्रतिशत से अधिक होता है।
2. **दुमट मिट्टी (Loamy soil)**– यह बलुई (Sandy) और चिकनी मिट्टी के लगभग बराबर मात्रा के मिश्रण से बनने के कारण दोनों के बीच के गुणों को दर्शाती है। इस मिट्टी में जल संग्रह शक्ति चिकनी मिट्टी से कम, परन्तु बलुई मिट्टी से अधिक होती है।
3. **बलुई मिट्टी (Sandy soil)**– इस मिट्टी में रेत या बालू (Sand), का अत्याधिक प्रतिशत होता है। इसमें लगभग 70 से 80 प्रतिशत तक रेत और लगभग 10 प्रतिशत ऐल्यूमिनियम सिलिकेट और 10 प्रतिशत सिल्ट (Silt) के कण होते हैं। रेत की अधिकता के कारण इसकी जल संग्रह शक्ति अतिक्षीण होती है। अतः पोषक तत्व भी अपेक्षाकृत कम होते हैं।

मृदा वर्गीकरण की अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली (International System of Soil Classification)

मृदा संरचना (Soil Texture)

क्र.स.	खनिज मृद्रा के प्रकार (Types of Soil)	कणों का व्यास (Diameter of Particles)
1.	बजरी (Gravel)	5.000 मिमी. से अधिक
2.	बारीक बजरी (Thin Gravel)	2.000 – 5.000 मिमी.
3.	मोटी बालू (Coarse sand)	0.2 – 2.000 मिमी.
4.	बारीक बालू (Fine sand)	0.02 – 0.2000 मिमी.
5.	सिल्ट (Silt)	0.002 – 0.02 मिमी.
6.	चिकनी मिट्टी (Clay)	0.002 मिमी. से कम

हयूमस– मिट्टी का विशेष महत्वपूर्ण भाग हयूमस है। इसमें पेड़-पौधों का मृत भाग और जन्तुओं का मल-मुत्र तथा मृत शरीर, जो ऊपरी परतों में गिरकर

मिले रहते है। इस प्रकार कार्बनिक तत्वों का भण्डार मिट्टी मे मिलकर सूक्ष्म बैक्टीरिया और कवकों की क्रिया से विघटित होकर उपयोगी रासायनिक पदार्थ बनाता है और मिट्टी को उपजाऊ बनाता है। इन्ही पदार्थों को सामूहिक रूप से हयूमस कहते है। अन्ततः ये विघटित पदार्थ नाइट्रेटस में परिवर्तित होकर पौधों के विकास और वृद्धि में काम आते हैं।

मिट्टी की रासायनिक प्रकृति (Chemical Nature of Soil)

मिट्टी में अनेकों अकार्बनिक लवण, पोषक तत्व, कुछ कार्बनिक यौगिक (जिनमें मुख्यतः पौधों और प्राणियों के विघटन से उत्पन्न प्रोटीन्स) आदि रासायनिक पदार्थ होते हैं। मिट्टी की अम्लता और क्षारीयता (Acidity and alkalinity) भी एक महत्वपूर्ण सीमाकारी कारक है। खनिज कणों का आकार, वायु और जल की मात्रा को निर्धारित करके मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्म प्राणियों, जैसे– बैक्टीरिया, कवक, प्रोटोजोआ तथा केंचुए आदि की श्वसन व अन्य जैविक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

उपर्युक्त गुणों के आधार पर, मिट्टी एक अति महत्वपूर्ण स्थलीय कारक (Edaphic factor) है। यह अनेकों जीवधारियों का आवास (Habitat) है। इसकी भौतिक और रासायनिक संरचना का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव विभिन्न पौंधों और जन्तुओं के वितरण तथा अनेकों जैविक क्रियाओं पर पडता है।

ऊर्जा के अतिरिक्त जीवों के पोषक तत्वों का भण्डार भी मिट्टी में है, जैसे– (1) केंचुए सदैव अत्यधिक हयूमस वाली मिट्टी में निवास करते हैं।

(2) घोंघे (Snail) कैल्सियम की अधिकता और क्षारीयता वाली मिट्टी में निवास करते हैं, क्योंकि इन्हे अपने कवच (Shell) निर्माण के लिए कैल्शियम की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मिट्टी की जल-संग्राह्यता और वायु-ग्राह्यता के आधार पर भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में फसलों और वनस्पतियों की भिन्नता होती है। किसी न किसी रूप में सभी जीवधारी मिट्टी से पोषक तत्व प्राप्त करते हैं।

मृदा जल (Soil Water)

मृदा में जल की अत्याधिक मात्रा होती है। मृदा में जल का मुख्य स्त्रोत वर्षा है। भारी वर्षा के बाद मृदा पानी को कई रूपों में रखती है। मृदा द्वारा पानी रखने के आधार पर इसे– (1) गुरुत्वीय जल (Gravitational water), (2) केशिकीय जल (Capillary water), (3) आर्द्रताग्राही जल (Hygroscopic water) और (4) संयुक्त जल (Combined water) में विभाजित किया जाता है –

1. **गुरुत्वीय जल (Gravitational water)**– यह वह मुक्त जल (Free water) है जो कि गुरुत्व के प्रभाव से मृदा से नीचे की ओर जल स्तर (Water level) तक पहुँच जाता है। यह जल पौधों के लिए ज्यादा उपयेागी नहीं होता। अर्थात् यह आवश्यकता से अधिक (Surplus) वह जल होता है जो कि संग्राहक क्षमता से अधिक होने के कारण मृदा में नीचे बैठ जाता है।

2. **केशिकीय जल (Capillary water)**– यह जल अकोलायडीय (Non-colloidal) मृदा कणों के बीच उपस्थित स्थानों में पाया जाता है या उनके चारों तरफ झिल्ली बना देता है। यह जल कोशिकीय दबावों (Capillary pressure) द्वारा कणों के बीच में और चारों तरफ पाया जाता है और पादप जीवन के लिए अत्याधिक उपयोगी होता है।

3. **आर्द्रताग्राही जल (Hygroscopic water)**– जल की वह मात्रा जो की मृदा कणों पर पतली स्तर के रूप में पायी जाती है, आर्द्रताग्राही जल कहलाती हैं। यह जल पौधों को प्राप्त नही होता है, क्योंकि यह आसंजक (Adhesive) व संयोजक (Cohesive) बल के कारण मृदा के कणों से चिपका रहता है।

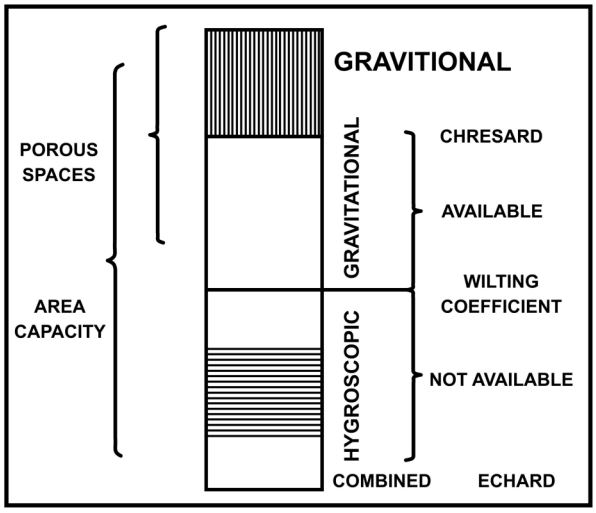

चित्र क्र. 1.14: मृदा जल के विभिन्न रूप (Various Forms of Soil Water)

मृदा में विद्यमान कुल जल की मात्रा होलार्ड (Holard) कहलाती है। इनमें से जो मात्रा पौधों को उपलब्ध हो जाती है, क्रीसार्ड (Chresard) कहलाती है और जो उपलब्ध नहीं होती है इकार्ड (Echard) कहलाती है।

4. **संयुक्त जल (Combined water)**– मृद्रा जल का थोड़ा सा भाग मृदा पदार्थों के रासायनिक रूप में संयुक्त अवस्था में बँधा होता है। यह संयुक्त जल कहलाता है। यह Al, Fe, Si के हाइड्रीकृत ऑक्साइड (Hydrated oxide) के रूप में होता है।

क्षेत्रीय क्षमता (Field Capacity)

यह केशिकीय, आर्द्रताग्राही और संयुक्त जल तथा जल वाष्प की कुल मात्रा है। यह पानी की वह अधिकतम मात्रा है जो कि गुरुत्वीय जल के निष्कासन के बाद मृदा में रहती है।

प्राप्य और अप्राप्य जल (Available and Non-available Water)

वह पानी जो पौधों द्वारा अवशोषित किया जा सकता है और उनके प्रयोग में लाया जा सकता है प्राप्य जल कहलाता है। वह पानी जिसे मृदा पौधों को नही दे पाती, अप्राप्य जल कहलाता है।

शिथिल बिन्दु या शिथिल गुणांक (Wilting Point or Coefficient of Wilting)

मृदा में आर्द्रता की वह प्रतिशत मात्रा जिस पर पौधा मुरझाने के बाद फिर से सही अवस्था में नही आएगा, स्थायी शिथील बिन्दु या शिथिल गुणांक कहलाता है।

मृदा का रंग (Colour of Soil)

यह तीन प्रकार का होता है। (1) लिथोक्रोम (Lithochrome) – जो कि पैतृक होता है; (2) अर्जित (Acquired); तथा (3) आनुवंशिक (Generic)।

ये दोनों क्रियाएँ ही मृदा निर्माण की प्रक्रिया के लिए उत्तरदायी हैं। बाहर के गुणों से प्रभावित (अर्जित) तथा आन्तरिक लक्षणों से मृदा निर्माण करते हैं।

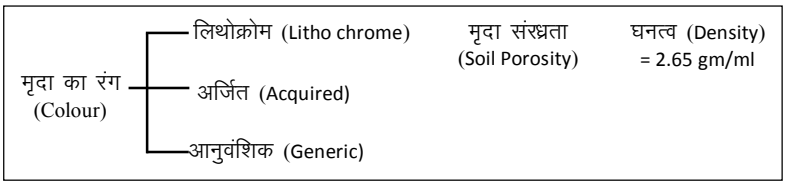

चित्र क्र. 1.15: मृदा निर्माण क्रिया (Soil Forming Process)

प्राणियों पर मृदा के प्रभाव (Effect of Soil on Animals)

मृदा का गठन (Texture) व रासायनिक संगठन– यह वे महत्वपूर्ण कारक है जो यह निर्धारित करते है कि किस प्रकार के प्राणी इसे आबाद कर सकते हैं तथा इसके द्वारा उनके समष्टियों की कितनी बड़ी परिमिती या आकार का पोषण किया जा सकता हैं

मृदा की संरध्रता, मृदा में परिसंचरित होने वाले जल एवं वायु के परिमाण तथा प्राणियों की वृद्धि एवं पोषण के लिए पदार्थों की उपलब्धता को निर्धारित कर प्राणियों पर निम्नानुसार प्रभाव डालती है–

1. **मुद्रा के गठन का प्राणियों पर प्रभाव**– केवल विशेष रूप से अनुकूलित प्राणी ही विभिन्न प्रकार के भूमि स्तरों पर रह सकते हैं। उदाहरणार्थ– चट्टानी भू-भाग पर एवं कठोर खुले प्रदेशों में तेज दौड़ने वाले प्राणी पाए जाते हैं जिनमें पादांगुलियों (Limb digits) की संख्या प्रायः कम हो जाती है, जैसे– हिरण, बारहसिंगा एवं शुतुरमुर्ग आदि।
2. **मुद्रा के संगठन (Composition) का प्रौधों पर प्रभाव**– ठोस चट्टानी आधार पर केवल मॉस (Moss) एवं लाइकेन (Lichen) ही जीवित रह सकते हैं। बालू के खिसकते रहने वाले टीले (Sand dunes) या बजरी-

सर्पण (Gravel slide), जैसे– टीलों स्थूल, खिसकते रहने वाले (Shifting) आधार पर वे ही पौधे पाए जा सकते हैं, जिनका मूल-तंत्र विस्तृत एवं मजबूत हो, जैसे– टीलों की घास। यदि मृदा बहुत ही मुलायम हो, तो यहाँ ऐसे पौधों की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जिन्हें मजबूत पकड (Anchorage) की आवश्यकता हो। यदि मृदा की संरध्रता अधिक हो तो इसमें से जल शिघ्र रिस जाता है और पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता। मृदु बालू, कच्छों एवं हिमाच्छादित क्षेत्रों में रहने वाले प्राणियों का अभिलक्षण फैला हुआ चौड़ा तलवा होता है, जैसा कि ऊँचाई के स्थलों में पाया जाता है या फिर इन प्राणियों की पादांगुलियाँ बड़ा क्षेत्र प्रदान करती हैं, जैसा कि जलग पक्षियों (Wading birds) या स्नो-शू खरहे (Snow-shoe rabbit) में होता है। बाजलू निवासी छिपकलियों एवं कीटों में टाँगे या पादांगुलियाँ पार्श्व शल्कों या रोमों द्वारा चोड़ी हो जाती है। इसी प्रकार केंचुए, छछून्दर (Mole), कृन्तक आदि बिलकारी प्राणी भी उन्हीं में पाए जाते हैं, जहाँ मृदा की परिस्थितियाँ बिल बनाने के लिए उपयुक्त हों।

3. **मृदा के रासायनिक संघटन का पौधों पर प्रभाव**– पौधों की वृद्धि एवं उनके अस्तित्व के लिए आवश्यक सभी पोषक पदार्थ मृदा द्वारा प्रदान किए जाते है। लीबिग (Liebig) के नियमानुसार, जो पोषक पदार्थ मृदा द्वारा प्रदान किए जाते हैं तथा पोषक पदार्थ न्यूनतम परिमाण में उपलब्ध होते हैं वही पौधों की वृद्धि को सीमित भी करते हैं। हाँ, मृदा (एक कारक) की वृद्धि किसी दूसरे कारक की कमी को आंशिक रूप से पूरा कर सकती है। एली (Allee *et al;* 1949) एवं उनके साथी वैज्ञानिकों ने इसे आंशिक तुल्यता का सिद्धान्त (Principle of Partial Equivalence) कहा है जो मृदा के पारिस्थितिकीय सम्बन्धों द्वारा प्रायः प्रदर्शित किया जाता है। इसके अतिरिक्त मृदा का खारापन अत्यधिक उच्च हो तो जल पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध होने पर भी प्राणियों के लिए अधिक उपयोगी नहीं होगा, क्योंकि इसके अवशोषण का तात्पर्य होगा उनके शरीर में लवणों की बाहुल्यता। इसलिए ऐसी मृदाओं को कार्यिकीय दृष्टि से शुष्क मृदाएँ कहते हैं।

4. **मृद्रा के रासायनिक संघटन का प्राणियों पर प्रभाव**– मृदा का रासायनिक संघटन प्राणियों को भोजन के माध्यम से अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभावित करता है। कैल्सियमी खोलों (Calcareous shells), युक्त स्थलीय घोंघे (Land snails) उन मृदाओं में विशेष रूप से अधिक पाए जाते हैं, जिनमें चूने का अंश अधिक होता है। चूना पत्थर (Limestone) वाले प्रदेशों में हैलिक्स (Helix) के कवच का भार कुल भार का 35 प्रतिशत होता है, जबकि जिन मृदाओं में चूने का अंश कम होता है, उन क्षेत्रों में रहने वाले हैलिक्स के कवच का भार कुल भार का केवल 20 प्रतिशत होता है। इसी प्रकार चुना पत्थर वाली मृदाओं में स्तनधारियों की अस्थियाँ भी अपेक्षाकृत अधिक भारी होती है। केंचुए, कई कीट, कई मकड़ियाँ, सूत्रकृमियाँ (Nematodes), प्रोटोजोआ आदि मृदा में उपलब्ध कार्बनिक पदार्थ का उपयोग भोजन के स्त्रोत के रूप में करते हैं। इसलिए

मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा प्रत्यक्ष रूप से उनके जीवन को प्रभावित करती है।

टिप्पणी

1.14.1.7 प्रवाह (Current)

जलीय माध्यम, जिनमें प्राणी रहते हैं, पूर्णतया स्थिर नही होता प्रायः जल में निरन्तर गति होती रहती है। तालाबों तथा झीलों में रहने वाले प्राणी हवा द्वारा उत्पन्न धाराओं या लहरों से प्रभावित होते हैं। अलवण जल स्त्रोतों में जल की एक ही दिशा में अभिगमन सभी निवासी जन्तुओं के जीवन को प्रभावित करता है। समुद्री किनारे पर उत्क्रमणीय (Reversible) या दोलनी (Oscillatory) ज्वारीय धाराएँ (Tidal currents), पायी जाती है, जबकि किनारे से दूर महासागर में स्थायी धाराएं उपलब्ध होती है। ये धाराए वास्तव में महासागर के महान धारा तंत्र का निर्माण करती है। उत्तरी गोलार्ध में पारिस्थितिकी महत्व की दो सुज्ञात महासागरीय धाराएं पाई जाती है। ये हैं– **(i) गल्फ स्ट्रीम** (Gulf Stream)– जो संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी किनारे के साथ-साथ उष्णकटिबन्धीय (Tropical) जल को उत्तर की ओर ले जाती है, तथा **(ii) जापानी धाराएं** (Japanese current)– जो अपेक्षाकृत गर्म जल को ऐल्यूटिया व अलास्का के किनारे तक लाती है।

वायु एवं जल प्रवाह और दबाव भी महत्वपूर्ण भौतिक कारक है।

वायुः वायु प्रवाह और संवेग भौगोलिक और भौतिक कारणों से स्थान-स्थान पर भिन्न होती है। कीटों का वितरण वायु वेग से सीधा प्रभावित होता है। यह देखा गया है कि कीटों का छितराव या बिखरना (Dispersal) वायू वेग वाली दिशा में, विपरीत दिशा की अपेक्षा अधिक तीव्रता से होता है। आँधी और तूफानी हवाएं किसी भी स्थान पर जन्तुओं और पौधों की जनसंख्या का अनुपात नष्ट कर सकती हैं, जिसे आने वाले अनेकों वर्षो में दुबारा सुधार पाना असम्भव होता है। छोटी चिड़ियाँ तेज हवाओं में वायु वेग दिशा के अनुरूप ही उड़ती है और आँधी तुफान में अपने घोंसलों में छिप जाती हैं। हवाओं के वेग से वनों की मूल संरचना भी बदल जाती है।

जलः इसका प्रवाह और वेग (Current and stream) जीवधारियों को प्रभावित करता है। सूक्ष्म पौधे और जन्तु तीव्र प्रवाह वाली नदियों और जलधाराओं में निवास नहीं कर पाते हैं। इसका कारण है– जल का तीव्र प्रवाह शैवाल और प्रोटोजोआ वर्ग के सूक्ष्म जीवों को बहा ले जाता है। अतः तीव्र प्रवाह वाले जल में सूक्ष्म जीवधारियों का वितरण सम्भव नहीं है।

प्रवाह के प्रभाव (Effects of Current)

1. **स्थानबद्ध जीवन में सहायता (Anchorage and Sessile)**– प्रवाह स्थानबद्ध प्राणियों के अस्तित्व को सम्भव कर देता है, क्योंकि गतिशील जल उन प्राणियों तक आवश्यक पोषक पदार्थ और O_2 लाता है। यही कारण है, कि स्पंज, सीलेन्टरेट्स, बाइवैल्व्स, बार्नेकल्स आदि स्थानबद्ध प्राणियों के कई समूहों की जल में अधिकता होती है, परन्तु इनका थल पर पूर्ण अभाव होता है। इनमें कई प्राणी सममिति (Symmetry) में भिन्न होते हैं। भोजन किसी भी दिशा से इन तक लाया जा सकता है।

इन प्राणियों के निषेचन में भी जलधारा का प्रवाह सहायक होता है। जलीय प्राणियों के नर युग्मों को जल या तो मादा युग्मकों तक ले जाता है, या फिर इन प्राणियों द्वारा विसर्जित दोनों युग्मकों को निषेचन के लिए समीप लाता है।

प्रवाह स्थानाबद्ध प्राणियों का वितरण कर देता है तथा नवीन क्षेत्रों का उपनिवेशन भी धाराओं द्वारा सम्भव कर दिया जाता है। वितरण एवं नवीन क्षेत्रों के उपनिवेशन (Colonisation) के लिए युग्मकों या डिम्भक को धाराएं एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती हैं और उनका वितरण दूर-दूर तक कर देती हैं जो अन्यथा सम्भव नहीं होता।

कई जलीय प्राणी स्थिर जल की अपेक्षा प्रवाह में अधिक दक्षतापूर्वक वृद्धि करते हैं तथा कुछ प्राणी केवल वहीं वृद्धि कर सकते हैं, जहाँ जल तेजी से गतिशील रहता है, जैसे– चेल मक्खी (Caddis fly), अल्पायु मक्खी (May fly), कृष्ण मक्खी (Black fly) के डिंभक। कुछ प्राणियों (जल निवासी प्राणियों) की जल की धारा पर निर्भर होने की घटना को प्रवाह माँग (Current demand) कहा गया है। कई प्रकरणों मे इस निर्भरता उचित (Precise) कारण अभी तथा भलि प्रकार ज्ञात नहीं है।

2. **जलधारा प्रवाहों द्वारा परिवहन**– कई समुद्री प्राणी समूह जल की परिवहन क्रिया द्वारा प्रभावित होते हैं। यह क्रिया स्थायी प्लवकीय समष्टियों को तथा नितल जीवजात (Benthos) एवं तरणकों (Nekton) के डिंभकों को प्रवाहित करती है। वे जातियाँ अधिकतर समुद्री वातावरण में पाई जाती हैं जिनके डिंभक प्लवकीय होते हैं। समुद्री डिंभको के प्लवकीय जीवन में स्थिर रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है तथा ऐसे स्थिर जीवन में प्रायः कई अवस्थाएं होती हैं।

कई जल-पिण्डों के प्लवकीय प्राणी अभिलाक्षणिक होते हैं। कभी-कभी प्रवाहों के अनुरेखण (Tracing) के लिए इन प्राणियों का प्रयोग किया जाता है। इन प्लवकीय प्राणियों को प्रवाह सूचक (Current Indicators) कहते हैं।

समुद्री धाराओं द्वारा परिवहन का सुस्पष्ट उदाहरण सर्पमीन (Eel) है। सर्पमीन बर्मुडा (Bermuda) के दक्षिण-पूर्व में समुद्री गहराइयों में अण्डजनन करती है। नवजात डिंभक गल्फस्ट्रीम में प्रवेश कर जाते हैं तथा इस धारा द्वारा इन्हें तीन वर्ष पश्चात यूरोपीय तट तक ले जाया जाता है। यहाँ तक इनका कायान्तरण होता है तथा परिपक्व सर्पमीन अपने प्रचलन द्वारा पुनः जनन के स्थान तक लौट आती है।

अलवण जलीय प्राणी (Fresh water animals) भी जल-परिवहन-तंत्र का उपयोग करते हैं, परन्तु यह उपयोग समुद्री प्राणियों की अपेक्षा कम किया जाता है। यदि सरिता निवासी प्राणी इस तन्त्र का उपयोग करें तो पुनः ऊर्ध्व-प्रवाह (Upstream) में लौटने के लिए उनमें कोई न कोई साधन होना आवश्यक है। जैसे– सीप (Mussel) के डिंभकों में अंकुश (Hooks) पाए जाते हैं, जिनकी सहायता से वे मछलियों के गिल्स पर चिपक जाते हैं।

परजीवी डिंभक युक्त कुछ मछलियाँ अन्ततः ऊर्ध्व-प्रवाह में आ जाती हैं जहाँ परिपक्व होने वाले डिंभक गिर जाते हैं और इनका कायान्तरण पूर्ण हो जाने से परिपक्व मसल (Mussels) बन जाते हैं।

कभी-कभी प्रवाह द्वारा किया गया परिवहन हानिकारक भी हो सकता है। *उदाहरणार्थ,* तेजी से बहने वाली नदी के प्राणी प्रायः मन्द गति वाली नदियों या झीलों में ला दिए जाते हैं। यहाँ उनके लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं होतीं। अलवणीय जल के जन्तु कभी-कभी बहाकर समुद्रों में ले जाए जाते हैं, जहाँ वे लवणता के लिए अनुकूलित नहीं होने के कारण मर जाते हैं। उत्तर ध्रुवीय प्राणी कभी-कभी गर्म जल में प्रवेश कर जाते हैं या उष्ण कटिबन्धीय प्राणियों को ठण्डे प्रदेशों में ले जाया जाता है, जहाँ वे अन्ततः मर जाते हैं।

3. **अपघर्षणी क्रिया (Abrasive action)**– धाराएँ प्रायः तोड़ने वाले या भंजक (Breaking) तरंगों का बल उत्पन्न करती हैं जिसके फलस्वरूप झीलों के किनारे व महासागरीय तटों (Ocean beaches) पर रहने वाले प्राणियों के बह जाने का खतरा निरन्तर बना रहता है। जल के साथ बहने वाले बालू या बर्फ के टुकड़े उपस्थित प्राणियों को अपघर्षित करने की निरन्तर क्रिया करते हैं, जिससे उनके शरीर क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। यह क्रिया निम्नानुसार होती हैं–

   (i) प्रक्षुब्ध (Turbulent) तटीय जल के निवासी प्रायः प्रतिरोधी आवरण द्वारा सुरक्षित रहते है। कई प्राणी लचीले ऊतकों व चर्मिल (Leathery) बाहयंकाल द्वारा बने होते है। ये प्राणी लहरों के बल का प्रतिरोध करने के स्थान पर उनके बल के साथ झुक जाते हैं। कई प्राणी आसंजक अंग (Holdfasts), संयोजी अंग (Cementing organs), चूषक (Suckers) आदि अंग विकसित कर लेते हैं, जो उन्हें बह जाने से रोकते हैं।

   (ii) ज्वारीय प्रदेशों में रहने वाले कई स्थानाबद्ध प्राणी कभी-कभी अनावरित या आवरित स्थानों में उपस्थित रहने के अनुसार वृद्धी रूपान्तरण रूप में अन्तर प्रदर्शित करते हैं। *उदाहरणार्थ,* स्थिर जल में स्पंज व ट्यूनिकेटस् लम्बे लोलकरूपी (Pendulous) प्रवर्धों के साथ वृद्धि करते हैं जबकि तेज लहारों एवं प्रवाहों के प्रदेश में उसी जाति के प्राणी चट्टानों के साथ घनिष्ठतापूर्वक चिपके हुए रूप में वृद्धि करते रहते हैं।

   (iii) कई गतिशील प्राणियों में धारानुचलन (Rheotaxis) पाया जाता है, अर्थात् वे प्रवाह की दिशा के सन्दर्भ में अपना प्रचलन अभिविन्यस्त (Orient) कहते हैं। *उदाहरणार्थ,* सरिता में पायी जाने वाली कई मछलियों की धारानुचलनी क्रिया ऐसी होती है कि वे धारा के विरूद्ध अभिगमन करती हैं। सरिता के कई प्राणी प्रवाह से बाहर आकर स्थिर या सुरक्षित भँवर में पहुँच जाते हैं।

टिप्पणी

(iv) कई केडिस मक्खियों (Caddis flies) के डिंभक (Larva) धारा की तीव्रता के अनुसार अपने अवरणों का निर्माण बड़े व अनियमित पदार्थ से करते हैं। जैसे-जैसे प्रवाह की तीव्रता बढ़ती है, आवरण अधिक से अधिक नौकाकार (Streamlined) हो जाते हैं तथा सूक्ष्मतर पदार्थ से बनने लगते हैं।

1.14.1.8 दाब (Pressure)

वायुमण्डल में बढ़ती हुई ऊँचाईयों के साथ-साथ वायुमण्डलीय दाब घटता है और जल में बढ़ती हुई गहराई के साथ द्रवस्थैतिक दाब बढ़ता है। दाबजनित परिवर्तन प्राणियों के लिए महत्वपूर्ण हो सकते है–

(i) वायु दाब परिवर्तनों के प्रभाव ऊँचाई के साथ दाब में होने वाली कमियाँ, पौधों, अकशेरूकियों तथा निम्न श्रेणी के कशेरूकियों के लिए कम महत्वपूर्ण है।

लेकिन समतापी प्राणियों के लिए ऊँचाईयों पर कम दाब का तात्पर्य होता है– उपलब्ध ऑक्सीजन के आंशिक दाब (pO_2) में कमी जो उनके श्वसन के लिए पर्याप्त नहीं होती है। इसके अतिरिक्त वायु की विरलता के कारण उड़ान कठिन हो जाती है, जिसके फलस्वरूप पक्षियों आदि उड़नशिल कशेरूकियों का जीवन कठिन हो जाता है।

भृंग (Beetles) तथा केंचुए ऊँचाईयों पर मिलते है। पौधों तथा असमतापी प्राणियों का पर्वतों पर वितरण कम दाब से नहीं, बल्कि अन्य प्रतिकूल कारकों द्वारा सीमित होता है।

2. **जल दाब का प्रभाव**– जल में गहराई के दाब में अत्यधित वृद्धि होती है। समुद्री गहराइयों में अत्यधिक दाब प्राणियों को कुचलता नहीं है, क्योंकि उनके शरीरों के अन्दर का दाब बाहय दाब के समान अनुकूलन स्वरूप होता है। ये प्रभाव इस प्रकार होता है–

(i) जलीय वातावरण में दाब परिवर्तनों का प्रभाव वायु-गुहिकाओं (Air cavities) युक्त एवं वायु गुहिकाओं रहित प्राणियों मे भिन्न-भिन्न होते हैं। कई समुद्री प्राणियों में वायु गुहिकाओं का अभाव होता है, परन्तु इनके वितरण की भी निश्चित उदग्र सीमाएँ (Vertical limit) होती है। परिसर की ये सीमाएँ सम्भवतः दाब के कारण नहीं, बल्कि तापक्रम, प्रकाश या भोजन जैसे अन्य कारकों के कारण होती है। दाब में अत्याधिक परिवर्तनो से कुछ कार्यिकीय क्रियाओं की दर में परिवर्तन आ जाता है, तथा जब अकशेरुकियों, वाताशय (Swim-bladder) रहित मछलियों और जीवाणुओं को दाब कोष्ठों (Pressure chamber) में कई सौ एट्मोस्फियर दाब में रखा जाता है, तो वो निष्क्रिय हो जाते हैं या मर जाते है। इस प्रकार, यद्यपि मध्यम दाब परिवर्तन सामान्य प्राणियों को अधिक प्रभावित नहीं करते है, किन्तु बड़े परिवर्तन उनकी जीवन क्रियाओं पर सूक्ष्म परिवर्तन डाल सकते है। सामान्यतया, अत्यधिक दाबों का अवनमनकारी (Depressing)

प्रभाव होता है। इसलिए महासागर की गहराई में जीवन की क्रियाएँ धीमी होती है।

टिप्पणी

(ii) जलीय वातावरण में वाताशय युक्त मछलियों एवं डुबकी लगाने वाले पक्षियों व स्तनधारियों आदि वायु गुहिकाओं युक्त प्राणियों के लिए दाब परिवर्तन एक विपरीत प्रभाव डालता है। मछली का वाताशय उत्प्लावकता (Buoyancy) प्रदान करता है। जब मछली नीचे की ओर गति करती है तो वाताशय संपीडित (Compressed) होता है और जब यह ऊपर की ओर तैरती है तो वाताशय प्रसारित (Expand) होता है। वाताशय युक्त मछलियों में यह उदग्र प्रचलन एवं उस गति का दाब सीमित करता है, जिससे वे एक गहराई से दूसरी गहराई तक तैरती है।

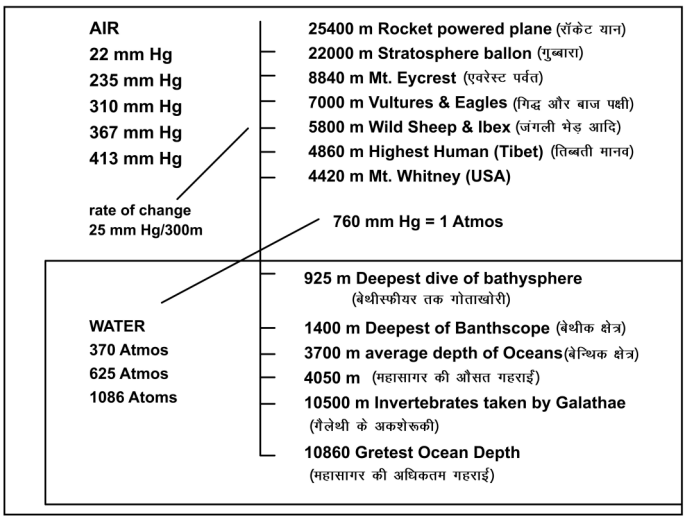

चित्र क्र. 1.16: जल में दाब का परिसर एवं जीवों की उपस्थिति (Water Pressure and Presence of Organisms)

डुबकी लगाने वाले पक्षियों, स्तनधारियों तथा स्थलवासियों के लिए जल में बढ़े हुए दाब की समस्या के साथ श्वसन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जल में घुली हुई O_2 अल्प मात्रा में होती है। डुबकी लगाते समय जब तक ये प्राणी जल के अन्दर रहते है, उन्हें ऑक्सीजन के नवीनीकरण के बिना काम चलाना पडता है। अभी तक यह ज्ञात नहीं हुआ है कि ऑक्सीजन के नवीनीकरण के बिना इन प्राणियों की जीवन क्रियाएँ किस प्रकार से चलती रहती हैं। सील पर किए गए प्रारंम्भिक अध्ययनों के आधार पर प्राप्त प्रमाण बताते है कि डुबकी लगाने वाले ये स्तनधारी अपने ऊतकों में ऑक्सीजन का वर्धित परिमाण (Augmented quantity) संग्रहित कर लेते हैं तथा शरीर के अन्य अंगों से परिसंचरण को बन्द कर यह ऑक्सीजन आवश्यक अंगों के लिए सुरक्षित रखी जाती है। पेशियाँ ऑक्सीजन ऋण (Oxygen debt) उत्पन्न कर लेती है जो उस समय वापिस लौटा दिया जाता है, जब प्राणी सतह पर आता है। इस प्रकार, इन

टिप्पणी

प्राणियों में ऑक्सीजन के नवीनीकरण के बिना भी लम्बे समय तक सक्रिय रहने की क्षमता होती है।

जल का दबाव विशेषकर गहरे स्त्रोतों, जैसे– झीलों, समुद्रों और महासागरों में अधिक स्पष्ट होता है। जल दबाव समुद्री वातावरण में लम्बवत वितरण (Vertical distribution) और जन्तुओं की संरचना दोनों को प्रभावित करता है। समुद्र की ऊपरी सतह पर जन्तुओं का जनसंख्या घनत्व सर्वोच्च होता है व गहराई के साथ बढ़ते दबाव के कारण घटता जाता है और अन्त में समुद्र की तलहटी में यदाकदा कोई जन्तु पाया जाता है। अधिक गहरे समुद्री क्षेत्र में भारी दबाव के कारण जन्तुओं का शरीर संपीड़ित (Compressed) और कोमल (Fragile) हो जाता है।

1.14.1.9 गुरुत्व (Gravity)

गुरुत्व बल पृथ्वी के केन्द्र से दूरी के सन्दर्भ में बदलता रहता है, परन्तु यह परिवर्तन उन प्राणियों को प्रभावित करने में अत्याधिक महत्वपूर्ण नहीं होता जो भूमध्य रेखा से ध्रुवों तक यात्रा करते हैं या उदग्र दिशा में गति करते हैं।

वातावरण पर गुरुत्व के प्रभाव (Effect of Gravity on Atmosphere)

1. गुरुत्वीय खिंचाव महासागरों की अपेक्षा महाद्वीपों पर कमजोर होता है। इससे प्रकट होता है कि महाद्वीप उभारों (Protuberances) में या उनके नीचे पाए जाने वाले पदार्थों की अपेक्षा महासागरों के तल पर पाए जाने वाले पदार्थ अपेक्षाकृत भारी होते हैं। समस्थितिक सन्तुलन को स्थापित करने में गुरुत्व का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए विश्व के आवासों के प्राथमिक विभाजन को स्थापित करने में गुरुत्व का मौलिक महत्व रहा है।
2. गुरुत्व से वातावरण में स्तरीकरण हो जाता है। उन क्षेत्रों में जहाँ पृथ्वी से कार्बन डाइऑक्साइड मुक्त होती है, अधिक घनत्व के कारण यह गैस निम्नतर वायु में स्थान ले लेती है। ऐसे क्षेत्रों में प्राणी जीवन असम्भव हो जाता है।
3. जलीय वातावरण में, गर्म व अलवण जल (Fresh water) की अपेक्षा पाणियों में गुरुत्व के कारण ठण्डे व लवण युक्त जल (Salty water) के नीचे रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है।
4. वायु या जल में निलम्बित ठोस कणों के चयनात्मक तली में बैठने (Selective settling) के लिए गुरुत्व की उत्तरदायी होता है। हल्के पदार्थों की अपेक्षा भारी पदार्थ तली में शीघ्र बैठ जाते हैं।
5. महासागर की गहराईयों में पाए जाने वाले प्राणियों की गुरुत्व के खिंचाव के कारण ही भोजन प्राप्त होता है। ऊपरी स्तरों से सम्पूर्ण या विघटनशील शरीर के मल और उत्सर्जी पदार्थ गुरुत्व के प्रभाव से नीचे तल की ओर गिरते हैं, इससे उन क्षेत्रों के प्राणियों को भोजन मिलता है। गुरुत्व के खिंचाव के कारण ही वर्षा की बूंदें भूमि पर गिरती हैं और गुरुत्व के कारण

ही जल नीचे की तरफ बहता है। बहने वाला जल जो कार्य करता है, वे वास्तव में गुरुत्व बल के फलस्वरूप ही होते हैं।

टिप्पणी

प्राणियों पर गुरूत्व का प्रभाव (Effect of Gravity on Animals)

(i) संरचना पर प्रभाव– वायु की अपेक्षा जल में प्राणी के भार को साधने की अधिक क्षमता होती है। इसलिए जलीय जन्तु अपने स्थलीय निकट सम्बन्धियों की अपेक्षा परिमाण में अधिक बड़े होते हैं। जलीय जन्तुओं पर गरुत्व का खिंचाव निरन्तर पड़ता रहता है। यदि वे प्लवन युक्तियों (Floatation devices) को विकसित न करें या गरुत्व के खिंचाव को तैरकर प्रति-सन्तुलित (Counterbalance) न करें, तो वे डूब जाएंगे।

प्राणियों के विभेदनात्मक उदग्र वितरण (Differential vertical distribution) में गुरुत्व का योगदान होता है। जल के ऊपरी प्रदेशों में पाए जाने वाले प्राणी अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। जलीय प्राणियों के जीवन चक्र में वृद्ध व अधिक परिपक्व अवस्थाओं की अपेक्षा तरुण अवस्थाएँ जल सतह के पास पाई जाती हैं, यह तथ्य तरणकों (Nektons) व प्लवकों (Planktons) दोनों पर ही लागू होते हैं।

(ii) विन्यास (Orientation)– प्राणी भू-ऋणात्मक, भू-धनात्मक या अनुप्रस्थ दिशा में अभिगमन कर सकते हैं। यदि प्राणी पृथ्वी के गरुत्व केंन्द्र से दूर हो तो वह भू-ऋणात्मक (Geonegative) कहलाता है, जैसे प्लवक और उड्डयनशील जन्तु, यदि वह उस केंद्र की तरफ वितरित व इकट्ठा हो तो उसे भू-धनात्मक (Geopositive) कहते हैं, समुद्र के तल पर स्थित जन्तु अथवा यदि वह गुरुत्व के खिंचाव की दिशा के समकोण पर विन्यसित हो, तो अनुप्रस्थ (Transverse) कहलाता है।

II. रासायनिक कारक (Chemical Factors)

भौतिक कारकों की भाँति रासायनिक कारक भी जैविक क्रियाओं को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं। मुख्य रासायनिक कारक निम्नवत हैं–

1. वायुमण्डल और वायुमण्डलीय गैसें (Atmosphere and Atmospheric Gases)–

वायु के साधारण तत्वों में लगभग 20 प्रतिशत ऑक्सीजन, 79 प्रतिशत नाईट्रोजन तथा 0.03 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड तथा शेष निष्क्रिय गैसें होती है। इनके अतिरिक्त मौसम के अनुसार जलवाष्प भी वायु मे रहती है। निष्क्रिय गैसों को छोड़कर सभी गैसे महत्वपूर्ण उपापचयज (Metabolites) के रूप में कार्य करती हैं तथा वायु के रूप में समस्त भूमण्डल के चारों ओर सदैव चक्कर काटती रहती हैं।

ऑक्सीजन जीवधारियों के लिए परम आवश्यक गैस है। स्थलीय एवं जलीय प्राणियों का श्वसन ऑक्सीजन की उपस्थिति में होता है। यही ऑक्सीजन आन्तरिक श्वसन में कार्बोहाइड्रेट्स या शर्करा को ऑक्सीकृत करके जैविक कार्यों

के लिए ऊर्जा उत्पन्न करती है। बिना ऑक्सीजन के जीवन कुछ पलों में समाप्त हो सकता है। जलीय आवास में ऑक्सीजन या तो प्रकाश संश्लेषण से या वायुमण्डल से मिलकर घुल जाती है। ऑक्सीजन स्थलीय और जलयी जन्तुओं के लिए एक महत्वपूर्ण सीमान्तकारी कारक है।

कार्बन डाइऑक्साईड की सहायता से पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा स्वयं अपने लिए और जन्तुओं के लिए भोजन बनाते हैं। परन्तु वायु में कार्बन डाइऑक्साइड की अधिकता जन्तुओं के लिए प्राणघातक सिद्ध होती है। जल में अत्यधिक घुलनशील होने के कारण यह जल से मिलकर कार्बोनिक अम्ल (H_2CO_3) बनाती है। यह अम्ल के माध्यम में उपस्थित चूने (Lime) से प्रतिक्रिया करके कार्बोनेट बनाता है। ये यौगिक समुद्र में कार्बन डाइऑक्साइड के सुरक्षित भण्डार के रूप में काम करते हैं। परन्तु जल में इस गैस की अत्यधिक मात्रा से मछलियाँ और जन्तु मर जाते है।

नाइट्रोजन गैस का प्राकृतिक चक्र अनेकों रासायनिक क्रियाओं के माध्यम से जन्तुओं का निर्माण करने के साथ-साथ ऑक्सीजन की ज्वलनशीलता पर भी नियन्त्रण रखता है।

2. पीएच (pH) या हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता (Concentration of Hydrogen ion)–

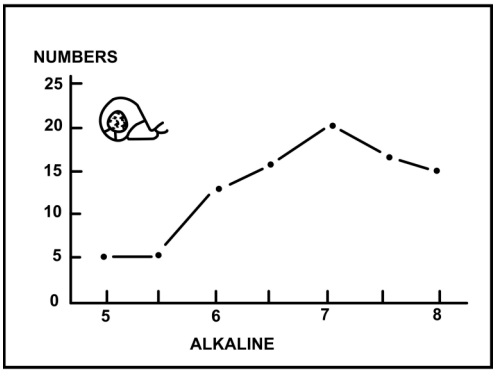

चित्र क्र. 1.16: मौलस्का वर्ग के घोंघे क्षारीय माध्यम में रहना पसन्द करते है (Snails of Mollusea class like to live in basic medium)

भूमण्डल पर सभी वस्तुएँ अम्लीय (Acidic) या क्षारीय (Alkaline) गुणों वाली अथवा उदासीन (Neutral) होती हैं। अम्लीयता या क्षारीयता का गुण वस्तु विशेष में हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता पर निर्भर करता है और इसे पीएच (pH) से दर्शाते हैं।

pH 7 उदासीन बिन्दु है और 7 से ऊपर क्षारीयता तथा 7 से नीचे के आने पर अम्लीयता की तीव्रता बढ़ती है। पीएच भी जन्तुओं के वितरण में महत्वपूर्ण सीमान्तकारक है। मच्छर के लार्वा pH 5 (हल्का अम्लीय) या इससे नीचे पीएच वाले जल में अधिकतर मिलते हैं, परन्तु मोलस्का वर्ग के घोंघे, सीप आदि जन्तु पीएच 7-8 या इससे अधिक पीएच अर्थात क्षारीय जल और मिट्टी में रहना पसन्द करते हैं। (चित्र 1.16) प्रोटोजोआ वर्ग में कुछ जन्तु हल्के क्षारीय वातावरण में पाए जाते हैं, परन्तु युग्लीना (Euglena) pH 2 से pH 8 तक के सभी स्वच्छ जल में वितरित हैं। इसी प्रकार फीता कृमि (Tape worm) पीएच 0.4 से पीएच 11 तक के माध्यम में रहता है। अल्प पीएच वाली अल्मीय मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी होती है और इसमें उत्पादन भी कम होता है।

टिप्पणी

3. माध्यम के पोषक तत्व (Nutritive Elements of Medium)–

किसी भी जैविक माध्यम के पोषक तत्व जीवधारियों के विकास, वृद्धि और वितरण को प्रभावित करते हैं। पोषक तत्वों के उपयोग की मात्रा के आधार पर उन्हें दो उपसमूहों में बाँटा गया है–

1. वृहत पोषक तत्व (Macronutrients) एवं 2. सूक्ष्म पोषक तत्व (Micronutrients)

1. **वृहत पोषक तत्व (Macronutrients)**– इस समूह के पोषक तत्वों की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है। अतः इनकी अधिक मात्रा में उपलब्धि आवश्यक है। कशेरूक (Vertebrates) जन्तुओं की हड्डियों के विकास और वृद्धि के लिए तथा मौलास्का वर्ग में उनकी सीप या कवच (Shell) निर्माण के लिए भारी मात्रा में कैल्शियम का उपयोग होता है। अतः अपनी विकास और वृद्धि के लिए ये जन्तु उन्हीं क्षेत्रों मे रहते हैं, जहाँ प्रचुर मात्रा में कैल्शियम उपलब्ध होता है। सभी हरी पत्तियों में क्लोरोफिल निर्माण के लिए मैग्नीशियम की उपलब्धि होना अति आवश्यक है। अतः हरी पत्तीवाले पौधों का विकास भरपूर मैग्नीशियम उपलब्धि वाले क्षेत्रों में ही होता है।

2. **सूक्ष्म पोषक तत्व (Micronutrients)**– कुछ पोषक तत्व जन्तुओं व पौधों के लिए अत्यधिक आवश्यक है, परन्तु इनकी आवश्यकता अति सूक्ष्म मात्रा में होती है। ऐसे तत्वों को सूक्ष्म पोषक तत्व उप-समूह में सम्मिलित किया जाता है। ये तत्व अपनी अल्प मात्रा में भी अधिक प्रभावकारी और सीमान्तकारी कारक है। यह कई प्रकार के एन्जाइम, हॉर्मोन्स तथा विटामिन्स के निर्माण और स्त्राव का नियन्त्रण करते है और विभिन्न जैविक क्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण करते हैं। इसी प्रकार कोबाल्ट (Co) की अति सूक्ष्म मात्रा कुछ कार्बनिक यौगिकों के सहयोग से विटामिन B_{12} का निर्माण करने में धातु उत्प्रेरक का कार्य करता है। इसकी अल्प मात्रा विटामिन– B_{12} की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है।

   इस प्रकार मैंगनीज, लोहा, क्लोरीन, जिंक, वैनेडियम आदि सूक्ष्मपोषक प्रकाश संश्लेषण के अविभाज्य तत्व हैं। इनके अतिरिक्त मॉलिब्डेनम्, बोरॉन, कॉपर, कोबाल्ट तथा सिलिका आदि कुल मिलाकर 10 सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों और जन्तुओं दोनों के लिए समान रुप से महत्वपूर्ण है और सीमाकारी कारक के रूप में कार्य कर सकते हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

18. किसी स्थान पर वायु की प्रति इकाई में उपस्थित जलवाष्प की मात्रा का भार, कहलाता है–

(अ) सम्पूर्ण आद्रता (ब) सापेक्ष आर्द्रता

(क) आर्द्रता (ड) उपर्युक्त तीनों

19. समुद्री जल के खारेपन की प्रतिशतता लगभग होती है–

(अ) 1.5 (ब) 2.5

(क) 3.5 (ड) 4.5

20. पौधों के लिए अत्याधिक उपयोगी जल हैं–

(अ) गुरूत्वीय जल (ब) केशिकीय जल

(क) आर्द्रताग्राही जल (ड) संयुक्त जल

21. मृदा में उपस्थित जल की वह मात्रा जो पौधों को उपलब्ध हो जाती है, कहलाती हैं–

(अ) इकाई (ब) होलार्ड

(क) क्रिंसार्ड (ड) कोई भी नहीं

22. हरे पौधों में क्लोरोफिल निर्माण के लिए किस वृहत पोषक तत्व (Micronutrients) की आवश्यकता होती हें?

(अ) कोबाल्ट (Co) (ब) सोडियम (Na)

(क) कॉपर (Cu) (ड) मैग्नीशियम (Mg)

1.15 जैविक कारक (Biotic Factors)

परिचय (Introduction/Definition)

अजैविक कारकों के साथ-साथ जैविक कारक भी-जीवधारियों की जैविक क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र में किसी भी जीव के लिए एकल और स्वतंत्र रहना सम्भव नहीं है, क्योंकि जीव एक-दूसरे से घनिष्ठता से सम्बन्धित होते हैं।

किसी भी जाति (Species) की सफलता के लिए जैविक कारकों का कुछ विशिष्ट सम्बन्धों के आधार पर अनुक्रियाएँ (Interactions) करना आवश्यक है। इन सम्बन्धों की मधुरता या कटुता की जन्तु विशेष की समस्त जाति पर प्रभाव डालती है। दूसरे शब्दों में जन्तुओं के आपसी सम्बन्ध या तो एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करके दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान करते हैं या आपस में एक-दूसरे से आक्रमणकारी और असहयोग करके जीवन कठिन बनाते हैं। उन जैविक कारकों

को, जिनसे जन्तु विशेष को सहयोग मिलता है, सहयोगी कारक (Cooperative factors) कहते हैं।

टिप्पणी

जीव-जगत में जन्तुओं के वनस्पतियों से तथा जन्तुओं के जन्तुओं से सम्बन्ध हो सकते हैं। सहयोग या असहयोग के अतिरिक्त जन्तुओं के आपसी सम्बन्धों को अन्तःजातीय सम्बन्ध (Intraspecific association) एवं अन्तरजातीय सम्बन्धों (Interspecific associations) में विभाजित किया गया है।

1.15.1 अन्तःजातीय सम्बन्ध (Intraspecific Associations)

जब एक ही स्पीशीज (Species) के सदस्य परस्पर सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं, तब ऐसे सम्बन्धों को अन्तःजातीय सम्बन्ध कहते हैं। जन्म के साथ ही प्रत्येक जन्तु का अपनी जाति के सदस्यों से सर्वप्रथम सम्बन्ध स्थापित होता है। अलग-अलग जातियों में यह सम्बन्ध भिन्न रूपों के होते हैं। कुछ जातियों में अपने सदस्यों को विशेष सहयोग देकर उन्हें सफल बनाने में योगदान दिया जाता है, तो कुछ जातियों में अपनी जाति के सदस्य भी असहयोगी और घातक होते हैं। मुख्य अन्तःजातीय सम्बन्ध निम्नांकित हैं–

(क) सहयोगी अन्तःजातीय सम्बन्ध, (ख) असहयोगी अन्तःजातीय सम्बन्ध

(क) सहयोगी अन्तःजातीय कारक (Cooperative Intraspecific Factors)

सहयोगी अन्तःजातीय सम्बन्ध निम्न हैं–

(1) निवहीकरण, (2) सामाजिक संगठन, (3) सामूहीकरण, तथा (4) पैतृक संरक्षण।

1. **निवहीकरण (Colonization)**–

   (a) प्रोटोजोआ समुदाय में सर्वप्रथम आपसी सहयोग से निवहीकरण की प्रक्रिया देखने को मिलती है। इससे प्रोटोजोआ निवह के सदस्यों को सुरक्षा, पोषण प्राप्त करना और प्रजनन की सुगमता प्राप्त होती है।

   (b) इसका विकसित रूप सीलेन्ट्रेटा समुदाय के जन्तुओं में मिलता है। फायसेलिया एक निवही सीलेन्ट्रेटा है। इसके विभिन्न सदस्य (Zooids) साथ-साथ एक निवह में रहते हुए अलग-अलग कार्य जैसे – पोषण हाइड्रोजूइड द्वारा, जनन गोनोजूइड द्वारा तथा रक्षा डेक्टिलोजूइड द्वारा करते है। इस प्रकार कार्य का श्रमविभाजन होने से सभी कार्य अधिक दक्षतापूर्वक होते है।

   (c) निवहीकरण की प्रवृत्ति से ही स्पन्ज समूह (Porifera) का विकास हुआ और कोशिकाओं में श्रम से विभाजन प्रारम्भ हुआ, जिससे आधुनिक जीवों की उत्पत्ति सम्भव हो सकी। परन्तु निश्चय ही इस सहयोगी कारक ने न केवल कुछ जातियों, अपितु, सारे जीव-जगत का अद्‌भुत विकास करने में एक अति महत्वपूर्ण जैविक सहयोगी कारक की भूमिका का निर्वाह कया है।

2. **सामाजिक संगठन (Society Formation)**– कुछ पाणियों में अद्‌भुत सामाजिक संगठन निर्माण की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह प्रवृत्ति अपनी जाति की सुरक्षा, प्रगति और सफलता में ठीक उसी प्रकार सहयोगी होती है, जिस प्रकार मानव के विभिन्न सामाजिक संगठन मानव जाति की सफलता और विकास में सहयोगी होते है। मधुमक्खी, चिटियों और दीमक में सामाजिक संगठन अत्यन्त विकसित रूप में देखने को मिलता है, जिसके कारण श्रम विभाजन के साथ-साथ जाति निर्माण (Caste formation) तथा शारीरिक संरचना में विभेदन हो जाता है।

   इनके कीटों का विभाजन पंखो वाली नर व मादा, पंखरहित बन्ध्य (Sterile) सैनिक एवं छोटे पंखरहित, अधिकांशतः बन्ध्य श्रमिकों में होता है। इनमें से बड़ी पंख वाली नर व मादा का मुख्य कार्य प्रजनन है। सैनिकों का काम निवह की सुरक्षा व्यवस्था है, इसलिए इनके चर्वणक (Mandible) बड़े होते हैं और इनमें फॉर्मिक अल्म पैदा करने वली ग्रन्थियाँ भी होती है। श्रमिकों का काम भोजन इकट्ठा करना, घरेलू काम देखना तथा निवह अर्थात् रहने के निवास बनाना और उनकी सफाई, मरम्मत आदि करना है। इस प्रकार का सगठनात्मक सहयोग इन प्राणियों की सफलता में अत्यन्त लाभकारी कारक है।

   मधुमक्खी निवह में तीन जातियाँ (Castes) होती हैं–

   (a) रानी– यह जननशील मादा होती हैं, जो अण्डे देती है।

   (b) ड्रोन या राजकुमार– यह जननशील नर होते हैं, जो रानी को निषेचित करते है।

   (c) श्रमिक– यह भोजन एकत्रित करते हैं, अण्डों एवं लार्वाओं का पोषण करते हैं, छत्ता निर्माण और मरम्मत करते हैं।

   संरचनात्मक उत्पत्ति के विकास में आर्थोपोड़ा सबसे उच्च माने जाते हैं तथा इनमें सबसे जटिल सामाजिक समूह कीटों में मिलता है। मधुमक्खी, दीमक एवं चीटियों के समाज में मुख्य रूप से प्रत्येक सदस्य का कार्य संरचनात्मक अन्तरों से निर्धारित होता है तथा सभी सदस्यों में सहयोग प्रवृत्ति (Behaviour) पर निर्धारित होता है, जो अधिकांश तौर पर आनुवंशिकता (Heredity) के द्वारा निर्धारित होते हैं।

3. **सामूहीकरण (Aggregation)**– निवहीकरण से मिलती-जुलती परन्तु निश्चित रूप से भिन्न प्रवृत्ति सामूहीकरण की होती है। इस प्रक्रिया में कुछ जातियों के सदस्य या तो स्वभाव से ही समूह बनाकर रहते हैं या कुछ विशेष परिस्थितियों का सामना करने के लिए अस्थायी तौर पर सूमह में इकट्ठे हो जाते हैं। जैसे– टिड्डी दल, चौपायों का वन्य पशुओं कासमूह या आप्रवास करते हुए पक्षी, मछलियाँ आदि।

   सामूहीकरण में विभिन्न प्रकार के सहयोगी लाभ होते हैं, जो कि निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है–

टिप्पणी

(i) **सुरक्षा (Safety)**– समूह में रहकर कुछ जन्तु अपनी सुरक्षा अच्छी तरह से कर सकने में सक्षम होते है।

(ii) **ताप संरक्षण (Heat/Thermal Conservation)**– अत्याधिक जाड़े में न्यून ताप से बचने के लिए अक्सर अनेकों कोट, चिड़ियाँ और पशु तथा मानव स्वयं समूह बनाकर रहते हैं। सामूहिक रूप में श्वसन द्वारा उत्पन्न ताप और उनके शरीर से उत्पन्न ऊष्मा, जाड़े का मुकाबला करने में सहायक होता है।

(iii) **पारिवारिक कवच (Family Armour)**– एक अकेला जंगली भैंसा (Bison) भेडियों के समूह का मुकाबला नहीं कर पाता है और बहुधा अकेला पड़ जाने पर मारा जाता है। अतः जंगली भैंसे समूह बनाकर चलते हैं और भेड़ियों तथा अन्य हिंस्त्र पशुओं से सामना होने पर सभी भैंसे बाहर की ओर मुँह करके एक घेरा बनाते हैं जिसमें मादा और बच्चों को सुरक्षित करने के लिए घेरे के नर भैंसे मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध हो जाते है। इस प्रकार वे इस सामुहिक सुरक्षा चक्र या घेरे के द्वारा भेड़ियों या अन्य शिकारी वन्य पशुओं से अपनी रक्षा करते है और अक्सर उन्हें भगाने में सफल होते हैं।

(iv) **आक्रमणकारी प्रवृत्ति (Attacking or Offensive Tendency)**– जाति की सुरक्षा के लिए कुछ जन्तु तो सदैव झुण्ड में ही रहते या घुमते हैं। अधिकांशतः चिड़ियाँ और कीट स्थायी झुण्ड में रहते हैं। अपेक्षाकृत असुरक्षित टिड्डियों के विशाल झुण्ड बड़े पैमाने पर फसलों को चौपट करके किसानों को खुली चुनौती देते हैं। इसी प्रकार अनेकों छोटे-छोटे जन्तु सामूहिक सहयोग के बल पर बड़ी-बड़ी प्रतिकूल शक्तियों को परास्त करके अपनी जाति की सम्पन्नता का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

उच्चस्तरीय समूहीकरण (High Level Aggregation)– यह तीव्र अनुकूलन अनुक्रिया है, जिसके द्वारा एक जाति में दूसरे जाति के सदस्यों को शामिल किया जाता है इस प्रकार के कई समूह है, जैसे– मधुमक्खी, बर्र, काली चिड़ियाँ जो रात्रि के समय सोने के लिए साथ आती है तथा दिन होते ही बिखर जाती है।

काली चिड़ियाँ, मधुमक्खी की परभक्षियों से रक्षा करती है और मधुमक्खियाँ चिड़ियों को छतों पर शरण देती है और भोजन एकत्रित करने के अवसर देती है।

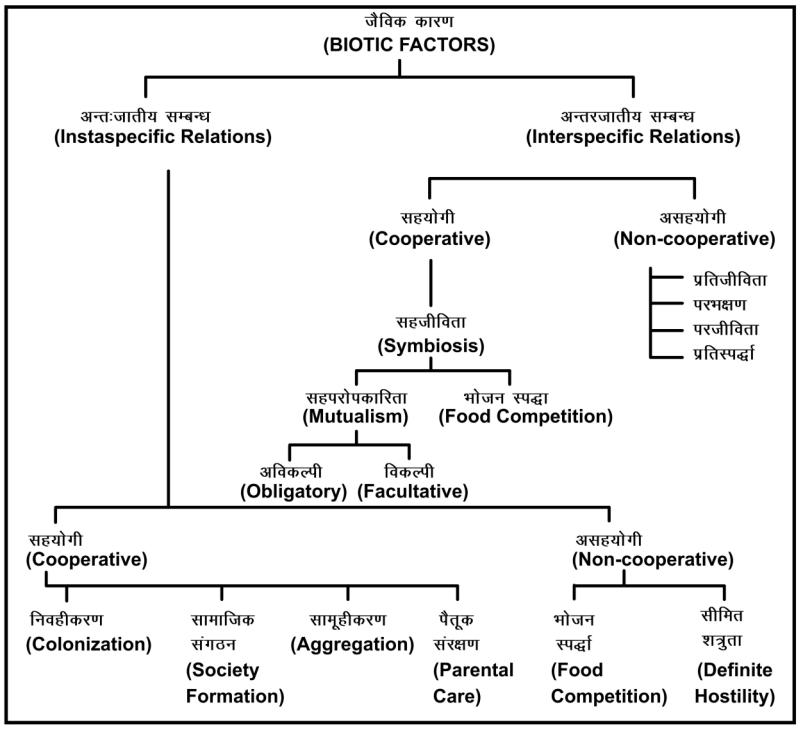

चित्र क्र. 1.17: जैविक कारक (Biotic Fuctors)

4. **पैतृक संरक्षण (Parental Care)**– प्राणियों में पैतृक संरक्षण का गुण कुछ समूहों में विकसित रूप से नहीं पाया जाता है। सूक्ष्मदर्शीय एवं छोटे प्राणियों में पैतृक संरक्षण का नितान्त अभाव मिलता है। जन्म के तुरन्त बाद नवजात शिशुओं (New born) को प्रकृति के भरोसे छोड़ दिया जाता है। स्तनधारी तथा पक्षियों और कुछ ऐम्फीबिया (Amphibia) में यह गुण सर्वाधिक विकसित रूप में पाया जाता है।

   पैतृक संरक्षण विभिन्न जातियों के विकास और सफल जीवन में महत्वपूर्ण जैविक कारक के रूप में कार्य करता है। जिन प्राणियों में पैतृक संरक्षण का अभाव होता है, उनमें जाति को बनाए रखने के लिए वे बड़ी संख्या में सन्तानोत्पत्ति करते हैं। उदाहरण के लिए प्रोटोजोआ वर्ग के अधिकांश प्राणियों के जीवन का मुख्य ध्येय मात्र प्रजनन करना ही प्रतीत होता है। ये छोटे प्राणी हर सम्भव विधि के द्वारा प्रजनन करके अधिक से अधिक संख्या में उत्पादन करते हैं, जिससे प्रकृति की प्रतिकूल पारिस्थितिकी में पैतृक संरक्षण के अभाव में अत्याधिक मृत्यू दर के बाद भी कुछ सन्तानें जीवित रहने में सफल हो जाती हैं। परन्तु मानव सहित अनेकों स्तनधारियों और पक्षियों में माता-पिता का संरक्षण जन्म से लेकर स्वावलंम्बी बनने तक प्राप्त होता है। मनुष्य में तो कभी-कभी माता-पिता के साथ-साथ दादी, बाबा, नानी, नाना तक का संरक्षण प्राप्त होता है। पैतृक संरक्षण के कारण ये जीवधारी अपनी सन्तान और जाति की सुरक्षा भली प्रकार करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप छोटे प्राणियों की तुलना में प्रजनन की दर बहुत कम होती है। पैतृक संरक्षण का प्रभाव प्रजनन के भौगोलिक वितरण पर भी पड़ता है।

(ख) असहयोगी अन्तःजातीय कारक (Non-cooperative Instraspecific Factors)

टिप्पणी

1. **भोजन-स्पर्धा (Food Competition)**– सभी प्राणियों के लिए भोजन परम आवश्यक है, परन्तु अलग-अलग जातियों का भोजन भी अलग-अलग होता है। चूँकि एक जाति के सदस्यों का भोजन समान होता है, इसलिए भोजन के लिए स्पर्धा होना स्वाभाविक है। यह स्पर्धा अनेक समूहों में जैविक क्रियाओं को प्रभावित कर रूपान्तर करती है, जैसे– भोजन का प्रकार, मुखांग, आशन विधियों का विकास आदि।

   भोजन-स्पर्धा शाकाहारी प्राणियों की अपेक्षा माँसाहारी प्राणियों में अधिक होती है, इसलिए माँसाहारी जन्तु प्रायः एकल या छोटे पारिवारिक समूहों में ही रहते है। इसकी अपेक्षा शाकाहारी जीव-जन्तु बडे-बड़े झुंण्डों में रहते हैं और विभिन्न क्षेत्रों में उनका भौगोलिक वितरण बड़े समूह के रूप में होता है। जैसे– भेडें, गायें, हिरण आदि पशु सदैव घने झुण्ड बनाकर एक साथ रहते हैं, जिसका लाभ उन्हें सामूहीकरण के कारण सुरक्षा के रूप में मिलता है।

   माँसाहारियों में अधिक भोजन स्पर्धा के कारण उनका भौगोलिक वितरण भी अधिक छितरा होता है। उदाहरणार्थ, बड़े-बड़े घने जंगलों में शेर, चीते आदि अधिकांशतः अकेले या अधिक से अधिक अपने परिवार में मादा और छोटे बच्चों के साथ पाए जाते हैं। परन्तु ये प्राणी अपने भोजन क्षेत्र में उसी जाति के अन्य सदस्यों को बर्दाश्त नही करते और सामना होने पर प्रतिस्पर्धा के कारण परस्पर संघर्ष करते हैं। अन्ततः दोनों में से एक या तो क्षेत्र को छोड़कर भाग जाता है या मारा जाता है। अतः इस स्पर्धा का इन प्राणियों की जनसंख्या और वितरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

2. **सीमित शत्रुता (Definite Hostility)**– सभी प्राणियों में अपनी जाति के अन्य सदस्यों के प्रति निश्चित रूप से कुछ शत्रुता का भाव स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। यही स्वाभाविक कारण अनेक अवसरों पर स्वजातीय सदस्यों में भोजन की प्राप्ति, निवास स्थान या जनन-साथी के लिए संघर्ष का रूप ले लेता है। यदि कोई श्रमिक मधुमक्खी भूल से किसी अन्य छत्ते में पहुँच जाए तो उस छत्ते की मधुमक्खियाँ तुरन्त आक्रमण करके उसे मार देती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति सभी सामाजिक कीटों में होती है। चिड़ियों और स्तनधारियों में यह संघटना अधिक स्पष्ट होती है। कुछ मांसाहारी प्राणी तो इस प्रवृत्ति के कारण अपनी सन्तान का भी स्वयं भक्षण कर जाते है।

   सीमित शत्रुता का प्राणियों की विभिन्न क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। जिन जीवधारियों में सीमित शत्रुता कम होती है, उनमें सामूहीकरण और निवहीकरण अधिक होता है तथा उनका वितरण और जनसंख्या घनत्व भी अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसके विपरीत शत्रुता तीव्र होने पर उग्रता और

संघर्ष के कारण सम्बन्धित जातियों के वितरण और जनसंख्या घनत्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

टिप्पणी

1.15.2 अन्तरजातीय सम्बन्ध (Interspecific Relations)

दो या दो से अधिक भिन्न जातियों (Species) अथवा जेनेरा (Genera) के बीच पाए जाने वालों सम्बन्धों को अन्तरजातीय सम्बन्ध (Interspecific relations) कहते हैं। जैविक वातावरण के प्राणी एवं पादप जातियाँ एक-दूसरे के प्रति कई प्रकार के आपसी सम्बन्ध दर्शाती है।

जातियों के बीच पाए जाने वाले परस्पर सम्बन्ध दोनों प्रकार की जातियों के लिए लाभदायक या दोनों के लिए हानिकारक हो सकते है अथवा ये सम्बन्ध ऐसे भी हो सकते हैं, जो एक जाति के लिए लाभदायक या हानिकारक हो तथा दूसरी जाति के लिए उदासीन (Neutral) हों।

समष्टियों की परस्पर क्रियाओं को सामान्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– अनुकूल (Positive), अप्रभावी (Neutral) और प्रतिकूल (Negative) परस्पर क्रियाएँ। अनुकूल परस्पर क्रियाओं में परस्पर क्रिया करती हुई कम-से-कम एक समष्टि को लाभ तो निश्चय ही पहुँचता जाता है। अप्रभावी परस्पर क्रिया वह होती है, जिसमें सदस्यों के आकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् लाभ या हानि नहीं होती है और प्रतिकूल परस्पर क्रिया में वे सभी उदहारण आ जाते हैं जिनमें एक या दोनों सदस्यें को हानि होती है।

अन्तःजातीय कारकों के समान अन्तरजातीय कारक भी दो उपसमूहों में बाँटे गए हैं–

1. सहयोगी अन्तरजातीय कारक, तथा
2. असहयोगी अन्तरजातीय कारक।

अन्तरजातीय सम्बन्धों को बहुत से लेखक तीन वर्गों में वर्गीकृत करते हैं–

1. **उदासीनता (Neutralism)**– जिसमें कोई भी जाति किसी को स्पष्ट लाभ नहीं पहुँचाती।
2. **सहजीविता (Symbiosis)**– जिसमें एक या दोनों जातियों को परस्पर लाभ हो तथा किसी को भी हानि न हो यह दो प्रकार की होती है–
   (i) सहोपकारिता (Mutualism) तथा
   (ii) सहभोजिता (Commensalism)
3. **विरोधता (Antagonism),** जिसमें कम से एक जाति को हानि हो। यह चार प्रकार की होती है–
   (i) प्रतिजीविता (Antibiosis), (ii) परजीविता (Parasitism), (iii) भक्षण (Predation) तथा (iv) प्रतियोगिता (Competition)।

1.15.2.1 सहयोगी अन्तरजातीय कारक (Cooperative Interspecific Factors)

टिप्पणी

1. **उदासीनता (Neutralism)**– इस प्रकार के सम्बन्धों में दोनों सदस्य परस्पर लाभ या हानि नहीं पहुँचाते है, जैसे– गिलहरी और रॉबिन चिडियाँ एक ही वृक्ष पर रहते है, किन्तु परस्पर स्पष्ट लाभ या हानि नही पहुँचाते है।

2. **सहजीविता (Symbiosis)**– सहजीविता सम्बन्ध– (i) भोजन, (ii) आश्रय, (iii) आधार या (iv) अभिगमन के लिए होते है। यह सम्बन्ध अखण्ड (Continuous) या क्षणिक (Transitory) तथा अविकल्पी (Obligatory) या विकल्पी (Facultative) हो सकता है।

   ऐसे सम्बन्धों मे कोई सदस्य (Partners) दूसरे सदस्य को हानि नहीं पहुँचाता है, एक या दोनों सदस्यों का लाभ हो सकता है।

   सहजीवी सम्बन्धों को (अ) सहोपकारिता (Mutualism) तथा (ब) सहभोजिता (Commensalism) में वर्गीकृत किया गया है– इनमें सहोपकारिता सहजीवन द्वारा दोनों जातियेां को लाभ होता है तथा सहभोजिता द्वारा केवल एक जाति का लाभ होता है, किन्तु किसी को भी हानि नहीं होती।

   अ. सहोपकारिता (Mutualism): इस सहयोग की प्रक्रिया में दोनों ही जातियाँ (Species) एक-दूसरे को लाभ पहुँचाती है। अतः दो भिन्न जातियों (Species) के जीवों में सहयोग की उस जैविक प्रक्रिया (Biological interaction) को जिसमें दोनों सदस्य एक-दूसरे को लाभान्वित करें, सहजीवन कहते हैं और इस संघटना को सहोपकारिता कहते हैं। निर्भरता के अनुपात के आधार पर सहोपकारिता निम्न दो प्रकार की हो सकती है–

   (a) अविकल्पी सहोपकारिता (Obligatory mutualism), तथा

   (b) विकल्पी सहोपकारिता (Facultative mutualism)।

   (a) अविकल्पी सहोपकारिता (Obligatory mutualism)– सहजीवन के दोनों पक्ष एक-दूसरे पर पूर्णतः निर्भर रहते हैं और अलग होने पर उनका जीवन असम्भव हो जाता है। यह सहजीवन पोधों और प्राणियों में भी हो सकता है। अविकल्पी सहोपकारिता के कुछ प्रमुख उदाहरणों में लेग्यूमिनोसी कुल और नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया, हरित हाइड्रा एवं शैवाल जूक्लोरेला (Green hudra and Algae, Zoochlorella), दीमक तथा फ्लैलीजेट (प्रोटोजोआ), सीलेन्ट्रेटा वर्ग का सी-ऐनीमोन एवं हरमिट क्रेब आदि है।

   (i) नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया, लेग्यूमिनोसी कुल के पौधों की जड़ों में गढ़ाने (Nodules) बनाकर रहते हैं। बैक्टीरिया हवा की स्वतंत्र नाइट्रोजन को पौधों के उपयोग के योग्य स्थिर कर

टिप्पणी

नाइट्रेट्स में बदल देते हैं। और बदले में जड़ों से भोज्य पदार्थ प्राप्त करते हैं।

(ii) इसी प्रकार हरित हाइड्रा और शैवाल एक दूसरे को लाभ पहुँचाते है। हरित हाइड्रा, जूक्लोरैली नामक शैवाल को पीढ़ी-दर-पिढ़ी हस्तान्तरित करता है और शैवाल बदले में प्रकाश संश्लेषण से भोजन बनाकर हाइड्रा का पोषण करता है। प्रकाश संश्लेषण के लिए शैवाल का CO_2 हाइड्रा के श्वसन से शैवाल को प्राप्त होती है और शैवाल के प्रकाश संश्लेषण से उत्पन्न O_2 हाइड्रा को श्वसन के लिए प्राप्त हो जाती है हाइड्रा के नाइट्रोजनयुक्त उत्सर्जी उत्पाद शैवाल को पोषक पदार्थों के रूप में प्राप्त होते हैं।

(iii) **लकड़ी खाने वाली दीमक (Termite)**– यह चबा-चबाकर लकड़ी के टुकड़े निगल जाती है। इनको पचाने का असली काम फ्लैजीलेट प्रोटोजोआ जो दीमक की आँतों में हरते हैं, करते हैं। यह फ्लैजीलेट एक एन्जाइम उत्पन्न करते हैं, जो लकडी के कार्बोहाइड्रेट्स (Polysacchrides) को पचा देता है। इस तरह उत्पन्न भोज्य पदार्थ को दोनों आपस में बाँटकर उपयोग करते हैं। दीमक और फ्लैजीलेट दोनों का जीवन एक-दूसरे के बिना सम्भव नहीं है।

(iv) **हरमिट क्रेब (Hermit Crab)**– फायलम-अर्थोपोडा की है जो की यह यूपगुरस (Eupagurus) जीनस का सदस्य है। यह मौलस्का वर्ग के गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda) प्राणियों के कवच (Shell) के अन्दर रहता है। इसी कवच के ऊपर सी-ऐनीमोन नामक सीलेन्ट्रेंट चिपक जाता है। हरमिट क्रेब सी-ऐनीमोन को घुमाता फिरता है और प्रचलन की सुविधा देता है जिससे वह अधिक भोजन प्राप्त करने में सफल होता है। इसके बदले में सी-एनीमोन अपनी नीमेटोसिस्ट से हरमिट क्रेब को सुरक्षा प्रदान करता है और कुछ भोजन के टुकड़े भी जो क्रेब के भोजन करते समय जल में गिर जाते हैं सी-ऐनीमोन को प्राप्त हो जाते हैं।

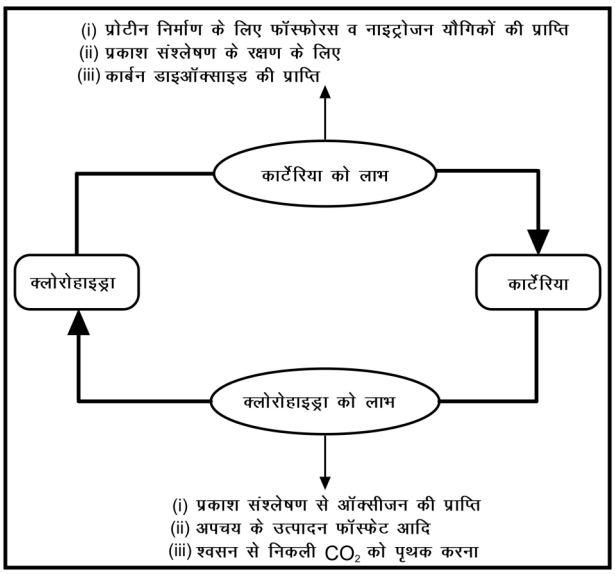

चित्र क्र. 1.18: क्लोरोहाइड्रा तथा हरे शैवाल कार्टेरिया के मध्य सहजीविक सम्बन्ध (Symbiotic relation between Chlorohydra and green algae Carteria)

(v) कई प्रकार के सहजीवी सम्बन्धों में से एक महत्वपूर्ण प्रकार का सम्बन्ध जन्तु एवं पादपों के मध्य पाया जाता है। उदाहरण के लिए स्वच्छजलीय सीलेन्ट्रेट क्लोरोहाइड्रा विरिडिसीमा (Chlorohydra viridissima) एण्डोडर्मल कोशिकाओं में कई छोटे एककोशिकीय शैवाल कार्टेरिया (Carteria) पाए जाते हैं। इससे हाइड्रा को यह लाभ होता है कि वह शैवाल के द्वारा प्रकाश संश्लेषण से बनाई गई ऑक्सीजन प्राप्त करता है।

(b) विकल्पी सहोपकारिता (Facultative Mutualism)– विकल्पी सहोपकारिता में सहयोगी पक्ष एक-दूसरे को लाभकारी सहयोग तो देते हैं, परन्तु दोनों के अलग हो जाने पर उनके जीवन में कोई घातक प्रभाव उत्पन्न नहीं होता है। एक तरह से विकल्पी सहजीवन सम्बन्धित पक्षों के लिए लाभकारी होने पर भी एक-दूसरे के लिए परम आवश्यक नहीं है। प्रकृति में इसके हजारों उदाहरण है परन्तु कुछ प्रमुख विकल्पी सहयोगियों में गाय, भैंस आदि पशुओं के पीठ पर बैठी और कीड़े खाने वाली चिड़ियाँ, मगरमच्छ के समीप रहने वाली मछली खाने वाली चिड़ियाँ आदि हैं। इनका वर्णन निम्नानुसार है–

(i) गाय-भैंसों की त्वचा पर साधारणतः परजीवी कीडे चिपके रहते हैं। काग या कौआ आदि कुछ चिड़ियाँ इनके शरीर से परजीवी कीड़ों को छुड़ाकर खा जाते है। चिड़ियों को भोजन लाभ होता है और बदले में पशु परजीवी कीड़ों द्वारा रूधिर के शोषण और त्वचीय उत्तेजना से मुक्ति पाते है।

(ii) मगरमच्छ मछलियों का भोजन करता है और बाद में नदी किनारे रेत में विश्राम करते समय अपना मुँह फाड कर लेटा रहता है। नदी किनारे मछली खाने वाली चिड़ियाँ मगरमच्छ के मुँह में बैठकर उसके दाँतों में फँसे मछलियों के माँस के टुकड़े निकालकर खाती रहती है। मगरमच्छ को चिडियों के इस सहयोग से इतना आनन्द मिलता है कि वह बड़े आराम से तब तक मुँह खोले रहता है, जब तक चिडियाँ मछलियों के टुकड़े साफ करके सुरक्षित उड़ नहीं जातीं।

ब. **सहभोजिता (Commensalism):** जब दो भिन्न जातियों (Species) के जीव एक साथ जीवनयापन करें और इनमें से एक पक्ष को तो दूसरे पक्ष से लाभ हो, परन्तु दुसरे पक्ष को न तो कोई लाभ हो और न कोई हानि हो, तो ऐसे सहजीवन को सहभोजिता कहते है। प्ररम्भ में सहभोजिता का विचार भोजन सम्बन्धों तक ही सीमित था, परन्तु अब भोजन के अलावा सुरक्षा, समर्थन, आश्रय आदि लाभ भी इसमें सम्मिलित कर दिए गए हैं। समुद्री प्राणियों में सहभोजिता बहुत अधिक पाई जाती है। यह निम्नलिखित प्रकार की होती है–

(i) **शार्क और चूषक मछली (Remora)**– में सहभोजिता का अच्छा उदाहरण देखने को मिलता है। छोटी चूषक मछली अपने चूषक की सहायता से भारी-भरकम और खतरनाक शार्क मछली के नीचे चिपक जाती है। शार्क की छत्रछाया में चूषक मछलियाँ विशाल समुद्र में सुरक्षित विचरण करके समुचित मात्रा में भोजन प्राप्त करने में सफल होती है। इस प्रकार शार्क के सहयोग से चूषक मछली सुरक्षा और भोजन प्राप्त करती है, परन्तु शार्क को इससे न तो कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि।

(ii) गर्म प्रदेशों में एक अति सूक्ष्म मछली फायर एस्फर का अकेले रूप में समुद्र में जीवन असम्भव हैं। इसे कोई भी बड़ी मछली या अन्य प्राणी असानी से खा सकता है। परन्तु समुद्री खीरे (Sea Cucumber) नामक एकाइनोडर्मेट के सहयोग से ये सुरक्षित रहती हैं। समुद्री खीरे अत्यन्त कँटीले और दुर्गन्धयुक्त प्राणी होते हैं। अतः इनके पास कोई समुद्री जानवर न तो आता है और न ही इन्हें खाता है। फायर एस्फर मछली बिना नुकसान पहुँचाए समुद्री खीरों की गुदादार पूँछ में घुसी रहती है और जब कोई खतरा नहीं होता हैं, तब बाहर निकलकर भोजन कर लेती है। इस प्रकार समुद्री खीरों का सहयोग फायर एस्फर – जैसे छोटे और निरीह जीव का जीवन विपरीत वातावरण में भी सम्भव बना देता है।

टिप्पणी

1.15.3 असहयोगी अन्तरजातीय कारक (Non-Cooperative Interspecific Factors)

एक ही भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाली अनेकों जातियाँ समान भोजन पर निर्भर करती हैं, अतः भोजन स्पर्धा का होना स्वाभाविक हो जाता है। जब समान भोजन पर निर्भर करने वाली जातियों के सदस्यों की जनसंख्या किसी क्षेत्र में अत्याधिक हो जाती है, तब स्पर्धा भी तीव्र हो जाती है। फलस्वरूप प्राणियों में संघर्ष होने लगता है, जिसमें कुछ कमजोर जातियों का भोजन शक्तिशाली जातियों के सदस्य छीनकर ले जाते हैं, जिससे वे या तो लड़ाई में मारे जाते हैं या भूख से स्वयं मर जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में कमजोर प्राणी अन्य सुरक्षित क्षेत्रों की ओर पलायन करने लगते हैं या संघर्ष करने के लिए शारीरिक क्षमताएँ विकसित करने का प्रयास करते हैं। अतः इस स्पर्धा के परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं–

(क) जीवसंख्या नियन्त्रण

(ख) जातियों (Species) का विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की दिशा में आप्रवास या वितरण ।

(ग) अन्ततः नई उपजातियों का जैव-विकास।

भोजन स्पर्धा में मृत्यु, निवास-स्थानों, घोंसलों आदि का विनाश और भोजन की उपलब्धता की कमी का सीधा प्रभाव जनसंख्या या समष्टि का सीमित हो जाना आदि होता हैं।

1.15.3.1 विरोध (Antagonism)

भिन्न जातियों के प्राणियों के ऐसे सम्बन्ध, जिनमें एक या दोनों पक्षों को हानि होती है, विरोध कहलाते हैं। ये सम्बन्ध चार प्रकार के होते हैं–

(क) प्रतिजीविता (Antibiosis), (ख) परभक्षण (Predation), (ग) परजीविता (Parasitism), तथा (घ) प्रतियोगिता (Competition)।

(क) प्रतिजीविता (Antibiosis)– प्रतिजीविता एक ऐसा अन्तराजातीय सम्बन्ध है, जिसमें एक सदस्य (पक्ष) एक रासायनिक पदार्थ स्त्रावित करता है, जिससे दूसरे सदस्य (पक्ष) की मृत्यु हो जाती है। रासायनिक पदार्थ को प्रतिजीवी पदार्थ (Antibiotic) और इस संधटना को प्रतिजीविता (Antilaiosis) कहते हैं। प्राणियों द्वारा उत्पन्न किए गए कई पदार्थ प्रायः दूसरे प्राणियों के लिए हानिकारक होते हैं। ऐसे प्रतिजीवी पदार्थ कई प्रकार के कवक एवं बैक्टीरिया उत्पन्न करते हैं। कवक द्वारा उत्पन्न पेनिसिलीन (Penicillin), स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin), ऑरोमाइसिन (Auromycin) आदि प्रतिजीवी पदार्थ है जो विभिन्न रोगजनक (Pathogenic) बैक्टीरियों को नष्ट करते हैं और इस प्रकार मानव जाति की कई रोगों की चिकित्सा में प्रयोग में जाए जाते है। माइक्रोसिस्टिस (Microcystis) नामक नीला-हरा शैवाल तालाबों में एक विषैला पदार्थ हाइड्रॉक्सिलैमीन (Hydroxylamine) बनाता

टिप्पणी

है, जिसके कारण उसमें पानी पीने वाली मछलियों एवं पशुओं की मृत्यू हो जाती है।

(ख) परभक्षण (Prediation)– कुछ प्राणी भोजन के लिए अन्य प्राणियों को मारकर खा जाते हैं। इस प्रक्रिया को परभक्षण तथा इस संघटना को परभक्षिता (Predatory) कहते हैं। परभक्षण और भोजन स्पर्धा में स्पष्ट अन्तर यह है कि भोजन स्पर्धा में कमजोर प्राणी को शक्तिशाली प्राणी मारकर उसका भोजन छीन लेता है, परन्तु उसे खाता नहीं है। परभक्षण एक सीधी और प्रभावी असहयोगी प्रक्रिया है। सभी माँसाहारी प्राणी परभक्षण करते हैं। साधारणतः एक जन्तु जो भक्षण करता है, परभक्षी (Predator) कहलाता है और जिसका भक्षण किया जाता है उसे शिकार (Prey) कहते है। एक परभक्षी एक ही जाति का परभक्षण करता है। नित्यप्रति हम देखते हैं कि बिल्लीयाँ चूहों का परभक्षण करती है। परन्तु बाघ, चीतें तथा इनके परिवार के अन्य सदस्य अनेकों शाकाहारी प्राणियों का परभक्षण करते है। बाघ के लिए गाय, भैंस, बकरी, खरगोश आदि सभी प्राणी शिकार हैं।

परभक्षी दो प्रकार के होते हैं–

(i) माँसाहारी – जो दूसरे जन्तुओं का परभक्षण करते हैं।

(ii) शाकाहारी – जो पौधों का भक्षण करते हैं।

कुछ प्राणी आवश्यकतानुसार परभक्षण (Predation) के अभाव में शाकाहारी भोजन से भी काम चला लेते हैं, परन्तु कुछ प्राणी ऐसा नहीं कर पाते। पक्षियों की कुछ जातियाँ कीडों का परभक्षण करती हैं।

परभक्षी के लक्षण (Characteristics of Predator)

1. परभक्षी में शिकार करने की क्षमता विकसित रहती है।
2. शिकार को ढूँढने की क्षमताओं का विकास रहता है।
3. परभक्षी प्रायः शिकार से परिमाण (Size) में बड़ा होता है।
4. किसी क्षेत्र में परिभक्षिओं की संख्या शिकार की अपेक्षा बहुत कम होती है।
5. परभक्षी आक्रामक अनुकूलन धारण किए रहते है।

परभक्षक (Predator) और परभक्षित (Prey) के आपसी सम्बन्धों और किसी क्षेत्र में परभक्षण की तीव्रता का प्रभाव दोनों की शरीर-रचना, व्यवहार, कार्यिकी, जनसंख्या घनत्व तथा वितरण पर पड़ता है। परभक्षित सदैव शारीरिक रचना को परिवर्तित करके अपने बचाव के तरीके उत्पन्न करने की चेष्टा या अन्य सुरक्षित क्षेत्रों में वितरित होने का प्रयास करते रहते हैं। कुछ प्राणियों ने वातावरण में छिपकर जान बचाने के लिए तरह-तरह के शारीरिक अनुकूलनों का विकास किया है, कुछ के शरीर पर आत्मरक्षा के लिए काँटे या कंटक विकसित हुए होते हैं। परभक्षकों से बचाव के लिए अनुकूलनों में दुर्गन्ध और विष-ग्रन्थियों का विकास भी

प्रमुख है। पक्षियों का पर्यटन स्वभाव और अपेक्षाकृत विशाल वितरण भी परभक्षण के परिणाम है।

टिप्पणी

इस प्रकार परभक्षी और शिकार समष्टियों में सहजैव-विकास (Co-evolution) की संघटना पाई जाती हैं।

(ग) परजीविता (Parasitism)

परजीवी (Parasite) एक ऐसा प्राणी होता है, जो अपने से बड़े और शक्तिशाली प्राणी से घनिष्ठ कार्यिकी सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। परजीवी इस प्राणी के ऊतकों से पोषण प्राप्त करता है। परजीवी (Parasite) अपने परपोषी (Host) की बाहरी तल या फिर शरीर के भीतर ऊतकों में निवास करता है।

यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें एक सदस्य को पूरा-पूरा लाभ होता है, इस सदस्य को परजीवी (Parasite) कहते हैं। दूसरे सदस्य को केवल हानि होती है, इसे परपोषी कहते हैं।

एक प्राणी को परजीवी तब कहा जाता है जब वह किसी जीव पर पूर्ण या अपूर्ण रूप से उसके ऊपर निर्भर रहता है, उससे अपना आहार प्राप्त करता है तथा उन्हें हानि पहुँचाता है। लाभ प्राप्त करने वाले जीव को परजीवी (Parasites) तथा हानि उठाने वाले जीव को परपोषक (Host) कहते हैं।

परजीवी के प्रकार (I) स्थायी परजीवी – ये निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(a) बाह्य परजीवी (Ectoparasite)– यह परजीवी परपोषी (Host) के शरीर पर बाहर रहता है। जैसे– खटमल, फ्लोरा आदि।

(b) आन्तरिक परजीवी (Endoparasite)– पोषक के शरीर के भीतर आश्रय पाने वाले व पोषित होने वाले को आन्तरिक परजीवी (Endoparasite) कहते हैं, जैसे कि भेड़ के यकृत में पाया जाने वाला लिवरफ्लूक (Liverfluke) आहार नाल में निवास करने वाला फीता-कृमि (Tape-worm) आदि। इन दो श्रेणियें के बीच में सभी प्रकार के परजीवी होते है तथा दूसरी अवस्था में आन्तरिक परजीवी होते हैं, दूसरे परजीवी एक समय में परजीवी तथा दूसरे समय में स्वतंत्र-जीवी हो सकते हैं। इसलिए बाह्य एवं आन्तरिक परजीवियों (External and internal parasites) में किसी भी एक प्रकार का विभाजन पूर्ण नहीं है। इस प्रकार से दो भिन्न प्रकार के जीवन बिताने वाले परजीवियों को विशेषाधिकारी परजीवी कहा जाता है।

(c) अन्तःकोशिकीय परजीवी (Intracellular Parasite)– यह परजीवी अपने परपोषी के ऊतकों की कोशिकाओं के भीतर निवास करता है। जैसे– प्लाज्मोडियम (Plasmodium) जो मनुष्य की लाल रूधिर कणिका (RBC) और यकृत कोशिकाओं में निवास करता है।

(d) अन्तरकोशिकीय परजीवी (Intercellular Parasite)– यह परजीवी परपोषी के ऊतकों में कोशिकाओं के बाहर निवास करता है। जैसे– ट्रिपैनोसोमा (Trypanosoma), जो रूधिर प्लाज्मा में निवास करता है।

(e) वैकल्पी परजीवी (Facultative Parasite)– कुछ परजीवी आवश्यक पड़ने पर ही परजीवी का जीवन व्यतीत करते हैं, अन्यथा वे स्वतंत्र जीवन ही व्यतीत करते हें। जैसे– पिनोथीरिज (Pinnotheres) केकड़ा जो सीप (Oyster) के गिल्स में निवास करता है अन्यथा अपने जीवन के कुछ भाग में स्वतंत्रजीवी होता है।

(f) अनिवार्य परजीवी (Obligatory Parasites)– कुछ जीव आवश्यकता रूप से परजीवी जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हैं वे स्वतंत्रजीवी नहीं रह पाते, क्योंकि परजीविता के बिना उनकी मृत्यू हो जाती है। उनकी कार्यिकी परजीविता के लिए अनुकूली और रूपान्तरित होती है। जैसे– एस्केरिस (Ascaris)।

(g) अति परजीवी (Hyperparasite)– कुछ परजीवी दूसरे परजीवियों के शरीर में निवास करते हैं। इन्हें अति परजीवी कहते हैं। जैसे–

(i) कुछ वाइरस, परजीवी बैक्टीरिया पर परजीवी जीवन बिताते हैं।

(ii) ऐस्कैरिस जो मनुष्य की आँत में परजीवी होता है, इस के शरीर पर परजीवी बैक्टीरिया पाए जाते हैं, इन्हें अति परजीवी कहते हैं।

परजीवन का प्रभाव **(Effect of Parasitism)**– परजीवी और पोषक दोनों की शारीरिक रचना, कार्यिकी और वितरण के अतिरिक्त अनेकों अन्य जैविक क्रियाओं का प्रभाव पड़ता है।

प्रकृति में परजीविता से अधिक विशाल क्षेत्र सम्भवतः किसी अन्य जैविक कारक का नहीं है। परजीविता से कोई भी मुक्त नहीं है। प्रत्येक जीवधारी पर किसी न किसी रूप में कोई न कोई परजीवी अवश्य आश्रित रहते हैं।

परजीविता में एक जीवधारी किसी दूसरे जीवधारी पर भोजन के लिए स्थायी या अस्थायी रूप में आश्रित रहता है। परजीवी अपने पोषक पर भोजन लाभ के लिए आश्रित होता है। लेकिन कभी-कभी परजीवी अपने पोषक के लिए प्राणघातक हो जाते हैं। सबसे अधिक सफल परजीवी वे हैं, जो अपने पोषक को बिना कोई स्पष्ट हानि पहुँचाए या कम से कम हानि पहुँचाकर परजीवी जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार के परजीवियों का सबसे अच्छा उदाहरण पिनोथीरिज (Pinnotheres) नामक केकड़ा है जो ऑयस्टर नामक पोषक (Host) के गलफड़ों (Gills) से निकलने वाले श्लेष्मा (Mucus) पर जीवन व्यतीत करता है। ऑयस्टर को इससे कोई भी हानि नहीं होती है। इसके विपरीत प्रकृति में कुछ इतने जटिल अविकल्पी परजीवी भी हैं, जिनकी तीव्र परजीविता से उनके पोषक की मृत्यू हो जाती है और पोषकों के अभाव में ये परजीवी स्वयं भी समाप्त हो जाते हैं।

1.15.3.2 पोषक के प्रकार (Types of Hosts)

अधिकतर परजीवी किसी जाति विशेष के प्राणियों पर निर्भर करते हैं, परन्तु कुछ परजीवियों का जीवन-चक्र जटिल होता है, जिनकी विभिन्न अवस्थाएँ अलग-अलग जाति के प्राणियों में व्यतीत होती हैं।

जैसे– फैसियोला हिपैटिका या यकृत कृमि का मुख्य पोषक (Primary Host) तो भेड़ हैं, परन्तु इसकी लार्वल अवस्थाओं के विकास के लिए प्लेनोरबिस नामक घोंघे (Snail) की आवश्यकता होती है। इसे माध्यमिक पोषक (Intermediate host) कहते है।

इसी प्रकार मलेरियल पैरासाइट की कुछ अवस्थाएँ मच्छर में विकसित होकर मानव रक्त में प्रवेश करती है। इन दोनों परजीवियों में मुख्य पोषक (Primary host) के अतिरिक्त माध्यमिक पोषक (Intermediate host) का समान पारिस्थितिकी परास (Ecological range) में होना अति आवश्यक है।

पोषक दो प्रकार के हो सकते हैं–

(i) मुख्य पोषक (Primary Host)– जिसमें परजीवी लैंगिक जनन करता है, जैसे – प्लाज्मोडियम के लिए ऐनोफिलीज मादा मच्छर।

(ii) माध्यमिक पोषक (Intermediate host)– जिसमें परजीवी अलौंगिक जनन करता है और वितरण तथा संक्रमण के लिए उपयोग करता है।

(a) परजीवी अनुकूलन–

(1) संक्रमण विधि– परजीवी का एक पोषक से दूसरे पोषक में स्थानान्तरण इन विधियों के द्वारा होता है– (a) कुछ परजीवी स्वयं चलकर अपना पोषक प्राप्त करते हैं। (b) कुछ परजीवी माध्यमिक पोषकों के माध्यम से रूधिर में पहुँच जाते हैं। (c) पुटीभवन भोज्य पदार्थो में या पीने के पानी में अधिकांश परजीवियों के अण्डे स्पोर या पुटीभवन अवस्था (Encysted stage) में मिश्रित होकर मुख्य पोषक के अन्दर प्रविष्ट हो जाते है। (d) वास्तविक सम्पर्क या स्पर्श द्वारा – कवक, बैक्टीरिया और वाइरस आदि तो व्यक्तिगत सम्पर्क से ही पोषक से दूसरे पोषक में प्रविष्ट हो सकते हैं।

(2) सभी आन्तरिक परजीवियों में प्रजनन शक्ति प्रबल होती हैं, जैसे–

(i) मनुष्य में मादा गोल कृमि या राउण्ड वर्म (Ascaris lumbricoides) असंख्य अण्डे देती है, अनुकूलन है।

(ii) **फीता-कृमि (Tape-worm)** जैसे ही वयस्क होता है, उसकी गर्दन में नये खण्ड बनते हैं, साथ ही पिछले पुराने हिस्से से, जिनमें निषेचित अण्डे है, पोषक की आहार नाल में छोड़ दिए जाते हैं। परिपक्व खण्डों की संख्या हजारों में होती है, प्रत्येक खण्ड में 2000–3000 अण्डे रहते हैं।

(iii) आन्तरिक परजीवियों में स्वःनिषेचन व द्विलैंगिकता सामान्य रूप में पाई जाती हैं, जिससे जातियों की निरन्तरता बनाए रखने में सफल होते हैं।

(iv) **अनिशेक जनन (Parthenogenesis)**– कुछ परजीवी तीव्र दर से जनन करने के लिए अनिषेक जनन करते हैं, जैसे लिवरफ्लूक का मिरासीडियम लार्वा अनिषेक जनन द्वारा रेडिया में विकसित होता है और संख्या में वृद्धि करता है।

(v) **बहुभ्रूणता (Polyembryony)**– टीनिया में एक भ्रूण से अनेक भ्रूण बनते हैं।

(vi) सफल परजीवन के लिए एक प्राणी अपने जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन तथा संरचनाओं में परिवर्तन अपने पोषक के अनुसार कर लेते हैं।

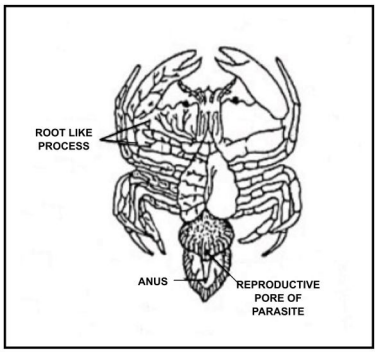

चित्र क्र. 1.19: एक तटीय केकडे पर परजीवी सैक्यूलाइना (Sacculina a parasite on a Sea-shore crab)

(vii) **आसंजक रचनाएँ (Adhesive Organs)**– परजीवी अपने में ऐसे संरचनात्मक परिवर्तन ला सकें, जिससे पोषक कर सके, अपने को पोषक से चिपका सकें या प्रजनन कर सके (अगर आन्तरिक परजीवी है)। इस प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तन विशिष्ट प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए फीता-कृमि या टेप-वर्म के स्कोलेक्स पर कंटिकाओं के चक्र और चूषक होते हैं,

जिससे यह पोषक की आहार नाल में चिपक सकता है। लिवरफ्लूक में चूषक (Suckers) होते हैं।

चित्र 1.19 में परजीवी (सैक्यूलाइना) का फैला हुआ उदर नीचे की ओर दृष्टिगत है तथा दाहिनी ओर की परजीवी की जड़ जैसी शाखाएँ पोषक (केकड़ा) के ऊतकों में फैली हुई दिखाई गई हैं।

बाहय परजीवी आन्तरिक परजीवी की अपेक्षा पोषक के लिए कम विशिष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए पादप राउण्ड वर्म हेटरोडीरा (Heterodera) अनेक जंगली व घरेलू जातियों के पौधों पर जीवित रह सकता हैं।

(vii) **रचनाओं का ऱ्हास (Degeneration of Structures)**– परजीवियों में संरचनाओ का संक्षिप्तीकरण या सरलीकरण अथवा ह्यास हो जाता है, जैसे– सैक्यूलाइना (Secculina) (चित्र 1.19)। परजीवन के प्रभाव के कारण अन्तःपरजीवियों में अधिकतर अंगों और तंत्रों का ह्यास (Degeneration) हो जाता है। परजीवन में पाचन, चेतना और चलने-फिरने की आवश्यकता के न होने के कारण सम्बन्धित तंत्र या तो अति सूक्ष्म हो जाते हैं या उनका

विलोपन हो जाता है, जैसे– (i) तन्त्रिका तंत्र, (ii) संवेदी अंग, (iii) प्रचलन अंग, (iv) आक्रामक रचनाएँ।

आर्थ्रोपोडा समुदाय के सैक्यूलाइना (Sacculina) नामक जन्तु में परजीविता के कारण उपांग (Appendages)– मुख एवं पाचन संस्थान का पूर्ण ऱ्हास हो जाता है और सम्पूर्ण प्राणी अपने पोषक केकड़े पर एक गोल रचना की तरह चिपका दिखाई देता है। सभी अंगों का ह्रास, परजीवन का सर्वव्यापी प्रभाव (Universal effect) हैं।

(ix) **प्रतिरोधी एन्जाइम (Anti-Enzymes)** तथा प्रतिरोधी क्यूटिकल का विकास – आहार नाल के परजीवी पोषक के एन्जाइमों से बचने के लिए प्रतिरोधक एन्जाइम स्त्रावित करते हैं तथा त्वचा के बाहय स्तर पर कठोर क्यूटिकल (Cuticle) का आवरण रखते हैं।

(x) **जटिल जीवन-चक्र** वाले परजीवी द्वितीयक पोषक (Secondary host) या माध्यमिक पोषक का सहारा लेकर जीवन-चक्र पूर्ण करते हैं।

1.15.3.3 परजीवन का पोषक पर प्रभाव (Effect of Parasitism on Host)

परजीवियों की उपस्थिति के पोषक पर अनेकों प्रभाव पड़ते हैं, जैसे– (1) फीता-कृमि आदि परजीवी बहुधा पोषक की आँतों में घाव और फोड़े उत्पन्न कर देते हैं। (2) कुछ प्रोटोजोआ वर्ग के परजीवी ग्रन्थियों और कार्यिकी सम्बन्धी विकार पैदा करके अनेकों रोग उत्पन्न करते हैं, जैसे– (a) प्लास्मोडियम से मलेरिया नामक रोग, (b) फाइलेरिया कृमि से फील पॉव या फाइलेरिएसिस, (c) एन्टअमीबा से पेचिश आदि। (3) परजीवी भोजन को विषाक्त भी कर देते हैं। अतः इन सब घातक स्थितियों से बचने के लिए पोषक भी निरन्तर परजीवियों से बचाव के साधन जुटाने के लिए अनेकों शारीरिक और कार्यिकी सम्बन्धी परिवर्तन करते रहते हैं। (4) परजीवियों का अन्य अंगों में फैलाव रोकने के लिए पोषक परजीवी के चारों और ऊतकीय सिस्ट, टयूमर (फोड़ा) आदि विशेष रचनाएँ बनाने के साथ-साथ कुछ परजीवी विरोधी द्रव्यों का रिसाव (Secretion of toxins) भी कहते हैं। (5) कुछ पोषक अनेकों कार्यिकी परिवर्तनों और ग्रन्थि रिसाव आदि से अपने में प्रतिरोध उत्पन्न कर लेते हैं। (6) एन्टीकैडीज और इन्टरफेरॉन का उत्पादन उपर्युक्त तथ्यों के बावजूद भी परजीवी और पोषक का अनोखा सम्बन्ध है। पोषक सदैव परजीवियों से बचने का प्रयास करते हैं, परन्तु परजीवी उसका पीछा नहीं छोड़ते । परजीवी सदैव अपने पोषक के साथ निवास करने का प्रयास करते हैं और अनेक परिवर्तनों के माध्यम से पोषक में प्रविष्ट होने में सफल रहते हैं।

(घ) प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा (Competition)

प्रतिस्पर्धा एक प्रतिकूल परस्पर क्रिया होती है। यह परस्पर अनुक्रिया (Interaction) करती है। इस परस्पर क्रिया में आहार, रहने के स्थान, जनन के स्थान, आदि के सन्दर्भ में प्रतिस्पर्धा होती है। इन चीजों की दोनों ही समष्टियों को आवश्यकता होती है तथा इस प्रतिस्पर्धा में सामान्यतः संघर्ष क्षेत्र से एक समष्टि नष्ट हो जाती है। अर्थात कम सफल प्रतिद्वन्द्वी का लोप हो जाता है। वह किसी ऐसे जीवन-क्षेत्र का उपयोग करने पर बाध्य हो जाता है, जहा प्रबल समष्टियों की प्रतिस्पर्धा न हो या फिर ऐसा सन्तुलन स्थापित हो जाता है, जिसमें दोनों समष्टियों का अस्तित्व समान बना रहता है, यद्यपि दोनों की मात्रा कुछ न कुछ ह्रासित हो जाती है। अनेक समष्टियाँ ऐसे जीवन-क्षेत्रों में रहती हैं, जिनमें अतिव्यापन (Overlapping) पाया जाता है। यह अतिव्याप्ति बहुत अधिक होने पर सन्तुलन की अवस्था में भंग हो जाती और प्रतिस्पर्धा का रूप ले लेती है। यह पारिस्थितिकी की एक रोचक घटना हैं।

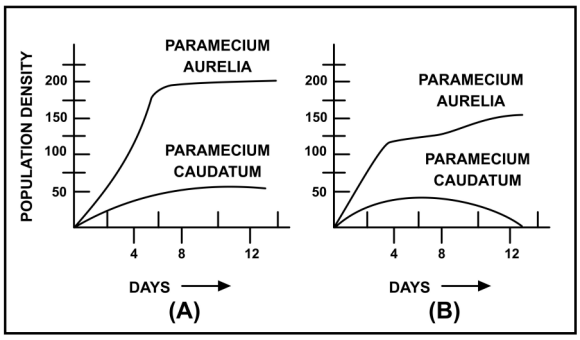

चित्र क्र. 1.20: पैरामीशियम ऑरोलिया तथा पैरामीशियम कॉडेटम के प्रयोगशाला संवर्धनों का वृध्दि-वक्रः (A) इन प्रोटोजोआ-प्राणियों को पृथक् संवर्धनों में पोषित करने पर समष्टि घनत्व, (B) दोनों स्पीशीजों को एक ही संवर्धन में पोषित करने पर समष्टि घनत्व की तुलना चक्र द्वारा

(Growth curves of laboratory culture of *paramecium aurelia* and *paramecium caudatum:* (A) population density of host in culture medium of protozoa animals, (B) By comparison curve of host in culture medium of both species)

गौस का सिद्धान्त (Gauss Principle)– इस प्रश्न पर रूसी पारिस्थिकीविद् गौस (Gauss) ने प्रकाश डाला है। उनका मत है कि किसी एक जीवन-क्षेत्र में केवल एक ही स्पीशीज रह सकती हैं। जीवन-क्षेत्र में जीवों के रहन-सहन के तरीकों को व्यवसाय कह सकते है। इसमें वे सब बातें शामिल होती हैं– जैसे कि वे जीव किस प्रकार आहार प्राप्त करते हैं, वे उसका कितनी कुशलता से उपयोग करते हैं, उनमें जनन किस प्रकार होता है, वे अपनी सुरक्षा कैसे करते हैं, आदि। तथाकथित गौस-सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीवन-पद्धति को पूरी तरह से अपनाने वाली एक ही स्पीशीज होती है। जीवन-क्षेत्रों में केवल एक ही प्राणी-रूप पाया जाता है। जो उस जीवन-क्षेत्र के लिए विशेष रूप से अनुकूलित रहता है।

(i) गौस के सिद्धान्त के अनुसार प्रतियोगिता में प्रत्यक्ष आक्रमण (Direct attack) तथा अप्रत्यक्ष शत्रुता (Indirect Hostility) व प्रतिस्पर्धा दोनों ही सम्मिलित होते हैं। एक प्राणी अपनी खुद की जाति के सदस्यों से तथा अन्य जातियों के सदस्यों के साथ स्थान, प्रकाश, भोजन या अन्य आवश्यकताओं के लिए प्रतिस्पर्धा करता है। परन्तु विभिन्न जातियों की

आवश्यकताओं में अन्तर होता है, इसलिए जातियों के बीच होने वाली इस प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा की प्रकृति (Nature) भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

टिप्पणी

(ii) एक प्राणी दूसरे प्राणी से जितनी अधिक समानता रखता है, उतनी अधिक समान उनकी आवश्यकताएँ होंगी। इसलिए वातावरण से अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए उनके बीच प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा भी उतनी ही अधिक तीव्र होगी। इस तथ्य से यही ज्ञात होता है कि एक जाति के सदस्यों के बीच तीव्र प्रतियोगिता या स्पर्धा होती है, बल्कि यह भी ज्ञात होता है कि जातियों के बीच पाई जानेवाली प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा की तीव्रता उनके बीच पारिस्थितिकीय समानता (Ecological similarities) से सम्बन्धित होती हैं।

गौस सिद्धान्त का प्रायोगिक परीक्षण और प्रमाण– चूँकि इस सिद्धान्त का प्रतिस्पर्धा की हमारी संकल्पना के साथ सीधा सम्बन्ध है, इसलिए सर्वप्रथम हम ऐसी प्रयोगिक आधार-सामग्री तथा उन क्षेत्र प्रेक्षणा (field observations) का निरीक्षण करें जिनसे इन संकल्पना (Hypothesis) का परीक्षण होता हैं।

(i) स्वयं गौस ने अपने सिद्धान्त का एक प्रतिष्ठित प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्होंने रोमाभी प्रोटाजोआ (Ciliated protozoans) की एक ही जीनस (Genus) की दो स्पीशीज पैरामीशियम ऑरीलिया (Paramecium aurelia) और पैरामीशियम कॉस्टेडम (Paramecium caudatum) लीं। उन्होंने इन दोनों जीवों को समान संवर्धन माध्यम में रखकर संवर्धन किया। इन पात्रों में एक ही प्रकार का द्रव-माध्यम और एक ही प्रकार का जीव (एक प्रकार का जीवाणु) रखा गया था, तथा इन्हें ताप और प्रकाश की भी समान परिस्थितियाँ प्रदान कीं। इस प्रकार इन प्रयोगों में उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि दोनों समष्टियों के जीवन-क्षेत्र बिल्कुल एक समान हों। चित्र 1.20 में पै. ऑरीलिया तथा पै. कॉडेटम के पृथक्-पृथक् संवर्धनों (Culture medium) के परिणाम और दोनों को एक साथ एक ही संवर्धन माध्यम में रखने के परिणाम दिखाए गए हैं। जब उन्हें एक-दूसरे के साथ रखा गया था तो पै. कॉडेटम समाप्त हो गया। पृथक् रखने पर पै. ऑरीलिया दूसरी स्पीशीज पै. कॉडेटम की अपेक्षा पै. ऑरीलिया उपलब्ध आहार का अधिक तेजी से और कुशलता से उपयोग कर लेती हैं। अतः जब ये दोनों स्पीशीज एक ही जीवन-क्षेत्र में रखी जाती हैं तो निश्चय ही हमें यह आशा करनी चाहिए कि पै. ऑरीलिया प्रतिस्पर्धा में अधिक सफल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध होगा।

(ii) एक और अध्ययन में, एक कीट आटे के बीटलों (Flour beetles) की दो स्पीशीज का प्रयोग किया गया– ट्राइबोलियम कैस्टेनियम (Tribolium castaneum) और ट्राइबोलियम कनफ्यूसम (Tribolium confusum)। इन्हें पृथक्-पृथक् भी तथा मिश्रित समष्टियों के रूप में भी रखा गया। जब इन्हें पृथक्-पृथक् रखा गया था, तो प्रत्येक

स्पीशीज ने एक विशिष्ट सघनता वाली समष्टि के रूप में विकास कर लिया और इनमें से ट्रा. कनफ्यूसम अधिक सघन हो जाता था। एक प्रोटोजोआ ऐडेलाइना (Adelina) इन दोनों बीटलों के पृथक् संवर्धनों में छोड़ा गया तो, ट्रा. कैस्टेनियम की समष्टि दोतिहाई घट गई, परन्तु ट्रा. कनफ्यूसम पर इसका इतना तीव्र प्रभाव नहीं पड़ा। दोनों बीटलों की समष्टियों को बारबार मिश्रित किया गया और हर बार यह अनुभव हुआ कि एक या दूसरी समष्टि का लोप अवश्य हो जाता था। इन प्रयोगों से गौस के इस मत की पृष्टि हो जाती है कि जब दो विभिन्न समष्टियों में एक ही जीवन-क्षेत्र के लिए प्रतिस्पर्धा होती है तो उनमें से एक का विलोप हो जाना अनिवार्य हैं। जब-जब परजीवी मौजूद नहीं था, तब-तब प्रायः ट्रा. कनफ्यूसम का प्रभुत्व (Dominance) रहा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जीवन क्षेत्र में एक ही कारक में परिवर्तन करने से प्रतिस्पर्धा के अन्त में निकलने वाला निष्कर्ष कितना विभिन्न हो सकता है।

(iii) गौस के सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिए हम दो और उदाहरण लेंगे। इस बार ये उदाहरण पक्षियों के क्षेत्र-प्रेक्षणों (Field observations) से लेंगे– (a) पहला उदाहरण, कुछ सुन्दर और विचित्र आकृति वाला हंसावर पक्षियों (Flamingos) का है। अफ्रीका में बड़ा हंसावर-फीनिकॉप्टेरस ऐंटीगुओरम (Phoenicopterus antiguorum) उन्हीं छिछली झीलों में भोजन करता हैं जिनमें इससे बहुत ही समानता रखने वाली दूसरी स्पीशीज छोटा हंसावर-फ्रीनिकोप्टेरस माइनर (Phonicopterus minor) भी भोजन करती है। प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होगा कि इस प्रकार के समान पक्षियों में, जो एक ही तालाब में भोजन करते हैं उनमें भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा अवश्य रही होगी। परन्तु सावधानी से अध्ययन करने पर पता चला कि वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि छोटा हंसावर के मुँह में पाई जाने वाली एक बारीक छलनी जैसी रचना के कारण उसका आहार अधिकतर सूक्ष्म नीले-हरे शैवालों तक ही सीमित होता है, जबकि बड़े हंसावर की चोंच में मोटी छलनी होने के कारण वह बड़े-बड़े आहार कणों को भी खा सकता है, जिनमें क्रस्टेशियन और कीचड़ में रहने वाले कीट लार्वाओं के समान सूक्ष्म प्राणी शामिल होते हैं। यद्यपि हंसावर की ये दोनों जातियाँ

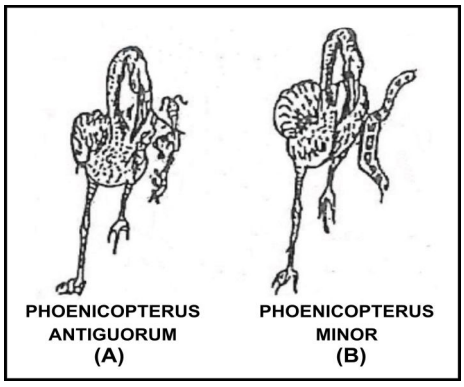

चित्र क्र. 1.21: हंसावर की दो प्रजातियों में भिन्नता (A) फोनिकॉप्टेरस ऐन्टीगओरम, (B) फोनिकॉप्टेरस

(स्पीशीज) एक ही तालाब में भोजन करती हैं, तथापि भोजन के लिए वे अलग-अलग प्रकार के भोजनों का उपयोग करती हैं और इस प्रकार प्रतिस्पर्धा से बच जाती हैं। (b) दूसरा उदाहरण, उत्तरी अमेरिका के वार्ब्लर (Warbler) पक्षियों की पाँच प्रजातियों (स्पीशीज) के भोजन ढूँढने के स्वभाव से लिया गया है। ये पाँचों प्रजातियाँ (स्पीशीज) एक ही सनोबर (Spruce) वृक्ष से अपना-अपना भोजन प्राप्त कर सकती हैं और उनमें से हर एक अपने कीट-शिकार को वृक्ष के अलग-अलग भागों में ढूँढती हैं जैसा कि संलग्न चित्र में दर्शाया गया है (चित्र 1.21)। ऊपर से नीचे की दिशा में वृक्ष के छह क्षेत्र बनाए गये हैं, जिनमें से प्रत्येक क्षेत्र दस फुट ऊँचाई का विस्तार रखता है। वृक्ष के भीतर तीन और क्षेत्र हैं– (A) नई पत्तियों तथा मुकुलों वाला सबसे बाहरी क्षेत्र; (B) पुरानी पत्तियों वाला सबसे बीच का क्षेत्र; और (C) अनावृत या लाइकेन (Lichen) से ढकी शाखाओं वाला भीतरी क्षेत्र। वार्ब्लर पक्षी इसके सभी भागों में पाए जाते है और आहार ग्रहण करते हैं; विभिन्न रेखाच्छादनों से उन क्षेत्रों का संकेत किया गया है जिसमें प्रत्येक स्पीशीज़ आहार-ग्रहण करने का अपना कम-से-कम आधा समय व्यतीत करती है। (मेकार्थर, 1958)। प्रत्येक वार्ब्लर का शिकार करने का तरीका भी अलग-अलग है। उदाहरण के लिए केप मे वार्ब्लर (Cape may warbler) – डेन्ड्रॉइका टिग्रीना, (Dendroica tigrina) अधिकांशतः वृक्ष में ऊपर-नीचे उड्डयन करती रहती है, बे ब्रेस्टेड वार्ब्लर (Bay-breasted warbler) डे. केस्टेनिया (D. Castanea) शाखाओं में चक्कर लगाती रहती है, तथा कंठ वाली हरी वार्ब्लर डे. वाइरेन्स (D. Virens) सनोबर की सघन सुई जैसी पत्तियों में बहुत ध्यान से भोजन ढूँढती है। अतः ये वार्ब्लर पक्षी वृक्ष के विभिन्न आहार क्षेत्रों से भोजन एकत्रित करती है। अतः वृक्ष में पाँच भिन्न आहार क्षेत्र बन जाते हैं और जहाँ पर इन क्षेत्रों में परस्पर अतिव्याप्ति होती हैं, वहाँ इन पक्षियों के शिकार करने के विभिन्न तरीकों के कारण प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है।

इसी प्रकार क्लेडोसेरन्स की दो जातियों के मिश्रित संवर्धन (Cultures) पर किए गए प्रयोगों में डेफ्निया प्यूलिकेरिया (Daphina pulicaria) हमेशा साइमोसिफेलस वेट्यूलस (Simocephalus vetulus) को विलुप्त कर देती है।

निष्कर्ष (Conclusion)– ये सारे उदाहरण गौस के सिद्धान्त के अनुरूप है। प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि जब एक ही जीवन-क्षेत्र में दो स्पीशीजों में प्रतिस्पर्धा होती है तो केवल एक ही स्पीशीज जीवित रहती है। क्षेत्र-अध्ययन से भी यह सिद्ध हो चुका है कि प्रकृति में जहाँ कहीं कुछ प्राणी प्रथम दृष्टि से देखने पर ही जीवन-क्षेत्र में रहते हुए मामूल पड़ते हैं, वास्तव में उनमें ऐसा नहीं होता। इन तथा अन्य आँकड़ों से गौस के सिद्धान्त की इतनी सुस्पष्ट पुष्टि हो जाती है कि हमारा यह

टिप्पणी

निष्कर्ष निकालना तर्कसंगत होगा कि एक जीवन-क्षेत्र में केवल एक ही स्पीशीज रहती है।

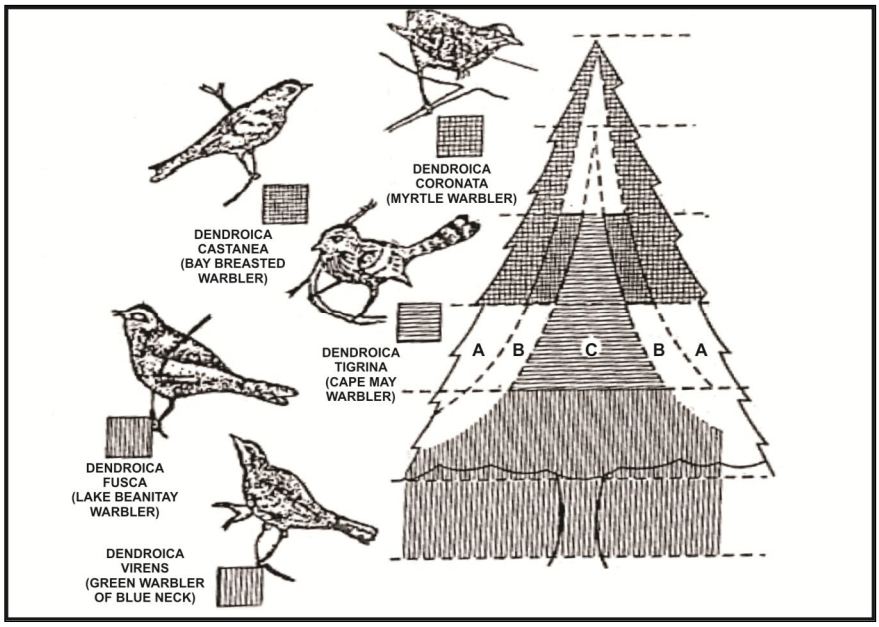

चित्र क्र. 1.22: सनोबर के एक वृक्ष में उत्तर अमरीका के वार्ब्लर पक्षियों की पाँच स्पीशीज़ो के आहार-ग्रहण क्षेत्रों का एक आरेखीय चित्रण (Diagrammatic representation of Niche in five species of Warbler birds of a tree of sanover in north Ameria)

संक्षेप में, जब दो विरोधी जातियाँ एक ही वातावरण में पाई जाती हैं तो सामान्यता निम्नलिखित परिणाम सम्भव होते हैं–

1. (i) यदि दो जातियाँ पारिस्थितिकी दृष्टि से तुल्य (Ecological similar) हों, एवं (ii) उनकी वातावरण से एक-सी आवश्यकताएँ (Demands) हों तथा (iii) एक ही जाति यदि स्वयं की वृद्धि की अपेक्षा दूसरी जाति की वृद्धि करती हो, तो उस क्षेत्र से एक जाति, दूसरी जाति का विलोपन कर देगी।
2. यदि दो जातियों की कुछ भिन्न आवश्यकताएँ हों अर्थात वे भिन्न में आवास करें तो उस क्षेत्र में दोनो जातियाँ सुविधापूर्वक साथ-साथ रह सकती हैं।
3. यदि दो जातियाँ एक-दूसरे पर निर्भर हों, जैसे परजीवी (Parasite) व पोषक (Host) या परभक्षी व शिकार, तो आक्रमणकारी दूसरी जाति का विलोपन कर सकता है या फिर स्वयं दूसरे प्रकार के भोजन करने लगता है।
4. यदि आक्रमणकारी जाति दूसरी जाति को नष्ट करने में असमर्थ हो तथा दूसरी जाति की कमी के समय स्वयं जीवित रहने में समर्थ हो, तो दोनों जातियाँ उस क्षेत्र में स्थायी अथवा परिवर्तनीय साम्यावस्था (Fluctuating equilibrium) में निरन्तर रह सकती हैं।

सारणी क्र. 1.3: जीवों के अन्तरजातीय सम्बन्ध (Inter Relations of Animals)

क्रम संख्या	सम्बन्ध का प्रकार	जाति 'अ'	जाति 'ब'	सम्बन्ध का प्रभाव
	सहयोगी (Cooperative):			
1.	उदासीनता (Neutralism)	0	0	कोई भी जाति किसी को हानि नहीं करती और न ही लाभ करती है।
2.	सहपरोपकारिता (Mutualism)	+	+	छोनो का पारस्परिक आदान-प्रदानिक लाभ।
3.	सहभोजिता (Commensalism) असहयोगी (Non-cooperative)	+	0	'अ' सहभोजी के लिए लाभकारी व 'ब' पोषक (Host) अप्रभावित।
4.	प्रतिजीविता (Antibiosis)	–	0	'अ' पर प्रतिकूल प्रभाव लेकिन 'ब' को कोई हानि नही।
5.	परजीविता (Parasitism)	+	–	'अ' परजीवी के लिए लाभकारी व 'ब' पोषक के लिए हानिकारक
6.	परभक्षण (Predation)	+	–	'अ' परभक्षक के लिए लाभकारी लेकिन 'ब' परभक्षित के लिए हानिकारक।
7.	प्रतियोगिता (Competition)	–	–	एक या दूसरी जाति के लिए अलाभकारी।

नोट– ऊपर दी गई सारणी में '+' चिन्ह लाभकारी प्रभाव, '–' चिन्ह हानिकारक प्रभाव व '0' अप्रभावी लक्षण दर्शाता है।

इस प्रकार एक समुदाय में प्रत्येक प्राणी अपनी ही जाति के सदस्यों, पड़ोस की अन्य जातियों के सदस्यों तथा वातावरण के भौतिक एवं रासायनिक सभी प्रकार प्रभावों के प्रति अनुक्रियाएँ (React or response) व्यक्त करता है।

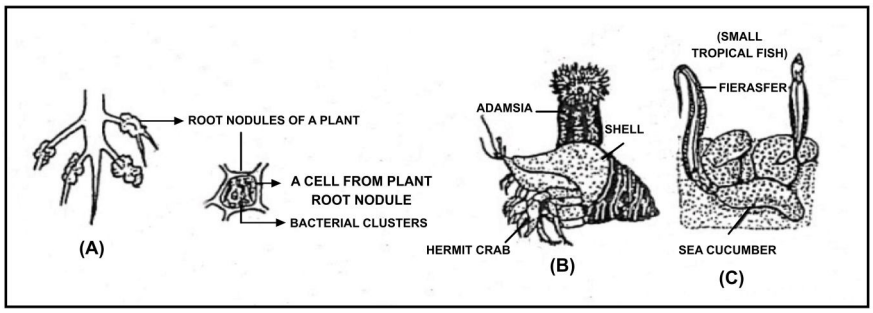

चित्र क्र. 1.23: (A) राइजोबियम व लेग्यूमिनस मूल के बीच सहपरोपकारिता, (B) सहपरोपकारिता का अन्य उदाहरण जिसमें हरमिट क्रेब गैस्ट्रोपोड कवच के अन्दर रहता है व इस कवच के उपर समुद्री ऐनीमोन एडम्सिया रहता है, (c) फीयरऐस्फर नामक मछली जो कि समुद्री कुकम्बर की गुदा गुहा में रहती है सहभोजिता का उदहरण है। [(A) A mutualism between Rhizobium and Leguminous root, (B) The other examples of commensalism, in it hermit crab lives in Gastropod shell and Sea anemone lives upon shell, (C) Fierasfer fish lives in cloacal cavity of Sea cucumber– An example of commensalism

टिप्पणी

1.15.4 सहभोजिता के प्रकार (Type of Commensalism)

सहभोजिता चार प्रकार की हो सकती है–

1. **अस्थायी सहभोजिता (Temporary Commensalism)**– इस प्रकार की सहभोजिता में सहभोजी सदस्य कुछ समय बाद अलग-अलग हो सकते हैं– (a) जैसे समुद्री ऐनेलिड, कीटोप्टेरस (Chaetopterus) के बिल में निवास करने वाला केंकड़ा। (b) चूषक मछली तथा शार्क मछली।
2. **स्थायी सहभोजिता (Permanent Commensalism)**– सहभोजी सदस्य स्थायी रूप से साथ-साथ ही रहते हैं, जैसे– हरित हाइड्रा और जूक्लोरेला शैवाल।
3. **बाह्य सहभोजी (Ecto Commensalism)**– एक सहभोजी सदस्य दूसरे सहभोजी सदस्य के शरीर की बाह्य सतह पर रहता है। जैसे– हर्मिट क्रेब और सी-ऐनीमोन।
4. **आन्तरिक सहभोजी (Endo Commensalism)**– जब एक सहभोजी सदस्य दूसरे सहभोजी सदस्य के शरीर में भीतर निवास करता है, जैसे– दीमक के आहार नाल में निवास करने वाला फ्लैजिलेट प्रोटोजोआ।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

23. सामाजिक संगठन (Society formation) का उदाहरण हैं–
    (अ) टिड्डी दल (ब) दीमक
    (क) जंगली भैंसों का समूह (ड) उपर्युक्त सभी
24. लेग्यूमिनोसी कुल तथा नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया उदाहरण हैं–
    (अ) सहजीविता (ब) सहभोजिता
    (क) परजीविता (ड) सहोपकारिता
25. जब दो विभिन्न जातियों के जीव एक साथ जीवनयापन करें तथा इनमें से एक पक्ष को तो लाभ हो, परन्तु दूसरे पक्ष को न लाभ हो और न हानि हो, कहलाता है–
    (अ) सहभोजिता (ब) प्रतिजीविता
    (क) प्रतियोगिता (ड) सहोपकारिता
26. फोनिकॉप्टेरस ऐन्टीगुओरम तथा फोनिकॉप्टेरस माइनर, जातियाँ हैं–
    (अ) सैक्यूलाइना (ब) पैरामीशियम
    (क) प्लाज्मोडियम (ड) हंसावर

1.16 ऊर्जा प्रवाह एवं आहार श्रृंखला (Energy Flow and Food Chain)

1.16.1 परिचय एवं परिभाषा (Introduction/Definition)

पारिस्थितिकी तंत्र की रचना एवं उसका संघटन जान लेना ही अपने आप में पर्याप्त नहीं है बल्कि प्रकृति को पूरी तरह से समझने के लिए उसके उपापचय की क्रिया (Metabolism) एवं उपापचय दर (Physiological rate or Metabolic rate) को जानना भी आवश्यक है। वास्तव में जहाँ तक सम्भव हो सके, संरचना एवं उपापचय का अध्ययन साथ-साथ किया जाना उचित होता है। संरचना को पूरी तौर पर समझने के लिए उपापयच को एवं उपापचय के लिए संरचना को, पूर्णतः समझने का प्रयास करना चाहिए। किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यशीलता में दो महत्वपूर्ण आधारभूत प्रक्रियाएँ हैं– (i) ऊर्जा प्रवाह (Energy flow) एवं (ii) पोषक द्रव्यों की चक्रीय गति (Cyclic rate)।

1.16.2 ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow)

1. ऊर्जा (Energy)– कार्य करने की क्षमता का ही पारिभाषिक नाम 'ऊर्जा' है। ऊर्जा के विविध रूप होते हैं, परन्तु जीव-जगत में यान्त्रिक, रासायनिक विकिरण एवं ऊष्मा ऊर्जा का ही विशेष महत्व है। यान्त्रिक ऊर्जा दो प्रकार की होती है– गतिज ऊर्जा (Kinetic energy) एवं स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy)।

गतिज ऊर्जा के द्वारा ही जीव के अंगों में विस्थापन गति सम्भव है। गतिज ऊर्जा कार्य करने की ऊर्जा कही जा सकती है। जीव में तभी तक जीवन है, जब तक उसमें गतिज ऊर्जा विद्यमान है। गतिज ऊर्जा की प्राप्ति स्थितिज ऊर्जा से ही हो सकती है। स्थितिज ऊर्जा को संग्रहित ऊर्जा (Stored energy) भी कह सकते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन के अस्तित्व के लिए जीव के शरीर में स्थितिज ऊर्जा विद्यमान रहनी चाहिए। प्रत्येक जीव में स्थितिज ऊर्जा उच्च ऊर्जा वाले रासायनिक बन्धों (High Energy Chemical Bonds) में रासायनिक ऊर्जा के रूप में संग्रहित रहती है। जैव-रसायनशास्त्र (Biochemistry) के अनुसार जीव काया में रासायनिक स्थिति ऊर्जा 'ए-टी-पी' (Adenosine-Tri-Phosphate-ATP) के अत्युर्जा बन्धों में संचित रहती है, जिसके ऑक्सीकरण (Oxidation) से उन्मुक्त गतिज ऊर्जा से जीवन के समस्त प्रकार्य सम्पन्न होते हैं।

1.16.3 ऊष्मागतिकी के नियम (Laws of Thermodynamics)

ऊर्जा की प्रक्रिया को उष्मागतिकी (Thermodynamics) के दो नियमों से प्रतिपादित किया जा सकता है–

1. **उष्मातिकी के प्रथम नियम (First Law of Thermodynamics)**– प्रथम नियम के अनुसार विश्व में ऊर्जा की मात्रा स्थिर (Constant) है। ऊर्जा का केवल एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरण किया जा सकता है,

टिप्पणी

परन्तु ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है।

$$C + O_2 = CO_2 + \text{Energy (heat and light)}$$

यदि लकड़ी को जलाया जाये तो गतिज ऊर्जा मुक्त होती है। जलने से पहले मुक्त गतिज ऊर्जा की मात्रा स्थितिजिक ऊर्जा (जो पहले से विद्यमान होती है) के बराबर होती है (चित्र 1.24)।

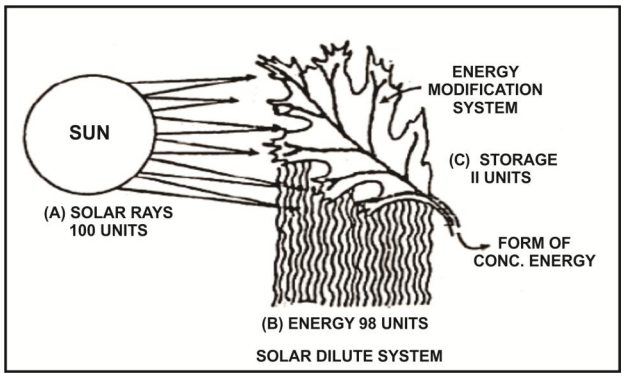

चित्र क्र. 1.25: (A) सौर किरणें 100 इकाई उर्जा तनु तंत्र (B) उष्मा 98 इकाई। उष्मागतिकी के दो सिद्धान्तों का चित्रण (Diagrammatic representation of two laws of thermodynamics)

सौर ऊर्जा का प्रकाश–संश्लेषण के माध्मम से खाद्य ऊर्जा (शर्करा) में रूपान्तरण A = B + C (प्रथम नियम)। रूपान्तरण के समय ऊर्जा क्षय होने से C हमेशा A से कम होगा (द्वितीय नियम)।

यद्यपि किसी क्रिया से संबंधित ऊर्जा की पूरी मात्रा (जैसे कि जलती हुई लकड़ी में) न बढ़ती है और नही घटती है।

2. **उष्मागतिकी के द्वितीय नियम (Second Law of Thermodynamics)** के अनुसार जब ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरित होती है, तब ऊर्जा का कुछ भाग ऐसा रूप धारण कर लेता है जो आगे किसी भी रूप में नहीं बदल सकता है। अर्थात् ऊर्जा की कुछ मात्रा का ऱ्हास (Entropy) होता है। नियम के अनुसार ऊर्जा से संबंधित ऊर्जा रूपान्तरण के प्रक्रम में ऊर्जा का धीरे-धीरे ऱ्हास, या कमी अवश्य होती है। ऊर्जा की यह कमी सान्द्र रूप से तनु या बिखरे रूप में होती है, क्योंकि इस प्रक्रम में कुछ ऊर्जा सदैव ही अनुपयुक्त ऊष्मा ऊर्जा में बदलती रहती है। इस प्रकार ऊर्जा की मात्रा का अन्य रूप में रूपान्तरण शत-प्रतिशत नहीं होता है। यही ऱ्हासित ऊर्जा एन्ट्रॉपी (Entropy) कहलाती है।

उदाहरणार्थ, जब कोयले को वाष्पित्र (Boiler) में भाप पैदा करने के लिए जलाया जाता है तो कुछ ऊर्जा भाप बनाने में काम में आती है एवं कुछ भाग ताप के रूप में आस-पास की हवा में बिखर जाता हैं। समुदाय (Community) में भी ऊर्जा इसी प्रकार रहती है। जब ऊर्जा एक जीव से

दूसरे जीव में भोजन के रूपमें स्थानान्तरित होती है, इस ऊर्जा का अधिकतर भाग ताप के रूप में निर्मोचित होता है और बाकी जीवित ऊतक के रूप में संग्रहीत रहता है।

1.16.4 जीवनीय ऊर्जा (Biogenic Energy)

1.16.4.1 ऊर्जा को व्यक्त करने की इकाइयाँ (Units of Energy)

ऊर्जा के प्रत्येक रूप के मापन के लिए पृथक् इकाई निर्धारित की गयी है, परन्तु पारिस्थितिकी में ऊर्जा को सदैव ऊर्जा की इकाई में व्यक्त किया जाता है, क्योंकि ऊर्जा के किसी भी रूप को ऊष्मा में शत-प्रतिशत परिवर्तित किया जा सकता है। ऊष्मा को व्यक्त करने की इकाई कैलोरी (Calorie) अथवा किलो कैलोरी (Killo-Calorie) या किलोग्राम कैलोरी (Kilogram Calorie) है, जिसे संक्षेप में क्रमशः कै. (Cal) अथवा कि. कै. (K. cal.) लिखा जाता है।

एक ग्राम पानी के तापमान को एक अंश सेल्सियस (1°C) अर्थात 14.5° C से 15.5°C (सेल्सियस) तक बढ़ाने के लिए आवश्यक ऊष्मा को एक कैलोरी माना गया है। एक हजार (1000) कैलोरी एक कि. कै. (K.cal.) होती है।

जहाँ जीवभार का कैलोरी मूल्य समान हो, वहाँ जीवभार की इकाइयों को ही ऊर्जा की मात्रा व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः पौधों में 4 कि.कै./ग्राम भस्मरहित शुष्कभार ऊर्जा मूल्य (Calorific Value) होता है, जबकि जन्तुओं के लिए यह मान 5 कि.कै. के लगभग माना जाता है।

1.16.4.2 प्रकृति में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Nature)

ऊर्जा का स्रोत-सूर्य (Sun-Source of Energy)– जीवनीय ऊर्जा का एकमात्र परम स्रोत सूर्य है। सूर्य में ऊर्जा कैसे उत्पन्न होती है, इस प्रश्न पर विचार करने से ज्ञात होता है कि सूर्य में ऊर्जा परमाण्विक उत्परिवर्तन (Atomic Transmutation) से उत्पन्न होती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सूर्य गैस का अतिविशाल गोला है, जिसके केन्द्र में द्रव भी हो सकता है जहाँ परमाण्विक उत्परिवर्तन निरन्तर होता रहता है और सौर ऊर्जा उत्पन्न होती रहती है।

इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा से समस्त जैविकीय क्रियाओं का संचालन होता है।

ऊर्जा प्रवाह चित्र जो प्रकाश–संश्लेषण के माध्यम से सौर ऊर्जा का रासायनिक ऊर्जा में रूपान्तरण एवं तदन्तर जैविक क्रिया हेतु आवश्यक ऊर्जा की प्राप्ति की श्वसन प्रणाली को दर्शाता है।

(i) सूर्य को तथाकथित एक वृहत् हायड्रोजन बम कहा जा सकता है, जिसका सघटन एवं तापमान ऐसा है कि उसमें 564 मिलियन टन हाइड्रोजन प्रति क्षण निरन्तर 560 मिलियन टन हीलियम में बदलती रहती है। इस प्रकार 4 मिलियन टन द्रव्य (Mass) प्रति क्षण ऊर्जा में रूपान्तरित होता है, जिसका विकिरण सूर्य के प्रकाशमण्डल (Photosphere) सतह से विद्युत चुम्बकीय तरंगों के रूप में होता है।

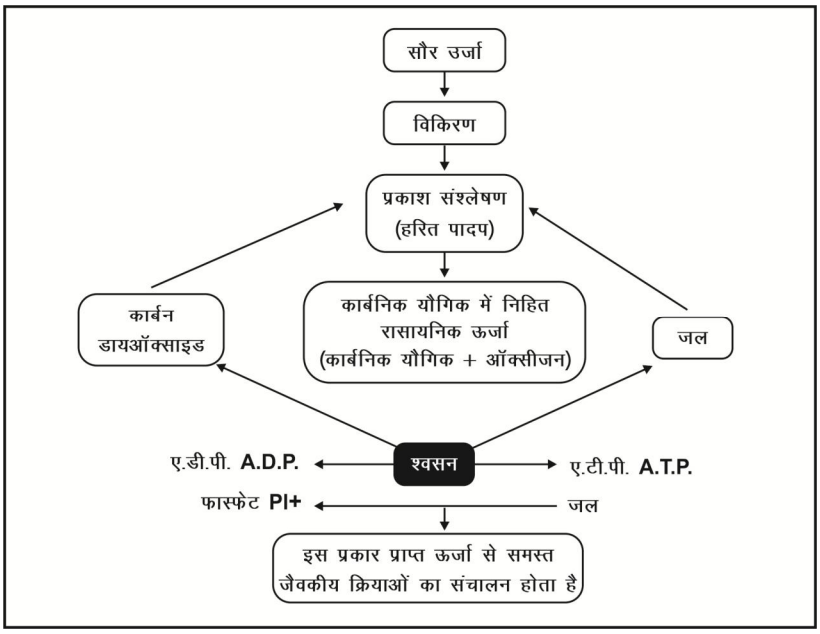

चित्र क्र. 1.26: प्रकृति में उर्जा प्रवाह (Energy flow in nature)

(ii) प्रकाश मण्डल का व्यास 865000 मील माना जाता है और तापमान 6000° सेल्सियस होता है।

(iii) सौर ऊर्जा के विकिरण में सबसे छोटी तरंगदैर्ध्य वाली 'एक्स' एवं 'गामा' किरणों से लेकर दीर्घ तरंगदैर्घ्य वाली रेडियो तरंगों तक का समावेश होता है। इस विकिरण स्पेक्ट्रम (Spectrum) में निहित कुल ऊर्जा का 99% भाग 0.2 से 4.0 माइक्रॉन तरंगदैर्ध्य वाली तरंगों (अर्थात अल्ट्रावॉइलेट से लेकर इन्फ्रा रेड क्षेत्र तक) के क्षेत्र में निहित होता है।

(iv) उक्त सीमित क्षेत्र में निहित कुल ऊर्जा का लगभग 50 प्रतिशत भाग दृष्य वर्णक्रम (0.38 माइक्रॉन से 0.77 माइक्रॉन तरंगदैर्ध्य) अथवा प्रकाश में निहित होता है। इसे हम प्रकाश के नाम से जानते हैं।

(v) सूर्य से उन्मुक्त कुल ऊर्जा का लगभग 1/50 मिलियन भाग ही पृथ्वी के वायुमण्डल की ऊपरी सतह तक पहुँचता है।

प्रसिद्ध भौतिकीविद् गेट्स (Gates, 1962) के अनुसार, 0.485 कै./वर्ग सेमी/मिनट (वार्षिक औसत) ऊर्जा वायुमण्डल की ऊपरी सहत पर पड़ती है, जिसमें से 0.228 कै/वर्ग सेमी/मिनट भूतल तक वायुमण्डल में उपस्थित ओजोन, वाष्प, मेघ, धूल, जलकण, ऑक्सीजन आदि के द्वारा अवशोषित हो जाता है। शेष पृथ्वी की सतह तक पहुँचता है।

1.16.4.3 ऊर्जा का रूपान्तरण (Transfer of Energy)

भूतल पर पहुँचने वाली सौर प्रकाश ऊर्जा की मात्रा पृथ्वी के विभिन्न भागों में भौगोलिक स्थिति और वार्षिक ऋतु के परिवर्तन के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। भूतल पर प्राय ऊर्जा का भी 95 प्रतिशत से 99 प्रतिशत भाग परावर्तन एवं वाष्पन

के माध्यम से ऊष्मा के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार भूतल पर प्राप्त प्रकाश ऊर्जा का 1 प्रतिशत से 5 प्रतिशत भाग ही प्रकाश-संश्लेषी स्वयंपोषी पादपों को प्रकाश संश्लेषण के लिए उपलब्ध हो जाता है। प्रकाश संश्लेषण की रासायनिक क्रिया को संक्षेप में निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

$$6\ CO_2 + 12\ H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश ऊर्जा 673 कि.कै.}} C_2H_{12}O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$

संक्षिप्त रूप में प्रकाश-संश्लेषण वह जैव प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से विकिरण की ऊर्जा अर्थात प्रकाश ऊर्जा का रूपान्तरण रासायनिक ऊर्जा में होता है।

स्वयंपोषी (Autotrophs) वे है, जिनमें क्लोरोफिल (Chlorophyll) पाया जाता है, और जिनमें सूर्य की विकिरण ऊर्जा को क्लोरोफिल, पानी एवं सहायक जैव उत्प्रेरकों की उपस्थिति में– रासायनिक स्थितिज ऊर्जा के रूप में बदलकर 'एटीपी' के उच्च ऊर्जा बन्धों (High Energy bonds) में निहित कर देने की क्षमता होती है। 'एटीपी' में निहित इस ऊर्जा से कार्बन डाइऑक्साइड का अवकरण होता है और इस प्रकार परिणामतः कार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण सम्पन्न होता है। इस सम्पूर्ण जटिल जैव-रासायनिक प्रक्रिया को प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) एवं इन स्वयंपोषी पादपों को प्रकाश-संश्लेषी 'स्वयंपोषी' की संज्ञा दी गयी है।

प्रथम प्रकार के स्वयंपोषी किस सीमा तक विषमपोषियों के लिए भोजन के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं, इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि प्रकाश-संश्लेषी पादप ही विषमपोषी जगत् के भोजन (कार्बनिक यौगिक के स्रोत) अर्थात् ऊर्जा के प्रमुख स्रोत है, और प्रकाश संश्लेषी पादपों की ऊर्जा का स्रोत सूर्यप्रकाश या सौर-विकिरण है। इस प्रकार भूमण्डल पर जैव ऊर्जा की प्राथमिक स्रोत एकमात्र सूर्य है, और जीवमण्डल के लगभग समस्त जीवों का जीवन सूर्य से प्राप्त सौर विकिरण (प्रकाश तरंगों) के द्वारा आती ऊर्जा के सतत् प्रवाह से संचालित हो रहा है।

ऊर्जा का स्रोत सूर्य है। सूर्य से प्राप्त प्रकाशीय ऊर्जा से 10 से 15 प्रतिशत ऊर्जा परावर्तित (Reflect) होती है तथा 5 प्रतिशत पारंगत (Transmitted) होती है और 80 से 85 प्रतिशत अवशोषित होती है। कुल प्रकाशीय ऊर्जा का केवल 2 प्रतिशत औसत ही पत्ती (Leaf) पर गिरती है। यही ऊर्जा प्रकाश-संश्लेषण (Photo-synthesis) के उपयोग में ली जाती है।

एक पारितंत्र (Ecosystem) में जीवसंख्या का जैविक– समूह (Population biomass) एक बॉक्स की तरह है, जहाँ एक समूह से दूसरे समूह में सजीव एककों के मध्य ऊर्जा का प्रवाह होता है। हरित पादप प्रकाश ऊर्जा (विकिरण ऊर्जा) को रासायनिक ऊर्जा में बदलते हैं। यहाँ औसतन सम्पूर्ण ऊर्जा (जो हरे पौधों पर पड़ती है) का लगभग आधा भाग क्लोरोफिल (प्रकाश संश्लेषण कारक) द्वारा अवशोषित किया जाता है। तथा से 5 प्रतिषत अवषोषित ऊर्जा भोजन ऊर्जा में बदल दी जाती है। एक तंत्र में सम्पूर्ण उत्पादकों (Producers) की कुल अवशोषण दर को प्राथमिक उत्पादन क्षमता कहा जाता है। यहाँ प्राथमिक उत्पादन (Gross production) कार्बनिक पदार्थो की वह सम्पूर्ण मात्रा है जो उत्पादकों द्वारा

टिप्पणी

तैयार की जाती है। इस उत्पादन में स्वयं उत्पादकों द्वारा स्वसन में प्रयोग में लिए गए कार्बनिक पदार्थ भी शामिल है। श्वसन के उपरान्त उत्पादकों के ऊतकों में संग्रहित हुए कार्बनिक पदार्थ को शुद्ध प्राथमिक उत्पादन (Net Primary Production) कहते हैं। शाकाहारी जन्तु (Herbivores) शुद्ध प्राथमिक उत्पादन के पदार्थ को आहार के रूप में ग्रहण करते है। अनुकूलतम परिस्थितियों में सकल उत्पादन का 90 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ उत्पादकों द्वारा श्वसन में उपयोग में आ जाता है और शेष 10 प्रतिशत शुद्ध उत्पादन के रूप में शाकाहारियों द्वारा भोजन के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

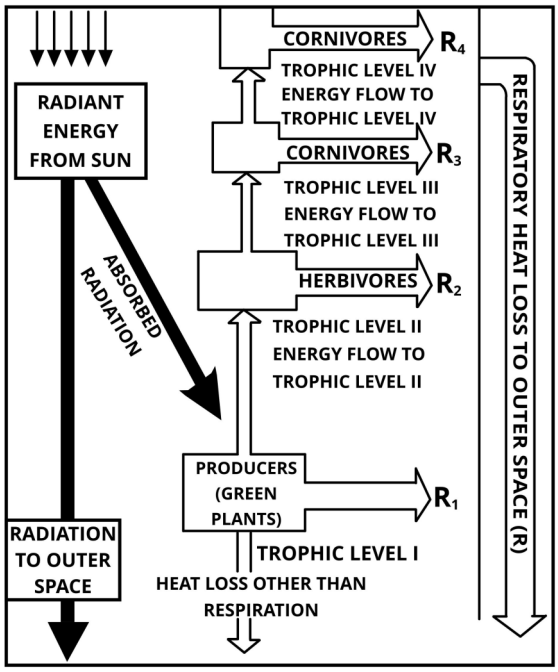

चित्र क्र. 1.27: पारिस्थितिक तन्त्र में उजा प्रवाह (Energy flow in Ecosystem)

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राणी अपनी रासायनिक ऊर्जा पौधों से ग्रहण करते हैं तथा इस प्राप्त ऊर्जा का अधिकांश भाग ऊष्मा ऊर्जा के रूप में काम आ जाता है। जो शेष बचा भाग है, रासायनिक ऊर्जा या नवीन जीवद्रव्य के संश्लेषण में प्रयोग में आता है। यहाँ तैयार हुई शाकाहारी की शुद्ध उत्पादन ऊर्जा का भाग अगले माँसाहारी के लिए भोजन ऊर्जा का कार्य करता है। ऊर्जा स्थानान्तरण के प्रत्येक पद पर ली गई ऊर्जा का अधिकांश भाग ऊष्मा ऊर्जा में रूपान्तरित होकर नष्ट हो जाता है।

पोषी स्तर (Trophic Level)– खाद्य श्रृंखला के विभिन्न चरणों को जहाँ पर भोजन अथवा ऊर्जा का स्थानान्तरण होता है, पोषी स्तर (Trophic level) कहते हैं। प्रत्येक पोषण स्तर में स्थान ग्रहण करने वाले जीव पारिस्थितिकीय तंत्र अथवा जीवमण्डल (Biosphere) को कोई निश्चित संरचना प्रदान करते हैं। किसी पारिस्थितिकीय तंत्र में निम्न पोषी स्तर पाए जाते हैं–

(i) प्रथम पोषी स्तर (First Trophic Level or T_1)– इसके अन्तर्गत पौंधे आते हैं, जो उत्पादक (Producer) का कार्य करते हैं।

(ii) द्वितीय पोशी स्तर (Second Trophic Level or T_2)– इसके अन्तर्गत उत्पादकों को खाने वाले शाकाहारी जीव अथवा प्राथमिक उपभोक्ता आते हैं।

(iii) तृतीय पोषी स्तर (Third Trophic Level or T_3)– इसके अन्तर्गत प्राथमिक उपभोक्ताओं अथवा शाकाहारी जन्तुओं को खाने वाले माँसाहारी जन्तु या द्वितीयक उपभोक्ता आते हैं।

(iv) चतुर्थ पोषी स्तर (Fourth Trophic Level or T_4)– इसके अन्तर्गत द्वितीयक उपभोक्ताओं का भक्षण करने वाले उच्चतम माँसाहारी (Top carnivores) जन्तु अथवा सर्वाहारी (Omnivorous) जन्तु आते हैं।

(v) पंचम पोषी स्तर (Fifth Trophic Level or T_5)– मृतोपजीवी जैसे कुछ जीवाणु, कवक, कृमि आदि जीव सभी पोषी स्तरों से अपघटन (Decomposition) द्वारा भोजन प्राप्त करते हैं, पंचम पोषी स्तर का निर्माण करते हैं।

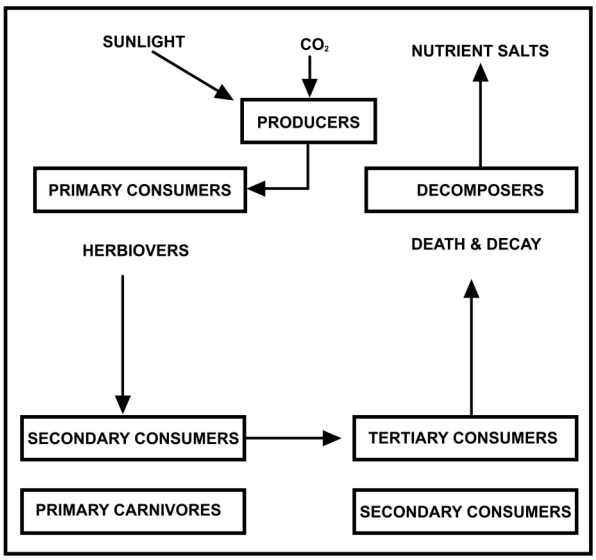

चित्र क्र. 1.28: पोषक स्तर पर आहार श्रृंखला (Food web at Nutrient level)

1.16.5 पारिस्थितिकीय तंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Ecosystem)

पारिस्थितिकीय तंत्र में पेड़-पौंधो व जीव-जन्तुओं का अस्तित्व ऊर्जा के प्रवाह एवं पदार्थों के परिसंचरण पर निर्भर करता है। सभी जैविक क्रियाओं के लिए ऊर्जा (Energy) की आवश्यकता होती है। प्रत्येक ऑटोट्रॉफिक पौंधें द्वारा ऊर्जा रासायनिक पदार्थों के रूप में संग्रहीत की जाती है। यह ऊर्जा ही सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय तंत्र में प्रवाहित होती रहती है। इस चक्र में ऊर्जा पैदा न करने वाले पदार्थ इस संचित ऊर्जा का परिसंचरण करते हैं। भूमण्डल पर पड़ने वाली सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा का लगभग 57 प्रतिशत वायुमण्डल द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। लगभग 36 प्रतिशत जल व थल के ताप व जल के वाष्पीकरण में

टिप्पणी

व्यय हो जाता है। पौधों पर केवल 8 प्रतिशत प्रकाश पड़ता है, जिसका 80–85 प्रतिशत भाग ऊर्जा के रुप में अवशोषित कर लिया जाता है। इसका 50 प्रतिशत प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) के काम आता है।

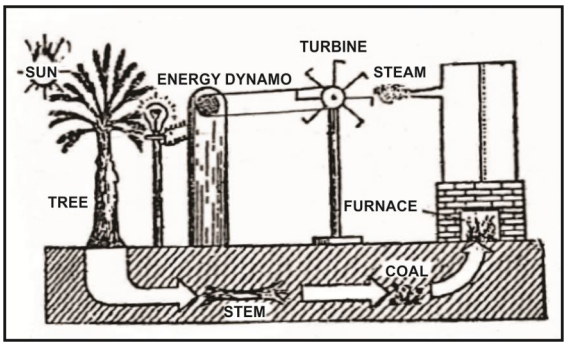

चित्र क्र. 1.29: प्रकृति में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in nature)

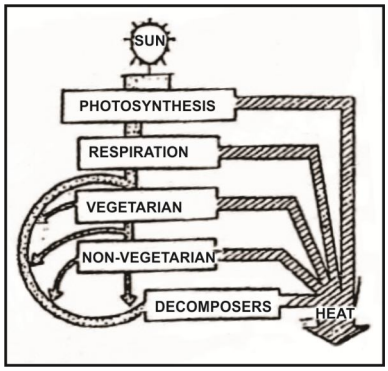

चित्र क्र. 1.30: वनस्पति और जन्तुओं में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in plants and animals)

सौर ऊर्जा का परम स्रोत सूर्य है। हरी वनस्पतियाँ इसे प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया द्वारा स्थितिज ऊर्जा (Potential energy) में बदल देती हैं जो कार्बोहाइड्रेट के रूप में होता है किसी इकोसिस्टम में सूर्य के प्रकाश से बनने वाली सम्पूर्ण कार्बोहाइड्रेट प्राइमरी उत्पादन (Primary Production) कहलाती है। इसका कुछ भाग उत्पादक (Producers) अपनी जैविक क्रियाओं के लिए ऑक्सीकरण द्वारा प्राप्त करते है। इसका कुछ भाग श्वसन (Respiration) तथा कुछ भाग उत्सर्जन (Excretion) के पदार्थों के रूप में नष्ट हो जाता है। शेष पदार्थ उस इकोसिस्टम का शुद्ध प्राथमिक उत्पादन (Net Primary Production) कहलाता है।

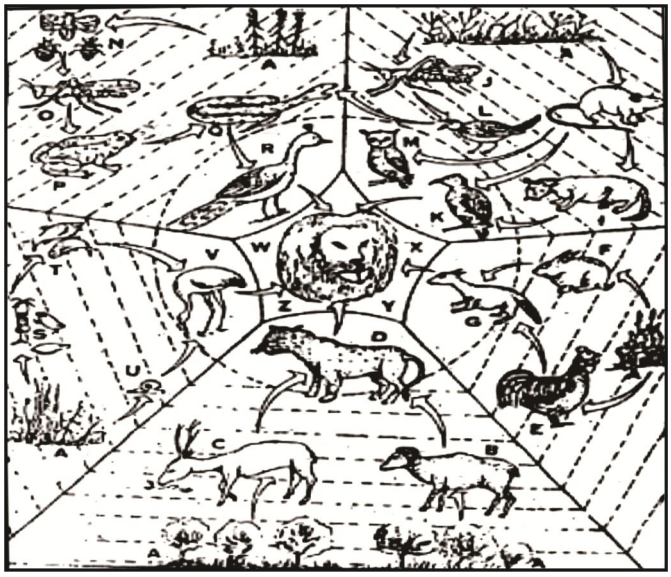

चित्र क्र. 1.31: प्रकृति में खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य जाल (Food chain and food webs of nature)

प्राथमिक उत्पादन द्वारा उत्पन्न ऊर्जा का हरी वनस्पतियाँ अपने शरीर की वृद्धि के लिए उपयोग करती है। इसका कुछ भाग अगले पोषक स्तर (Trophic level) को स्थानान्तरित कर दिया जाता है क्योंकि प्राथमिक उपभोक्ता हरी वनस्पतियों का भोजन करते हैं और उनमें उपस्थित स्थितिज ऊर्जा उपभोक्ताओं में पहुँच जाती है। इस ऊर्जा का कुछ भाग, श्वसन और उत्सर्जन के रूप में वे खर्च कर देते हैं। शेष ऊर्जा उनके शरीर के जैविक पदार्थ के निर्माण में प्रयुक्त हो जाती है।

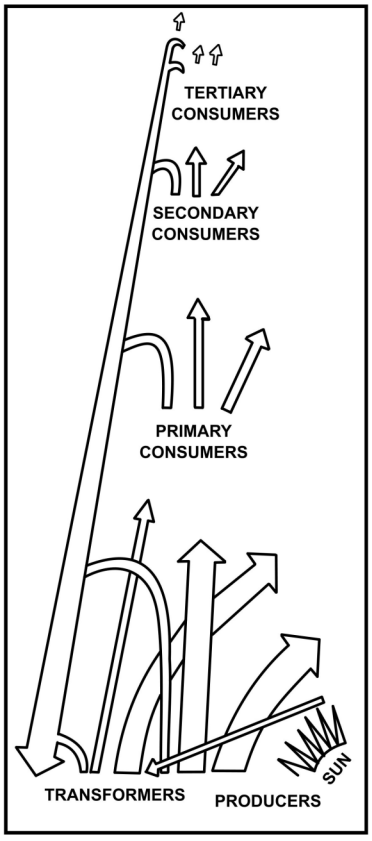

चित्र क्र. 1.32: एक इकोसिस्टम में ऊर्जा प्रवाह (Energy flow through typical ecosystem)

यह ऊर्जा अगले पोषक स्तर द्वितीय उपभोक्ता (Secondary consumers) द्वारा भोजन के रूप में ग्रहण कर ली जाती है। इस तरह प्रत्येक पोषक स्तर पर ऊर्जा का कुछ भाग श्वसन, उत्सर्जन, भोजन के लिए उपयोग में न लाई गई शिकार के अंश आदि के रूप में नष्ट हो जाता है। इस प्रकार एक पोषक स्तर से दूसरे पोषक स्तर को स्थानान्तरित होते हुए ऊर्जा डिकम्पोजर (Decomposer) स्तर तक पहुँचती है, जो उसे यौगिकों में बदल देते हैं। शेष ऊर्जा अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती है। इस प्रकार ऊर्जा प्रवाह एक दिशा में प्रवाहित होता है। यह चक्राकार क्रम में प्रवाहित नहीं होता है।

यदि किसी इकोसिस्टम में उपभोक्ताओं द्वारा प्रयोग में लाई गई ऊर्जा की मात्रा से अधिक ऊर्जा का उत्पादन हो रहा है तो उस पोषक स्तर के जीव-भार या बायोमास (Biomass) में वृद्धि होती हैं।

1.16.5.1 खाद्य श्रृंखला या फूड चेन (Food Chain)

पारिस्थितिकीय तंत्र या इकोसिस्टम (Ecosystem) के विभिन्न जीव, पौधे व जन्तु अपने भोजन के लिए एक-दुसरे पर निर्भर रहते है। इस तरह आपस में संबंधित जीव एक खाद्य श्रृंखला (Food Chain) बनाते हैं। जीवों का वह समूह, जिसमें जीव भोज्य एवं भोजन के रूप में एक-दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं फूड चेन (Food Chain) कहलाता है। इसमें खाद्य एनर्जी भोज्य द्वारा भोजक को प्रदान की जाती है।

सामान्यतः एक फूड चेन में पदों की संख्या 4 से 5 तक ही सीमित होती है। श्रृंखला के प्रत्येक स्थानान्तरण पर प्राप्त की गई ऊर्जा का अधिकांश भाग ऊष्मा के रूप में नष्ट हो जाता है। ऊर्जा संबंधों के दृष्टिकोन से सबसे कम कड़ियों (Links) वाली फूड चेन (Food Chain) महत्वपूर्ण है। घनी आबादी वाले देशों में

टिप्पणी

फूड चेन सबसे छोटी होती हे, जैसे भारत, चीन आदि। इन देशों के लोग अधिकतर प्राथमिक उत्पादकों (Primary producers) अर्थात् पौधों पर निर्भर करते हैं।

सूर्य की ऊर्जा (Energy) प्राथमिक स्रोत (Primary source) है। केवल हरे पौधे सूर्य की ऊर्जा को पोटेंशियल एनर्जी (Potential energy) के रूप में बदलकर इसे संचित रख सकते हैं। हरे पौधे CO_2 का C में अवकरण इसी सूर्य की एनर्जी के द्वारा करते है। इस कार्बन (Carbon) से ये कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates), प्रोटीन्स (Proteins) एवं वसाओं (Fats) का निर्माण करते हैं। जीवों के लिए ये पौधे एनर्जी का प्राथमिक स्त्रोत (Primary source of energy) होते हैं। अतः ऑटोट्रोफिक पौधे (Autotrophic plants) उत्पादक (Producers) कहलाते हैं, वे प्राणी जो इन ओटॉट्रोफिक पौधों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं उसे, प्राइमरी कन्ज्यूमर (Primary consumers) कहलाते हैं तथा वे प्राणी जो इन प्राइमरी कन्ज्यूमर्स को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, द्वितीयक कन्ज्यूमर्स (Secondary consumers) कहलाते हैं।

सूर्य की ऊर्जा को केवल हरे पौधे ही उपयोग में ला सकते हैं। यह ऊर्जा कार्बन के उपचयन (Reduce) करने में काम आती है, जिससे जीवन का ईंधन बनता है, जैसे कार्बोहाइड्रेटस्, वसा व प्रोटीन्स। वस्तुतः सभी जीवित जीव ऊर्जा के लिए पादपों पर ही आश्रित रहते हैं। पौधों द्वारा संग्रहीत ऊर्जा समुदाय द्वारा एक क्रम में खाने एवं खाए जाने की श्रृंखला से गुजरती हैं, जिसे आहार श्रृंखला (Food-Chain) कहते हैं। भोजन श्रृंखला का एक साधारण रूप यह है–

हरे पौधे $\rightarrow$ शाकाहारी $\rightarrow$ माँसाहारी $\rightarrow$ बड़े माँसाहारी एवं अन्य उच्च अपमार्जक (Scavanger)

जमीन पर जहाँ बहुत से बड़े शाकाहारी होते हैं, वहाँ भोजन श्रृंखला में कम से कम तीन कड़ियाँ होती हैं । उदाहणार्थ अफ्रीका के ग्रासलैण्ड (Grassland) में

घास $\rightarrow$ जेबरा $\rightarrow$ शेर

जलीय वातावरण में अधिकतर शाकाहारी बहुत ही कम होते हैं और यहाँ पौधों के पदार्थ को जन्तुओं में बदलने के लिए (जिसके बड़े शत्रु नहीं होते हैं) अक्सर पाँच या अधिक कड़ियाँ होती हैं। एक ताल (Pound) में इनका क्रम निम्न प्रकार है–

शैवाल (Algae) $\rightarrow$ प्रोटोजोआ $\rightarrow$ छोटे जलीय कीट $\rightarrow$ बड़े जलीय कीट।

समुद्र में पाँच या अधिक कड़ियाँ होती हैं, जैसा कि चित्र 1.30 में दर्शाया गया है। भोजन श्रृंखला छोटी हो सकती है और उसमें तीन कड़ियाँ भी हो सकती है (चित्र 1.25)।

सबसे कम कडियों (Links) वाली भोजन श्रृंखला ऊर्जा सम्बन्धों के दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण होती है। मानव जीव अपनी भोजन-श्रृंखला के पदों को कम करके अपने लिए उपयोगी भोजन-ऊर्जा को बढ़ा सकता है। घनी आबादी वाले देशों जैसे– चीन, भारत व बंगलादेश के मनुष्य अधिकतर प्राथमिक उत्पादकों

(पौंधों) पर आधारित है। इन देशों में भोजन-श्रृंखला सबसे छोटी है (एक पद वाली), जिसके फलस्वरूप किसी दिए गए क्षेत्र की पैदावर अधिक आबादी के भोजन की पूर्ति कर सकती है।

खाद्य श्रृंखला के प्रकार (Kinds of Food Chain)

खाद्य श्रृंखला (Food Chain) निम्न प्रकार की होती है–

(a) प्रीडेटर चेन (Predator chain), जैसे– चारण खाद्य श्रृंखला (Grazing food chain), (b) पैरासाइटिक चेन (Parasitic chain), तथा (c) सैप्रोफाइटिक चेन (Saprophytic chain)।

(i) चारण आहार श्रृंखला (The Grazing Food Chain)– इस प्रकार की श्रृंखला हरे पौधों (उत्पादकों) से शुरू होती है तथा शाकाहारी (प्राथमिक भोजक, जन्तुओं के माध्यम से माँसाहारी द्वितीयक व तृतीयक भोजक) जन्तुओं के स्तर पर समाप्त हो जाती हैं।

1.16.5.2 समुद्र आहार श्रृंखला (Ocean Food Chain)

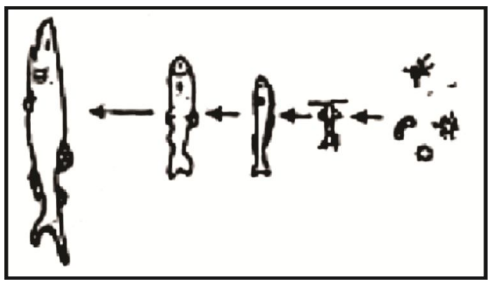

चित्र क्र. 1.33: समुद्र आहार श्रृंखला (Sea Food Chain)

सौर ऊर्जा का उपयोग पादप प्लवकों द्वारा किया जाता है। इन पादप-प्लवकों (Plant-Planktons) का भक्षण प्राणी-प्लवक या कोपिपोड्स (Copepods) करते हैं, जिन्हें छोटी मछलियाँ अपना भोजन बनाती हैं, बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को अपना भोजन बनाती हैं और अन्ततः बड़ी मछलियों का उपयोग मनुष्य करते हैं।

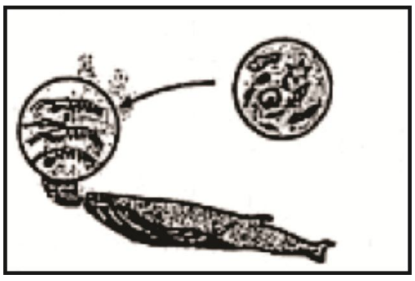

चित्र क्र. 1.34: एक छोटी आहार श्रृंखला (A Small Food Chain)

पारिस्थितिकीय तंत्र में ऊर्जा प्रवाह और आहार श्रृंखलाः पादप-प्लवक (Plant-Plankton) प्राणी प्लवको (Zoo-planktons) द्वारा खाए जाते हैं– प्राणी प्लवक (अधिकतर कॉपिपोड्स (Copepods) छोटी मछलियों द्वारा भक्षित कर लिये जाते हैं। छोटी मछलियाँ बड़ी मछलियों द्वारा खायी जाती हैं तथा बड़ी मछलियाँ उनसे बड़ी मछलियों द्वारा। पादप-प्लवक व कॉपिपोड्स बड़े यूफेसिडों (Euphasids) द्वारा खा लिये जाते हैं, जो कि नीली व्हेल (Blue whale) के द्वारा भक्षित किए जाते हे।

1.16.5.3 चरागाह खाद्य श्रृंखला (Grassland Food Chain)

यह एक प्रारूपिक चारण (Grazing) या परभक्षी (Predator) खाद्य श्रृंखला है। इस प्रकार की खाद्य श्रृंखला स्वयंपोषियों (Autotrophs) पर निर्भर करती है जो सौर

ऊर्जा को प्रकाश-संश्लेषण द्वारा भोजन के रूप में स्थिर करते हैं, ये उत्पादक (Producers) कहलाते हैं। यह सामान्यतः घास या झाड़ियाँ होती है। इन्हें शाकाहारी जन्तु-टिड्डा, चुहा, खरगोश या बकरी आदि खाते हैं। इन्हें प्राथमिक उपभोक्ता (Primary, Consumers) कहते है। प्राथमिक उपभोक्ताओं को द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers) अर्थात् माँसाहारी, जैसे– मनुष्य, छिपकली, सर्प, भेड़िए आदि खाते हैं। इनका शिकार तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers) जैसे– बाघ, शरे, बाज (Hawk) आदि करते हैं। इनकी मृत्यु पर बैक्टीरिया, कवक आदि मृत कार्बनिक पदार्थ को भूमि में लौटा देते हैं, इन्हें विघटक सूक्ष्मजीवी (Decomposers micro-organisms) कहते हैं।

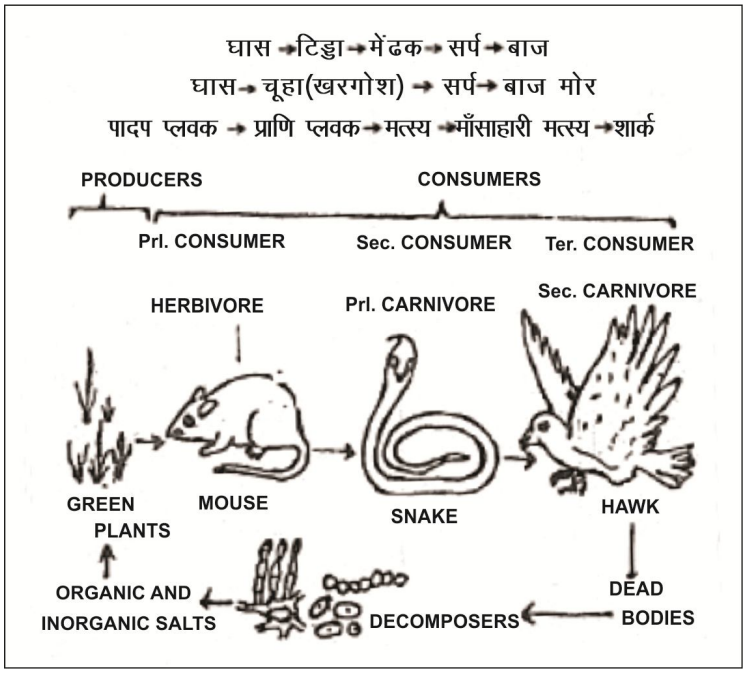

चित्र क्र. 1.35: चरागाह खाद्य श्रृंखला (Food Chain in a grassland)

1.16.5.4 वन खाद्य श्रृंखला (Forest Food Chain)

इस प्रकार की खाद्य श्रृंखला हरी वनस्पतियों से प्रारम्भ होती है और शाकाहारी जन्तुओं से होते हुए माँसाहारी जन्तुओं पर समाप्त होती है।

Green Plants	→	Herbivores Primary	→	(Carnivores (Man)	→	SecondaryCarnivorces (Lion)
(हरी वनस्पतियां)		(शाकाहारी बकरी आदि)		(प्राथमिक माँसाहारी)		(द्वितीयक माँसाहारी)

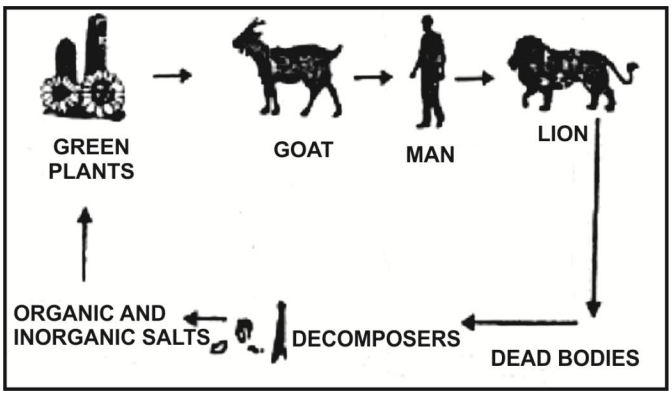

चित्र क्र. 1.36: वन खाद्य श्रृंखला (Food Chain in a forest)

1.16.5.5. पोखर या झील में खाद्य श्रृंखला (Pond Food Chain)

इस प्रकार की खाद्य श्रृंखला शैवाल या जलीय वनस्पतियों (पादप प्लवको) से प्रारम्भ होती हैं, उत्पादक (Producers) होते हैं जिनको कॉपिपोड्स (Copepods) जैसे, डैफ्निया (Daphnia) आदि खाते हैं, इन्हें प्राथमिक उपभोक्ता कहते हैं। डैफ्निया का भोजन मत्स्य करते हैं। मत्स्य को सर्प या माँसाहारी मत्स्य खा लेते हैं।

(i) अपरद आहार श्रृंखला (The Detritus Food Chain)– यह श्रृंखला मृत कार्बनिक पदार्थ से शुरू होती है तथा सूक्ष्म जीवों (जीवाणु) के माध्यम से अपरद (Detritus) जीवों का भोजन करने वाले (Predator) की तरफ बढ़ती हैं। मृत कार्बनिक पदार्थ एवं उसमें उपस्थित जीवाणुओं का भक्षण करने वाले जन्तुओं को डेटरीवोस (Detrivores) कहते हैं। उदाहरणार्थ,

अपरद → घोंघा → झाऊ चूहा (Shrew) → उल्लू

अपरद → निमेटोड → चिंचड़ी → कूट वृश्चिक

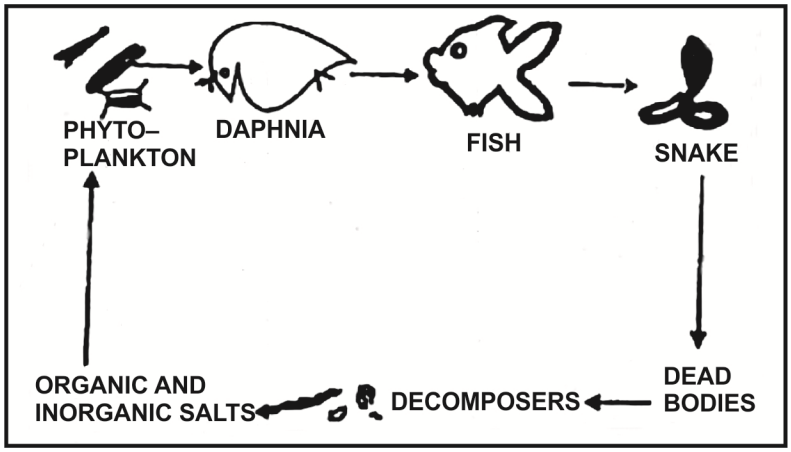

चित्र क्र. 1.37: पोखर की खाद्य श्रृंखला (Food chain in a pond)

टिप्पणी

एक प्रारूपी अपरद भोजन श्रृंखला (Detritus food chain) निम्न रूप में दर्शायी जा सकती है।

अपरद + सहायक सूक्ष्मजीव (Detritus + Associated micro-organisms)
मृत पादप पदार्थ (Dead plant matter)
↓
अपरद का भोजन करने वो जीव (Detritus-feeding organisms)
प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumers)
↓
परभक्षी (Predators)
↓
प्राथमिक तथा द्वितीयक माँसाहारी (Primary & Secondary Carnivores)

अपरद आहार श्रृंखला (Detritus food chain)

1.16.6 खाद्य जाल (Food Web)

प्रकृति में कभी भी खाद्य श्रृंखला (Food Chain) एक सीधे या सरल क्रम में नही होती, बल्कि कई खाद्य श्रृंखलाएँ एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं तथा एक प्रकार का जाल-सा बनाती हैं, जिसे खाद्या जाल (Food Web) कहते हैं। ये श्रृंखलाएँ (Chains) एक दूसरे से सम्बन्धित रहकर कार्य करती हैं। यह सम्बन्ध एक पोषक स्तर में उपस्थित अनेक जीवों का अगले क्रम के पोषक स्तर में उपस्थित विभिन्न जीवों से होता है। उदाहरण के लिए एक घास के मैदान (Grass land) की खाद्य श्रृंखला में शशक (Rabbits) होते हैं। इनकी अनुपस्थिति में चूहे घास खाना प्रारम्भ कर देंगे। चूहे बाज (Hawk) अथवा सर्प (Snake) का भोजन होंगे अर्थात प्रकृति में एक जीव की पूर्ति दूसरे जीव के द्वारा हो जाती हैं, जिसके फलस्वरूप एक प्रकार का प्रक्रम बन जाता है जो खाद्य जाल कहलाता है, इस प्रकार के खाद्य जाल में पाँच प्रकार की रेखीय (Linear) खाद्य श्रृंखलाएँ दिखाई देती हैं, जिनमें निम्न प्रकार का क्रम पाया जाता हैं–

(i) घास → कीट → पक्षी → परभक्षी

(ii) घास → टिड्डी → छिपकली → बाज

(iii) घास → खरगोश → बाज

(iv) घास → चूहे → साँप – बाज

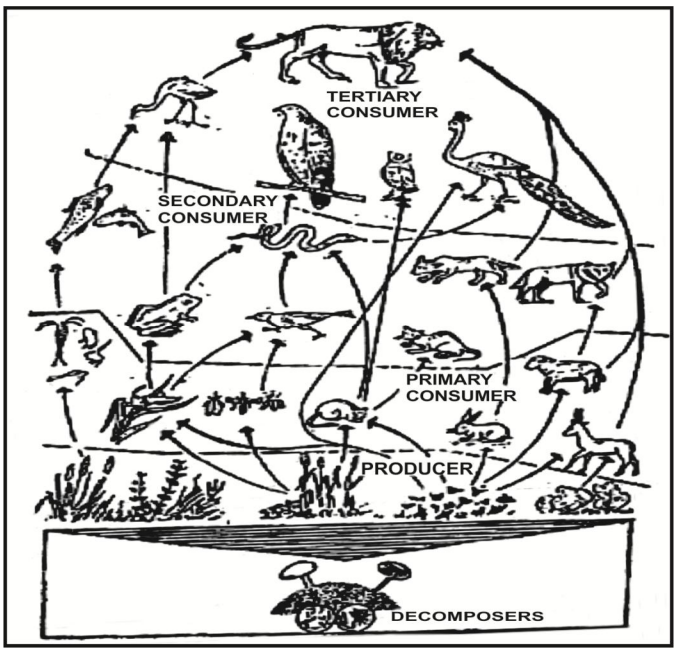

चित्र क्र. 1.38: प्रकृति में खाद्य श्रृंखला का प्राकृतिक संतुलन
(Ecological balance of Food chain in nature)

1.16.7 पारिस्थितिक पिरामिड़ (Ecological Pyramid)

पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) की भोजन श्रृंखला (Food chains) में पोषण की विभिन्न अवस्थाओं को पोषण स्तर (Trophic level) भी कहते हैं। पादप उत्पादक प्रथम पोषण स्तर बनाते हैं। शाकाहारी प्राणी द्वितीय पोषण स्तर तथा माँसाहारी प्राणी-तृतीय पोषण स्तर बनाते हैं। यदि प्रत्येक पोषण स्तर तीन के जीव-संख्या के परिमाण (Size) को एक प्लाट द्वारा निरूपित किया जाएं तथा प्लाट एक-दूसरे पर उसी क्रम में रखे जाएं जैसे वे भोजन श्रृंखला में होते हैं; तब एक पिरामिड़ (Pyramid) के समान रचना बन जाएगी। ये पारिस्थितिक पिरामिड़ कहलाते हैं।

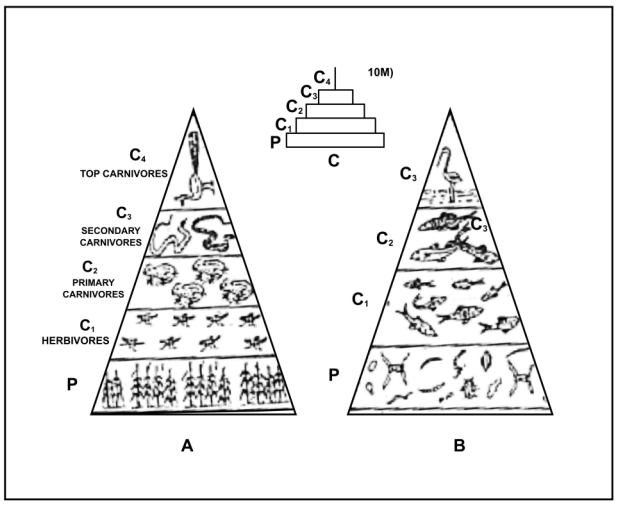

चित्र क्र. 1.39: संख्या का पिरामिड़ (Pyramids of number)

टिप्पणी

पारिस्थितिकी पिरामिड़ निम्न तीन प्रकार के होते हैं–

1. संख्या का पिरामिड़ (Pyramid of Numbers)
2. जीव-भार का पिरामिड़ (Pyramid of Biomass), तथा
3. ऊर्जा का पिरामिड़ (Pyramid of Energy)।

1. संख्या का पिरामिड़ (Pyramid of Numbers)– यह पिरामिड़ भोजन श्रृंखला के विभिन्न पोषण स्तरों में संख्यात्मक सम्बन्ध को दर्शाता है। ऐसे पिरामिड़ में अधिक संख्या से पाई जाने वाली जातियाँ पिरामिड़ के आधार के ओर एवं कम संख्या में पाई जाने वाली जातियाँ पिरामिड़ के शीर्ष की ओर पाई जाती है। इस प्रकार के पिरामिड़ से पता चलता है कि उत्पादक (Producers) सबसे ज्यादा संख्या में होते हैं और शाकाहारी (Primary consumers) अपेक्षाकृत संख्या में कम होते हैं। अतः पिरामिड्स के आधार से शीर्ष की ओर जीवों की संख्या में क्रमिक ऱ्हास होता जाता है और उनका आकार बढ़ता जाता है।

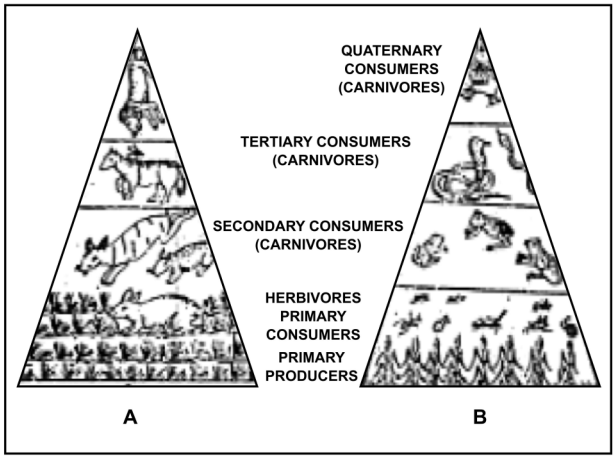

चित्र क्र. 1.40: जीव-भार का पिरामिड़ (Pyramids of biomass)

2. जीव-भार का पिरामिड़ (Pyramid of Biomass)– जीव-भार का पिरामिड़ जीवों के सजीव भार से बनता है। इस पिरामिड़ द्वारा आधार से शीर्ष की ओर प्रत्येक पोषण रीति से जीव-भार के क्रमिक ऱ्हास को दर्शाया जाता है। उत्पादकों का जीव-भार सबसे अधिक होता है।

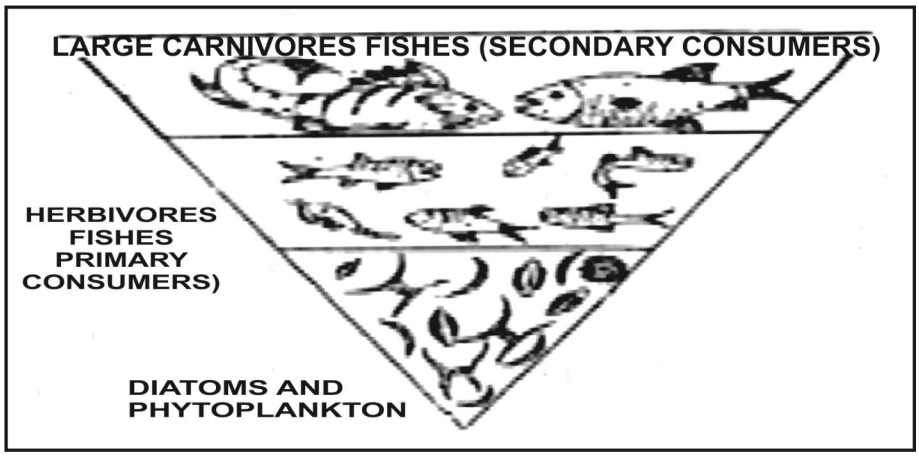

चित्र क्र. 1.41: जीव-भार या बायोमास का उल्टा पिरामिड़
(Inverted pyramid of biomass)

3. ऊर्जा का पिरामिड़ (Pyramid of Energy) – ऊर्जा के पिरामिड़ से हम भोजन के प्रत्येक पोषण स्तर पर कुल उपलब्ध ऊर्जा का पता चला सकते हैं। प्रत्येक पोषण स्तर पर ऊर्जा का क्षय होता है। निम्नतम पोषण स्तर पर ऊर्जा का क्षय उच्चतम पोषण स्तर की अपेक्षा अधिक होता है। यह पिरामिड़ विभिन्न पोषण स्तरों में ऊर्जा की उत्पादन दर को दर्शाता है। इसके आधार पर हरे पौधे व फाइटोप्लैन्कटॉन उत्पादक Producers) होते हैं तथा इसके ऊपर विभिन्न शाकाहारी एवं माँसाहारी उपभोक्ता (Consumers) होते हैं।

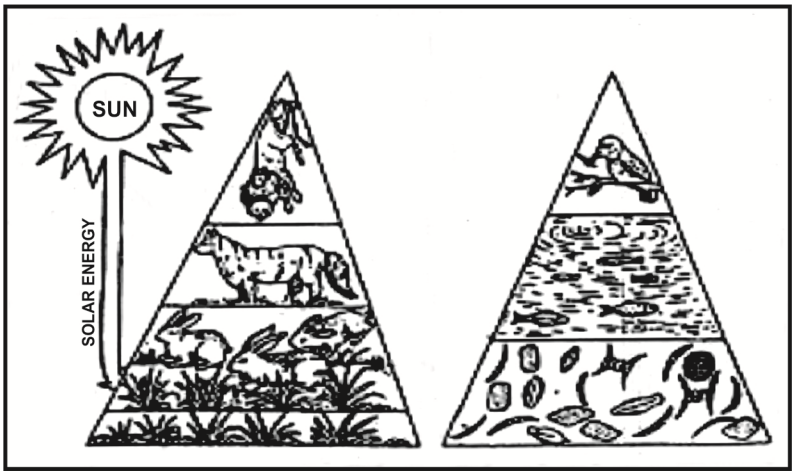

चित्र क्र. 1.42: ऊर्जा का सीधा पिरामिड़
(Straight pyramid of energy)

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

27. एक पारिस्थितिक तंत्र में बैक्टीरिया हैं –
    (अ) उपभोक्ता (ब) उत्पादक
    (क) विघटक (ड) कोई नहीं
28. इकोटोन के क्षेत्र हैं–
    (अ) ऊर्जा का प्रवाह (ब) तालाब का इकोतंत्र
    (क) कोनीफर वन (ड) पिरामिड़ का बनना
29. ऊर्जा का पिरामिड़ होता है–
    (अ) सीधा (ब) उल्टा
    (क) दोना अ व ब (ड) कोई नही
30. सामाजिक संगठन पाई जाती है–
    (अ) कीटों में (ब) मोलस्कस में
    (क) इकाइनोडर्मेट्स मे (ड) कोई नही

1.17 जैव-भू-रासायनिक चक्र (Bio-Geo-Chemical Cycles)

1.17.1 परिचय एवं परिभाषा (Introduction/Definition)

वातावरण में अनेकों ऐसे भौतिक पदार्थ होते हैं, जैसे– जल, थल, वायु, आदि, जो जीवों की रचना में भाग लेते हैं। जीव पृथ्वी पर प्राप्त जीवनोपयोगी भौतिक पदार्थों को ग्रहण करते हैं तथा उनकी मृत्यु के उपरान्त इन कार्बनिक पदार्थों का अपघटन होता है, जिसके फलस्वरूप पदार्थ पुनः वातावरण में मिल जाते हैं। यह पदार्थों का प्राकृतिक चक्रीयकरण कहलाता है।

जीवद्रव्य में मूलभूत तत्वों सहित सभी रासायनिक तत्व कुछ विशिष्ट चक्रों द्वारा वायुमण्डल में प्राणियों से तथा फिर वातावरण में मुक्त होकर जीवमण्डल (Biosphere) में प्रवाहित होते रहते हैं। मूलभूत तत्वों के इस चक्रीय परिभ्रमण को जैव-भू-रासायनिक चक्र (Bio-geo-chemical cycle) कहते हैं।

जन्तुओं को जटिल कार्बनिक पदार्थ पौधों से प्राप्त होते है। हरे पौधे भूमि से खनिज तत्व लेकर सौर ऊर्जा और CO_2 की उपस्थिति में जटिल कार्बनिक पदार्थ बनाते हैं। ये पदार्थ समस्त उपभोक्ता जन्तु और सूक्ष्मजीव वर्ग को पौधों से ही मिलते हैं, जिससे सूर्य से प्राप्त ऊर्जा रूपान्तरित होकर कार्बनिक पदार्थों में संचित हो जाती है। पौधों एवं जन्तुओं की मृत्यु के पश्चात अपघटकों, जैसे– जीवाणु, कवक इत्यादि की जैविक क्रियाओं द्वारा मृत कार्बनिक पदार्थ विघटित हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप पदार्थों का कुछ भाग अपघटकों के शरीर-निर्माण में लग जाता

है। कार्बन डाइऑक्साइड स्वतंत्र होकर वायुमण्डल में मिल जाती हैं तथा अन्य खनिज तत्व पुनः भूमि में मिल जाते हैं।

टिप्पणी

जीवों को अपनी जैवीय क्रियाओं को चलाने तथा जीवद्रव्य के निर्माण हेतु अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है। कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, तथा ऑक्सीजन की आवश्यकता सर्वाधिक मात्रा में होती है। अन्य पदार्थों में फॉस्फोरस (P), सल्फर (S), पोटैशियम (K), मैग्नीशियम (Mg), कैल्शियम (Ca), सोडियम (Na), लोहा (Fe), मैंगनीज (Mn), कोबाल्ट (Co), ताँबा (Cu), जिंक या जस्ता (Zn), बोरॉन (B), मॉलीब्डेनम (Mo), आदि आवश्यक हैं। इनमें कोबाल्ट, ताँबा, जस्ता, बोरॉन, मॉलीब्डेनम, मैंगनीज तत्वों की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा (Very small amount or trace quantity) ही आवश्यक होती हैं इन्हें माइक्रो-तत्व (Micro-element) कहते हैं।

इन तत्वों के अतिरिक्त अनेक आधुनिक अनुसन्धानों से यह ज्ञात हुआ है कि क्लोरीन (Cl), ब्रोमीन (Br), आयोडीन (I), क्रोमियम (Cr), स्ट्रॉन्शियम (Sr), आदि तत्वों की भी जीवों को आवश्यकता होती है।

इस आधार पर इन्हें पोषक द्रव्य (Nutrient substances) के अन्तर्गत दो समूहों में विभाजित किया गया हैं।

1.17.2 पोषक द्रव्य (Nutrient Substances)

जीवन के परम आवश्यक तत्वों तथा अनेक विलेय लवणों को सुविधापूर्वक जीवनीय लवण (Biogenic salt) अथवा पोषक द्रव्य (Nutrients) नाम दिया गया है। पोषक द्रव्यों में खनिज (Minerals) एवं कुछ कार्बनिक (Organic) यौगिक हैं। इन्हें दो भागों में विभक्त किया गया हैं–

1. स्थूल पोषक द्रव्य (Macro-nutrients) तथा
2. सूक्ष्म पोषक द्रव्य (Micro-nutrients)।

1. **स्थूल पोषक द्रव्य (Macro-nutrients)**– इस समूह में वे तत्व और उनके यौगिक उपस्थित है, जो जीवद्रव्य (Protoplasm) के मुख्य संघटक है, और जिनकी आवश्यकताएँ अधिक मात्रा में होती हैं, जैसे– कार्बन, हाइड्रोजन, कैल्शियम, पोटैशियम, नाइट्रोजन, मैग्नीशियम, गन्धक तथा फॉस्फोरस आदि।
2. **सूक्ष्म पोषक द्रव्य (Micro-nutrients)**– इस समूह में वे तत्व और उनके यौगिक हैं, जो जीवन के लिए परमावश्यक या अनिवार्य तो हैं, परन्तु अत्यल्प या अति सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक हैं। न्यूनतम मात्रा में निम्न दस सूक्ष्म पोषक तत्व प्राथमिक उत्पादक के लिए आवश्यक होते हैं – लौह, मैंगनीज, कॉपर, जिंक, बोरॉन, सोडियम, मॉलिब्डनम, क्लोरीन, कोबाल्ट तथा वैनेडियम। इनमें सोडियम विषमपोषियों (विशेष रूप से मनुष्य) के लिए स्थूल-लघु पोषक तत्व (Macro-nutrient element) है।

टिप्पणी

1.17.3 पोषक द्रव्यागार या भण्डार (Nutrient Pool)

किसी भी पारिस्थितिकी तन्त्र में सभी पोषक द्रव्य पर्यावरण में न तो समांगी रूप से समान अवस्था (Homogenously) वितरित पाये जाते है और न एक ही रासायनिक रूप में पाए जाते हैं। ये पोषक द्रव्य खण्डों (Compartments) में पाए जाते है, जिन्हें 'पोषक द्रव्य भण्डार' या कुण्ड (Nutrient pool) कहते है।

पारिस्थितिक दृष्टिकोण (Ecological point of view) से दो विभिन्न प्रकार के आगारों (Pools) को समझना सुविधाजनक रहेगा।

इन तत्वों का चक्रीयकरण होना आवश्यक है। कुछ तत्व जैसे कार्बन का चक्रीयकरण अधिक तीव्र होता है। अर्थात् जिस गति से यह तत्व वातावरण से निकलता है, उतनी ही तेजी से उसमें वापिस लौट आता है। अन्य तत्वों का चक्रीकरण कुछ कम दर से हो सकता हैं, अर्थात तत्व का कुछ भाग अधिक समय लगने के स्थान के कारण समाप्त हो सकता है।

जीवन के लिए आवश्यक तत्वों व अकार्बनिक यौगिकों के प्रवाह को खनिजों का चक्रीय-प्रवाह (Cyclic flow) कहते हैं। प्रत्येक चक्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **निचय कुण्ड (Reservoir pool)**– यह कुण्ड बड़ा व मन्द दर से गतिशील होता है। यह साधारणतया जैविक घटक नहीं होता, इसे विशाल अजैविक कुण्ड (Mega-Non-Biological Pool) भी कहते हैं और अप्राप्य पोषक कुण्ड (Unavailable Nutrient Pool) भी, क्योंकि इस (आगार) में विद्यमान पोषक द्रव्यों का तुरन्त एवं सीधा उपयोग स्वयंपोषी पादप या जीवधारी नहीं कर सकता है। निचय कुण्ड के प्रमुख तथ्य इस प्रकार हैं–
   (i) विशाल अजैविक कुण्ड आगार निश्चित और स्थायी रूप से जीवों के लिए अप्राप्य नहीं है, अपितु लघु जैविक आकार (Micro-biological) के परमाणु की तुलना में अप्राप्य है।
   (ii) इस कुण्ड (आगार) से पोषक द्रव्य लघु कुण्ड (आगार) में आता है और बहुत सी परिस्थितियों मे लघु कुण्ड से पोषक द्रव्य इस कुण्ड में वापिस जाता है।
   (iii) दूसरे शब्दों में अप्राप्य पोषक कुण्ड एवं प्राप्य पोषक कुण्ड में पोषक द्रव्यों का विनिमय होता रहता हैं, परन्तु विनिमय की दर अति मन्द होती है।
   (iv) जीवों से इस कुण्ड का प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने से इसे अजैविक (Abiological) कहते हैं।
2. **अस्थिर (Labile) या चक्रीय (Cycling) कुण्ड**– यह छोटा एवं सक्रिय घटक (Active component) है तथा वातावरण व प्राणी के बीच विनिमयशील (Exchangeable) कुण्ड है। इसे लघु जैविक कुण्ड (आगार) (Micro Biological Pool) भी कह सकते हैं। इसे प्राप्य पोषक कुण्ड

टिप्पणी

(Available Nutrient Pool) भी कहा जाता है। इसके प्रमुख तथ्य निम्नानुसार हैं–

(i) इसका सम्बन्ध एक ओर तो अप्राप्य कुण्ड से रहता है और दूसरी ओर पारिस्थितिकी तंत्र के जैव घटकों से रहता है।

(ii) प्राप्य कुण्ड में पोषक तत्वों के विनिमय की दर अपेक्षाकृत तीव्र होती है।

(iii) यह सक्रियता में भी विशिष्ट होता है।

(iv) इस कुण्ड से पोषक द्रव्य सर्जक पादपों में जाते हैं, और तद्नन्तर भोजन श्रृंखला के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र के अन्य जीवों में भी क्रमशः पहुँचते हैं।

(v) पादपों एवं प्राणियों के शरीर में संचित ये पोषक द्रव्य मृत्यु के उपरान्त विघटक जीवों की क्रिया के परिणामस्वरूप अन्ततः पुनः कुण्ड में पहुँच जाते है। इसी को पोषक द्रव्यों की चक्रीय गति कहा जाता है। जीवों से प्रत्यक्ष सम्पर्क में होने के कारण इसे जैविक कुण्ड (Biological Pool) की संज्ञा दी गयी है।

जैव-भू-रासायनिक चक्रों के प्रकार

जैव-भू-रासायनिक चक्र मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं–

1. **गैसीय चक्र (Gaseous types)**– इसका निचय कुण्ड (Reservoir pool) वायुमण्डल या जलमण्डल होता है।
2. **अवसादी चक्र या सेडीमेन्टरी या तलछट चक्र (Sedimentary cycles)**– इसमें निचय कुण्ड थल मण्डल (Lithosphere) होता है। इस समूह के अन्तर्गत उन समस्त पोषक द्रव्यों का चक्रीय परिभ्रमण हो जाता है, जिसका विशाल कुण्ड एवं लघु द्रव्यकुण्ड भूमि में स्थित मृदा (Soil) अथवा समुद्र की तलहटी अथवा अन्य जलाशयों की तलहटी में पाया जाता है। समस्त खनिज पोषक द्रव्य इसी समूह में आते हैं, क्योंकि तलछट (Sedimentation) द्वारा उनके पिण्ड कुण्ड का निर्माण होता है। तलछट जैव-भू-रासायनिक चक्रों का भ्रमण पथ अधिक अपूर्ण होता है, क्योंकि ये मुख्य रूप से भूमि से सम्बन्धित रहते हैं और ये बड़े शीघ्र आकस्मिक रूप से क्रियाओं से विचलित हो सकते हैं।

1.18 गैसीय चक्र (Gaseous Cycle)

1.18.1 कार्बन डाइऑक्साइड चक्र (Carbon Dioxide Cycle)

कार्बन का परिभ्रमण कार्बन डाइऑक्साइड के परिभ्रमण के तुल्य होता है। समस्त कार्बनिक यौगिकों का आधारभूत घटक कार्बन है। कार्बोहाइड्रेट्स एवं वसा के उपयोग के एकत्रण के फलस्वरूप होने वाले ऊर्जा प्रवाहों के साथ ही पारिस्थितिकीय

तन्त्र में कार्बन भी परिभ्रमित होता रहता है। वायुमण्डलीय कार्बन डाईऑक्साइड एवं जल में घुली हुई कार्बन डाइऑक्साइड ही किसी न किसी रूप में इन यौगिकों के लिए आवश्यक कार्बन का मुख्य स्त्रोत हैं–

(i) जीवों में कार्बन डाइऑक्साइड के उपयोग में पहला चरण हरे पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण के रूप में प्रारम्भ होता है। पृथ्वी पर जीवों के लिए कार्बन का स्त्रोत वायुमण्डल में विद्यमान (उपस्थित) कार्बन डाइऑक्साइड है। प्रकाश-संश्लेषी (स्वपोषी) पादपों द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड के अवकरण से जैविक कार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण होता है। इसे प्रकाश-संश्लेषण कहते हैं।

(ii) कार्बन तथा ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन, सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में साधारण कार्बोहाइड्रेटस् में परिवर्तित होते हैं। ये पौधों द्वारा वसा एवं पॉलिसैकेराइडस में संश्लेषित किए जाते हैं। वसा तथा पॉलिसैकेराइड्स, जो पौधों के ऊतकों में संचित होते हैं, जन्तुओं द्वारा खाए जाते हैं तथा इन कार्बन यौगिकों का दूसरे यौगिकों में संश्लेषण होता है। शाकाहारी जन्तु पौधे खाकर इनके कार्बन यौगिकों का पाचन करते हैं और फिर इन यौगिकों का दूसरे यौगिकों (जन्तु कार्बनिक यौगिक) में संश्लेषण करते है।

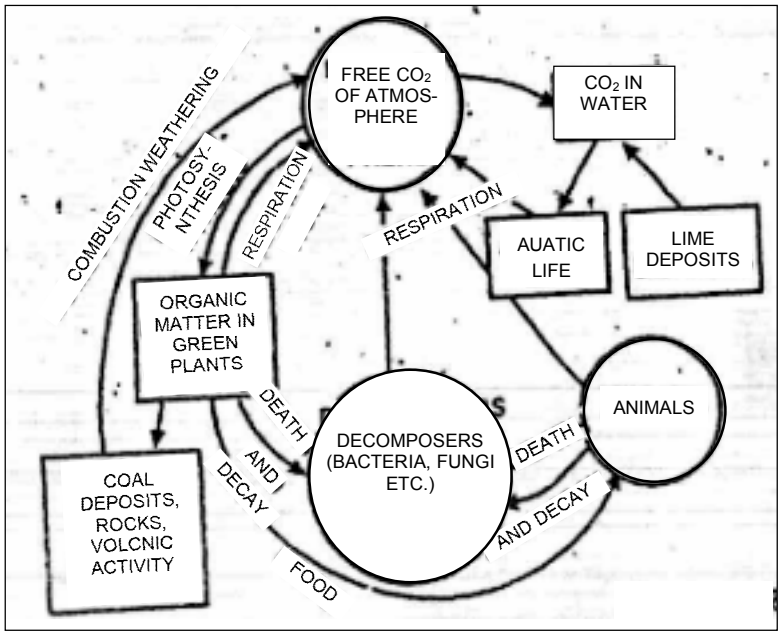

चित्र क्र. 1.43: कार्बन-चक्र (Carbon Cycle)

(iii) कार्बन की कुछ मात्रा दुबारा वायुमण्डल में चली जाती है (क्योंकि कार्बन डाइऑक्साइड पौधों तथा जन्तुओं दोनों के लिए श्वसन क्रिया का उत्पादक है। जीवधारियों के श्वसन से एवं उनके उत्सर्जी पदार्थों और मृत अपमार्जन या अपरदन से विघटन द्वारा उत्पन्न कार्बन डायऑक्साइड पुनः वायुमण्डल में पहुँच जाती है। इसके अतिरिक्त ज्वालामुखी के उद्‌गार तथा

पृथ्वी में संचित कोयले, पेट्रोल ईंधन आदि के जलाने से भी कार्बन डायऑक्साइड वायुमण्डल में पहुँचती रहती है।

टिप्पणी

(iv) जन्तुओं के उत्सर्जी पदार्थों तथा पौधों एवं जन्तुओं के जीवद्रव्य में बँधा हुआ कार्बन शरीर के विघटन के बाद निर्मुक्त होता है। जीवाणु तथा फंगस इन पौधों एवं जन्तुओं के विघटन के पश्चात् इनके बचे हुए भागों को खाते हैं तथा जटिल कार्बनिक यौगिकों को सरल यौगिकों में परिवर्तित करते हैं, जो बाद में नये चक्र प्रवेश के लिए उपलब्ध होते हैं।

(v) जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों से कार्बन डाइऑक्साइड वायुमण्डल से जल में विसरण क्रिया द्वारा घुल जाती हैं। इसके अतिरिक्त वर्षा द्वारा भी वायुमण्डलीय कार्बन डाइऑक्साइड भूमि एवं जलाशयों में पहुँचती है। जल में घुली कार्बन डाइऑक्साइड. पानी से क्रिया करती है। $CO_2 + H_2O \rightarrow H_2CO_3$ यह क्रिया उत्क्रमणीय है, अतः वायुमण्डल एवं जल दोनों में से जिसमें इसकी सान्द्रता कम रहेगी, उसी ओर विसरण होकर उभय पक्ष में सन्तुलन बना रहता है।

वायुमण्डलीय कार्बन डाइऑक्साइड

↓

जल विलेय CO_2 + जल → कार्बोनिक अम्ल

1.18.2 नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)

नाइट्रोजन का अजैविक और जैविक तंत्रों का चक्रीय परिभ्रमण नाइट्रोजन चक्र कहलाता है। यह परम स्त्रोत के रूप में काम आता है।

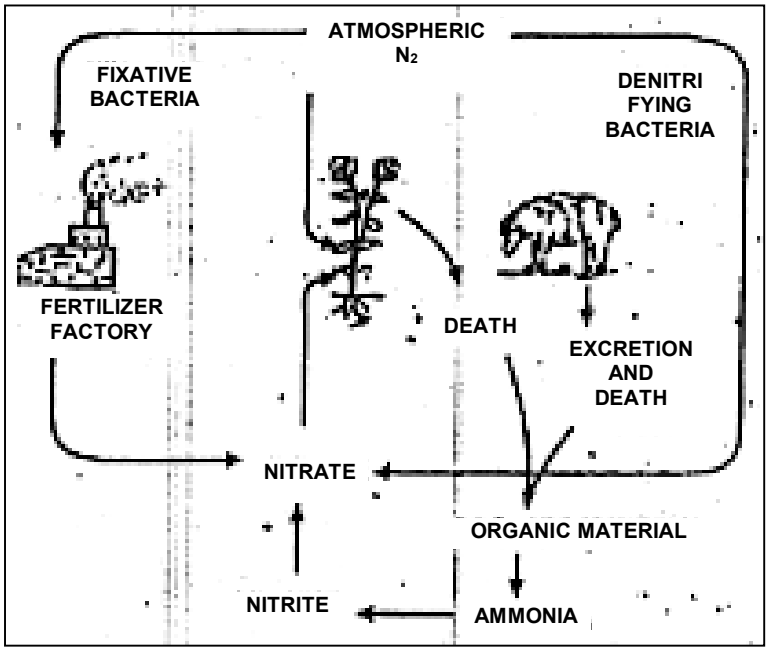

चित्र क्र. 1.44: वायुमण्डलीय नाइट्रोजन चक्र (Amospheric Nitrogen Cycle)

टिप्पणी

1.18.2.1 नाइट्रोजन के स्त्रोत (Sources of Nitrogen)

(i) वायुमण्डल में नाइट्रोजन लगभग 78% आयतन की दृष्टि से उपस्थित रहती है। वायुमण्डल में N_2 का सबसे बड़ा अजैविक भण्डार है।

(ii) वायु की नाइट्रोजन जो कि बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है, वह रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय होती है। यह नाइट्रेट या नाइट्रेट आयन्स (NO_3) के रूप में उपयोग की जा सकती है। पौधे नाइट्रेट आयन्स को वातावरण से खनिज मेटाबोलाइट्स के रूप में ग्रहण करते हैं तथा ये नाइट्रेट आयन्स अमोनिया समूह (–NH) व अन्य नाइट्रोजन के यौगिकों में बदले जा सकते हैं।

(iii) नाइट्रोजन के दूसरे स्त्रोत मिट्टी में नाइट्रेट खाद के रूप में मिलते हैं या जल द्वारा चट्टानों के घुलने से नाइट्रेट या अन्य N_2 यौगिकों के रूप में प्राप्त होते हैं।

(iv) नाइट्रेट्स की कुछ मात्रा वायुमण्डल में भी उपस्थित रहती है, जो कि नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन के साथ मिलने के फलस्वरूप बनते हैं। यह संयोग वायुमण्डलीय विद्युत की उपस्थिति में होता है। इन नाइट्रेट्स को वर्षा तब अपने जल के साथ पृथ्वी पर ले आती है।

(v) पौधों में कार्बनिक पदार्थ के रूप में उपस्थित नाइट्रोजन इनकी मृत्यु तक रहती है। जन्तु उपयोगी (Usable) नाइट्रोजन एक-दूसरे से भी लेते हैं और पौधों के खाने से भी । अन्त में जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है।

(vi) समस्त नाइट्रोजन की मात्रा जो मृत व सजीवों के शरीर से उपलब्ध होती है, अन्तावस्था में अमोनिया (NH_3) में बदल जाती है। यह पदार्थ वातावरण में पहुँच जाता है, जहाँ यह नाइट्रीकारी जीवाणु (Nitrifying bacteria) की क्रिया के लिए खाद्य पदार्थ बनता है।

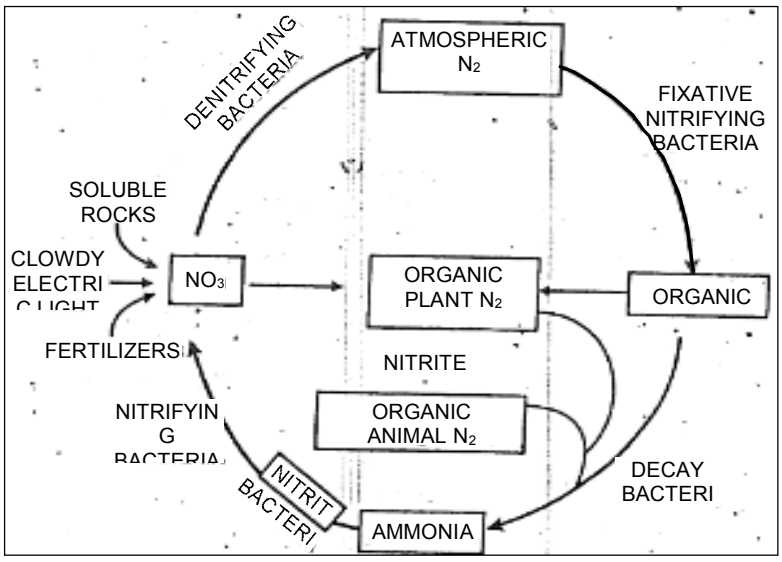

चित्र क्र. 1.45: प्राकृतिक नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)

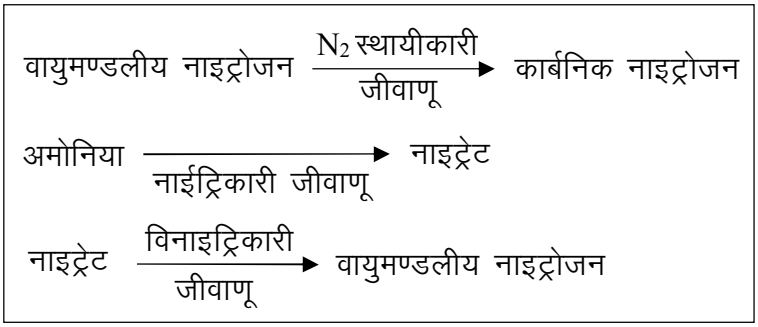

1.18.2.2 नाइट्रोजन का जैविक तंत्र में प्रवेश (Flow of N_2 Biotic System)

यद्यपि पौधों के लिए नाइट्रोजन एक महत्वपूर्ण आवश्यक पोषक पदार्थ है फिर भी वे वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का सीधा-सीधा प्रयोग नहीं कर सकते है। पौधे नाइट्रोजन का NH_3 नाइट्रेट्स और नाइट्राइट जो नाइट्रोजन के जल में घुलनशील लवण के रूप में ही ले सकते है। ये पदार्थ वायुमण्डलीय N_2 के स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) द्वारा बनते हैं।

1.18.2.3 नाइट्रोजन का स्थिरीकरण (Fixation of Nitrogen)

नाइट्रोजन स्थिरीकरण वह क्रिया है जिसके द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन जल में घुलनशील नाइट्रोजनीय यौगिकों जैसे, NH_4, NH_3, NO_3, NO_2 आदि में बदल दी जाती हैं।

नाईट्रोजन का स्थिरीकरण दो प्रकार से होता है–

1. विद्युत-रासायनिक स्थिरीकरण (Electro-chemical Fixation)
2. जैविक स्थिरीकरण (Biological Fixation)

1. **विद्युत-रासायनिक स्थिरीकरण (Electro-chemical Fixation)**– वायुमण्डलीय विद्युत या तड़ित-विद्युत (Lightning electric discharge), जो बादलों की क्रिया से बनती है, नाइट्रोजन को नाइट्रेट्स् और नाइंट्राइट्स में बदल देती है।

$$N_2 + O_2 \rightarrow 2NO$$

$$2NO + O_2 \rightarrow 2NO_2 + O_2 \rightarrow 2NO_3$$

यह यौगिक वर्षा के साथ भूमि पर आ जाता है और नाइट्रेट्स के रूप में पौधों द्वारा खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार स्थिरीकृत N_2 की मात्रा 35 mg/m^2 प्रति वर्ष होती है।

2. **जैविक स्थिरीकरण (Biological Fixation)**– कुछ जीवधारी, जैसे – बैक्टीरिया, नील-हरित शैवाल, कवक तथा अन्य सूक्ष्मजीवी वायुमण्डलीय स्वतंत्र नाइट्रोजन को घुलनशील लवणों में बदल देते हैं। इस विधि से लगभग 140 से 700 mg/m^2 प्रति वर्ष नाइट्रोजन स्थिर की जाती है। या एक अनुमान से 200 मिलियन टन नाइट्रोजन

टिप्पणी

प्रति वर्ष स्थिर की जाती है। यह नाइट्रोजन भूमि में मिल जाती हैं या फिर पौधों को सीधे स्थिरीकृत N_2 सूक्ष्मजीवियों के माध्यम से मिल जाती है।

सूक्ष्मजीव जो नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं, वे प्रमुख रूप से राइजोबियम (Rhizobium) ऐजोबैक्टर (Azobactor), क्लोस्ट्रीडियम (Clostridium), नाइट्रोसोमोनास (Nitrosomonas), नाइट्रोकोकस (Nitrococus), नाइट्रोबैक्टर (Nitrobactor), ऐनाबीना (Anabaena), नॉस्टॉक (Nostoc) आदि है।

हमारे वातावरण में लगभग 78 प्रतिशत नाइट्रोजन विद्यमान है। यद्यपि यह अत्यन्त निष्क्रिय हैं, फिर भी कार्बनिक यौगिक के रूप में प्रत्येक जीवधारी का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह नाइट्रोजन, प्रोटीन, न्यूक्लिक ऐसिड, विटामिन एवं अन्य जीवन सम्बन्धी अणुओं में पाया जाता है, नाइट्रोजन के स्थिरीकरण या यौगिकीकरण द्वारा कुछ जीवाणुओं की जैविक क्रियाएँ वायुमण्डल की निष्क्रिय नाइट्रोजन गैस को अमोनिया के रूप में स्थिर करने में सक्षम होती हैं। यह स्थिरीकृत नाइट्रोजन (Fixed N_2) पौधों तथा अन्य सूक्ष्मजीवों द्वारा अमीनों आम्ल तथा अन्य नाइट्रोजन युक्त पदार्थों के निर्माण में काम आती हैं।

सर्वप्रथम सम्भवतः सन 1888 ई. में विलगार्थ तथा हैलरी गेल ने यह सिद्ध किया कि दलहनी या लेग्यूमिनस फसलों की जड़ों में ग्रंन्थियाँ होती हैं, जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए उत्तरदायी है। इसके बाद बेरिंक ने उन जीवाणुओं को खोज निकाला जो ग्रन्थियों को उत्पन्न करने तथा नाइट्रोजन के यौगिकीकरण में भाग लेते हैं। फ्रैंक ने सन 1890 ई. में ग्रन्थि जीवाणुओं को राइजोबियम नाम दिया। इन जीवाणुओं की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि एक विशिष्ट स्पीशीज के परपोषी पौधे के साथ ही स्थिरीकरण करते हैं।

दलहनी पौधें (Leguminous plants) नाइट्रोजन की सीमित मात्रा होने की दशा में भी उग सकते हैं और बढ़ सकते हैं, क्योंकि ये नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं (राइजोबियम) के साथ सहजीवन स्थापित करते हैं। ये जीवाणु अपनी एवं दलहनी फसलों की वृद्धि के लिए वायुमण्डल की नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करते हैं। ये पौधे जब मर जाते हैं तो उनकी नाइट्रोजन मिट्टी में मिल जाती है। इस प्रकार मृदा की उर्वरता में वृद्धि होती है। निम्न सारणी में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की सूची दी गई हैं–

सारणी क्र. 1.4: नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु

क्र. सं.	जातियाँ	जीवाणु वर्ग	टिप्पणी
1.	ऐजोटोबैक्टर वाइन्लेन्डाई	ग्राम-निगेटिव	वायु की नाइट्रोजन को स्थिरीकृत करता है तथा ऐसा प्रोटीन रखता है, जो ऑक्सीकरण द्वारा होने वाली हानि से नाइट्रोजन की रक्षा करता है।
2.	राइजोबियम स्पीशीज	ग्राम-निगेटिव	दलहनी फसलों में पाई जाने वाली ग्रन्थियों (Nodule) में नाइट्रोजन को स्थिरीकृत करता है।
3.	क्लेबसिला न्यूमोनी	ग्राम-निगेटिव	निफ-आनुवंशिकी की नमूना पद्धति
4.	रोडोस्पाइरिलम, रोडोस्यूडोमोनास	ग्राम-निगेटिव	बैंगनी-हरा प्रकाश-संश्लेषी जीवाणु
5.	क्लॉस्ट्रीडियम, ऐनाबीना	ग्राम-पॉजिटिव	अविकल्पी (Non-obligatory) एवं अवायुवीय जीवाणु
6.	मीथेनोकोकस, आर्कीबैक्टीरियम ऐजोस्पाइरिलम	ग्राम-निगेटिव	घास की जड़ों में सहभोजी हैं।
7.	फ्रैंकिंया	ग्राम-पॉजिटिव	काष्ठ (Woody) वाले वृक्षों तथा झाड़ियों की जड़ ग्रन्थियों में नाइट्रोजन स्थिरीकृत करता हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकृत करने वाले बैक्टीरिया की विशेष योग्यता नाइट्रोजन गैस को अमोनिया में अपचयित करना है, जो कि नाइट्रोजिनेज संकुल (Nitrogenase Complex) नामक एन्जाइम पर निर्भर करती है। यह एन्जाइम संकुल विभिन्न नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं में लगभग एक-सा ही होता है।

इलेक्ट्रॉन तथा जल से प्राप्त हाइड्रोजन आयनों (H^+) के संयोग से अमोनिया में अपचयित होने के बाद नाइट्रोजन लगभग निश्चित रूप से इसी सहकारक (Co-factor) के साथ बंधित होती है। नाइट्रोजन का अपचयन एक ऊर्जा-व्ययपूर्ण क्रिया है। ऐडीनोसिन-ट्राइ-फॉस्फेट (ATP) के 20-30 अणु ऊर्जा इस नाइट्रोजन के अमोनिया में अपचयित होने में प्रयोग में आते हैं–

$$N_2 + 3H_2 \xrightarrow[\text{नाइटोजिनेज रिडक्टेज}]{\text{नाइटोजिनेज कॉम्प्लेक्स}} 2NH_3$$

नायट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य नाइट्रोजिनेन रिडक्टेज नामक एन्जाइम नाइट्रोजिनेन को अपचयित करता है और इस क्रिया में प्राप्त इलेक्ट्रॉन नाइट्रोजन को अपचयित करने के काम आते है। इस प्रकार नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता रहता है।

प्रकाश-संश्लेषण में पौधे वायु की कार्बन डाइऑक्साइड से कार्बोहाइड्रेट्स का संश्लेषण करते हैं। इस संश्लेषित कार्बोहाइड्रेट्स की कुछ मात्रा पौधों की जड़ों में आ जाती है, जिसका बैक्टीरिया अपने ऊर्जा स्त्रोत भोजन के रूप में उपभोग कर लेते हैं। बैक्टीरिया बदले में वायुमण्डल की नाइट्रोजन को स्थिर करके पौधों को देते हैं। बैक्टीरिया और पौधों के इस सम्बन्ध को सहभोजिता कहते है। निम्नांकित सारणी में कुछ चयनित राइजोबियम जातियाँ और उनके परपोषी (Host) पौधे दर्शाए गए हैं।

सारणी क्र. 1.5: कुछ राइजोबियम जातियाँ और उनके परपोषी (Host) पौधे

क्रमांक	जीवणु जातियाँ	आश्रयी पौधा	टिप्पणी
1.	राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम	मटर, चौड़ी, सेम, मसूर	ये जातियाँ एक-दूसरे की के बहुत निकट सम्बन्धी हैं।
2.	राइजोबियम ट्राइफोलाई	क्लोवर	
3.	राइजोबियम फेसियोलाई	फेजियोलस सेम	
4.	राइजोबियम लोटाई	लोटस	लोटस ब्रेडी में राइजोबियम अपनी ग्रन्थियाँ (नोड्यूल्स) बनाती हैं।
5.	राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिन	–
6.	राइजोबियम मेलिलोटाई	एल्फाल्फा	–
7.	राइजोबियम सेस्बीनिया	सेस्बीनिया	इसकी जड़ों तथा तनों दोनों पर नोड्यूल्स (Nodules) पाए जाते हैं। ये स्वतंत्र रूप से संवर्धन (Culture) में भी नाइट्रोजन स्थिरीकृत करता है।
8.	राइजोबियम फ्रेडाई	सोयाबीन	अधिकांश सोयाबीन संवर्धन में अस्थिरीकृत नोड्यूल्स पाए जाते हैं।
9.	ब्रेडी राइजोबियम जेपोनिकम	सोयाबीन	कुछ उपजातियाँ स्वतंत्र संवर्धन में नाइट्रोजन स्थिरीकृत करती हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकृत करने वाले बैक्टीरिया जड़ों में प्रवेश करके संक्रमण नलिका (Infection tube) बनाते हैं। यह नलिका पूरे मूल रेाम में फैलकर मूलक व कॉर्टेक्स के विभाजन को प्रेरित करती हैं। इस प्रकार जड़ों में ग्रन्थि या नोड्यूल्स बन जाती हैं पौधों की वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में ये बैक्टीरिया जड़ों पर संक्रमण करते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में बैक्टीरिया पौधों पर निर्भर रहते हैं तथा बाद में पौधों को स्थिरीकृत नाइट्रोजन देकर लाभ पहुँचाते हैं। इस प्रकार बैक्टीरिया का विकास एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। फलीदार (Leguminous) फसलों की जड़ों पर उपस्थित ग्रन्थियों में आयरन के एक यौगिक

लैग्टीमोग्लोबिन की उपस्थिति के कारण लाल रंग की होती है। बैक्टीरिया के शरीर में नाइट्रोजन स्थिर हो जाने के तुरन्त बाद यह पौधे इसका उपयोग नहीं कर सकते हैं, बल्कि बैक्टेरॉइड्स का विच्छेदन स्वतोलयन द्वारा होता है, जिसमें बैक्टेरॉयड नष्ट हो जाते हैं तथा नाइट्रोजन पौधों के उपयोग के योग्य हो जाती है।

परपोषी (Host) पौधों से भी एक विशेष प्रकार का बैक्टीरियायुक्त एन्जाइम स्त्रावित होता है, जो बैक्टेरॉइड्स को शीघ्र ही जल विश्लेषित करके नाइट्रोजन को पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं । आजकल धान की फसल में नील-हरित शैवाल-ऐजोला (Blu-green-algae-Azola) द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। निम्न सारणी में विभिन्न दलहनी पौधों द्वारा नाइट्रोजन की स्थिरीकृत मात्रा दर्शायी गई हैं।

सारणी क्र. 1.6: कुछ दलहनी पौधों द्वारा नाइट्रोजन की स्थिरीकृत मात्रा

क्रमांक	दलहनी पौधों का नाम	किलोग्राम नाइट्रोजन /हेक्टेयर/वर्ष
1.	रैड क्लोवर	85–190
2.	सोयाबीन	65–115
3.	एल्फाल्फा	125–335
4.	लोबिया	65–130
5.	मटर	80–150

नाइट्रोजन स्वांगीकरण (Nitrogen Assimilation) – पौधे स्थिरीकृत नाइट्रोजन (Fixed nitrogen) का नाइट्रेट (Nitrate) अथवा अमोनियम आयन (Ammonium ions or NH_4^+) के रूप में स्वांगीकरण (Assimilation) करते हैं।

अधिकांशतया स्थिरीकृत नाइट्रोजन का स्वांगीकरण नाइट्रेट आयन (NO_3^-) के रूप में पौधों द्वारा किया जाता है। नाइट्रीफाइंग जीवाणु (Nitryfying bacteria) आसानी से अमोनियम आयनों (NH_4^-) को नाइट्रेट आयनों (NO_3^-) में ऑक्सीकृत कर देते हैं। स्वांगीकरण का स्थान मूल (Root) अथवा प्ररोह (Shoot) अथवा दोनों हो सकते हैं अर्थात भिन्न-भिन्न पौधों में स्वांगीकरण का स्थान भिन्न-भिन्न होता है।

स्वांगीकृत नाइट्रेट आयनों को पौधे अमीनों अम्लों (Amino acids) एवं ऐमाइड्स (Amides) में परिवर्तित कर देते हैं। इसी प्रकार स्वांगीकृत अमोनियम आयन भी पौधों में एकत्रित नहीं होता, क्योंकि अमोनियम आयन क्लोरोप्लास्ट तथा माइटोकॉण्ड्रिया दोनों में ATP बनने की क्रिया का अवरोधन करते हैं। अतः अमोनियम आयन ग्लूटामीन (Glutamine) के ऐमाइड समूह (Amide group) में परिवर्तित हो जाता हैं। लेश मात्रा में अमोनियम आयन वातावरण में अमोनिया के रूप में वांछित हो जाते हैं।

1.18.3 नाइट्रोजन का अजैविक तंत्र में प्रवेश (Flow of Nitrogen Into Abiotic System)

टिप्पणी

जैविक तन्त्र अर्थात वनस्पतियों और जंन्तुओं के शरीर में प्रवेश करने के बाद यह पोटीन, NH_4, लवण और अन्य नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक पदार्थों मे बदल जाती है। कार्बनिक पदार्थों के रूप में संचित नाइट्रोजन निम्न विधियों से पुनः अजैविक तन्त्र में लौट आती है–

(i) विघटन (Decomposition), (ii) उत्सर्जन (Excretion), (iii) नाइट्रीकरण (Nitrification), (iv) विनाइट्रीकरण (Denitrification), तथा (v) तलछट निर्माण (Sedimentation)।

(i) विघटन (Decomposition)– वनस्पतियों और जन्तुओं के शरीर में प्रोटीन के रूप में संचित नाइट्रोजन उनकी मृत्यु के पश्चात विघटित होने लगती है। यह कार्य विघटनकारी सूक्ष्मजीवियों द्वारा किया जाता है। इस क्रिया को विघटन या सड़ना (Decomposition) कहते हैं।

अमोनिकरण (Ammonification) की क्रिया द्वारा सूक्ष्म जीव प्रोटीन को अमोनिया में बदल देते हैं।

$$\text{प्रोटीन} \rightarrow NH_3$$

जन्तुओं में प्रोटीन के उपापचय से अमोनिया एवं यूरिया जैसे उत्सर्जी पदार्थ (Excretory material) बनते हैं, जो मूत्र के साथ शरीर से बाहर आ जाते हैं। इसी प्रकार जीवाणुओं द्वारा भी मृत जीवों की प्रोटीन एवं अन्य यौगिकों से अमोनिया उत्पन्न की जाती है। नाइट्रोजनी कार्बनिक पदार्थों (Nitrogenous organic substances) में अमोनिया में परिवर्तित करने की प्रक्रिया को अमोनीकरण (Ammonification) कहते हैं। कार्बनिक पदार्थ, अपघटित होकर ऐमाइड बनाते हैं, जो ऑक्सीकरण द्वारा अमोनिया बनाते हैं। मुक्त अमोनिया नाइट्रीकरण द्वारा नाइट्रेट में परिवर्तित कर दिया जाता है।

(ii) उत्सर्जन (Excretion)– जन्तु, उत्सर्जन के अन्तर्गत नाइट्रोजन का उत्सर्जन करते हैं। यह उत्सर्जन NH_3, यूरिया, यूरिक अम्ल और अन्य नाइट्रोजन यौगिकों के रूप में होता है।

(iii) नाइट्रीकरण (Nitrification)– यह कार्य नाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया द्वारा दो चरणों में किया जाता है–

(a) एक प्रकार के बैक्टीरिया NH_3 का उपयेाग कर इसे नाइट्राइट (NO_2) में बदल देते हैं। इस ऑक्सीकरण क्रिया से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग वे अपनी शारीरिक क्रियाओं को चलाने के लिए करते हैं–

$$NH_3 \xrightarrow[\text{बैक्टीरिया}]{\text{नाइट्रीफाइंग}} NO_2$$

टिप्पणी

(b) दूसरे प्रकार के नाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया भूमि से नाइट्राइट (NO_2) अवशोषित करते हैं और उसे नाइट्रेटस (NO_3) में बदल देते है।

$$2NO_2 + O_2 \rightarrow 2NO_3$$

इस प्रकार नाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया भूमि से या वायुमण्डल में नाइट्रेटस का निर्माण करते है। नाइट्रेटस का उपयोग पौधे खाद्य पदार्थ के रूप में करते हैं।

(iv) विनाइट्रीकरण (Denitrification)– इस क्रिया में नाइट्रेटस को जीवाणु, जैसे– स्यूडोमोनास (Pseudomonas) स्वतंत्र वायुमण्डलीय नाइट्रोजन में बदल देते हैं। वे नाइट्रेट से प्राप्त O_2 का उपयोग अपने शरीर की कार्बोहाइड्रेटस का ऑक्सीकरण करके करते हैं और उससे प्राप्त ऊर्जा से अपने शरीर की कार्यिकी क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं।

$$2\ NO_3 \rightarrow N_2 + 3O_2\ \text{(ऊर्जा)}$$

इस प्रकार नाइट्रोजन पुनः वायुमण्डल में सम्मिलित हो जाती हैं।

(v) तलछट (Sedimentation)– नाइट्रेटस् की कुछ मात्रा भूमि में मिल जाती हैं और तलछटीकरण के द्वारा चट्टानों में संचित हो जाती है। यह चट्टानों में ही संचित रहती हैं जब तक कि वर्षा या खनन द्वारा यह दुबारा भूमि में नही आती। भूमि में आने पर पौधे उनका उपयोग कर लेते हैं और नाइट्रोजन का चक्रीय परिभ्रमण निरन्तर चलता रहता है।

डॉ. अल्फ्रेड रेडफील्ड के अनुसार समुद्री नाइट्रोजन एवं वायुमण्डलीय ऑक्सीजन की मात्रा पर जीव-रासायनिक चक्रों का नियन्त्रण रहता है और चक्र अन्तिम रूप में फॉस्फोरस द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

1.19 तलछटीय या अवसादी चक्र (Sedimentary Cycle)

1.19.1 फॉस्फोरस चक्र (Phosphorus Cycle)

फॉस्फोरस का जैविक और अजैविक तंत्रों के बीच चक्रीय परिभ्रमण, फॉस्फोरस चक्र कहलाता है। यह एक तलछटीय या अवसादी चक्र (Sedimentary cycle) हैं।

जैविक तंत्रों के लिए फॉस्फोरस भी एक महत्वपूर्ण तत्व होता है जो न्यूक्लिक अम्लों, फॉस्फोलिपिड्स तथा कई फॉस्फोरिकरण से सम्बन्धित यौगिकों का एक भाग होता है। सभी ऊर्जा हस्तान्तरणों में यह तत्व आवश्यक होता है। परन्तु जैविक माँग को देखते हुए यह तत्व पृथ्वी तल पर अपेक्षाकृत कम पाया जाता है। प्राणियों में फॉस्फरस एवं अन्य तत्वों का अनुपात प्राप्त एवं प्राथमिक सम्पदा की अपेक्षा काफी ज्यादा होता है। अतः यह तत्व पारिस्थितिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है। यह तत्व उत्पादकता में अति सीमाकारी या नियन्त्रणकारी प्रभाव डालता है। फॉस्फोरस एक महत्वपूर्ण खनिज है।

टिप्पणी

1.19.2 फॉस्फोरस के स्त्रोत और चक्रीय परिभ्रमण

फॉस्फोरस वायुमण्डल में नहीं मिलता। इसके स्त्रोत पृथ्वी की चट्टान, शैल तथा अन्य ऐसे निक्षेप (Deposits) हैं जो पिछले भूवैज्ञानिक काल में निर्मित हुए। फॉस्फेटयुक्त चट्टानों पर अनेक अपरदन (Erosion) क्रियाएँ (भौतिकीय, रासायनिक, जैविक) होती रहती है, जिसके फलस्वरूप फॉस्फेट मृदा में मिलता रहता है और परितंन्त्रों को फॉस्फेट उपलब्ध कराता रहता है। किन्तु फॉस्फेट का अधिकांश भाग समुद्र में मिलता रहा है, जहाँ इसका कुछ भाग उथले अवसादों (Sediments) में निक्षेपित होता रहता है तथा कुछ गहराई पर स्थित अवसादों (Sediments) में विलीन हो जाता है। फॉस्फोरस का वह अंश, जो समुद्र की तली में स्थित चट्टानों में रहता है लगभग नष्ट हो जाता है तथा चक्र में पुनः परिभ्रमित नहीं हो पाता। मृदा से पौधों फॉस्फोरस को ऑर्थो-फॉस्फेट के रूप में मूलरोमों द्वारा अवशोषित करते हैं। पौधों में इसे संरचना और अन्य जीव-रासायनिक क्रियाओं में उपयेाग में लाया जाता है। पौधों में यह जीवद्रव्य का भाग बन जाता है और डी.एन.ए., आर. एन.ए., ए.एम.पी. ए.टी.पी., एन.ए.डी.पी तथा फॉस्फोलिपिड्स इत्यादि रूपों में पाया जाता है। इस प्रकार फॉस्फोरस खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर जाता है और विभिन्न स्तरों में होता हुआ उपभोक्ता शरीर का विघटन कर ऑर्गेनिक फॉस्फोरस को पुनः घुलित अवस्था में परिवर्तित कर देता है, जिसे मृदा सोख लेती है।

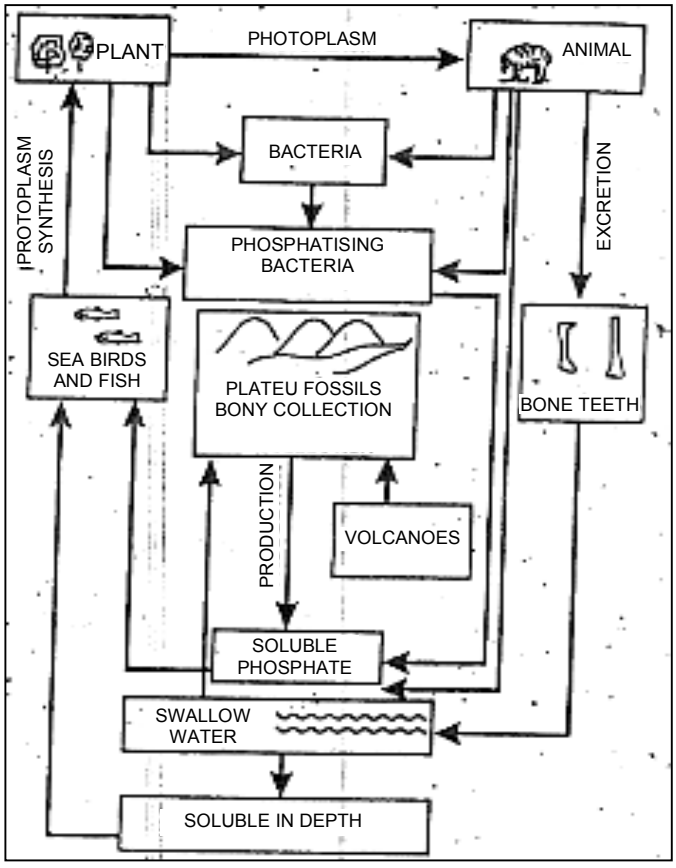

चित्र क्र. 1.46: फॉस्फोरस चक्र (Phosphorus cycle)

1. **फॉस्फोरस का स्थानान्तरण**– पौधों को पोषण के लिए आवश्यक अकार्बनिक फॉस्फेट ऑर्थोफॉस्फेट के रूप में उपभोक्ता (Consumers) एवं अपघटक (Decompsosers) के शरीरों मे स्थानान्तरित किया जाता है जो अपघटन एवं खनिजी भवन (Mineralization) द्वारा पुनः चक्र को प्राप्त हो जाता है।

   पौधों से फॉस्फोरस शाकाहारी उपभोक्ता जन्तुओं में पहुँचता है जहाँ से यह द्वितीयक उपभोक्ता, माँसाहारी जन्तुओं के शरीर में प्रवेश करता है। जीवों की मृत्यु के बाद विघटनकारी (Decomposers) सूक्ष्म जीव, कार्बनिक फॉस्फेट यौगिकों को अकार्बनिक फॉस्फेट यौगिकों में बदल देते है। इस तरह फॉस्फेट खाद्य श्रृंखला के विभिन्न पोषक स्तरों (Trophic levels) से होते हुए भूमि में पहुँचता है।

2. **चक्र से फॉस्फोरस की हानि**–

   (i) केन्द्रीय चक्र से भौतिक एवं जैविक तंत्रों से अधिकांश फॉस्फेट की हानि होती है। जीवों की पहुँच एवं जल-संचरण से फॉस्फोरस को दूर हटाने वाली भौतिक विधियों में अवसादन भी एक प्रक्रिया है। फॉस्फेट की बड़ी मात्रा भूमि से तलछट (Sedimentation) द्वारा बहकर समुद्र की तली में और चट्टानों में जमा हो जाती है। यह फिर आसानी से पौधों और जन्तुओं को नहीं मिलती ।

   (ii) फॉस्फोरस चक्र के मुख्य भाग से फॉस्फोरस की हानि के लिए दाँतों व हड्डियों का निर्माण तथा प्राणियों द्वारा उत्सर्जन जैसी जैविक क्रियाएँ उत्तरदायी है। कई विधियाँ इस तत्व को कम मात्रा में पुनः चक्रीय पथ में डाल देती है।

   (iii) यहाँ चट्टानों का अपक्षय, वायु में उपस्थित धूल, ज्वालामुखीय गैसें तथा वायु द्वारा ग्रहण किये गये लवण लवण-फुहार (Salt-spary) के अंश के माध्यम से यह स्थानान्तरण होता है।

   जीवों के उत्सर्जन और मल पदार्थ द्वारा फॉस्फोरस भूमि में मिल जाता है और तलछट (Sedimentation) द्वारा समुद्र और चट्टानों में पहुँचकर अधिकांश भाग अप्राप्य हो जाता है।

3. **फॉस्फोरस का जैविक तंत्र में प्रवेश**– इस चक्र से हुई हानि की तुलना में पुनः प्रवेश कराने वाली विधियाँ अपेक्षाकृत कम रहती हैं। वास्तव में फॉस्फोरस की उपलब्ध मात्रा अकार्बनिक रूप में पारिस्थितिकी तंत्र में कम होती है, परन्तु चक्रीय परिभ्रमण की गति तेज होती है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र की क्रियाओं को समुचित रूप से चलाने के लिए इस तत्व को संभरण (Supply) पर्याप्त मात्रा में चलता रहता है। यह निम्न विधियों से होता है–

   (i) फॉस्फोरस का विशाल भण्डार फॉस्फोरसयुक्त चट्टाने, सागर की तलहटी एवं ज्वालामुखी के लावे आदि है। समुद्र में फॉस्फोरस का एक बड़ा अंश मिलता रहता है, जबकि चट्टानों के अपरदन (Erosion) से प्रतिवर्ष कुल 60,000 टन फॉस्फोरस प्राप्त होता है।

टिप्पणी

समुद्र में जो फॉस्फोरस पहुँचता है, उसकी कुछ मात्रा समुद्री मछलियों एवं पक्षियों में प्रवेष कर जाती है। यह फॉस्फोरस भी इन जीवों के द्वारा फॉस्फोरस चक्र से मिल जाता है। चट्टानीय फॉस्फोरस अपरदन एवं अपक्षरण की प्राकृतिक दीर्घकालीन किन्तु मन्द क्रिया जैसे– ज्वालामुखी के उद्‌गार से निकला लावा, जंगलों की मिट्टी आदि के द्वारा फॉस्फोरस निरन्तर मिट्टी में मिलता रहता है।

(ii) सागरों में ऊर्ध्वमंथन (Up-welling) की क्रिया द्वारा गहरी तलहटी में स्थित फॉस्फोरस ऊपरी प्रकाशित स्तरों में आता रहता हैं।

(iii) इसके अतिरिक्त अन्य जैविक कारक भी फॉस्फोरस के अप्राप्त विशाल आगार प्राप्य लघु आगार में पहुँचाने के सफल साधन हो सकते है। हचिन्सन (Hutchinson, 1948) के अनुसार दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर मत्स्यभोजी पक्षियों के मलमूत्र 'गुआनो' (Guano) से साल भर में उनके घोंसलो के आस-पास कई टन फॉस्फोरस एकत्र हो जाता है। सागर की तलहटी में स्थित अवसादीय (Sedimentary) फॉस्फोरस को भूमि पर पहुँचाने की क्रिया में इन पक्षियों का सक्षम योगदान देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। समुद्री पक्षियों की बीट से बने टापुओं पर गुआनो (Guano) चट्टान का निर्माण हुआ है। यह भी फॉस्फोरस का प्राकृतिक स्रोत है। हचिंसन के अनुसार समुद्री मत्स्य से करीब 60,000 टन फॉस्फोरस प्रतिवर्ष प्राप्त होता है तथा फॉस्फेट चट्टान जो भूमि से प्राप्त होती है, उससे मिलने वाली फॉस्फेट की मात्रा 10 से 20 लाख टन के मध्य है। चट्टानों का चूर्ण बनाकर उनसे रासायनिक रीतियेां से प्राप्त फॉस्फेट को कृषि भूमि में उर्वरक रूप में उपयेाग करने में मनुष्य भी एक जैविक कारक है जो चट्टानों का विघटनकर भूमि में फॉस्फोरस पहुँचाता है।

(iv) फॉस्फोरस विशाल कुण्ड (आगार) से लघु कुण्ड (आगार) में अत्यन्त मन्द गति से आता है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, परिणामतः लघु आगार की किसी स्थान पर किसी समय उपस्थित मात्रा – उपसित जीवों की आवश्यकता से कम ही होती है। अतएव जीवों ने अपने अन्दर बहुत सी ऐसी विधियाँ विकसित कर ली हैं, जिनमें वे फॉस्फोरस का संचय कर सकते हैं।

1.19.3 ऑक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)

ऑक्सीजन का चक्रीकरण कार्बन डाइऑक्साइड एवं जल के साथ-साथ होता रहता है। श्वसन क्रिया द्वारा गैस के रूप में ली गयी ऑक्सीजन (Oxygen) का उपयोग अन्त कोशिकीय ऑक्सीकरण (Intracellular oxidation) में होता है। परिणामस्वरूप कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल उत्पन्न होता है। कार्बन डाइऑक्साईड श्वसन क्रिया द्वारा ही वातावरण में मुक्त हो जाती है। जल का

कुछ भाग शरीर में काम आ जाता है तथा कुछ भाग उत्सर्जन द्वारा वापस वातावरण में चला जाता है।

$$C_6 H_{12}O_6 + 6O_2 \rightarrow 6CO_2 + 6 H_2O + Energy$$

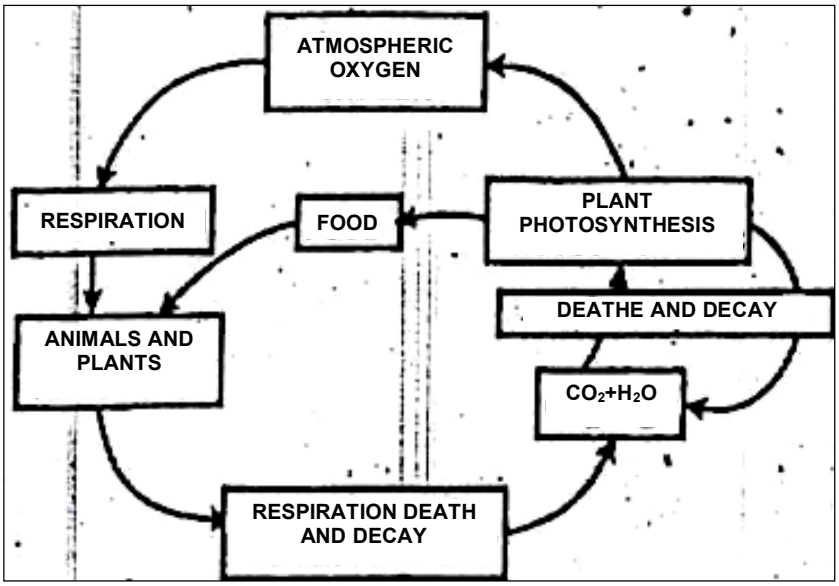

चित्र क्र. 1.47: प्रकृति में ऑक्सीजन चक्र (Oxygen cycle in nature)

सभी स्वपोषी पौधे प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल का उपयोग करते हैं और कार्बनिक भोज्य पदार्थों का निर्माण करते है। इस क्रिया में ऑक्सीजन मुक्त होती है जो वायुमण्डल में मिल जाती हैं।

$$6CO_2 + 12H_2O \rightarrow C_2H_{12}\ O_6 + 6O_2 + 6\ H_2O$$

कार्बनिक भोज्य पदार्थों में निहित शेष ऑक्सीजन विभिन्न पोषक स्तरों (शांकाहारी एवं माँसाहारी जन्तुओं में) पहुँचती हैं और अन्त में श्वसन क्रिया में ऑक्सीकृत होकर कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल के रूप में वातावरण में मुक्त हो जाती हैं, जिन्हें हरी वनस्पतियाँ पुनः ग्रहण करती हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

31. वायुमण्डल में नाईट्रोजन की प्रतिशत मात्रा होती हैं–

(अ) 60% (ब) 78%

(क) 68% (ड) 40%

32. दलहनी पौधों की मूल ग्रन्थियों (Root nodules) में निम्न में से कौन पाया जाता हैं?

(अ) क्लॉस्ट्रीडियम (ब) नाइट्रोसोमोनॉस

(क) एजोटोबैक्टर (ड) राइजोबियम

33. वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की प्रतिशत मात्रा हैं–

(अ) 0.01% (ब) 0.02%

(क) 0.03% (ड) उपरोक्त सभी

34. वायुमण्डल की स्वतंत्र नाइट्रोजन को स्थिर करने वाले जीवाणु होते हैं–

(अ) नाइट्रीकारी (ब) विनाइट्रीकारी

(क) आमेनीकारी (ड) उपर्युक्त में से कोई नही

35. सजीव पदार्थों में जल की मात्रा पाई जाती हैं–

(अ) 15-20% (ब) 25-30%

(क) 45-55% (ड) 65-75%

36. जीवमण्डल में प्राणियों एवं वातावरण के बीच रासायनिक पदार्थों के चक्र को कहते हैं–

(अ) जलीय चक्र (ब) गैसीय चक्र

(क) जैव-भू-रासायनिक चक्र (ड) उपर्युक्त सभी

37. राइजोबियम स्पीशीज किस जीवाणु वर्ग की जाति हैं?

(अ) ग्राम-पॉजिटिव (ब) ग्राम-निगेटिव

(क) उपर्युक्त दोनों (ड) कोई भी नहीं

38. नाइट्रेटस की कुछ मात्रा भूमि में मिलकर चट्टानों में संचित हो जाती है, इस क्रिया को कहते हैं–

(अ) विनाइट्रीकरण (ब) तलछटीकरण

(क) नाइट्रीकरण (ड) अमोनीकरण

39. नाइट्रोस्पाइरा नामक जीवाणु करता है–

(अ) अमोनीकरण (ब) नाइट्रीकरण

(क) स्वांगीकरण (ड) विनाइट्रीकरण

1.20 जीवसंख्या (समष्टि) अवधारणाएँ एवं जीवसंख्या के लक्षण (Population Concepts and Characteristics of Population)

1.20.1 समष्टि के लक्षण (Characteristics of Population)

समष्टि की अपनी अलग पहचान होती है। यह पहचान उसकी संरचना और संगठन से उत्पन्न लक्षणों द्वारा दर्शायी जाती है। इन लक्षणों का विस्तृत

विवरण एली (1949) और अन्य वैज्ञानिकों ने दिया है। उनके अनुसार समष्टि का मूलभूत लक्षण आकार या घनत्व (Density) ही है। फिर भी अन्य लक्षण भी महत्वपूर्ण हैं।

जीवसंख्या घनत्व और इसे प्रभावित करने वाली मुख्य प्राकृतिक क्रियाओं में आपसी सम्बन्ध निम्न चित्र के माध्यम द्वारा दर्शाए जा सकते हैं।

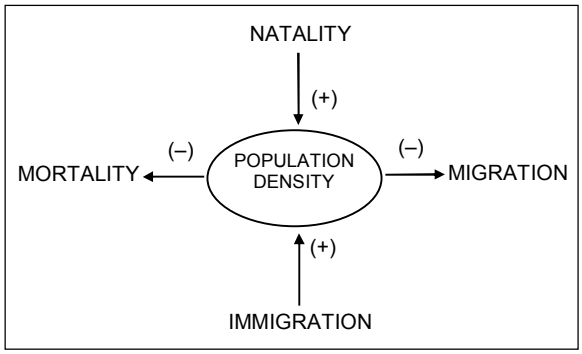

चित्र क्र. 1.48: जनसंख्या घनत्व (Population density)

संक्षेप मे जीवसंख्या के विभिन्न लक्षण निम्नलिखित हैं –

(अ) समष्टि के मुख्य लक्षण (Main Characters of Population)

1. समष्टि घनत्व (Population density)।
2. समष्टि वृद्धि-दर या जन्म-दर (Growth Rate or Natality)
3. मृत्युता (Mortality)
4. आयु वितरण (Age distribution)
5. समष्टि परिवर्तन या दोलन (Population fluctuation or Oscillation)
6. आयु स्तूप (Age pyramids)
7. जैविक क्षमता (Biotic potential)
8. जैविक कारक परस्पर क्रियाएँ (Biotic factor interaction)
9. समष्टि आकार नियमन (Population Size Regulation)
10. समष्टि प्रसार या प्रकीर्णन (Population Dispersion)

1.20.2 जीवसंख्या का घनत्व (Density of Population)

एक निश्चित स्थान व समय में आवास के एक विशेष आयतन में पाये जाने वाले प्राणियों की कुल संख्या पॉपुलेशन का घनत्व कहलाती है।

घनत्व एक ही प्राकृतिक आवास में पाये जाने वाले एक जाति के सदस्यों की कुल संख्या को दर्शाता है। घनत्व की गणना निम्न सूत्र द्वारा कर सकते हैं–

$$\text{घनत्व} = \frac{\text{प्राणियों की कुल संख्या} / \text{क्षेत्रफल}}{\text{समय}}$$

या $D = \frac{n/a}{t}$

टिप्पणी

D= घनत्व, n = प्राणियों की कुल संख्या, a = क्षेत्रफल, t = समय।

जीवसंख्या स्थायी नहीं रहती है और समय–समय पर परिवर्तित होती रहती है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप घनत्व में भी परिवर्तन आ जाता है। अतः जीवसंख्या घनत्व के परिवर्तन को दर्शाने के लिए उपरोक्त सूत्र में यदि सदस्य संख्या 'N' के साथ Δ (डेल्टा) चिन्ह लगा दें, तब

Δ N = सदस्यो की परिवर्तित संख्या

$rN = \frac{\Delta N}{\Delta t}$ = वृद्धि दर या इकाई समय में औसत सदस्य संख्या परिवर्तन

(r = वृद्धि दर)

सदस्य संख्या वृद्धि

उपर्युक्त सूत्र के द्वारा संख्या या समय के परिवर्तन को उसके पहले Δ चिन्ह से दर्शाकर परिवर्तनशील जनसंख्या (Population) का घनत्व ज्ञात किया जा सकता है।

1.20.3 समष्टि घनत्व की अन्य अभिव्यक्ति (Other Expressions of Population Density)

जीवों की इकाइयों के योगफल या आयतन में उपस्थित संख्या को भी जीवसंख्या (Population) का घनत्व कहते हैं। जैसे 100 kg मछलियाँ प्रति एकड़ जल उस जलीय माध्यम की मछलियों की आबादी (समष्टि) का घनत्व बताती हैं। सूक्ष्म जीवों में जीवसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग क्यूबिक मिलीमीटर या घन माइक्रॉन में दर्शाया जाता है। जब शैवाल या मछलियों का समष्टि घनत्व ज्ञात करना हो, तब उनकी गणना करना कठिन हो जाता है। ऐसे समय में जीवों को तौलकर घनत्व को टन प्रति वर्ग किलोमीटर से दर्शाया जाता है। इसमें जीवों की संख्या को ही नहीं, बल्कि जीव-पदार्थ (Biomass) की मात्रा को भी बताते हैं।

समुदाय या पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभावशाली जीव–संख्या जीवों की प्रकार पर नहीं, बल्कि घनत्व (Density) पर निर्भर करती हैं, जैसे– एक समुदाय में कुत्ते, हिरण व शेर रहते हैं, यदि शेर सभी हिरणों को खाकर समाप्त कर दे तो समुदाय की संरचना में परिवर्तन आ जायेगा और हिरणों के न मिलने से शेर भूखे मर जोयंगे और समुदाय में दिखाई पड़ने वाला प्रभाव (Dominance) नष्ट हो जाऐगा। अतः जीवसंख्या का घनत्व एक समुदाय से प्रभावित होने वाला कारण है। इसका घनत्व परिवर्तनशील नहीं होता है। एक जाति के जीव संख्या के परिमाण की निश्चित उच्चतम व निम्नतम सीमाएँ होती हैं। जैसे– समुद्र में 200 मछलियाँ प्रति एकड़ या 50 लाख डायटम्स (Diatoms) प्रति घन मीटर या केवल 200

डायटम्स प्रति एकड़ पाये जा सकते हैं। लेकिन 200 मछलियाँ प्रति घन मीटर जल में सम्भव नहीं हैं।

टिप्पणी

जीवसंख्या के घनत्व को दो प्रकार से मापा जाता हैं–

(i) कच्चा घनत्व (Crude density)

(ii) पारिस्थितिकी घनत्व (Ecological density)

(i) कच्चा घनत्व (Crude density)– कई समूहों के लिए प्रामाणिक इकाइयाँ प्रयोग में आ चुकी हैं जिनसे तुलना में आसानी रहती हैं। किसी जाति की जीवसंख्या का प्रति इकाई क्षेत्रफल या आयतन को कच्चा घनत्व (Crude density) कहते हैं। जैसे 500000 हिरण 40000 वर्ग मील में। यहाँ जीव संख्या को क्षेत्र विशेष की इकाई के आधार पर प्रकट किया जाता है।

(ii) पारिस्थितिकी घनत्व (Ecological density)– इसके अन्तर्गत जीवों में वास्तविक निवास का क्षेत्र लिया जाता है। अतः जीव का वास्तविक पारिस्थितिक घनत्व उस छोटे से क्षेत्र के आधार पर माना जायेगा, जिसमें वे निवास करते हैं। जैसे 200 कुत्ते एक वर्गमील में रह रहे हों, किन्तु कुत्तों के लिए आधा वर्गमील का क्षेत्र ऐसा हो जिसमें वे वास्तव में निवास करते हैं शेष आधा वर्गमील क्षेत्र ऐसा हो, जिसमें कुत्ते नहीं निवास करते हैं, तो उस क्षेत्र का पारिस्थितिकी घनत्व 400 कुत्ते प्रति वर्गमील होगा।

1.21 समष्टि या जीवसंख्या घनत्व का मापन (Determination of Population Density)

समष्टि घनत्व मापने की निम्न विधियाँ हैं –

1.21.1 प्रत्यक्ष गणना (Direct Count)

यह तरीका केवल किसी समय विशेष पर तुलनात्मक बड़े आकार (Size) की जातियों वाली समष्टि के जन्तुओं की संख्या जानने के लिए श्रेष्ठ है। यह तरीका मुख्य रूप से चिड़ियों एवं बड़े या मध्यम आकार के स्तनधारियों (जैसे Seal तथा Rabbits) के लिए उपयुक्त है। चिड़ियों की जीवसंख्या की गणना करने का सही समय घोंसला बनाने की ऋतु हैं, जब आवागमन कम होता है। लगभग सभी जीवों के लिए विशेषतः जन्तुओं की कुल संख्या ज्ञात करना सम्भव नहीं हैं, क्योंकि इनके स्वभाव, आवास क्षेत्र के आकार में भिन्नता के कारण इन्हें प्रत्यक्ष गणना के लिए एक समय पर नहीं पाया जा सकता है।

(i) समस्त स्तरों या वर्ग के सभी प्राणियों की कुल गणना (Total Count of all Individuals of all stages or class)– किसी समय क्षेत्र विशेष की जीव संख्या के घनत्व को जानने के लिए यह सर्वश्रेष्ठ विधि है। इस विधि में जीवों की सम्पूर्ण वास्तविक गणना की जाती है। जैसे – एक वर्गमील जल में 500 मछलियाँ, 3000 लार्वा, 150 टेडपोल, 500 मेंढ़क पाये जाते हैं, तो उस क्षेत्र की आबादी का घनत्व जीव इकाइयों की सम्पूर्ण

टिप्पणी

गणना के रूप में 500 + 3000 + 150 + 500 = 4150 जीव प्रति वर्गमील होगा।

(ii) विशेष स्तर या वर्ग के सभी प्राणियों की गणना (Count of all animals of specific stages or class)– इस विधि में एक विशेष स्तर या क्लास के प्राणियों की गणना कर ली जाती है। उस क्षेत्र में सभी जीवों की गणना मुश्किल से हो पाती है। जैसे– ट्राइबोलियम (Tribolium) में जीव संख्या का सही पता लगाने के लिए वयस्कों के साथ–साथ अण्डे, लार्वा तथा प्यूपा की भी गणना करनी चाहिए, लेकिन अण्डा, लार्वा, प्यूपा की गणना करवाना सम्भव नहीं है, अतः ऐडल्ट की गणना से ही जीव संख्या के घनत्व का अन्दाजा लगा लिया जाता है। अतः इस विधि द्वारा ज्ञात किया गया घनत्व एकदम सहीं नहीं होता है।

1.21.1.1 सैम्पलिंग विधि (Sampling Method)

सैम्पलिंग विधि में उपयुक्त साइज के खण्डों के रूप में नये सैम्पल लिये जाते हैं। जब समस्त जीवों में से प्रतिनिधित्व करने वाले कुल जीवों का चयन कर लिया जाय तथा उसमें से प्राप्त की गई जानकारी को सम्पूर्ण समूहों के लिए माना जाय तो चयनित जीवों को सैम्पल और इस विधि को सैम्पल विधि कहते हैं। उदाहरणार्थ– पैरामीशियम के एक लिटर से प्रयोग करता हुआ मनुष्य पैरामीशियम के माध्यम को भली प्रकार हिलाता है फिर शीघ्र 1 घन मीटर द्रव निकाल लेता है और इस सैम्पल में पैरामीशियम की संख्या ज्ञात कर लेता है। इस प्रकार नये सैम्पलों की संख्या ज्ञात करके वह सम्पूर्ण आयतन में तथा एक घन से.मी में पैरामीशियम की संख्या ज्ञात कर लेता है।

1.21.1.2 यादृच्छिक प्रतिचयन अथवा निदर्शन विधि (Random Sampling)

कुछ सीमा तक जीवसंख्या का घनत्व जीवसंख्या के कुछ भाग का प्रतिचयन (Sampling) करने से भी मालूम किया जा सकता है। इस प्रकार से पूरी जीवसंख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। जीवसंख्या का पूर्ण यादृच्छिक प्रतिचयन (Random sampling) करना चाहिए। बहुत गतिशील जातियों, जैसे– मछलियाँ, उड़ने वाले कीट, पक्षी इत्यादि में प्रतिचयन के लिए क्षेत्र काफी बड़ा होना चाहिए। कम गतिशीलता वाले जन्तु जैसे– मौलस्का, कीटों के लार्वा आदि का क्वाड्रेट (Quadrat) तरीके से प्रतिचयन (Sampling) किया जा सकता है। इसमे बराबर के आकार के वर्ग बनाकर उनमें उपस्थित जन्तुओं की संख्या की गणना करते हैं। क्वाड्रेट का क्षेत्रफल जीवसंख्या के घनत्व एवं उनके आवास की भिन्नता पर आधारित रहता है। उदाहरण के लिए नदी के भागों में गैमेरस प्यूलेक्स (Gammarus pulex) की कॉलोनी के प्रतिचयन में छः इंच के वर्ग उपयुक्त रहते हैं, जबकि कृषि क्षेत्र में केंचुए की जीवसंख्या के आकलन में इससे भी बड़े आकार के वर्ग, जैसे– एक वर्ग मीटर या अधिक के वर्ग, उपयोग में लाये गये हैं।

1.21.1.3 सैम्पल निष्कासन विधि (Removal Sampling Method)

इस विधि में सैम्पल में निष्कासित प्राणियों की संख्या लेखा चित्र के Y-axis पर तथा पहले निष्कासित प्राणियों की संख्या X-axis पर आलेखित करते हैं। यदि कैप्चर (Capture) की सम्भावनाएँ लगभग एक समान रहें, तो सभी बिन्दु एक सरल रेखा में स्थित होते है। इस सरल रेखा को X-axis के शून्य तक बढ़ाया जा सकता है। ये क्षेत्र से 100 प्रतिशत निष्कासन को दर्शाता है।

1.21.1.4 अंकन एवं पुनः प्रग्रहण विधि (Marking and Recapture Method)

यह विधि केवल जन्तुओं के लिए ही प्रयोग में लाई जाती है। इसमें जानवरों को कुछ निश्चित संख्या में पकड़ लिया जाता है, फिर उन पर निशान लगाकर छोड़ दिया जाता है। कुछ समय बाद उतने ही जानवर फिर से पकड़ लेते हैं। इन पकड़े हुए जानवरों में निशानयुक्त एवं निशानरहित जानवरों का अनुपात निकालकर उससे जीव संख्या का घनत्व ज्ञात कर लिया जाता है।

जैसे– 100 निशान लगे जीवों में से केवल 20 निशान लगे जीव ही फिर से पकड़े गये। तो उस क्षेत्र में निशान लगे व बिना निशान लगे कुल जीवों की संख्या 500 होगी।

∴ 20 जानवर निशानयुक्त हैं तो संख्या = 100

∴ 100 जानवरों पर पहले निशान लगाये गये थे तो कुल संख्या

$$= \frac{100 \times 100}{20 \times 1}$$

अतःकुल आबादी = 500

अब घनत्व का पता लगाने के लिए जीवसंख्या द्वारा घेरा गया क्षेत्र ज्ञात करके इकाई क्षेत्र में जीवों की संख्या का पता लगाते है।

उदाहरण– माना कि हम तितलियों की कॉलोनी का अध्ययन कर रहे हैं तो हम 50 जांतियों को पकड़कर उन्हें अंकित करते हैं, तब उन्हें जीवसंख्या (Population) में एक बार पुनः छोड दिया जाता है और उन्हें पूर्व (Original) जीवसंख्या (Population) में दोबारा, वितरण होने के लिए काफी समय (24 घण्टे) दिया जाता है। दूसरे दिन फिर 50 जातियाँ पकड़ी जाती हैं, जिनमें से 10 के ऊपर अंकित निशान लगा पाया जाता है। तब हम यह गणना कर सकते है कि कुल उड़ने वाली तितलियों जीवसंख्या ($50 \times 50/10 = 250$) हैं।

1.21.1.5 पीटरसन की बन्धक चिन्हांकन विधि (Tidal Marking Method of Peterson)

जीवसंख्या घनत्व की गणना करने की यह एक सरल विधि है, जिसे पीटरसन ने सन 1893 में विकसित किया था। इस विधि में जिरा प्राणी का जीवसंख्या घनत्व ज्ञात करना हैं, उसके कुछ सदस्यों की निश्चित संख्या को किसी एक समय, बन्धक बनाकर उन पर स्पष्ट चिन्ह बना देते हैं। अब इन चिन्हांकित जन्तुओं को स्वतंत्र कर देते हैं।

टिप्पणी

$$\frac{\text{पकड़े गये नमूने में चिन्हांकित प्राणियों की संख्या}}{\text{पुनः झुण्ड में से पकड़े गये प्राणीसंख्या का योग}} = \frac{\text{सम्पूर्ण जीवसंख्या के योग में चिन्हांकित प्राणी}}{\text{सम्पूर्ण जीवसंख्या का योग}}$$

निश्चित अन्तराल (Interval) के पश्चात् दूसरे समय में, चिन्हांकित और बिना चिन्ह वाले जन्तु सदस्यों के मिले-जुले झुण्ड को पुनः पकड़कर उनकी सम्पूर्ण संख्या और उसमें चिन्हांकित संख्या को अलग-अलग गिन लिया जाता है।

चूँकि यह क्रिया अचानक लिये गये नमूनों पर आधारित हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि झुण्ड में चिन्हांकित सदस्यों की संख्या का अनुपात लगभग सम्पूर्ण जीवसंख्या के अनुपात के बराबर होगा।

पीटरसन विधि में डाल (Dahl, 1919) ने नॉर्वे की झीलों में ट्राउट मछली के जीवसंख्या घनत्व की गणना की थी। उन्होंने 109 ट्राउट को चिन्हांकित करके झील में छोड़ दिया। कुछ दिनों के पश्चात् दुबारा 177 ट्राउट में से चिन्हांकित छाँटने पर 57 मछली तो चिन्हांकित और शेष साधारण पाई गई। इन आँकड़ों के आधार पर चिन्हांकित जीवसंख्या अनुपात

$$= \frac{\text{संपूर्ण संख्या में चिन्हांकित मछलियों की संख्या}}{\text{पकड़ी गई मछलियों की कुल संख्या}}$$

अर्थात् $\frac{57}{177} = 0.322$

अब जबकि, चिन्हांकित जीवसंख्या 109 है, इसलिए जीवसंख्या घनत्व अनुपात

$$= \frac{\text{चिन्हांकित जीवसंख्या}}{\text{चिन्हांकित जीवसंख्या अनुपात}}$$

या $\frac{109}{0.322} = 338.5$

उपर्युक्त बन्धक चिन्हांकित विधि का मुख्य आधार पर निम्नलिखित तीन धारणाएँ हैं–

1. चिन्हांकित और बिना चिन्ह वाले या साधारण प्राणी अचानक पकड़े जाते हैं।
2. चिन्हांकित और साधारण दोनों प्राणियों पर समान जन्म दर और मृत्यु दर लागू होगी।
3. प्राणी चिन्ह का मिट जाना या अस्पष्ट होना कम सम्भव हैं।

1.21.2 प्लॉट नमूना विधि (Sample Plot Method)

यह सर्वाधिक प्रचलित और सरल विधि है। इस विधि में जिस क्षेत्र में जीवसंख्या घनत्व का अनुमान लगाना होता है, उसको बराबर-बराबर क्षेत्रफल में निश्चित प्लॉटों में विभाजित कर दिया जाता है। अब कुछ चुने हुए प्लॉट में प्राणियों की संख्या गिनकर एक प्लॉट के लिए औसत संख्या निकाल ली जाती है। अब यदि एक प्लॉट की औसत संख्या को सभी प्लॉटों की संख्या के योग से गुणा कर दे, तब सम्पूर्ण क्षेत्र का जीवसंख्या घनत्व प्राप्त हो जायेगा। उदाहरण के लिए, यदि हमें 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में किसी प्राणी का जीवसंख्या घनत्व ज्ञात करना हैं, तब 1 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के बराबर-बराबर 100 प्लॉट बनाकर प्रत्येक कोने पर और केन्द्र स्थित किसी एक प्लॉट अर्थात पाँच प्लॉटों पर प्राणी गिनते है। माना कि इन पाँच प्लाटों की कुल जीव संख्या 125 आती हैं, तब एक प्लॉट का औसत $= \frac{125}{5} = 25$ होगा।

अतः 100 वर्ग किलोमीटर का अनुमानित जीवसंख्या घनत्व $= 25 \times 100 = 2500$

प्लॉट नमूना विधि में चौकोर या गोलाकार किसी भी आकृति के प्लॉट निर्धारित किये जा सकते हैं, परन्तु सभी प्लॉटों का क्षेत्रफल समान होना अनिवार्य है।

इस विधि की सफलता के लिए नमूनों के उन प्लॉटों को चुनना चाहिए, जो पूरे क्षेत्र की जीवसंख्या संरचना को वास्तविक रूप में दर्शाते हों। अतः नमूने के प्लॉट सम्पूर्ण क्षेत्र के सभी भागों के लेने चाहिए और प्रत्येक प्लॉट की बिल्कुल सही गिनती होनी चाहिए। कभी-कभी भ्रमण, पर्यटन अथवा प्रजनन आदि के कारण जन्तु इधर-उधर निकल जाते हैं। ऐसी स्थिति में तुलनात्मक रूप से अधिक छोटे प्लॉट बनाने पर अधिक अच्छे और सही परिणाम प्राप्त होंगे।

1.21.3 आपेक्षिक जीवसंख्या घनत्व विधियाँ (Requisition Population Density Methods)

इसके द्वारा बताई गई लगभग सभी विधियाँ जीवसंख्या घनत्व का मोटा अनुमान लगाने में सहायक हैं, परन्तु वास्तविक घनत्व का अनुमान नही करा पाती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नकित हैं।

(अ) मल की गोलियों की संख्या (Faced Pellets Count)– कुछ प्राणियों का मल नियमित आकार की गोलियों के रूप में निष्कासित किया जाता है। इन प्राणियों का जीवसंख्या घनत्व का अनुमान इन गोलियों की संख्या के आधार पर ज्ञात कर लिया जाता है। यह विधि साधारणतः चूहे, खरगोश, आदि शाकाहारी जीवधारियों के लिए अधिक उपयोगी हैं।

(ब) ध्वनि तरंग आवृत्ति (Vocal Call Frequency)– यह विधि विशेष रूप से पक्षियों के लिए प्रयोग में लाई जाती है। किसी निश्चित अवधि में किसी पक्षी विशेष की ध्वनि उत्पन्न करने या बोलों की संख्या अंकित करके उनके

टिप्पणी

समष्टि घनत्व की गणना की जाती है। यह विधि कुछ निश्चित ध्वनि तरंग में गाना गाने वाली चिड़ियों पर अधिक सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती है।

(स) जाल-पकड़ संख्या तकनीक (Net-Trap Technique)– इस विधि में अलग-अलग प्राणियों को समुचित जाल में पकड़कर इनकी समष्टि का मोटा अनुमान लगाया जाता है। प्रत्येक पकड़ में प्राणियों की संख्या गिनकर मोटे रूप में घनत्व ज्ञात कर लेते हैं। यह विधि बीटल और अन्य कीटों तथा जन्तु प्लवक आदि के लिए उपयोग में जाई जाती है। विभिन्न प्रजातियों और उनकी तीव्र गतिविधियों के कारण इस तकनीक से मात्र उनकी बहुलता अथवा अल्पता का ज्ञान हो जाता हैं।

(द) प्रति इकाई पकड़ प्रयास विधि (Per Unit Capture Method)– यह विधि डीलरी (1947) व जिपिन (1958) द्वारा प्रयोग में लाई गई थी और उन जन्तुओं पर अपनायी जाती है जो अपेक्षाकृत किसी सीमित क्षेत्र में लम्बे समय तक स्थिर रहकर निवास करते हैं। इस विधि में किसी एक स्थान पर बार–बार प्राणी पकड़कर उनकी संख्या गिन लेते हैं। इसके बाद एक निश्चित इकाई प्रयास के अनुपात में प्राणियों की संख्या गिनकर ग्राफ बनाते हैं।

इनके अतिरिक्त प्रश्नोत्तरी (Questionnaire) आहार क्षमता, क्षेत्र क्षमता आदि अनेकों अन्य विधियाँ भी अपेक्षित समष्टि का घनत्व ज्ञात करने के लिए उपयोग में लाई जाती हैं।

1.21.3.1 समष्टि घनत्व के प्रभावी कारक (Factors Affecting Population Density)

जीवसंख्या का घनत्व बढ़ना, जीवसंख्या में जीवों के बढ़ने, घटने एवं मरने पर ही निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में जीवों की संख्या मुख्य रूप से जन्म दर (Natality) और मृत्यु दर (Mortality) के बीच के अन्तर तथा आप्रवासन (Immigration) एवं उत्प्रवास (Emigration) के बीच सन्तुलन पर निर्भर करती हैं।

जीवसंख्या का घनत्व जन्म दर (Natality), मृत्यु दर (Mortality) तथा माइग्रेशन (Migration) पर निर्भर करता हैं।

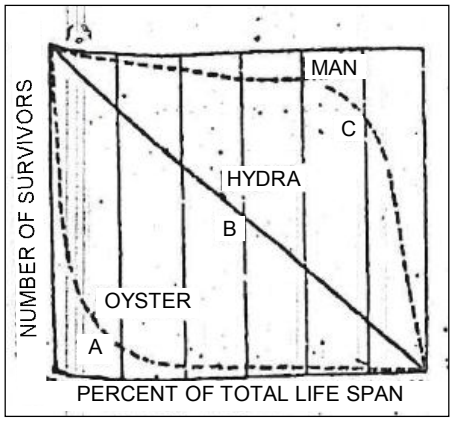

चित्र क्र. 1.49: ऑयस्टर, हाइड्रा, मनुष्य तथा फ्रुटफ्लाई के सन्दर्भ में जीविता–चक्र (Survivorship curves for the population of Oyster, Hydra, Man and Fruitflies)

1.21.4 जन्म दर (Natality or Birth rate)

एक इकाई समय में किसी समष्टि द्वारा उत्पन्न नये सदस्यों की संख्या को जन्म दर (Birth-rate) कहते है। सामान्यतः जीवसंख्या किसी जीव की प्रजनन दर पर निर्भर होती है। शुद्ध जन्म दर (Absolute Birth rates) व इकोलॉजीकल जन्म दर (Ecological Birth-rate) दो अलग-अलग जन्म दरें है। सामान्य तौर पर किसी पॉपुलेशन में उत्पन्न हुए जीवों की संख्या को शुद्ध जन्म दर (Absoltue birth rate) कहते हैं। इस प्रकार की जन्म दर के लिए पारिस्थितिक व वंशागत दशाएँ अनुकूल होनी चाहिए, जिसमें अधिकतर पैदा हुए जीव जीवित रह सकें, जन्म दर कहा जाता है। ये वातावरणीय परिस्थितियाँ जीवसंख्या विशेष के लिए अलग प्रकार की होती है। जन्म दर निम्न सूत्र द्वारा दर्शाई जा सकती हैं।

$$\text{जन्म दर} = \frac{\text{नये उत्पन्न जीवों की संख्या}}{\text{इकाई समय}}$$

परिस्थितिक (Ecological) जन्म दर उसे कहते हैं, जब अनुकूल पारिस्थितियों में एक इकाई समय में उत्पन्न नए सदस्यों की संख्या प्रदर्शित की जाये, को पारिस्थितिकी जन्म दर (Ecological birth rate) कहते हैं।

जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रजनन क्षमता (Reproduction potentiality) वास्तविक जन्म दर से कहीं अधिक होती है, ठीक उसी प्रकार वास्तविक मृत्यु दर (Actual Death-rate) भी मृत्यु क्षमता (Death-potentiality) से कम होती है। समष्टि वृद्धि के लिए वास्तविक जन्म दर, वास्तविक मृत्यु दर से अधिक होना अनिवार्य है। यदि दोनों की दर समान हो जायेगी, तब समष्टि जीवसंख्या स्थिर हो जायेगी, परन्तु मृत्यु दर, वास्तविक जन्म दर से अधिक हो जाने पर जीवसंख्या घटने लगेगी और इस प्रवृत्ति के लम्बे समय तक बने रहने से जाति समाप्त हो सकती है। जन्म दर और मृत्यु दर अनुपात प्रति 100 जन्म को दर्शाते हैं, जिसे प्राणभूत संकेत (Vital index) कहते हैं।

1.21.5 मृत्यु दर (Mortality)

मृत्यु दर या मॉर्टेलिटी (Death – rate or Mortality) पॉपुलेशन में प्रति इकाई काल में मरने वाले जीवों की संख्या को मृत्यु दर कहते हैं (Mortality rate of the population refers to the number of individuals dying per unit of time)। यह दो प्रकार की है–

(i) **पोटैन्शियल मॉर्टेलिटी (Potential mortaility)**– पोटैन्शियल या मिनिमम मॉर्टेलिटी (Minimum Mortality) वह मृत्यु संख्या है जो आदर्श परिस्थितियों के अन्तर्गत वृद्धावस्था की कार्यिकी (Physiological) परिवर्तनों के कारण पायी जाती है। यह किसी भी पॉपुलेशन में लगभग स्थायी होती है।

(ii) **रिएलाइज्ड मॉर्टेलिटी या वास्तविक मृत्यु दर– (Realized Mortality or Actual death-rate)**– इसकी संख्या में भिन्नता पायी जाती है। यह

टिप्पणी

वातावरणीय फैक्टर्स तथा पॉप्युलेशन के आकार, कम्पोजीशन एवं उसकी डेन्सिटी पर निर्भर करती है।

$$M = \frac{4 \times 100}{t \times 100} = \frac{m \times P}{\Delta \times t}$$

$$\mathrm{M} = \frac{4 \times 100}{\mathrm{t} \times 100} = \frac{\mathrm{m} \times \mathrm{P}}{\text{जनसंख्या का} \quad \times}$$

यह एक दी हुए जनसंख्या में दिए हुए इकाई समय में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या हैं।

जहाँ, P = जनसंख्या का परिमाण

m = मृत होने वाले व्यक्तियों की संख्या

t = इकाई समय,

Δ = इकाई जनसंख्या प्रति 100 या प्रति 1000 आदि,

M = मृत्यु दर

तब मृत्यु दर निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात की जा सकती है।

$$\text{मृत्यू दर} \ , \ M = \frac{m \times \Delta}{t \times P}$$

यदि किसी जनसंख्या का परिमाण 100,000 है, उसमें इकाई समय 10 वर्ष में मरने वालों की संख्या 5000 हैं, तब प्रतिशत मृत्यु दर होगी –

$$M = \frac{5000 \times 100}{10 \times 100000} \ 0.5 \text{ प्रतिशत}$$

सरणी क्र. 1.7: भारत की औसत जन्म दर एवं मृत्यु दर

अवधि	जन्म दर	मृत्यु दर	अन्तराल वृद्धि
1901–1911	49.2	42.6	6.6
1911–1921	48.1	47.6	0.9
1921–1931	46.4	36.3	10.1
1931–1941	45.2	31.2	14.0
1941–1951	39.9	27.4	12.5
1951–1961	40.9	22.8	18.1
1961–1971	40.0	17.8	22.2
1971–1981	37.9	15.4	22.5
1981–1991	31.3	10.9	20.4
1991–2003	27.3	7.2	20.1

उत्तरजीविता कर्व (Survivorship curve)– इस वक्र में किसी समष्टि (Population) में जीवित व्यक्तियों की संख्या को काल (आयु) के साथ अभिलेखित किया जाता है।

किसी पॉपुलेशन में मृत्यु के संयोग को सरवाइवरशिप कर्व या उत्तरजीविता वक्र (Surivorship curve) द्वारा आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। सरवाइवरशिप कर्व निम्न प्रकार के होते हैं।

(i) डाइगोनल कर्व (Diagonal curves)– जब पॉपुलेशन में विभिन्न आयु में जीवों की मृत्यु दर समान होती है तो कर्व एक सीधी डाइगोनल रेखा (Straight diagonal line) के रूप में बनता है। यह कर्व पॉपुलेशन में हाइड्रा, माइस (Mice) तथा अनेक प्रौढ़ पक्षियों के संदर्भ (Case) में बनाया जाता हैं।

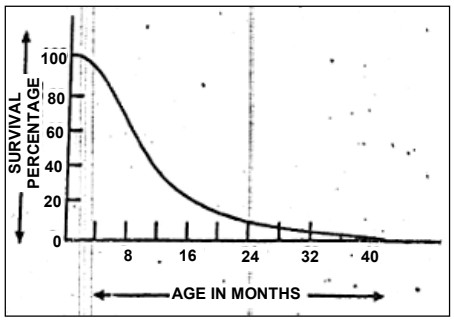

चित्र क्र. 1.50: शशकों के लिए उत्तरजीविता उत्तल वक्र (Survivorship convex curves for rabbit)

(ii) उत्तल वक्र (Convex curve)– जब पॉपुलेशन या समष्टि में अधिकांश जीव अपना जीवनकाल (Potential life span) पूर्ण कर लेते हैं और वृद्धावस्था में मृत्युग्रस्त होते हैं को कर्व अत्यधिक कॉनवेक्स होता है, जीवीय काल की चरम अवस्था तक यह लगभग हॉरिजॉण्टल (Horizontal) रूप में चलता है और उसके बाद यह तीव्रता से नीचे को मुड़ जाता है। यह कर्व पॉपुलेशन में मनुष्य, खरगोश तथा अन्य अनेक स्तनियों के सम्बन्ध में बनाया जाता है।

(iii) अवतल वक्र (Concave curve)– इस प्रकार का कर्व उन जीवों में पाया जाता है जो अपना जीवन पूर्ण करने से पहले ही मृत्यू को प्राप्त हो जाते है। जैसे ऑयस्टर्स, अन्य अकशेरूक जन्तु तथा मछलियों में मिलते है।

1.21.6 आयु–अनुपात (Age ratio)

समष्टि में आयु वितरण कच्ची मृत्यु दर व जन्म दर (Crude death-rate and birth-rate) से प्रभावित होती है। समष्टि के घनत्व का वास्तव में कोई अर्थ नहीं है, यदि इसकी आयु-संख्या पर विचार न किया जाये। समष्टि को तीन पारिस्थितिकीय – आयु कालों में विभाजित किया जा सकता है। (i) पूर्व-जनन काल (Pre-productive period) (ii) जनन काल (Reproductive period) व (iii) पश्च – जनन काल (Post – reproductive Period)। इन तीनों आयुओं की तुलना भिन्न-भिन्न पायी जाती है व परिवर्तनशील रहती है। यद्यपि समष्टि घनत्व समान रहता है। एक बन्द समष्टि में। जहाँ उत्प्रवास (Emigration) व अप्रवास (Immigration) नहीं हो रहे हों। विभिन्न आयुओं में अनुपात की प्रवृत्ति स्थिर (Constant) रहती है, जहाँ जन्म दर, मृत्यु दर से बराबर हो। आयु अनुपात भविष्य के दृष्टिकोण में

अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रजननता एक निश्चित आयु तक ही सीमित रहती है व मृत्यु दर अन्य कारकों में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। अभयारण्य के मुख्य जन्तुओं में युवा व वयस्क के बीच का अनुपात लगभग 2:1 का होता है, जो कि सामान्यतः वृद्धिकारी समष्टि में युवा (Young) आयु के सदस्यों की वृद्धि करती संख्या होनी चाहिए व अवनति वाली समष्टि में युवा आयु के सदस्यों की कम होती संख्या होती है।

1.21.7 जीवसंख्या या समष्टि–परिवर्तन या दोलन (Population Fluctuation or Oscillation)

पूर्ण वृद्धि प्राप्ति के पश्चात (At maturity) जीवसंख्या आकार (Size) में जो उतार–चढ़ाव आते हैं, उन्हे जीवसंख्या परिवर्तन या दोलन कहते हैं। परन्तु समष्टि की पूर्ण वृद्धि तब मानी जायेगी, जबकि समष्टि में जीवसंख्या परिवर्तन में परिवर्तन या (ΔN) समय या (Δt) का भाग देने पर शून्य औसत प्राप्त होता है अर्थात $\frac{\Delta N}{\Delta t} = 0$ औसत शून्य होता है। जीवसंख्या परिवर्तन या दोलन एक साधारण प्रक्रिया है। परन्तु कुछ पारिस्थितिक वैज्ञानिकों का विचार है कि परिवर्तन या उतार-चढाव (Fluctuation) और दोलन (Oscillation) शब्दों का जीवसंख्या के सन्दर्भ में अलग-अलग अर्थ है। उनके मतानुसार जीवसंख्या परिवर्तन अनियमित उतार-चढाव हैं, जो कुछ बाहय (Extrinsic) कारणों (जैसे वातावरण कारकों में परिवर्तन) के कारण उत्पन्न होते हैं। इनके विपरीत जीवसंख्या दोलन नियमित परिवर्तन (Regular changes) हैं, जिनका नियन्त्रण कुछ स्वाभाविक और आन्तरिक कारकों या जीवसंख्या की गतिशीलता से होता है। जीवसंख्या परिवर्तन प्रायः अनियमित होते हैं, जो ताप, आर्द्रता, वर्षा आदि जैसे बाहय कारकों से होती है। परन्तु दोलन एक नियमित प्रक्रिया है, जो स्वाभाविक और चक्रीय परिवर्तन दर्शाती है।

उन साधारण पारिस्थितिक तंत्रों (Ecosystems) में, जहाँ सामुदायिक सदस्य (Community members) अपेक्षाकृत रूप से कम संख्या में होते हैं, अनियमित जीवसंख्या परिवर्तन अधिक तीव्रता दर्शाता है। उदाहरणार्थ– उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्र में लाइकेन्स, खरहे आदि प्राणि तथा चीड़ के वन समुदाय।

जीवसंख्या दोलन (Population oscillation) की स्वाभविक प्रक्रिया के फलस्वरूप – चरित्र – परिवर्तन के साथ अनेक पक्षी प्रजनन के लिए ठण्डे प्रदेशों से गर्म प्रदेशों को प्रवास कर जाते हैं। इसी प्रकार अनेकों मछलियाँ और अन्य जन्तु जीवसंख्या या समष्टि दोलन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रकृति में समष्टि में दो प्रकार के उतार–चढाव पाये जाते हैं–

(i) मौसम के अनुसार उतार–चढ़ाव (Seasonal Fluctuations)

(ii) वार्षिक उतार–चढ़ाव (Annual Fluctuations)

(i) मौसम के अनुसार उतार–चढ़ाव (Seasonal Fluctuations)– मौसमी परिवर्तन मुख्यतः मौसम (Season) व प्राणी के जीवन–चक्र (Life-

history) द्वारा नियन्त्रित होते हैं। समष्टि आकार में इस प्रकार के मौसमी उतार–चढाव के बहुत से उदाहरण दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ (a) वर्ष के कुछ भाग में वातावरण में मच्छर व मक्खियों की संख्या बहुत घनी हो जाती है या जंगल पूरी तरह से पक्षियों से भर जाता है या खेत कुछ खास प्रकार की घास – पतवार से भर जाते हैं, जबकि मौसम – परिवर्तन होने पर ये लगभग समाप्तप्राय हो जाते है। इस प्रकार के समष्टि परिवर्तन सामान्यतः उन कीटों में पाये जाते हैं जिनका जीवन चक्र छोटा होता है। (b) इसी प्रकार, अलवणीय जल (Fresh water) में प्लवकों की वृद्धि भी एक दर्शनीय मौसमी परिवर्तन का अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार वर्ष में एक या अनेक बार इस प्रकार के छोटे व घने समष्टि घनत्व परिवर्तन मौसमी उतर – चढाव के अनुसार होते हैं।

(ii) वार्षिक उतार–चढाव (Annual Fluctuations)– वार्षिक उतार–चढ़ाव को दो प्रकार की श्रेणियों में रखा जाता है– (a) अन्तर्निहित कारकों (Intrinsic factors) द्वारा उत्पन्न उतार–चढ़ाव–इस प्रकार के परिवर्तन जैविक पर्यावरण के वार्षिक परिवर्तनों के द्वारा होते हैं। ये बहुधा अनियमितता दर्शाते हैं। (b) बाह्यकारी कारकों (Extrinsic Factors) द्वारा उत्पन्न उतार–चढ़ाव – इस प्रकार के परिवर्तन जैविक पर्यावरण अर्थात समष्टि गतिशीलता (Population dynamics) के वार्षिक परिवर्तनों के कारण होते हैं। ये प्रकृति में चक्रीय क्रम में नियमित रूप से होते हैं।

1.21.8 आयु वितरण (Age Distribution)

किसी भी जीवसंख्या समष्टि में सदस्य समान आयु के नहीं होते हैं। इनमें से कुछ बाल्यकाल में है, तो कुछ युवा एवं वृद्धावस्था के होते है। अलग–अलग जीवसंख्या में विभिन्न आयु – वर्ग के सदस्यों की संख्या या अनुपात भी अलग–अलग होता है। अतः किसी जीवसंख्या में विभिन्न आयु वर्ग के सदस्यों की उपस्थिति को आयु–वितरण कहते है। आयु वितरण व्यवस्था अनेकों कारणों पर निर्भर करती है और इसका सीधा प्रभाव जन्म और मृत्यु दर पर पड़ता हैं।

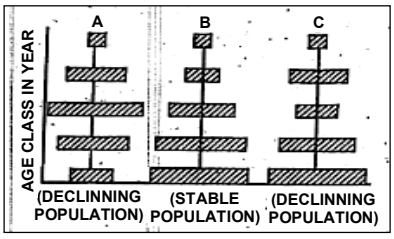

चित्र क्र. 1.51: आयु–वितरण (Age-distribution)

साधारणतः तेज गति से बढ़ती हुई जीवसंख्या में युवा सदस्यों की संख्या अधिक होती है। इनके अतिरिक्त किसी पतनशील जीवसंख्या में वृद्धावस्था के सदस्यों की संख्या अधिक रहती है।

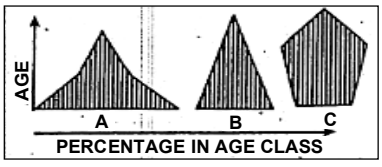

चित्र क्र. 1.52: आयु के विभिन्न पिरामिड़ (Various pyramid of age)

प्राणियों की आयु के अनुसार जन्म और मृत्यु दर में उतार–चढ़ाव होता है। अतः जन्म और मृत्यु दर सम्पूर्ण जीवसंख्या की जन्म और मृत्यु प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है अर्थात जिन जातियों में उच्च

प्रजनन–दर होगी, प्रारम्भिक अवस्था में मृत्यु दर भी अधिक रही होगी और जिन जातियों में प्रजनन–दर न्यून होगी उनमें प्रारम्भिक अवस्था में मृत्यु दर भी कम होगी। परन्तु उन जातियों में जिनकी जीवसंख्या स्थिर हो जाती है, जन्म दर लगभग मृत्यु दर के बराबर रहती है और आयु वितरण भी लगभग स्थिर रहता है। जीवसंख्या आयु वितरण व्यवस्था को स्पष्ट करने के लिए बोडेनीमर, 1938 (Bodeneimer, 1938) ने आयु को तीन श्रेणियो में वितरित किया है।

(i) प्रजनन पूर्व आयु (Pre-reproductive age)

(ii) वास्तविक प्रजनन आयु (Actual reproductive age)

(iii) प्रजनन पश्चात आयु (Post reproductive age)

विभिन्न जन्तुओं में उपर्युक्त तीनों आयु की अवधि अलग–अलग होती है। परन्तु मानव – जाति में यह तीनों प्रजनन – आयु लगभग बराबर अवधि की होती है। कुछ कीट जातियों, जैसे– तितली में दीर्घ प्रजनन–पूर्व (Long pre-reproductive) और संक्षिप्त वास्तविक प्रजनन (Short actual reproductive) आयु होती है। इस कीट में प्रजनन पश्चात (Post reproductive) आयु नहीं होती है। अधिकांश जन्तु और वनस्पति प्रजातियों में प्रजनन–पूर्व आयु अधिक लम्बी होती है।

1.21.9 आयु स्तूप या पिरामिड़ (Age Pyramid)

किसी भी जीवसंख्या की आयु वितरण व्यवस्था को बहुभुजी पिरामिड़ (Polygonal pyramid) के रूप में निरूपति किया जाता है। इस पिरामिड़ की आधार रेखा द्वारा सम्बन्धित जाति के युवा सदस्यों या प्रारम्भिक अवस्थाओं की संख्या अथवा प्रतिशत में दर्शाया जाता है। आधार रेखा के ऊपर लम्बवत या बहुकोणीय रेखाओं से बने पिरामिड़ आयु दर्शाते हैं। (देखे चित्र 1.52) पिरामिड़ 'A' की आधार पट्टिका सबसे अधिक बड़ी है अर्थात इस पिरामिड़ में सबसे अधिक प्रारम्भिक युवा अवस्थाओं (Young members) की संख्या दर्शायी गयी है। पिरामिड़ 'B' में साधारण और पिरामिड़ 'C' में युवा अवस्थाओं का प्रतिशत सबसे कम दिखाई देता है।

1.21.10 जैविक क्षमता (Biotic Potential)

किसी भी विशिष्ट स्पीशिज की सम्भावित जनन–दर को उसका जैविक क्षमता (Biotic potential) कहते हैं। किसी भी जन्तु या पौधे में यह क्षमता पूरी तरह कभी भी घटित नहीं होता, क्योंकि इसमें परजीवियों, परभक्षियो, दुर्घटनाओं और आहार के न मिलने से जनन–दर में कमी आ जाती है। मृत्यु के इन तमाम कारणों को ''पर्यावरण – सम्बन्धी प्रतिरोध'' (Enviroment related Resistance) की अवधारणा के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

प्रकृति में किसी भी जीवसंख्या (Population) की सफलता उसकी जैविक क्षमता पर निर्भर करती है। जैविक क्षमता का अनुमान किसी जीव की प्रजाति की उच्चतम सम्भावित जन्मदर या उच्चतम प्रजनन दर से लगाया जा सकता है। सम्भावित जन्म दर और सम्भावित मृत्यु दर के उपरान्त शेष जीवित रहने योग्य सदस्यों की संख्या या जीवसंख्या वृद्धि को ही जैविक क्षमता कहते हैं। जैविक

क्षमता स्पष्टतः वातावरण कारकों की सर्वोत्तम अनुकूल परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इन्हीं सर्वोत्तम परिस्थितियों में सम्भावित अधिकतम जन्म दर और न्यूनतम मृत्यु दर या सम्भावित मृत्यु दर सम्भव है। यदि वातावरण कारक पूर्णरूप से अनुकूल नहीं होंगे तब सम्भावित जन्म दर घट सकती हैं अथवा सम्भावित मृत्यु दर बढ़ सकती है। ऐसी स्थिति में जैविक क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर विस्तृत रूप में जैविक क्षमता को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

"किसी जन्तु प्रजाति की उस आन्तरिक और स्वाभाविक शक्ति को उसकी जैविक क्षमता कहते हैं, जिसके माध्यम से वह सर्वोत्तम अनुकूल पारिस्थितिक कारकों की उपस्थिति में अपनी सम्पूर्ण प्रजनन क्षमता का उपयोग करके, सम्भावित मृत्यु दर के उपरान्त शेष जीवित रहने योग्य सदस्यों की संख्या से जीवसंख्या वृद्धि करती हैं।"

जैविक क्षमता मात्र सैद्धान्तिक कल्पना है, क्योंकि प्रकृति में सर्वोत्तम अनुकूल पारिस्थितिक कारकों की उपस्थिति लगभग असम्भव है। अनेकों वातावरणीय कारक हानिकारक प्रभाव डालकर जीवसंख्या वृद्धि को कम कर देते हैं। वातावरणीय कारकों के सामूहिक विपरीत प्रभाव को वातावरण प्रतिरोध भी कहते हैं। इसलिए किसी जीवसंख्या की वास्तविक संख्या वृद्धि वातावरण प्रतिरोध और जैविक क्षमता के सन्तुलन पर निर्भर करती है। किसी असीमित वातावरण में उच्चतम वृद्धि गति को जैविक क्षमता से दर्शाया जा सकता है।

अर्थात या $\frac{\Delta N}{\Delta t N}$

$r = 5$ /month

$N = 100$

$5 \times 100 = \frac{\Delta N}{\Delta t}$

अर्थात् जैविक क्षमता = 500 प्राणी

जहाँ, N = संख्या,

t = समय

r = बढ़ने की दर

Δ = छोटा या कम परिवर्तन।

1.21.11 जनन क्षमता व उत्पादकता (Fertility and Fecundity)

जनांकिकी – विज्ञानी (Reproductive Biologists) जनन क्षमता (Fertility) और उत्पादकता (Fecundity) में भेद करते हैं। उत्पादकता का अर्थ ''समष्टि में सन्तानोंत्पादन की सामर्थ्य'' माना जाता है, जबकि जनन–क्षमता का वास्तविक अर्थ जनन–क्रिया से है। उत्पादकता एक रूप से एक सैद्धान्तिक अभिधारणा (Theoretical concept) हैं जो मुख्यतः विभिन्न स्पीशीज की तुलनाएँ करने में

उपयोगी होती है। किसी स्पीशीज की उत्पादकता कार्यिकीय कारकों (Physiological factors) पर निर्भर होती है, जैसे लैंगिक परिपक्वता (Sexual maturity) की आयु पर अण्डे और शुक्राणु के उत्पादन (Oogenesis and spermatogenesis), पर निषेचन (Fertilization) के समय की परिस्थितियों पर, भ्रूण परिवर्धन की गति (Speed of embryonic development) पर तथा ऐसे ही अन्य और कारकों पर निर्भर कर सकती है। इसके विपरीत जनन क्षमता पारिस्थितिकी कारकों पर अधिक निर्भर होती है– यह किसी विशिष्ट पर्यावरण में जनन–शक्ति की अभिव्यक्ति होती है।

मानव स्पीशीज की उत्पादकता सम्भवतः दीर्घकाल से स्थिर चली आ रही है। परन्तु जनन–क्षमता (Fertility) में विभिन्न समष्टियो में और एक ही समष्टि में विभिन्न कालों में भिन्नता होती रहती है। किसी समष्टि की जनन–क्षमता की अर्थात उसकी वास्तविक जनन–क्रिया की अभिव्यक्ति अधिकांशतः कच्ची जन्म दर (Crude birth-rate) से की जाती है। यह जन्म दर समष्टि की प्रति हजार व्यक्तियों में प्रति वर्ष जीवित पैदा होने वाले बच्चों की संख्या होती है। जनन क्षमता की अन्य स्पीशीज से या अलग–अलग समय मे तुलना करने एवं पूर्वानुमान लगाने में इस संख्या का कुछ उपयोग हो सकता है। किन्तु वह बहुत सीमित है, क्योंकि समष्टियों में अनेक बातों में अन्तर पाये जाते हैं, जैसे (i) जननशील आयु की स्त्रियों का अनुपात, (ii) विवाहिता स्त्रियों का अनुपात इत्यादि।

इन सब कारणों से जननांकनकर्ता अधिक सूक्ष्म माप–तोल लगाना पसन्द करते हैं, जैसे– विशिष्ट आयु से सम्बन्धित जन्म दर (Age-specific birth-rates), शुद्ध जनन–दर (Net reproductive rates) और मानीकत जन्म दर (Standardized birth rates)। परन्तु इन सब मापों के लिए ऐसे विस्तृत और परिशुद्ध (Absolute) आँकड़ों की आवश्यकता होती है, जो संसार के विभिन्न भागों से प्राप्त नहीं हो पाते, इसलिए कच्ची जन्म दर (Crude birth - rate) ही सबसे सामान्यतः उपलब्ध होती है और मानव समष्टियों (Human populations) में तुलनाएँ करने के लिए इसका आसानी से प्रयोग किया जाता है।

1.21.12 जीवसंख्या या समष्टि परस्पर क्रियाएँ (Population Interactions or Biotic Factors Interactions)

विभिन्न जीवसंख्याओं में परस्पर क्रियाओं का होना साधारण लक्षण है। इनका जीवसमष्टि की वृद्धि पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। कुछ अनुक्रियाएँ जीवसंख्या की धनात्मक वृद्धि में सहायक होती हैं, परन्तु अन्य नकारात्मक वृद्धि या मृत्युदर बढ़ाने के लिए उत्तरदायी होती हैं। इन दोनों के विपरीत तटस्थ अनुक्रिया भी है, जिनका जीवसंख्या वृद्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः समस्त अनुक्रियाएँ निम्नांकित है–

(अ) तटस्थ अनुक्रियाएँ (Neutralism)– इनका जीवसंख्या घनत्व पर कोई प्रभाव नहीं होता है।

(ब) धनात्मक अनुक्रियाएँ (Positive Interactions) यह अनुक्रियाएँ जीवसंख्या वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण हैं। इनके माध्यम से किसी भी जन्तु की उन्नति

सम्भव होती है। ऐसी क्रियाओं में विभिन्न समष्टि एक-दूसरे से सहयोग करके सुविधाओं का आदान–प्रदान करती है, जिनसे दोनों को लाभ पहुँचता है। परन्तु कभी-कभी एक समष्टि को लाभ पहुँचता है, परन्तु दूसरी को न तो लाभ और न हानि होती है। कुछ प्रमुख धनात्मक अनुक्रियाओं, जिनकी विस्तृत चर्चा वातावरण कारकों के अध्याय में की गई है, के अग्रांकित उदाहरण हैं–

(i) मूल सहयोग या सहजीवन (Proto-cooperation or Mutalism)– इस प्रकार के सहयोग में दोनों प्रजाति एक–दूसरे को लाभकारी सहयोग देती है।

(ii) सहभोजिता (Commensalism)– इस प्रक्रिया में एक स्पीशीज को लाभ पहुँचता है, परन्तु दूसरी स्पीशीज को न तो लाभ पहुँचता है और न हानि।

(स) नकारात्मक अनुक्रियाएँ (Negative Interactions)– अनेकों ऐसी प्राकृतिक अनुक्रियाएँ हैं जो एक प्रजाति के लिए लाभप्रद हो सकती हैं, परन्तु दूसरी जीवसंख्या पर निश्चित विपरीत प्रभाव डालती है। इनके मुख्य उदाहरण नीचे दिये गये हैं–

(i) परभक्षण (Predation)– इस अनुक्रिया में एक शक्तिशाली प्रजाति दूसरी प्रजाति के सदस्यों का शिकार या भक्षण कर उसकी जीवसंख्या वृद्धि को कम कर देती है, जैसे कि बिल्लियाँ निरन्तर चूहों का परभक्षण करके चूहों की जीवसंख्या वृद्धि पर विपरीत प्रभाव डालती हैं।

(ii) परजीवन (Parasitism)– यह भी एक नकारात्मक अनुक्रिया है। इसमें एक जीव दूसरे जीव से भोजन प्राप्त करता है, किन्तु कभी–कभी परजीवी पोषक के लिए प्राणघातक भी सिद्ध हो जाता है। परजीवी अपने पोषक का शोषण करके उसके विकास और वृद्धि में बाधा उत्पन्न करने के अतिरिक्त मृत्यु दर भी बढ़ा सकते है।

(iii) स्पर्धा (Competition)– विभिन्न जीवसंख्या में अनेकों प्राकृतिक सुविधाओं के लिए उस समय भारी संघर्ष होता है, जब उन सब की आवश्यकताएँ समान सुविधाओं पर आधारित हों। यह स्पर्धा मुख्यतः भोजन, निवास–स्थल के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करके जीवसंख्या वृद्धि दर पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

जीवसंख्या अनुक्रियाओं के विभिन्न उदाहरण और प्रभावों की विस्तृत व्याख्या "अन्तर्जातीय जैविक कारण'' शीर्षक में जैविक कारकों के अन्तर्गत अलग से दी गई है।

1.21.13 जीवसंख्या या समष्टि आकार का नियमन (Regulation of Population Size)

सभी जीव जन्तु निरन्तर संख्या–वृद्धि का स्वाभाविक गुण दर्शाते हैं। परन्तु यह संख्या वृद्धि अनिश्चित और असीमित नहीं है। प्रत्येक जीवसंख्या संवहन क्षमता

(Carrying capacity) तक ही वृद्धि कर सकती है। अतः संवहन क्षमता स्तर रेखा पर पहुँचने के उपरान्त जीवसंख्या घनत्व इस रेखा के आस-पास, ऊपर-नीचे दोलन करती रहती है। परन्तु और अधिक वृद्धि की सम्भावना समाप्त हो जाती है। यह प्राकृतिक प्रक्रिया जीवसंख्या को स्थिरता प्रदान करती है। जीवसंख्या स्थिरीकरण या स्वतः जीवसंख्या आकार नियन्त्रण (Population size regulation) की यह प्रक्रिया पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों के लिए विशष महत्व रखती है।

स्वतः नियमन (Self-regulation) की प्रक्रिया अनेक रूपों में देखने को मिलती है। कुछ जन्तु प्रजातियों में अति जीवन-संख्या (Over-population) की स्थिति में प्रजनन प्रक्रिया स्वतः स्थगित अथवा कम हो जाती हैं और कुछ अन्य में आत्मघाती प्रवृत्ति पनपने लगती है। इस प्रकार जीवसंख्या वृद्धि को स्थिरता प्रदान की जाती है। संक्षेप में जीवसंख्या नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारकों के दो प्रकार हैं–

(अ) बाहय अर्थात् जीवसंख्या घनत्व से स्वतंत्र कारक (Extrinsic or Population density independent factors)।

(ब) आन्तरिक अर्थात जीवसंख्या घनत्व पर निर्भर कारक (Intrinsic or Density dependent factors)

(अ) बाहय कारक या जीवसंख्या घनत्व से स्वतंत्र कारक (Extrinsic or Population density independent factors)– इस समूह के कारक जीवसंख्या घनत्व से प्रभावित नहीं होते हैं। अन्य शब्दों में बाहय कारक स्वतः ही जीवसंख्या घटाने का काम करते है और इस प्रक्रिया के लिए जीवसंख्या घनत्व का कोई महत्व नही है। भोजन, आवास, ताप, जलवायु आदि वातावरण कारक कभी भी विनाशकारी विपरीत प्रभाव के रूप में किसी भी छोटी अथवा बड़ी जीवसंख्या में समान रूप से मृत्यु दर बढ़ाकर संख्या वृद्धि रोक देते हैं। यह घातक प्रभाव अल्प, अधिक अथवा संवहन क्षमताधारी (Carrying capacity) किसी भी जीवसंख्या या समष्टि पर समान रूप से लागू होते हैं, अर्थात् इन नियन्त्रक कारकों का जीवसंख्या घनत्व से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

बाहय कारकों के उतार–चढ़ाव, नकारात्मक और धनात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। संवहन क्षमताधारी, अल्प अथवा अति जीवसंख्या पर नकारात्मक प्रभाव से संख्या प्रचुरता घटती है। परन्तु अल्प जीवसंख्या पर धनात्मक प्रभाव से संख्या प्रचुरता बढ़कर संवहन तक वृद्धि कर सकती है।

(ब) आन्तरिक कारक अर्थात् जीवसंख्या घनत्व पर निर्भर कारक (Intrinsic or Density dependent factors)– वास्तव में इनको हम अन्तःजातीय एवं अन्तराजातीय अनुक्रिया (Intra-specific and inter-specific intra-action factors) कह सकते हैं। किसी भी प्रजाति के विभिन्न सदस्य जीवसंख्या के दबाव के कारण विभिन्न साधनों के लिए एक-दूसरे से स्पर्धात्मक संघर्ष करते हैं। यही स्पर्धात्मक अनुक्रियाएं

(Competitive interaction) जीवसंख्या नियन्त्रक कारक (Regulating factors) के रुप में कार्य करती है। अति–जीवसंख्या (Over-population) के उत्पन्न दबाव में कार्य में अन्तःजातीय स्पर्धा छिड़ जाती है। यह स्पर्धा साधारणतः भोजन, आवास–स्थल, अथवा प्रजनन सुविधाओं के लिए होती है। परिणामस्वरूप शक्तिशाली सदस्य अपनी ही प्रजाति के कमजोर सदस्यों को मारकर जीवसंख्या घटा देते हैं।

इसी प्रकार विभिन्न प्रजातियों के सदस्य एक-दूसरे की वृद्धि पर नियन्त्रण करते है। उदाहरण के लिए जब किसी वनप्रदेश में शाकाहारी जीवसंख्याएँ अतिवृद्धि करती है, तब अनेकों माँसाहारी परभक्षी स्वतः इन वनों में प्रविष्ट होने लगते है और परभक्षण की तीव्रता शाकाहारियों की संख्या घटाती जाती है। यह भी सत्य है कि जब शिकार की कमी होती है, तब शिकारी दूसरे जंगल में चले जाते हैं, अर्थात दोतरफा परभक्षण स्वतः जीवसंख्या नियन्त्रण करता है।

परभक्षक (Predator) और परभक्षित (Prey) दोनों प्रजातियों का जीवसंख्या घनत्व एक-दूसरे पर निर्भर करता है जो स्वतः नियन्त्रित है। इसी प्रकार जहाँ पोषक बढ़ते हैं, वहीं पर परजीवी भी अपनी बढ़ोत्तरी करके शोषण और बीमारियों से पोषकों की मृत्यु दर बढ़ाकर संख्या वृद्धि रोक देते हैं। पोषकों की संख्या घटने पर परजीवी जीवसंख्या भी स्वतः घट जाती है। लगभग यही सम्बन्ध बीमारी उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवी और उनके पोषकों में है। इस प्रकार की लगभग सभी नकारात्मक अन्तर्जातीय अनुक्रियाएँ नियन्त्रण और सन्तुलन स्थापित करती हैं।

1.21.14 समष्टि वितरण या छितराव (Population Distribution)

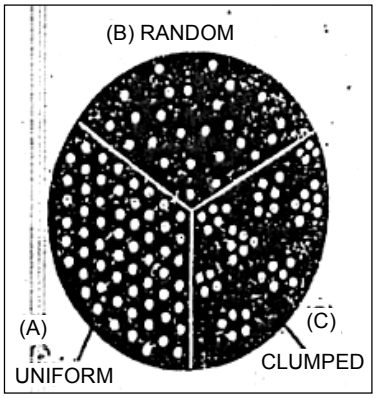

चित्र क्र. 1.53: समष्टि में प्राणियों का वितरण : (A) समान वितरण (B) रैन्डम वितरण (C) संपुंजित वितरण (Distribution of animals in population: (A) Uniform distribution, (B) Random distribution, (C) Clumped distribution)

प्रत्येक जीवसंख्या में अधिक से अधिक भौगोलिक क्षेत्र पर विकसित होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है। इसी स्वाभाविक प्रकीर्णन या फैलाव को जीवसंख्या प्रसार कहते हैं। परिक्षेपण में जो भी आन्तरिक वितरणों के प्रतिरूप होते हैं, उन्हें प्रदर्शित किया जाता है। इसके तीन मुख्य प्रतिरूप होते हैं–

(i) यादृच्छिक (Random)।

(ii) समान (Uniform)।

(iii) संपुजित (Clumped)।

जहाँ वातावरण एकसमान हो, लेकिन साथ ही और कारकों की वजह से प्राणियों में समूह बनाने की प्रवृत्ति न हो, ऐसी समष्टि यादृच्छिक (Random) वितरण को प्रदर्शित करती है।

टिप्पणी

जिस समष्टि के सदस्यों के बीच में प्रतियोगिता अत्यधिक हो वहाँ समान (Uniform) वितरण होता है।

यदि जीवों की प्रवृत्ति समूह बनाकर रहने की हो या उनके लिए बहुत से ऐसे कारक हों, जो उन्हें छोटे या बड़े पुंजों में एकत्रित होने को मजबूर करें तो ऐसे आन्तरिक वितरण को संपुंजित (Clumped) वितरण कहेंगे।

1.21.15 समष्टि प्रसार या प्रकीर्णन (Population Dispersal)

अजैविक और जैविक कारकों एवं अनुक्रियाओं के परिणामस्वरूप, जीवसंख्या प्रसार की आवश्यकता उत्पन्न होती है। मुख्य रूप से भोजन की कमी, अत्याधिक समष्टि घनत्व, बाढ़, सूखा, वातावरण कारकों (जैसे– ताप, प्रकाश, वायु–वेग) में स्थानीय (Local) या क्षेत्रीय (Regional) परिवर्तन (Fluctuations) अथवा प्रजनन और आनुवंशिकीय (Genetics) लक्षणों के आदान–प्रदान आदि कारणों से जीवसंख्या (Population) वितरण का प्रसार होता है। इसका प्रभाव जन्म और मृत्यु दर पर पड़ने से जीवसंख्या घनत्व (Population density), वृद्धि और संरचना में भी परिवर्तन होते रहते हैं। जीवसंख्या या समष्टि के प्रसार के फलस्वरूप जीव नए आवासों की ओर अभिगमन कर मूल समष्टि से अलग हो जाते है। अतः जीवसंख्या प्रसार या समष्टि प्रकीर्णन, समष्टि परिक्षेपण से भिन्न हैं। समष्टि परिक्षेपण में होने वाले विभिन्न प्रतिरूप बाहय परिवर्तनों व संरचनाओं से जुड़े हैं। समष्टि प्रसार को सम्पन्न करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रियाएँ आवश्यक हैं–

(अ) बहिर्गमन अथवा बहिर्प्रवास (Emigration)– साधारणतः जब किसी समष्टि में अधिक वृद्धि दर के कारण विभिन्न आवश्यकताओं के लिए अन्तराजातीय स्पर्धा तीव्र हो जाती है। तब बहिर्गमन आवश्यक हो जाता है। अन्य शब्दों में, जब किसी स्थान पर जीवसंख्या घनत्व उपलब्ध साधनों के अनुपात में अत्याधिक हो जाता है, तब स्पर्धा से बचने के लिए कुछ सदस्य मूल आवास छोड़कर नये निवास स्थान पर जाकर नई बस्ती बनाकर रहने लगते हैं। मूल स्थान छोड़कर अन्य किसी नए स्थान पर स्थिापित होने की इस क्रिया को बहिर्गमन या बहिर्प्रवास कहते है।

जैसे– कोई समष्टि अपने मूल स्थान 'A' से स्थान 'Bश की ओर बर्हिगमन करती है।

लक्षण (Characteristics)

(i) बहिर्प्रवास में अनुकूलन क्रिया है, जिसके माध्यम से विपरीत परिस्थितियों में जीवन की रक्षा और प्रजाति की निरन्तरता सुरक्षित रहती है।

(ii) अधिकांश कशेरूकीय जन्तुओं में पुराने और वृद्ध सदस्य अपने मूल स्थान पर बने रहते हैं और नयी युवा पीढ़ी को बहिर्प्रवास करके नई बस्ती बनानी पड़ती है।

(iii) प्राकृतिक रूप में बहिर्प्रवास की प्रक्रिया खरगोश, बर्फीले उल्लू, भूरी गिलहरी, ध्रुवीय लोमड़ी आदि के अतिरिक्त मानव में भी मुख्य रूप से देखी जा सकती है।

(iv) अकशेरूकीय वर्ग के अनेकों कीट बहिर्प्रवास का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसमें उत्प्रवासी टिड्डी (Locust) का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

(ब) अप्रवास अथवा अन्तःप्रवास (Immigration)– बहिर्प्रवास के ठीक विपरीत क्रिया अप्रवास कहलाती है अर्थात जब किसी अन्य जगह से विस्थापित जन्तु किसी मूल समष्टि में सम्मिलित होकर वहाँ के स्थायी सदस्य बन जाते हैं, तब उन्हें अप्रवासी और इस प्रक्रिया को अप्रवास कहते हैं।

लक्षण (Characteristics)

(i) अप्रवासी सदस्य मूल समष्टि में संसाधनों का अभाव और स्पर्धा को और तीव्र कर देते हैं।

(ii) जीवसंख्या या समष्टि दबाव और उथल – पुथल के परिणामस्वरूप जन्म और मृत्यु दर प्रभावित होने से समष्टि आकार (Population size) में वृद्धि और अन्य लक्षण भी परिवर्तित होते है।

(iii) अप्रवास के दबाव से कभी-कभी समष्टि में बहिर्गमन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(iv) अप्रवास के लिए भी लगभग वही जैविक और अजैविक कारक उत्तरदायी हैं, जिनके कारण बहिर्गमन होता है। अर्थात आवास B में जब अजैविक और जैविक कारक अनकूल नहीं होते।

(स) प्रवास (Migration)– अनेकों जीव–जातियों में कुछ निश्चित समय पर प्रत्येक वर्ष सम्पूर्ण समष्टि एक साथ मूल स्थान A से किसी अन्य स्थान B के लिए चली जाती है और कुछ निश्चित अवधि के बाद पुनः अपने मूल निवास A पर वापस आ जाती है। कभी–कभी सम्पूर्ण समष्टि का एक बड़ा भाग ही यह प्रक्रिया अपनाता है। इस प्रकार स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रवास कहते हैं। यह क्रिया दीवार–घड़ी के लोलक (Pendulum) की दोलन गति के समान होती हें।

लक्षण (Characteristics)

(i) बहिर्प्रवास और अप्रवास की तुलना में प्रवास में, विशेष अन्तर यह है कि, पहली दोनों प्रक्रियाओं में समष्टि स्थायी रूप में मूल निवास से सदैव के लिए विस्थापित हो जाती है। परन्तु प्रवास एक अस्थायी प्रक्रिया है, जिसमें एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के उपरान्त प्रवासी वापस पुनः मूल स्थान पर आ जाते हैं।

(ii) प्रवास का सबसे अच्छा उदाहरण पक्षियों में देखा जा सकता है। अनेकों प्रवासी पक्षी प्रत्येक वर्ष साइबेरिया से शीत ऋतु के प्रारम्भ में घाना पक्षी विहार (भरतपुर, राजस्थान), बड़कल झील (फरिदाबाद,

हरियाणा) आदि अनेकों स्थान पर आकर प्रवास करते हैं और ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर वापस पुनः साइबेरिया चले जाते हैं। इसी प्रकार रस्टीकोला और बुश्चैट नामक पक्षी हिमालय की ऊँची पहाड़ियों से नीचे मैदानी क्षेत्र में आकर शीत ऋतु में प्रवास करते हैं और ग्रीष्म ऋतु के आगमन से पहले वापस फिर अपने मूल निवास पर चले जाते हैं। यूरोपियन ईल नामक मछली भी हजारों मील चलकर प्रत्येक वर्ष प्रवास के लिए उष्ण प्रदेशीय समुद्रों मे जाती है। इस प्रकार के अनेकों अन्य उदाहरण अकशेरूकीय और कशेरूकीय दोनों वर्ग के जन्तुओं में पाये जाते हैं।

(iii) प्रवास मुख्यतः ऋतु परिवर्तन से उत्पन्न अस्थायी विपरीत परिस्थितियों का सामना करने का उपाय है। शीत ऋतु में ठण्डे प्रदेशों में बर्फ गिरने से भोजन का अभाव उत्पन्न हो जाता है। अतः गर्म प्रदेशों में भोजन और आवास की सुविधाओं के लिए जन्तु प्रवास द्वारा प्राण–रक्षा के साथ–साथ प्रजनन आदि अन्य जैविक क्रियाएँ सम्पन्न करके, उपयुक्त समय पर पुनः वापस मूल स्थान पर आ जाते हैं।

(iv) प्रवास प्रक्रिया जीवसंख्या या समष्टि को भी प्रभावित करती है। इसके माध्यम से प्राणी भोजन और आवास की अन्तराजातीय स्पर्धा से बचने के साथ–साथ अत्याधिक जीवसंख्या वृद्धि की अनेकों समस्याओं से भी मुक्त हो जाते हैं।

(v) प्रवास प्रक्रिया में आनुवंशिकी लक्षणों का आदान–प्रदान वंश सुधार और अधिक भौगोलिक वितरण की सम्भावनाएँ भी बढ़ जाती है।

(vi) प्रवास प्रक्रिया के कुछ हानिकारक परिणाम भी होते है। प्रवास मार्ग में तापमान, वायुवेग, वर्षा आदि वातावरण कारकों में अचानक हानिकारक तीव्र उतार–चढ़ाव (Violent fluctuations) या शिकारियों का हमला, जीवसंख्या के मृत्यु दर के अनुपात को बढ़ा सकता है।

1.21.16 नैसर्गिक संख्या – वृद्धि क्षमता (Innate Capacity for Increase in Number)

जीवसंख्या घनत्व पर मृत्यु और जन्मदर का प्रभाव विभिन्न प्रकार की जीवन सारणी और वक्र रेखा द्वारा बताया जा सकता है। इस प्रकार की सारणी से मृत्यु दर का अनुमान तो लगाया जा सकता है, परन्तु इनको देखने पर जीवसंख्या प्रजनन दर का कोई ज्ञान नहीं मिल सकता है। यह सत्य है कि जीवसंख्या घनत्व का विस्तृत ज्ञान प्रजनन गति के अभाव में अपूर्ण रह जाता है। अतः जीवसंख्या घनत्व के विस्तृत आँकड़े प्राप्त करने के लिए मृत्युदर और प्रजनन दर को संयुक्त रूप में प्रदर्शित करते हैं। प्रजनन और मृत्युदर के संयुक्त आँकडों से वास्तविक संख्या बढ़ोतरी पता लग सकती है। इस प्रकार प्रजनन और मृत्यु दर से प्राप्त संख्या, प्रजाति विशेष की नैसर्गिक संख्या वृद्धि क्षमता कहलाती है। नैसर्गिक संख्या वृद्धि क्षमता की विस्तृत परिभाषा इन शब्दों में दी जा सकती है।

"प्रजाति विशेष की विभिन्न कारकों, जैसे– ताप, आर्द्रता, भोजन आदि की परम आदर्श या सर्वोत्तम परिस्थितियों में अन्य सभी जीवों के प्रभाव से युक्त रखने पर जो उच्चतम संख्या बढ़ोतरी प्राप्त होती है, वह उसकी नैसर्गिक संख्या वृद्धि क्षमता कहलाती है।

यह स्वतः स्पष्ट है कि यह क्षमता आदर्ष या सर्वोतम अनुकूल वातावरण कारकों की उपस्थिति में ही सम्भव है। इस क्षमता पर अनेकों कारकों जैसे– आकार, प्रजनन–क्षमता, आयु, जीवन–काल और विकास दर आदि का प्रभाव पड़ता है। इन कारकों के प्रभाव को जन्म और मृत्यु दर के रुप में दिखाया जाता है। यदि जन्म दर मृत्यु दर से अधिक है, तब जीवसंख्या वृद्धि होती है, परन्तु मृत्यु दर अधिक होने पर शैनेः–शैनेः जीवसंख्या घटकर समाप्त हो सकती है। नैसर्गिक संख्या वृद्धि या जीवसंख्या वृद्धि को rN से दर्षाया जाता है।

1.21.17 जीवसंख्या वृद्धि आकार (Population Growth Form)

जीवसंख्या के बढ़ने का मुख्य प्रतिरूप जीवसंख्या वृद्धि आकार है। जीवसंख्या वृद्धि आकार के दो मूल प्रतिरूप है–

1. 'J'' रूप का वृद्धि आकार, एवं
2. 'S'' रूप या सिगमॉइड (Sigmoid) वृद्धि आकार।

1. 'J'' प्रतिरूप में जीवसंख्या का घनत्व तीव्रता से चरघातांकी ढंग (Exponential fashion) से बढ़ता है तथा अचानक वातावरणीय प्रतिरोध बढ़ने के कारण एकदम रूक जाता है। 'J'' आकार का वक्र यह दर्शाता है कि जैसे ही जीवसंख्या अनन्तस्पर्शी (Asymptote) जीवसंख्या के उच्चतम आकार या अवस्था पर पहुँचती है, तो एक प्रतिरोधी कारक, जैसे – मौसम, जगह आदि जीवसंख्या को बढ़ने से रोक देता है।

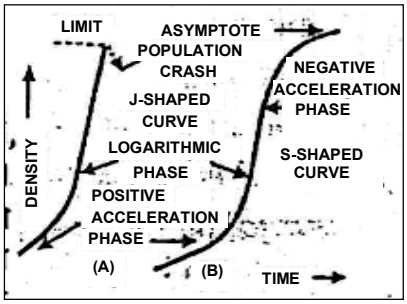

चित्र क्र. 1.54: जीवसंख्या वृद्धि आकार : (A) 'J' प्रकार का वृद्धि आकार (B) 'S' प्रकार का या सिगमॉइड वृद्धि आकार
(Population growth forms : (A) 'J' Shaped growth curve, (B) 'S' Shaped or sigmoid curve)

इस आकार को निम्नांकित समीकरण से प्रदर्शित किया जा सकता हैं –

अर्थात् $\frac{\Delta N}{\Delta t} = rN$

या $r = \frac{N}{tN}$

टिप्पणी

जहाँ N = संख्या, t = समय, r = वृद्धि की दर, Δ = छोटा या क्रम परिर्वतन।

(ii) इसी प्रकार का जीवसंख्या का वृद्धि आकार 'S' Shaped या Sigmoid वृद्धि आकार है। जिसमें वृद्धि की दर कम होती है, फिर बढ़ती है, जब तक की उच्चतम सीमा नहीं पहुँच जाती। जैसे–जैसे घनत्व बढ़ता जाता है, वृद्धि दर लगातार कम होती जाती है। जब जीवसंख्या वहन क्षमता (Carrying capacity) या अनन्तस्पर्शी (Asymptote) प्रावस्था पर पहुँचती है तो वक्र चपटा (Flattened) हो जाता है। (चित्र 1.54)। 'S' Shaped या सिगमॉइड वृद्धि आकार निम्नांकित समीकरण में दर्शाया जा सकता है।

$$\frac{DN}{Dt} = rN \frac{(K - N)}{K}$$

जहाँ K वातावरणीय अवस्था में जीवसंख्या का उच्चतम सम्भव आकार है। इसे ऊपरी एसिम्पटोट (Upper-asymptote) या वहन क्षमता (Carrying capacity) भी कहा जा सकता है। समीकरण (Equation) केवल यह बताता है कि जीवसंख्या की वृद्धि दर जीवसंख्या की क्षमता–वृद्धि (Potential increase) के बराबर होती है। सिगमॉइड वक्र में वृद्धि के ढंग (Pattern) की निम्न प्रावस्थाएँ होती हैं।

(i) धनात्मक त्वरण प्रावस्था (Positive Accelertion Phase)– इसमें समष्टि अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर धीरे–धीरे वृद्धि करती है। (ii) लॉगेरिथ्मक प्रावस्था (Logarithmic phase) वातावरण में अनुकूलित हो जाने पर बहुत तेजी से वृद्धि करती है।

अन्त में यह वृद्धि धीमी हो जाती है जिसका कारण पर्यावरणीय प्रतिरोधकता (Environmental resistance) का बढ़ना होता है। इसे (iii) ऋणात्मक त्वरण प्रावस्था (Negative Acceleration phase) कहते हैं। यह प्रावस्था तब तक चलती है जब तक कि समष्टि की वृद्धि साम्यावस्था को प्राप्त नही कर लेती। वृद्धि वक्र की वृद्धि साम्यावस्था को प्राप्त नहीं कर लेती। वृद्धि वक्र की उपरी सतह का स्तर जिसके परे कोई मुख्य वृद्धि नहीं होती उसे ऊपरी ऐसिम्पटोट कहते हैं। इसे संवहन क्षमता (Carrying capacity) भी कहते हैं। इस प्रकार का वक्र मुख्यतः खमीर (Yeast) की कोशिकाओं व मानव समष्टि में पाया जाता है।

निकोल्सन (1954) ने सिगमॉइड प्रकार के वृद्धि रूप को घनत्व दर्शाये वृद्धीय ढंग (Density-conditional Growth Pattern) कहा है।

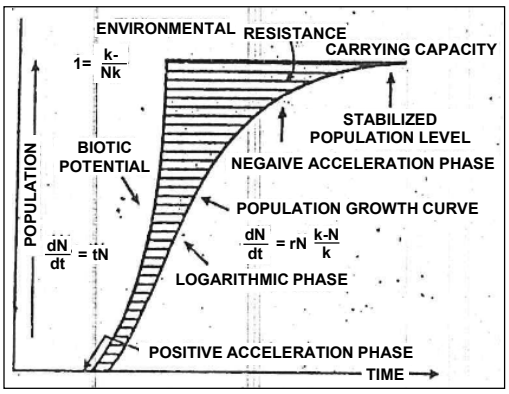

चित्र क्र. 1.55: वृद्धि वक्र की विभिन्न प्रावस्थाएँ
(Various Phases of Growth Rate)

1.21.18 वहन क्षमता (Carrying capacity)

वहन क्षमता को प्रजातयों की व्यष्टियों की संख्या से परिभाषित किया जा सकता है, जो कि किसी विशिष्ट समय में, किसी भी आवास – स्थल में यह प्रजाति या समष्टि अधिकतम संख्या में सुविधापूर्वक निवास कर सकती है। एक बार जब समष्टि वहन क्षमता तक पहुँच, जाती है, तो वह उसी से आस–पास दोलित (Oscillates) होती रहती है या परिवर्तित (Fluctuate) होती रहती है। किसी विशिष्ट प्रजाति में समष्टि वृद्धि में तीव्र पतन (Crash) हो जाता है, यदि वहन – क्षमता से अधिक ऊपर पहुँच जाती है। इस समष्टि के घनत्व में स्थिरता तभी उत्पन्न होती है, जब उसकी आवास स्थल से साम्यावस्था स्थापित हो जाती है। उदाहरणार्थ, पक्षी जैसे प्राणियों का समष्टि घनत्व यदि एक बार वहन क्षमता के ऊपर हो जाता है, तो उस आवास स्थल में भोजन–उपलब्धि, मृत्यु दर, जन्म दर आदि उसे नियन्त्रित कर स्थिरता प्रदान करती हैं। अतः इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक प्राणी को एक निश्चित आवास स्थान (Space) की आवश्यकता होती है, जो कि उस प्राणी की एक निश्चित संख्या को आश्रय दे सके।

'S' आकृति वक्र रेखा ग्राफ सूक्ष्मजीवी बैक्टीरिया से लेकर विशालकाय व्हेल और मानव – जैसे जीवधारियों की संख्या – वृद्धि द्वारा निरूपित किए जाते हैं। मानव के लिए भी इस आकृति का ग्राफ प्राप्त होता है। इस प्रकार की वक्र रेखा का मुख्य आधार निम्न धारणाओं पर आधारित है–

(अ) किसी भी जीवसंख्या का प्रत्येक सदस्य सभी अन्य सदस्यों के समान है।

(ब) वातावरण परिवर्तन में अधिक देरी जीवसंख्या के लिए महत्वपूर्ण मापदण्ड या कारक है।

(स) नैसर्गिक वृद्धि क्षमता (rN) और सन्तुलन घनत्व या वहन क्षमता (Carrying Capacity) 'K' स्थिर कारक हैं।

टिप्पणी

1.21.19 जीवसंख्या नियन्त्रण (Population Control)

प्रत्येक जीवसंख्या की एक संवहन क्षमता (Carrying capacity) होती है, जिसका तात्पर्य उपलब्ध भोजन की मात्रा से होता है। जीवसंख्या नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी कारकों की निम्नलिखित दो श्रेणियाँ होती हैं–

(i) बाहय कारक (Extrinsic Factors) तथा

(ii) आन्तरिक कारक (Intrinsic Factors)

(i) बाहय कारक (Extrinsic Factors)– ये कारक स्वतः ही जीवसंख्या घटाने का काम करते हैं। भोजन, आवास, ताप, जलवायु आदि वातावरणीय कारक कभी भी विनाशकारी विपरीत प्रभाव डालकर किसी भी जीवसंख्या में मृत्यु दर में वृद्धि करके संख्या वृद्धि की दर को कम कर देते हैं। ये घातक प्रभाव कम, अधिक या सम्पूर्ण संवहन क्षमताधारी किसी भी जीवसंख्या पर समान रूप से पड़ते हैं अर्थात इन नियन्त्रक कारकों का जीवसंख्या घनत्व से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(ii) आन्तरिक कारक (Intrinsic Factors)– इस प्रकार के कारक जीवसंख्या घनत्व से प्रभावित होते हैं। वस्तव में इन कारकों को हम अन्तर्जातीय तथा अन्तःजातीय अनुक्रिया कारक (Interspecific and intranspecific Co-action Factors) भी कह सकते हैं। किसी भी प्रजाति के विभिन्न सदस्य जीवसंख्या दबाव के कारण विभिन्न साधनों के लिए एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष करते हैं। यही प्रतिस्पर्धात्मक अनुक्रियाएँ (Competitive interactions) जीवसंख्या नियन्त्रक कारकों (Population regulating factors) के रूप में कार्य करते है। इन्हीं प्रतिस्पर्धात्मक अनुक्रियाओं के परिणामस्वरूप संवहन क्षमता स्तर पर आकर जीवसंख्या वृद्धि लगभग स्थिर हो जाती है। अन्तराजातीय अनुक्रिया कारकों के अन्तर्गत कुछ अन्य जातियों के जीव भी परजीविता, परभक्षण आदि नकारात्मक अनुक्रियाओं के माध्यम से भी जीवसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करते हैं। कुछ परजीवी या सूक्ष्मजीवी महामारियाँ फैलाकर भी जीवसंख्या वृद्धि को रोकने का कार्य करते हैं।

अति–जीवसंख्या (Over-Pupulation) से उत्पन्न दबाव में किसी भी जीवसंख्या में अन्तःजातीय प्रतिस्पर्धा (Intraspecific competition) उत्पन्न हो जाती है। ऐसी प्रतिस्पर्धा आवास–स्थल, भोजन अथवा प्रजनन सुविधायें हासिल करने के लिए होती हैं। इसके फलस्वरूप जीवसंख्या के शक्तिशाली सदस्य अपनी ही प्रजाति के कमजोर सदस्यों को मारकर जीवसंख्या कम कर देते हैं।

किसी–किसी जीवसंख्या जैसे स्नोशू शशक (Snowshoe Hare) में परभक्षण अथवा व्याधियों की अनुपस्थिति में भी जीवसंख्या दोलित होती रहती है। जब जीवसंख्या में संवहन क्षमता से अधिक वृद्धि होती हैं, तो जीव बड़ी संख्या में मरने लगते हैं। ऐसा समझ जाता है कि ऐसे समय जीवों के अधिवृक्क पीयूषिका तंत्र (Adrenal-hypophysial system) गडबड़ (Upset) हो जाता है, परिणामस्वरूप

अतिसंकुलता (Overcrowding) एवं भोजन के लिए प्रतिद्वन्द्विता (Competition for food) के कारण उत्पन्न हुए सदमे (Shock) से जीवों की मृत्यु हो जाती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

40. पॉपुलेशन शब्द किस भाषा के शब्द से बना है?
    (अ) ग्रीक (ब) लैटिन
    (क) अंग्रेजी (ड) उपर्युक्त में से कोई नही
41. जीवसंख्या घनत्व प्रभावित होता है–
    (अ) जन्म दर, मृत्य–दर से (ब) आप्रवासन एवं उत्प्रवासन से
    (क) जन्म दर एवं आप्रवासन से (ड) अ व ब दोनो सें
42. जीवसंख्या का तात्पर्य होता है–
    (अ) प्रजाति के समूह से (ब) प्रजातियों के समूह से
    (क) सम्पूर्ण जीवों की संख्या से (ड) उपर्युक्त तीनों से
43. एक क्षेत्र में एक ही जाति के सदस्यों की संख्या बताती है
    (अ) जनसंख्या (ब) बायेाम
    (क) समुदाय (ड) पारिस्थितिकी
44. एक क्षेत्र में विभिन्न जीव–जातियों के सदस्यों की संख्या बताती है–
    (अ) जनसंख्या (ब) बायेाम
    (क) समुदाय (ड) पारिस्थितिकी
45. जीवसंख्या की परस्पर क्रियाओं (Population Interactions) के अन्तर्गत परजीवन (Parasitism) किस प्रकार की अनुक्रिया (Interactions) हैं _____?
    (अ) तटस्थ अनुक्रिया (Neutralism)
    (ब) धनात्मक अनुक्रिया (Positive Interactions)
    (क) नकारात्मक अनुक्रिया (Negative Interactions)
    (ड) उपर्युक्त में से कोई नहीं
46. किसी विशिष्ट जाति की सम्भावित जनन–दर को कहते हैं–
    (अ) जैविक क्षमता (ब) जनन क्षमता
    (क) (अ) व (ब) दोनों (ड) उपर्युक्त में से कोई नहीं
47. मनुष्यों में किस प्रकार का वक्र पाया जाता है?
    (अ) अवतल वक्र (ब) डाइगोनल वक्र
    (क) उत्तल वक्र (ड) उपर्युक्त तीनों

टिप्पणी

1.22 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.	(क)	18.	(अ)	35.	(ड)
2.	(अ)	19.	(क)	36.	(क)
3.	(ब)	20.	(ब)	37.	(ब)
4.	(क)	21.	(क)	38.	(ब)
5.	(क)	22.	(ड)	39.	(ब)
6.	(ड)	23.	(ब)	40.	(ब)
7.	(अ)	24.	(ड)	41.	(ब)
8.	(ब)	25.	(अ)	42.	(अ)
9.	(क)	26.	(ड)	43.	(अ)
10.	(अ)	27.	(अ)	44.	(क)
11.	(ब)	28.	(ड)	45.	(क)
12.	(अ)	29.	(अ)	46.	(अ)
13.	(ड)	30.	(अ)	47.	(क)
14.	(अ)	31.	(ब)		
15.	(ड)	32.	(ड)		
16.	(ब)	33.	(क)		
17.	(ब)	34.	(अ)		

1.23 सारांश (Summary)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जीन संख्या (समष्टि) का अध्ययन करना एवं इसकी अवधारणाओं के लक्षणों को समझना जीन वैज्ञानिकों के लिए महत्वपूर्ण है, जिसके अध्ययन से ही वह जीवसंख्या के उतार–चढ़ाव प्रकृति पर जीव संस्था के दबाव और वातावरण के बीच कैसे सामाजस्य संतुलित बना रहे समझा जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पारिस्थितिकीय तंत्र इसकी मूक अवधारणा का ज्ञान होने से पर्यावरणविज्ञों के लिए एवं पारिस्थितीक वैज्ञानिकों, अनुसंधानकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि इसके व्यवस्थित ज्ञान से ही पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के मूक पहलू तथा उद्देशों को समझा जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पारिस्थितिकीय तंत्र जीव विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा है जिसके अंतर्गत पर्यावरण के जैविक, अजैविक घटकों एवं परस्पर संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ऊर्जा प्रवाह व आहार श्रृंखला के निरंतर गतिशील रहने के कारण पारीस्थितिकीय तंत्र के प्रत्येक पोषक स्तर पर ऊर्जा का प्रवाह सुंतलित अवस्था में बना रहता है। यदि पर्यावरण का यह तंत्र (System) प्रभावित होता है तो पूरी श्रृंखला (Chain) प्रभावित हो जाती हैं।

उपरोक्त सभी वर्णन से स्पष्ट है कि अजैविक कारकों की भाँति जैविक कारकों का भी पारिस्थितिकीय तंत्र में महत्वपूर्ण योगदान होता है। बल्कि यू कहें कि दोनों ही कारक एक-दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों कारकों में से किसी कारक की मात्रा कम या ज्यादा होने पर पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जैव-भू-रासायनिक चक्र के कारण ही। पदार्थो, खनिज तत्वों का चक्रीकरण होता रहता है जिससे प्रकृति में इन तत्वों का संतुलन बना रहता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अजैविक कारकों की पारिस्थितिकीय तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है। क्योंकि वातावरण एवं जीवों के बीच इन कारकों का घनिष्ठ संबंध होता है।

1.24 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **समष्टिः** जनसंख्या
- **J-आकार कर्वः** जनसंख्या शून्य से एकदम तेजी से बढती है और इसके बाद अचानक रूक जाती है।
- **S-Shape कर्वः** जन जनसंख्या पहले छीदे बार में तेजी से बढ़ती है औश्र अंत में धीरे-धीरे रूक जाती हैं।
- **Ecology शब्दः Oikos** – आवास, **Logus** – अध्ययन करना।

भारतीय पारिस्थिती वैज्ञानिक का नाम – प्रोफेसर आर. मिश्रा

- **सिनइकोलॉजीः** किसी समुदाय का पारिस्थितिक अध्ययन करना।
- **जीवोम पारिस्थितीकीः** समुदायों के मध्य पारस्परिक संबंधो के अध्ययन।
- **स्वःपारिस्थितीकीः** किसी व्यक्तिगत जीव या जाति का अध्ययन करना।
- **इकोलॉजीः** पारिस्थितिकीय तंत्र की इकाई है।
- **पेलियोइकोलॉजीः** जीवाष्म पारिस्थितिकी।
- **सहभोजिताः** साथ-साथ भोजन करने की प्रवृत्ति
- **परभक्षणः** दूसरे जन्तु को मार कर खाने की प्रवृत्ति
- **सीएनीमोनः** सीलेण्ट्रटा संघ सदस्य का जीन।
- **निष्कर्षः** परिणाम (परिणाम या रिजल्ट)

टिप्पणी

1.25 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (1) स्वपोषी घटक।
   (2) विषमपोषी घटक।
   (3) अजीवीय घटक।
   (4) जीवीय घटक।
   (5) उत्पादक।
   (6) उपभोक्ता।
   (7) चरागाह पारिस्थितीकीय तंत्र।
   (8) पारिस्थितिक तंत्र का संरचनात्मक चित्र।
2. किन्ही दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (1) समुद्री पारिस्थितिक तंत्र।
   (2) जीवोम पारिस्थितीक तंत्र।
   (3) वन पारिस्थितिक तंत्र।
3. पारिस्थितिकी की परिभाषा दीजिए।
4. पारिस्थितिकी की आधुनिक अवधारणा का वर्णन कीजिए।
5. पारिस्थितिकी के उपयोग के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
6. पारिस्थितिकी से आप क्या समझते हैं?
7. पारिस्थितिकी की शब्दावली का उल्लेख कीजिए।
8. पारिस्थितिक तंत्र से आप क्या समझते हैं?
9. पारिस्थितिकी के विभिन्न सहभागों का वर्णन कीजिए।
10. पारिस्थितिकी के अध्ययन के महत्व का उल्लेख कीजिए।
11. निम्नलिखित में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
    (i) स्थलकृतिक कारक और मृदीय कारक
    (ii) जलीय कारक एवं पीएच (pH) कारक
    (iii) मृदीय एवं गुरूत्वीय कारक।
    (iv) रासायनिक कारक और मृदा कारक
12. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
    (i) ताप, (ii) जल,
    (iii) प्रकाश, (iv) मृदा,

टिप्पणी

(v) आर्द्रता, (vi) दाब,
(vii) गुरूत्व (viii) pH
(ix) वायुमण्डल (x) प्रवाह।

13. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
    (i) प्रतिजीविता।
    (ii) सहजीविता
    (iii) विरोध (Antagonism)
    (iv) सामाजिक संगठन।
    (v) प्रतिस्पर्धा
    (vi) सहोपकारिता
    (vii) सहभोजिता।
    (viii) परभक्षण
    (ix) परजीविता
    (x) पोषक
    (xi) प्रतियोगिता
14. अन्तर स्पष्ट कीजिए।
    (i) सहोपकारिता और सहभोजिता।
    (ii) परभक्षिता और परजीविता
    (iii) परजीवी और परपोषी
    (iv) विकल्पी और अविकल्पी परजीवी।
15. मौलिक सहयोग से आप क्या समझते हैं?
16. पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह का वर्णन कीजिए।
17. स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य जाल का विवरण दीजिए।
18. पारिस्थितिक तंत्र के घटकों का वर्णन कीजिए।
19. पारिस्थितिक पिरामिड़ का विवरण लिखए।
20. 'इकोतंत्र के कार्य' पर टिप्पणी लिखिए।
21. खाद्य श्रृंखला पर टिप्पणी लिखिए।
22. ऊर्जा प्रवाह पर टिप्पणी लिखिए।
23. प्रतियोगिता पर टिप्पणी लिखिए।
24. स्वच्छ जलीय पारिस्थितिक तंत्र पर टिप्पणी लिखिए।
25. पारिस्थितिक तंत्र पर टिप्पणी लिखिए।
26. बैक्टीरियल डिकाम्पोजिशन पर टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

27. एनर्जी एवं बायो मास के पिरामिड़ पर टिप्पणी लिखिए।
28. चरागाह पारिस्थितिक तंत्र का वर्णन कीजिए।
29. इकोतंत्र के जीवन घटक का वर्णन कीजिए।
30. प्रकृति में नाइट्रोजन चक्र का वर्णन कीजिए।
31. फॉस्फोरस चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
32. जैव-भू-रासायनिक चक्रों के गैसीय प्रकार पर टिप्पणी लिखिए।
33. कार्बन डाइऑक्साइड चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
34. आक्सीजन चक्र पर टिप्पणी लिखिए।
35. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
    1. कार्बन चक्र
    2. नाइट्रोजन चक्र
    3. फॉस्फोरस चक्र
    4. ऑक्सीजन चक्र.
    5. नाइट्रोजन स्वांगीकरण
    6. अमोनीकरण
36. निम्नलिखित में अन्तर बताइए –
    (1) जनन क्षमता एवं उत्पादकता
    (2) जन्म-दर एवं मृत्यू-दर
    (3) बहिर्प्रवास एवं अन्त प्रवास
    (4) जीवसंख्या प्रसार (समष्टि प्रकीर्णन) एवं जीवसंख्या वितरण
37. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
    (1) समष्टि घनत्व
    (2) जीव वहन क्षमता (Carrying Capacity)
    (3) जन्मदर
    (4) मृत्युदर
    (5) जीवसंख्या प्रसार
    (6) जीवसंख्या नियन्त्रण

दिर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. पारिस्थितिकीय तंत्र के मुख्य घटकों का वर्णन कीजिए।
   जलाशय पारिस्थितिकीय तंत्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. पारिस्थितिकीय तंत्र की परिभाषाएँ लिखिए एवं चरागाह पारिस्थितिकीय तंत्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. पारिस्थितीकी के जैविक कारकों का वर्णन कीजिए।
4. पारिस्थितिकी की सामान्य अवधारणाओं का वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

5. मरुस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र का वर्णन कीजिए।
6. पारिस्थितिकी से आप क्या समझते हैं? पारिस्थितिकी के विभिन्न सहभागों का वर्णन कीजिए।
7. वातावरण क्या हैं? इसके विभिन्न कारकों के नाम लिखिए तथा जलवायु सम्बन्धित कारकों का वर्णन कीजिए।
8. पारिस्थितिकी की परिभाषा दीजिए। पारिस्थितिकी के महत्व एवं उपयोग का वर्णन कीजिए।
9. पारिस्थितिकी की अवधारणा एवं सहभागों का वर्णन कीजिए।
10. पारिस्थितिक तंत्र में प्रकाश किस प्रकार से लाभकारी कारक का कार्य करता है?
11. जल के जन्तुओं पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों का वर्णन कीजिए।
12. वातावरण किसे कहते हैं? उनके विभिन्न कारकों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
13. जन्तुओं पर तापमान के पारिस्थितिकी प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
14. वातावरण के भौतिक कारकों के नाम बताइए। ये कारक प्राणियों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
15. मृदा की संरचना, प्रकार तथा रासायनिक प्रकृति का उल्लेख कीजिए। इसके जीवों पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।
16. अजैविक कारकों पर निबंध लिखो।
17. अन्तरजातीय सम्बन्धों के प्रकार बताइए। सहजीविता का विस्तार से वर्णन कीजिए।
18. परजीविता किसे कहते हैं? परजीविता के विभिन्न बिन्दुओं का वर्णन कीजिए।
19. परभक्षिता किसे कहते हैं? समझाइए।
20. जैवीय कारकों का वर्णन कीजिए। परजीविता एवं सहजीविता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
21. खाद्य श्रृंखला की परिभाषाएँ इसमें महत्वपूर्ण प्रकाश डालिए।
22. अजैविक तथा जैविक कार्य क्या हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
23. किसी इकोसिस्टम में ऊर्जा प्रवाह का उल्लेख कीजिए।
24. खाद्य श्रृंखला क्या है? किसी स्थानीय समुदाय में खाद्य माला का उल्लेख कीजिए।
25. स्वच्छ जलीय पारिस्थितिक तंत्र की रचना का वर्णन कीजिए।
26. पारिस्थितिक तंत्र से आप क्या समझते हैं? इस तंत्र के विभिन्न घटकों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
27. खाद्य श्रृंखला किसे कहते हैं? उदाहरण सहित इसका वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

28. इकोसिस्टम क्या हैं? इकोसिस्टम के जैविक कारकों का वर्णन कीजिए।
29. स्वच्छ जलीय ताल (पौंड) इकोतंत्र का उदाहरण लेते हुए इको तंत्र के घटकों का वर्णन कीजिए।
30. स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का वर्णन कीजिए।
31. पारिस्थितिक तंत्र क्या है? जलाशय के पारिस्थितिकीय तंत्र का वर्णन कीजिए।
32. पारिस्थितिक पिरामिड़ क्या हैं? विभिन्न प्रकार के पिरामिड् का वर्णन कीजिए।
33. पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा दीजिए तथा चरागाह के पारिस्थितिक तंत्र का वर्णन कीजिए।
34. पारिस्थितिक तंत्र पर एक निबन्ध लिखिए।
35. इकोतंत्र के घटकों का वर्णन कीजिए। किसी इकोतंत्र में ऊर्जा प्रवाह को प्रदर्शित कीजिए।
36. अजैविक और जैविक कारक क्या हैं? अजैविक कारकों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
37. जीवसंख्या पारिस्थितिकी के विभिन्न पहलुओं का विवरण दीजिए।
38. विभिन्न पर्यावरणीय कारकों का वर्णन कीजिए, जो कि किसी के जीवन को प्रभावित करते हैं।
39. पारिस्थितिक तंत्र में होने वाले चक्रों विशेषकर कार्बन चक्र का वर्णन कीजिए।
40. नाइट्रोजन चक्र के बारे में विस्तार से वर्णन कीजिए।
41. गैसीय चक्र व अवसादी चक्रों में उदाहरण– सहित अन्तर स्पष्ट कीजिए।
42. जीवमण्डल से क्या अभिप्राय है? नाइट्रोजन चक्र को समझाइए।
43. जीव मण्डल क्या है? नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस चक्र का वर्णन कीजिए।
44. पॉपुलेशन क्या है? परिभाषीत करें इसके प्रमुख लक्षण एवं इसको प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
45. जीवसंख्या नियमन पर लेख लिखो।
46. समष्टि घनत्व किसे कहते हैं? इसकी गणना करने वाली विभिन्न विधियों का वर्णन करिए।
47. 'समष्टि' शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए। समष्टि की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करो।
48. जीवसंख्या के विभिन्न लक्षणों का संक्षेप में वर्णन करिए।
49. जीवसंख्या या समष्टि के घनत्व के नियमन के कारकों को वर्णित कीजिए।

50. मृत्यु दर व जन्म दर का समष्टि या जीवसंख्या पर प्रभाव बताते हुए विभिन्न पिरामिडों का वर्णन कीजिए।
51. जीवसंख्या प्रसार (Distribution) अथवा समष्टि प्रकीर्णन (Dispersal) तथा समष्टि परिक्षेपण में भेद बताते हुए उनसे होने वाले समष्टि परिवर्तनों को बताइए।
52. जीवसंख्या वृद्धि रुप (Growth form) के प्रकार और उनकी प्रावस्थाओं को संक्षेप में समझाइए।
53. जीव संख्या नियन्त्रण के कारकों पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

1.26 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Fundamental of Ecology by – E.P. Odum & G.W. Barret.
2. Ecology and Applied Zoology by – S.M. Saxena & Mukesh Dixit.
3. Unified text book Zoology by – J.K. Awasthi.
4. Ecology and Applied Zoology by – Shivesh Pratap Singh & H.N. Baijal.
5. A Text book of Applied Zoology of Apiculture, Sericulture, and their Pest control by – Pradip V. Jabde.
6. Aquaculture by – N. Arumugam.
7. Wild Life in Central India by – S.K. Tiwari.
8. Fish and Fisheries of India by – Jhingaran.
9. Fresh water Aquaculture by – R.S. Rath.
10. Ecology and Environmental Biology by – Pranav Kumar.
11. Ecology and Applied Zoology by – Himalaya Publication House.

टिप्पणी

इकाई 2 आवास पारिस्थितिकी (Habitat Ecology)

संरचना (Structure)

2.0 परिचय

2.1 उद्देश्य

2.2 स्वच्छ जलीय आवास

- 2.2.1 परासरण नियमन
- 2.2.2 स्थिर स्वच्छ जलीय आवास
- 2.2.3 तालाब के जीव–समूह
- 2.2.4 झील का क्षेत्रीयकरण
  - 2.2.4.1 जीवीय घटक
  - 2.2.4.2 झीलों का वर्गीकरण
  - 2.2.4.3 कच्छ एवं अनूप

2.3 लेन्टिक आवास की विशेषताएँ एवं अनुकूलताएँ

- 2.3.1 गतिमान जलीय आवास
- 2.3.2 स्वच्छ – जलीय अनुकूलन

2.4 स्थलीय आवास

- 2.4.1 बायोम्स
- 2.4.2 मरूस्थल
  - 2.4.2.1 मरूस्थलीय जलवायु
  - 2.4.2.2 मरूस्थलीय प्राणियों के अनुकूलन

2.5 समुद्रीय आवास

- 2.5.1 समुद्रीय आवास–स्थान की विशेषताएँ
- 2.5.2 समुद्र के विभिन्न क्षेत्र
- 2.5.3 वेलापवर्ती क्षेत्र की पारिस्थितिकी
- 2.5.4 महासागरीय क्षेत्र समुदाय या जीवजात
  - 2.5.4.1 सुप्रकाशित क्षेत्र
  - 2.5.4.2 अप्रकाशित क्षेत्र
- 2.5.5 वेलापवर्ती प्रदेश का जीवजात
  - 2.5.5.1 प्लवक या प्लैंकटॉन
  - 2.5.5.2 प्लवकीय अनुकूलन
  - 2.5.5.3 तरणक या नेकटॉन
  - 2.5.5.4 तरणकीय जीवजात
  - 2.5.5.5 तरणकीय अनुकूलन

2.6 नितलस्थ क्षेत्र की पारिस्थितिकी

- 2.6.1 वेलांचली क्षेत्र
  - 2.6.1.1 सुवेलांचली क्षेत्र
  - 2.6.1.2 सुवेलांचली क्षेत्र का जीवजात
  - 2.6.1.3 सुवेलांचली क्षेत्र के प्राणियों में अनुकूलन
  - 2.6.1.4 उपवेलांचली क्षेत्र
  - 2.6.1.5 अनुकुलन
- 2.6.2 गहरे समुद्री क्षेत्र की पारिस्थितिकी
  - 2.6.2.1 गहरे सामुद्रिक अनुकूलन

2.7 एफोटिक क्षेत्र

- 2.7.1 ऐबीसल आवास की विशेषताएँ

2.8 वेलासंगम या इस्चुराइन जल
2.8.1 वेलासंगमों का वर्गीकरण
2.8.2 वेलासंगमों के प्राणीजात
2.8.3 वेलासंगम – निवासियों के अनुकूलन
2.9 मैंग्रोव साहचर्य
2.10 भारत के पारिस्थितिकीय क्षेत्र
2.10.1 हिमालय पर्वत तन्त्र
2.10.1.1 पूर्वी हिमालय
2.10.2 प्रायद्वीपीय भारतीय उप–प्रदेश
2.10.2.1 प्रायद्वीप भारत
2.10.2.2 भारतीय मरूस्थल
2.10.3 उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन प्रदेश
2.10.4 अंदमान और निकोबार द्वीप समूह
2.10.5 सुन्दरबन के मैग्रोव अनूप
2.11 प्राकृतिक संसाधन एवं उनका संरक्षण
2.11.1 प्राकृतिक संसाधन
2.11.1.1 उपयोगिता की निरन्तरता के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण
2.11.1.2 उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण
2.11.2 संरक्षण
2.11.3 जैविक विविधता
2.11.4 वन
2.11.4.1 वन आच्छादन
2.11.4.2 वनों का महत्व
2.11.4.3 वनों का विनाश
2.11.4.4 वन संरक्षण
2.11.4.5 वन संरक्षण के उपाय
2.11.5 मृदा संरक्षण
2.11.5.1 मृद्रा संरक्षण के उपाय
2.11.6 जल
2.11.6.1 जल संरक्षण
2.11.6.2 जल संवर्धन
2.11.7 खनिज संसाधन
2.12 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.13 सारांश
2.14 मुख्य शब्दावली
2.15 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.16 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

2.0 परिचय (Introduction)

आवास–स्थान (Habitat)– आवास एक विशिष्ट स्थान है, जहाँ जन्तु और वनस्पतियाँ पायी जाती हैं तथा वृद्धि करती हैं।

क्लीमेन्ट और शैलफोड (Clement and Shelford) के अनुसार, "आवास वास्तव में भौतिक और रासायनिक परिस्थितियों, जैसे– अधःस्तर (Substratum), स्थान (Space) तथा जलवायु का एक विशिष्ट समुच्च है, जो किसी समुदाय

(Community) या एक स्पीशीज की जीवसंख्या के परिवेश या आस–पास के पर्यावरण का निर्माण करता है।"

टिप्पणी

एल्टन (Elton, 1949) के अनुसार, "आवास वह क्षेत्र हैं, जो भू–आकृति की दृष्टि से समान जन्तुओं, वनस्पतियों, जलवायु तथा अन्य गुणों में समानता रखता है।

उपर्युक्त आधार पर पृथ्वी को मुख्य रूप से निम्न तीन आवासों में विभेदित किया गया है।

(1) स्वच्छ जलीय आवास (2) समुद्रीय आवास और (3) स्थलीय आवास

आवास के अध्ययन के दृष्टिकोण से, आवासों के विशिष्ट लक्षण, उनके उपभोग, संगठन, उनमें निवास करने वाले जीव, जीवों के पारिस्थितिकीय कार्य, मुख्य उत्पादक, उपभोक्ता, विघटक (Decomposer) आदि सम्मिलित हैं।

स्थलीय आवास के प्रमुख कारण वातावरणीय कारक होते हैं जो भौतिक, जैविक एवं मौसमी किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। इन कारकों की पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप विभिन्न पारिस्थितिक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और भिन्न–भिन्न प्रकार के स्थलीय क्षेत्रों का निर्माण होता हैं।

स्थलीय आवास की विशेषताएँ (Characteristics of Terrestrial Habitat)

1. स्थलीय वातावरण में तापीय परिवर्तन (Temperature variation) अधिक प्रभावी होता है।
2. स्थलीय आवास में मृदा की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। मृदा की भौतिक एवं रासायनिक प्रकृति जीवों के प्रसार को प्रभवित करती है। यह आवास असतत् होता हैं, अतः जीवों के स्वतन्त्र विचरण में भौगोलिक अवरोध (Geographical barriers) बाधा उत्पन्न करते हैं।
3. स्थलीय आवास में नमी (Moisture) एक सीमाकारी कारक का कार्य करती हैं। स्थलीय जीवों में निर्जलीकरण (Dehydration) एक प्रभावी समस्या हैं, क्योंकि ये जीव जलीय जन्तुओं की तरह जल के अविरत सम्पर्क में नहीं रहते, अपितु पादपों में वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) एवं जन्तुओं में वाष्पीकरण (Evaporation) द्वारा जल का ¬ह्रास होता रहता है। इसे रोकने के लिए स्थलीय जन्तुओं में अनुकूलन होना आवश्यक हैं।
4. प्रकाश का स्त्रोत सूर्य है। सूर्य का प्रकाश दृश्य एवं अदृश्य किरणों से मिलकर बना होता है। सूर्य का प्रकाश पौधे की प्रकाश – संश्लेषी क्रियाओं के लिए आवश्यक होता है अर्थात् यह पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक है और पौधे रूपी उत्पादक आहार श्रृंखला का आधार बनाते हैं। प्रकाश की सहायता से स्तनी जन्तु विटामिन डी का निर्माण करते हैं।

5. वायु के तीव्र एवं सतत् बहाव के कारण स्थलीय वातावरण में ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड की एक निश्चित मात्रा सभी जगह सदा उपस्थित रहती हैं।

टिप्पणी

संसार का सबसे विस्तृत प्राकृतिक निवास समुद्रों और महासागरों में हैं। इनमें अनेक समुदाय निवास करते है। पृथ्वी का लगभग तीन चौथाई भाग एक–दूसरे से जुड़े समुद्रों और महासागरों के नीचे डूबा हुआ है। समुद्र की प्रमुख विशिष्टताएँ निम्न हैं–

1. **विभिन्न स्थानों पर गहराई (Depth), तापमान (Temperature)** तथा खारेपन (Salinity) आदि की भिन्नता होती हैं इसलिए समूचा समुद्रीय आवास अनेक क्षेत्रों में विभाजित होता हैं।
2. **समुद्रीय आवास पारिस्थितिकी**– वैज्ञानिकों के लिए अनेकों अन्य कारणों से भी अति रोचक है। विश्व के सबसे अधिक सूक्ष्म तथा भारी–भरकम, शक्तिशाली और विभिन्न स्वरूप वाले विस्तृत जन्तुओं का निवास समुद्र में ही होता है।
3. **महासागरों और समुद्रों में ज्वार**– भाटा की निरन्तर प्रक्रिया होना एक अनोखा लक्षण हैं, जिसमें जल सतह से उठकर ज्वार का रूप ले लेता है एवं आसपास के तटीय भूभाग को ढँक लेता है और तत्पश्चात लगभग निश्चित अन्तराल के बाद वापस पुनः सतह पर लौट जाता है। वापस जल गिरने को भाटा या उतार कहते हैं। यह प्राकृतिक क्रिया समुद्रीय निवास की सीमाओं और सामुदायिक निवास दोनों को प्रभावित करती है।

   विभिन्न समुद्रीय समुदाय को विस्तार से समझने से पहले यह आवश्यक है कि समुद्रीय निवास की रूपरेखा का भी संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त किया जाये।

भारत निम्नलिखित तीन पारिस्थितिकीय उपप्रदेशों में विभाजित हैं–

(1) हिमालय पर्वत तन्त्र (Himalayan Mountain System)– इन प्रदेशों में समुद्र तल से ऊँचाई तथा पूर्व–पश्चिम में विभिन्नताएँ होती है। विशिष्ट प्राणिजात और वनस्पतिजात के अनुसार इसमें तीन निम्न उपजोन (Subzone) होते हैं–

(कं) हिमालय का पहाड़ी क्षेत्र– तराई (Himalaya Foothills - Tarai) यह कश्मीर की पूर्वी सीमा से आसाम तक फैला हुआ है। इसमें विभिन्न ऊँचाई की पहाड़ियों की श्रृंखलाएँ हैं।

(इ) पश्चिमी हिमालय (Western Himalaya)– इस हिमालय में ऊँचे पर्वत क्षेत्र हैं, जिसमें कश्मीर से लेकर लद्दाख तथा कुमायूँ की पर्वत चोटियाँ आती हैं।

(ब) पूर्वी हिमालय (Eastern Himalayas)– इसमें सिक्किम के पहाड़ी प्रदेश आते हैं। यह पूर्व में नेफा (NEFA) तक फैला हुआ है।

(2) प्रायद्वीपीय भारतीय उप–प्रदेश (Peninsular-Indian Sub-region)– यह दक्षिण या डेक्कन (Deccan) की ऊँची पठारी भूमि है। यह

टिप्पणी

इंडो–गंगा कछार (Indo = Gangetic basin) के बाढ़कृत मैदानों में फैला है। पश्चिम की ओर राजस्थान के विशाल थार मरूथल इसमें सम्मिलित हैं।

(3) उष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वन या इन्डो–मलायन उप–प्रदेश (Tropical Evergreen Forests or Indo-Malayan sub-region)– यह उच्च वर्षा वाला प्रदेश है। इसमें उत्तरी पूर्व भारत और दक्षिण में पश्चिमी घाट तथा मालाबार तट भी सम्मिलित हैं।

वर्तमान में जनसंख्या के अन्धाधुन्ध वृद्धि के कारण पर्यावरण एवं प्राकृतिक जीव, जन्तुओं, पेड–पौधों के लिए हानिकारक है क्योंकि, मानव जनसंख्या की सतत् विस्फोटक वृद्धि ने मानवों को उनकी सामान्य स्थानीय सीमाओं की अपेक्षा पृथ्वी की अन्तिम सीमाओं के बारे में सोचने को बाध्य कर दिया है। थॉमस माल्थस (Thomas Malthus) ने तो 1798 में ही अपनी रचना 'Essay on Population' में भविष्यवाणी कर दी थी कि मानव जनसंख्या अपनी भोजन आपूर्ति की तुलना में कहीं अधिक तीव्रता से वृद्धि करेंगी। अब तो यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि पृथ्वी मात्र एक विशाल अन्तरिक्ष यान है जिसकी उत्पादकता एव प्रदूषकों का सामना करने के प्रति अपनी सुनिश्चित सीमाएँ हैं। अब हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या हम पृथ्वी के संसाधनों के तीव्र विनाश के खतरे के समक्ष हैं अथवा प्रदूषित जल एवं वायु हमारे लिये अधिक बड़ी समस्या है।

2.1 उद्देश्य (Objectives)

आवास परिस्थितिकी का अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों की पूंर्ति हेतु किया जाता है–

- आवास परिस्थितिकी का मुख्य उद्देश, पेड पौधों एवं जीव जन्तुओं के प्राकृतिक आवासों का बचाना, सरंक्षित करना तथा विभिन्न प्रकार के आवासों में रहने वाले जीवों की आदतो एवं स्वभाव के बारे में जानना।
- जीव–जातियों के आवासों को नष्ट होने से बचाना तथा यह प्रयास करना कि इनके प्राकृतिक आवासों को जंगलों का विनाश, जंगलों मे आग लगने से कैसे बचाया जाय आदि का प्रयास करना।
- जैवविविधता को संरक्षित करना।
- स्थलीय, जलीय एवं समुद्री आवासों में पाये जाने वाले जीव जन्तुओं का अलग–अलग अध्ययन करना। साथ ही इनकी जैवविविधता में कमी होने के कारणों का गहराई से पता लगाना तथा इन्हे यथोचित, सही या अनुकूल समय पर कमियों को दूर करना।
- प्राकृतिक संसाधनों का कम से कम दोहन करना।
- विलुप्त हो रही प्रजातियों पर शीघ्रता से सुरक्षित करने के प्रयास करना प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

टिप्पणी

- प्रदूषण प्राकृतिक आपदाओं के कारण से जीव–जन्तुओं के आवासों में हुई कमी को वृक्षारोपण कार्यक्रम, सतत प्रयास करते रहने चाहिए।
- जंगली पेड–पौधों, जीव–जन्तुओं एवं इनकी प्रजातियों की बाढ़, भूकंप, एवं पर्यावरणीय निम्नीकरण होने के कारण भयभीत, दुर्लभ, संकटग्रस्त प्रजातियों आदि को बचाने के लिए ठोस कदम उठाना एवं उनका पालन करना आदि।
- जैवविविधता को बनाये रखना तथा कृत्रिम क्रियाकलापों के कारण होने वाले दुष्परिणामों को परिलक्षित करना एवं मानव प्रजाति पर एवं अन्य जीवों पर इनके घातक परिणामों से निपटने के लिए तैयार रहना।
- आधुनिक जीवन में मनुष्य की बढती अतिमहत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों, भोग विलास, भौतिकवाद, अन्धानुकरण के कारण पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति को पैदा कर दिया है। अतः भविष्य में पर्यावरण संकट को कम करने के लिए लोगों को जागरूक करना सभी की नैतिक जिम्मेदारी होना चाहिए। इस प्रकार का नियम सृजित किया जाये जिसका कठोरता से पालन हो।

2.2 स्वच्छ जलीय आवास (Fresh Water Habitat)

(अ) स्वच्छ जलीय आवास (Fresh Water Habitat)– वह आवास जिसमें मुख्य रूप से जल ही बाहरी एवं भीतरी माध्यम होता है। जलीय आवास कहलाता है। स्वच्छ जल के आवास की पारिस्थितिकी लिम्नोलॉजी (Limnology) कहलाती है। इस प्रकार के आवास को दो भागों में बाँट सकते हैं–

1. **स्थिर जलीय आवास (Lentic habitat)**– इनमें तालाब, झील, जोहड, अनूप (Swamp) आदि आते हैं।
2. **गतिमान जलीय आवास (Lotic habitat)**– इनमें सरिता, झरना, नदी आदि आते हैं।

(ब) स्वच्छ जलीय आवास की विशेषताएँ (Characteristics of Fresh Water Habitat)– अलवणीय आवास में तापक्रम (Temperature), टर्बिडिटी (Turbidity), विलीन गैसें, प्रकाश व भोजन आदि पदार्थ परिवर्तनशील होते हैं। यदि ऑक्सीजन, सूर्य का प्रकाश, कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon dioxide), नाइट्रेट्स (Nitrates), फॉस्फेट्स (Phosphates) आदि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते रहे तो स्वच्छ जलीय आवास में अनेक प्राणी जीवित रह सकते हैं। स्वच्छ जलीय आवास के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं–

1. **तापक्रम (Temperature)**– गहरी झीलों व बाँधों का तापक्रम वर्षपर्यन्त एक समान रहता है। इसके विपरीत उथले या कम गहरे स्वच्छ जलीय आवासों का तापक्रम बदलता रहता है। सतह का जल तली की अपेक्षा मौसम के अनुसार या तो अधिक

टिप्पणी

गर्म या अधिक ठण्डा होता है। शीतकाल में तापक्रम गिर जाने से जल–जीवों की उपापचय गति मन्द हो जाती है, जिसके कारण उनकी मृत्यु हो जाती है और जीवों की संख्या कम हो जाती है। अलवणीय जल में असमतापी (Poikilotherms) जीव ही रहते हैं। गर्मियों की ऋतु में स्थिर जल में विभिन्न ताप सतहें बनती हैं, जिससे सजीव प्रभावित होते हैं। तापक्रम के परिवर्तनों से स्वच्छ जल में परिसंचरण एवं स्तरण (Stratification) के अभिलाक्षणिक प्रतिरूप पाये जाते हैं। ये जलीय जीवन पर प्रभाव डालते हैं।

2. **धारायें (Currents)**– बहने वाले जल में धाराएँ एक महत्वपूर्ण सीमाकारी कारक हैं। बरसाती नदियों व नालों में जल की गति तेज होती है, जबकि बड़ी नदियों में गति मन्द होती है। नदी तल की असमतलता, तल की चौड़ाई, गहराई द्वारा गति का पता लगाते हैं। पानी की धाराओं की गति का पानी की गैसों के वितरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।

3. **प्रकाश (Light)**– स्वच्छ जल में सूर्य का प्रकाश काफी गहराई तक पहुँचता हैं। निलम्बित पदार्थों के कारण प्रकाश का प्रवेश प्रायः सीमित हो जाता है। सरिताओं (Streams) के विक्षुब्ध पानी की अपेक्षा गहरी झीलों में प्रकाश काफी गहराई तक प्रवेश कर जाता है। स्थिर जल में प्लैंकटॉन रात्रि व मन्द प्रकाश में सतह पर आ जाते हैं और दिन में तेज प्रकाश के कारण गहराई में चले जाते हैं।

4. **श्वसन गैसों की सान्द्रता (Concentration of Respiratory gases)**– किसी भी स्वच्छ जल के तालाब, झील आदि वनस्पति व प्राणिजात की बहुलता पानी में घुली ऑक्सीजन (O_2), कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon dioxide, CO_2) की सान्द्रता की मात्रा पर मुख्यतः निर्भर करती है। अतः इनकी सान्द्रतायें प्रायः सीमाकारी होती हैं। झील और तालाब के जल की तुलना में नदी और झरनों के पानी (Lotic Water) में O_2 की मात्रा अधिक रहती है– झील और तालाब के पानी में O_2 का स्तर दैनिक परिवर्तन प्रदर्शित करता है। यह परिवर्तन दोपहर 2 बजे से शाम 5 बजे तक सर्वाधिक रहता है। जन्तुओं द्वारा श्वसन के लिए O_2 का उपयोग करने और जलीय पौधे के द्वारा फोटोसिन्थेसिस (Photosynthesis) में ऑक्सीजन (Oxygen) उत्पन्न होती है। सतह के पानी एवं उथले पानी इस घुली हुई ऑक्सीजन द्वारा संतृप्त रहते हैं। जलीय प्राणियों के लिए यह आवश्यक होती हैं। पानी का नवीनीकरण होता रहे, जिससे जलीय जीवों को श्वसन के लिए आवश्यकतानुसार ऑक्सीजन मिल सके कार्बन भी जल में घुली रहती है। यह प्राणियों एवं जलीय पौधों की मेटाबोलिक

क्रियाओं के लिए और लाभकारक होती है। मछली एवं अन्य जन्तुओं के लिए घातक होता है।

टिप्पणी

कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon Dioxide)– जलीय वनस्पतियाँ और प्लवक पादप (Phytoplankton) को प्रकाश–संश्लेषण के लिए कार्बन डाइऑक्साइड की आवश्यकता होती है। जलीय आवास में कार्बन डाइऑक्साइड, श्वसन और प्राणियों के मृत शरीर के सड़न (Decomposition) द्वारा उत्पन्न होती है। वायुमण्डल से भी CO_2 सीधे विसरण द्वारा जल में मिल जाती है। CO_2 शीघ्रता से जल में घुल जाती है और कार्बोनिक अल्म बनाती हैं–

$$H_2O + CO_2 \rightarrow HCO_3$$

HCO_3 की उत्पत्ति से जल का pH न्यून होता है। CO_2 की कुछ मात्रा कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा अन्य खनिजों के कार्बोनेट्स और बाइकार्बोनेट्स के रूप में पायी जाती है।

कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग जलीय पौधे, कंकालीय संरचना के लिए जन्तु और बैक्टीरिया करते है। इससे CO_2 की जलीय मात्रा कम हो जाती है। O_2 और CO_2 की अतिसान्द्रता जीवों पर विषैला प्रभाव डालती हैं।

अन्य गैसें (Other Gases)– जलीय आवास में जहाँ सीवेज (Sewage) का पानी मिला होता है, वहाँ वनस्पतियों और अन्य मृत कार्बनिक पदार्थो के सड़ने से H_2S उत्पन्न होती है और पानी में मिल जाती है। मीथेन और कार्बन मोनो–ऑक्साइड भी जीवों के सड़ने से उत्पन्न होती है। ये दोनों गैसें जीवों के लिए अत्यन्त विशैली होती हैं। अमोनिया, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन अन्य गैसें हैं, जो जल में घुली रहती हैं।

घुलित लवण तथा खारीपन (Dissolved salts and Salinity)– स्वच्छ जल एक अच्छा घोलक है। इसमें अनेक खनिजों के लवण घुले रहते हैं। लवणों की सान्द्रता 1/5 प्रतिशत से कम होती है। लवण मुख्यतः तलछट (Sediments) की मिट्टी के साथ जल में बहकर आते हैं तथा जलीय जीवों के मृत शरीरों के सड़ने से उत्पन्न होते हैं। घुले हुए लवण पादप प्लवकों के लिए पोषण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन वनस्पतियों का सम्पर्क अधःस्तर (Substratum) से नहीं रहता है और पोषण के लिए इन्हें जल में घुले हुए लवण और पोषक पदार्थों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और सिलिकॉन के लवण वनस्पतियों के लिए अति महत्वपूर्ण है। नाइट्रेट, नाइट्राइट और अमोनिया जो

टिप्पणी

जल में घुली रहती हैं, पौधों के पोषक पदार्थो की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। नाइट्रोजन पदार्थ नाइट्रोजन चक्र के अन्तर्गत जल में पहुँचते हैं।

जल में फॉस्फोरस की अल्प मात्रा घुली रहती है। यह पादप प्लवकों द्वारा नाइट्रोजन यौगिक और फॉस्फोरस प्राप्त कर अत्यधिक वृद्धि (Bloom) कर लेते हैं। इससे ब्लूम (Bloom) के मौसम में अन्य पौधे और जन्तु लगभग समाप्त से हो जाते हैं।

स्वच्छ जल में कैल्शियम, मैग्नीशियम, लौह, सोडियम, पोटैशियम, मैंगनीज, सल्फर, जिन्क आदि के भी लवण घुले रहते हैं। कैल्शियम संरचना और कंकाल के निर्माण में उपयोगी होता हैं, लौह O_2 का वाहक हैं। फेरस सल्फाइड के रूप में यह जलीय pH को भी प्रभावित करता हैं।

2.2.1 परासरण नियमन (Osmoregulation)

स्वच्छ जल का परासरण दाब कम होता है, इसकी तुलना में जीवों के शारीरिक द्रव का परासरण दाब अधिक होता है। इसके माध्यम से जल निरन्तर जीवों के शरीर में प्रवेश करता रहता है। इससे जीवों के शरीर से अतिरिक्त जल बाहर निकालकर ऊतकीय द्रव के परासरण दाब को सामान्य बनाने की समस्या बनी रहती है। विभिन्न जन्तु अलग–अलग अनुकूलनों द्वारा इसे प्राप्त करते हैं। जैसे– प्रोटोजोआ में आकुंचनशील धानी (Contractile vacuole), ऐनेलिडा में नेफ्रीडिया मत्स्य में क्लोराइड कोशिकाएँ और कशेरूकी में वृक्क आदि।

pH या हाइड्रोजन आयन सान्द्रण (pH or Hydrogen ion Concentration)– स्वच्छ जल में pH एक निर्धारणकारी कारक (Determining factor) है। यह स्वच्छजलीय जीवों का जीवन तथा जीवसंख्या को प्रभावित करता है। स्वच्छ जल का pH वार्षिक ऋतुओं (Seasons) के अनुसार बदलता रहता है। सतही जल स्तर का pH गहराई वाले जल स्तरों से भिन्न रहता है। यद्यपि जन्तुओं के लिए pH परिसर (Range) विशिष्ट होता है, फिर भी उच्च कोटि के जन्तु ही, जैसे– मत्स्य pH परिवर्तनों के प्रति शीघ्र अनुक्रिया व्यक्त करते हैं। न्यून कोट के जन्तु अनुक्रिया शीघ्रता से व्यक्त नहीं करते हैं।

2.2.2 स्थिर स्वच्छ जलीय आवास (Lentic Habitat)

स्थिर स्वच्छ जलीय आवास में स्थिर स्वच्छ जल से भरी सभी स्थलाकृतियाँ आती है, जैसे– तालाब, झील, दलदल, अनूप (swamp) जल से भरे चरागाह आदि।

तालाब (Ponds)

तालाब के लक्षण– तालाब स्वच्छ जल के स्थायी भण्डार है, जिनमें झील की अपेक्षा जल की मात्रा कम होती है। तालाबों में पानी प्रायः शान्त होता है। कम गहराई एवं शान्त प्रकृति के कारण जलीय वनस्पति इनमें बहुतायत से होती है।

इनमें मुख्यतः लिटोरल (Litoral) प्रदेश होता है तथा लिमनेटिक (Limnetic) व प्रोफण्डल (Profundal) प्रदेश या तो अल्पविकसित होते हैं या होते ही नहीं है।

टिप्पणी

तालाबों का वर्गीकरण (Classification of Ponds)– तालाब निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) बड़ी झीलों से बने तालाब, (ii) वे तालाब, जिनका झीलों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, तथा (iii) कृत्रिम तालाब।

मौसमी अवधि के आधार पर तालाब दो प्रकार के होते हैं–

1. **स्थायी तालाब (Permanent ponds)**– वे तालाब, जिनमें वर्षपर्यन्त पानी भरा रहता हैं, स्थायी तालाब कहलाते हैं।

2. **अस्थायी तालाब (Temporary ponds)** – वे तालाब, जो वर्ष में थोड़े–बहुत समय के लिए सूखे रहते हैं, अस्थायी तालाब कहलाते हैं। इन तालाबों के प्राणी शुष्क अवधि में जिन्दा रहने के लिए एक डॉर्मेंट (Dormant) अवस्था से गुजरते हैं। फेयरी श्रिम्प्स (Fairy Shrimps) के अण्डे शुष्क मिट्टी में कई महीनों तक जिन्दा रहते हैं। इनका विकास शीत ऋतु में होता है। इन प्राणियों में प्रजनन बसन्त ऋतु में होता है।

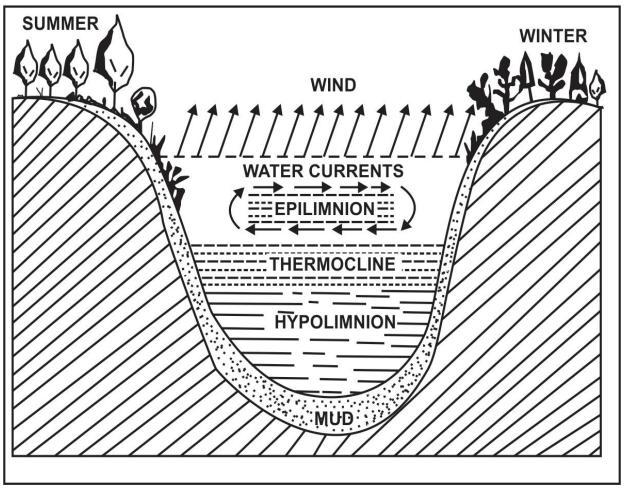

चित्र क्र. 2.1: एक जलाशय में ताप स्तरीकरण
(Thermal Stratification in a pond)

2.2.3 तालाब के जीव–समूह (Biota of Ponds)

(a) उत्पादक– तालाबों में निम्न प्रकार के उत्पादक पाये जाते हैं–

(i) पादपप्लवक– प्रमुख पादपप्लवक– यूग्लीना (Euglena), माइक्रोसिस्टिस (Microcystis), मेलोसिरा (Melosira), यूडोराइना (Eudorina), वॉलवॉक्स (Volvox), सिरेशियम (Ceratium), क्लोस्टीरियम (Closterium), ऑसीलेटोरिया (Oscillatoria), आदि।

टिप्पणी

(ii) किनारे पर पाये जाने वाले निर्गत (Emerged) पौधे– इस प्रकार के प्रमुख पादप – जेसिया (Jussia), एकोरस (Acorus), फ्रेमाइट्स (Phramites), आइपोमिया (Ipomoea), टाइफा (Typha), आदि है।

(iii) तन्तुरूपी शैवाल– ये ऊडोगोनियम (Oedogonium), कारा (Chara), निटैला (Nitella), स्पाइरोगाइरा (Spirogyra), आदि हैं।

(iv) निमग्न (Submerged) पौधे– ये नेआस (Naias), यूटीकुलेरिया (Utricularia), सिरेटोफाइलम (Ceratophylum), वेलिस्नेरिया (Vallisneria), पोटेमोगेटन (Potamogeton) आदि हैं।

(अ) बहिस्तल पर प्लवमान पौधे– ये लेम्ना (Lemna), इकॉर्निया (Echormia), वाल्फिया (Wolffia), पिस्टिया (Pistia) आदि हैं।

(b) उपभोक्ता (Consumer)– तालाबों में निम्न प्रकार के उपभोक्ता पाये जाते हैं–

प्रोटोजोआ (Protozoa)– एक्टिनोफ्रिस (Actinophrys), एक्टिनोस्फीरियम (Actinosphaerium), पैरामीशियम (Paramecium), स्टेण्टर (Stentor), वॉर्टिसेला (Vorticella), यूग्लीना (Euglena), हेलिओजीअन्स पेडोराइना (Heliojens pedorina), डिफ्लुजिया (Difflugia), आर्सेला (Arcella) आदि।

पोरिफेरा (Porifera)– स्पॉन्जिला (Spongilla)।

सीलेन्टरेट्स (Coelenterates)– हाइड्रा (Hydra)।

हेल्मिन्थीज (Helminthes)– टरबिलेरियन्स, फ्लूक लार्वी, मिरेसीडिया प्रायः पाये जाते हैं।

ऐनेलिड्स (Annelids)– हिरूडिनेरिया (Hirudinaria), लम्ब्रिकुलस (Lumbriculus), लिमिकोला, स्ट्राइलोड्रियस (Strylodrius) आदि।

आर्थोपोड्स (Arthropods)– बीटल्स (Beetles), ड्रेगनफ्लाई (Dragonfly), कैडिस फ्लाई (Caddis fly), मैफ्लाई (Mayfly), मायोना (Miona), डैफ्निया (Daphnia), क्लेडोसीरा (Cladosera), जलीय मकड़े व माइट्स (Aquatic Spiders and Mites) तथा सिल्वर जल बीटल (Silver water beetle) आदि।

मौलस्क (Molluscs)– लिम्निया (Limnea), पाइला (Pila), विविपेरा (Vivipara) व प्लैनोर्बिस (Planorbis) आदि।

कशेरूकी (Vertebrates)– लैबियों (Labeo), कटला (Catla), सिर्रिहिना (Cirihina), बार्बस (Barbus), मैक्रोपोड्स (Macropodus), पाँचा (Pancha), एट्रोप्लस (Etroplus) आदि माँसाहारी मछलियाँ।

डेनियो (Danio), गेम्बूसिया एफिनिस (Gambusia affinis), रेसबोरा डेनिकोनियस (Rasbora daniconius), कीला (Chela), बेरिलियस (Barilius) आदि कीटभक्षी मछलियाँ।

टिप्पणी

ऐनाबास (Anabas), ऐक्कोब्रैक्स (Accobranchus), ऑफियोसिफेलस (Ophiocephalus), क्लैरियास (Clarias) आदि वायु–श्वसन करने वाली मछलियाँ।

मेंढक, टेडपोल, कछुये– नेट्रिक्स नेट्रिक्स (Natrix natrix), एट्रिट्रियम (Atritrium), बगुले आदि पाये जाते हें।

झीलें (Lakes)– फोर्ड के अनुसार झील रूके हुए पानी की एक राशि होती है। इसमे बेसिन (Basin) होता है। बड़ी झील का वातावरण स्थिर रहता है। झीलों में गर्मी व सर्दी की ऋतु में ऊष्मीय दृष्टि से स्तरित हो जाने की प्रवृति होती है और इस तरह उनकी गहराइयो में ऑक्सीजन व ताप के वितरण में मौसमी आवर्तिता (Seasonal periodicity) पाई जाती है। यह झीलों का महत्वपूर्ण लक्षण हैं।

2.2.4 झील का क्षेत्रीयकरण (Zonation of Lake)

झील एवं तालाब के पारिस्थितिकी तन्त्र में ऊर्जा का स्त्रोत सूर्य का प्रकाश है। पानी में प्रकाश का प्रवेश पानी के धुँधलेपन (Turbidity) तथा प्रकाश की किरणों की अवशोषण क्षमता पर निर्भर करता है। इस आधार पर झीलों एवं तालाबों को दो मौलिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **ट्रोफोजेनिक क्षेत्र (Trophogenic zone)**– जिसमें प्रकाश संश्लेषण प्रमुख है।
2. **ट्रोफोलाइटिक क्षेत्र (Tropholytic zone)**– जहाँ अपघटन बहुत तीव्र होता है।

झीलों की गहराई एवं प्रकाश की उपलब्धता के आधार पर बड़ी झील को चार पारिस्थितिक, प्रदेशों में बाँट सकते हैं–

(a) लिटोरल जोन (Littoral zone), (b) लिम्नेटिक जोन (Limnetic zone), (c) प्रकाश क्षतिपूर्ति क्षेत्र या जोन (Light Compensation Zone) (d) प्रोफन्डल जोन (Profundal zone)।

(a) लिटोरल जोन (Littoral zone)– यह झील का तटवर्ती उथले जल वाला भाग हैं। इसमें जल वाले पौधे पाये जाते हैं। इस जोन में प्रकाश पूरी गहराई तक प्रवेश करता है।

(b) लिम्नेटिक जोन (Limnetic zone)– यह खुले पानी की वह जोन है, जिसमें सूर्य की रोशनी भीतर तक प्रवेश करती हैं, इसमें पादपप्लवक व प्राणीप्लवक पाये जाते हैं।

(c) प्रकाश क्षतिपूर्ति क्षेत्र (Light Compensation zone)– प्रकाशित क्षेत्र और प्रोफण्डल क्षेत्र के बीच में यह एक सूक्ष्मजल क्षेत्र हैं, जो न तो पूर्णरूपेण प्रकाशित है और न ही पूर्ण अन्धकारमय है। जल के इस भाग में प्रकाश और अन्धकार दोनों लगभग समान रूप से मिश्रित हैं। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में हरे पौधों की प्रकाश–संश्लेषण और श्वसन के लिए श्वसन गति समान हो जाती है अर्थात् प्रकाश–संश्लेषण से निकली

टिप्पणी

समस्त ऑक्सीजन श्वसन से निकली समस्त कार्बन डाइऑक्साइड प्रकाश–संश्लेषण के लिए उपयोग में आ जाती है।

(d) प्रोफन्डल जोन (Profundal zone)– यह जोन झील के तल पर पाई जाती है। इस जोन मे सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता है। यहाँ विषमभोजी जीव पाये जाते हैं।

गहरी झीलों में निम्न तीन तापीय प्रदेश बनते हैं–

(1) ऐपिलिम्नियॉन (Apilimnion)

(2) हाइपोलिम्नियॉन, एवं (3) थर्मोलिम्नयॉन।

1. **ऐपिलिम्नियॉन (Apilimnion)**– सतह पर परिसंचरित होने वाला जल एपिलिम्नयॉन कहलाता है। यह उष्ण (Warm) जल स्तर है। इसमें वनस्पति प्रचुर मात्रा में पायी जाती है।
2. **हाइपोलिम्नियॉन (Hypolimnion)**– यह ठण्डे पानी का निचला स्तर है। इसका पानी स्थिर होता है। इसमें वनस्पति भी पायी जाती है।
3. **थर्मोलिम्नियॉन (Thermolimnion)**– यह ऐपिलिम्नियॉन (Apilimnion) एवं हाइपोलिम्नियॉन (Hypolimnion) के बीच का स्तर हैं।

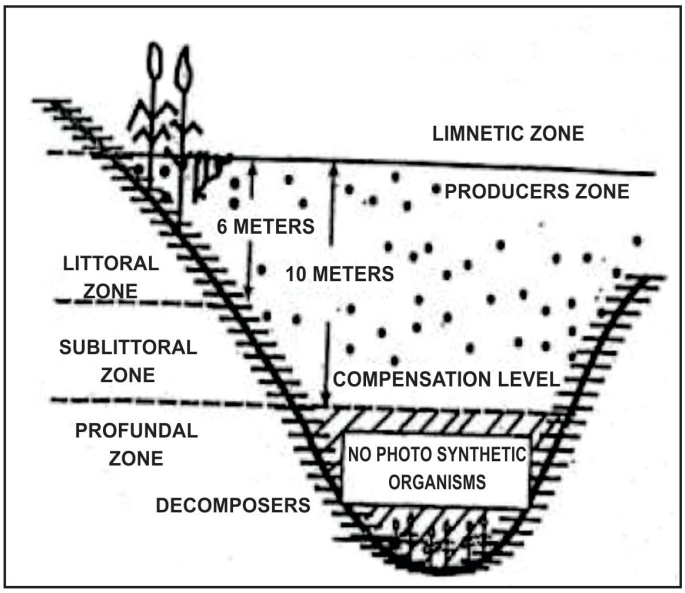

चित्र क्र. 2.2: झील या तालाब के विभिन्न क्षेत्रों की काट का आरेखीय प्रदर्शन
(Representation of Various Zones of Areas of Lake or Pond)

2.2.4.1 जीवीय घटक (Biotic Component)

स्वच्छ जलीय जलाशय में जीवीय घटक के अन्तर्गत पाये जाने वाले जीवों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। (1) उत्पादक (Producers), (2) उपभोक्ता (Consumers) तथा (3) अपघटक (Decomposers)।

टिप्पणी

(1) उत्पादक (Producers)

इस श्रेणी के अन्तर्गत जलाशय की विभिन्न प्रकार की हरी वनस्पतियाँ सम्मिलित है, जैसे– पादपप्लवक, तन्तुमय शैवाल, प्लवमान पौधे, जलनिमग्न पौधे तथा तटीय एवं निर्गत पौधे।

(i) पादपप्लवक (Phytoplankton)– ये अत्यन्त सूक्ष्म तैरने वाले पौधे हैं जो जलाशय के उन सभी भागों में पाये जाते हैं, जहाँ प्रकाश पहुँचता है। इनमें से अधिकांश शैवाल (Algae) हैं, इनकी अधिकता होने पर जल का रंग हरा प्रतीत होता है।

उदाहरण– ऑसीलैटोरिया (Oscillatoria), वॉलवॉक्स (Volvox), क्लॉस्ट्रियम (Clostrium), ऐनाबीना (Anabaena), यूडोराइना (Eudorina) आदि ।

(ii) तन्तुमय शैवाल (Filamentous algae)– इसमें विभिन्न प्रकार के शैवाल सम्मिलित है। उदाहरण– स्पाइरोगाइरा (Spirogyra), कांरा (Chara), नाइटेला (Nitella), ऊडोगोनियम (Oedogonium) आदि।

(iii) प्लवमान पौधे (Floating plants)– ये जल की सतह (Surface) पर तैरने वाले विभिन्न प्रकार के पौधे हैं। उदाहरण– पिस्टिया (Pistia), लेम्ना (Lemna), वोल्फिया (Wolffia), ऐजोला (Azolla) इत्यादि।

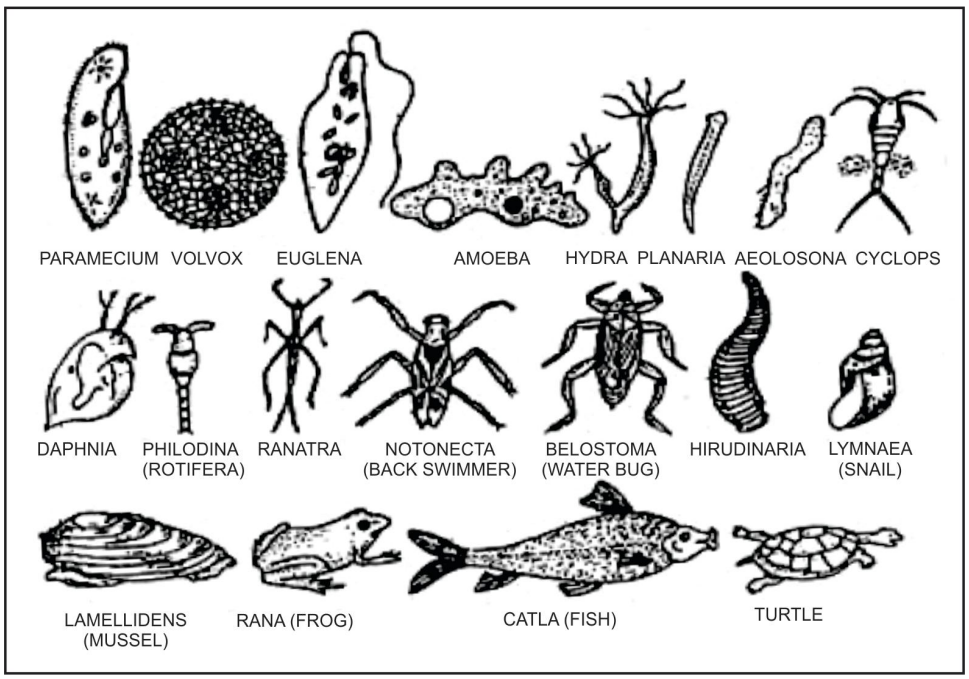

चित्र क्र. 2.3: अलवणीय जलाशय में निवास करने वाले कुछ जन्तु
(Examples of Some animals which inhabit in fresh water)

(iv) जल निमग्न पौधे (Submerged plants)– ये जड़विहीन तथा जड़युक्त पौधे हैं जो जल में डूबे हुए रहते हैं। उदाहरण–

वैलिसेनेरिया (Vallisnaria), यूट्रिकुलेरिया (Utricularia), सिरेटोफाइलियम (Ceratophyllium), हाइड्रिला (Hydrilla) इत्यादि।

टिप्पणी

तटीय तथा निर्गत पौधे (Marginal and Emergent Plants)

इसके अन्तर्गत वे पौधे सम्मिलित हैं जो जलाशय के तट के समीप पाये जाते हैं तथा इनका कुछ भाग जल की सतह के ऊपर रहता ह। उदाहरण– आइपोमिया (Ipomea), टाइफा (Typha), जूसिया (Jussia), ऐकोरस (Acorus) आदि।

(2) उपभोक्ता (Consumers)

इसमें जलाशय में पाये जाने वाले वे विभिन्न जन्तु सम्मिलित हैं, जो प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक उपभोक्ता हैं। इन्हें तीन विभिन्न श्रेणियों – प्राणि प्लवक, तरणक तथा नितल में निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

(i) प्राणि – प्लवक (Zooplankton)– ये अत्यन्त सूक्ष्म तथा जल की सतह पर तैरने वाले जन्तु है। उदाहरण– ऐक्टीनोफ्रिस (Actinophrys), डैफ्निया (Daphnia) इत्यादि।

(ii) तरणक (Nekton)– वे जन्तु जो अपने विभिन्न उपांगो की सहायता से जल में सक्रिय रूप से तैरते हैं, इसमें सम्मिलित हैं। उदाहरण– कीट, कीट–लार्वे, मेढक, मछली आदि।

(iii) नितल जीव (Benthos animals)– इसमें वे जन्तु सम्मिलित हैं, जो जलाशय के तल में रहते हैं। उदाहरण– क्रस्टेशियन्स (Crustaceans), ऐनेलिड्स (Annelids), मौलस्क (Molluscs), कीट लार्वे (Insect-larvae), प्लेनेरिया (Planaria), मछलियाँ आदि।

(3) अपघटक (Decomposers)

इसके अन्तर्गत वे जीव आते हैं जो जटिल अपघटित पदार्थो के कुछ भाग को अवशोषित करके उन्हें सरल पदार्थो में पारिवर्तित कर देते हैं। इनके द्वारा खनिज पदार्थ जलाशय के माध्यम में पुनः वापस आ जाते हैं। इनमें मुख्यतः जीवाणु, कवक एवं एक्टीनोमाइसिटीज सम्मिलित है। उदाहरण– ऐस्परजिलस (Aspergillus), पेनिसीलियम (Penicillium), क्लेडोस्पेरियम (Cladosporium), राइजोपस (Rhizopus), फ्यूजेरियम (Fusarium) इत्यादि।

(i) न्यूस्टोन (Neuston)– ये प्लावित (Floating) जीव होते हैं, जिनके अन्तर्गत असंख्य प्रोटोजोआ (Protozoa), जैसे– यूग्लीना (Euglena), वॉलवॉक्स (Volvox), जलीय मकड़ी (Water-Spider), बीटल्स (Whirling beetles), कई प्रकार की मछलियाँ, मेंढक, सेलामैण्डर (Salamanders), कछुए (Turtles), जलीय सर्प (Water snakes) आदि आते हैं।

(ii) पैरिफाइटो (Periphyton)– ये जीव तालाब के घोंघे (Pond snails), डेम्जेल मक्खी (Damsel fly) और आरोही ड्रगोन मक्खी (Climbing dragon fly) के निम्फ (Nymphs), रॉटिफर्स (Rotifers), ब्रायोजोआ (Bryozoa) आदि है। ये जीव पौधों के तनों एवं पत्तियों पर चिपके पाये

टिप्पणी

जाते है। तल के कीचड़ की अधिक गहराई में बिलकारी (Burrowing), ओडोनेटा (Odonata) एवं एफिमिरॉप्टेरा (Ephemeroptera), सीप (Clams), ऐनेलिडा वर्ग के जीव, घोंगे (Snails) और डिप्टेरा (Dipterans) व काइरोनोमिड्स (Chironomids) के डिंभक (Larvae) पाये जाते है।

सर्दियों में एपिलिम्नियॉन (Apillimnion), हाइपोलिम्नियॉन (Hypolimnion) के तापक्रम लगभग समान हो जाते हैं। फिर पूरी झील का पानी परिसंचरित होने लगता है। और O_2 समान रूप से वितरित हो जाती है। यह फाल टर्न ओवर (Fall turn over) की शुरूआत है। जब झील की सतह के पानी का तापक्रम 4°C से कम हो जाता है, तब यह पानी फैल जाता है और जम जाता है। अब शीत ऋतु स्ट्रैटीफिकेशन (Winter stratification) शुरू होता है। बसन्त में बर्फ पिघलने पर पानी भारी होकर तल की ओर डूबने लगता है। तब जल का तापक्रम 4°C हो जाता है तो यह फिर से परिसंचरित होने लगता है। यह स्प्रिंग टर्न ओवर (Spring turn over) कहलाता है।

2.2.4.2 झीलों का वर्गीकरण (Classification of Lakes)

उत्पादकता के आधार पर झीलें निम्न तीन प्रकार की होती हैं।

1. **ऑलीगोट्रोफिक (Oligotrophic)**– यह झीलें गहरी होती हैं। इनका जीव समुदाय अल्पता में होता है। इनमें ग्रीष्म व शीत ऋतु में ऑक्सीजन (Oxygen) का लगभग समान वितरण होता है। इनका पानी पारदर्शक होता है। pH कम होता है नाइट्रोजन व कार्बनिक घटक कम मात्रा में पाये जाते हैं। Oligotrophic झीलों की गहराई में जीव–जन्तु बहुत पाये जाते हैं।
2. **यूट्रोफिक (Eutrophic)**– इन झीलों का जल उथला होता है। इस जल में कार्बनिक पदार्थ फॉस्फोरस व पादप प्लवक प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। प्लवक जीवसंख्या में अधिक सघन होता हैं।
3. **डिस्ट्रोफिक (Dystrophic)**– ये झीलें उथली एवं गहरी हो सकती हैं। ये भूरे पानी वाली हयूमिक (Humic) एवं दलदल वाली झीलें हैं। इन झीलों के पानी में हयूमिक एसिड की सान्द्रता उच्च होती है। ऑक्सीजन कम मात्रा में होती है। इन झीलों में प्रायः कीटों के लार्वा एवं कुछ अगाध जलीय प्राणी पाये जाते हैं। ये जीव – जन्तु कम संख्या में पाये जाते हैं।

2.2.4.3 कच्छ एवं अनूप (Marsh and Swamp)

झीलों तथा तालाबों के सकरे किनारे के साथ–साथ निचले स्थानों पर हमेशा पानी भरा रहता है। वहाँ ऐसे गीले स्थान क्षयी कार्बनिक पदार्थो तथा जिसमे खनिज मिट्टी मिश्रित होती हैं, प्रचुर मात्रा में धारण करते हैं। समय बीतने पर वनस्पती बहुत बढ़ती है तथा समूह एक दुसरे से अलग हो जाते हैं। ये गीले स्थान (Wet lands) कच्छ एवं अनूप कहलाते हैं।

टिप्पणी

जीव–विज्ञान की दृष्टि से यह क्षेत्र सबसे धनिक समुदायों में से हैं। फिर भी ये स्थान कम प्रशंसनीय है तथा सबसे पहले भराव (Filling) एवं ड्रेनेज (Drainage) द्वारा नष्ट किये जाते हैं।

कच्च (Marshes) व गीले मैदान (Wet lands) – वे स्थान जहाँ प्रमुख वनस्पति सरकण्डे वाली घास (Reeds), घास और नरकट (Sedges) के रूप में पाई जाती है। दूसरी और अनूप (Swamps) गीले स्थान (Wooded wet lands) पर पाए जाते हैं।

2.3 लेन्टिक आवास की विशेषताएँ एवं अनुकूलताएँ (Characteristics and Adaptations in Lentic Habitat)

किसी क्षेत्र विशेष में सभी झीलों (प्राकृतिक) एवं तालाबों के समान ही भूगर्भीय उत्पत्ति एवं सामान्य गुण होते हैं।

1. धाराओ की अनुपस्थिति के कारण जल की सतह पर रहने वाले जन्तुओं को कॉलोनी बनाने का अवसर मिलता है तथा वायुमण्डलीय ऑक्सीजन श्वसन के लिए उपलब्ध रहती है। ये कीट अधिकतर हेमिप्टेरा (Hemiptera) गण के होते हैं। ये छोटे, गोलाकार, पतले एवं हल्के वजन के कारण सतह पर तैर सकते हैं। Water-cricket तथा Pond – skaters आदि इसके उदाहरण हैं तथा इनमें ट्रेकिया (Trachea), स्पाइरेकल्स (Spiracles) के द्वारा बाहर खुलते हैं, जैसा कि जटिल कीटों में होता हैं।
2. सतह के नीचे (जिनकी गहराई विभिन्न प्रकार के जलों में भिन्न होती है।) के क्षेत्र जहाँ तेज प्रकाश होता है, अधिक पादप मिलते हैं। इस क्षेत्र में ऑक्सीजन की सान्द्रता बहुत अधिक होती है। कुछ जलाशयों में पानी की सतहों पर धाराओं की प्रक्रिया के कारण तथा हरें पौधों द्वारा प्रकाश – संश्लेषन के कारण ऑक्सीजन की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है। इस क्षेत्र में भोजन भी अधिक मात्रा में पाया जाता हैं, इसलिए इस क्षेत्र में बहुत से जन्तु पाए जाते हैं। कई जलमग्न (Submerged) पादपों के तनों एवं पत्तें पर प्लैनैरियन्स (Planarians) तथा जोंक (Leech) पायी जा सकती हैं।

   इस क्षेत्र में पाये जाने वाले कीटों में से अधिकांश दो प्रकार से वायुमण्डलीय ऑक्सीजन को श्वसन के लिए लेते हैं।

   (i) श्वास–नलियों या साइफन (Siphons) द्वारा, जो जल की सतही परतों से ऊपर बाहर निकलती रहती हैं तथा

   (ii) समय–समय पर सतह पर आकर स्वच्छ जल को वायु के साथ विचलित करके।

टिप्पणी

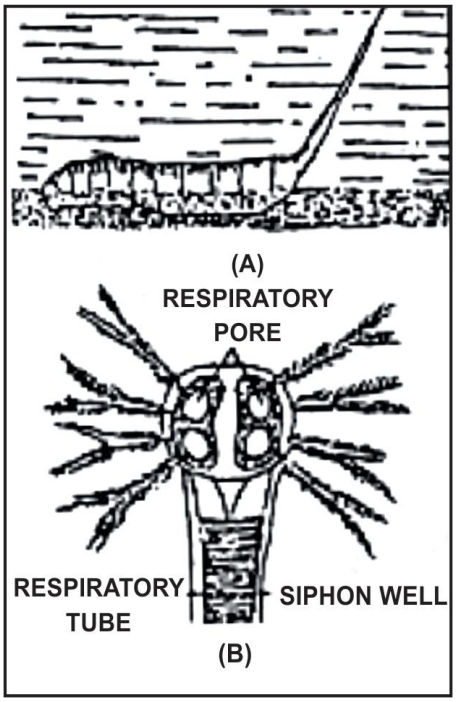

चित्र क्र. 2.4: (A) मैगट् (कीडा) जो साइफॉन (Siphon) द्वारा श्वसन–क्रिया करता है, यह नली पानी की सतह तक ले जायी जा सकती है। (B) श्वसन नली का सिरा (आवर्धित (Magnified))। बाल (Hair) जैसी संरचनाए पानी को श्वसन–छिदों में (Spiracles) प्रवेश करने से रोकती है।

3. अधिकांश पोखर एवं स्थिर जल पर कीचड़ होती हैं, जहाँ स्थायी निवासी कम होते हैं, क्योंकि वहाँ भोजन तथा ऑक्सीजन की कमी होती है। अगर पानी भली प्रकार वायु–युक्त हो तो अक्सर सीप (Unio) जो गिल्स (Gills) द्वारा श्वसन करते हैं, वहाँ पर मिलते हैं। उथले (Shallow) जल में पाये जाने वाले कशेरूकों में मछलियाँ ही सबसे विशिष्ट निवासी है।
4. गहरी झीलों के प्रकाशहीन क्षेत्र में जीवन असम्भव होता हैं, क्योंकि वहाँ ऑक्सीजन की कमी होती है तथा सीमित मात्रा में भोजन केवल अपरद (Detritus) कणों के रूप में जल के ऊपरी सतहों के नीचे आता है। इस क्षेत्र के प्रमुख निवासी कायरोनोमस (Chironomus) जाती के विभिन्न लार्वे हैं, जिनमें सभी में हीमोग्लोबिन की तरह श्वसनीय वर्णक (Pigment) होता है। वर्णक से उनका रंग भी लाल दिखाई देता है। दूसरी जाति जो कीचड़ में नलिकाकारी बिल (Tubes) बनाकर रहती है, वह ऐनेलिड का सदस्य ट्यूबिफेक्स (Tubifex) है, जिसमें श्वसनीय वर्णक पाया जाता है। इस कृमि की पुच्छ ट्यूब से बाहर निकली रहती है, जो गिल्स (Gills) का कार्य करती है।

टिप्पणी

2.3.1 गतिमान जलीय आवास (Lotic Aquatic Habitat)

गतिमान जलीय आवास में पानी बहता हुआ होता है, जिसमें पानी की क्षैतिज गति अधिक होती है, जैसे– झरना, नदी। यह स्थिर आवास (Lantic habitat) से निम्न बातों में भिन्न हैं।

1. इसमें जल की धाराएँ होती है जबकि लेन्टिक आवास में नहीं होती।
2. इसमें स्थिर जलीय आवास की अपेक्षा जल एवं भूमि के बीच आदान–प्रदान अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होते हैं। अतः यह एक खुला इकोसिस्टम (Ecosystem) है।
3. इन आवासों में ऑक्सीजन तनाव में एक अधिक समानता होती है तथा ताप व रासायनिक स्तरण का अभाव होता है। नदियों में प्रायः दो प्रदेश पाये जाते हैं।
   - **(a) द्रुत प्रदेश (Rapid zone)**– यहाँ पानी की गति सबसे अधिक होती है तथा पानी कम गहरा होता हैं। यह किनारे के पास वाला ऊपरी प्रदेश है। यहाँ धारा का वेग तीव्र होता है।
   - **(b) कुण्ड प्रदेश (Pool Zone)**– इस प्रदेश में पानी धीमी गति से बहता है। यहाँ गहरा होता है। धारा का वेग कम होता है। गाद एवं अनद्ध पदार्थो के जमा हो जाने से नरम तल का निर्माण हो जाता है।

लोटिन प्राणि जगत (Lotic Fauna)– यहाँ ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में मिलती है, इसलिए यहाँ पर विभिन्न प्रकार के जीव मिलते हैं। यहाँ कार्प (Carp), लैबियो (Labeo), कटला (Catla), ओफियोसेफेलस (Ophiocephalus), मिस्टिस (Mystis), सिरहाइना (Cirrhina), वेलेगो (Wallago) आदि अन्य मछलियाँ पाई जाती हैं। चपटे कृमि व स्नेल, हॉर्स फ्लाई, ड्रेगन फ्लाई, बीटल्स, मेफ्लाई, जलीय सर्प आदि पाये जाते हें।

2.3.2 स्वच्छ – जलीय अनुकूलन (Fresh – Water Adaptations)

स्वच्छ जलीय प्राणियों में पाये जाने वाले महत्वपूर्ण अनुकूलन निम्न हैं–

1. पौधे व प्राणी पत्थरों या लट्ठे आदि से चिपके रहते हैं, जैसे– जन्तुओं में शुद्ध जल के स्पंज और ट्राइकोप्टेरा के लार्वा पत्थरों पर स्थायी रूप, से चिपके रहते हैं। क्लेडोफोरा (Cladophora) नामक हरित शैवाल अपने लम्बे, लटकते हुए तन्तुओं द्वारा आधार पर चिपका रहता है।
2. जलीय कीटों में वायु श्वसन के लिए विशेष रचनाएँ होती हैं, जिसमें श्वसन विधि वातावरण के अनुसार बदल जाती हैं।
3. प्राणियों में अन्तः परासरण के अहितकारी प्रभावों से बचे रहने के लिए परासरण नियन्त्रण (Osmo-regulation) की विभिन्न विधियाँ विकसित होती हैं।

टिप्पणी

4. स्ट्रीमलाइनिंग (Streamlining) की आन्तरिक क्षिप्रिकाओं में रहने वाले कई जन्तुओं के शरीर चपटे होते हैं। ऐसे शरीरों से उन्हें पत्थरों के नीचे तथा दरारों में आश्रय पाने में आसानी रहती हैं। सेफेनस (Psephenus) एवं फिफिल – भृंग (Fiffle-beetle) के लार्वा में यह लक्षण विशेष रूप में पाया जाता है।

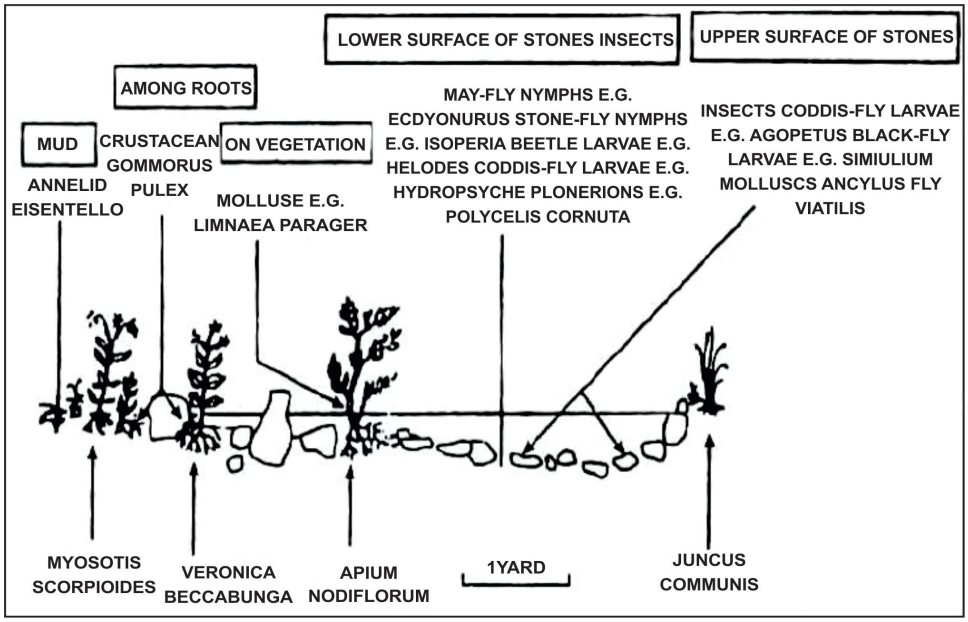

चित्र क्र. 2.5: नदी का भाग (लोटिक या गतिमय आवास) जिसमें कुछ विशेष प्रकार के पादपों और जन्तुओं को दिखाया गया है (Part of river (Lottic or motile habit), showing various types of plants and animals)

5. नदियों में पाये जाने वाले प्रायः सभी जीवों में स्ट्रीमलाईनिंग (Streamlining) पाई जाती है अर्थात इनके शरीर आगे से चौड़े एवं गोल तथा पश्च भाग में टेपरिंग (Tapering) होते हैं। इस प्रकार का शरीर बहते हुए पानी के प्रतिरोध को कम करता है।
6. नदीयों में रहने वाले अधिकांश जन्तु धनात्मक स्पर्शानुचलन (Positive thigmotaxis) प्रदर्शित करते हैं अर्थात वे कठोर अधोस्तर (Substratum) की तलाश में रहते हैं।
7. अधोस्तर से चिपकने के लिए उनमें कंटिकाएँ (Spines) अभिलागी रचना (Adhesive disc) या चूषक होते हें जैसे ब्लेफारोसेरा (Blephorocera), साइमुलियम (Simulium) तथा कैडिस फ्लाई (Caddis fly) के लार्वा में सुविकसित कंटिकाएँ और चूषक होते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. स्वच्छ जलीय आवास की पारिस्थितिकी कहलाती हैं–
   (अ) साइटोलॉजी (ब) जियोलॉजी
   (क) इकोलॉजी (ड) लिम्नोलॉजी
2. झील (Lake) का वह क्षेत्र जिसमें प्रकाश–संश्लेषण प्रमुख है, होता हैं–
   (अ) टोफोजैनिक क्षेत्र (ब) ट्रोफोलाइटिक क्षेत्र
   (क) प्रोफण्डल जोन (ड) अ व ब दोनों
3. तन्तुमय शैवाल (Filamentous algae) का उदाहरण हैं –
   (अ) कारा (Chara) (ब) पिस्टिया (Pistia)
   (क) हाइड्रिला (Hydrilla) (ड) जूसिया (Jussia)
4. जल की सतह पर तैरने वाले जीव कहलाते हैं
   (अ) तरणक (ब) पटलक
   (क) नितलक (ड) परिपादक
5. तली में रहने वाले जीव कहलाते हैं।
   (अ) पटलक (ब) प्लवक
   (क) नितलक (ड) तरणक
6. एक झील के अन्दर कितने तापीय प्रदेश होते हैं?
   (अ) 3 (ब) 4
   (क) 5 (ड) 6
7. झीलों एवं तालाबों में वेलांचली प्रदेश कितनी गहराई तक होता हैं?
   (अ) 4 मीटर (ब) 5 मीटर
   (क) 6 मीटर (ड) 7 मीटर
8. झील या तालाब के तल पर पाये जाने वाल क्षेत्र (जोन) हैं
   (अ) प्रोफण्डल क्षेत्र (ब) प्रकाश क्षतिपूर्ति क्षेत्र
   (क) सरोवरी जीव प्रदेश (ड) वेलांचली जोन प्रदेश

2.4 स्थलीय आवास (Terrestrial Habitat)

2.4.1 बायोम्स (Biomes)

विभिन्न प्रादेशिक जलवायु का उसमें पाये जाने वाले प्रादेशिक जीव समूह (जन्तु समूह और वनस्पति समूह) और अधिष्ठानों से पारस्परिक सम्बन्ध होता है, जिसके

टिप्पणी

परिणामस्वरूप प्रत्येक जलवायु (Climate) प्रदेश अपनी विशेषीकृत जलवायु वनस्पति एवं जीवों सहित एक यूनिट प्रदर्शित करता है, जिसे बायोम्स (Biomes) कहते हैं। ये स्थलीय समुदाय की सबसे बड़ी इकाइयाँ (Terrestrial unit) होती हैं, जिसके प्राणिजात और वनस्पति अपने विशिष्ट गुणों के कारण सरलता से पहचानी जा सकती हैं। प्रत्येक बायोम में किसी एक विशेष प्रकार की वनस्पति प्रचुरता में होती हैं जो लगभग समान रूप से वितरित (Distribute) रहती हैं, जैसे– मैदानों में घास, पर्णपाती वनों में पर्णपाती वृक्ष और टैगा में कोनिफर इत्यादि प्रचुरता से पाये जाते हैं, परन्तु उसी बायोम के विभिन्न प्रदेशों में एक ही जाति के भिन्न–भिन्न पौधों में विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। किसी बायोम में प्रचुरता से पायी जाने वाली वनस्पति की प्रकृति उसकी भौतिक अवस्थाओं पर निर्भर करती हैं।

प्लांट इकोलोजिस्ट (Plant Ecologist) के अनुसार, एक वनस्पति क्षेत्र एक बायोम (Biome) को दर्शाता है। और इसमें पाये जाने वाले प्राणियों की प्रकारें इस क्षेत्र की वनस्पति और पारिस्थितिक कारकों (Ecological Factors) की पारस्परिक क्रिया पर निर्भर करती हैं।

विश्व के मुख्य बायोम्स संक्षेप में निम्न हैं–

1. टुण्ड्रा बायोम्स (Tundra Biomes)
2. रेन फोरेस्ट बायोम्स (Rain Forest Biomes)
3. ग्रासलैण्ड बायोम्स (Grassland Biomes)
4. डेजर्ट बायोम्स (Desert Biomes)
5. गुफाएँ (Caves)
6. पर्वत (Mountains)
7. पर्णपाती वन (Deciduous forest)
8. झाड़ी वन (Chaparral)
9. उपोष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन (Subtropical Evergreen Forest)

1. **टुण्ड्रा बायोम्स (Tundra Biomes)**– टुण्ड्रा शब्द का आविर्भाव फिनिश (Finnish) भाषा के शब्द से हुआ हैं, जिसका अर्थ – बंजर भूमि या अनुपयुक्त प्रदेश होता है। आजकल इस शब्द का प्रयोग केवल वृक्षहीन आर्कटिक प्रदेश के लिए किया जाता है।

   टुण्ड्रा बायोम्स के अन्तर्गत साइबेरिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भू-भाग सम्मिलित हैं जो उत्तर में ध्रुवीय महासागर एवं ध्रुवीय प्रदेश तक तथा दक्षिण में वन प्रदेश तक फैला हुआ है। इन प्रदेशों में अवशोषण कम होता है अर्थात तापक्रम कम रहता हैं, कड़ाके की सर्दी पड़ती हैं और भूमि स्थायी रूप से बर्फ द्वारा ढँकी रहती है। ग्रीष्मकाल केवल साठ दिन का होता है। ग्रीष्मकाल में ऊपर की कुछ बर्फ पिघल जाती है। अतः वृद्धि के लिए उपयुक्त मौसम छोटा होता है। इस कारण यहाँ बहुत कम वनस्पति पाई जाती है तथा अधिकांश क्षेत्र बंजर अथवा वनस्पतिहीन होता

टिप्पणी

हैं। इस प्रदेश में पायी जाने वाली मुख्य वनस्पतियाँ मॉस (Mosses), लाइकेन (Lichens), सेज (Sedges), घास (Grasses) और छोटी झाड़ियाँ (Low shrubs) आदि हैं।

प्राणिजात (Fauna)– जन्तु समूह उत्तरी अमेरिका तथा यूरेशिया में एक समान होता है। आर्कटिक लोमड़ी (Arctic fox), रेनडीयर (Raindeer), कस्तूरी मृग (Musk Ox), खरगोश तथा ध्रुवीय रीछ (Polar bear), पूर्णतया टुण्ड्रा प्रदेश के प्राणी होते हैं। स्थलीय केरीबाऊ (Caribous), स्नो उल्लू (Snow owl), एवं टार्मिगान (Ptarmigan) टुण्ड्रा प्रदेश में पाये जाते हैं, परंतु टैगा (Taiga) प्रदेश तक फैले रहते हैं। माइग्रेटरी बर्ड्स (Migratory Birds) टुण्ड्रा की उग्र जलवायु में ही पाये जाने वाले प्राणी हैं। इन क्षेत्रो में हंस (Geese), बतखें (Ducks) एवं प्लोवर्स (Plovers) पाये जाते हैं। अकशेरूकी प्राणियों में मच्छर, ब्लैक मक्खियाँ बंबल बीज (Bumble bees) और मिजेज (Midges) मुख्य होते हैं।

2. **वर्षा वन बायोम्स (Rain Forest Biomes)**– ये बायोम (Biome) विभिन्न प्रकार के होते हैं और उत्तर से दक्षिण की ओर उच्च अक्षांश (High Altitude) से निम्न अक्षांश (Low altitude) की ओर फैले रहते है। इनके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के वन सम्मिलित होते हैं। कई जलवायुवीय कारकों द्वारा एवं पर्याप्त उपलब्धता द्वारा वनों (Forests) का विकास होता है। इन कारकों (Factors) में तापक्रम (Temperature), वर्षा (Rain), अपेक्षाकृत अधिक आर्द्रता (Humidity), आदि प्रमुख हैं।

   (a) वनों का वातावरण (Atmosphere of Forests)– जंगल के वातावरण को नियन्त्रित करने वाले कारक कम परिवर्तनशील होते हैं। मृद्रा का आर्द्रता – अंश लगभग स्थायी होता हैं, क्योंकि घनी वनस्पति की उपस्थिति के कारण सूर्य का प्रकाश (Sunlight) सीधा मृदा तक नहीं पहुँच पाता है। जंगलों का तापक्रम (Temperature) गर्मियों में प्रायः कम तथा सर्दियों में अधिक होता है। इसका कारण घनी वनस्पतियाँ हैं। समीपस्थ वातावरण की अपेक्षा दिन में जंगल ठण्डे एवं रात में गर्म रहते हैं।

   (b) वनों का वर्गीकरण (Classification of Forests)– वन मुख्यतया तीन प्रकार के पाये जाते हैं, जो निम्न हैं–

   (i) उत्तरी कोनिफेरस वन या टैगा प्रदेश (Northern Coniferous Forest or Taiga)।

   (ii) शीतोष्ण पर्णपाती वन (Temperate Deciduous Forests-)।

   (iii) उष्णकटिबन्धीय सदाबहार वन (Tropical Rain Forests)।

   (i) उत्तरी कोनिफेरस वन या टैगा प्रदेश (Northern Coniferous Forest or Taiga)– यह भू-भाग कनाडा, साइबेरिया, उत्तरी यूरोप, उत्तरी अमेरिका के उत्तरी क्षेत्रों द्वारा

टिप्पणी

प्रदर्शित है। इस क्षेत्र की जलवायु ठण्डी है, लेकिन ग्रीष्मकाल काफी गर्म रहता है और इसमें दिन भी काफी लम्बे होते हैं। परन्तु शरद ऋतु भी शीघ्र आती है। शरद ऋतु में भूमि बर्फ से ढक जाती है। इस कारण इस प्रदेश मे पाये जाने वाले वृक्ष सदाबाहर व कोनिफर होते हैं। इन वनों में सूच्याकार (Needle shaped) पत्तियों वाले सदाहरित वृक्ष विशेषतया फर्नस (Ferns) तथा पाइनस् (Pines) पाये जाते हैं। इन वनों की मृद्रा में छोटे प्राणियों का बड़ा समूह होता हें, परन्तु बड़े प्राणी अपेक्षाकृत कम होते हैं। कोनिफर के बीज गिलहरी, क्रॉसबिल्स आदि जन्तुओं के लिए एक उपयोगी भोजन होता हैं।

प्राणिजात (Fauna)– अकशेरूकी प्राणी मुख्यतः कीटी होते हैं, जैसे– बार्क बीटल्स (Bark beetles), पाइन सॉफ्लाइस (Pine Sawflies) तथा वुड वैस्प (Wood wasps) आदि। कशेरूकी प्राणी मुख्यतः Hylids (Amphibians), क्रॉस बिल्स (Crossbills), जोयास (Joyas), क्राउस (Crouse), वुड पैकर (Woodpeckers), पक्षी (Birds), हिरना (Deer), भेड़िया (Wolves), भालू (Bears) और लोमड़ी (Foxes) आदि होते हैं।

(ii) शीतोष्ण पर्णपाती वन (Temperate Deciduous Forests) – इन वनों में वर्षा अधिक व लगभग समान रूप से होती है। प्रतिवर्ष वर्षा लगभग 75 सेमी से 150 सेमी तक होती है। तापक्रम साधारण होता है। शीत ऋतु व ग्रीष्म ऋतु स्पष्ट होती है। शीत ऋतु में पेड़ों तथा झाड़ियों से पत्तियाँ झड़ जाती हैं, इसलिए शीत एवं ग्रीष्म ऋतु में कॉन्ट्रास्ट (Contrast) अधिक होता है। ऐसे वन सम्पूर्ण यूरोप, जापान, आस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरिका के पूर्वी भागों में तथा दक्षिणी अमेरिका में पाये जाते हैं। Maples, Beech, Walnut, Hickory, Basswood और Oak आदि इस प्रदेश की मुख्य वनस्पतियाँ (Flora) हैं।

प्राणिजात (Fauna)– कशेरूकी प्राणियों (Vertebrate animals) में सेलामेण्डर, ट्री फ्राग (Tree Frog), ऐम्फीबियन्स (Amphibians), कछुए, रेटल सर्प, बड़े डैनों वाल उल्लू, बाज, क्रस्टेड, फ्लाईचेकर, थ्रुसेज (Thrushes), सुअर गिलहरियाँ तथा जंगली सूअर (Wild pig) आदि सम्मिलित हैं। अकशेरूकी प्राणियों में केंचुए, मिलीपीड्स, घोंघे, विभिन्न कीटों के लकड़ी छेदने वाले लार्वा (Wood boring larvae) व पत्तियों का सेवन करने वाले कीट सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

(iii) उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन (Tropical Rain Forests)– इनकी जलवायु गर्म होती हैं तथा इनमें वर्षा प्रचुर होती है। कई बड़े चौडे पत्तें वाले, सदाहरित वृक्ष इन वनों का मुख्य अभिलक्षण होता है। कम इलूमिनेशन (Illumination), उच्च एव अपेक्षाकृत

टिप्पणी

नियत आर्द्रता (Humidity), वायु–धाराओं का प्रभाव, घनी वनस्पति आदि कुछ प्रमुख कारक हैं जो उष्णकटिबन्धीय वर्षा प्रचुर वनों को नियन्त्रित करते हैं। इस प्रकार के वन कांगो, नाइजर, अफ्रीका, ओरिनीको तथा जेम्बेसी नदी की घाटियाँ, भारत में पश्चिमी घाट, मलाया, ईस्ट इंडीज (East Indies) तथा मध्य अमेरिका के कुछ भागों में पाये जाते हैं। बहुत अधिक वनस्पति के कारण इन वनों में सदैव प्रकाश की कमी रहती हैं।

प्राणिजात (Fauna)– इस प्रकार के वनों में दोनों (वनस्पति एवं प्राणिजात) में ही विभिन्न प्रकार के जीव पाये जाते हैं, परन्तु प्राणियों या पेड़–पौधों की कोई भी जाति प्रभावी रूप में नहीं पाई जाती। इन वनों के सामान्य अकशेरूकी प्राणी हैं– घोंघे, बिच्छू, आइसोपोड्स, मिलीपीड, स्पाइडर्स, कीट, स्थलीय लीच और सेन्टीपीड्स आदि तथा कशेरूकी प्राणियों में मेंढक व टोड (Amphibians), कैमेलियॉन्स, गेक्को व एमीजिस, लिजार्डस, वुड पेकर, तोते, हॉर्नबिल्स, हाथी, चीता, काला लंगुर, जंगली सूअर, गौरिल्ला आदि सम्मिलित हैं।

3. **ग्रासलैण्ड बायोम्स (Grassland Biomes)**– पृथ्वी पर लगभग 25 सेमी से 100 सेमी तक वार्षिक वर्षा वाले ट्रॉपीकल व टेम्परेट प्रदेशों में घास के मैदान होते हैं। जैसे स्टैपीज (Stapes), प्रेरीज (Prairies), पाम्पस (Pampas), पुसज्टा (Puszta) आदि। ये मैदान अर्जेन्टाइना, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी रूस आदि देशों के आन्तरिक क्षेत्रों में फैले हुए हैं। यहाँ छोटी–छोटी घास से विशाल घास तक पैदा होती है। ट्रॉपीकल क्षेत्र में जेबरा, जिर्राफ, जंगली गाय, भैसों आदि का मुख्य आहार Parycum, Pennisetum आदि घास की जातियाँ मुख्यतः पैदा होती हैं। यहाँ मानव ने कृषि के लिए वनों को तैयार किया।

प्राणिजात (Fauna)– Grasshoppers, Termites, Bees, Ants, Wasps, Antelopes, Wildbeats, Hippopotamus गधे, घोडे, कुत्ते, गिलहरी, Cattles राना, ब्यूफो, लिम्बरहित ऐम्फीबियन्स, कछुए, लिजार्ड व सर्प, दाना चुगने वाले पक्षी आदि पाये जाते हैं।

4. **डेजर्ट बायोम्स (Desert Biomes)**– मरूस्थल शुष्क भूमि होती है जहाँ वार्षिक वर्षा 10'' से भी कम होती है अतः नमी इतनी कम होती है कि यहाँ वनस्पति एवं मानव जाति का रहना सम्भव नहीं होता।

   1. **मरूस्थलीय वातावरण**– कम वर्षा और तापक्रम की चरमावस्थाएँ दो ऐसे कारक हैं जो डेजर्ट में जीव संस्थाओं को निर्धारित करते हैं। विभिन्न डेजर्टस (Deserts) की वर्षा में अन्तर होता है। कुछ डेजर्टस् में वर्षों तक वर्षा नहीं होती और कुछ ऐसे भी डेजर्टस् हैं, जिनमें अब तक बिल्कुल भी वर्षा नहीं देखी गयी हैं, जैसे– दक्षिणी अमेरिका का ऐटेकामा (Atacama) डेजर्ट। यहाँ के दिन अत्यधिक गर्म व रातें

टिप्पणी

अत्यधिक ठण्डी होती है। जीवधारियों का शरीर इस क्षेत्र के वातावरण के अनुकूल बना रहता है। तापक्रम की चरमावस्थाओं के कारण हवा की गति बढ़ जाती है। इसलिये डेजर्टस् में सामान्यतः आँधियाँ चलती है। इस क्षेत्र में वनस्पति बहुत कम होती हैं तथा इनकी बाहय पर्त मोटी होती है। प्राणी भी बहुत कम संख्या में पाये जाते हैं। इन डेजर्टस (Deserts) में काँटेदार झाड़ियाँ, कैक्टस्, युक्का, अगेब्ज आदि मुख्य वनस्पतियाँ और चूहा, छिपकली, लिजार्ड, साँप, कंगारू, ऊँट, कुछ पक्षी आदि मुख्य प्राणिजात (Fauna) पाये जाते हैं।

2. **मरूस्थलों का वर्गीकरण (Classification of Deserts)**– विभिन्न कारकों से प्रभावित रेगिस्तानें को छः श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

   (i) कम वर्शा वाले डेजर्टस– जैसे– एटेकामा (Low rainfall deserts: as – Atacama)

   (ii) ठण्डे डेजर्टस– जैसे आल्पस् एवं स्कैण्डीनेविया के पर्वत (Cold Deserts: as – Alps and Scandinavian mountains)

   (iii) गर्म डेजर्टस– यह विषुवृतीय क्षेत्र में ही सीमित हैं (Hot deserts of Equatorial zone)

   (iv) कम पोशक पदार्थों वाले डेजर्टस्– जैसे नॉर्थ अमेरिका के डेजर्ट. (Low Nutrient Deserts: as – North American deserts)

   (v) विशैली परिस्थितियों वाले डेजर्टस्– ये प्रायः ज्वालामुखी के समीप पाये जाते हैं। (Toxic deserts: near Volcanos)

   (vi) अधिक लवणीय डेजर्टस्– जैसे – ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका, चिली व पेरूवियन किनारे। (High salt deserts: Australia, South America, Chile and Peruvian coast)

3. **मरूस्थलीय प्राणियों के अनुकूलन (Desert Fauna Adaptations)**– वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाली जल की हानि को रोकने के लिए अधिकांश मरूस्थलीय पौधों की पत्तियाँ काँटो या शल्कों में रूपान्तरित होती हैं। डेजर्ट में पाये जाने वाले प्राणियों में जल के संरक्षण हेतु सभी सम्भव युक्तियाँ पायी जाती हैं। कुछ प्राणियों में जल को संग्रहित करके रखने के लिए विशेष अंग पाये जाते हैं तथा अधिकांश प्राणी जल की कमी के कारण अत्याधिक सान्द्रता वाला मूत्र ही उत्सर्जित करते हैं। उनकी त्वचा स्पाइनी तथा शरीर पर मोटे बाह्म कंकाल का आवरण होता हैं।

5. **गुफाएँ (Caves)**– भू–तल के नीचे या पर्वत या पहाड़ों में एक खोखलापन होता है जिसे गुफा (Cave) कहते हैं, इसमें एक छिद्र या द्वार भी होता है। अधिकांश गुफाएँ चूना पत्थर के विलयन से बनती है। इसलिए ये अधिकतर

टिप्पणी

उन क्षेत्रों में पायी जाती हैं, जहाँ पृथ्वी के संतह के पास काफी मोटे चूना–पत्थर (Limestone) के भारी परिमाण स्थित हों।

(अ) गुफा का वातावरण– गहरे समुद्र की तरह गुफा का वातावरण भी प्राणियों के जीवन के लिए स्थायी परिस्थितियाँ प्रदान करता है। गुफा के वातावरण में एक–सा अँधेरा होता है, अपेक्षाकृत अधिक आर्द्रता पाई जाती है, वातावरण के उच्चावचनों का परिसर कम होता है तथा वायु–धाराओं का अभाव होता हैं।

(ब) गुफा के उप–विभाग– प्राणिशास्त्री आर.एस.लाल (R.S. Lall) के अनुसार गुफा (Cave) के वातावरण को भौतिक लवणों के आधार पर तीन क्षेत्रों में स्पष्ट किया जा सकता है–

(i) उच्चावचनशील तापक्रम वाला क्षेत्र– इसमें गर्मी एवं सर्दी के मौसमी एवं दैनिक परिवर्तन होते रहते हैं।

(ii) गुफा का आन्तरिक क्षेत्र– इसमें गुफा के वातावरण की सही परिस्थितयाँ पायी जाती हैं।

(iii) संक्रमण क्षेत्र (Transitional zone)– इसमें इपीजीअल वातावरण एवं गुफा के वातावरण की मध्यवर्ती परिस्थितियाँ पायी जाती हैं।

(क) गुफाओं को प्राणिजात– गुफाओं में पाये जाने वाले प्राणियों को निम्न तीन समूहों में बाँटा जा सकता है।

(i) **ट्रॉग्लोबिक प्राणि या प्रारूपिक स्थायी– गुफा निवासी** – इनमें जलीय तथा स्थलीय दोनों प्रकार के प्राणिजात (Fauna) सम्मिलित है। जैसे– प्लेटीहैलमिन्थीज, कीटोपॉड कृमियाँ तथा जोंक, आदि– ऐनेलिड्स, एम्फीपोड्स, आइसोपोड्स, डेक़ापोड्स आदि क्रस्टेशियन्स, स्प्रिंग टेल्स आदि कीट, माइट्स एवं स्पाइडर्स आदि ऐरेकनिड्स तथा घोंघे आदि गैस्ट्रोपॉडस इन प्रदेशों के मुख्य अकशेरूकी प्राणि हैं। कशेरूकी प्राणियों में एम्बिलोप्सिस, टिफ्लीक्थोंस आदि मछलियाँ एवं प्रोटीयस एंगुइनिस (Proteus anguines) सम्मिलित हैं।

(ii) संयोगिक गुफा निवासी या विचरणशील जन्तु (Strangers)।

(iii) कदाचित गुफा में रहने वाले, जो गुफा के बाहर भी मिलते हैं, जैसे– उल्लू और चमगादड़ आदि।

4. **गुफा निवासी प्राणियों में अनुकूलन**– गुफा निवासी प्राणियों में निम्नलिखित अनुकूलन पाये जाते हैं–

(i) कुछ प्राणियों में पिगमेन्टेशन (Pigmentation) पायी जाती है। उदाहरण– प्रोटीयस (Proteus) गहरा भूरा या काला रंग विकसित कर लेता है।

टिप्पणी

(ii) प्रकाश की अनुपस्थिति में प्रकाश संवेदी अंगों (Visual organs) को नुकसान हो जाता है अर्थात् आँखों का भिन्न–भिन्न अंशों में रिडक्सन हो जाता है।

(iii) संवेदी अंग (Sensory organs) सुविकसित होते हैं। प्रायः इन अंगों पर टैक्टाइल हेअर्स (Tactile hairs) भी पाये जाते हैं। कीमो – रिसेप्टर्स (Chemo – receptors) भी सुविकसित होते हैं।

(iv) इन प्राणियों के शरीर लम्बे और पतले होते हैं। जैसे वेथाइनेला और पेरावेथाइनेला में।

(v) इन प्राणियों में मेटाबोलिज्म की रेट कम होती है। जनन शक्ति कम और डेवलपमेंट (Development) रेट धीमी होती हैं।

(vi) इन प्राणियों जैसे यूरोडेला में अन्तःस्त्रावी तन्त्र का प्रतिक्रमण (Retrogression) होता हैं।

(vii) इन प्राणियों का अन्य लक्षण नीओटेनी (Neoteny) होता है।

6. **पर्वत (Mountains)**– पर्वतीय क्षेत्रों में भौतिक दशाओं की विभिन्नताओं के कारण जीवीय समुदायों का वितरण जटिल होता है। एक ही पर्वत (Mountain) पर 3 से 5 तक मुख्य बायोम्स (Biomes) उपस्थित हो सकते हैं। इसके फलस्वरूप अपर्वतीय क्षेत्रों की अपेक्षा पर्वतीय क्षेत्रों पर विभिन्न बायोम्स (Biomes) के बीच अधिक आदान – प्रदान होता है। पर्वतों पर एक से समुदाय अधिक पृथक्कृत होते हैं, क्योंकि पर्वत श्रेणियाँ प्रायः सतत् नही होती। सामान्य रूप से विस्तृत अपर्वतीय प्रावस्था में बायोम की अभिलाक्षणिक जातियाँ पर्वतों पर पट्टी रूपी विस्तार की भी अभिलाक्षणिक होती हैं। अतः दक्षिणी मेक्सिकों में हमें सभी प्रकार के बायोम या इकोसिस्टम देखने को मिलते हैं, जो इस प्रकार के उग्र वातावरण में रहने में समर्थ हों। किन्तु उनके वितरण में भी कुछ असमानताएँ होती हैं। केवल पक्षियेां को छोड़कर जिनमें कि उड्डयन की क्षमता अधिक होती हैं, अन्य पृष्ठवंशी पर्वतों की चोटी पर नहीं पहुँच पाते।

7. **पर्णपाती वन (Deciduous Forest)**– पूर्वी उत्तरी अमेरिका, सम्पूर्ण यूरोप, जापान एवं आस्ट्रेलिया के कुछ भाग एवं दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी भाग में पर्णपाती वन पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में प्रचुर एवं समान वर्षा होती है। एक वर्ष में यहाँ लगभग 75–150 सेमी वर्षा होती है तथा यहाँ गर्मी एवं शीत ऋतुएँ स्पष्ट रूप से पायी जाती हैं। पतझड़ का मौसम यहाँ विशेष लाक्षणिक महत्व का है, जब सभी वृक्ष तथा झाड़ियाँ अपने पत्ते प्रतिवर्ष गिरा देते हैं।

ये पर्णपाती वन ऐसे वृक्षों के लिए जाने जाते हैं जो वार्षिक वलययुक्त क्षेष्ठ अंतःकाष्ठ (Heartwood) बनाते हैं। यहाँ पाये जाने वाले प्रमुख क्षेत्र हैं– बेटुला (Betula), एल्म (Elm), ऐसर (Acer), ओक (Quercus) आदि।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त भूमि पर अनेक घास जातियाँ, फर्न (Ferns), मॉस (Mosses), लाइकेन (Lichens) आदि पाये जाते हैं।

जन्तुओं मे यहाँ पर हिरन (Deer), भालू (Beers), लोमड़ी (Foxes), बॉब–बिल्ली (Bob-cats), गिलहरी (Squirrels), जंगली टर्की (Wild turkeys) तथा कठफोडवे (Woodpeckers) आदि पाये जाते हैं। जाड़े के दिनों में कुछ जन्तु शीतनिष्क्रियता (Hibernation) में चले जाते हैं अथवा उष्ण क्षेत्रों में प्रवसन कर जाते हैं।

8. **झाड़ी वन (Chaparral)**– विश्व के मन्द शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों के उन स्थानों पर, जहाँ जाड़े में अपेक्षाकृत प्रचुर वर्षा होती हैं, परन्तु ग्रीष्म ऋतु शुष्क होती हैं, वहाँ पर चरम समुदाय के रूप में कड़ी, मोटी, सदाबाहार पत्तियों (Evergreen leaves) वाले वृक्ष एवं क्षुप विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार की वनस्पति को झाड़ी वन कहते हैं। ये केलीफोनिर्या, मेक्सिको, चिली तथा दक्षिण ऑस्ट्रेलिया में फैले हुए पाये जाते हैं। गर्मी में यहाँ आग लगने का खतरा बना रहता हैं। यहाँ पायी जाने वाली वनस्पतियों में चौमिसो (Chamiso), मैन्जेनिटा (Manzanita), यूकैलिप्टस (Eucalyptus), आर्टीमिसिया (Artimisia) आदि प्रमुख हैं।

   जन्तुओं में यहाँ पर म्यूल हिरन (Mule deer), खरगोश, चूहे, छिपकली, अनेक प्रकार के साँप एवं पक्षी तथा चिपमंक (Chipmunks) आदि पाये जाते हैं।

9. **उपोष्णकटिबन्धीय सदाबहार वन (Subtropical Evergreen Forest)**– विश्व के ऐसे क्षेत्रों में जहाँ अधिक वर्षा होती हैं और ग्रीष्म तथा शीत ऋतु के तापमान में अधिक अन्तर नहीं होता, जैसे– अमेरिका के फ्लोरिडा (Florida) में, वहाँ पर चौड़ी पत्तियों वाले सदाबहार वन जीवोम (Broad-leaved evergreen forest biomes) विकसित हो जाते हैं। यहाँ पर पायी जाने वाली वनस्पतियों में ओक (Oaks), मैगनोलिया (Magnolias), टैमेरिण्ड (Tamarinds) तथा ताड़ (Palms) प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ पर अनेक लतायें (Vines) तथा अधिपादप (Epiphytes), जैसे– ऑर्किड (Orchids), स्पैनिश मास (Spanish moss) आदि भी पायी जाती हैं।

2.4.2 मरूस्थल (Desert)

2.4.2.1 मरूस्थलीय जलवायु (Desert Environment)

इनकी निम्न विशेषताएँ हैं–

1. **पानी की कमी (Scarcity of Water)**– विभिन्न मरूस्थलों की वर्षा में अन्तर होता हैं। कुछ मरूस्थलों में कई–कई वर्षो तक वर्षा नहीं होती। यहाँ तक कि कुछ मरूस्थलों में तो अभी तक कभी वर्षा हुई ही नहीं हैं। जैसे– एटेकामा मरूस्थल (Atacama desert) जो कि दक्षिणी अमेरिका में स्थित हैं।

टिप्पणी

2. **तापमान की पराकाष्ठाएँ (Extremes of Temperature)**– मरूस्थलों में दिन के समय तापक्रम बहुत अधिक होता है। सापेक्षिक आर्द्रता (Relative humidity) भी काफी कम होती है। मरूस्थलों की रातें ठण्डी होती हैं, क्योंकि वातावरण में ताप के विकिरण के कारण रात्रि का तापमान काफी नीचे गिर जाता है। अतः मरूस्थल निवासियों को सर्दी एवं गर्मी दोनों की चरमावस्थायें (Extremes) महसूस करने को मिलती हैं।

3. **अन्धड़ (Dust Storms)**– तापक्रम की चरमावस्थाओं के कारण वायु की गति बढ़ जाती है इसलिए मरूस्थलों में शाम के समय प्रायः आँधी चलती है।

4. **वनस्पति का अभाव (Lack of Vegetation)**– पानी की कमी के कारण वनस्पतियों का अभाव रहता हैं। मरूस्थली वनस्पतियों में काँटेदार झाड़ियाँ, गूदेदार (Succulent) फल वाले पौधे व तेजी से बढ़ने वाले हरबेशियस (Herbaceous) पौधे पाये जाते हैं। वनस्पति केवल उन भागों में पायी जाती हैं, जहाँ थोड़ा–बहुत पानी होता हैं। कैक्टस (Cactus), युक्का (Yucca) आदि सामान्य मरूस्थलीय पौधे हैं।

2.4.2.2 मरूस्थलीय प्राणियों के अनुकूलन (Desert Fauna Adaptation)

ये अनुकूलन नमी प्राप्ति, नमी के संरक्षण, सुरक्षा एवं भोजन प्राप्ति से सम्बन्धित हैं।

1. **नमी–प्राप्ति (Water-obtaining)**– सभी मरूस्थलीय जीवों को जल की बहुत आवश्यकता होती हैं, अतः ये जल के सभी सम्भव स्त्रोतों का उपयोग करने की कोशिश करते हैं। अधिकांश मरूस्थलों में जल के बहुत कम स्त्रोत होते हैं। प्राणी इन स्त्रोत से जल लेकर बहुत समय तक उसे संरक्षित रखते हैं। कुछ जन्तु रसदार वनस्पति को खाकर जल की कमी को दूर करते हैं (खरगोश व कछुयें)। चूहे व चींटी भोजन के ऑक्सीकरण के समय शरीर में उत्पन्न हुए मेटाबोलिक जल का प्रयोग करते हैं। मांसाहारी जन्तु अपने शिकार के शरीर में पाये जाने वाले पानी पर निर्भर करते हैं। जेरबोस (Jerboas) व दूसरे प्राणी बिना पानी के कई दिनों तक जीवित रह सकते हैं। रेप्टाइल्स (Reptiles) व पक्षियों का उत्सर्जी पदार्थ यूरिक ऐसिड (Uric acid) होता हैं। मॉलोच (Moloch) आदि कुछ लिजार्ड (Lizard) त्वचा द्वारा वायु से पानी सोखकर अपनी जरूरत पूरी करते हैं। बिलों में रहने वाले जीव दिन में बिलों का मुँह बन्द कर निष्क्रिय पड़े रहते हैं।

2. **जल–संरक्षण (Water-conservation)**– मरूस्थलीय प्राणी अनेक विधियों द्वारा जल की क्षति को रोकते हैं। इनमें विभिन्न अंगों में जल को संग्रहित रखने के लिए निम्न उपाय पाये जाते हैं –

   (i) इन प्राणियों की त्वचा मोटी होती है जिससे जल पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकलने से रूकता है।

टिप्पणी

(ii) कुछ जीव शरीर में पानी को सुरक्षित रखने वाले स्त्रावों का स्त्रावण करते हैं।

(iii) पानी के वाष्पीकरण को रोकने के लिए शरीर स्केल्स (Scales) व स्पाइन्स (Spines) द्वारा ढँका रहता है।

(iv) **तितली व लिजार्ड** – ये स्वयं को अधिक तापक्रम के अनुसार अनुकूलित कर लेते हैं और असहनीय तापक्रम पर भी जीवित रहते हैं।

(v) गर्म रेत में शरीर को ऊँचा उठाये रखने के लिए वनस्पति की पत्तियों पर आश्रित रहने वाले कीटों की टाँगे लम्बी होती हैं।

(vi) **पेरोग्नेथस (Perognathus)**– ये दिन के समय कडी धूप से बचने के लिए नमी वाले बिलों में रहते है एवं रात्रि के समय बिलों से बाहर निकलते है।

(vii) उँट (Camel)– ये अपने आमाशय (Stomach) के रूमेन (Rumen) की दीवार में पायी जाने वाली जल–कोशिकाओं में जल संचित रखता हैं। यह पानी ऊँट कई दिन तक उपयोग में लाता हैं।

3. **तेजी से दौड़ना (Fast running)**– रेतीली भूमि पर तेजी से भागने के लिए मरूस्थलीय प्राणियों में प्रायः निम्न अनुकूलन पाये जाते हैं –

(i) रेगिस्तानी बिल्ली के चौड़े तलवों पर बाल पाये जाते हैं जिससे वह गरम रेत पर तेज दौड़ती हैं।

(ii) ऊँट के तलवे चौड़े व मुलायम गद्दियों वाले होते हैं।

(iii) **ऑस्ट्रिच (Ostrich)** की टाँगों पर चमड़े की माँसल गद्दियाँ पायी जाती हैं।

(iv) **टेरेटोस्किन्कस (Teratoscincus)**– इसकी अँगुलियों में पार्श्व फ्रिज होते हैं। ये रेत में चलने में इसे सहायता प्रदान करते हैं।

4. **सुरक्षा (Defence)**– रेगिस्तानी प्राणियों में अनेक ऐसी युक्तियाँ पायी जाती हैं जो उनकी अधिक गर्मी, शीत आदि से रक्षा करती हैं। ये युक्तियाँ निम्न हैं –

(i) शरीर पर मोटे आवरण का पाया जाना।

(ii) **डेजर्ट मिन्गूस (Desert Mingoose)** आदि का दिन के समय बिल में चला जाना एवं रात्रि को बिल से बाहर आना।

(iii) रेगिस्तानी बिल्ली के तलवों पर मोटी खाल का पाया जाना।

(iv) डिपोडोम्स (Dipodoms) लीफहॉपर की टाँगों का लम्बा होना।

5. **अन्धड़ों से रक्षा (Protection against storms)**– धूलभरी आँधियों से कान, नाक व आँखों की सुरक्षा के लिए मरूस्थलीय जीवों में अनेकों परिवर्तन पाये जाते है। इसमें नासिका छिद्र या तो छोटे होते हैं या वायु

टिप्पणी

को जटिल नासिका पथ से गुजरना पड़ता हैं। ऊँट गर्म हवा में अपने नासिका छिद्रों को बन्द कर लेता है। कानों के छेद बालों द्वारा सुरक्षित रहते हैं जिससे धूल के कण इनमें प्रवेश नहीं कर पाते। एब्लेप्सुआ (Ablepsua) नामक छिपकली की पारदर्शी निचली पलक पूरी तौर से ऊपर पलक में जुड़ी रहती हैं।

6. **संवेदी अंग (Sensory organs)**– रेगिस्तानी प्राणियों के संवेदी अंग विशेष रूप से विकसित होते हैं। इनमें सुनने व सूँघने के संवेदी अंग बहुत सक्रिय व अधिक विकसित होते हैं। इनमें कुछ विशेष बुद्धिमानी भी देखी गई हैं।

7. **रंग (Colour)**– शत्रुओं से बचाव के लिए एवं शिकार के लिए इनकी त्वचा नारंगी, बालू के समान भूरी होती हैं।

8. **विष (Poison)**– हीलोडर्मा (Heloderma), रैटिल सर्प (Rattle snake), स्पाइडर (Spider) में चेतावनीसूचक अंग होते हैं। ये जन्तु विशैले होते हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

9. वह घासस्थल जो सर्दियों में हिमाच्छादित रहता हैं, कहलाता हैं –

   (अ) सवाना (ब) टुण्ड्रा

   (क) पर्वतीय स्थल (ड) मरूस्थल

10. वह वन जिसमें वर्ष के किसी भी समय पत्तियाँ गिर जाती हैं –

    (अ) पर्णपाती वन (ब) वर्षा प्रचुर वन

    (क) शंकुधारी वन (ड) उपर्युक्त सभी

11. वह मरूस्थल जिसमें कभी वर्षा नहीं होती

    (अ) स्कैण्डीनेविया (ब) आल्पस

    (क) ऐटेकामा (ड) ठण्डे मरूस्थल

12. पर्णपाती वनों में वर्ष में लगभग कितनी वर्षा होती हैं?

    (अ) 30–50 सेमी (ब) 45–55 सेमी

    (क) 75–150 सेमी (ड) 150–300 सेमी

13. फर्न तथा पाइन्स (Fern and Pines) मुख्यतः किस प्रकार के वनों में पाये जाते हें?

    (अ) उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन (Tropical rain forest)

    (ब) उत्तरी कोनिफेरस वन या टेगा (Northern coniferous forest or Taiga) प्रदेश

    (क) शीतोष्ण पर्णपाती वन (Temperate deciduous forest)

    (ड) (अ) व (क) दोनों से

टिप्पणी

14. ठण्डे मरूस्थल (Cold deserts) का उदाहरण हैं
    (अ) पेरूवियन किनारे
    (ब) नॉर्थ अमेरिका के मरूस्थल
    (क) एटेकामा
    (ड) आल्प्स (Alps)
15. 10 सेमी से कम वर्षा वाले बायोम हैं –
    (अ) मरूस्थल बायोम (ब) ग्रासलैण्ड बायोम
    (क) टुण्ड्रा बायोम (ड) सवाना बायोम

2.5 समुद्रीय आवास (Marine Habitat)

2.5.1 समुद्रीय आवास–स्थान की विशेषताएँ (Characteristics of Marine Habitat)

समुद्रीय आवास एक विशेष प्रकार का पारितन्त्र (Ecosystem) होने के कारण अपनी निम्न विशेषताएँ रखता हैं–

1. **लवणता या खारापन (Salinity)**– समुद्र में उपस्थित सभी लवण पदार्थों की सान्द्रता को लवणता (Salinity) कहते हैं।
   (i) समुद्रीय जल पृथ्वी धरातल पर उपस्थित विभिन्न प्रकार के खनिज लवणों का तनु (Dilute) घोल है। इसमें लगभग सभी खनिज तत्व पाए जाते हैं।
   (ii) इसमें कुछ कार्बनिक पदार्थ मृत जीवों के सड़ने से समुद्री जल में आते हैं।
   (iii) समुद्री जल में लवणों की सान्द्रता 3.5 प्रतिशत तक होती हैं।
   (iv) समुद्रीय पानी में लगभग 49 तत्व ही अभी तक ज्ञात हैं।
   (v) समुद्रीय जल में उपस्थित लवणों में सबसे अधिक पाये जाने वाले आयन Na^+ व Cl^- आयन होते हैं। Na^+ तथा Cl^- आयन, समस्त आयनों के 80 प्रतिशत तक होते हैं, इनमें 55 प्रतिशत Cl^- आयन तथा 30 प्रतिशत Na^+ आयन होते हैं।
   (v) खुले समुद्र की लवणता (Salinity) लगभग सभी जगह समान (एक जैसी) रहती हैं, क्योंकि समुद्रीय धाराओं से पूरा समुद्रीय पानी मिश्रित होता रहता है। लवणता (Salinity) केवल उन्हीं स्थानों पर बदल सकती है, जहाँ नदियाँ आकार समुद्र में मिलती हैं।

   लवणता (Salinity) ही समुद्रीय पानी की प्लवनशीलता (Buoyancy) तथा घनत्व को निर्धारित करती है। लवणता (Salinity) और

प्लवनशीलता एक–दूसरे के समानुपाती रहते हैं। प्लवनशीलता तथा लवणता (Salinity) दोनों ही समुद्रीय जीवन के लिए बहुत उपयोगी हैं।

टिप्पणी

2. **पराक्षारिता (Tonicity)**– समुद्री प्राणियों के शारीरिक तरलों की अपेक्षा समुद्री जल अधिक सघन होता है। इसलिए समुद्री प्राणियों को विशिष्ट कंकालीय रचनाओं की आवश्यकता नहीं होती। समुद्री अकशेरूकी प्राणियों के शारीरिक तरल (Body Fluids) समुद्री जल के समपरासारी (Isotonic) होते हैं, जबकि स्वच्छ जलीय प्राणियों के शारीरिक तरल तनु (Dilute) बाहय माध्यम के प्रति अतिपरासरी (Hypertonic) होते हैं। इसलिए समुद्री प्राणियों को अलवणजलीय–प्राणियों की तरह शारीरिक तरलों की ठीक सान्द्रता बनाए रखने के लिए अधिक ऊर्जा व्यय नहीं करनी पड़ती।

3. **तापक्रम (Temperature)**– समुद्रीय पानी का तापक्रम गहराई के अनुसार परिवर्तनशील है। समुद्रीय तल (Bottom) पर 4°C तथा समुद्रीय सतह पर 30°C तक तथा गहराइयों में इनके मध्य तापक्रम परिवर्तित होता है।

4. **दबाव (Pressure)**– समुद्र में गहराई के अनुसार दबाव भी बढ़ता जाता हैं। समुद्रीय सतह पर वायुमण्डलीय दबाव 15 पौंड/वर्ग इंच (Pond (lb)/Square inch) तथा यह दबाव प्रत्येक 1000 Fathom (1 Fathom = 6 Feet) की गहराई पर 1 टन/वर्ग इंच (Ton/sq.inch) की दर से बढ़ता जाता है। (समुद्रीय दबाव की गणना करने के लिए वायुमण्डलीय दबाव, जो कि समुद्र की सतह पर होता हैं, को भी सम्मिलित किया जाता है।)

5. **पारदर्शिता**– समुद्र तल पर अपेक्षाकृत अधिक पारदर्शिता होती हैं, जिससे प्रकाश काफी गहराई तक (सामान्यतया 200 मीटर की गहराई तक) प्रवेश कर लेता है। इस लक्षण से पौधे भोजन का निर्माण करने में समर्थ होते हैं।

6. **प्रकाश तीव्रता (Light intensity)**– समुद्र की सतह पर प्रकाश की तीव्रता सबसे अधिक होती हैं, परन्तु जैसे–जैसे हम अन्दर की तरफ चलते जाते हैं, प्रकाश की तीव्रता घटती चली जाती हैं तथा लगभग समुद्र की सतह से 200 मीटर की गहराई तक प्रकाश पहुँचता है, फिर बिल्कुल समाप्त हो जाता है और गहरे समुद्र में अँधेरा रहता है।

7. **लहरें (Waves)**– समुद्रीय जल वातावरण (Atmosphere) के सीधे सम्पर्क में होता है। वायुमण्डल में हवाओं की धाराओं इत्यादि से समुद्र की सतह समतल न रहकर हवाओं की धाराओं के कारण तरंगों (Waves) का रूप ले लेती है। ये तरंगे छोटी–छोटी भी हो सकती हैं तथा कभी–कभी अत्यन्त विशाल भी हो सकती हैं।

8. **ज्वार भाटा (Tides)**– पृथ्वी तथा चन्द्रमा की आपसी आकर्षण क्षमताओं के फलस्वरूप समुद्रीय पानी में कुछ विशेष ऊँची लहरें उठती हैं, जिन्हें ज्वार तथा भाटा (High and Low tides) के नाम से जाना जाता है। अधिकतर ज्वार तथा भाटा एक–दूसरे से एकान्तर क्रम में चलते रहते हैं। ज्वार आने के समय समुद्र का पानी किनारे की तरफ बढ़ता हैं, जबकि भाटे के समय समुद्र का पानी किनारे से दूर हटता हैं।

टिप्पणी

पृथ्वी एवं चन्द्रमा के खिंचाव के कारण समुद्र में प्रायः तट के पास वाले क्षेत्रों में इस प्रकार के ज्वार निम्न प्रकार के होते हैं।

1. **चढ़ता ज्वार (Flood Tides)**– इसमें समुद्र का जल चढ़ता हैं एवं तटीय क्षेत्र को ढँकता है।
2. **भाटा (Ebb tides)**– इसमें समुद्र का जल पीछे हटता है।
3. **बृहत् ज्वार (Spring tides)**– ये असाधारण रूप में ऊँची एवं नीची लहरों के बने होते हैं।
4. **लघुतम ज्वार (Neap tides)**– ये महीने में दो बार आते हैं, जब चन्द्रमा व सूर्य आमने–सामने आते हैं। समुद्री लहरे सबसे कम ऊँची रहती हैं।

9. **धाराएँ (Currents)**– समुद्र में सूर्य की ऊष्मा के कारण पानी के कण ऊपर उठते हैं, जबकि ठण्ड से नीचे ती तरफ चलते हैं। समुद्र में बहुत सी जगह नदियाँ आकर मिलती हैं। इन सभी के सम्मिलित प्रभाव से समुद्रीय पानी में कुछ विशेष प्रकार का प्रवाह उत्पन्न हो जाता हैं, जिन्हें धाराएँ (Currents) कहते हैं। धाराओं में समुद्रीय सतह अधिक समतल रहती हैं।

   प्रायः समुद्रीय– जलधाराओं द्वारा निरन्तर परिसंचरित होता है। बहिस्तर पर धाराएँ वायु के कारण उत्पन्न हो सकती हैं अथवा तापक्रम एवं लवणता की भिन्नता से उत्पन्न थर्मोहेलाइन (Thermohaline) धाराएँ बनती हैं। समुद्र की प्रसिद्ध धाराएँ विषुवत्तीय धाराएँ (पूर्व से पश्चिम की ओर) तथा तटीय धाराएँ (उत्तर से दक्षिण की ओर) होती हैं। इस गति से कई स्पष्ट लाभ हैं। जैसे–

   (i) अपचय (Catabolism) के फलस्वरूप प्राणियों द्वारा बनाये गये अपशिष्ट उत्पादों के वितरण में ये धाराएँ सहायक होती हैं।

   (ii) यह पोषक पदार्थों के जल में वितरण में सहायता देती हैं।

   (iii) इनकी सहायता से ऑक्सीजन गहराई तक ले जायी जाती हैं।

   (iv) यह अण्डों, डिंभकों, बीजाणुओं (Spores) के दूर–दूर तक के क्षेत्र में वितरण में सहायता देती हैं।

   (v) 'ऊपर आना' या अपवैलिंग (Upwellings) एवं 'बाहर आना' या ऑउटवैलिंग (Outwelling) में सहायक होती हैं। अपवैलिंग के फलस्वरूप पोषक पदार्थों से परिपूरित – जल बहिस्तल पर आता है तथा आउटवैलिंग के फलस्वरूप पोषक पदार्थों से परिपूरित समुद्र से बाहर की ओर आता है।

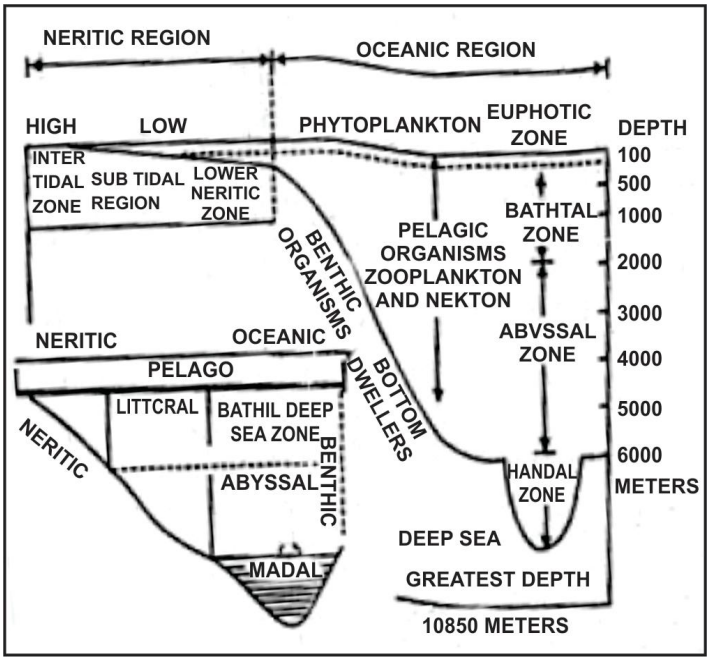

चित्र क्र. 2.6: समुद्रीय आवास के विभिन्न भागों को दर्शाते हुए विस्तृत चित्रांकन (Detail Representation of Various Parts of Marine Habitat)

10. **भोजन–श्रृंखला (Food – Chain)**– समुद्र में भोजन श्रृंखला सूक्ष्म–जीवन, जो कि अपना भोजन स्वयं बनाते हैं, से प्रारम्भ होती है तथा सबसे बड़े जन्तुओं पर समाप्त होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समुद्र में उपस्थित जन्तु आदि के जीवन पर रासायनिक कारकों की अपेक्षा भौतिक कारकों (Physical Factor) का प्रभाव अत्यधिक होता हैं।

2.5.2 समुद्र के विभिन्न क्षेत्र (Zonation of sea)

समुद्रों को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है– वेलापवर्ती क्षेत्र (Pelagic Zone) तथा नितलस्य क्षेत्र (Benthic Zone)।

1. **वेलापवर्ती क्षेत्र (Pelagic Zone)**– इस क्षेत्र में समुद्र तल की ऊपरी सतह का जल आता है। महासागरीय प्रदेशों का ऊपरी–स्तर, जो प्रकाश–संश्लेषण की दृष्टि में सक्षम होता है, वेलापवर्ती या तलप्लावी क्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र को सुप्रकाशित क्षेत्र (Euphotic Zone) या कभी–कभी उत्पादक क्षेत्र (Producing zone) भी कहते हैं। इस क्षेत्र में तापमान परिवर्तनशील होता है तथा तेज लहरे चलती रहती है।

   यह क्षेत्र क्षितिज दृष्टि से (Horizontally)– (i) नैरिटांचली क्षेत्र (Neritic Zone) और (ii) महासागरी क्षेत्र (Oceanic Zone) में बाँटा जाता हैं।

   (i) नेरिटिक क्षेत्र (Neritic Zone)– यह कम गहरे जल का क्षेत्र है। यह क्षेत्र अन्तर ज्वार क्षेत्र (Intertidal zone) में स्थित होता है। इसे सब लिटोरल क्षेत्र (Sub-littoral zone) भी कहते हैं।

टिप्पणी

(ii) महासागर क्षेत्र (Ocean Zone)– खुले सागर का महाद्वीपीय शैल्फ से आगे का वह भाग जो ढलान के ऊपर पाया जाता है महासागर प्रदेश (Ocean Zone) कहलाता हैं। स्थलीय वातावरण से यह जोन असम्बन्धित रहता हैं। इसे दो क्षेत्रों में बाँट सकते हैं–

(a) यूफोटिक जोन (Euphotic zone) तथा (b) एफोटिक जोन (Aphotic zone)।

(a) यूफोटिक जोन (Euphotic Zone)– इस क्षेत्र को उत्पदक क्षेत्र या प्रदीप्त क्षेत्र (Illuminated zone) भी कहते है। यह 100 से 200 मीटर की गहराई तक फैला रहता है। इसमें रेडियोलेरियन्स, फोरोमेनीफर, ऐल्गा, जेलीफिश, मछलियाँ आदि पायी जाती है। इस क्षेत्र में जड़ वाले पौधे नहीं पाये जाते हैं।

(b) एफोटिक जोन (Aphotic Zone)– यह यूफोटिक जोन से नीचे वाला जोन है। इस क्षेत्र में ताप सम होता है। प्रकाश मन्द होता है। इसकी गहराई में प्रकाश का अभाव रहता है। जल स्तम्भ का दाब बहुत अधिक होता है। इसे दो क्षेत्रों में बाँटा जा सकता हैं–

(i) गम्भीर क्षेत्र (Bathyal Zone)– यह क्षेत्र 200 से 2000 मीटर तक गहरा होता है।

(ii) वितलीय क्षेत्र (Abyssal Zone)– यह क्षेत्र 2000 से 5000 मीटर तक गहरा होता है।

2. **नितलस्य क्षेत्र (Benthic Zone)**– यह वेलापवर्ती क्षेत्र के नीचे स्थित रहता है। नितलस्य क्षेत्र में समुद्रीय तल सम्मिलित होते हैं। इसके अन्तर्गत समुद्र का 600 से 6000 फुट की गहराई तक का क्षेत्र सम्मिलित है। यह भूगर्भीय सक्रियता वाल क्षेत्र है। पहले ऐसा समझा जाता था कि इस क्षेत्र में जीवधारी नहीं है, किन्तु बाद में माइकल सार्स नामक वैज्ञानिक ने यह सिद्ध कर दिया कि यहाँ भी अनेक प्रकार के जीव पाये जाते हैं। यह प्रदेश दो मुख्य क्षेत्रों में विभक्त रहता है। (i) वेलान्चली (Littoral) एवं (ii) गहरे समुद्रीय (Deep sea) क्षेत्र।

टिप्पणी

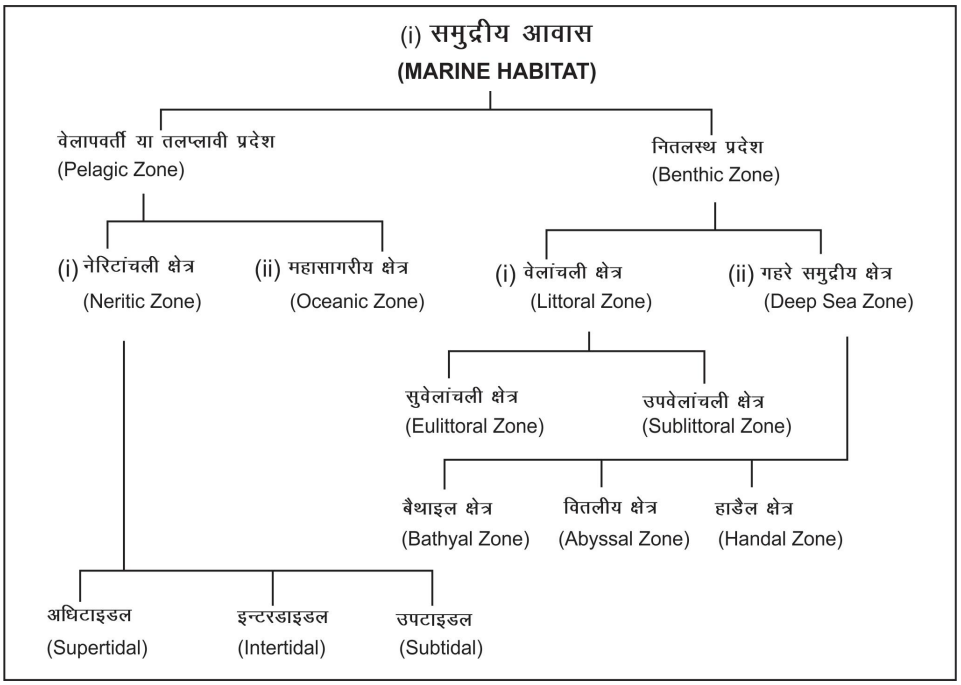

2.5.3 वेलापवर्ती क्षेत्र की पारिस्थितिकी (Ecology of Pelagic Zone)

इस क्षेत्र में समुद्र तल की ऊपरी सतह का जल आता है। यह क्षेत्र क्षितिज की दिशा में (Horizontally) (1) नेरिटांचली क्षेत्र (Neritic Zone) और (2) महासागरीय क्षेत्र (Oceanic Zone) में विभक्त होता है।

1. **नेरिटांचली क्षेत्र (Neritic zone)**– यह समुद्र तट के पास वाला क्षेत्र है, जिसमें 200 मीटर तक गहराई वाला जल–स्तभ सम्मिलित होता है। समुद्र में पानी समुद्र तट से काफी दूर तक ढलान के रूप में होता है। यह क्रमानुसार ढलान महाद्वीपीय शेल्फ (Continental shelf) कहलाता है। इस महाद्विपीय शेल्फ के ऊपर का जल नेरिटांचली क्षेत्र बनाता है। इस महाद्विपीय शेल्फ के दूसरी तरफ समुद्र तल एकदम सीधा गिरता है और महाद्विपीय ढलान (Continental shelf) बनाता है। नेरिटांचली क्षेत्र भूमि के समीप स्थित होता है और स्थलीय वातावरण के कारकों से काफी प्रभावित होता है। यह क्षेत्र (i) सुप्राटाइडल (Supratidal), (ii) इन्टरटाइडल (Intertidal) और (iii) उपटाइडल (Subtidal) में विभेदित किया जाता है। ये निम्नवर्णित हैं–

   (i) अधिज्वारीय क्षेत्र (Supratidal Zone) – ज्वारीय चिन्ह के ऊपर का क्षेत्र।

   (ii) अन्तराज्वारीय क्षेत्र (Intertidal Zone) – ज्वार तथा भाटा के मध्य का क्षेत्र।

   (iii) उपज्वारीय क्षेत्र (Subtidal Zone)– भाटा चिन्ह के नीचे स्थित क्षेत्र।

टिप्पणी

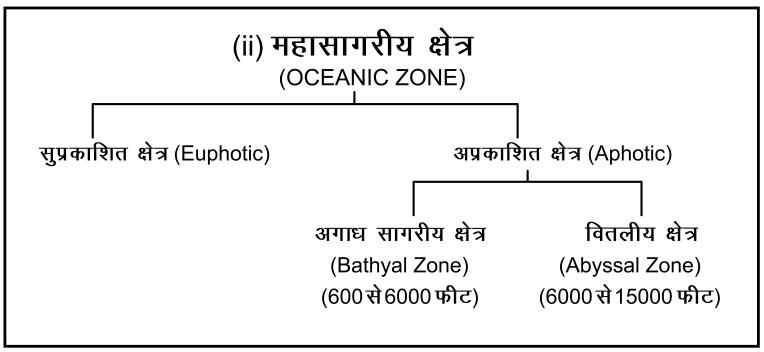

2. **महासागरी क्षेत्र (Oceanic Zone)**– गहराई और सूर्य की किरणों की भेदन क्षमता के आधार पर इसको दो उपक्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता हैं।

(a) सुप्रकाशित क्षेत्र (Euphotic zone)– सतह से लगभग 600 फीट की गहराई तक का यह महासागरीय क्षेत्र, जिसमें प्रकाश की लगभग सभी किरणें भेदकर प्रकाशित करती हैं, सुप्रकाशित क्षेत्र कहलाता हैं।

(b) अप्रकाशित क्षेत्र (Aphotic zone)– सुप्रकाशित क्षेत्र के नीचे अधिक गहरा क्षेत्र अप्रकाशित क्षेत्र हैं। इसमें सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता हैं, परन्तु अन्धकार की अधिकता के आधार पर इस क्षेत्र को भी निम्न दो उपक्षेत्रों में बाँटा गया है।

(i) अगाध सागरीय क्षेत्र (Bathyal Zone)– यह वेलापवर्ती क्षेत्र के नीचे का भाग है। इसके अन्तर्गत समुद्र का 600 से 6000 फीट की गहराई तक का क्षेत्र सम्मिलित है। यह भूगर्भीय सक्रियता वाला क्षेत्र है। इस क्षेत्र की विशेषताएँ निम्न हैं –

(a) प्रकाश का अभाव (Short of Light)– ऊपरी कुछ स्तरों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह प्रकाश का अभाव रहता हैं।

(b) शीत (Cold)– एक निश्चित गहराई के नीचे सभी महासागरों का जल स्थायी रूप से प्रायः 4°C तक ठण्डा होता है तथा तापमान सदा स्थिर बना रहता हैं।

(c) निश्चलता– गम्भीर समुद्र की मन्द महासागरीय धाराओं के अलावा यहाँ अन्य कोई हलचल नहीं पायी जाती हैं।

(d) दाब (दबाव) (Pressure)– यहाँ जलीय दबाव अधिक होता है, जो गहराई के साथ बढ़ता जाता है। प्रत्येक 100 फैदम की गहराई पर प्रति वर्ग इंच क्षेत्र पर एक टन दाब वृद्धि होती है। इस दाब की तुलना में समुद्र सतह के प्रति वर्ग इंच पर 15 पाउण्ड दाब ही होता है जो बहुत कम हैं।

टिप्पणी

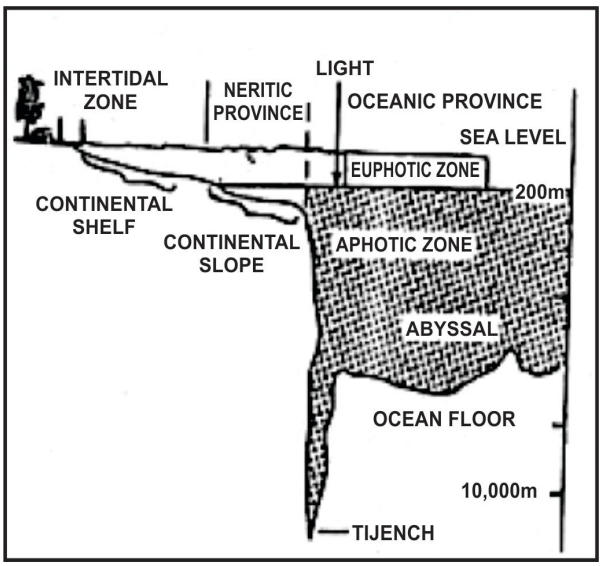

चित्र क्र. 2.7: सूर्य की किरणों की भेदन–सीमाओं के आधार पर महासागर का क्षेत्रीकरण (Zonation of sea on the basis of penetrating of sun-rays)

(ii) वितलीय क्षेत्र (Abyssal Zone)– उपर्युक्त गहरे सागरीय क्षेत्र के घने अँधेरे वाला क्षेत्र वितलीय क्षेत्र कहलाता है। साधारणतः इसकी गहराई 6,000 फीट से लेकर 15,000 फीट तक होती हैं, परन्तु कुछ में गहराई इससे भी अधिक पाई जाती हैं। ब्रुन (Brunn, 1957) नामक वैज्ञानिक ने इस क्षेत्र को विश्व की सबसे बड़ी – 'पारिस्थितिकी इकाई' की उपमा दी है। यद्यपि अनेक दृष्टि से यह एक अपूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र है। इस क्षेत्र में ऑक्सीजन का पूर्ण अभाव होता है। जल क्षेत्र में विद्यमान एक प्रकार की समरूपता के कारण पर्यावरण अत्यन्त समांग होता है। जल की गतिशीलता जो तटवर्ती एवं सतही क्षेत्रों में होती हैं उसका यहाँ पूर्ण अभाव रहता है। इस क्षेत्र में अत्यधिक जल दाब और गहन अन्धकार होता है।

(iii) गहरा समुद्र या खाई क्षेत्र (Hadal Zone)– वितलीय क्षेत्र के नीचे धरातल में कभी–कभी और भी गहरी खाईयाँ होती हैं, जिनमें कुछ जन्तु समुदाय अपना स्थायी निवास बनाते हैं। यद्यपि यह क्षेत्र भी वितलीय क्षेत्र का ही भाग है, परन्तु फिर भी सामुदायिक लक्षणों के आधार पर कुछ विशेषज्ञों ने इसे एक अलग उपवर्ग मानकर इसे "खाई क्षेत्र (Hadal zone)" कहा है।

2.5.4 महासागरीय क्षेत्र समुदाय या जीवजात (Biota of Oceanic Zone)

महासागरीय क्षेत्र को सुप्रकाशित और अप्रकाशित दो उपक्षेत्रों में विभाजित किया गया है। प्रकाश के कारण इन दोनों उपक्षेत्रों के सामुदायिक जीवन में अधिक भिन्नता है, जिन्हें प्रत्येक क्षेत्र की विशेषताओं से समझा जा सकता है।

टिप्पणी

2.5.4.1 (क) सुप्रकाशित क्षेत्र (Euphotic Zone)

यह समुद्र की ऊपरी सतह से लगभग 600 फीट तक गहराई का वह क्षेत्र हैं, जिसमें साधारणतः प्रकाश किरणें समुचित मात्रा में उपलब्ध रहती हैं। परन्तु गहराई के अनुसार किरणों का वितरण बदलता जाता है। सबसे ऊपर सतह पर सभी प्रकाश तरंगे प्रवेश करने से पर्णहरित धारी वाली हरी प्लवक की अधिकता होती हैं, परन्तु और अधिक गहराई में पराबैंगनी (Ultraviolet) और सबसे गहरे सुप्रकाशित क्षेत्र में मात्र अवरक्त (Intra-red) किरणों की पहुँच होने के कारण क्रमशः भूरी और लाल रंग की प्लवक (Brown and Red Plankton) पायी जाती हैं।

उत्पादक (Producers)– विभिन्न गहराइयों में प्रकाश किरणों की वितरण व्यवस्था के अनुरूप सतह के नीचे गहराई में उतरने पर क्रमशः हरी, भूरी और लाल प्लवक (Green, Brown and Red Plankton) उत्पादक के रूप में मिलती हैं।

उपभोक्ता (Consumers)– सुप्रकाशित और तटीय क्षेत्र में उपभोक्ताओं में बहुधा समानता है और अनेकों सदस्य दोनों क्षेत्र में समान रूप से वितरित रहते हैं। परन्तु इस क्षेत्र में कुछ विशिष्ट जन्तु भी हैं। मुख्य रूप से निम्न समूह वर्णन योग्य हैं–

(अ) प्राणी प्लवक (Zooplankton)– स्थायी और अस्थायी प्राणी प्लवक दोनों समूह के विभिन्न समुदायों के अनेकों सूक्ष्म जन्तु इस क्षेत्र में वितरित रहते हैं। स्थायी प्लवक – इसके प्रमुख सदस्यों में फोरामिनीफेरा, रेडियोलेरिया (प्रोटोजोआ), वाँण कृमि (कीटोग्नैथा), कुछ ऐनेलिडा कृमि, तैरने वाले घोंघे (मौलस्का), जैलीफिश (सीलेन्ट्रेटा) एवं सबसे अधिक क्रस्टेशिया की झींगा मछली (श्रिम्प), कोपेपोड एवं क्लेडोसेरन समुदाय के सदस्यों के नाम उल्लेखनीय हैं। अस्थायी प्लवक के रूप में लगभग सभी फाइलम के लार्वा पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए सीलेन्ट्रेटा के प्लेनुला, इफायरा एवं सेम्पर्स लार्वा, इकाइनोडर्मेटा के बाइपिन्नेरिया, ऑफियोप्लूटियस, ऑरीकुलेरिया एवं इकाइनोप्लूटियस लार्वा, बैलेनोग्लॉसस का टॉरनेरिया लार्वा आदि अस्थायी प्लवक हैं।

(ब) तरणक या नेकटॉक (Swimmers)– इस समूह में बडे जन्तु हैं, जिनमें अधिकांशतः कशेरूकधारी हैं। अकशेरूक वर्ग में मौलस्का, फाइलम के ऑक्टोपस, लोलिगो, सीपिया और नॉटीलस आदि बहुतायत से पाये जाते हैं। कशेरूकधारियों में मुख्य रूप से शार्क और अस्थिधारी मछलियों की अनेकों जातियाँ समुद्री कछुए, साँप और व्हेल आदि साधारणतः अधिक गहराई में नहीं जाते हैं, परन्तु पानी में श्वसन करने वाले जीव, जैसे मछलियाँ, पूरे क्षेत्र में विचरण करते हैं। टूना, सारडिन (Sardine) मैकरिल, हैरिंग (Herring) आदि छोटे आकार की मछलियाँ सदैव ऊपरी सतह पर रहती हैं। गहराई में रहने वाली मछलियाँ साधारणतः पार्श्व सम्पीडित और विचित्र शरीर

रचना वाली होती हैं। इनके रंग भी भूरे या लाल अथवा अत्यधिक चमकदार चाँदी के समान होते हैं।

विघटक (Decomposers)– इस क्षेत्र के प्रमुख विघटक जीवाणु (बैक्टीरिया) ही है। सम्भवतः कवक (Fungi) की कुछ जातियाँ भी विघटक (Decomposers) के रूप में सुप्रकाशित क्षेत्र में पाई जाती हैं।

टिप्पणी

2.5.4.2 (ख) अप्रकाशित क्षेत्र (Aphotic zone)

यह क्षेत्र पूर्णरूपेण अन्धकारमय है, अतः सौर ऊर्जा के अभाव में भोज्य पदार्थों का उत्पादन सम्भव नहीं होता है। इस क्षेत्र में उत्पादक अनुपस्थित रहते हैं, फिर भी अनेकों जन्तु सामुदायिक जीवन निर्वाह करते हैं। उत्पादकविहीन होने के कारण इस क्षेत्र का सामुदायिक जीवन अपूर्ण भी माना जा सकता है। अप्रकाशित क्षेत्र में उत्पादन नहीं होता है, फिर भी सुरक्षित व्यवस्था बनाये रखने में सक्षम है। सत्य तो यह है कि इस क्षेत्र में एक प्रकार से निरन्तर भोजन की वर्षा होती रहती है। प्रकाशित क्षेत्र के मृत जन्तु, दुर्घटना के फलस्वरूप टूटे अंग, और भोजन के उपरान्त बचे हुए भोजन के टुकड़े आदि निरन्तर अप्रकाशित क्षेत्र में ऊपर से गिरते रहते हैं।

उपभोक्ता (Consumers)– अप्रकाशित क्षेत्र का गम्भीर, शान्त, अन्धकारमय वातावरण और अथाह जल–राशि का भारी दबाव जन्तुओं की शारीरिक रचना और घनत्व दोनों पर प्रभाव डालता है। सुप्रकाशित क्षेत्र की तुलना में यहाँ जीवन शान्त और धीमी गति से चलता है और जन्तुओं की संख्या भी अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। अगाध सागरीय क्षेत्र में जन्तुओं का वितरण और घनत्व नितलीय क्षेत्र से भी अपेक्षाकृत कम है। नितलीय क्षेत्र में जन्तुओं की तुलनात्मक अधिकता का कारण भोजन ही है। प्रकाशित क्षेत्र से नीचे गिरते समय भोजन गहरे सागरीय जल स्तम्भ को पार करता हुआ अन्त में वितलीय जल के नीचे तलहटी पर जमा होता रहता है। स्पष्ट हैं कि गहरे सागरीय जन्तुओं के लिए जल में तैरता भोजन पकड़ना अधिक कठिन हैं, जबकि वितलीय क्षेत्र में इसका सुरक्षित भण्डार सदैव बना रहता है।

अप्रकाशित क्षेत्र के उपभोक्ताओं में मछलियाँ ही प्रमुख हैं, जिनमें अनेकों शारीरिक विशिष्टताएँ होती है। साधारणतः इनके शरीर पिचके या दबे हुए, कोमल, चमकीले, सलेटी रंग के होते हैं। आँखे या तो होती ही नहीं हैं अथवा अत्यधिक टेलिस्कोप्ड (Telescoped) या दूरबीनी प्रकार की होती हैं, जिनके साथ प्रायः प्रकाश उत्पादक अंग भी होते है, जिनसे घोर अन्धकार में तेज प्रकाश उत्पन्न करके भोजन अथवा शिकार को पकड़ा जा सकता है। इनके जबड़े और मुँह आश्चर्यजनक रूप से अधिक खुलने की क्षमता रखते हैं, जिनसे मछली अपने से कई गुना बड़ा शिकार आसानी से पकड़कर हड़प कर जाती है। गहरे समुद्र की गल्फर, गेस्ट्रोस्टोमस, एन्गलर (लालटेन मछली), स्वेलोअर आदि मछलियों के अच्छे उदाहरण हैं।

टिप्पणी

निरन्तर भोजन वर्षा से तलहटी कार्बनिक पदार्थों से बनी दलदली मिट्टी से निर्मित तल का रूप धारण कर लेती है। इस मिट्टी में अनेक मृत जीवों के अंग, खोल (Shell), सूक्ष्म जीव जैसे फोरमिनीफेरा, रेडियोलेरिया तथा पौधों आदि का पोषण मिश्रण होता रहता हैं। अतः तलहटी में अनेकों माँसाहारी वितलीय मछलियाँ क्रस्टेशिया (Crustacea) और इकाइनोडर्मेटा (Echinodermata) में समुद्री खीरा (Sea Cucumber), समुद्री लिली (Sea Lilly), ब्रिटिल स्टार (Brittle Star), समुद्री अर्चिन्स (Sea Urchins), के अतिरिक्त सीलेन्ट्रेटा के समुद्री ऐनीमोन आदि स्थायी रूप से निवास करते हैं। इनमें से कुछ प्राणी नितलीय क्षेत्र की तलहटी में जहाँ–तहाँ पाई जाने वाली खाँइयों में भी निवास करते हैं। अन्धकारमय गहरे समुद्र का शान्त और गम्भीर वातावरण लगभग स्थयी भौतिक परिस्थितियों का विशाल क्षेत्र और जन्तुओं के लिए आदर्श निवास स्थल होने के कारण विविध प्रकार के असंख्य जन्तुओं का विशाल सामुदायिक निवास भी हैं।

विघटक (Decomposers)– अप्रकाशित क्षेत्र में मुख्य विघटक के रूप में कवक की अनेकों जातियाँ पायी जाती हैं, परन्तु कुछ जीवाणु भी सक्रिय पाये गये है।

2.5.5 वेलापवर्ती प्रदेश का जीवजात (Pelagic Biota)

वेलापवर्ती क्षेत्र में पाये जाने वाले सभी जन्तुओं में एक खास गुण मिलता है, वह यह है कि वे सदैव तैरते रहते है। तैरने की क्षमता इस क्षेत्र में पाये जाने वाले विभिन्न जन्तुओं में विभिन्न प्रकार से अपनायी गयी हैं।

बड़े प्राणी सक्रिय प्रचलन द्वारा वेलापवर्ती क्षेत्र में बने रहते हैं। जेट के समान (Jet propulsion) बहिस्तल पर बने रहने की एक सामान्य विधि है। इस विधि में जल शरीर के अन्दर लिया जाता हैं तथा फिर बलपूर्वक जेट के रूप बाहार निकाला जाता है, जिससे प्राणी आगे की ओर या ऊपर की ओर बढ़ता (Propel) हैं। इस क्रिया के उदाहरण हाइड्रोमेड्यूसी, साइफोमेड्यूसी, साइफोनोफोसी की तरह घण्टियाँ एवं केफेलोपॉड्स में पाये जाते हैं। पृष्ठ तनाव (Surface tension) भी छोटे वेलापवर्ती प्राणियों को डूबने से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

वेलापवर्ती प्राणियों को निम्न दो मुख्य समूहों में विभक्त किया जाता है–

1. प्लवक या प्लैंकटॉन (Plankton), तथा
2. तरणक या नेक्टॉन (Nekton)।

2.5.5.1 प्लवक या प्लैंकटॉन (Plankton)

'प्लैंकटॉन' (प्लवक) शब्द की उत्पत्ति एक यूनानी शब्द से हुई हैं जिसका अर्थ होता हैं– 'घूमने वाला'।

विक्टर हेन्सन (Victor Henson) ने सर्वप्रथम प्लैंकटॉन शब्द का गठन किया था। हैन्सन ने इस शब्द का प्रयोग उन प्राणियों के लिए किया था, जिनमे तैरने की क्षमता अत्यन्त कम या बिल्कुल नहीं होती। समुद्री पारिस्थितिकी में

टिप्पणी

प्लैंकटॉन बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। प्लैंकटोनिक जीव, जन्तुप्लैंकटॉन (Zooplankton) या पादपप्लैंकटॉन (Phytoplankton) हो सकते हैं। जन्तु प्लैंकटॉन में प्रोटोजोआ, जैसे– रेडियोलेरिया, फोरेमिनिफेरा, जेली मत्स्य, कई प्रकार के कृमि (Worms) और कई छोटे–छोटे क्रस्टेशियन एवं मौलस्का सदस्य सम्मिलित हैं। पादप प्लैंकटॉन में डायटम्स (Diatoms) सम्मिलित हैं। प्लैंकटॉन के वितरण एवं बाहुल्यता के आधार पर कॉमर्शियल मछलियों, जो प्लैंकटॉन पर निर्भर रहती हैं, के पाये जाने के स्थान तथा मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है।

ये प्राणी ज्वार एवं तरंगों पर निर्भर रहते हैं तथा इधर–उधर लुढ़कते रहते हैं। इनमें स्वयं प्रचलन क्षमता नहीं होती। जैलीफिश तथा पाइरोसोम्स को छोड़कर ये प्रायः सूक्ष्मदर्शी होते हैं।

इन प्राणियों के वर्गीकरण को दो वर्गों में विभाजित किया गया है– पादप–प्लवक (Phytoplankton) एवं प्राणि–प्लवक (Zooplankton)। पादप–प्लवक में डायटम्स, डाइनोफ्लेजीलेटस्, कॉक्सिलिथिफोर्स इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

प्राणि– प्लवक में प्रोटोजोअन्स, जेली फिशेज (Jelly Fishes), साइफोनोफोरा (Siphonophora) कई कृमियाँ, छोटे क्रस्टेशियन्स, एम्फिपॉड्स (Amphipods), मौलस्कस एवं वितलस्थ तथा तरणक–प्राणियों के अण्डे व डिम्भक सम्मिलित होते हैं। जीवन–चक्र में प्लवक–अवस्था की अवधि के आधार पर प्राणि प्लवकों को दो समूहों में बाँटा जाता है– (i) अस्थायी प्लवक या डिम्भ प्लवक (Meroplankton), एवं (ii) स्थायी प्लवक या पूर्ण प्लवक (Holoplankton)। डिम्भ–प्लवक का नेरिटांचली या तटीय जल में आधिक्य होता हैं। इनमें बैन्थिक (Benthic) अकशेरूकियों की परिवर्धन – अवस्थाएँ, मछलियों के अण्डे तथा डिम्भक सम्मिलित होते हैं। दूसरी ओर, पूर्ण प्लवक में महासागरी प्लवक सम्मिलित होते हैं तथा जैसा कि उनके नाम से ज्ञात होता हैं, वे महासागरीय प्रदेश में पाये जाते हैं तथा सम्पूर्ण जीवन प्लवक रूप में ही व्यतीत करते हैं। गहरे समुद्रों के 'नीले जल' के निर्माण में इनका योगदान होता है। पूर्ण प्लवक में स्पंज, ब्रायोजोअन्स, फोरोनिड्स को छोड़कर अन्य सभी संघ (Phylum) निरूपित हैं। महासागरी प्लवक के कुछ अभिलाक्षणिक स्थायी सदस्य वेलेला (Valella), इआन्थिना (Ianthina), केलेनस (Calanus), सेफ्राइना (Saphrina), आदि हैं।

परिमाण के आधार पर प्लवक तीन प्रकार के होते हैं (i) गुरू–प्लवक (Macroplankton)– जो प्रायः नग्न आँखों से देखे जा सकते हैं, जैसे जेलीफिश सेजाइटा (Sagitta) आदि; (ii) लघु–प्लवक (Microplankton) – जिनमें लगभग एक मिमी बड़े प्राणी होते हैं, जैसे– क्रस्टेशिया के कुछ डिम्भक; एवं (iii) अणु–प्लवक (Nanoplankton), जिनमें केवल 3 से 60 माइक्रॉन तक की साइज वाले प्राणी सम्मिलित होते हैं, जैसे– डायटम्स, डाइनोफ्लेजीलेट्स, प्रोटोजोअन्स एवं बैक्टीरिया आदि।

प्लैंकटॉन्स में साधारणतया सभी धीरे–धीरे तैरने तथा बहने वाले जीव सम्मिलित होते हैं। उनमें से अधिकतर सूक्ष्म जीव और समुद्री सतह पर पाये जाने

वाले होते हैं, जैसे कि प्रकाशित (फोटिक) क्षेत्र में कुछ प्लैंकटॉन्स में प्रचलन तन्त्र उपस्थित होते हैं।

टिप्पणी

2.5.5.2 प्लवकीय अनुकूलन (Planktonic Adaptations)

प्लवकीय (Planktonic) जीवधारियों को वेलापवर्ती प्रदेश (Pelagic Zone) में रहने के कारण तैरने की समस्या सबसे प्रबल होती है। अतः इनको तैरते हुए रहने के लिए कुछ विशेष प्रकार के अनुकूलन (Adaptations) अपनाने पड़ते हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. साधारणतः प्लवक (Planktons) का शरीर आकार में छोटा होता है।
2. कुछ प्लवक विशेष प्रकार के शूल (Spines) आदि धारण करते हैं, जिससे कि तैरने (Float) में सहायता मिलती है। जैसे– कीटोसिरोस (Chaetoceros) के शरीर पर चार लम्बे शूल (Spines) होते हैं, जो इसके चारों कोनों पर होते हैं और इसे जल में तैरने में सहायक हैं।
3. कुछ जन्तुओं का आकार तुर्क के समान (Spindle Shaped) हो जाता है। ये अपने आपको इस प्रकार रखते हैं कि इनकी स्थिति क्षैतिज (Horizontal) रूप में बनी रहे और यह तैरते रहें।
4. कुछ प्लवक (Planktons) थैलेनुमा (Bag like) तथा कुछ फीते के समान (Ribbon shaped) हो जाते हैं।
5. कुछ डायटम (Diatoms) अपनी कोशिकाओं में तेल आदि धारण करते हैं, जिससे उनका घनत्व कम हो जाता है।
6. प्लवक में ज्यादातर चलने की क्षमता बहुत कम विकसित होती हैं इससे भी उनको तैरने में सहायत मिलती है तथा ये ज्यादातर सीलिया (Cilia) आदि की सहायता से गति कर सकते हैं।

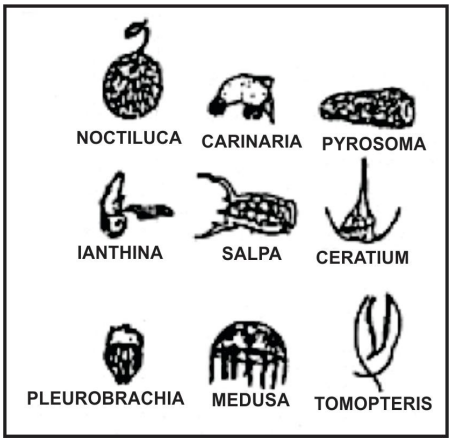

चित्र क्र. 2.8: वेलापवर्ती क्षेत्र के मुख्य प्राणी
(Important animals of Pelagic Zone)

टिप्पणी

7. प्लवकीय (Planktonic) जातियों का कंकाल (skeleton) हल्का तथा पतला होता हैं।
8. कुछ प्रकार की शैवाल (Algae) एककोशिकीय होती हैं। ये श्रृंखला (Chain) बनाकर अपने आपको तैरता हुआ रखती है।
9. कुछ प्लवक जैसे फायसेलिया (Physalia) हवा के थैलों (prematophore) की सहायता से तैरती रहती है।

2.5.5.3 तरणक या नेकटॉन (Nekton)

ये तीव्र गति से तैरने वाले जन्तु होते हैं तथा अपने स्थान को इच्छा के अनुसार बदल सकते हैं। इसलिए सभी नेकटॉन प्राणी होते हैं तथा वे सभी प्रकार के जल की सतह तथा तल में पाये जाते हैं। स्क्विड्स (Squids), मछलियाँ, व्हेल तथा वे सभी समुद्री प्राणी, जो तैरकर लम्बी दूरी तक जा सकते हैं, इसी श्रेणी में आते हैं।

इस श्रेणी में तैरने वाले प्राणी सम्मिलित होते हैं जो बहिस्तल पर पाये जाते हैं। इसमें दक्ष चलनांग उपस्थित होते हैं जिनकी सहायता से ये लहरों एवं ज्वार के विरूद्ध तैरने में समर्थ होते हैं। प्रचलन – अनुकूलन (Locomotory adaptations) कई क्रियाओं में, जैसे– शिकार का पीछा करने में, शत्रुओं से बचने में एवं लम्बी अप्रवास करने में इनकी उपयोगिता होती है। धारा–रेखित (Stream-lined) शरीर, सुविकसित पेशियाँ, तन्त्रिका तन्त्र एवं दृष्टि ज्ञान तरणक प्राणियों के महत्वपूर्ण अनुकूलन हैं जो उनकी जीवन–प्रणाली के लिए उपयोगी हैं। तरणक–प्राणी गहरे जल में भी मिलते हैं।

2.5.5.4 तरणकीय जीवजात (Nektonic Biota)

ये वेलापवर्ती प्रदेश (Pelagic) भाग में पाये जाने वाले प्राणी हैं। ये प्राणी तैरने योग्य हैं। ये ज्यादातर सतह के समीप तथा गहराई तक मिलते हैं, इनमें प्रचलन अंग विकसित होते हैं, जिनकी सहायता से ये तरंगों तथा ज्वार – भाटा आदि के विरूद्ध तैर सकते हैं उदाहरणार्थ सीपी, घोंघे आदि मौलस्का वर्ग के जन्तु, प्रॉन, झींगा आदि क्रस्टेशिया (Crustaceans), मछलियाँ, कछुए (Turtles), समुद्री पक्षी तथा कुछ स्तनधारी जन्तु मिलकर समुद्री तरणक (Nekton) कहलाते हैं। समुद्री पक्षी ज्यादा तेज तैरने वाली तथा सतह पर रहने वाली होती है। गहराई में पाये जाने वाले नेक्टॉन मुख्यतः तल के समीप रहने वाली मछलियाँ होती है। इनकी मुख्य विशेषताएँ ये हैं कि अधिकतर एक जगह एकत्रित होकर रहती हैं तथा निश्चित प्रकार के ऋतु आवास (Seasonal migrations) प्रदर्शित करती हैं। ये मछलियाँ ज्यादातर प्लवक को ही भोजन के रूप में काम मे लेती हैं। ये मछलियाँ तथा अन्य समुद्री पक्षी नेरिटांचली क्षेत्र में अधिक मिलते हैं।

2.5.5.5 तरणकीय अनुकूलन (Nektonic Adaptations)

1. इनका सबसे अधिक विकसित अनुकूलन चलनांगों का अत्यधिक विकसित होना हैं।
2. इनका मांसपेशी तन्त्र (Musculature) काफी विकसित होता है।

टिप्पणी

3. तन्त्रिका तन्त्र तथा प्रकाशग्राही अंग सुविकसित होते हैं। वास्तव में व्हेंल जैसी कुछ मछलियाँ, जो कि तरणकीय क्षेत्र के अन्दर आते हैं, काफी तेज तैरने वाले होते हैं।

2.6 नितलस्थ क्षेत्र की पारिस्थितिकी (Ecology of Benthic Zone)

नितलस्थ क्षेत्र के अन्तर्गत समुद्र के तल वाला सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित हैं। प्रकाश के भेदन के आधार पर यह दो मुख्य क्षेत्रों में विभक्त होता हैं –

1. वेलांचली क्षेत्र (Littoral zone), तथा
2. गहरे समुद्री क्षेत्र (Deep – sea zone)

2.6.1 वेलांचली क्षेत्र (Littoral zone)

यह प्रकाशित क्षेत्र होता है तथा उच्च ज्वार–स्तर से लेकर तट से लगभग 250 मील की दूरी तक एवं 200 मीटर की गहराई तक फैला रहता है। इस क्षेत्र को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है–

1. सुवेलांचली क्षेत्र (Eulittoral zone), तथा
2. उपवेलांचली क्षेत्र (Sublittoral zone)।

2.6.1.1 सुवेलांचली क्षेत्र (Eulittoral zone)

यह भाग समुद्र की सतह से 40 मीटर तक की गहराई पर होता है। इसमें पेड़–पौधे सबसे अधिक होते हैं। इसके अन्तर्गत अन्तरज्वारीय क्षेत्र (Intertidal Zone) होता है, जो ज्वार तथा भाट (High and Low tides) की सीमा के अन्तर्गत आता है। इस भाग में भौतिक तथा रासायनिक अवस्थाएँ बदलती रहती है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः समुद्री किनारे वाला आवास (Habitat) आता है, तथा इसमें मुख्यतः तीन प्रकार के आवास स्थल (Habitats) होते हैं–

(अ) चट्टानी (Rocky)

(ब) रेतीला (Sandy)

(क) दलदली तह (Muddy shores)

इस क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना ज्वार तथा भाट्‌ा है। इस क्षेत्र में रहने वाले प्राणियों में संरचनात्मक रूपान्तरण के अधःस्तर (Substratum) के प्रकार, गहराई, जलवायु, भोजन की उपलब्धता आदि से प्रभावित है तथा उनके जीवन के तरीके भिन्न–भिन्न हैं। कुछ रेंगने वाले प्राणी जैसे ऐनेलिड्स तथा मौलस्का (Molluscs) एवं जमीन में धँसकर रहने वाले (Burrowing Animals), कुछ एक ही जगह रहने वाले (Sessile) होते हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले सभी प्राणी आकस्मिक होने वाले परिवर्तनों के लिए बहुत संवेदनशील होते हैं।

टिप्पणी

सुवेलांचली क्षेत्र (Eulittoral zone) को जैविक तथा पारिस्थितिकी रूप से चार क्षेत्रों में बाँटा गया हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. **स्प्रेइंग क्षेत्र (Spraying Zone)**– यह समुद्री तट के समीप वाला भाग हैं इसमें रहने वाले प्राणी तरंगों के सीधे सम्पर्क में आते हैं।
2. **लिट्टोराइन क्षेत्र (Littorine Zone)**– यह वास्तविक अन्तरज्वारीय क्षेत्र हैं (अर्थात ज्वार तथा भाटा के मध्य का स्थान), इसके अन्तर्गत रेतीला तथा कीचड़ भरा आवास आता हैं।
3. **बेलनॉइड क्षेत्र (Balanoid Zone)**– इसके क्षेत्र में बार्नेकल (Barnacles) पाए जाते हैं अतः इसे बैलेनॉइड क्षेत्र (Balanoid zone) कहते हैं।
4. **सबटाइडल क्षेत्र (Subtidal Zone)**– इसके अन्तर्गत सुवेलांचली क्षेत्र (Eulittoral zone) का चट्टानी आवास स्थल (Habitat) आता है। यहाँ तापक्रम सबसे अधिक होता है।

2.6.1.2 सुवेलांचली क्षेत्र का जीवजात (Biota of Eulittoral Zone)

(अ) चट्टानी (Rocky)– इस भाग में पाये जाने वाले जन्तुओं में काफी भिन्नताएँ होती हैं, क्योंकि इसकी रचना कई प्रकार के आवास–स्थलों से मिलकर हुई है। इस भाग में पाये जाने वाले विशेष जन्तु तथा उनकी संरचनात्मक विशेषताएँ (Features) निम्न प्रकार हैं–

उदाहरणार्थ, समुद्री ऐनीमोन (Sea-anemones), स्पंज (Sponges), हाइड्रॉइड्स (Hydroids), ट्यूनिकेट (Tunicates) इत्यादि। ये अधिकतर एक जगह रहने वाले (Sessile) होते हैं। ये जन्तु अधिकतर छोटे–छोटे पत्थरों, चट्टानों इत्यादि से चिपके रहते हैं। ये पत्थर समुद्री लहरों द्वारा आसानी से एक जगह से दूसरी जगह विस्थापित किये जा सकते हैं। अतः इस क्षेत्र में पाये जाने वाले जन्तुओं को बिछुड़ने तथा धक्कों आदि से रक्षा के साधन अपनाने पड़ते हैं।

चट्टानी तट, चट्टानी कुण्ड (Pool or Lake) एक स्पष्ट आवास होते हैं। इनका परिमाण बहुत परिवर्तनशील होता है। उच्च–ज्वार स्तर से ऊपर स्थित कुण्डों को छोड़कर, इन कुण्डों में प्रत्येक में उच्च–ज्वार के समय समुद्री जल का पूर्ण आदान–प्रदान हो जाता है। चट्टानी कुण्ड दो प्रकार के होते हैं– (i) उथले (ii) एवं गहरे। (i) उथले चट्टानी कुण्डों में निम्न ज्वार (Low tide) के समय लवणता परिवर्तित होती है, जबकि गहरे चट्टानी कुण्डों में लवणता के परिवर्तन लगभग नही के बराबर होती है। स्पंज, हाइड्राइड्स, समुद्री ऐनीमोज, ब्यूयोजोअन्स एवं ट्यूनिकेट्स चट्टानी कुण्डो में पाये जाने वाले सामान्य जन्तु हैं क्रस्टेशियन्स की समष्टि भी इन कुण्डों में पायी जाती हैं, जैसे, प्लवक – कॉपेपॉड्स केप्रैला (Caprella) नामक एम्फिपॉड, लिएण्डर (Leander) एवं हिप्पोलाइट (Hippolyte), जैसे झींगा (Prawns); होमेरस (Homarus) एवं पेलिन्यूरस (Palinurus) जैसे लोबस्टर्स (Lobsters) तथा ड्रोमिया वल्गेरिस (Dromia vulgaris),

टिप्पणी

इनेकस (Inachus) जैसे केकड़े (Crabs)। घोंघे, लिम्पेट्स (Limpets) एवं मसेल्स (Mussels) भी चट्टानी कुण्डों में मिलते हैं। एईओलिस (Aeolis) तथा डॉरिस (Doris) जैसे सक्रिय नितलस्थ (Benthic) प्राणी भी कभी–कभी इन कुण्डों में पाये जा सकते हैं।

(ब) निमग्न (Submerged)– चट्टानें जो कभी भी अनावहित नहीं होती – जो चट्टाने निरन्तर निमग्न रहती हैं, उन पर आतपक (Isolation), लवणता एवं तापक्रम – जैसे कारक परिवर्तित नहीं होते, लेकिन ये लहरों की क्रिया द्वारा प्रभावित होती रहती हैं। इनके प्राणिजात (Fauna) में प्रायः स्थानबद्ध प्राणी होते हैं। जैसे– माइटिलस (Mytilus), पेरिविंकल (Periwinkle), हेलिओटिस (Haliotes), पटेला (Patella), सिप्रिया (Cypraea) जैसे मौलस्क (Molluscs), फ्लस्ट्रैला (Flustrella), मेम्ब्रेनिपोरा (Membranipora) जैसे पॉलीजोअन्स, हेलिकॉण्ड्रिया (Halichondria), ग्रेन्शिया (Grantia) एवं साइकन (Sycon) जैसे स्पंज (Sponge); ट्यूब्यूलेरिया (Tubularia), गोर्गोनिया (Gorgonia), प्लूम्यूलेरिया (Plumularia) एवं गोर्गोनिड्स जैसे हाइड्राइड पॉलिप्स; सेबेलेरिया (Seballaria), नेरीस (Nereis), कीटोप्टेरस एवं यूनिस (Eunice) जैसी पॉलीकीटी कृमियाँ, लिनियस (Lineus) एवं यूपोलिया (Eupolia) जैसे नीमटाईन्स; बॉट्राइलस (Botryllus), हर्डमानिया (Herdmania) एवं एसीडिया (Ascidia) जैसे एसीडियन्स (Ascidians); कार्सिनस (Carcinus) जैसे क्रस्टेशियन्स; ऑफिओथ्रिक्स (Ophiothrix), एस्टेराइना (Asterina) एकाइनस एस्क्यूलेण्टस (Echinus esculentus) जैसे एकाइनोडर्म्स (Echinoderms)।

(स) चट्टानें जो कभी उच्च ज्वार के समय भी जल में डूबती नहीं हैं– इन चट्टानों पर आतपन (Isolation); तापक्रम, तरंग–क्रियाओं (Wave-actions) आदि कारकों का प्रभाव पड़ता है। इन चट्टानों के समुद्र से दूर वाले फलक (Face) पर बार्नेकल्स या मौलस्क्स जैसे कुछ ही प्राणी रहते हैं, परन्तु समुद्र की ओर वाले फलक पर कई प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं।

(द) समुद्र–तट की वे चट्टानें तथा अबद्ध पत्थर जो लहरों के प्रभाव से हटते नहीं– जो चट्टानें या पत्थर रेत या दलदल में मजबूती से चिपके नहीं रहते, उनके नीचे जल का परिसंचरण होता है। इसलिए इन स्थानों में रहने वाले प्राणियों को आतपन, शुष्कता (Desiccation) और जलीय धारा के विरूद्ध सुरक्षित होना पड़ता है। चट्टानों एवं पत्थरों का स्थायित्व उनके उपनिवेश (Colonization) के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। इन पत्थरों के नीचे वाले सुरक्षित निकेत (Niche) में उच्च जल – निशान के पास कई क्रस्टेशियन्स पाए जाते हैं। तट के नीचे की ओर लिनीयस (Lineus) जैसे नेमटाइन एवं यूकेलिया (Eucalia) जैसे ऐनेलिड्स पाए जाते हैं जो ज्वार द्वारा लाये गये जल से घुलते रहते हैं। निम्न जल – निशान के स्तर में नेरीस (Nereis), कार्सिनस (Carcinus); हर्मिट क्रैब, तारा – मीन (Star Fish) समुद्री अर्चिन की कई जातियाँ तथा कई प्रकारकी तटीय मछलियाँ

पाई जाती हैं। इन चट्टानों की दरारों एवं खडड्ों में कई ऐनेलिड–कृमियाँ, क्रस्टेशियन्स समुद्री ककड़ी इत्यादि पाये जाते हैं।

टिप्पणी

(त) रेत एवं दलदल में डूबी हुई चट्टाने– इन चट्टानों की सतह पर धूलकणों का अपघर्षी (Abrasive) प्रभाव होता रहता है। यह प्रभाव तरंग गति द्वारा धूलकणों के बहाव के कारण होता है।

(थ) रेतीला (Sandy)– इस आवासस्थल (Habitat) में रहने वाले जन्तु चिपकने के लिए कोई विशेष सतह नहीं रखते हैं, न इन्हें चिपकने की जरूरत होती हैं, क्योंकि अधिकतर यहाँ वातावरण एक जैसा बना रहता है। यहाँ पर थोडी शैवाल (Algae) व अधिकतर बिल बनाकर रहने वाले जन्तु होते हैं, जैसे कृमि, क्रस्टेशियन्स, मौलस्क (Worms, Crustaceans, Molluscs) आदि।

रेतीले तटों के प्राणिजात – दूसरे प्रकार का सुवेलांचली आवास रेतीला– तट होता है। रेतीला तट तरंगों द्वारा अपरदित पदार्थो के निक्षेपण (Deposition) से बनता है। निवास के लिए रेतीला तट एकसमान (Uniform) परिस्थितियाँ प्रस्तुत करता है। साथ ही यह संलग्न के लिए कोई तल प्रदान नहीं करता। इसलिए समुद्री अपतृण (Sea-weeds) एवं स्थानबद्ध प्राणियों का इन तटों पर अभाव होता हैं।

रेत विभिन्न साइज के काणों का मिश्रण होता है। बड़े काणों में पुलिन (Beach) के ऊपरी भाग में एकत्रित हो जाने की प्रवृत्ति होती है, इसलिए प्राणियों के लिए बिल बनाकर रहना सम्भव नहीं रहता है। कमजोर प्राणियों के लिए बड़े साइज के कणों की गति हानिकारक होती है। इसलिए इस आवास में कम ही प्राणि पाये जाते है। दूसरी ओर, रेत – मिश्रित दलदली तलों पर प्राणिजात विशेष रूप में बड़ा होता है। तापक्रम, लवणता, सूर्यातप एवं शुष्कन जैसे कारक अन्तर ज्वारीय रेतीले तटों पर एकसमान रूप से प्रभाव डालते हैं।

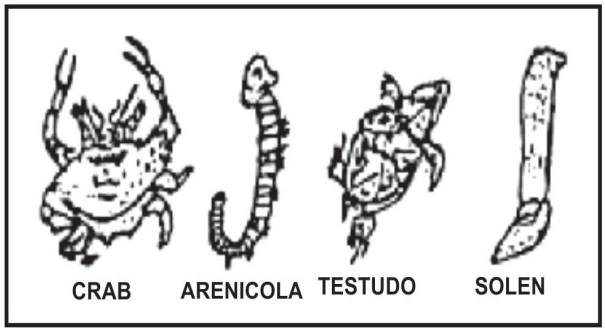

चित्र क्र. 2.9: रेतीले व दलदली तटों पर पाये जाने वाले कुछ प्राणी
(Some animals found at the sandy and muddy sea shore)

टिप्पणी

रेतीले तट के अधिकांश समुद्री प्राणि बिलकारी (Burrowing) होते है। इन आवासों के स्थायी निवासी संख्या में कम होते हैं। मुख्य निवासी निम्नलिखित हैं–

(i) ऐनेलिड कृमियाँ (Annelid Worms)– लेनिस (Lanice), पेक्टीनेरिया (Pactinaria), ऐरेनिकोला (Arenicola) एवं ग्लाइसेरा (Glycera)।

(ii) क्रस्टैशियन्स– कोपेपॉडस, एम्फिपॉड्स और केकड़े।

(iii) मौलस्कस, वीनस (Venus), डोनेक्स (Donax), सोलन (Solen), डेन्टेलियम (Dentalium) मैरिट्रिक्स (Meritrix), सिलिक्वा रेडिएटा (Siliqua radiata), टरिटेला (Turritella), म्यूरैक्स (Murex), नैटिका (Naitica), डोलाबेल (Dolabell), ऐप्लीसिया (Aplysia), ओंकीडियम (Onchidium) आदि।

(iv) एकाइनोडर्म्स– होलोथुरिया ऐट्रा (Holothuria atra), होलोथुरिया स्कैब्रा (H. Scabra), होलोथुरिय लुब्रिका (H. Lubrica) कुकुमेरिया (Cucumaria), साइनेप्टा (Synapta), थायोन (Thyone), तारामीन (Starfish), एस्टेराइना (Asterina), पेण्टासिरॉस (Pentaceros), ऐस्ट्रोपैक्टन (Astropecten), ऑफियोथ्रिक्स (Ophiothrix) एवं एकाइनोकार्डियम (Echinocardium)।

(v) प्रोटोकॉर्डेटस– एम्फिऑक्सस (Amphioxus) एवं हेमिकॉर्डेट – बैलेनोग्लोसस (Balanoglossus)। उपर्युक्त प्राणियों के अलावा कुछ मछलियाँ भी रेतीले तटों पर पाई जाती हैं।

(फ) कीचड़ी या दलदली तट (Muddy Shores)– इस प्रकार का सुवेलांचली आवास वेलासंगमों (Estuaries) के दलदली तट होते हैं। थल से समुद्र में बहने वाले जल के तलछट (Silt) के निक्षेपण से दलदली तटों का निर्माण होता हैं। दलदली तटों में रेतीले तटों की तरह विस्थापनशील अधःस्तर होते हैं। दलदली एवं रेतीले तटों के बीच कई प्रकार के अन्तराल (Intergradations) पाये जाते हैं। रेत एवं दलदल के प्राणि – जातों के बीच स्पष्ट सीमा नहीं बनाई जा सकती। ये तट वहाँ पाये जाते हैं, जहाँ तरंग क्रिया क्षीण हो। दलदल में कार्बनिक अंश अधिक होता है। इसलिए यह अधिक भोजन प्रदान करता हैं।

इस आवासस्थल (Habitat) में ज्यादातर रेतीले आवास – स्थल (Sandy Habitat) वाले जन्तु ही पाये जाते हैं। यहाँ ज्यादातर वेलासंगम (Estuaries) तथा नदियाँ आकर खुलती हैं, अतः यहाँ कार्बनिक पदार्थ (Organic Contents) ज्यादा होते है। इनमें निम्न जन्तु ज्यादातर मिलते हैं, जैसे एककोशिकीय जीव (Protozoans), निमेटोड्स, ऐनेलिड्स (Annelids), क्रस्टेशियन्स (Crustaceans) इत्यादि।

दलदली तटों पर पाये जाने वाले जन्तु हैं– प्रोटोजोअन्स, हेलिकॉण्ड्रिया (Halichondria) व हाइमेनिएसीडोन (Hymeniacedon) आदि जैसे स्पंज,

टिप्पणी

नीमेटोड्स; एरेनिकोला (Arenicola), फिल्लोडोस (Phyllodoce), नेफ्थीज (Nephthyes), नेरीस डाइवर्सिकलर (Nereies diversicolor) व एफ्रेडाइट (Aphrodite) जैसे एनेलिड्स कृत्रि, यूपोलोनिया (upogebia) व कैल्लिनेसाड्स (Callinassa) जैसे क्रस्टेशियन्स; कोरोफियम (Corophium) जैसे विलकारी एम्फीपॉड्स; माया (Mya), स्क्रोबिक्यूलेरिया (Scrobicularia), पिन्ना (Pinna) व टेल्लाइना (Tellina) जैसे बिलकारी बाइवेल्विया (Bivalvia); नासा (Nassa) जैसे दलदली घोंघे; एस्टीरियास (Asterias) जैसे एकाइनोडर्म्स; साइफनक्यूलिड्स एवं ऑसिओडा (Ocyoda) आदि के केंकडे।

2.6.1.3 सुवेलांचली क्षेत्र के प्राणियों में अनुकूलन (Adaptations of eulittoral zone animals)

(अ) चट्टानी आवास – स्थलीय प्राणी (Rock Habitating Animals)

इन जन्तुओं में चिपकने की क्षमता बहुत अधिक होती है। यहाँ रहने वाले जन्तु चिपकने के लिए भिन्न–भिन्न विधियाँ अपनाते हैं, जैसे समुद्री एनीमोन (Sea-anemones), पीडल डिस्क (Pedal Disc) की सहायता से चिपकते हैं तथा बहुत से बिलकारी पॉलीकीट (Tubiculous polychaetes) कैल्शियमयुक्त नलिका के द्वारा चिपकते हैं एवं ऐसीडियन्स (Ascidians) एक प्रकार के स्रावण (Secretion) की सहायता से चिपकते हैं। एक जगह रहने की आदत के कारण विभिन्न जन्तुओं में कुछ विशेष प्रकार के आकारिकीय परिवर्तन (Morphological changes) आ जाते हैं, जैसे–

1. मुँह तथा गुदा का एक सरल रेखा में आ जाना, जैसे– ऐसीडियन्स में।
2. चलनांगों का न होना, जैसे– माइटिलिस में।
3. संवेदी अंगों का अत्यन्त विकसित होना, जैसे– पॉलीकीट्स (Polychaetes) में।
4. जन्तुओं में मोटी कवच (Shell) का विकास, जैसे– ऐसीडियन्स में।
5. सीलिया की सहायता से भोजन ग्रहण करना।
6. अरीय सममिति का विकास।
7. जनन अधिकतर कलिका (Budding) द्वारा होना जैसे हाइड्राइड्स व ट्यूनिकेट्स (Hydroids – Tunicates) में।
8. प्रतिकूल परिस्थितियों में शीघ्र संकुचन की क्षमता जैसे – बैलेनस (Balanus) की सिरस – गति व टेरेबेला (Terebella) जैसे नली बिलकारी (Tubicolous) पॉलीकीट्स की स्पर्शक गतियाँ (Tentacular movements)।
9. दक्ष संवेदी अंगों का विकास जैसे– नली – निवासी पॉलीकीट्स में।
10. सूर्यातपन, वाष्पीकरण या शुष्कन से बचने के लिए मोटे चोल (Testa) का विकास, जैसे– ऐसिडियन्स में, बैलेनस (Balanus), कीलोनोबिया

टिप्पणी

(Chelonobia) व बाइवैल्व्ज (Bivalves) के खोल तथा नली–निवासी पॉलीकीट्स में नली।

11. कई स्थानबद्ध (Sedimentary) प्राणियों में मुकुलन (Budding) द्वारा जनन करने की तथा बड़ी कॉलोनी बनाने की क्षमता होती हैं। जैसे – हाइड्रॉइड्स एवं बॉट्राइलस (Botryllus) जैसे ट्यूनिकेट्स की कॉलोनी।
12. नग्न चट्टानों पर रहने वाले प्राणियों में सुरक्षा–साधनों का विकास होता हैं– जैसे– स्पंजों की कंटिकाएँ, सीलेण्ट्रेरेट्स की दंश कोशिकाएँ (Stinging cells) एवं घोघों की शूल–युक्त त्वचा ऐसे ही सुरक्षा साधनों के उत्तम उदाहरण हैं।
13. घर्षण (Friction) कम करने के लिए शरीर का चपटा होना, चट्टानी तट पर रहने वाले प्राणियों का अन्य सामान्य अनुकूलन होता हैं। जैसे– हेलिकॉण्ड्रिया (Halichondria), ऑस्केरेला (Oscarella) जैसे स्पंज, पत्ती रूपी फ्लस्ट्रेला (Flustrella) नामक पॉलीजोअन, बॉट्राइलस (Botryllus) नामक संयुक्त ट्यूनिकेट, अधरपृष्ठी चपटा शरीर वाला लिजिया (Ligia), आदि।

(ब) रेतीले तटों में निवास करने वाले प्राणि जात (Sand shore inhabiting animals)

इन जन्तुओं में चिपकने की क्षमता कम होती है। यहाँ पौधे आदि नहीं होते हैं। इनमें निम्नलिखित अनुकूलन (Adaptations) होते हैं –

1. लहरों से रक्षा करने के लिए बिल बनाकर (Tubicolous) रहने की आदत का विकसित होना। इस आदत के कारण ये लवणता (Salinity) तथा तापक्रम आदि के परिवर्तनों से बच जाते हैं।
2. अधिकांश प्राणी बिलकारी होते हैं, इस कारण इनमें खोदने वाले अंग पाये जाते हैं।
3. प्रायः इन प्राणियों में पक्ष्माभिकी – भरण –प्रणाली (Ciliary mode of feeding) पाई जाती है। कुछ प्राणी भोजन एकत्रित करने के लिए जल – धाराएँ उत्पन्न करते हैं, जिनके साथ समुद्री – जल में प्लवमान मलवा (Floating debris) इनके शरीर में प्रवेश करता है। ऐसे प्राणियों को निलम्बन – भरणक (Suspension feeders) कहते हैं। ऐसी भरण क्रिया (Feeding process) एम्फिऑक्सस एवं कई मौलस्क्स में पाई जाती हैं।
4. इन रेतीले प्राणियों में श्वसन समस्या को विभिन्न तरीकों द्वारा हल किया जाता है। जैसे – लेमिलीब्रेंक्स एवं एम्फिऑक्सस में पक्षमाभिकी – विधियों द्वारा शरीर में जल लाया जाता है जो श्वसन एवं पोषण दोनों में सहायक होता है। एकाइनोकार्डियम (Echinocardium) नामक समुद्री अर्चिन में शूलों की गति में जल – धाराओं का निर्माण होता है। ये धाराएँ चिमनी जैसी नली से प्रवाहित होती है। इन नली को विशेष प्रकार के नाल–पादों (Tube-feet) द्वारा खुला रखा जाता है। केकड़ों की श्वसन

टिप्पणी

वाहिकाओं में जल के प्रवेश की कई विधियाँ पाई जाती हैं। ऐल्ब्यूनिया (Albunea) में दो बड़ी श्रृंगिकाओं को एक साथ लाया जाता है। इससे एक नलिका बन जाती है। श्वसन के समय इसी नलिका से जल ग्रहण किया जाता है।

5. टेरेबेलिड्स (Terebelids), क्लोर्हीमिड्स (Chlorhaemids) जैसे बिलकारी पॉलीकीट्स में शूक कम विकसित होते हैं।
6. पतले कवच (Shells) तथा सुविकसित पाद (Foot) रेतीले मौलस्क्स का अभिलक्षण होता है। इसमें सूत्र–गुच्छ ग्रन्थि (Byssus Gland) अनुपस्थित होती है।
7. डोनेक्स (Donax), सोलन (Solen) के चपटे खोल इन प्राणियों को रेत में बिल बनाने में सहायता देते हैं।
8. नैटिका (Natica), नासा (Nassa) जैसे गैस्ट्रोपोड्स का पाद (Foot) फैला हुआ होता है। ऐसा पाद बिल बनाने में एवं विसर्पण (Creeping) में सहायक होता है।
9. साइफन का विकास रेतीले मौलस्कस का सामान्य लक्षण है।
10. समुद्री ऐनीमोन रेत में नलियाँ बनाते हैं जिनमें वे पूर्णतया छिप सकते हैं।
11. सड़े–गले (Decomposed) कार्बनिक पदार्थों पर भोजन के लिए निर्भर होना। उदाहरणार्थ बैलेनोग्लॉसस (Balanoglossus), एरेनिकोला (Arenicola), समुद्री कुकुम्बर (Sea Cucumber) इत्यादि।
12. यहाँ पाये जाने वाले सभी जन्तु करीब–करीब सुरक्षात्मक रंगित (Protectively coloured) होते हैं।

(स) दलदली तटों का प्राणिजात (Muddy Shores Habitating Animals)

1. ये जन्तु ज्यादातर नाजुक (Delicate) होते हैं।
2. इनमें माँसपेशियाँ (Musculature) बहुत कम विकसित होती हैं।
3. इनका कवच (Shell) बहुत भंगुर तथा पतला होता है। यह इन जन्तुओं का विशेष लक्षण (Characteristics) हैं।
4. बिल बनाकर रहने वाले द्विकपाटीय (Bivalves) जन्तुओं में पाद (Foot) काफी विकसित होता हैं, जैसे कि यूनियो (Unio) में। इन जानवरों में साइफन (Siphon) लम्बे होते हैं, जिनसे होकर भोजन और O_2 लाने वाली धाराएँ प्रवेश करती हैं और बाहर जाती है।
5. कीचड़ में रहने वाले जानवरों में आँखों का न होना या अल्प विकसित होना पाया जाता है।
6. कीचड़ में ज्यादातर ऑक्सीजन की कमी के कारण यहाँ पर कम प्राणी पाए जाते हैं।

टिप्पणी

2.6.1.4 उपवेलांचली क्षेत्र (Sublittoral zone)

यह भाग भाटा के स्थान (Low-tide) से 200 मीटर की गहराई तल फैला रहता है। इनका तल मिट्टी, कींचड़ तथा टूटे हुए मॉलस्कन कवच (Molluscan shell) से बना होता है। यहाँ भोजन तथा ऑक्सीजन एवं तापक्रम आदि सभी समुचित मात्रा में होने के कारण यहाँ प्राणिजात (Fauna) काफी अधिक है। 100 से 120 मीटर की गहराई तक मुख्यतः स्पंज, क्रस्टेशियन्स, तारामीन, समुद्री पैन, समुद्री अर्चिन (Sponges, Crustaceans, Star-Fishes, Sea-fans, Sea-pens, Sea-urchins) पाए जाते हैं तथा यहाँ पर कोरल या मूँगे (Corals) सबसे अधिक पाये जाते हैं।

प्राणिजात में निम्नलिखित प्राणी सम्मिलित होते हैं – विभिन्न फोरेमिनिफेरन्स, स्पंज, क्रस्टेशियन्स, कृमियाँ (Annelid worms), तारामीन, समुद्री अर्चिन, समुद्री ककड़ी (Sea-cucumber), ब्रिस्टल – स्टार (Bristle Star) क्रिनाइड्स, सी – फैन्स, सी–पैन्स साइफनक्यूलिड्स पैलीन्यूरस (Palinurus) नामक चट्टानी लोब्स्टर, हर्मिट क्रैब, स्पाइडर क्रैब डैण्टेलियम (Dentalium), नामक मौलस्क्स। प्रवाल भित्ति (Coral-reef) उपवेलांचली क्षेत्र में एक जैव आवास का निर्माण करती है। भित्ति वाले मुख्य प्रवाल मेड्रिपोरेरिया (Medriporaria) होते हैं। प्रवाल – समुदाय में प्रायः सभी नितलस्थ प्राणियों का निरूपण होता हैं, जैसे कृमियाँ, क्रस्टैशियन्स, मौलस्क्स, मछलियाँ मुख्य रूप से पाई जाती हैं। प्रवाल समुदाय की सामान्य मछलियाँ – कीटोडॉन (Chaetodon), होलोकेन्थस (Holocanthus), पोमासेण्ट्रिड्स (Pomacentrids), टेट्राडॉन (Tetradon), डायोडॉन (Diodon) आदि हैं।

इनके अतिरिक्त यहाँ पर समुद्री ऐनीमोन (Sea Anemones) तथा एक जगह एकत्रित हुए गैस्ट्रोपोड्स (Sessile Gastropods) आदि भी पाये जाते हैं।

2.6.1.5 अनुकूलन (Adaptations)

इन जन्तुओं में कोई विशेष अनुकूलन नहीं होते हैं। कुछ मूँगे (Corals) में सुरक्षात्मक अनुरंजन (Colouration) होते हैं, जबकि कुछ चेतावनी देने के लिए रंगीन (Protective and Warning Colouration) होते हैं, कुछ कोरल मछलियाँ जहरीली होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजन की अधिकता एवं प्रतिस्पर्धा (Competition) में कमी होना कोरल समुदायों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ हैं, अतः ये ज्यादा विकसित हैं।

कई मछलियों के दाँत संगलित (Fused) होते हैं जिनकी सहायता से वे प्रवाल की छोटी शाखाओं को तोड़ सकती है। कीटोपोड कृमियाँ भी कभी–कभी प्रवाल – भित्तियों में पाई जाती है। प्रतियोगिता का अभाव एवं भोजन का आधिक्य ही वेलांचली क्षेत्र में प्रवाल – समुदाय की प्रचुरता का मुख्य कारण हैं।

2.6.2 गहरे समुद्री क्षेत्र की पारिस्थितिकी (Ecology of Deep Sea zone)

टिप्पणी

गहरे समुद्री क्षेत्र – अपने अद्वितीय पारिस्थितिकीय लक्षणों के कारण गहरा समुद्र जीव – मण्डल में एक विशेष आवास का निर्माण करता है। बहुत से विशेषज्ञ इसे दो भागों में विभक्त करते हैं – ऊपर वाला आदि नितलस्थ (Archibenthic) तथा नीचे वाला वितलीय नितलस्थ (Abyssal Benthic) क्षेत्र।

(i) आदि नितलस्थ क्षेत्र – यह क्षेत्र उपवेलांचली क्षेत्र (अर्थात 200 मीटर की गहराई) से 800 या 1000 मीटर की गहराई तथा विस्तृत रहता है।

(ii) वितलीय नितलस्थ क्षेत्र – यह क्षेत्र आदि नितलस्थ क्षेत्र के नीचे वाले सम्पूर्ण नितलस्थ प्रदेश का बना होता है।

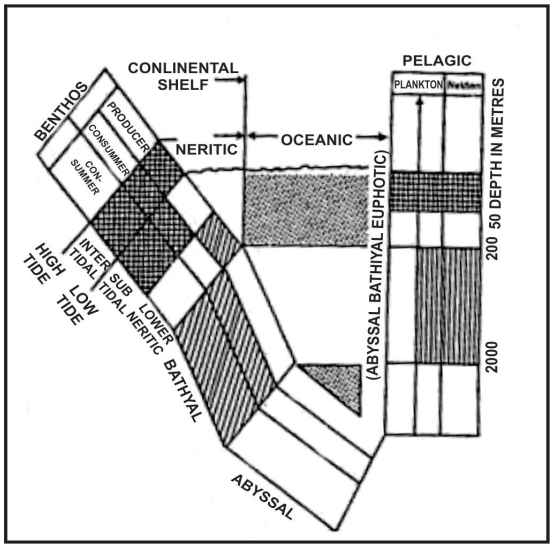

चित्र क्र. 2.10: समुद्र के क्षेत्रीकरण का ऑडीकाट में विभिन्न क्षेत्रों का प्रदर्शन (Representation of various zones of sea areas)

अपने अद्वितीय परिस्थितिकीय लक्षण के कारण गहरा समुद्र जीव मण्डल एक विशेष आवास का निर्माण करता है। यह क्षेत्र बैथाइल (Bathyal), एबाइसल (Abyssal), और हाडल या खाई (Hadal), क्षेत्रों में विभेदित रहता है।

गहरे समुद्र का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण अपरिवर्तनशीलता है। इस क्षेत्र में प्राणियों को समय का आभास नहीं होता। यहाँ न रात होती है न दिन। इन क्षेत्रों में ऐसा अंधेरा छाया रहता है जो कभी समाप्त नही होता तथा ऋतु परिवर्तन भी नही पाये जाते है। जीवन की सामान्य दशाओं में अत्यन्त दीनता होती है जिससे जीवन का सामान्य विकास प्रभावित होता है।

इस क्षेत्र में सूर्य का प्रकाश किसी भी रूप में नहीं पहुँच पाता है। तथा यहाँ कभी भी समाप्त न होने वाला अँधेरा हमेशा रहता है। परन्तु गहरे समुद्र में जलवायु सम्बन्धी परिवर्तन हो सकते हैं। जैसे अकस्मात होने वाले उपसमुद्रीय ज्वालामुखी सक्रियता आदि। यहाँ लवणता (Salinity) सामान्यतया स्थिर रहती हैं। यह भाग सूर्य के प्रकाश से दूर होने के कारण काफी ठण्डा होता है। तथा तापक्रम ऐबिसल तल (Abyssal plane) पर 2°C तथा अँधेरे क्षेत्र की ऊपरी सतह का तापक्रम 10°C तक हो सकता है। यह भी समुद्र का सबसे नीचे वाला भाग है, अतः यहाँ जल दबाव भी अधिक होता है। तथा भोजन भी बहुत कम मिलता है। इस प्रकार हम

टिप्पणी

देखते हैं कि इस क्षेत्र की अपनी कई विशेषताएँ हैं। ये सभी प्रभाव एक–तरफा प्रभाव (One-sideness) के रूप में वातावरण को विशिष्टता प्रदान करते हैं तथा ये एक–तरफा जैवावासकों को अपनी विशेष अवस्थाओ को एक पारिस्थितिकी सिद्धान्त (Ecological theory) के द्वारा समझाये जा सकते हैं। यह सिद्धान्त थाइनमैन–सिद्धान्त (Theinemann's principle) हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार जैवावासक जितना अधिक विशिष्ट एवं एक–तरफा या समांग (Monotonous) होगा, वहाँ उतनी ही कम स्पीशीज पायी जाएँगी, परन्तु प्रत्येक जाति के प्राणियों की संख्या बहुत अधिक होगी। संक्षेप में, अत्याधिक दबाव, न समाप्त होने वाला अँधेरा, कम तापक्रम, भोजन की कमी इत्यादि, गहरे समुद्र में पायी जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

2.6.2.1. गहरे सामुद्रिक अनुकूलन (Deep Sea Adaptations)

गहरे समुद्र में पाये जाने वाले प्राणियों में निम्नलिखित अनुकूलन पाये जाते हैं।

1. ये प्राणी आकार में छोटे होते हैं, जबकि इनकी तुलना सतह पर रहने वाले इनके सम्बन्धियों से की जाती है। उड़नमीन व शार्क (Chimaera and Shark Scapanorhynchus) अपवाद (Exceptions) हैं। इनका आकार छोटा होना वातावरण में भोजन की कमी का कारण हो सकता है।
2. ये प्राणी कमजोर तथा नाजुक होते हैं, जैसे इडिकैन्थस (Idicanthus), क्योंकि गहराई में पानी की धाराओं की अनुपस्थिति होती है। ये ज्यादातर पार्श्व सम्पीडित होते हैं, जैसे बासोगिगैज (Bassogigas)। यहाँ कैल्शियम की कमी होने के कारण इनके कंकाल कोमल होते हैं।
3. कई प्राणी बड़े–बड़े नाजुक वृन्त (Stalk) धारण करते हैं, जिनसे ये समुद्र की सतह पर पाई जाने वाले ऊज (Ooze-characteristic of ocean floor) में धँसे रहते हैं। उदाहरणार्थ – सिलिकेट के कंकाल वाली स्पंज व ऐन्टिडोन (Siliceous Fragile Deep sea sponge, Hexactinellida and Antedon)।
4. गहरे समुद्र में रहने वाली मछलियों की पूँछ चाबुकनुमा हो जाती है, जैसे – उड़नमीन (Chimaera)।
5. ये प्राणी ज्यादातर विशेष प्रकार के रंगों को धारण करते हैं। लाल रंग सबसे ज्यादा प्रभावी (Dominant) रहता है। इसके अलावा नीले, काले, गहरे, भूरे रंग भी अनेक जन्तुओं में पाये जाते हैं।

टिप्पणी

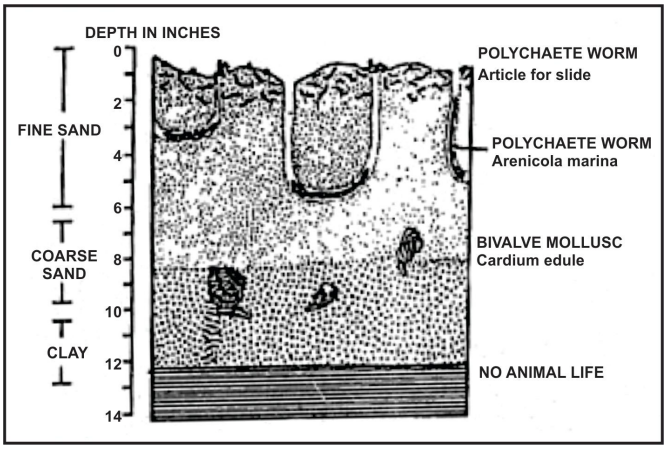

चित्र क्र. 2.11: रेतीले तट का भाग जिसमें जन्तुओं का उर्ध्वाधर अनुक्षेत्र व वर्गीकरण दिखाया गया है (V.S. of a part of sandy sea shore area showing vertical distribution of animals)

6. गहराई में रहने वाली मछलियों का शरीर चपटा (Laterally compressed) होता है, जैसे Deep sea Shark, Chlamydoselachus and the ribbon-like fishes, Reglecus and Trachyptenus मुख्य हैं।
7. ये प्राणी ज्यादातर शिकारी (Predatory) होते हैं, क्योंकि गहरे समुद्र में पौधे वगैरह अनुपस्थित होते हैं। हालाँकि सतह और सतह से नीचे उपस्थित भोजन पर भी ये निर्भर करते हैं, परन्तु यह उनके लिए बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध हो पाता हैं, क्योंकि बीच में ही इस भोजन को नीचे पहुँचने से पहले अन्य जन्तु खा जाते हैं।
8. ये प्राणी शिकारी (Predatory) होने के कारण इनमें मुँह चौड़े, दाँत काफी मजबूत व आमाशय बड़ा होता है, जैसे Saccopharynx।
9. **जीव संदीप्ति (Bioluminescence)**– गहरे समुद्री वातावरण में प्रकाश की अनुपस्थिति होने के कारण ये जन्तु अपने आप प्रकाश उत्पन्न करते हैं, जिसे जीव – संदीप्ति (Bioluminescence) कहते हैं। इससे इन प्राणियों के मुख्यतः दो कार्य पूरे होते हैं – (i) विपरीत लिंगीय (Opposite sex) जन्तुओं को आपस में पहचानने के काम आता है। (ii) ये प्रकाश उत्पादक अंग ज्यादातर मुँह के आस–पास या पार्श्व (Lateral side) में उदर के समीप होते हैं, जिनसे इनके शिकार प्रकाश देखकर इनकी ओर आकर्षित होते हैं। फलस्वरूप इन को शिकार आसानी से प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ फोटोस्टोमियास (Photostomias)।
10. इन क्षेत्र (zone) की मछलियों में पार्श्वीय रेखा तन्त्र (Lateral line system) काफी अच्छी तरह विकसित होता है।
11. इन प्राणियों की म्यूकस (Mucus) पैदा करने वाली ग्रन्थियाँ भी विशिष्टता प्रदान करती हैं।

टिप्पणी

12. इन जन्तुओं का प्रकाशग्राही अंग – आँखे या तो बहुत अधिक विकसित होती हैं, जैसे गिग्नैटयुरा (Gignatura) या अनुपस्थित होती हैं, जैसे – कुछ केकडे (Crabs) तथा पेक्टेन (Pecten)।
13. इन जन्तुओं को देखने के लिए प्रकाश की कमी होने के कारण अपने आप में से कुछ विशेष प्रकार के तन्तु विकसित होते हैं, जैसे गहरे समुद्रीय क्रस्टेशियन (Deep sea crustaceans) तथा मछलियाँ इनकी सहायता से अपने वातावरण में होने वाले विचलन को पहचान लेते हैं।

उदाहरणार्थ– मुन्निप्सि लोंगिकॉर्निस (Munnipsis longicornis), गहरे समुद्रीय क्रस्टेशियन्स (Crustaceans), एरिस्टिस बैथिप्टेरोसिस (Aristaes bathypterosis-fish from south pacific) तथा स्टाइलोफोरस पैराडोक्सस (Stylophorus paradoxus) इत्यादि।

2.7 एफोटिक क्षेत्र (Aphotic Zone)

वितलीय या ऐबीसल आवास (Abyssal Habitat)

इस क्षेत्र में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता है।

2.7.1 ऐबीसल आवास की विशेषताएँ (Characteristics of Abyssal Habitat)

1. इस क्षेत्र में प्रकाश की पूर्णरूप से अनुपस्थिति के कारण समुद्री अधःस्तर पर अन्धकार रहता है। यह विशेषता है, जो पृथ्वी पर कहीं नही पाई जाती है।
2. परिवर्तनशील ऋतु एवं मौसम नहीं होते हैं।
3. सूर्य के प्रकाश से दूर होने के कारण पानी ठण्डा होता है। तापक्रम उपरी अन्धकार सतह पर 10°C से ऐबीसल सतह तक 1°C तक होता हैं।
4. ऊपरी सतह से नीचे की ओर जाने पर जल का दबाव धीरे–धीरे बढ़ता जाता है। इस प्रकार समुद्र के अति गहरे भागों में दाब समुद्र की सतह की तुलना में करीब एक हजार गुना अधिक होता है।
5. ऐबीसल जल में CO_2 की अधिक मात्रा होने से $CaCO_3$ की सान्द्रता कम होती है तथा pH निष्क्रिय होता है। इस प्रकार समुद्र की गहराई में रहने वाले जन्तुओं में लिटोरल के निकट सम्बन्धी स्पीशीज की अपेक्षा कंकाल में कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) के पतले कवच होते हैं या अनुपस्थित होते हैं।

चित्र. क्र. 2.12: गहरे समुद्र में रहने वाली ऐन्गलर मछली जिसके मुख के उपर सवृन्त संदीप्तिशील लालटेन पाया जाता है (Angler fish found in deep sea, At the surface of its mouth, stalked luminescent Lantern is found)

टिप्पणी

6. प्रकाश की अनुपस्थिति जन्तुओं को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। इनके पूरे शरीर पर रंग एक सा होता है। स्पर्शक अंग (Tentac structures) अति विकसित होते है। समुद्री अर्चिन (Sea-Urchin) के काँटे, क्रस्टेशिया की लम्बी एन्टेनी (Antennae), मछलियों के बारबल्स (Barbels) एवं पंख (Fin-rays) तथा त्वचा स्पर्शक अंग के रूप में विकसित हो जाते है। आँखे या तो अविकसित होती हैं या बिल्कुल नहीं होतीं। बहुत से जन्तुओं में दूरदर्शीय (Telescopic) आँखे होती है।
7. वितलीय (Abyssal) क्षेत्र में जीवसंख्या कम होती है। जीवसंख्या का घनत्व कम होना तथा प्रकाश की कमी होने के कारण एक ही जाति के नर और मादा का समीप आना काफी कठिन हो जाता है। वर्टीब्रेट्स में ऐन्गलर मछली (Angler Fish) का द्विलिंगी होना विचित्र है। मादा बडी होती है तथा इनमें सामान्य छड़ तथा प्रलोभन (Rod and Bait) के साधन उपलब्ध होते हैं। नर छोटे होते हैं तथा प्रजनन ऋतु में मादा की त्वचा को दाँतों से पकड़ते हैं और चिपके रहते हैं।
8. वितलीय प्राणी जात का विशेष गुण जैव प्रकाश (Bioluminescence) है । कुछ थलीय एवं स्वच्छ जलीय जीवों में भी प्रकाश अंग होते हैं, किन्तु यह प्रक्रम समुद्र से ज्यादा सामान्य है। जैव प्रकाश (Bioluminescence) की इस प्रक्रिया से जन्तु अपने दुश्मन से बचता है। कुछ मछलियाँ, जैसे – ऐन्गलर मछली के मुख – भाग में एक वृन्त पर लालटेन (Lantern) होती हैं (चित्र 2.12) ।
9. इस क्षेत्र की मछलियों में मुँह अधिकतर बड़े होते हैं। इस प्रकार ये माँसाहारियों की तरह खाओ और खाने दो का नियम अपनाती हैं।

2.8 वेलासंगम या इस्चुराइन जल (Estuarine water)

वेलासंगम या इस्चुरी (Estuary) एक नदी का मुख है, जहाँ ज्वार द्वारा समुद्री एवं नदी द्वारा लाया गया स्वच्छ जल मिलता है। इस वातावरण का दूसरा लक्षण तीव्र धाराएँ हैं। लवणता तथा अन्य अवस्थाएँ स्वच्छ एवं समुद्री जल के मध्यवर्ती होती हैं। इस वातावरण में उपस्थित सभी जीव समुद्र से विकसित होते हैं, हालांकि अर्द्ध–जलीय (Semi-aquatic) घटक, जैसे – कच्छ घास (Marsh Grass), स्तनधारी आदि थलीय एवं स्वच्छजलीय जीवों (Biota) से उत्पन्न हुए हैं। समुद्री एवं स्वच्छ जलीय आवास की अपेक्षा वेलासंगम (Estuarime) जल क्षेत्र उपजाऊ होते हैं।

इस क्षेत्र में निम्न प्रमुख गुण होते हैं –

1. **लवणता (Estrueal)**– खारे क्षेत्र (Brakish zone) की बनावट हमेशा परिवर्तनशील रहती है। उदाहरण के लिए उच्च ज्वार पर उच्चतम लवणता तथा निम्न ज्वार तथा तेज वर्षा के समय स्वच्छ जलीय क्षेत्र बढ़ जाता है।

टिप्पणी

इस प्रकार लवणता के परिवर्तन से उन जन्तुओं के निर्वहन (Colony) को कठिनाई होती है जो किसी दूसरे आवास में नहीं मिलते।

2. **खनिज सान्द्रता (Mineral concentration)**– उस पानी में, जहाँ घुले हुए पदार्थो की सान्द्रता स्थिर नहीं होती, वहाँ के रहने वाले जन्तुओं को दो समस्याओं का मुकाबला करना पड़ता है। पहली तो यह कि उन्हें परासरण क्रिया को नियंत्रित करना होता है। दूसरी यह कि उन्हें कुछ विशेष खनिजों के प्रति अनुकूलित होना पड़ता है।

3. **परासरणता (Osmocity)**– कई समुद्री जन्तु जैसे इकाइनोडर्मेटा, सिफैलोपोडा, मौलस्का, सीलेन्टरेटा और कई ऐनेलिड्स में परासरण दाब (Osmotic pressure) को नियन्त्रण करने की क्षमता सीमित होती है। ये स्पीशीज और परासरण दाब के सूक्ष्म परिवर्तन को सहन कर सकती है तथा इन्हें स्टेनोहेलाइन (Stenohaline) कहते हैं। जो स्पीशीज परासरणी परिवर्तनों को सहन कर सकते हैं, उन्हें यूरीहेलाइन (Euryhaline) कहते हैं, जैसे कोरल, ऑयस्टर, केकड़े, पॉलीकीट (नेरीस) आदि क्रस्टेशियन्स से स्पाइडर केकड़ा चट्टानी तथा रेतीले तट पर ही रहता है, जबकि दूसरी जाति तटीय केंकड़ा वेलासंगम या इस्चुराइन पानी में दूर तक प्रचलन यात्रा करते हुए लगभग स्वच्छ जल तक पहुँच जाता है। वर्टीब्रेटस में बहुत सी समुद्री मछलियाँ वेलासंगम या इस्चुराइन जल में जीवित नहीं रह सकती, क्योंकि ये स्टीनोहेलाइन (Stenohaline) होती है। कुछ मछलियाँ, जैसे फ्लोण्डर (Pleuronectes flesus) वेलासंगम या इस्चुरी से नदी की ओर ऊपर तक काफी दूरी तक तैरकर जा सकती है और स्वच्छ पानी में भी जीवित रह सकती है। प्रवासीय (Migratory) जातियाँ, जैसे – साल्मन (Salmon), एवं सर्प मछली (Eel) अधिकतर वयस्क जीवन नदी में व्यतीत करती है तथा प्रजनन के लिए समुद्र में लौटती हैं।

4. **धाराएँ (Currents)**– अलग–अलग वेलासंगम या इस्चुरी में जल की धाराओं की गति भी अलग–अलग होती है। यह कई कारणों से प्रभावित होती है, जिसमें से महत्वपूर्ण कारक ज्वार की दिशा, नदी में प्रवाहित पानी की मात्रा, नदी–मुख की स्थलाकृति (Topography) आदि है। जन्तु चाहे कितनी ही परासरणी दाब सहन करने की क्षमता रखते हों, वे फिर भी अपने आपको तभी संस्थापित कर सकते हैं, यदि उनमें धाराओं के वेग को सहन करने की शक्ति हो।

5. **तापक्रम परिवर्तन (Temperature changes)**– पानी में लगातार उथल–पुथल होने से वेलासंगम या इस्चुराइन पानी में अल्पकालीन तापक्रम परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन उतने ही अधिक मात्रा में होते हैं, जितने कि लिटोराइन जन्तुओं को सहन करने पड़ते है। समुद्री जीव जिनमें तापक्रम सहनशीलता कम होती है, स्टीनोथर्मल (Stenothermal) कॉलोनी बनाने में सफल नहीं होते।

टिप्पणी

6. **जीवीय कारक (Biotic factor)**– बड़ी झीलों के समान ही समुद्र के उत्पादक – पौधे मुख्यतः पादप प्लवक ही होते हैं। यद्यपि कुछ तटीय क्षेत्रों में बड़े समुद्री शैवाल (Sea-Algae) की अधिकता (Dominant) पायी जाती है। परिणामतः जहाँ प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumers) अधिकतर जन्तु – प्लवक (Zooplankton) ही होते हैं, वहीं मध्यम आकार के समुद्री जन्तु या तो प्लवक – भक्षी होते हैं अथवा अपरद भक्षी (Detritus feeder), जबकि बड़े प्राणी मुख्यतः माँसाहारी होते हैं।

   वेलासंगमों में जलीय पौधे कम होते हैं। जो पौधे पाए जाते हैं उनमें भी परिवर्तनशील लवणता को सहन करने की क्षमता के अनुसार स्पष्ट अनुक्षेत्र वर्गीकरण (Zonation) पाया जाता है। दलदली आवासों में प्रारूपिक पादप–पोषी वनस्पति (Herbivorous) समूह पाया जाता है जो शाकाहारी मौलस्क्स के उपनिवेशक का आधार होता है। जेंकस मेरिटाइमस (Jancus maritimus), सीरक (Seruch) तथा कार्ड घास वेलासंगमों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

   समुद्र में समुद्री ऐनीमोन, समुद्री पैन्जी (Sea-Pansy) आदि स्थावर (Sessile or Fixed) जन्तु समुदाय भी प्रमुख रूप से पाये जाते हैं जो कि पौधों के सदृश दिखाई देते हैं समुद्री तल में इनका अनुक्षेत्रीय वर्गीकरण उतना ही स्पष्ट हैं, जितना की पहाड़ों पर पौधों का। कई समुद्री जीव–जातियों में सहभोजिता (Commensalism) तथा सहोपकारिता (Mutualism) भी पाई जाती है। नेरिटांचल के स्थावर समुद्री जीव तथा सभी नितल जीवों के जीवन–चक्र में साधारणतः तलप्लावी (Pelagic) अवस्था अवश्य होती है। इसलिए समुदाय की दृष्टि से तलप्लावी जीवन क्षेत्रीय समुदायों का एक हिस्सा हैं, न कि स्वतन्त्र सामुदायिक इकाई।

7. **जल का गंदलापन (Turbidity)**– वेलासंगमों में जल की आविलता (Turbidity) एक अन्य लक्षण होता है। नदियों द्वारा भारी परिमाण में गाद (Silt) लाया जाता है। वेलासंगमों में इस गाद का अधिकतम निक्षेपण शीत ऋतु में होता है। इसका कई जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विशेषतः निस्यन्द पोषकों (Filter - feeders) पर, जो अवसादों द्वारा अवरूद्ध (Choke) हो जाते है। आविलता के कारण प्रकाश का प्रवेश भी कम हो जाता है और ऐसी स्थिति में अधिकांश जलीय पौधे जीवित नहीं रह पाते। इसलिए शाकाहारियों के भोजन में अत्याधिक कमी हो जाती है।

2.8.1 वेलासंगमों का वर्गीकरण (Classification of Estuarines)

वेलासंगमों का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया जाता है (अ) भू–आकृति विज्ञान (Geomorphology); (ब) जल परिसंचरण तथा स्तरण; एवं (स) तन्त्र ऊर्जिकी (Energetics)।

(अ) स्थलाकृति (Topography) के आधार पर वेलासंगामों को निम्नलिखित चार उपविभागों में विभक्त किया गया है।

टिप्पणी

(i) **जलमग्न नदी घाटियाँ (Drowned River Valleys)**– ये अपेक्षाकृत उथले एवं चौड़े तटीय मैदान की तट रेखाओं के साथ फैली रहती हैं, जैसे – अमेरिका की चैसापीक खाड़ी।

(ii) **फियोर्ड (Fiord) प्रकार के वेलासंगम** – ये गहरे 'यू' के आकार के गड्ढे (Indentures) होते हैं जो हिम – नदी (Glaciers) की क्रिया से खोदे जाते है। इनके मुखों पर प्रायः उथले सिल्ल (Sill) होते हैं। ऐसे सिल्ल अन्तस्थ हिमनदीय निक्षेपण द्वारा बनते हैं। उदाहरण – नार्वे के प्रसिद्ध फियार्ड ।

(iii) **रोधिका निर्मित वेलासंगम (Bar-built Estuaries)**– ये उथले कछार (Basin) होते हैं, जो प्रायः निम्न ज्वार पर खुल जाते है। ये रोधिक टापुओं द्वारा घिरे रहते हैं जो स्थान–स्थान पर अन्तर्गमों (Inlets) द्वारा अलग–अलग (Discontinuous) हो जाते है। उदाहरणार्थः उत्तरी कैरोलाइना के 'आउटर बैंक्स' के पीछे वाले 'साउण्ड्स' तथा जोर्जिया (Georgia) समुद्री टापुओं के किनारों वाले 'लवण–कच्छ वेलासंगम'।

(iv) **विवर्तनिक प्रक्रियाओं द्वारा बने वेलासंगम (Estuaries formed by Tectonic Activities)**– ये तटीय गड्ढे होते हैं जो भूवैज्ञानिक गन्दगी या स्थानीय भूमि अवतलन (Local subsidence) द्वारा बनते हैं। इनमें प्रायः अलवण जल का भारी अन्तर्वाह (Inflow) होता है। उदाहरणार्थ – सेन फ्रांसिस्को की खाड़ी।

(ब) जल–राशि के आधार पर, वेलासंगमों को नम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जाता है।

(i) **अत्यन्त स्तरित (Highly Stratified) या 'साल्ट वेज' वेलासंगम** – जहाँ नदी के जल का बहाव ज्वारीय–क्रिया से अधिक शक्तिशाली हो, वहाँ भारी लवणयुक्त जल के ऊपर स्तर के रूप में अलवण–जल बहता है। इस प्रकार अलवण जल एक खाई या खाँच (Wedge) बना देता है जो तल के साथ–साथ नदी की ओर काफी दूर तक फैला रहता है। इस प्रकार स्तरित वेलासंगम में एक 'लवणता स्तर' (Salinity profile) पाया जाएगा, जिसमें एक 'हेलोक्लाइन' (Hellocline) होगी। मिस्सिसिप्पी नदी का मुहांना 'साल्ट वेज' प्रकार के वेलासंगम का उदाहरण है।

(ii) **आंशिक रूप से मिश्रित या साधारण स्तरित वेलासंगम** – जहाँ नदी के अलवण जल का प्रवाह ज्वारीय प्रवाह के लगभग समान हो, वहाँ जल उछलना (Turbulence) मुख्य मिश्रणकारी कारक होता है। यह विक्षोभ ज्वारीय क्रिया की आवर्तिता के कारण उत्पन्न होता है। उदाहरण – वैसापीक खाड़ी।

(iii) **पूर्णतया मिश्रित या उग्र रूप में समांगी वेलासंगम** – जब ज्वारीय क्रिया अत्याधिक तीव्र (Dominant) हो, तो जल ऊपर से नीचे तक

पूर्ण रूप से मिश्रित हो जाता है। और लवणता अपेक्षाकृत अधिक हो जाती है। जहाँ बड़ीं नदियाँ न हों, ऐसी तट रेखा पर स्थित रोधिका – निर्मित या अन्य वेलासंगम इसके उदाहरण है।

टिप्पणी

(स) पारिस्थितिकीम तन्त्र ऊर्जिकी के आधार पर एच. टी. ओडम (H.T. Odum, 1969) एवं उनके साथियों ने वेलासंगमों को निम्न पाँच श्रेणियों में बाँटा है।

(i) विस्तृत अक्षांशीय परिसर के भौतिक रूप में प्रतिबलित तन्त्र – ऐसे तन्त्र उच्च ऊर्जा तरंगों, बलशाली ज्वारीय धाराएँ, उच्च तापक्रम प्रघात या लवणता प्रघात, रात्रि के समय कम ऑक्सीजन की उपलब्धता इत्यादि से प्रभावित होते हैं। चट्टानी समुद्री उग्र, अन्तराज्वारीय चट्टाने, रेतीले पुलीन, उच्च वेग वाली ज्वारीय वाहिकाएँ, अवासादी डेल्टा, अतिलवणीय लैगून इसी प्रकार के उदाहरण होते हैं। पश्चिमी उत्तरी अमेरिका के ठण्डे, चट्टानी तट प्राकृतिक रूप से प्रतिबलित तन्त्रों के अच्छे उदाहरण हैं। मानव – निर्मित नहरें, जो भिन्न भौतिक प्रकृति वाले जलों को जोड़ती हैं, इस श्रेणी के अच्छे उदाहरण है। ऐसे तन्त्रों में, सामान्यतया एक स्थान पर स्पीशीज विभिन्नता कम होती हैं क्योंकि गम्भीरतापूर्वक दोलनशील भौतिक प्रतिबलों के प्रति अनुकूलित होने से जिन कार्यिकाय लक्षणों की आवश्यकता होती हैं, वे कुछ ही जातियाँ जुटा पाती हैं।

(ii) हिम–प्रतिबलयुक्त प्राकृतिक आर्कटिका पारिस्थितिकीय तन्त्र – ऐसे वेलासंगमों के उदाहरण है – हिम नदीय फियोर्ड (Fiord), शीत ऋतु में हिम–प्रतिबलित अन्तराज्वारीय (Intertidal) प्रदेश तथा आर्कटिका तटों पर हिमाच्छादित समुदाय, जिनमें प्रकाश एवं निम्न तापक्रम अत्यन्त सीमाकारी होते हैं। स्वयं हिम का भौतिक 'दबाव' (Crunch) भी सीमाकारी होता है।

(iii) मौसमी परिवर्तन वाले प्राकृतिक शीतोष्ण तटीय पारिस्थितिकीय तन्त्र – इनमें शीतोष्ण उत्तरी अमेरिका, यूरोप व जापान के तट एवं कई वेलासंगम शामिल है। प्राथमिक उत्पादकता तथा जनन एवं व्यवहार सम्बन्धी क्रियाओं में नियमित, मौसमी स्पन्द (Pulses) इन वेलासंगमों का मुख्य अभिलक्षण। शीतोष्ण वेलासंगमों के महत्वपूर्ण आवास है – ज्वारीय कुण्ड, लवणीय कच्छ, ईल – घास वाले तल, ऑयस्टर भित्तियाँ एवं दलदली आवास, जिनमें क्लैम्स (Clams), एक प्रकार के मौलस्का एव समुद्री कृमियो की घनी समष्टियाँ निवास करती है।

(iv) **अत्यन्त विभिन्नता वाले प्राकृतिक शीतोष्ण तटीय पारिस्थितिकी तन्त्र** – अभिलाक्षणिक रूप से इन पारिस्थितिकीय तन्त्रों में तापक्रम, लवणता एवं अन्य भौतिक कारकों के प्रतिबल कम होते हैं, ताकि विशेष अनुकूलन की ऊर्जा, विभिन्नता एवं संगठनात्मक व्यवहार में

टिप्पणी

प्रयुक्त हो सके। इसके उपतन्त्रों में स्थायी उपतटीय (Inshore) प्लवक समुदाय एवं जलमग्न ऊष्णकटिबन्धीय चरागाह (Meadow) सम्मिलित है। प्लवक – समुदायों में प्रमुख प्राणी डाइनोफ्लैजीलेट्स (Dinoflagellates) होते हैं जबकि शाद्वल के टर्टल–घास (Turtle Grass) एवं नितलस्य शैवाल अभिलाक्षणिक होते हैं। प्रवाल – भित्ति प्रायः 'सजीव' – रोधी टापुओं (Barrier Islands) का निर्माण करती हैं जो उष्णकटिबन्धीय वेलासंगमों के लिए 'अर्ध अहाते' बनाती हैं।

(v) मानव साहचर्य में उभरते हुए नये तन्त्र – मानव निर्मित अपशिष्टों (Waste) के प्रदूषण (Pollution) को कम करने के लिए कुछ वेलासंगम अनुकूलित हो जाते है। इन वेलासंगमों को एक अलग श्रेणी में मानना उपयुक्त होगा। ऐसे वेलासंगमों में विघटन होने लायक (Degradable) अपशिष्टों को सम्भालने की विभिन्न क्षमता होती है और यह क्षमता उनके साइज, प्रतिरूप, वेलासंगम के प्रकार एवं जलवायुवीय क्षेत्र पर निर्भर करती है। मानव–निर्मित सभी परिवर्तनों में वेलासंगम के जल को रोकने अर्थात इसके जल का समुद्र से अलग होने के प्रभाव सर्वाधिक होते हैं।

2.8.2 वेलासंगमों के प्राणीजात (Fauna of Estuarine)

वेलासंगमों में पाये जाने वाले जन्तुओं को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। (अ) विचरणशील जन्तु (Stragglers), (ब) प्रवासी जन्तु (Migratory forms); तथा (स) पूर्ण वेलासंगमी जन्तु (True Estuarine forms)

(अ) विचरणशील जन्तु (Stragglers) – इस समूह में अलवण–जल के वे पौधें व जन्तु आते हैं जिसमें विस्तृत परिसर (Wide Range) में होने वाले लवणता–परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता होती है (पृथुलवणी प्राणी) । इसी प्रकार कुछ समुद्री प्राणी, जिसमें निम्न लवणता सहन करने की क्षमता होती हैं, कभी – कभी इस क्षेत्र में आ जाते हैं, जैसे तटीय केकड़ा कार्सिनस (Carcinus), गैमेरस (Gammarus) की कई स्पीशीज इत्यादी।

(ब) प्रवासी जन्तु (Migratory forms)– इस श्रेणी में मछलियाँ, केकड़े एवं झींगा (Prawns) सम्मिति होते हैं। ये प्राणी अस्थायी समष्टि बनाते है। ये प्रवासी जन्तु अपने जीवन का कुछ भाग वेलासंगमें में व्यतीत करते है। ये या तो डिम्भक – प्रावस्थाओं या जननी –प्रवास्थाओं के समय वेलासंगमों में आ जाते हैं। ये जन्तु लम्बे समय तक निम्न लवणता सहन नहीं कर सकते। सालमॉन (Salmon) तथा सर्पमीन (Eel) प्रवासी मत्स्यों के सामान्य उदाहरण है, जो अपने जीवन का अधिकांश भाग नदियों में बिताते हैं। ये केवल जनन के लिए समुद्र में आते हैं। सालमोन तथा सर्पमीनों में जल – सन्तुलन की समस्या को भिन्न तरीकों द्वारा हल किया जाता हैं। सर्पमीन में जल–सन्तुलन के लिए अवपंक (Slime) का अपारगम्य बाहय आवरण होता है, जबकि सालमॉन में शल्क लगभग अपारगम्य स्तर बनाते हैं। फिर भी प्राणी जब नदी में रहता है तो शरीर में

जल एण्डोस्मोसिस (Endosmosis) प्रवेश करता है। अधिक जल (Excess water) को वृक्कों द्वारा बाहर निकाला जाता है।

(स) पूर्ण वेलासंगमी जन्तु (True Estuarine forms)– वे वेलासंगमों के स्थायी निवासी होते हैं। ये अपना सम्पूर्ण जीवन यहाँ व्यतीत करते हैं, जैसे – ऑयस्टर्स (Oyster), नेरीस डाइवर्सिकलर (Nereis diversicolor), गैमेरस (Gammarus), कार्डियम (Cardium), सोलन (Solen), एरेनिकोला (Arenicola), हाउण्डर (Hounder) आदि।

टिप्पणी

2.8.3 वेलासंगम – निवासियों के अनुकूलन

वेलासंगम की परिवर्तनशील परिस्थितियाँ, विशेषकर लवणता, प्राणियों के जीवन के लिए गम्भीर समस्या है। ऐसी परिस्थितियों में रहने के लिए सम्बन्धित समुदायों को अनुकूलन विकसित करने पड़ते है। कुछ महत्वपूर्ण अनुकूलन इस प्रकार है।

जहाँ जल में विलीन पदार्थों की सान्द्रता परिवर्तित होती है, प्राणियों को मुख्यतया दो समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(1) परिवर्तनशील बाहय परासरण – दाब के अनुसार शरीर में प्रवेश करने या बाहर निकलने वाले तरल के परिणाम को नियन्त्रित किया जाता है। (जल सन्तुलन)

(2) कुछ विशेष खनिजों की अनुपस्थिति या उपस्थिति सहन करने के लिए उन्हें अनुकूलित होना पड़ता है। जब लवणता परिवर्तित होती है तो प्राणियों की अनुक्रियाएँ निम्न प्रकार की हो सकती है –

(i) शीघ्र मृत्यु, (ii) स्वांगविच्छेदन (Autotomy) अर्थात स्वयं प्राणी द्वारा किसी अंग को विच्छेदित करना, जैसा कि कुछ कृमियों, आथ्रोपोड्स या तारामीन में होता है, (iii) प्रचण्ड सकुंचन (Contraction) या अनियमित गतियाँ, (iv) अनुवर्तन (Tropism), (v) असाधारण कार्यिकीय क्रियाएँ, (vi) शारीरिक द्रव एवं बाहय माध्यम के बीच साम्यावस्था का स्थापन, तथा (vii) वातावरण के प्रति पारिस्थितिकी अनुकूलन (Acclimatization) की प्राप्ति।

प्राणी जल–सन्तुलन के लिए विभिन्न क्षमताएं विकसित कर सकते हैं, परन्तु वे वेलासंगमों में तब तक स्थापित नहीं हो सकेंगे, जब तक कि उनमें धारा–प्रवाह का सामना करने की क्षमता विकसित न हो। इसके अपवाद केवल बिलकारी जन्तु होते हैं, जो निमग्न होने पर पूर्ण सुरक्षित हो जाते हैं। वेलासंगमी प्राणियों की सन्तति उस समय तक आवश्यक रूप में अण्डों में ही रहती है, जब तक कि उनमें धाराओं के विरूद्ध तैरने की क्षमता विकसित न हो जाये। इस तथ्य की सत्यता इसमें भी जाहिर होती है कि अपने निकट सम्बन्धी समुद्री प्राणियों की अपेक्षा वेलासंगमी प्राणियों के अण्डों में अधिक योग (Yolk) होता है।

2.9 मैंग्रोव साहचर्य (Mangrove Association)

टिप्पणी

मैंग्रोव साहचर्य एक विशेष प्रकार का वेलासंगमी आवास होता है जो उष्णकटिबन्ध में पाया जाता है। मैंग्रोव में अभिलाक्षणिक रूप में स्तम्भाकार मूलों (Stiff roots) वाले पेड़ पाये जाते हैं, जैसे ऐविसिन्निया (Avicinnia), सोन्नोरेशिया (Sonneratia) एवं ऐजिसिरास (Ageiceros)। इन पेड़ों द्वारा एकत्रित हुए कीचड़ में समुद्री अलवण जलीय एवं थलीय प्राणियों का एक विचित्र समुच्चय पाया जाता है। मैंग्रोव में केकड़े बहुत संख्या में पाये जाते हैं। लेमिलिब्रेन्क्स में सोलेनिडी (Solenidae), पेसेमोविडी (Passamobidae) एवं कार्डियम (Cardium) प्रमुख होते हैं। इन आवासों में पाई जाने वाली सामान्य मछलियाँ पेरिओफ्थेल्मस (Periophthalmus), म्यूगिल (Mugil) एवं प्लूरोनेक्टस (Pleuronectus) होती हैं। वेलासंगमों की मैंग्रोव वनस्पति में रेप्टाइल्स, पक्षी तथा स्तनधारी भी भोजन के लिए प्रायः आते रहते हैं, क्योंकि इन वेलासंगमों के उथलेपन के कारण निम्न ज्वार के समय इनके निवास अनावरित हो जाते हैं और थलीय परभक्षियों द्वारा ये सरलता से पकड़ लिये जाते हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

16 समुद्र के वेलापवर्ती क्षेत्र (Pelagic zone) को कितने भागो में बाँटा गया है?

(अ) 1 (ब) 2

(क) 3 (ड) 4

17 यूफोटिक जोन की गहराई (Depth) कितनी होती हैं?

(अ) 100–200 मीटर (ब) 200–300 मीटर

(क) 300–400 मीटर (ड) तल में

18 वितलीय क्षेत्र (Abyssal zone) को ''विश्व की सबसे बड़ी पारिस्थितिकी इकाई'' किस वैज्ञानिक ने कहा था?

(अ) एल्टन (1949) (ब) जार्ज एल. क्लार्क (1667)

(क) मैकनॉटन (1973) (ड) ब्रुन, (11957)

19 जीवों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समुद्री क्षेत्र होता हैं।

(अ) 100 मीटर गहराई तक (ब) 300 मीटर गहराई तक

(क) 500 मीटर गहराई तक (ड) 1000मीटर गहराई तक

20 सूर्य एवं चन्द्रमा के खिंचाव के कारण समुद्र में क्या क्रिया होती हैं?

(अ) बफर विलयन (ब) लवणीयता

(क) ज्वार (ड) भाटा

21 जीव संदीप्ति किस आवास के प्राणियों में पाई जाती हैं?

(अ) समुद्र (ब) गहरे समुद्री

(क) स्वच्छ जल (ड) उपर्युक्त सभी में

22 समुद्री वेलांचली क्षेत्र को जैविक तथा पारिस्थितिकी दृष्टि से कितने क्षेत्रों में विभाजित किया गया हैं?

(अ) 3 (ब) 4

(क) 5 (ड) 6

23 महासागरीय क्षेत्र जहाँ सूर्य का प्रकाश अनुपस्थित होता हैं –

(अ) यूफोटिन जोन (ब) एफोटिन जोन

(क) उपर्युक्त दोनों (ड) कोई नहीं

24 यूफोटिन जोन (सुप्रकाशित क्षेत्र) समुद्र में कितनी गहराई तक होता हैं?

(अ) 500 फीट तक (ब) 600 फीट तक

(क) 700 फीट तक (ड) 800 फीट तक

25 अत्याधिक विकसित संवेदी अंग वाले जीव का उदाहरण हैं–

(अ) ऐसीडियन्स (ब) माइटिलिस

(क) हाइड्रॉइड्स (ड) पॉलीकीट्स

2.10 भारत के पारिस्थितिकीय क्षेत्र (Ecological Divisions of India)

2.10.1 हिमालय पर्वत तन्त्र (Himalayan Mountain System)

ओरिएन्टल और पेलिआर्कटिक प्रदेशों दोनों की प्राणिजात और वनस्पतिजात प्रारूपिक है। ऊँचाई, वन्यजीवन वितरण को प्रभावित करती है। ऊँचाई के अतिरिक्त, पूर्व–पश्चिमी विभिन्नताएँ पश्चिम की ओर मानसून वृष्टि में कम होती है। पश्चिमी हिमालय में निम्न वृष्टि, उच्च हिमपात (शीतोष्ण अवस्थाएँ) होता हे, जबकि पूर्वी हिमालय में अधिक वर्षा, उच्च हिमपात होता है, हिमपात सिर्फ बहुत ऊँचे पर्वत व चोटियों (Altitude) पर होता है, निचले तुंग पर अवस्थाएँ वर्षा उष्णकटिबन्धीय वनों के समान होती हैं। दोनों हिमालयों की प्राणिजात और वनस्पतिजात में निम्न विभिन्नताएँ होती हैं –

(1) **हिमालय में तराई क्षेत्र की पहाड़ियाँ (Himalaya Foothills)**– इनमें विशेष भाबर (Bhabar) और तराई (Tarai) निर्माण के गुण हैं और उत्तर में शिवालिक श्रेणी हैं।

टिप्पणी

(i) वनस्पतिजात (Flora)– प्राकृतिक मानसून सदाहरित और अर्धसदाहरित वन की प्रमुख जातियाँ जैसे – साल (Sal), रेशम सूती पेड (Silk cotton trees), विशाल बाँस (Giant bamboo), लम्बे घासमय शाद्वल (Tally grassy meadow), सवाना के साथ तराई में पाये जाते हैं।

(ii) प्राणिजात (Fauna) – उत्तरी भारत में बड़े स्तनधारी (Mammals), जैसे – हाथी (Elephant) सांभर (Sambhar), चीतल (Cheetal), हॉग डियर (Hog Deer), अनूप हिरण (Swamp deer), बार्किंग डियर (Barking Deer), वाइल्ड बोर टाइगर (Wild boar tiger), चीता (Panther), लकड़बग्धा (Hyen), जंगली कुत्ते (Wild dogs), काला भालू (Black bear), रीछ (Sloth Bear), सेही (Porcupine), जंगली भैंस (Wild buffalo), विशाल भारतीय एक श्रृंगीय राइनोसिरस या गैंडा (Great Indian one-horned rhinocerous), गंग–घड़ियाल (Gavialis Gangeticus), स्वर्णिम लंगूर (Golden langur)।

(2) पश्चिमी हिमालय (उच्च तुंग प्रदेश) (Western Himalays-High Altitude region))– इसमें कश्मीर, लद्दाख और कुमायूँ की ऊँची पर्वत चोटिया और घाटी हैं।

वनस्पतिजात (Flora)– शंकुधारी चीड़ वन (Coniferous pine forests), रोडेडेन्ड्रान (Rhododendrons), वामन पहाड़ी बांस (Dwarf hills bamboo) और भुर्ज वन (Birch forests), अल्पाइन चरागाह (Alpine pastures) से मिश्रित।

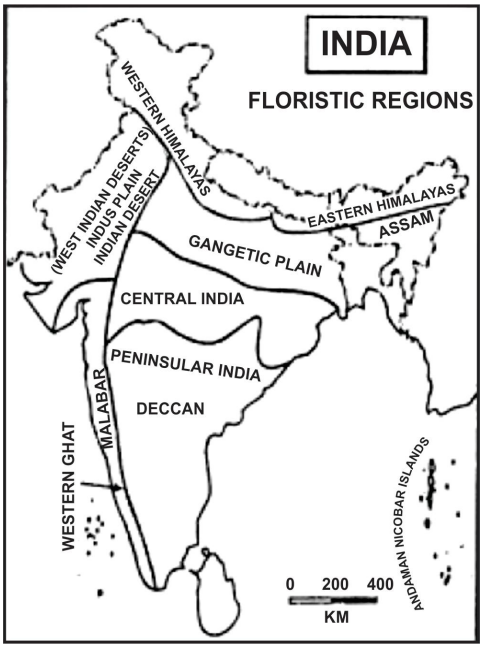

चित्र क्र. 2.13: भारत के विभिन्न समपादपी प्रदेश दर्शाता मानचित्र (Map Showing floristic region)

प्राणिजात (Fauna)– जंगली खच्चर (Wild ass), जंगली बकरियां (Wild goats), चार, मारखोर, आईबेक्स (Ibex) और भेड़ नयन (Sheep nayan), मार्कोपोलो की भेड़ (Marcopolo's sheep), नीलगाय, ऐन्टीलोप (Antlopes), तिब्बती गजेल, हिरण (हैन्गुल – Hangul) या कश्मीरी महामृग (Kashmir stag) और सिक्किम महामृग या शेऊ, कस्तूरी मृग (Musk deer), पाइका (Pikas) या मूषक शशक (Mouse hares), मारमोट (Marmot), स्वर्णिम उकाब (Golden eagle) हिम मुर्गे (Snow cock), हिम तीतर (Snow partridges), हिम चीता (Snow leopard), भेड़िया (Wolf), लोमडी (Fox), जंगली बिल्लियाँ

टिप्पणी

(Wild Cats), काले और भूरे भालू (Brown and Black Beer), पक्षियों जैसै –हिमालय मोनल फीजेंट Himalayan monal pheasant), पश्चिमी ट्रोगोपेन (Western trogopan), कोकलास (Koklass), श्वेत मुकुटधारी फीजेन्ट (White crested Khalijcheer Pheasant), ग्रिफ्फॉन गिद्ध (Griffon vultures), रैवेन (Reven) आदि।

2.10.1.1 पूर्वी हिमालय (Eastern Himalayas)

इसमें सिक्किम उत्तरी – पूर्वी सीमान्त, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम और त्रिपुरा के प्रदेश सिम्मलित हैं।

वनस्पतिजात (Flora)– ओक (Oak), मैग्नोलिया (Magnolias), लॉरेल (Laurels), भूर्ज (Birch), मॉस (Moss) एवं फर्नस (Ferns) से ढके हुए पठार, चीड के फर (Fur), यीव (Yew) और जूनिपर (Junipers) के शंकुधारी वन स्क्रूबी रोडोडेन्ड्रॉन्स (Scrubby rhododendrons) की अववृद्धि के साथ और वामन बाँस (Dwarf bamboo), लाइकेन (Lichens), मॉस (Moss), ऑर्किड्स (Orchids) और अन्य उपआरोही (Epiphytes) हैं।

प्राणिजात (Fauna)– लाल पंडा (Red Panda), क्रेस्टविहीन सेही (Crestless Porcupine), भालू सुअर, फेरेट सूअर, बकरी (Goat), एन्टीलोप (Antilopes), सीरो (Serow), गोरेल (Goral), टाकिन्स (Takins) आदि।

2.10.2 प्रायद्वीपीय भारतीय उप–प्रदेश (Peninsular Indian Sub-region)

यह भारतीय वन्यजीव को यथार्थ में निरूपित करता है। इसमें दो जोन होते हैं (i) प्रायद्वीपीय भारत (Peninsular India) और इसका विस्तार गंगा नदी तन्त्र के अपवाह कछार में और (ii) राजस्थान का मरूस्थल प्रदेश– थार का भारतीय मरूस्थल प्रदेश।

2.10.2.1 प्रायद्वीप भारत (Peninsular India)–

वृष्टि और आर्द्रता में विभिन्नताओं के आधार पर यह उष्णकटिबन्धीय आर्द्र पतझड़ी से शीतोष्ण शुष्क पतझड़ी और गुल्म वनस्पति का आवास हैं।

(i) वनस्पतिजात (Flora) – साल (Sal) उत्तर और पूर्व में (अत्यधिक वृष्टि) और टीक (Teak) उत्तरी पठार में प्रमुख पेड़ हैं। पश्चिमी घाट में सदाहरित वनस्पति (वनस्पतिजात और प्राणिजात–उत्तर पूर्व भारत के सदाहरित वर्षा वाले वनो के समान)। राजस्थान मरूस्थल और अरावली पहाड़ियों के शुष्क प्रदेशों में, पेड विरल (Scattered) और कँटीली झाड़ियों की जातियाँ मुख्य हैं। वन सवाना के समान अत्याधिक खुले हुए हैं।

(ii) प्राणिजात (Fauna) – हाथी, जंगली सूअर, सुवर मृग (चीतल) या ऐक्सिस मृग (Axis deer), अनूप मृग (Swamp

टिप्पणी

deer) या बारहसिंगा (Stag), सांबर (Sambar), मुन्टजेक (Muntjak) या बार्किंग डियर (Barking deer), एन्टीलोप (चार–श्रृंगी), नीलगाय, ब्लैकबक, (Blackbuck), चिंकारा गजेल, जंगली कुत्त, ढोले (Dhole), बाघ (Tiger), तेंदुआ (Leopard), चीता (Cheetah), शेर (Lion), धारीदार लकड़बग्धा (Striped Hyena), गीदड़ (Jackal), गौर (Gaur), साँड (Bull), बन्दर, लंगूर आदि।

2.10.2.2 भारतीय मरूस्थल (Indian Desert)

राजस्थान के घाट मरूस्थल का वनस्पति समूह और प्राणि समूह एकदम अलग हैं।

(i) वनस्पतिजात (Flora)– कँटीलें, पेड़, समानीत पत्तियों के साथ कैक्टस (Cactus), अन्य गूदेदार (Succulents) मुख्य पौधे हैं।

(ii) प्राणिजात (Fauna)– प्राणि मुख्यतः बिलकारी (Burrowing) हैं। स्तनधारियों में रोडेंट (Rodents) का सबसे बड़ा समूह यहाँ पाया जाता है। भारतीय मरूस्थल जरबिल (Gerbil) मूषक के समान रोडेंट (Rodents) हैं। अन्य प्राणि है– जंगली गधा (Wild Ass), ब्लैकबक (Blackbuck), मरूस्थली बिल्ली (Desert Cat), लाल लोमड़ी (Red Fox), कैराकल (Caracal), रेप्टाइल (Reptiles) सांप, छिपकली (Lizards), और कछुआ (Tortoise) मुख्य हैं। मरू रेप्टाइल के अन्तर्गत, ऐगेमिड (Agamids), लैसर्टीड (Lacertids) और गेको (Geckos) छिपकली, आते हैं। पक्षियों में अत्यधिक ग्रेट इन्डियन बस्टर्ड (Great Indian Bustard) प्रमुख हैं।

2.10.3 उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन प्रदेश (Tropical Rain Forest Region)

वनस्पति जात (Flora)– नीलगिरी (पश्चिमी घाट का भाग) विस्तृत घासमय मैदान सदाहरित वनस्पति शोला (Sholas) के घने जंगल वाले (Forested) महाखडु से अन्तरामिश्रित हैं। शोला (Sholas) अन्नामलाई और पल्नी पहाडियों में भी पाई जाती हैं। पश्चिमी घाट में वर्षा–वन घने और पेड़ से ढके होते हैं, जिसमें अत्याधिक जाति–विविधता पायी जाती है। मॉस, फर्न, एपिफाइट, ऑर्किड, कंठलताएँ (Lianas) और अंगूरलताएँ (Vines), बूटियाँ (Herbs) और झाड़ियाँ (Shrub) पाए जाते हैं। इन वनों में डिप्टेरोकार्पस जातियाँ प्रमुख हैं। विभिन्न प्रकार के उष्णकटिबन्धीय ऑर्किड (Orchid) पाए जाते हैं। वर्षा वनों में स्तरण बहुत साफ होता है – तीन क्षैतिज परतें विभेदित हैं। निचली मंजिल में ताड़ (Palms), इलायची (Cardamom) और अदरक के पौधे हैं।

प्राणिजात (Fauna)– इसमें सभी प्रकार के प्राणियों की प्रचुरता है। इसमें जंगली हाथी, गॉर (Gaur) और अन्य बड़े प्राणी हैं। अधिकतर जातियाँ पेड़–निवास (Tree-dwellers) हैं। सबसे विशिष्ट है– हुलुक गिबन (Hoolock gibbon), जो एक ऐप (Ape) हैं, स्वर्णिम लंगूर (Golden Langur), टोपीधारी लंगूर (Capped Langur) या पर्ण बन्दर (Leaf Monkey), मैकाक (Macaque) और सुअर जैसी

पूँछ वाला मैकाक (Pig – tailed Macaque), शेर – जैसी पूँछ वाला मैकाक (Lion-tailed Macaque), नीलगिरी लंगूर, लोरिस (Slender Loris), विशाल गिलहरी (Girant Squirrel), सिवेट (Civet), उड्डयन गिलहरी (Flying squirrels), नीलगिरी नेवला (Nelgiri mongoose), शूल मूषक (Spiny Mouse)।

टिप्पणी

2.10.4 अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (Andaman and Nicobar Islands)

वनस्पतिजात (Flora)– ये उष्णकटिबन्धीय वर्षा वाले वनों का क्षेत्र है। विशाल डिप्टेरोकार्पस (Dipterocarpus), टर्मिनेलिया (Terminalia) और लेगरस्ट्रोमिया (Lagerstroemia) मुख्य हैं। तटीय क्षेत्रों पर मैंग्रोव (Mangroves) भी पाये जाते हैं।

प्राणिजात (Fauna)– इस क्षेत्र में स्तनधारियों की कई जातियाँ (लगभग 35), अनेक रेप्टाइल और समुद्री प्राणी हैं। स्तनधारियों में चमगादड़ (Bats) और चूहे प्रमुख हैं (द्विपसमूह पर कुल स्तनधारियों का 3/4), अंडमान सुअर, केकड़े का भोजन करने वाला मैकाक (Crab-eating Macaque), ताड सिवेट (Palm civet) और मृग (चीतल, Spotted deer), शूकर मृग (Hog Deer), बारहसिंघा। समुद्री प्राणियों में हैं – डयूगोंग (Dugong), फाल्स – किलर व्हेल (False-Killer Whale), डॉलफिन (Dolphin)। पक्षियों में हैं (लगभग 250 जातियाँ और उपजातियाँ) दुर्लभ नारकोन्डम धनेश (Narcondum hornbill), निकोबार कबूतर (Nicobar pigeon) और मेगापोड (Megapode)। इसके अतिरिक्त और भी अन्य पक्षी पाए जाते हैं, जैसे– व्हाइट बेलीड सी ईगल (White-Bellied Sea Eagle), व्हाइट–ब्रेस्टेड स्वीफ्टलेट (White-breasted swiftlet) और कई फल कबूतर (Fruit pigeons)।

यहाँ लवणजलीय मगर (Saline water crocodile), कई समुद्री कछुए (Turtle), नारियल क्रेब (Coconut crab), छिपकली (Lizards) (सबसे बड़ी जल मॉनिटर), साँपों की 40 जातियाँ इसमें आती हैं। नाग (Cobra), पृदाकु (Viper), और समुद्री सर्प (Sea Snake), पाइथन (अजगर) (Pythons)।

2.10.5 सुन्दरबन के मैग्रोव अनूप (Mangrove Swamps of Sunderbans)

सुन्दरबन गंगा का डेल्टा (Delta) हैं, जहाँ दोनों ब्रम्हपुत्र और गंगा मिलती हैं और बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं।

वनस्पती समूह (Flora)– निम्न ज्वारीय जोन (Low tide zone) में पुरोगामी (Pioneer) पेड़ हैं, जैसे सोनेरेशिया (Sonneratia) और एवीसेनीया (Avicennia)। इस क्षेत्र के ऊपर (मध्य जोन) में राइजोफोरा (Rhizophora), ब्रुगुएरीया (Brugueria) और एक्सोकेरियासीरीयोप्स (Exacariacereops), वन (मैंग्रोव वन का लगभग 70 प्रतिशत भाग बनाते हैं) इस स्तर के ऊपर (ऊपरी भूमि स्तर) फीनिक्स (Phoenix), शुद्ध या एक्सीकेरिया (Excaecaria) के साथ आधारी

वन हैं। सबसे ऊँचे भाग में हेरीटेरिया (Heriteria) वन हैं। इनमें फीनिक्स (Phoenix) और नीपा (Neepa) ताड़ की चौड़ी अवृद्धि वाले पेड पाये जाते हैं।

टिप्पणी

प्राणिजात समूह (Fauna)– कीचड़ में उछलने वाली मत्स्य (Mud skippers) एवं अर्द्धस्थली गोबी (Semiterrestrial Gobies), और छोटे स्थलीय केकड़े – फिडलर क्रैब्स (Fiddler crabs), और डोरोपि (Doroppe), जिसका समुद्री एनीमोन के साथ असाधारण सम्बन्ध है। अन्य प्राणी हैं – वायक चींटी (Weaver Ants)। मैंग्रोव के ऊँचे प्रदेशों में चींतल, सुअर, मॉनिटर छिपकली, बन्दर इत्यादी हैं। सबसे रूचिकर प्राणी– सुन्दरवन बाघ हैं।

2.11 प्राकृतिक संसाधन एवं उनका संरक्षण वनों के संदर्भ में (Natural Resources and their Conservation with Special References to Forest)

2.11.1 प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

संसाधन केवल किसी विशिष्ट उद्देश्य के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त होता है। ये साधनों के वे स्रोत होते हैं जो हमारे जीवित रहने एवं भली प्रकार से फलने–फूलने के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार भूमि, जल, खनिज वन, वन्य जीव यहाँ तक की मानव भी संसाधनों की श्रेणी में आते है। हम प्रत्येक उस पदार्थ अथवा द्रव्य को संसाधन कह सकते हैं जिसे हम उपयोगी एवं महत्वपूर्ण बना सकें। विभिन्न प्राकृतिक संसाधतों को हम अनेक प्रकार वर्गीकृत कर सकते है।

2.11.1.1 उपयोगिता की निरन्तरता के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of resources based on Continual Utility) –

कुछ संसाधन उपयोग करने पर समाप्त हो जाते हैं तथा कुछ लम्बी अवधि तक बने रहते हैं अतः संसाधनों की उपयोगिता तथा उपलब्धता के आधार पर इन्हें निम्नलिखित दो प्रकारों में विभाजित किया गया है – नवीकरणीय (Renewable) तथा अनवीकरणीय (Non-renewable) संसाधन।

(1) **नवीकरणीय संसाधन (Renewable resources)**– वे संसाधन जिन्हें उपयोग करने के साथ नवीनीकृत किया जा सके, नवीनीकृत संसाधन कहलाते हैं। अतः इस प्रकार के संसाधन उपयोग हेतु सदा उपलब्ध रहते हैं। उदाहरण के लिए, पादप एवं जन्तु चाहे वे जंगली हों अथवा पालतू। जल को यदि हम सामान्य जल चक्र (Water cycle) के माध्यम से प्राप्त करते रहें तो यह भी एक नवीकरणीय संसाधन हैं।

(2) **अनवीकरणीय संसाधन (Non-renewable resources)**– वे संसाधन जिनकी व्यावहारिक दृष्टि से पुनर्स्थापना अथवा नवीकरण नहीं हो सके, अनवीकरणीय संसाधन कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, खनिज, कोयला तथा खनिज तेल आदि बनने में हजारें वर्षों का समय लगता हैं अतः यदि

टिप्पणी

इनका उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाये तो वे तीव्रता से समाप्त हो जायेंगे जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं हैं। मृदा एक ऐसा संसाधन है जो उचित प्रबन्धन द्वारा कार्यानुरूप बनाये रखी जा सकती हैं परन्तु त्रुटिपूर्ण दोहन से इसकी उर्वरकता तीव्रता से नष्ट हो सकती हैं।

2.11.1.2 उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Resources based on Origin)

उत्पत्ति के आधार पर संसाधन जैविक तथा अजैविक दो प्रकार के होते हैं

(1) **जैविक संसाधन (Biotic Resources)**– ये संसाधन जीवमण्डल (Biosphere) से प्राप्त होते हैं। विभिन्न प्रकार के स्थलीय एवं जलीय जन्तु तथा पादप रचनाएँ जैविक संसाधनों के अन्तर्गत आते हैं।

(2) **अजैविक संसाधन (Abiotic Resources)**– ये संसाधन अजैविक पदार्थों के बने होते हैं। भूमि, जल एवं खनिज अजैविक संसाधनें के अन्तर्गत आते हैं।

2.11.2 संरक्षण (Conservation)

जैवमण्डल में मानव सहित समस्त जीवों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा प्रबन्धन जिससे न केवल वर्तमान पीढ़ी भली प्रकार से संपोषित हो सके अपितु भावी पीढ़ी के संपोषण की भी समस्त सम्भावनाएँ बनी रहें, संरक्षण कहलाता है। पारिस्थितिकी के विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान मानव समाज के लिए जिन रूपों में हितकर हो सकता है। उनमें जो अधिक महत्वपूर्ण हैं। वह है हमारे प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण संरक्षण। संरक्षण का अर्थ मात्र संचय नहीं है, न ही संसाधनों का अप्रयोग और यह आपूर्तियों पर नियन्त्रण भी नहीं है जिससे कि भविष्य के लिए कुछ बचा रहे। संरक्षण का सही आशय है पारिस्थितिकी के ज्ञान का सम्पूर्ण लाभ उठाना एव ंविश्व के पारिस्थितिक तन्त्रों का इस प्रकार प्रबन्धन करना कि उपज एवं उसके नवीकरण में एक सन्तुलन स्थापित हो सके। इस प्रकार संरक्षण का सही अर्थ है उपयोगी पादपों, जन्तुओं एवं अन्य लाभकारी पदार्थो का निरन्तर उत्पादन सुनिश्चित करना तथा साथ ही साथ उच्च गुणवत्त के वातावरण का सुरक्षण सुनिश्चित करना जो सौंदर्य एवं मनोरंजनात्मक उपयोगों के साथ–साथ भौतिक उत्पाद भी प्रदान कर सके। प्राकृतिक संसाधनों के मानवीय उपव्ययों का अभिलेख काला हैं।

कभी चारकों (Grazers) का संहार, व्हेलों (Whales) का अन्धाधुन्ध विनाश, स्वच्छ जलीय एवं समुद्री मछलियों को अत्याधिक संख्या में पकड़ना, पक्षियों का विलोपन हजारों वर्ग मील वनों को काटना, वनों का आग से जल जाना, मलजल, औद्योगिक एवं कृषि सम्बन्धी अपशिष्टों द्वारा नदियों का प्रदूषण, लापरवाही से खेती करने आदि के परिणामस्वरूप हजारों वर्गमील कृषि भूमि का विनाश हो गया तथा नदियों में अवसाद जमा हो गये। ये सभी प्राकृतिक संसाधनों के अपव्यय के कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जिसके सुधार की आशा नहीं की जा सकती है। यद्यपि राज्य एवं केन्द्र स्तर पर विभिन्न विभागों द्वारा विभिन्न संसाधनें के संरक्षण के

टिप्पणी

उपाय निरन्तर किये जा रहे हैं फिर भी सबसे अहम कार्य है अधिकतर जनसंख्या को इस समस्या के प्रति जागरूक करना एवं इस कार्य में उनकी सहायता एवं भागीदारी सुनिश्चित करना।

2.11.3 जैविक विविधता (Biodiversity)

भारतीय उपमहाद्वीप का 32 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र जैविक विविधता की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। यदि हम यहाँ पाये जाने वाले प्राणिजात (Fauna) का आंकलन करें तो विभिन्न जन्तुओं की लगभग 65,000 प्रजातियाँ भारत में पायी जाती हैं जिनमें सर्वाधिक 50,000 प्रजातियाँ अकेले कीटों की हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 4,000 प्रजातियाँ मोलस्का की एवं 6,000 प्रजातियाँ अन्य अकशेरूकी प्राणियें की पायी जाती हैं। कशेरूकी जन्तुओं में मछलियों की 2000, उभयचरों की 140, सरीसृपों की 450, पक्षियें की 1,200 तथा स्तनियों की लगभग 350 प्रजातियाँ यहाँ उपलब्ध हैं। पादपों की लगभग 45,000 प्रजातियाँ भारत में पायी जाती हैं जिनमें अकेले 1,500 प्रजातियाँ पुष्पित पौधों की है। जैविक विविधता की इस सम्पन्नता के प्रमुख कारण हैं, यहाँ की जलवायु–विषयक विविधता (Climatic diversity) एवं पारिस्थितिक आवासीय विविधता (Ecological habitat diversity)। बर्फ से आच्छादित हिमालय पर्वत से प्रायद्वीप के गर्म समुद्री तट तक, उष्ण पश्चिमी घाट से लेकर राजस्थान के गर्म रेगिस्तान एवं लद्दाख के ठण्डे रेगिस्तान तक विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं आवासों की उपलब्धता यहाँ की प्रमुख विशेषता हैं।

जैविक विविधता की दो प्रमुख अवधारणाएँ होती हैं – आनुवंशिक विविधता (Genetic diversity) तथा पारिस्थितिक विविधता (Ecological diversity)। एक ही प्रजाति के विभिन्न सदस्येां के मध्य तथा विभिन्न प्रजातियेां के मध्य पायी जाने वाली आनुवंशिक परिवर्तिता (Genetic variability) को आनुवंशिक विविधता कहते हैं, जबकि किसी जैविक समुदाय (Biotic community) में पायी जाने वाली प्रजातियों की संख्या को पारिस्थितिक विविधता कहते हैं। पारिस्थितिक तन्त्र की सामान्य प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए उपर्युक्त दोनों प्रकार की जैविक विविधताओं को बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। जैविक विविधता का संरक्षण निम्नलिखित दो विधियों द्वारा किया जा सकता हैं –

(1) **स्व स्थाने संरक्षण (In Situ Conservation)**– इस प्रकार का संरक्षण प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित पारिस्थितिक तन्त्रों में पाये जाने वाले आनुवंशिक संसाधनों के लिए किया जाता है। आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण की यह एक आदर्श विधी है। इसके अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों को विशिष्ट उद्देश्यों के लिए पूर्णतया संरक्षित किया जाता है जिससे समाज को लाभ मिल सके। राष्ट्रीय उद्यान (National parks), शरण क्षेत्र (Sanctuary), आरक्षित जैवमण्डल (Biosphere reserve) आदि स्व स्थाने संरक्षण के अन्तर्गत आते हैं।

(2) **बहिःस्थाने संरक्षण (Ex Situ Conservation)**– इस प्रकार का संरक्षण किसी जीवसंख्या के प्रतिदर्श (Sample population) को उसके आवास से बाहर स्थायीकरण करके किया जाता है। इसके लिए किसी आनुवंशिक

टिप्पणी

संसाधन केन्द्र वनस्पति उद्यान अथवा किसी चिड़ियाघर आदि का चयन किया जाता है जहाँ उस जीवसंख्या को वृद्धि करने हेतु पर्याप्त सुविधा प्रदान की जा सके। इसके अतिरिक्त विभिन्न जीन कोशों (Gene pools), जनद्रव्य बैंक (Germplasm bank) आदि की स्थापना भी इसी श्रेणी के संरक्षण के अन्तर्गत आती हैं।

2.11.4 वन (Forest)

वन एवं वन्य जीवन किसी भी क्षेत्र में पारिस्थितिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं। वन किसी भी देश के वातावरण एवं अर्थव्यवस्था (Economy) के महत्वपूर्ण घटक होते हैं। इसके अतिरिक्त वन मृदा अपरदन, भूस्खलन एवं वायु प्रदूषण रोकने एवं वर्षा आकर्षित करने का कार्य भी करते हैं।

भारत एक उष्णकटिबन्धीय देश है परन्तु उसका उत्तरी क्षेत्र समुद्र तट से अत्यधिक ऊँचाई पर होने के कारण शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। यहाँ की जलवायु मानसूनी हैं। भारत में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की मृदा एवं जलवायु के कारण यहाँ उष्णकटिबन्धीय (Tropical), उपोष्णकटिबन्धीय (Subtropical), शीतोष्ण (Temperate) तथा अल्पाइन (Alpine) प्रकार के वन पाये जाते हैं। इन वनों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता हैं –

(1) **सदाबहार वन (Evergreen Forests)**– जिन स्थानों पर प्रतिवर्ष 200 सेमी से भी अधिक वर्षा होती हैं वहाँ सदाबहार वन (Evergreen forests) पाये जाते हैं। भारत में पश्चिमी घाट (Western Ghats), असम, ओडिशा के तटवर्ती इलाके तथा केरल व चेन्नई के कुछ भागों में सदाबहार वन पाये जाते हैं। यहाँ पर पायी जाने वाली वनस्पतियों में चन्दन (Sandalwood), मैग्नोलिया (Magnolia), बाँस (Bamboo), ताड़ (Palm), फर्न (Ferns) आदि प्रमुख हैं।

(2) **पर्णपाती वन (Deciduous Forests)**– जिन स्थानों पर प्रतिवर्ष 100–200 सेमी वर्षा होती है वहाँ पर्णपाती वन पाये जाते हें। भारत में मैसूर, चेन्नई, असम, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी घाट के पूर्वी भाग में ये वन पाये जाते हैं। यहाँ पायी जाने वाली वनस्पतियों में प्रमुख हैं – ओक (Quercus), टीक (Teak), एल्म (Elm), टर्मीलिया (Termilia) आदि।

(3) **हिमालयी वन (Himalayan Forests)**– हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के वन पाये जाते हैं। 9000 फीट से ऊपर स्थित शिखर क्षेत्र (Alpine zone) में बर्च (Birch), खरसू ओक (Kharsu Oak), सिल्वर फर (Silver fir), तथा 7000 से 9000 फीट की ऊँचाई के उपशिखर क्षेत्र (Subalpine zone) में चीड़ (Pinea), देवदार (Cedras), फर (Abies), स्प्रूस (Pice) आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। 4000 से 7000 फीट की ऊँचाई पर शीतोष्ण वन (Temperate forests) पाये जाते हैं। यहाँ पाये जाने वाले वृक्षों में प्रमुख हैं – लॉरेल (Laurel), चीड़ (Pinus), ओक (Quercus),

टिप्पणी

मैग्नोलिया (Magnolia) आदि। 1500 से 4000 फीट तक उपोष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते हैं जहाँ साल (Shorea) के वृक्ष बहुतायत में मिलते हैं। 1500 फीट तक के तराई क्षेत्र में उष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में बाँस (Bambusa), ताड़ (Palms), एबोनी (Ebony) आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

(4) **तटीय वन (Beach Forests)**– तटवर्ती क्षेत्रों के किनारे के बालुई (Sandy) क्षेत्र में पर्णपाती वृक्षों, क्षुपों (Shrubs) तथा विसर्पी (Creeperss) वनस्पतियों वाले वन पाये जाते हैं।

(5) **नदीय वन (Riverine Forests)**– बड़ी – बड़ी नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में ये वन पाये जाते हैं। यहाँ पर्णपाती वन वनस्पतियों की बहुलता होती हैं; जैसे – शीशम (Dalbergia sissoo), बबूल (Acacia nelotica), टर्मिनेलिया अर्जुना (Terminalia arjuna) आदि।

(6) **अनूप वन (Swamp Forests)**– ये वन नदी– मुख भूमि के दलदली कद्दारों (Alluvium) में पाये जाते हैं। पैण्डेमस (Pandamus), कदम (Kadam) आदि के वृक्ष यहाँ पाये जाते हैं।

2.11.4.1 वन आच्छादन (Forest Cover)

एक सर्वेक्षण के अनुसार सन 1990 में सम्पूर्ण विश्व की 7000 मि. हेक्टेयर भूमि पर वन थे। इन वनों के निरन्तर अविवेकपूर्ण दोहन के परिणामस्वरूप विश्व का कुल वन क्षेत्रफल लगातार घटता गया यहाँ तक कि आज सम्पूर्ण विश्व में लगभग 2300 मि. हेक्टेयर वन क्षेत्र शेष रह गया है। यह कमी उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में सर्वाधिक 40.2 प्रतिशत तथा शीतोष्ण क्षेत्रों में 0.6 प्रतिशत आँकी गयी हैं। इनमें सर्वाधिक कमी एशिया (Asia) एवं प्रशान्त (Pacific) क्षेत्रों में पायी गयी हैं।

भारत में लगभग 74.8 मि. हे. भूमि पर वन हैं अर्थात् देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 22.7 प्रतिशत भाग वनों से घिरा हुआ है। देश के लगभग 413 जिलों में 105 जिलों का 33 प्रतिशत, 52 जिलों का 19–33 प्रतिशत तथा 217 जिलों का 17 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र वनों से घिरा हैं जबकि शेष 39 जिलों में कोई वन संज्ञान में नहीं आया हैं।

सारणी क्र. 10.1: Forest Cover In Different States of India As in 1980.

States	Area (x thousand hac.)	Percentage of total geographical area
Andhra Pradesh	6500	23
Assam	3080	39
Bihar	3000	19
Gujarat	2000	6.5

टिप्पणी

Haryana	165	2.5
Himachal Pradesh	2100	39
Jammu and Kashmir	2200	62
Karnataka	4000	14.5
Madhya Pradesh	15000	37
Kerala	1100	25
Maharashtra	6400	16
Manipur	1500	27
Meghalaya	850	19
Nagaland	290	27
Orissa	6800	44
Punjab	240	2.5
Rajasthan	3500	3
Sikkim	260	38
Tamilnadu	2200	15.5
Tripura	390	57
Uttar Pradesh	5140	11
West Bengal	1180	11
UNION TERRITORIES		
Andaman and Nicobar Islands	715	90
Dadra and Nagar Haveli	20	42
Chandigarh	Negligible	.
Arunachal Pradesh	5150	63
Delhi	Negligible	.
Goa, Daman and Diu	105	25

टिप्पणी

Lakshadweep	––	––
Mizoram	715	64
Pondicherry	––	––
Total India	74750	––

भारत में कुल 16 प्रकार के वन पाये जाते हैं जिनमें सर्वाधिक 70 प्रतिशत वन क्षेत्र उष्ण पर्णपाती वनों से घिरा हुआ है। जिसमें 39 प्रतिशत क्षेत्र उष्णीय शुष्क पर्णपाती वनों से एवं लगभग 31 प्रतिशत क्षेत्र उष्णीय नम पर्णपाती वनों से घिरा हुआ है। अन्य प्रकार के वनों में साल वन 16 प्रतिशत, टीक वन 13 प्रतिशत, शुद्ध शंकुधारी वन 6.3 प्रतिशत, उष्णीय कँटीले वन 6.9 प्रतिशत, उष्णीय शुष्क सदाबहार वन 0.1 प्रतिशत, बाँस वन 8.8 प्रतिशत क्षेत्र में फैले पाये जाते हैं।

भारत में लगभग 72 मि. हेक्टेयर क्षेत्र में फैले 96 प्रतिशत वन शासकीय वन (Government Forests) हैं अर्थात ये पूर्णतया सरकारी नियन्त्रण में है जबकि लगभग 2 मि. हेक्टेयर क्षेत्र में फैले 2.5 प्रतिशत वन सामुदायिक वन (Community forests) हैं जो नगर पालिकाओं एवं जिला परिषदों के नियन्त्रण में हैं और 1.2 मि. हेक्टेयर क्षेत्र में फैले 1.5 प्रतिशत वन व्यक्तिगत वन (Private Forests) हैं।

सारणी क्र. 10.2: Change in Forests Cover in India from 1972-75 to 1980-82

Land use	Area (M. Ha)		Change in forest cover (%) of total geographical area of the country
	1972-75	1980-82	
Forest land			
Closed Forests	46.10	35.43	(-) 3.25
Open/degraded Forests	8.80	10.00	(+) 0.38
Mangrooves	0.30	0.27	(-) 0.02
Total	55.20 (16.83%)	45.70 (13.94%)	(-) 2.89

भारत में भी वनों के लगातार दोहन से वन क्षेत्र में लगातार कमी होती जा रही है। यह कमी सिक्किम एवं अरूणाचल प्रदेश को छोड़कर सभी जिलों में पायी गयी हैं। सर्वाधिक कमी त्रिपुरा में पायी गयी हैं। एक सरकारी अनुमान के अनुसार सन 1950–1972 के मध्ये 3.4 मि. हेक्टेयर वन क्षेत्र का नाश हुआ अर्थात् प्रतिवर्ष लगभग 1.5 लाख हेक्टयेर वन क्षेत्र समाप्त होता जा रहा है। इस कारण से जल,

वायु एवं वर्षा के प्राकृतिक चक्र भी प्रभावित हो सकते हैं तथा भूस्खलन, बाढ, भूमि का कटाव आदि प्राकृतिक आपदाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही हैं।

टिप्पणी

2.11.4.2 वनों का महत्व (Importance of Forests)

वनों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। कई आर्थिक समस्याओं का समाधान वनों से होता है। अनेक लाभदायक वन्य जीव जन्तुओं के आवास के अतिरिक्त हमें ईंधन, इमारती सामान, औषधीय जड़ी–बूटियाँ, रबड, चन्दन आदि वनों से ही प्राप्त होते हैं। वनों से हमें निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं –

(1) वृक्षों का झुरमुट वर्षा की तीव्र रफ्तार का असर सीधे मिट्टी पर नहीं पड़ने देता। इसकी पत्तियाँ वर्षा के वेग को अपने ऊपर लेकर उसकी गति को कम कर देती हैं। जिससे मिट्टी के कण उखड़ने नहीं पाते। इस प्रकार वृक्ष –संपदा भूक्षरण अथवा मृदा अपरदन को रोकती हैं। इसके अतिरिक्त मृदा के ऊपर की पत्तियों के कारण जल धीरे–धीरे रिस–रिस कर जमीन के नीचे पहुँचता है जो भूमिगत जल के रूप में संचित होता रहता है। वृक्षों की कमी होने पर उपजाऊ मृदा का अपरदन होता है। यह मृदा नदियों में पहुँचकर गाद बना लेती है। जिससे बाढ़ का खतरा उत्पन्न हो जाता हैं।

वन नदियों के बहाव को भी नियन्त्रित करते हैं। एक वनाच्छादित जलागम क्षेत्र का 95 प्रतिशत वार्षिक वर्षा–जल वन के नीचे जड़ों के स्पंज जैसे जाल में संचित होता हैं जहाँ से यह धीरे–धीरे भूमिगत जल भण्डारों में पहुँचता रहता हैं। वनों की अनुपस्थिति में जल मृदा में नहीं रूक पाता और बहकर सीधे नदी–नालों में चला जाता है। इस दशा में मृदा को वार्षिक वर्षा का केवल 5 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है। नदी नालों में वर्षा जल की अधिकाधिक मात्रा के आगमन से बाढ़ का खतरा उत्पन्न हो जाता है। एक अनुमान के अनुसार भारत में गत वर्षो में बाढ़ प्रभावित क्षेत्र 2 करोड हेक्टेयर से बढ़कर 4 करोड़ हेक्टेयर हो गया है।

(2) मिट्टी के गर्भ में पोषक तत्वों का विपुल भण्डार है। वृक्षों की जड़ें गहराई से इन पोषक तत्वों को प्राप्त कर पत्तियों के माध्यम से मृदा की ऊपरी सतहों तक पहुँचा देती है। इन तत्वों को अनाज फसलों की जड़ों प्राप्त करती हैं जो अधिक गहराई से इन तत्वों को नही प्राप्त कर सकती। वनों की कमी से कुछ वर्षो में ही मृदा की ऊपरी पर्तो की उत्पादन क्षमता कम हो जायेगी। इस प्रकार यह स्पष्ट हैं कि वृक्ष सम्पदा मृदा की ऊपरी पर्त्तो को उपजाऊ बनाने में सहायता करती है।

विश्व के वर्षा वनों के नीचे की मृदा बहुत कमजोर है। अतः एक बार वनों के कंटते ही मिट्टी तेजी से बह जायेगी और उसके साथ उसकी उर्वरकता भी बह जायेगी जिससे वहाँ की भूमि बंजर हो जायेगी।

(3) हरे–भरे वन मौसमी चक्र (Seasonal cycle) को अनुकूल बनाये रखते है। इसके अतिरिक्त ये हवाओं की तेज रफ्तार एवं तूफान को नियन्त्रित करते हैं जिससे खेतों की मिट्टी उड़कर अन्यत्र नहीं जाने पाती।

टिप्पणी

(4) वृक्षों का छत्रक सूर्य की किरणों को सीधे मिट्टी पर पड़ने से रोकता है। यह मृदा की नमी को बनाये रखने के लिए भी लाभकारी होता हैं।

(5) वायुमण्डलीय कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य विषैली गैसों के शोधन में भी वनों की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। ये शोर प्रदूषण को भी नियन्त्रित करते हैं।

(6) जहाँ वन अधिक होते हैं वहाँ वर्षा भी अधिक होती है। बंगाल की खाडी से जो मानसूनी हवाएँ उठती हैं वे हिमालय के हरे–भरे जंगलों से ठण्डी होकर बरस पड़ती है। अतः भूमि को मरूस्थलीय प्रकोप से बचाने के लिए भी वनों की अत्यन्त आवश्यकता है।

(7) अनेक आदिवासी क्षेत्रों के निवासी पूर्ण रूप से वन सम्पदा पर ही आश्रित हैं। वनों से उन्हें घर बनाने के लिए सामान, कृषि, यन्त्रों के लिए लकड़ी, औषधियेां के लिए जड़ी – बुटीयाँ, वस्त्रों के लिए रेशा एवं रंग आदि मिलते हैं। कई आदिवासी बाँस पर चावल पकाते हैं, जल भरते हैं तथा पत्तलों पर भोजन करते हैं।

2.11.4.3 वनों का विनाश (Deforestation)

मानव एवं पशुधन की जनसंख्या विस्फोट के साथ–साथ लकड़ी, ईंधन एवं चराई (Grazing) की भी आवश्यकताओं में वृद्धि होती गयी, परिणामस्वरूप जंगल कटते गये तथा चरते गये। पहाड़ों पर सड़क निर्माण एवं वन क्षेत्रों में खनन तथा उद्योंगो के स्थापन के कारण भी जंगलों की तीव्रता से कटाई होती गयी। कुछ औद्योगिक इकाइयाँ तो पूर्ण रूप से वनों पर ही आधारित होती हैं। ,

वनों के विनाश एवं आवश्यकता से अधिक चराई के फलस्वरूप मृदा अपरदन एवं भूस्खलन में भी अत्याधिक वृद्धि हुई। भारत में एक वर्ष में औसतन 6000 मि. टन ऊपरी मृदा का जल के साथ अपरदन होता है। इसके अतिरिक्त मृदा के ऊपर के वनस्पति आवरण के अभाव में उस क्षेत्र की स्थानीय जलवायु में परिवर्तन होता है। इस प्रकार के सभी परिवर्तन उस क्षेत्र को मरूस्थल में परिवर्तित करने के लिए पर्याप्त होते हैं (Desertification)। जैसे – जैसे वातावरण में धूल की मात्रा बढ़ती जाती है, उस क्षेत्र में सूखा पड़ने लगता है। धीरे–धीरे वहाँ के नम स्थान भी सूखे की चपेट में आने लगते हैं और मरूस्थलीय क्षेत्र में वृद्धि हो जाती हैं।

2.11.4.4 वन संरक्षण (Forest Conservation)

वनों को विनाश से बचाने के लिए IUCN (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources), WWF (World Wildlife Fund) तथा UNEP (United Nations Environment Programme) ने मिलकर एक विश्व संरक्षण योजना या WCS (World Consevation Strategy) तैयार की जिसे भारत में मार्च 1980 में लागू किया गया। इसका दायित्व सम्पूर्ण जीवमण्डल का संरक्षण करना तथा ऐसा प्रबन्ध करना है कि मानव इस सम्पदा को

हानि पहुँचाये बगैर पीढ़ी–दर–पीढ़ी मानव कल्याण हेतु इससे अधिकतम लाभ उठा सके। विश्व संरक्षण योजना (WCS) का कार्य हैं –

टिप्पणी

(1) वातावरणीय संरक्षण की अवधारणा को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना।

(2) ऐसे क्षेत्रों को पहचान करके चिन्हीकृत करना जहाँ जीवन संकटग्रस्त (Threatened) हो।

(3) संरक्षण के उद्देश्यों का आंकलन करना।

(4) राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट प्राथमिकता वाले कार्य क्षेत्रों को चिन्हित करना।

(5) विभिन्न देशों में राष्ट्रीय संरक्षण नतियों की रूपरेखा तैयार कना तथा उसे परिचालित करने के लिए योजनाएँ बनाना।

राष्ट्रीय वन नीति (1952) के अनुसार देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का एक – तिहाई भाग वनों से आच्छादित होना चाहिए परन्तु फिर भी किन्हीं न किन्ही कारणों से देश के वनों का विनाश निरन्तर होता रहा है। अतः सन 1980 में भारत सरकार ने वन (संरक्षण) अधिनियम (Forest (Conservation) Act) लागू किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी वन भूमि को न तो अन्य उपयोग में लाया जा सकता है और न ही इसकी कटाई हो सकती है अर्थात् वन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, तथा ऐसा करने से पूर्व केंन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति आवश्यक है। यदि एक स्थान पर वन में किसी प्रकार का परिवर्तन करना हो तो उसके स्थान पर अन्यत्र वनीकरण करने का भी अधिनियम के अन्तर्गत प्रावधान है। वन अधिनियम, 1980 को सन 1988 में फिर से संशोधित किया गया है। प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं –

1. कोई भी राज्य सरकार केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति लिये बिना किसी वन भूमि को किसी व्यक्ति विशेष, नगरपालिका, निगम अथवा अन्य संगठन को आवंटित नही कर सकती है।
2. केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति लिये बिना किसी भी वन के वृक्षों का उपयेाग अन्यत्र स्थान पर वनीकरण के लिए नहीं किया जा सकता है।
3. चाय, कॉफी, रबड, ताड़ तथा औषधीय वनस्पतियों की खेती को 'अ–वन उद्देश्यों' (Non-forest purposes) की सीमा में सम्मिलित किया गया।

2.11.4.5 वन संरक्षण के उपाय (Measures of Forest Conservation)

आधुनिक पारिस्थितिकी ने वन चेतना का प्रसार करके लोगों को वन संरक्षण और विकास की प्रेरणा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उत्तरांचल के टिहरी गढ़वाल जिले में श्री सुन्दरलाल बहुगुणा ने वन संरक्षण के सन्दर्भ में 'चिपको' नामक आन्दोलन के माध्यम से देशव्यापी वन संरक्षण चेतना जाग्रत की है। चिपको योजना के अन्तर्गत भोजन (Food), चारा (Fodder), ईंधन (Fuel), रेशा (Fibre) तथा खाद (Fertilizer) से सम्बन्धित पौधों के रोपण (Plantation) पर भी

टिप्पणी

जोर दिया गया ताकि मानव समुदाय अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सके। इसी प्रकार बाँसवाडा (राजस्थान) में श्रीमती लाड़की नामक आदिवासी महिला ने 'रूख भाइला' आन्दोलन चलाकर इस क्षेत्र में वन विकास के कार्य को आगे बढ़ाया है। वन संरक्षण एवं विकास के लिए प्रत्येक वर्ष वन महोत्सव मनाया जाता है। इसके अन्तर्गत वृक्षारोपण कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं। कर्नाटक प्रान्त के उत्तरी कनारा जिले के सलकानी गाँव में चिपको की तरह एपिको (Appiko) आंन्दोलन चलाया गया है।

वन संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए –

1. वनों की अन्धाधुन्ध कटाई एवं आर्थिक दोहन को प्रभावी कानून की सहायत से रोका जाये और उल्लंघन करने वाले को कड़ी सजा दी जाये।
2. प्राकृतिक वन प्रदेशों में आधुनिक उद्योगों को लगाने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाये।
3. वन क्षेत्रों में गृह निर्माण योजनाओं को अनुमति न दी जाये।
4. वन विकास कार्यक्रमों एवं वन महोत्सव को प्राथमिकता दी जाये।
5. वन संरक्षण एवं विकास को अनिवार्य पाठय्क्रम के रूप में सम्मिलित किया जाये।
6. संपूर्ण देश में स्थान–स्थान पर वन चेतना केन्द्र खोले जाये।

2.11.5 मृदा संरक्षण (Soil Conservation)

मृदा एक मूल प्राकृतिक संसाधन है। भोजन, रेशा एवं ईंधन (Food, Fibre and Fuel), मानव की इन तीन आधारभूत आवश्यकताओं के उत्पादन को बनाये रखने के लिए मृदा का संरक्षण करना अनिवार्य हैं। मृदा के कणों का वायु, जल, बर्फ तथा गुरूत्व (Gravity) के द्वारा अपने स्थान से असम्बद्ध होकर अन्यत्र परिवहित हो जाने को मृदा अपरदन (Soil erosion) कहते है। जल एवं वायु मृदा अपरदन के प्रमुख कारक है। हमारे देश में प्रति वर्ष 600 करोड़ टन मृदा पानी के साथ बह जाती है। इस मृदा के साथ नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम जितनी मात्रा में बह जाते हैं, वह देश के प्रतिवर्ष उर्वरक उत्पादन से लगभग दो गुनी होती है। मिट्टी की एक सेमी मोटी पर्त बनने में प्रकृति के लगभग 400 वर्षो का समय लग जाता है और नष्ट होने के लिए एक वर्ष ही काफी होता है। इस प्रकार मृदा के क्षरण को रोकने के लिए मृदा संरक्षण की महती आवश्यकता है। मृदा संरक्षण के क्रिया – कलाप अग्रलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है।

1. अपरदन द्वारा होने वाली भौतिक हानि से मृदा को सुरक्षित करना।
2. रासायनिक अपकर्ष (Chemical deterioration) से मृदा को सुरक्षा देना अर्थात् प्राकृतिक अथवा कृत्रिम कारकों द्वारा मृदा की उर्वरकता में होने वाली कमी को रोकना।

टिप्पणी

3. भूमि के उपयोग के लिए इस प्रकार का प्रबन्धन करना जो प्राकृतिक अथवा मानव प्रेरित कारको द्वारा होने वाले मृदा अपकर्ष (Soil deterioration) से सुरक्षा प्रदान करे।
4. **एच.एच. बेनेट** (H.H.Bennett) के अनुसार मृदा संरक्षण भूमि के उपयोग की वह विधि है जिस विधि से इसका उपयोग होना चाहिए (Conservation of soil is a method of using the land as it should be used.)

मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकों को निम्नलिखित क्रियात्मक समीकरण (Functional equation**) द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है –**

E = f (cl, v, t, s, h)

जहाँ

E = अपरदन (Erosion)

F = कार्य (Functions)

cl = जलवायु (Climate)

t = ताप (temperature)

s = मृदा (Soil)

v = वनस्पति (Vegetation)

h = मानव कारक (Human factors)

मृदा अपरदन के विभिन्न कारकों को सारणी 10.3 में दर्शाया गया है –

मृदा अपरदन के विभिन्न कारकों को सारणी 10.3 में दर्शाया गया है

सारणी क्र. 10.3: Factors Affecting Soil Erosion

(A)Climate	(B) Soil	(C) Vegetation	(D) Topography	(E) Mismanagement
1. Rain Fall	(a) Physical properties		1. Degree of Slope	1. Up and down cultivation of steep slopes
2. Humidity	1. Texture		2. Length of slope	2. Cultivation of steep slopes
3. Temp.	2. Structure		3. Size and shape of the catchment	3. Over Population
4. Wind	3. Organic matter		4. Configurat ion of the land surface	4. Lack of extension services
	4. Bulk density of soil			
	5. Soil Moisture			
	6. Surface roughness			

	(b) Erodibility factor of the soil or nature of the soil.			

टिप्पणी

2.11.5.1 मृद्रा संरक्षण के उपाय (Measures of Soil Conservation)

मृदा संरक्षण के लिए मृदा अपरदन को रोकना ही प्रमुख उपाय है। मृदा अपरदन नियन्त्रित करने की तीन प्रमख विधियाँ हैं –

(1) सस्य वैज्ञानिक उपाय (Agronomical measures)

(2) जैविक उपाय (Vegetative Measures),

(3) यान्त्रिक उपाय (Mechanical Measures)।

सस्य वैज्ञानिक उपाय (Agronomical measures)

अपरदन नियन्त्रण के सस्य वैज्ञानिक उपाय सस्ते होते हैं तथा इनका निष्पादन भी आसान होता है। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए सस्य वैज्ञानिक उपायें को यान्त्रिक उपायों के साथ–साथ अपनाया जाता है। कुछ सस्य वैज्ञानिक उपाय नीचे दिये जा रहे हैं।

(1) **समोच्च खेती (Contour Farming)** – यह विधि ऐसे स्थानों के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है। जहाँ कम वर्षा होती है। इस विधि में खेत पर एकान्तर स्थिति में समान ऊँचाई के उभार (Ridges) एवं खाँच (Furrows) बना देते हैं। समान ऊँचाई के उभारों को समोच्च (Contours) कहते हैं। जल खाँच में एकत्रित होता है, जिससे अपरदन नहीं होने पाता। यदि खेत में ढाल हो तो खेती ढाल के आर–पार (Across the slope) करनी चाहिए।

(2) **पट्टीदार खेती (Strip Cropping)**– इस विधि में विभिन्न फसलें एकान्तरित पट्टियों में उगाई जाती है। साधारणतया फसलों की पट्टियाँ समोच्च अथवा समोच्च के नजदीक बोई जाती है। एकान्तरिक फसलों में एक पट्टी अपरदन अनुज्ञा फसल (Erosion Permiting Crops या EPC) की तथा दूसरी पट्टी अपरदन विरोधी फसल (Erosion Resistant Crop या ERC) की हो तो अच्छा होता है।

(3) **आच्छादन खेती (Cover Cropping)**– वे फसलें जिनका फसल छत्रक (Crop canopy) मानसून काल में मृदा को ढकने के लिए पर्याप्त होता है, वर्षा की बूँदों के वेग को कम करने मे सहायता होती हैं, जैसे फलीदार फसलें (Leguminous crops)। इस प्रकार ये फसलें न केवल मृदा अपरदन को नियंत्रित करती हैं अपितु वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण द्वारा मृदा की उर्वरता में भी वद्धि करती हैं।

टिप्पणी

(4) **फसल चक्रण (Crop Rotation)**– एक ही फसल को साल– दर – साल लगातार बोने से मृदा की खनिज सम्पदा का क्षरण होता है। अतः इससे बचने के लिए फसल चक्रण एक प्रभावी प्रक्रिया है। इसके लिए फली वाली फसलों को फसल चक्रण में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार मृदा लम्बी अवधि के लिए वनस्पतियों से घिरी रहती है जिससे मृदा अपरदन कम हो जाता है।

(5) **पलवार से ढँकना (Mulching)**– खेत में पौधों के ठूँठ (Stubble) छोड़ देने से न केवल मृदा अपरदन की कमी आती है अपितु मृदा की नमी का वाष्पीकरण भी कम होता है तथा खेत में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ने से मृदा की नमी में भी वृद्धि होती है।

(6) **कार्बनिक खाद का प्रयोग (Application of Organic Manure)** – कार्बनिक खाद मिलाने से मृदा वातन (Soil aeration) अन्तःनिष्यन्दन दर (Infiltration rate), जल धारण क्षमता (Water holding capacity) में वृद्धि होती है। इस प्रकार वर्षा की अधिकाधिक मात्रा का मृदा द्वारा उपयोग होने से अपरदन कम होता है।

जैविक उपाय (Vegetative Measures)

(1) **वनीकरण (Afforestation)** ऊँचे पर्वतों, पाद गिरियों (foot hills), मैदानों एवं नदी के किनारों पर वृक्षारोपण करने से वर्षा का वेग कम हो जाता है जिससे अपनदन भी कम होता है। मरूस्थलीय क्षेत्रों में वृक्ष लगाने से हवा का वेग कम हो जाता है। परिणामस्वरूप बालू अथवा रेत का फैलाव कम होता है। वनीकरण से वन्य जीवों को आश्रय प्राप्त होता है।

(2) **खाई खोदना (Trenching)**– यह अपरदन नियन्त्रण की यान्त्रिक एवं जैविक विधि है तथा इसका प्रयोग ऐसी भूमि पर किया जाता है जहाँ नियमित ढलान हो। विभिन्न कतारों की खाइयाँ इस प्रकार से खोदी जाति है कि ऊपर की कतार से आया जल आनो वाली खाई में एकत्रित हो जाये। खोदी गयी मिट्टी को नीचे की तरफ एकत्रित करके उस पर वृक्षारोपण कर देते हैं जिससे खाई में एकत्रित जल का उपयोग वृक्षों की जड़ों द्वारा किया जा सके । खाई का आकार 6 x 2 x 2 फीट रखना श्रेयस्कर होता है।

(3) **चरागाह वृक्षारोपण पद्धति (Silvi-pastural Practices)**– जब वृक्षारोपण के साथ–साथ चरागाह (Pasture) भी विकसित किया जाये तब इस प्रक्रिया को चरागाह–वृक्षारोपण पद्धति कहते हैं। यह पद्धति जल एवं वायु अपरदन को रोकने का कार्य करती है।

(4) **तृण खेती (Ley Farming)**– इसे चरी की खेती भी कहते हैं। सामान्य अपरदन अनुज्ञा फसल (EPC) तथा अपरदन प्रतिरोधी फसल (ERC) के साथ घास उगाने को तृण खेती कहते हैं। यह मृदा

अपरदन रोकने का अच्छा तरीका है, इसके साथ–साथ मृदा की संरचना को बनाये रखने में भी यह विधि सहायक होती है।

टिप्पणी

यान्त्रिक उपाय (Mechanical Measures)

इसके अन्तर्गत अनेक अभियान्त्रिक तकनीके भी आती है जो जैविक उपायों के पूरक का भी कार्य करती हैं। ये विधियाँ जल बहाव की गति को कम करती हैं तथा जल को लम्बी अवधि तक रोककर अवशोषण हेतु अतिरिक्त समय उपलब्ध कराती हैं।

(1) **बन्द बनाना (Bunding)**– खेत में मिट्टी डालकर बाँध या बन्द बनाकर जल के बहाव को रोका जाता है। ये बाँध ढाल के साथ–साथ एवं ढाल के विपरीत बनाये जाते है। खेत की अथवा भूमि की स्थलाकृति के अनुसार बाँधों का निर्माण भिन्न–भिन्न प्रकार से किया जाता है।

(2) **वेदिकायन (Terracing)**– इन विधि में ढाल के आर–पार चौड़े प्लेटफार्म बनाकर जल के बहाव को रोका जाता है जिससे मृदा अपरदन नियन्त्रित होता है। दूर से देखने पर ये ढलान के ऊपर जाने वाली सीढ़ी के समान दिखायी देते हैं। यहाँ वर्षा कम होती है वहाँ यह विधि जल का संरक्षण करने में सहायक होती है। वेदिकाओं के निर्माण से ढाल की लम्बाई एवं ढलान कम होती है। तथा जल अवरोधन से जल बहाव कम होता है। अत्याधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जल के बहाव को मोड़ने में भी सहायता मिलती है। वेदिकाएँ कई प्रकार की बनायी जाती है, जैसे – बेन्च वेदिका (Bench terrace), चौड़े आधार वाली वेदिका (Broad base terrace) आदि।

(3) **खड्डा नियन्त्रण (Gully Control)**– खड्ड को नियन्त्रित करने की अपेक्षा खड्ड को बनने से रोकना आसान कार्य होता है। बन्द, बाँध, नाली एवं विपथन (Bund, Dam, Drains and Division) स्थापित करके पानी को रास्ता देकर खड्डों को नियन्त्रित किया जा सकता है। नदी के किनारों पर वृक्षारोपण करके भी नदी के कटाव को रोककर खड्ड बनने को रोका जा सकता है।

(4) **बीहड़ सुधार (Ravine Reclamation)**– बीहड़ों में स्थान–स्थान पर वृक्षारोपण करके तथा जल बहाव को नियन्त्रित करके सुधार लाया जा सकता है।

2.11.6 जल (Water)

पृथ्वी का तीन – चौथाई भाग जलमग्न है किन्तु यह सारा जल हमारे उपयोग के लायक नहीं है। सम्पूर्ण जल का 97 प्रतिशत भाग महासागरों में है जो खारा होने के कारण काम का नहीं है। लगभग 2 प्रतिशत जल पर्वत शिखरों को आच्छादित करने वाली बर्फ के रूप में हैं। इस प्रकाश शेष एक प्रतिशत जल ही हमारे उपयोग

के लायक हैं जो नदियों, झीलों, तालाबों में तथा भू–जल के रूप में है। इसी एक प्रतिशत जल पर अधिकांश स्थल – जीवियों को निर्भर रहना पड़ता है। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि जल एक दुर्लभ वस्तु है जिसका संरक्षण आवश्यक है।

टिप्पणी

जल जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह बहुउपयोगी तो है ही इनके अतिरिक्त आबादी एवं औद्योगीकरण बढ़ने के साथ–साथ इसकी माँग भी दिनों – दिन बढ़ती जा रही है। उपलब्ध जल की मात्रा सीमित होने के कारण जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ प्रति व्यक्ति उपलब्ध जल की मात्रा घटती जा रही है। इसके अतिरिक्त मानव द्वारा जल का अपव्यय भी बहुत होता है। बढ़ते औद्योगीकरण के साथ प्रदूषित जल की मात्रा में भी लगातार वृद्धि होती जा रही है। प्रदूषित जल के पृथ्वी में रिसने के कारण भू–जल भी प्रदूषित हो रहा है।

उद्योगों में जल की खपत बड़े पैमाने पर होती है। उद्योगों में उपयोग किये जा रहे जल का 60 प्रतिशत भाग बिजली निर्माण में तथा शेष 40 प्रतिशत अन्य औद्योगिक प्रक्रमों में प्रयुक्त होता है। उद्योगों में जल की विभिन्न उपयोगिताएँ हैं, जैसे घुलाने वाले तरल के रूप में, उष्मा को स्थानान्तरित करने वाले माध्यम के रूप में, प्रक्षालन करने वाले साधन के रूप में तथा शीतलक के रूप में। उद्योगों में होने वाले जल की अत्याधिक खपत का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि एक टन प्लास्टिक बनाने के लिए 30 टन जल, एक टन इस्पात या कागज बनाने के लिए 120 टन जल तथा एक लीटर पेट्रोल को परिशुद्ध करने के लिए लगभग 60 टन जल की आवश्यकता होती है।

अतः उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि यदि जल का संरक्षण न किया जाये तो शीघ्र ही मानव को घोर विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

2.11.6.1 जल संरक्षण (Water Conservation)

(1) **जल विभाजक प्रबन्धन (Watershed Management)**– ऐसा क्षेत्र जो जल निकास द्वारा घिरा हुआ हो, जल– विभाजक (Watershed) कहलाता है। यह एक प्राकृतिक इकाई हैं जो वर्षा के जल–प्रवाह के प्रबन्धक की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। हिमालय की गिनती विश्व के सर्वाधिक नाजुक जल–विभाजकों में की जाती हैं। पर्वत श्रृंखलाओं की जल प्रणाली के संकटगस्त होने के कारण जल संसाधनों में कमी हो रही है। उपयुक्त उपायों के प्रबन्धन द्वारा हिमालय के जल – विभाजकों का उपयोग पन बिजली उत्पादन में किया जा सकता है। जल विभाजक प्रबन्ध द्वारा बाढ़ की विभीषिका से बचा जा सकता है।

(2) **नदी घाटी परियोजनाएँ (River Valley Projects)** – इस प्रकार की परियोजनाएँ जल संसाधनों की समस्या से ग्रस्त क्षेत्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी साबित हुई है। किसी नदी एवं उसकी सहायक नदियों के सहारे सब बड़े अथवा कई छोटे बाँधों का निर्माण किया जाता है। ये बाँध वृहत् जलराशि को अपने अन्दर संचित करते हैं। वर्षा के जल की बड़ी मात्रा इसमें संचित होती है। ये बाढ़ नियन्त्रण एवं मृदा संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर यही जल सिंचाई के काम आता

टिप्पणी

है तथा इस जल से पन बिजली उत्पादन भी किया जाता है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सबसे पहले दामोदर नदी घाटी परियोजना (Damodar River Valley Project) प्रारम्भ की गयी थी। आज इसी प्रकार की अनेक परियोजनाएँ चल रही हैं; जैसे सरदार सरोवर परियोजना (Sardar Sarovar Project), नर्मदा घाटी परियोजना (Narmada Valley Project)।

(3) **उन्नत कृशि प्रक्रियाएँ (Improved Agricultural Practices)** – कृषि में जल का सर्वाधिक उपयोग होता है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में कृषि पूर्णतया सिंचाई पर आधारित होती है। सिंचाई में पानी की अत्याधिक मात्रा बेकार चली जाती है। उन्नत कृषि प्रक्रियाओं को अपनाकर जल हानि को रोका जा सकता है। समोच्च खेती (Contour farming), पट्टीदार खेती (Strip cropping), आच्छादन खेती (Cover cropping), वेदिकायन (Terracing) आदि ऐसी ही कुछ विधियाँ हैं जिनका वर्णन मृदा संरक्षण के अन्तर्गत किया जा चुका है। ये विधियाँ मृदा अपरदन नियन्त्रण के अतिरिक्त जल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

2.11.6.2 जल संवर्धन (Aquaculture)

विभिन्न जल संसाधनों के माध्यम से अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थो का उत्पादन किया जा रहा है। बढ़ती हुई आबादी के साथ भोजन की कमी एवं प्रोटीन जैसे आवश्यक पोषक पदार्थो की आपूर्ति का प्रमुख संसाधन जल संवर्धन हैं। स्वच्छ जल एवं समुद्री जल में अनेक प्रकार के मेंढकों, मछलियों, झींगा मछलियाँ, केंकड़ों आदि का बड़े पैमाने पर संवर्धन किया जा रहा है। इन विभिन्न प्रकार के जन्तुओं के संवर्धन को जल कृषि भी कहते हैं।

2.11.7 खनिज संसाधन (Mineral resources)

पृथ्वी की गर्त में तीन प्रकार की चट्टाने पायी जाती है – आग्नेय चट्टाने (Igneous rocks), तलछटीय चट्टाने (Sedimentary rocks) तथा रूपान्तरित चट्टाने (Metamorphic rocks)। ये चट्टाने अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के मिश्रण से निर्मित हुई हैं। हमारे देश में सोना (Gold), चाँदी (Silver), लौह (Iron), टंग्सटन (Tungsten), सीसा (Lead), जस्ता (Zinc), ताँबा (Copper), एलुमिनियम (Aluminium), यूरेनियम (Uranium), थोरियम (Thorium), टाइटेनियम (Titanium), मैग्नीशियम (Magnesium), मैंगनीज (Manganese), कैडमियम (Cadmium) आदि धात्विक खनिज पाये जाते हैं जिसमें लौह, एलुमिनियम, मैग्नीशियम, मैंगनीज जैसे अयस्कों के बड़े भण्डार उपलब्ध हैं। गैर धात्विक खनिजों में ग्रेफाइट (Graphite), डोलोमाइट (Dolomite), एस्बेस्टस (Asbests), माइका (Mica), रॉक फॉस्फेट (Rock Phosphate), कैल्साइट (Calcite), ग्रेनाइट (Granite), लाइमस्टोन (Limestone), सैंडस्टोन (Sandstone) तथा कोयला (Coal), तेल (Oil) एवं प्राकृतिक गैस (Natural gases) पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। मानव सहित सभी जीवधारियों के लिए अत्यन्त आवश्यक इन खनिज पोषक

टिप्पणी

तत्वों के अतिरिक्त ऊर्जा एवं अन्य आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति पृथ्वी के विशाल खनिज भण्डारों से होती है। परन्तु इन भण्डारों की क्षमता सीमित है। और जिस गति से मानव इन खनिज पदार्थो का उपयोग कर रहा है उससे निकट भविष्य में इन प्राकृतिक भण्डारों के समाप्त होने का गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया हैं।

खनिज संसाधनों की उपलब्धि एवं उनके उपयोग के आपसी सम्बन्ध को जनसांख्यिकीय भागफल (Demographic quotient), Q द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है।

$$Q = \frac{\text{कुल उपलब्ध संसाधन (Total resources available)}}{\text{जनसंख्या घनत्व (Population density)} \times \text{प्रति व्यक्ति उपभोग (Per capita consumption)}}$$

जैसे–जैसे जनसांख्यिकीय भागफल, Q कम होता जाता हैं, आधुनिक जीवन की गुणवत्त भी घटती जाती है और वर्तमान समय में यह भागफल तीव्रता से कम होता जा रहा है। यहाँ तक कि यदि कुल उपलब्ध संसाधनों को पुनर्चक्रण (Recycling) के माध्यम से स्थिर रखा जाये तब भी जैसे–जैसे जनसंख्या एवं प्रति व्यक्ति उपभोग में वृद्धि होती जाती है, Q का मान घटता जाता है। लोहा, ताँबा, सीसा, टिन, एलुमिनियम जैसे खनिज पदार्थों एवं खनिज तेलों का उपयोग इतना अधिक हो रहा है कि निकट भविष्य में ये पृथ्वी से समाप्त हो जायेंगे। अतः संपूर्ण खनिज पदार्थो के भण्डारों और उनके चक्रों के अनुरूप खनन उद्योगों को योजनाबद्ध करना अत्यन्त आवश्यक हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

26 वन स्थान संरक्षण के अन्तर्गत आते हैं –

(अ) अभ्यारण्य (ब) राष्ट्रीय उद्यान

(क) आरक्षित जीवमण्डल (ड) ये सभी।

27 वन संरक्षण से सम्बन्धित आन्दोलन हैं –

(अ) चिपको (ब) एपिको

(क) उपर्युक्त दोनों (ड) उपर्युक्त में से कोई नहीं

28 मृदा संरक्षण के सस्य वैज्ञानिक उपाय हैं–

(अ) समोच्च तथा आच्छादन खेती (ब) आच्छादन तथा पट्टीदार खेती

(क) फसल चक्रण तथा वेदिकायन (ड) ये सभी

29 जिन स्थानों पर प्रतिवर्ष 100–200 सेमी वर्षा होती हैं वहाँ पाये जाते हैं

(अ) सदाबहार वन (ब) पर्णपाती वन

(क) अनूप वन (ड) इसमें से कोई नहीं।

टिप्पणी

30 कौन – सा स्रोत अनवीनीकृत हैं?

(अ) सोलर (ब) वन

(क) पेट्रोल (ड) वन जीवन।

2.12 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.	(ड)	11.	(क)	21.	(ब)
2.	(अ)	12.	(क)	22.	(ब)
3.	(अ)	13.	(ब)	23.	(ब)
4.	(ब)	14.	(ड)	24.	(ब)
5.	(क)	15.	(अ)	25.	(ड)
6.	(अ)	16.	(ब)	26.	(ड)
7.	(क)	17.	(अ)	27.	(क)
8.	(अ)	18.	(ड)	28.	(ड)
9.	(ब)	19.	(अ)	29.	(ब)
10.	(अ)	20.	(क)	30.	(क)

2.13 सारांश (Summary)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्वच्छजलीय आवास में भौतिक एवं रासायनिक पारिस्थितियाँ जैसे स्थान, अथःस्तर तथा जलवायु का एक विशिष्ट समुच्चयन हैं, जो किसी प्रजाति विशेषः के समूह अथवा एक वृद्द समुदाय के परिवेश का निर्माण करता है। अतः ताजे पानी के आवास वाले जन्तुओं में विभिन्न प्रकार का अनुकूलन पाया जाता है।

उपरोक्त सभी वर्णन से स्पष्ट है कि Fresh water habitat की तरह Terrestrial Habitat भी महत्वपूर्ण आवास जहाँ रहने वाले जीव जन्तुओं भौगोलिक स्थितिओं के अनुसार अपने आपको अनुकूलित करने की क्षमता रखते है या रूपान्तरित हो जाती हैं। स्थलीय आवास जलीय आवास की तुलना में विषम हैं तथा उग्र हैं।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्वच्छजलीय, स्थलीय की तरह समुद्री अपवास की महत्वपूर्ण एवं बडा आवास है, जिसमें विभिन्न प्रकार की विशेषताएँ पायी जाती हैं।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भारत के पारिस्थितिकिय क्षेत्र की विभिन्न–विभिन्न विशेषताएँ पायी जाती हैं।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है की प्राकृतिक संसाधन एव उनका संरक्षण करना हम सभी का नैतिक कर्तव्य हैं पर्यावरण एवं पारिस्थिति तंत्र का सीमित दोहन हो और उसी तुलना में उसकी प्रतिर्पूती बराबर बनी रहे।

टिप्पणी

2.14 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **आवास** – जहाँ जन्तु रहता है, वह स्थान आवास कहलाता है।
- **स्वच्छ जलीय** – ताजे पानी में रहने वाले जीव
- **स्थलीय** – धरती में या जमीन पर रहने वाले जीव।
- **मरूस्थलीय जीव** – ऐसे जीव जहाँ पानी की कमी रहती हैं।
- **टुण्ड्राबायोम** – ठण्डें इलाकों में रहने वाले जीव ।

2.15 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

1 जीव प्लवक ।

2 प्लवक।

3 झील का प्रकाश उपलब्धि के अनुसार स्तरण ।

4 प्रकाश क्षतिपूर्ति क्षेत्र (Compensation zone)।

5 सरितजीवी आवास के अनुकूलन ।

6 प्लवक एवं तरणक।

7 झील के पानी का ऊष्मीय स्तरण।

8 नदी की पारिस्थितिकी

9 परासरण नियमन।

10 (i) कच्छ एवं अनूप (ii) तालाब के प्रकार

11 बायोम्स कितने प्रकार के होते हैं?

12 टुण्ड्रा बायोम्स का संक्षिप्त विवरण देकर समझाइए।

13 टुण्ड्रा बायोम्स और रैन फॉरेस्ट बायोम्स में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

14 गुफाएँ किस प्रकार बनती हैं?

15 ऊँट बिना पानी पिये अधिक दिनों तक रह सकता हैं, क्यों?

16 मरूस्थली का वर्गीकरण कीजिए।

17 मरूस्थलों प्राणियों में अनुकूलन कौन–कौन से हैं?

टिप्पणी

18 मरूस्थली जलवायु की विशेषताएँ लिखिए।

19 समतापी तथा असमतापी जन्तुओं के अन्तर बताइए।

20 महास्थलीय अनुकूलन

21 धूलभरी आँधियों से रेगिस्तानी जीव अपनी रक्षा कर लेते हैं, कैसे?

22 स्थलीय आवास की विशेषताएँ ।

23 संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

(1) पूर्णपाती वन ।

(2) उष्णकटिबन्धीय सदाबहार वन ।

(3) टुण्ड्रा बायोम्स

(4) झाड़ी वन

24 निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

(i) समुद्री आवास के उपभाग।

(ii) वेलापवर्ती अनुकूलन

(iii) इन्टरटाइडल क्षेत्र (Intertidal zone) का जीव समूह और विशेषताएँ।

(iv) हाडल क्षेत्र (Hadal zone)।

(v) सुवेलांचली क्षेत्र (Eulittoral zone)।

(vi) प्लवक व तरणक।

(vii) मेंग्रोव साहचर्य (Mangrove association)।

25 पूर्वी हिमालय उपक्षेत्र के वन्य जीवों का वर्णन कीजिए।

26 अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, प्रकृति और वन्य जीव का वर्णन कीजिए।

27 सुन्दरवन के मैंग्रोव अनूप का वर्णन कीजिए।

28 प्राकृतिक संसाधन एवं उनके संरक्षण पर टिप्पणी लिखिए।

29 प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की क्यों आवश्यकता है? स्पष्ट कीजिए।

30 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

(i) वन संरक्षण (ii) मृदा संरक्षण

(iii) जल संरक्षण (iv) खनिज सम्पदा एवं संरक्षण

31 मृदा संरक्षण के कृषिगत उपाय समझाइए।

32 जल संरक्षण की आवश्यकता क्यों हैं? स्पष्ट कीजिए।

33 जैव विविधता से आप क्या समझते हैं? जैव विविधता के संरक्षण पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

34 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

(i) प्राकृतिक संसाधन (ii) वातावरणीय संरक्षण

(iii) वेदिकायन (iv) जल विभाजक प्रबन्धन

(v) चिपको आन्दोलन

टिप्पणी

35 अपुनर्विकासीय प्राकृतिक स्रोतों का वर्णन कीजिए।

36 किन्हीं दो प्राकृतिक संपदाओं के विषय में लिखिए।

दिर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Question)

1 ताजेपानी के वास स्थान के लक्षणों का उदाहरण सहित वर्णन किजिए।

2 स्वच्छजलीय समुदाय की विभिन्न विशेषताएँ बताइए और अनुकूलनों का वर्णन कीजिए।

3 स्वच्छजलीय समुदाय के विभिन्न सीमाकारी कारकों का वर्णन कीजिए।

4 झील तथा तालाब में अन्तर स्पष्ट करते हुए संक्षेप में वर्णन कीजिये।

5 सरितजीवी आवास तथा स्थिरजलीय आवास स्थलों के जैव–समुदायों में अन्तर बताइए।

6 झील की परिस्थितिकी, वर्गीकरण व उष्मीय स्तर का वर्णन करते हुए उसके अनुकूलनों को बताइए।

7 गतिमय जलीय आवास (नदी) के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन करते हुए उसके अनुकूलन व विशेषताएँ बताइए।

8 प्रवाही जलीय आवास एवं स्थिर जतीय आवास का विशेषताएं एवं अनेक जैव समुदायों की व्याख्या किजिए।

9 स्थलीय आवास का वर्णन कीजिए।

10 मरूस्थलीय बायोम की पारिस्थितिक विशेषआतों का वर्ण्न कीजिए। प्राणियों में मरूस्थलीय अनुकूलन का उल्लेख कीजिए।

11 मरूस्थलीय प्राणि–समूह एवं उनकी अनुकूलताओं का वर्णन कीजिए।

12 बायोम्स का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

13 मुख्य स्थलीय आवास कौन–कौस से हैं? प्रत्येक की भौतिक एवं जैवीय परिस्थितियों तथा उनकी विशिष्टताओं का वर्णन कीजिए।

14 विभिन्न पारिस्थितिक प्रभागों का वर्णन कीजिए।

15 स्थलीय पारिस्थितियों के मुख्य लक्षणों का विवरण दीजिए, जिसमें मरूस्थल का मुख्य रूप में उल्लेख हो।

16 समुद्री आवास के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन करिए।

17 वेलापवर्ती समुद्री क्षेत्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

18 वेलापवर्ती क्षेत्र के उपभाग और उनके जीव समुदायों का वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

19 नितलस्थ (Benthic) क्षेत्र के उपभोग और उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

20 नितलस्य (Benethic) क्षेत्र के जीव समुदायों का वर्णन उसके उपक्षेत्रों के आधार पर कीजिए।

21 गहरे समुद्र (Deep Sea) क्षेत्र (Zone) की लाक्षणिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

22 गहरे समुद्र के जीवों में पाए जाने वाले अनुकूलनों का वर्णन कीजिए।

23 भारत वर्ष को परिस्थितिकीय क्षेत्रों में विभाजित कर उनकी सीमाएँ बताइये।

24 हिमालय का पहाड़ी क्षेत्र और तराई के लक्षण और वन्य जीवों का वर्णन कीजिए।

25 प्रायद्वीपीय भारतीय उपप्रदेश की सीमाएँ और वन्य जीवों का वर्णन कीजिए।

26 उष्ण कटिबन्धीय सदाहरित वन उपप्रदेश की जलवायु, सीमा और वन्य जीवों का वर्णन कीजिए।

27 प्राकृतिक संसाधनों पर एक निबन्ध लिखिए।

28 प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर एक निबन्ध लिखिए।

29 प्राकृतिक संसाधनो तथा उनके संरक्षण पर निबन्ध लिखिए।

30 स्रोत क्या हैं? पुनःनवीकरणीय प्राकृतिक स्रोंतों के विषय में लिखिए।

31 प्राकृतिक संसाधन क्या होते हैं? निरन्तर उपयोगिता के आधार पर प्राकृतिक संसाधनों को वर्गीकृत कीजिए। उनकी संरक्षण विधियेां का वर्णन कीजिए।

32 वनों का हमारे जीवन में क्या महत्व हैं? वन संरक्षण की विस्तृत रूपरेखा समझाइए।

33 मृदा संरक्षण पर सविस्तार प्रकाश डालिए।

34 प्राकृतिक संसाधनों से आप क्या समझते हैं? मृदा तथा जल प्राकृतिक संसाधनों का वर्णन करते हुए उन्हें सुरक्षित रखने के उपाय बताइए।

35 प्राकृतिक संसाधन से आप क्या समझते हैं? वन एवं मृदा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण उपायों का वर्णन कीजिए।

2.16 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Fundamental of Ecology by – E.P. Odum & G.W. Barret.
2. Ecology and Applied Zoology by – S.M. Saxena & Mukesh Dixit.
3. Unified text book Zoology by – J.K. Awasthi.
4. Ecology and Applied Zoology by – Shivesh Pratap Singh & H.N. Baijal.

5. A Text book of Applied Zoology of Apiculture, Sericulture, and their Pest control by – Pradip V. Jabde.
6. Aquaculture by – N. Arumugam.
7. Wild Life in Central India by – S.K. Tiwari.
8. Fish and Fisheries of India by – Jhingaran.
9. Fresh water Aquaculture by – R.S. Rath.
10. Ecology and Environmental Biology by – Pranav Kumar.
11. Ecology and Applied Zoology by – Himalaya Publishing House.

टिप्पणी

टिप्पणी

इकाई 3 वन्य जीव एवं पर्यावरण (Wild Life and Environment)

संरचना (Structure)

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 वन्य जीवन का महत्व
3.3 भारत के प्रमुख वन्य जन्तु
3.4 वन्य जीवन संरक्षण
3.5 भारत में वन्य जीवन का संरक्षण
3.6 वन्य जीवन संरक्षण का प्रबन्धन
3.7 संकटापन्न प्रजातियों के लिए विशिष्ट परियोजनाएँ
3.8 मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ का वन्य जीवन
3.9 भारतीय वन्य जीव मण्डल
3.10 वन एवं वन्य जीवन नियम
3.11 भारत की संकटापन्न प्रजातियाँ
3.12 जैव विविधता का संरक्षण–स्थानास्थ एवं बहिः स्थानास्थ संरक्षण
3.13 प्रदूषण के प्रकारः वायु, जल, मिट्टी/मृदा, तापीय एवं ध्वनि प्रदूषण
3.14 वातावरणीय प्रदूषण
3.15 वायु प्रदूषण
3.16 जल प्रदूषण
3.17 मृदा प्रदूषण
3.18 तापीय प्रदूषण
3.19 शोर प्रदूषण
3.20 प्रदूषण नियन्त्रण
3.21 नगरीकरण तथा मानव जनसंख्या
3.22 मानव जनसंख्या
3.23 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.24 सारांश
3.25 मुख्य शब्दावली
3.26 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.27 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय (Introduction)

आधुनिक युग में वन्य जीवों का संरक्षण करना अति आवश्यक हो गया है क्योंकि एक बार वनों के नष्ट हो जाने पर पर्यावरण में अवांछनीय परिवर्तन आ जायेंगे एवं साथ-साथ ही प्राकृतिक आपदाओं की संभावनाएँ और अधिक बढ़ जायेगी।

टिप्पणी

अतः **"वन्य जीवन"** का तात्पर्य उन सभी प्राणियों तथा पादपों से है जो मनुष्य के नियन्त्रण तथा प्रभुत्व से दूर अपने प्राकृतिक आवासों (Natural habitats) में रहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हम वन्य प्राणियों को सामान्यतया पालतू नहीं बना सकते तथा वन्य पादप सामान्यतया कृषि योग्य नहीं होते।

भारत (8°-30°-N तथा 60°-97.5°E) का कुल क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। यह उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण, दक्षिण–पूर्व एवं दक्षिण–पश्चिम में गहरे सागर द्वारा घिरा हुआ विविध जलवायु वाला देश है। जलवायु की विविधता के साथ–साथ यह जैविक विविधता (Biodiversity) की दृष्टि से भी अति सम्पन्न है। इतनी जैविक विविधता के बावजूद केवल बाघों तथा हाथियों ने ही देश तथा विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। विश्व भर के जीवित जीवों में से कुल 5 प्रतिशत जीव भारत में मिलते हैं हालाँकि सम्पूर्ण विश्व की भूमि में भारतीय भूमि का अनुपात मात्र 2 प्रतिशत ही है। विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या भारत में मिलती है। इतनी अधिक जनसंख्या के कारण यह आवश्यक नहीं है कि जो जैविक विविधता हमारे देश में है वह निरन्तर बनी रहे। 1947 में कुल भूमि का 40 प्रतिशत भाग वनों के रूप में था जो अब वांछित 33 प्रतिशत की अपेक्षा मात्र 19 प्रतिशत ही रह गया है। वन क्षेत्र के कम होने के साथ ही वन्य जीवन भी तीव्रता से प्रभावित हो रहा है और यही कारण है कि अनेक वन्य जन्तु एवं पादप संकटग्रस्त अवस्था में पहुँच गए हैं।

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- वन्य प्राणियों, जंगली जीव जन्तुओं एवं उसके पर्यावरण के महत्व को एवं उपयोगिता को बताना कि मनुष्य के लिए कितने लाभदायक हैं;
- वन्य जीव के महत्व को समझना एवं जैव विविधता बिना कोई परेशानी/अथवा समस्या के सुचारू रुप से बनी रहे, सुरक्षित रहे इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि ओर इशारा करना;
- पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाये रखना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य हैं;
- वन्य जीवन का महत्व मनुष्य के लिए सर्वाधिक हो जैसे–आर्थिक महत्व, वैज्ञानिक महत्व, ऐतिहासिक एवं शैक्षणिक महत्व, सौन्दर्याव्यम एवं सांस्कृतिक महत्व, नैतिक महत्व, औषधीय महत्व आदि उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है;
- 'पर्यावरण संकट' को कम करना, पर्यावरण में मानव एवं जीवों के जैविक घटक एवं अजैविक घटक से बीच सन्तुलन की स्थिति को बनाये रखना मनुष्य का परम उद्देश्य है;
- प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करना, संकटग्रस्त/संकटापन्न जीवों की सूची तैयार करना एवं उन्हें संकट से उबारने का भरसक प्रयास करना।

टिप्पणी

- जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न विभिन्न प्रकार की समस्याओं के परिणामस्वरूप पर्यावरण संकट उत्पन्न हो गया है;
- शहरीकरण (Urbanization) के कारण वनों की अन्धाधुन्ध कटाई, जंगलों के विनाश को कम करना, औद्योगिक, भूमण्डलीकरण के कारण पर्यावरणीय निम्नीकरण की समस्या में ओर अधिक वृद्धि होती जा रही है। जिसे;
- पर्यावरण संरक्षण अधिनियमों नियमों, कानूनों को कटाई से पालन करने पर जोर देना; एवं
- कृषि के क्षेत्रों में रासायनिक कीटनाशकों, पेस्टीसाइड्स के गैर जिम्मेदाराना क्रियाकलापों के फलस्वरूप प्रदूषण, भूमि, बंजर, पर्यावरण गुणवत्ता में भौतिक एवं रासायनिक गुणों में अवांछनीय रूप से परिवर्तन होते जा रहे हैं जिसके घातक परिणाम देखने को मिल रहे हैं यह समझ पाएंगे।

3.2 वन्य जीवन का महत्व (Importance of Wild Life)

सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानव जन्तुओं तथा जन्तु उत्पादों का उपयोग करता चला आ रहा है। अपने मनोरंजन एवं आर्थिक लाभ के लिए मानव बिना सोचे–समझे जन्तुओं का दोहन लगातार करता चला आ रहा है। जिन जन्तुओं की संख्या अधिक है अथवा जिनकी प्रजनन क्षमता अधिक है वे तो कम प्रभावित होते हैं परन्तु अन्य जीव जन्तु इससे इतना अधिक प्रभावित हुए हैं या हो रहे हैं कि उन्हें सुरक्षित एवं संरक्षित रखना आवश्यक हो गया है। वन्य जीवन इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है। वन्य जीवन के निम्नलिखित महत्व हैं।

(1) पर्यावरणीय महत्व (Ecological Value) – पृथ्वी पर सम्पूर्ण जीवन एक है। अपनी विविध जैविक तथा अजैविक पारिस्थितिक पुनर्निवेशन नियन्त्रण प्रक्रियाओं (Ecological feedback control processes) के कारण प्रकृति स्वयं में एक अति सन्तुलित, जीवन आश्रयी तन्त्र है जिसका मानव भी एक हिस्सा है। वन्य जीवन के विनाश से पर्यावरणीय सन्तुलन भंग हो सकता है जिसके परिणाम मानव के लिए अति गम्भीर हो सकते हैं। अतः जीव–जन्तुओं की सुरक्षा एवं संरक्षण जीवन की गुणवत्ता एवं मानव की उत्तरजीविता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि हम वन विनाशन (Deforestation) को देखें तो वन विनाशन न केवल हमारी जलवायु को प्रभावित करता है अपितु वन्य जीवों की सुरक्षा एवं आवास के लिए भी समस्या उत्पन्न करता है तथा इन दोनों अजैविक एवं जैविक प्रभावों का सीधा असर मानव जीवन पर पडता है।

(2) आर्थिक महत्व (Economic Value) – वन्य जीवन एक नवीकरणीय संसाधन (Renewable resources) है जिससे हमें विभिन्न प्रकार के आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं। जल संवर्धन द्वारा उत्पन्न विभिन्न प्रकार के स्वच्छ जलीय एवं समुद्री जन्तु न केवल भोजन की कमी को पूरा करते हैं अपितु अन्य प्रकार से भी आर्थिक लाभ पहुँचाते हैं। चर्बी, तेल, चमड़ा, फर, ऊन, हाथी दाँत, इत्र, औषधियाँ, इमारती

लकड़ी आदि अनगिनत लाभदायक वस्तुएँ हमें वन्य जीवन से प्राप्त होती हैं। मानव रोजगार एवं विदेशी मुद्रा अर्जन में भी वन्य जीवन की अपनी भूमिका है।

टिप्पणी

(3) वैज्ञानिक महत्व (Scientific Value) – वन्य जीवन की अनेक जातियों का वैज्ञानिक अध्ययन मानव कल्याण के लिए महत्वपूर्ण होता है। जीव विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित अनेक प्रायोगिक परीक्षण चूहों, गिनी चूहों (Guinea pigs), शशकों, बन्दरों, कुत्तों, मेढकों आदि पर किये जाते हैं। मानव भ्रूण विज्ञान से सम्बन्धित अध्ययन समुद्री अर्चिन्स (Sea urchin) पर किये गये। इसी प्रकार मृग श्रृंगाभों (Antlers) से प्राकृतिक पर्यावरण में रेडियोधर्मी प्रदूषण की मात्रा ज्ञात करने में सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त कृषि योग्य पादपों एवं पालतू जन्तुओं की नयी उन्नत प्रजातियों के जीनी संवर्धन (Genic culture) हेतु उपयोगी जीन अधिकतर इन पादपों एवं जन्तुओं से मिलती–जुलती जंगली जातियों से प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिये, **नीलापार्वेटा लूगेन्स** (*Nilaparvata lugens*) नामक धान के पीड़क (Paddy pest) को नियन्त्रित करने के लिए हुए शोध से यह ज्ञात हुआ कि केरल की कुछ पुरानी प्रजातियों में एक प्रतिरोधक जीन (Resistant gene) पायी जाती है जिसके कारण ये प्रजातियाँ उपर्युक्त पीड़क से अप्रभावित रहती हैं। तब इस प्रतिरोधक जीन को धान की आधुनिक प्रजातियों में प्रविष्ट कराकर उन्हें पीड़क के प्रकोप से मुक्त कराया गया।

(4) ऐतिहासिक एवं शैक्षिक महत्व (Historical and Educational Value) – प्रकृति जीव–जातियों के एक संग्रहालय के समान है जो अपने अन्दर जैव उद्विकास (Original evolution) की गाथा सँजोये हुए है। वन्य जीवन का उद्विकास के अध्ययन में अपना एक अलग स्थान है जिसका संरक्षण भी ऐतिहासिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है।

(5) सौन्दर्यात्मक एवं सांस्कृतिक महत्व (Aesthetic and Cultural Value) – वन्य जीवन अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक होता है। एक से बढ़कर एक सुन्दर एवं सुरीले पशु–पक्षी एवं रमणीक वन न केवल शान्ति एवं उल्लास की अनुभूति प्रदान करते हैं अपितु कवियों, लेखकों, चित्रकारों एवं मूर्तिकारों के लिए प्रेरणादायक होते हैं। संभरित जन्तु (Stuffed animals) तथा जन्तुओं के सिरों विशेष रूप से बाघ, सिंह, चीता, भालू, हिरन, बारहसिंगा आदि को सजाना शाही शौक रहा है। सांभर, चीतल, बारहसिंगा और जंगली भैसों के सींगो को घरों में लगाया जाता है।

(6) नैतिक महत्व (Ethical Value) – पृथ्वी की वर्तमान वन्य सम्पदा लगभग 3.7 अरब वर्ष के जैव उद्विकास का परिणाम है। इसकी किसी भी विकसित जाति का पुनः विकास होना असम्भव है अतः मानव के लिए किसी जाति को नष्ट करना अथवा नुकसान पहुँचाना घोर अनैतिक एवं समस्त सम्पदा का संरक्षण करना नैतिक कर्त्तव्य है।

(7) औषधीय महत्व (Medicinal Value) – पेरू देश के सिनकोना (Cinchona) वृक्ष की छाल में क्विनीन (Quinine), पेनीसिलियम (Penicillium) के प्रतिजैविक (Antibiotic) गुण, रीसस (Rhesus) बन्दर, चिम्पान्जी

(Chimpanzee) का टीकों, गर्भ निरोधकों आदि चिकित्सीय क्षेत्र में किये जाने वाले उपयोग ये सभी उदाहरण वन्य जीवन के औषधीय महत्व के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

टिप्पणी

3.3 भारत के प्रमुख वन्य जन्तु (Important Wild Animals of India)

भारतीय उपमहाद्वीप अपनी अद्वितीय प्राकृतिक सुन्दरता, भौगोलिक, पर्यावरणीय एवं जैविक विविधता के लिए सम्पूर्ण विश्व में जाना जाता है। अफ्रीका के अतिरिक्त भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ जैव उद्विकास एवं वन्य जीवन के लिए आवश्यक वातावरणीय दशाओं की विविधता रही है। इस प्रकार भारत वन्य जीवन की प्रचुरता में विश्व में अग्रणी स्थान रखता है। यहाँ स्थलीय कशेरुकी जन्तुओं के लगभग 123 कुल (Families) पाये जाते हैं। एक आंकलन के अनुसार भारत में मछलियों की 2500, उभयचरों तथा सरीसृपों की 500, पक्षियों की 1200, स्तनियों की 350 तथा कीटों की 30,000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

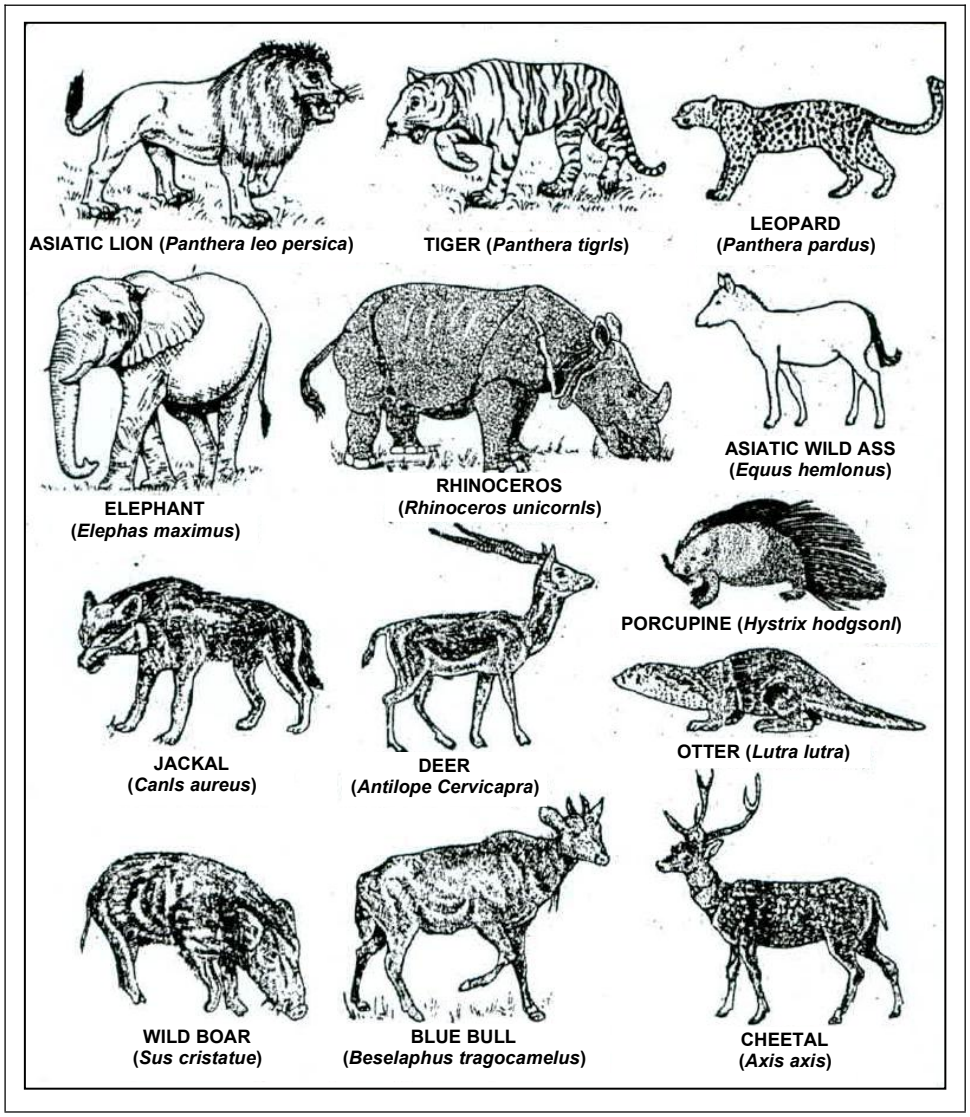

चित्र क्र. 3.1: Important Indian Wild Animals

टिप्पणी

काला कुरंग, **एन्टीलोप सर्विकैप्रा** (Black buck, *Antelope cervicapra*), नीलगिरि टाहर, **हेमीट्रेगस हाइलोक्रिनस** (Nilgiri tahr, *Hemitragus hyalocrinus*), क्षुद्र सूकर, **सस सल्वैनियस** (Pigmy hog, *Sus sulvanius*), सुनहरा लंगूर, **प्रेस्बाइटिस गीआई** (Golden Langur, *Presbytis geei*), सिंहपुच्छी मैकाक, **मैकाका साइलेनस** (Lion-tailed macaque, *Macaca silenus*), वृहद भारतीय हुकना, **कोरियोटिस नाइग्रिसेप्स** (Great Indian bustard, *Choriotis nigriceps*) आदि भारत में पाये जाने वाले निराले जन्तुओं के कुछ उदाहरण हैं। अन्य विशिष्ट भारतीय वन्य जन्तु हैं–हाथी, **एलिफैस मैक्सिमस** (Elephant, *Elephas maximus*), गेंडा, **राइनोसेरॉस यूनीकॉर्निस** (Rhino, *Rhinoceros unicornis*), हिरण जैसे कस्तूरी मृग **मॉस्कस मॉस्चीफेरस** (Musk deer, *Moschus moschiferus*), चूहा मृग या भारतीय हरिणक, **ट्रैगुलस मेमिन्ना** (Mouse deer or Indian chevrotain, *Tragulus meminna*), अनूप या दलदली हिरण, **सर्वस डुवाओसेलाई** (Swamp deer, *Cervus duvauceli*), हांगुल या काश्मीरी महामृग, **सर्वस एलिफस हंगलू** (Kashmiri stag, *Cervus elephas hanglu*), थामिन, **सर्वस एल्डी एल्डी** (Thomin, C., *eldi eldi*); सांभर, **सर्वस यूनीकलर** (Dancing deer, *C. unicolor*), कुरंग (Antelopes); जैसे काला कुरंग (Black buck), **चौसिंघा, ट्रेट्रासेरस क्वाड्रीकॉर्निस** (4-horned antelope, *Tetraceros quadricornis*), भारतीय चिंकारा, **गजेला गजेला बेनेटाई** (Indian gazelle, *Gazella gazella bennetti*), नील गाय, **बोसिलेफस ट्रैगोकैमेलस** (Blue bull, *Boselaphus tragocamelus*), जंगली भैंस, **बुबैलस बुबैलिस** (Wild buffalo, *Bubalus bubalis*), जंगली बकरी, **कैप्रा साइबेरिका** (Wild goat, *Capra siberica*), जंगली सूअर, सस स्क्रोफा (Wild boar, *Sus scrofa*), जंगली गधा, **इक्वस हेमिओनस कियांग** (Wild ass, *Equus hemionus kiang*), मांसाहारी, जैसे शेर, बाघ, तेंदुआ, लकड़बग्घा (Hyena) सियार, **कैनिस ऑरियस** (Jackal, *Canis aureus*), भेड़िया **कैनिस लूपस** (Wolf, *Canis lupus*), मरुस्थलीय बिल्ली, **फेलिस लीबिका** (Desert cat, *Felis lybica*), मरुस्थल लोमड़ी **वुल्पीज वुल्पीज** (Desert Fox, *Vulpes vulpes*); भालू (Bear), बन्दर तथा कपि (Monkeys and apes), जैसे नीलगिरि लंगूर, **प्रेस्बाइटिस जौहनी** (Nilgiri Langoor, *Presbytis johni*), रीसस बन्दर, **मैकाका मुलाटा** (Rhesus monkey, *Macaca mulatta*), हनुमान बन्दर, **सेम्नोपिथिकस एन्टेलस** (*Semnopithecus, entellus*), सेही, **हिस्ट्रिकस हॉजसोनाई** (Porcupine, *Hystrix hodgsoni*), अनेक प्रकार के पक्षी, छिपकलियाँ, साँप एवं मेंढक आदि।

टिप्पणी

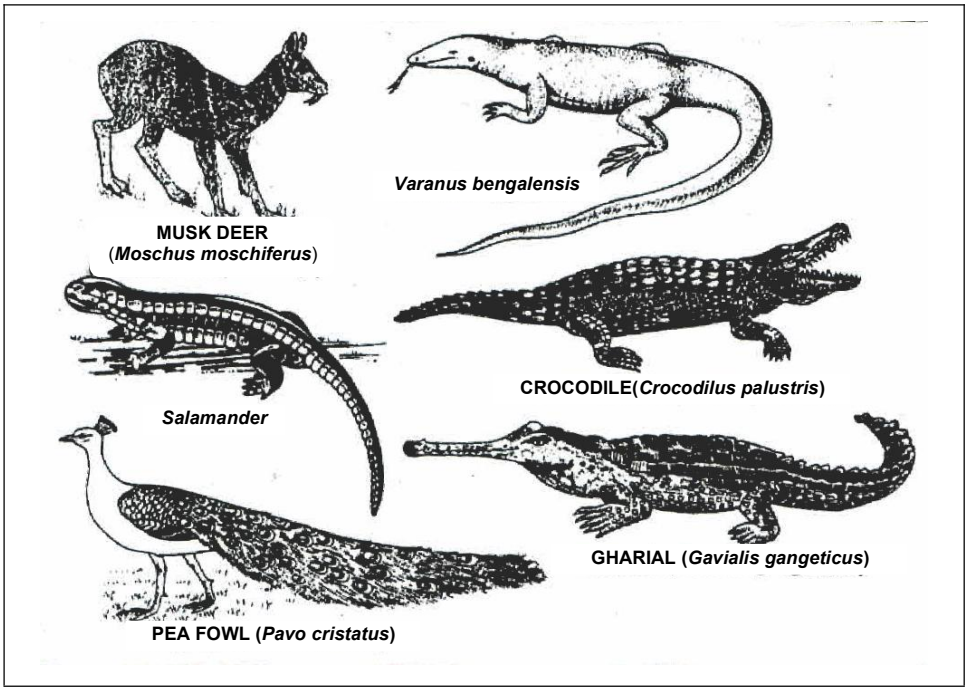

चित्र क्र. 3.2: Important Indian Wild Animals

वन्य जन्तुओं की विलुप्ति (Extinction of Wild Animals)

आदिकाल से ही जन्तुओं की विभिन्न जातियाँ प्राकृतिक कारणों से विलुप्त होती रही हैं; जैसे–एमोनाइट्स (Ammonites), दैत्याकार सिफैलोपॉडस (Caphalopods), ब्रैकियोपॉडस (Brachiopods) तथा डाइनोसॉर्स (Dinosaurs) मानव के आगमन से पूर्व ही मध्यजीवी कल्प (Mesozoic era) के समाप्त होते–होते विलुप्त हो गये, परन्तु बढ़ती मानव जनसंख्या के साथ बढ़ते शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं कृषि के कारण मानव ने वन्य जीवन एवं उनके प्राकृतिक आवासों का पूर्णरूपेण दोहन किया है। प्राकृतिक आवासों के संहार के साथ ही उनका प्रदूषण भी मानव कृत्यों के कारण निरन्तर होता चला आ रहा है। परिणामस्वरूप जन्तु जातियों के विलोपन की गति लगातार बढ़ती जा रही है और अनेक जन्तु विलोपन के कगार पर पहुँचते जा रहे हैं। इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सत्रहवीं, अठारहवीं एवं उन्नीसवीं सदी में जन्तुओं की क्रमशः सात, ग्यारह एवं सत्ताइस जातियाँ विलुप्त हुईं जबकि अकेले बीसवीं सदी में जन्तुओं की सरसठ जातियाँ विलुप्त हुईं।

मानव प्रकृति एवं जीव–जातियों का सबसे बड़ा शत्रु है। मानव द्वारा वन्य जीवन के विनाश के विभिन्न कारण निम्नलिखित दो श्रेणियों के अन्तर्गत आते हैं–

(1) प्रत्यक्ष विनाश (Direct Destruction) – मांस, सुरक्षा, क्रीड़ा, मनोरंजन, गौरव, उपहार, स्मारक आदि के लिए मानव द्वारा वन्य जन्तुओं के आखेट (Hunting) को सदा से प्रोत्साहित किया गया है। शेर, बाघ, तेंदुआ, भेड़िया, भालू आदि महत्वपूर्ण वन्य जन्तुओं का शिकार राजाओं, महाराजाओं, अफसरों द्वारा किया जाता रहा है। सुरक्षा की दृष्टि से अथवा पशुधन को सुरक्षित रखने के लिए भी इनका वध किया जाता रहा है। चमड़ा, समूर या फर, हाथी दाँत, औषधियाँ,

प्रसाधनों, सुगन्ध द्रव्यों, साज–सज्जा, स्मृति चिह्नों तथा संग्रहालय निदर्शों के लिये भी वन्य जीवों का अन्धाधुन्ध शिकार किया गया। ह्वेलों को प्रसाधनों एवं साबुन उद्योगों में प्रयुक्त होने वाली वसा के लिये हजारों की संख्या में प्रतिवर्ष मारा जाता है इसी प्रकार हाथीदाँत (Ivory) के लिये हाथियों का, कामोत्तेजक (Aphrodisiac) औषधियों के संश्लेषण में प्रयुक्त सींग के लिए गेंडे (Rhinoceros) का, कस्तूरी के लिए कस्तूरी मृगों (Musk deers) का, फर या समूर के लिए हिमालयी हिमचीते (Himalayan Snow-leopard) का, चमड़े के लिये बाघों, लोमड़ियों, सांभरों, घड़ियालों, साँपों आदि का व्यापक पैमाने पर वध निरन्तर होता चला आ रहा है। इसी प्रकार शिक्षा एवं अनुसंधानों के लिये मेंढकों, चूहों, गिनी चूहों, रीसस बन्दरों, सर्पों, कीटों आदि का व्यापक उपयोग किया जा रहा है जिसके कारण आज ये संकटग्रस्त अवस्था में पहुँच गये हैं।

(2) अप्रत्यक्ष विनाश (Indirect Destruction) – वन्य जीवन के अप्रत्यक्ष रूप से विनाश के भी अनेकानेक कारण हैं इनमें सर्वाधिक प्रमुख कारण है मनुष्य की निरन्तर बढ़ रही जनसंख्या की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होने वाला भूमि अधिग्रहण। जैसे–जैसे मानव जनसंख्या में वृद्धि होती गयी, आवास, कृषि, ईंधन एवं औद्योगीकरण आदि की आवश्यकताओं में भी वृद्धि होती गयी। परिणामस्वरूप वनोन्मूलन (Deforestation), आवासों का विनाश, मरुस्थलों का प्रसार आदि से आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास मानव करता चला गया जिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव वन्य जीव–जन्तुओं पर पड़ा और उनकी संख्या में लगातार कमी आती चली गयी। कीटनाशकों के प्रयोग ने एवं अन्य प्रकार के वातावरणीय प्रदूषण ने भी वन्य जीवों का विनाश ही किया है।

संकटग्रस्त जातियों की अवधारणा (Concept of Threatened Species)

यह अवधारणा वन्य जीवन के सन्दर्भ में स्थापित हुई है। प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय संघ (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources = IUCN) ने पादपों एवं जन्तुओं को वर्तमान एवं भूतकालीन वितरण, जीवसंख्या घनत्व में कमी, प्राकृतिक आवासों की प्रचुरता एवं क्षमता तथा जाति की अपनी जैविकी (Biology) तथा सम्भावित महत्व (Potential value) के आधार पर निम्नांकित 6 श्रेणियों में बाँटा है–

(1) संकटापन्न जातियाँ या वर्गक (Endangered Species or Taxa) – वे जातियाँ अथवा वर्गक जो विलोपन के कगार पर हैं तथा यदि उनके विनाश के कारण नियन्त्रित न किये गये तो उनकी उत्तरजीविता (Survival) समाप्त हो सकती है, संकटापन्न जातियाँ या वर्गक की श्रेणी में आते हैं। इनकी संख्या एवं आवास इतना कम हो चुका हो कि वे लुप्तप्राय हो गये हों। भारत में सर्वाधिक संकटापन्न जातियाँ हैं – एकसिंघी गेंडा (Greater one horned Rhinoceros), नीलगिरि टाहर (Nilgiri Tahr), बंगाल टाइगर (Bengal tiger), एशियाटिक शेर (Asiatic lion), ब्लैक बक (Black buck), सिंहपुच्छी मैकाक (Lion tailed

टिप्पणी

Macaque) तथा स्नो लेपर्ड (Snow leopard)। भारत में पायी जाने वाली अन्य संकटापन्न जातियाँ हैं– भारतीय हाथी (Indian elephant), गौर (Gaur), तिब्बती एंटीलोप (Tibetan Antelope), गंगा नदी डॉलफिन (Ganga River Dolphin), ग्रेट भारतीय बस्टर्ड (Great Indian bustard) तथा जंगली उल्लू (Forest owlet)।

(2) अतिसंवेदनशील जातियाँ या वर्गक (Vulnerable Species or Taxa) – वे जातियाँ अथवा वर्गक जिन्हें दुष्प्रभावित करने वाले कारक यदि जारी रहे तो वे संकटापन्न श्रेणी में प्रवेश कर सकते हैं, अतिसंवेदनशील श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं; जैसे– केकड़ाभक्षी बन्दर (Crab-eating macaque), सुनहरा लंगूर (Golden langur), रक्त फेजेण्ट (Blood pheasant) आदि।

(3) विरल जातियाँ या वर्गक (Rare Species or Taxa) – वे जातियाँ अथवा वर्गक जिनकी केवल कुछ ही छोटी–छोटी जीवसंख्या दूर–दूर फैली हुई हों तथा किसी भी समय अतिसंवेदनशील या संकटापन्न हो सकती हों, विरल श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं; जैसे– भारतीय अण्डभक्षी सर्प (Indian egg-eating snake), भारतीय शबल धनेश (Indian pied hornbill), सुनहरी बिल्ली (Golden cat) तथा हिमालयी सेही (Himalayan porcupine)।

(4) संकटग्रस्त जातियाँ या वर्गक (Threatened Species or Taxa) – वे जातियाँ अथवा वर्गक जिनका कि पृथ्वी पर अस्तित्व मनुष्य द्वारा इनके वास–स्थानों अथवा स्वयं इनके सदस्यों के व्यापक विनाश के कारण अनिश्चित हो गया हो अर्थात् जो संकटापन्न, संवेदनशील अथवा विरल श्रेणी के अन्तर्गत रखे गये हों, इस श्रेणी में आते हैं।

(5) संकटमुक्त जातियाँ या वर्गक (Out of danger Species or Taxa) – उपर्युक्त में से किसी भी श्रेणी के अन्तर्गत रखी गयी जातियाँ या वर्गक जो अब प्रभावी संरक्षण के कारण सुरक्षित या संकटमुक्त हो गयी हों।

(6) मध्यवर्ती जातियाँ या वर्गक (Intermediate Species or Taxa) – ऐसी जातियाँ या वर्गक जिनके प्रथम तीन में से किसी एक श्रेणी में आने का संशय हो परन्तु उनके विषय में अपूर्ण जानकारी उपलब्ध हो, इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं; जैसे– हॉग बैजर (Hog badger), भारतीय पैंगोलिन (Indian pangolin) आदि।

भारत में वन्य प्राणियों की संकटग्रस्त जातियाँ (Threatened Species of Wild Life in India)

प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय संघ या आई. यू. सी. एन. (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources or IUCN) की लाल आँकड़ा पुस्तक (Red Data Book) के अनुसार भारत में इस समय 137 प्रजातियाँ संकटग्रस्त अवस्था में हैं जिनमें 81 प्रजातियाँ स्तनियों (Mammals) की, 38 प्रजातियाँ पक्षियों (Birds) की तथा 18 प्रजातियाँ उभयचरों (Amphibians) तथा सरीसृपों (Reptiles) की हैं। इसके अतिरिक्त अनेक

अकशेरुकी प्राणी भी संकटग्रस्त अवस्था में हैं। सर्वाधिक संकटग्रस्त प्राणियों जिनके विलोपन की आशंका है की सूची सारणी 3.1 में दी जा रही है–

सारणी क्र. 3.1: भारत के संकटग्रस्त वन्य जन्तु

टिप्पणी

(a) स्तनी (Mammals)

1. भाराल (Bharal), **ओविस नैहूरा** (*Ovis nahura*)
2. बिसन या गौर या मिथुर, **बॉस गौरस** (*Bos gaurus*)
3. कृष्ण सार या काला हरिण (Black buck), **एन्टीलोप सर्विकैप्रा** (*Antelope cervicapra*)
4. टोपीधारी लंगूर, **प्रेस्बाइटिस पाइलीएटस** (*Presbytis pileatus*)
5. कैराकल (Caracal), **फेलिस कैराकल** (*Felis caracal*)
6. चिंकारा (Chinkara) या भारतीय गजेल (Indian gazelle), **गजेला गजेला बेनेटी** (Gazella gazella bennetti)
7. चीतल, **ऐक्सिस ऐक्सिस** (*Axis axis*)
8. लमचित्ता तेंदुआ (Clouded leopard), **निओफेलिस नेबूलोसा** (*Neofelis nebulosa*)
9. केकड़ा–भक्षी मैकाक, **मैकाका आइरस अम्ब्रोसा** (*Macaca irus umbrosa*)
10. चौसिंघा बारहसिंगा (4-horned antelope), **टेट्रासेरस क्वाड्रीकॉर्निस** (*Tetracerus quadricornis*)
11. गंगा डॉल्फिन, **प्लैटेनिस्टा गैन्जेटिका** (*Platanista gangetica*)
12. बृहत गिलहरियाँ, **रैटुफा मैक्राउरा** (*Ratufa macroura*), रै, इण्डिका (*R. indica*) रै. बाइकलर (*R. bicolor*)
13. स्वर्णाभ (Golden) बिल्ली, **फेलिस टेमिंकी** (*Felis temmincki*)
14. स्वर्णाभ लंगूर, **प्रेस्बाइटिस गीआई** (*Presbytis geei*)
15. हिमालयी काला भालू, **सेलेनार्कटोस टिबैटैनस** (*Selenarctos tibetanus*)
16. हिमालयी भूरा भालू, **अर्सस आर्कटोस** (*Ursus arctos*)
17. हिमालयी शिखरहीन सेही, **हिस्ट्रिक्स होजसोनी** (*Hystrix hodgsoni*)
18. हिमालयी टहर (Tahr), **हेमिट्रैगस जेम्लेहीकस** (*Hemitragus jemlahicus*)
19. दृढ़लोमी शशक (Hispid hare), **कैप्रोलैगस हिस्पिडस** (*Caprolagus hispidus*)
20. हुलुक या गिब्बन, **हाइलोबेट्रीज हुलुक** (*Hylobates hoolock*)
21. लकड़बग्घा या हाईना, **हाईना हाईना** (*Hyaena hyaena*)
22. भारतीय हाथी, **एलिफैस मैक्सिमस** (*Elephas maximus*)
23. भारतीय सिंह, **पैन्थेरा लिओ पर्सिका** (*Panthera leo persica*)
24. भारतीय पैंगोलिन, **मैनिस क्रैसिकॉडेटा** (*Manis crassicaudata*)
25. भारतीय जंगली गधा, **ईक्वस हेमिओनस खर** (*Equus hemionus khur*)
26. भारतीय भेड़िया, **कैनिस लूपस** (*Canis lupus*)
27. कश्मीरी महामृग (Stag) या हंगुल (Hangul), **सर्वस एलिफस हैंगलू** (*Cervus elephus hanglu*)
28. तेंदुआ या पेन्थर, **पैन्थेरा पार्डस** (*Panthera pardus*)
29. लघु या लाल पंडा, **एल्युरस फ्यूलजेंस** (*Ailurus fulgens*)
30. सिंहपुच्छी मैकाक, **मैकाका साइलेनस** (*Macaca silenus*)
31. लोरिस (Loris), **लोरिस टार्डिग्रेडस** (*Loris tardigradus*)

टिप्पणी

32. मलाबार सिवेट (Civet), **विवेरा मेगैसपाइला** (*Viverra megaspila*)
33. कस्तूरी मृग, **मोस्कस मोस्किफेरस** (*Moschus moschiferus*)
34. नीलगाय, **बोसेलेफस ट्रेगोकैमेलस** (*Boselaphus tragocamelus*)
35. नीलगिरी लंगूर, **प्रेस्बाइटिस जोहनी** (*Presbytis johni*)
36. नीलगिरी टहर, **हेमिट्रैगस हाइलोक्रिनस** (Hemitragus hylocrinus)
37. ऊदबिलाव (Otters), **लट्रा लट्रा** (*Lutra lutra*), **ल. पर्सपिसिलैटा** (*L. perspicillata*), **ऐओनिक्स सिनेरिअर** (*Aonyx cinerea*)
38. सुअर–पुच्छा मैकाक, **मैकाका नेमेस्ट्रिना** (*Macaca nemestrina*)
39. क्षुद्र सुकर (Pigmy hog), **सस सल्वैनियस** (*Sus sulvanius*)
40. लाल लोमड़ी, **वल्पीज वल्पीज** (*Vulpes vulpes*)
41. गैंडा, **राइनोसिरस यूनिकॉर्निस** (*Rhinoceros unicornis*)
42. सांभर, **सर्वस यूनीकलर** (*Cervus unicolor*)
43. स्लोथ भालू, **मेलर्सस अर्सिनस** (*Melursus ursinus*)
44. हिम तेंदुआ, **पैन्थेरा अन्सिया** (*Panthera uncia*)
45. अनूपी मृग (Swamp deer) या गोंड, **सर्वस डूवासेली** (*Cervus duvauceli*), सभी जातियाँ
46. तिब्बती लोमड़ी, **वल्पीज फेरिलेटस** (*Vulpes ferrilatus*)
47. तिब्बती जंगली गधा, **ईक्वस हेमिओनस किआंग** (*Equus hemionus kiang*)
48. बाघ (Tiger), **पैन्थेरा टाइग्रिस** (*Panthera tigris*)
49. जंगली भैंस, **बुबैलस बुबैलिस** (*Bubalus bubalis*)
50. जंगली कुत्ता या ढोली (Dhole), क्यूऑन ऐल्पाइनस (*Cuon alpinus*)
51. वन्य सूअर, **सस स्क्रोफा** (*Sus scrofa*)
52. वन्य याक, **बॉस ग्रनिएन्स** (*Bos grunniens*)

(b) उभयचर (Amphibia)

1. हिमालयी न्यूट या सैलामैंडर, **टाइलोट्राइटॉन वैरेनकोसस** (*Tylotriton varrencosus*)
2. टोड (Bufo)

(c) सरीसृप (Reptiles)

1. ज्वारनदमुखी (Estuarine) मगर, **क्रोकोडाइलस पोरोसस** (*Crocodilus porosus*)
2. घड़ियाल, **गैविएलिस गैंजेटिकस** (*Gavialis gangeticus*)
3. चर्मिल कूर्म (Leathery turtle), **डर्मोकीलिस कोरिएसिआ** (*Dermochelys coriacea*)
4. कच्छ (Marsh) मगर, **क्रोकोडाइलस पैलूस्ट्रिस** (*Crocodilus palustris*)
5. मॉनीटर छिपकलियाँ, **वैरेनस ग्रिसीयस** (Varanus griseus), **वै. बेंगालेंसिस** (*V. bengalensis*), **वै. फ्लेवेसेंस** (V. flavescens), **वै. साल्वेटर** (*V. salvatar*), **वै. नेब्यूलोसस** (*V. nebulosus*)
6. अजगर (Pythons), पाइथन मोलुरस (*Python molurus*), पा. रेटिकुलेटस (*P. reticulatus*)

(d) पक्षी (Birds)

1. चीयर फेजेन्ट, **कैट्रियस वालिकाई** (*Catreus wallichii*)
2. बृहद् भारतीय हुकना (Bustard), **कोरिओटिस नाइग्रिसैप्स** (*Choriotis nigriceps*)

3. बृहद् भारतीय धनेश (Hornbill), **ब्यूसेरॉस बाइकॉर्निस** (*Buceros bicornis*)
4. जर्डन का क्षिप्रचला (Jerdon's courser), **कर्सोरियस बाइटोरक्वैटस** (*Cursorius bitorquatus*)
5. बड़े बाज (Falcons), **फैल्को पेरिग्रिनस** (*Falco perigrinus*), **फै. बाइआर्मिकस** (*F. biarmicus*)
6. पर्वतीय बटेर (Quail), **ओपैसिया सुपरसिलिओसा** (*Oppassia supercilliosa*)
7. मोर (Peafowl), **पैवो क्रिस्टेटस** (*Pavo cristatus*)
8. गुलाबी–सिर वाली बत्तख, **रोडोनेसा कैरिओफिलेसिआ** (*Rhodonessa caryophyllacea*)
9. साइबेरियाई सफेद सारस (Crane), **ग्रस ल्यूकोजेरैनस** (*Grus leucogeranus*)
10. ट्रैगोपैन फेजेन्ट्स **ट्रैगोपैन स्पीशीज** (*Tragopan species*)

टिप्पणी

(e) सब जातियों के रंजकहीन और कृष्ण प्राणी
(Albino and Melanic Individuals of all Species)

3.4 वन्य जीवन संरक्षण (Wild Life Conservation)

वन्य जीवन पर्यावरण के अनिवार्य अंग हैं। जीवन तथा पर्यावरण के मध्य सन्तुलन को बनाये रखने के लिए वन्य जीवन का अस्तित्व में रहना नितान्त आवश्यक है। किन्तु सिमटते प्राकृतिक परिवेश, अवैध शिकार, तीव्र औद्योगीकरण, फर, खाल, मांस हड्डी, दाँत आदि की राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी आदि के चलते आज वन्य प्राणियों के समक्ष अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो चुका है। विश्व सहित भारत में भी वन्य जीवों की कई प्रजातियाँ या तो विलुप्त हो चुकी हैं या फिर विलुप्त होने के कगार पर हैं। यही कारण है कि आज वन्य जीवन के संरक्षण के लिये राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अराजकीय एवं राजकीय संगठनों द्वारा अनेकानेक प्रयास किये जा रहे हैं।

संरक्षण का अर्थ है सुरक्षित बनाये रखना अर्थात् किसी वस्तु को क्षति अथवा नष्ट होने से बचाये रखना। प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों (Nature and natural resources) के सन्दर्भ में संरक्षण का आशय सम्पूर्ण जीवमण्डल के संरक्षण से है ताकि इन संसाधनों को नुकसान पहुँचाये बिना, पीढ़ी–दर–पीढ़ी मानव कल्याण हेतु इससे अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सके।

संरक्षण की योजना (Conservation Strategy)

विभिन्न देशों के संरक्षण विशेषज्ञों के अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में संरक्षण की एक व्यापक योजना बनाई गयी जिसके क्रियान्वयन हेतु अग्रलिखित कदम उठाने हेतु आम सहमति बनी–

(1) वन्य जीवन का संरक्षण प्राकृतिक आवास स्थलों (स्वस्थाने) में ही नहीं अपितु जन्तुशालाओं (Zoological parks) तथा वनस्पति उद्यानों (Botanical gardens) में स्थापित कृत्रिम आवास स्थलों (बहिःस्थाने) में भी किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

(2) सभी प्रकार की संकटग्रस्त जीव–जातियों के संरक्षण के प्रयास होने चाहिए परन्तु ऐसी जीव–जातियों कों वरीयता देनी चाहिए जो अपने वर्गीकरण समूह (श्रेणी, कुल, गण, वर्ग आदि) के अकेले प्रतिनिधि हों तथा संरक्षण के लिए सर्वप्रथम संकटापन्न (Endangered), फिर असुरक्षित (Vulnerable), तथा फिर विरल (Rare) जातियों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(3) संरक्षण के लिये प्राथमिकताएँ निर्धारित करते समय जाति के आर्थिक महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिए।

(4) हमारे घरेलू पशुओं और लाभदायक पादपों से मिलती–जुलती सभी जंगली जातियों का संरक्षण होना चाहिए ताकि ये जातियाँ आवश्यकता पड़ने पर लाभदायक जातियों की उन्नत प्रजातियों को विकसित करने में जीनी बैंक (Gene bank) के रूप में काम आ सकें।

(5) संरक्षण योजना किसी भी प्राकृतिक क्षेत्र की एक या एक से अधिक चुनिन्दा जीव–जातियों के लिये न होकर क्षेत्र के सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र के लिए होनी चाहिए। इनके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्व रखने वाले पारिस्थितिक तन्त्रों को प्राथमिकता के आधार पर संरक्षण प्रदान करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर आस्ट्रेलिया के पारिस्थितिक तन्त्र को संरक्षण से सम्बन्धित प्राथमिकता इसलिए देनी चाहिए क्योंकि प्रोटोथीरिया (Protoheria) एवं मेटाथीरिया (Metatheria) स्तनी इसी देश में हैं।

(6) उन प्राकृतिक क्षेत्रों का भी संरक्षण होना चाहिए जो प्रवासी जन्तुओं के मार्गों में आते हैं। प्रवासी जन्तुओं के भिन्न–भिन्न देशों में स्थित आवास स्थलों हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मिलित प्रयास किये जाने चाहिए।

(7) सभी प्रकार के संरक्षण क्षेत्रों के समस्त अजैविक कारकों; जैसे–जल, वायु, प्रकाश, मृदा आदि पर भी सम्पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिए।

(8) यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कहीं पादप तथा प्राणि उत्पादों के लिए पारिस्थितिक तन्त्र के दोहन की दर इनके नवीकरण की दर से अधिक तो नहीं हैं। यदि अतिदोहन (Overexploitation) हो तो इसे कठोर दण्ड प्रक्रियाओं द्वारा रोका जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त समस्त पादप एवं जन्तु उत्पादों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अन्तर्गत होने चाहिए।

(9) समस्त प्राकृतिक आवास स्थलों को आरक्षित क्षेत्र घोषित करके इनकी सुरक्षा हेतु कठोर नियम बनाने चाहिए।

(10) वन्य जन्तुओं के शिकार पर सामान्यतया प्रतिबन्ध होना चाहिए और अवैध शिकार (Poaching) के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

(11) जीवनमण्डल के विनाश से होने वाले सम्भावित संकटों एवं संरक्षण से होने वाले लाभों को आम जनमानस तक पहुँचाने के लिए व्यापक कार्यक्रम चलाने चाहिए।

(12) राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बनाई गयी संरक्षण योजनाओं के क्रियान्वयन, नियन्त्रण एवं नियमन के लिए उपयुक्त समितियों एवं संगठनों की स्थापना होनी चाहिए।

टिप्पणी

3.5 भारत में वन्य जीवन का संरक्षण (Conservation of Wild Life in India)

अंग्रेजी शासन ने अपने शासन काल में वन्य जीवन के लिए कुछ सरकारी अधिनियम बनाये; जैसे–मद्रास वाइल्ड एलीफैन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट, 1873 (Madras Wild Elephant Preservation Act, 1873), ऑल इण्डिया एलीफैन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट, 1879 (All India Elephant Preservation Act, 1879), द वाइल्ड बर्ड्स एण्ड एनिमल्स प्रोटेक्शन एक्ट, 1912 (The Wild Birds and Animals Protection Act, 1912), तथा बंगाल राइनोसेरॉस प्रिजर्वेशन एक्ट, 1932 (Bengal Rhinoceros Preservation Act, 1932), आदि, परन्तु इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार द्वारा उठाये गये। सन् 1949 में केन्द्र सरकार ने देश के वन्य जीवन संसाधनों के संरक्षण हेतु सरकार को उपयुक्त सुझाव देने के लिए वन्य जीवन केन्द्रीय परिषद् (Central Board for Wild Life) का गठन किया जिसे 1952 में वन्य जीवन भारतीय परिषद् (Indian Board for Wild Life) या IBWL के नाम से जाना जाने लगा। इसके पश्चात् केन्द्र सरकार ने 1972 में वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम [Wild Life (Protection) Act, 1972] बनाया जिसे 1991 में एक बार संशोधित किया गया। इस अधिनियम द्वारा सरकार ने वन्य जीवन के वैधानिक संरक्षण, अभ्यारण्यों के राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीय उद्यानों एवं प्राणिविहारों की स्थापना और वन्य जन्तुओं का चोरी से शिकार करने वालों को कठोर दण्ड देने के अधिकार प्राप्त किये। शासन ने भारतीय संविधान में बयालीसवाँ संशोधन (42nd amendment in Indian Constitution) करके वन्य जीवन के संरक्षण एवं जंगलों के अधिग्रहण सम्बन्धी अधिकार प्राप्त किये। सन् 1980 में वन (संरक्षण) विधेयक [Forest (Conservation) Bill, 1980] द्वारा केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना किसी भी जंगल का किसी भी कार्य के लिए विनाश करना प्रतिबन्धित किया।

इसी प्रकार देश में पाये जाने वाले लगभग 29000 हाथियों की जीवसंख्या को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से वन एवं पर्यावरण मन्त्रालय ने अक्टूबर 2010 में अधिसूचना जारी कर हाथियों को राष्ट्रीय धरोहर (National heritage) घोषित किया।

राष्ट्रीय स्तर पर उठाये गये इन कदमों के साथ–साथ हमारे देश में निम्नलिखित सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठन भी वन्य जीवन संरक्षण क्रिया–कलापों में सक्रियता से भागीदारी कर रहे हैं। प्रमुख संगठनों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं–

टिप्पणी

(A) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ (International Organisation)

(1) प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ (International Union for the Conservation of Nature and Natural Resources) या IUCN – इस संस्था की स्थापना स्विट्जरलैण्ड के मॉर्गेज (Morges) में 1948 में की गयी। यह संस्था लाल आँकड़ा पुस्तक (Red Data Book) निकालती है जो उन जातियों के विषय में सूचनाएँ देती है जो विरल अथवा संकटापन्न हों।

(2) विश्व वन्य जीवन कोष (World Wild Life Fund) या WWF – सर्वप्रथम 1961 में इसकी स्थापना स्विट्जरलैण्ड के मॉर्गेज (Morges) में हुई। सम्पूर्ण विश्व में वन्य जीवन संरक्षण की गतिविधियों के लिए निधि (Funds) का संग्रह एवं वितरण करना इसका प्रमुख उद्देश्य है। सन् 1969 में इस कोष की स्थापना भारत के मुम्बई शहर में भी हुई। इसी वर्ष इस संस्था की सहायता से भारत में 'बाघ संरक्षण परियोजना' (Project Tiger) का शुभारम्भ किया गया।

(B) राष्ट्रीय संस्थाएँ (National Organisations)

(a) गैर–सरकारी संस्थाएँ (Non-government Organisations)–

(1) बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी (Bombay Natural History Society) या BNHS – इसकी स्थापना 1883 में मुम्बई के सात निवासियों द्वारा की गयी। यह सोसाइटी भारत, म्यांमार तथा श्रीलंका के पादप–जात एवं प्राणिजात के संग्रह एवं अन्वेषण तथा शैक्षिक सूचनाओं से सम्बन्धित क्रिया–कलापों का निष्पादन करती है। यह सोसाइटी एक पत्रिका भी निकालती है।

(2) भारतीय वन्य जीवन परिरक्षण सोसाइटी (Wild Life Preservation Society of India) या WPSI – यह सोसाइटी देहरादून में 1958 में स्थापित की गई। यह अनेक शैक्षणिक एवं अन्वेषण सम्बन्धित क्रिया–कलापों के साथ 'चीतल' (Cheetal) नामक द्विभाषी त्रैमासिक पत्रिका भी निकालती है।

(b) सरकारी संस्थाएँ (Government Organisations) –

(1) जूलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया (Zoological Survey of India) या ZSI – यह संस्था 1916 में कोलकाता में स्थापित की गयी। इसका उद्देश्य भारतीय प्राणिजात का सर्वेक्षण (Survey), पर्यवेक्षण (Exploration) एवं अनुसंधान (Research) करना है। वर्गिकीय अध्ययन, संकटापन्न जातियों की अवस्थिति का सर्वेक्षण एवं परिणामों को शोध पत्रिकाओं तथा भारत की जन्तु सम्पदा (Fauna of India) के रूप में प्रकाशन इसकी प्रमुख गतिविधियों में सम्मिलित हैं। सम्पूर्ण भारत में इसकी 36 शाखाएँ कार्य कर रही हैं।

(2) भारतीय वन्य जीवन परिषद् (Indian Board of Wild Life) या IBWL – सर्वप्रथम 1949 में केन्द्रीय वन्य जीवन परिषद् (Central Board of Wild Life) के नाम से इसकी स्थापना परामर्शदात्री समिति के रूप में हुई। फिर सन् 1952 में इसका नाम परिवर्तित करके भारतीय वन्य जीवन परिषद् कर दिया

गया। इस परिषद् ने 1972 में वन्य जीवन (रक्षण) अधिनियम [Wild Life (Protection) Act] बनाया जिसे सभी राज्यों में क्रियान्वित किया गया। इसी का संशोधन 1991 में संविधान के 44वें अधिनियम के रूप में [Wild Life (Protection) Amendment Bill, 1991 Promulgated as 44th act of 1991] लागू किया गया।

टिप्पणी

सन् 2003 में सरकार ने वन्य जीवन (रक्षण) अधिनियम 1972 को एक बार फिर से संशोधित करते हुए भारतीय वन्य जीवन परिषद् (IBWL) को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया तथा इसका नाम राष्ट्रीय वन्य जीवन परिषद् (National Board for Wild Life) कर दिया।

(3) भारत का वन्य जीवन संस्थान (Wild Life Institute of India) या WII – इस संस्थान की स्थापना भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण मन्त्रालय ने 1982 में देहरादून में की। वन्य जीवन के क्षेत्र में शोध करना संस्थान की प्रमुख गतिविधियाँ हैं। यह संस्था भारत में वन्य जीवन विज्ञान को विकसित करने तथा इसके उपयोग आर्थिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुसार करने का लक्ष्य रखती है। यह संस्था राष्ट्रीय वन्य जीवन सूचना तन्त्र के लिए आँकड़ों का आधार भी तैयार करती है। यह संरक्षण अभिमुखीकरण पाठ्यक्रम चलाने के साथ–साथ सरकार एवं निजी संस्थाओं को परामर्श सेवाएँ उपलब्ध कराती है।

3.6 वन्य जीवन संरक्षण का प्रबन्धन (Wild Life Conservation Management)

सरकार द्वारा लागू किये गये नियमों एवं अधिनियमों द्वारा वन्य जीवन संरक्षण तब तक पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं होगा जब तक कि प्रत्येक नागरिक वन्य प्राणियों की रक्षा के महत्व को नहीं समझेगा और उनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण नहीं अपनायेगा। वन्य जीवन संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जा रहे हैं–

(A) वन्य जीवन का बहिःस्थाने संरक्षण (Ex situ Conservation of Wild Life)

इस प्रकार का संरक्षण ऐसे वन्य जन्तुओं के लिए किया जाता है जो अत्याधिक संकटापन्न स्थिति में हो। ऐसे वन्य जन्तुओं की जातियों के लिए पुनर्वास केन्द्रों (Rehabilitation centres) की स्थापना की जाती है जहाँ उनको रखकर सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान किया जाता है। राष्ट्रीय वन्य जीवन कार्य योजना, 1983 (National Wild Life Action Plan, 1983) के अनुसार ऐसे पुनर्वास केन्द्रों की निम्नलिखित गतिविधियाँ होती हैं–

(i) संरक्षित की जाने वाली प्रजाति के कुछ सदस्यों को उनके प्राकृतिक आवास स्थलों से पकड़कर पुनर्वास केन्द्रों पर लाना,

(ii) इन सदस्यों के भरण (Feeding), प्रजनन (Breeding) आदि स्वभावों का व्यापक अध्ययन करना,

टिप्पणी

(iii) इन सदस्यों के बन्दी अवस्था में प्रजनन (Captive breeding) हेतु केन्द्र पर सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराना, तथा

(iv) प्रजनन के परिणामस्वरूप उत्पन्न युवा सन्तानों को वापस उनके प्राकृतिक आवास स्थलों तक पहुँचाना।

देश के अनेक स्थानों पर इस प्रकार के पुनर्वास केन्द्रों की स्थापना की गयी है; जैसे–उत्तर प्रदेश में लखनऊ के निकट कुकरैल (Kukrail) में जहाँ कुरंग (Black buck), चिंकारा (Gazelle), बारहसिंघा (Swamp deer), कछुए (Turtles) तथा मगरमच्छ (Crocodiles) रखे गये हैं। इसी प्रकार उत्तरांचल में चमोली (Chamoli) के निकट कन्चूला खरक (Kanchula Kharak) में कस्तूरी मृगों (Musk deer) के लिए एक पुनर्वास केन्द्र की स्थापना की गयी है।

(B) वन्य जीवन का स्वस्थाने संरक्षण (In situ Conservation of Wild Life)

स्वस्थाने संरक्षण वन्य जन्तुओं के प्राकृतिक आवास में किया जाता है अतः इस प्रकार के संरक्षण के लिए प्राकृतिक वनों, चरागाहों, मैदानों, नदियों, झीलों आदि का भी संरक्षण आवश्यक होता है। इसके लिए इन प्राकृतिक आवास स्थानों को निषिद्ध क्षेत्र (Prohibited area) घोषित कर दिया जाता है। निषेध की सीमा के अनुसार इन क्षेत्रों को तीन प्रकारों में बाँटा गया है–

(1) राष्ट्रीय उद्यान (National Parks),

(2) अभयारण्य (Sanctuaries),

(3) जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserves)।

(1) राष्ट्रीय उद्यान (National Parks) – राष्ट्रीय उद्यान वन्य जीवन एवं पारिस्थितिक तन्त्र दोनों के संरक्षण के लिए सुनिश्चित होते हैं अतः इनमें शिकार करना एवं पशु चराना पूर्णरूपेण वर्जित होता है तथा इनमें व्यक्तिगत स्वामित्व के अधिकार नहीं दिये जाते। इनकी स्थापना एवं नियन्त्रण केन्द्र सरकार के अन्तर्गत होता है परन्तु इनकी व्यवस्था सम्बन्धित राज्य सरकार के अधीन होती है। भारत में कुल 99 राष्ट्रीय उद्यान हैं जो लगभग 37,530.76 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले हुए हैं अर्थात् ये देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 1.14 प्रतिशत भाग घेरे हुए हैं।

(2) अभयारण्य (Sanctuaries) – अभयारण्यों का उद्देश्य केवल वन्य जीवन का संरक्षण होता है। अतः इनमें व्यक्तिगत स्वामित्व, लकड़ी काटने, पशुओं को चराने आदि की अनुमति इस प्रतिबन्ध के साथ दी जाती है कि इन क्रिया–कलापों से वन्य प्राणी प्रभावित न हों। इनकी स्थापना एवं नियन्त्रण सम्बन्धित राज्य सरकार के अधीन होती है। भारत में लगभग 489 अभयारण्य हैं जिनका क्षेत्रफल लगभग 1,17,042.04 लाख वर्ग किमी है अर्थात् ये देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 4.70 प्रतिशत भाग घेरे हुए हैं।

सारणी क्र. 3.2: भारत के कुछ वन्य–जीवन अभयारण्य (Wild Life Sanctuaries) तथा राष्ट्रीय उद्यान (National Parks)

टिप्पणी

क्र. सं.	नाम और स्थिति	क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	पाये जाने वाले महत्वपूर्ण जन्तु
1.	कान्हा राष्ट्रीय उद्यान, मण्डला और बालाघाट, मध्य प्रदेश	940	बाघ, पैन्थर, वन्य शूकर, वन्य कुत्ता, गौर, बारहसिंगा, सांभर, चीतल, काला–मृग, नील गाय, भौंकने वाला और मूषक मृग।
2.	नागार्जुनसागर (इक्ष्वाका) जन्तु – विहार, जिला गुन्टूर, प्रकाशम, कर्नूल महबूबनगर, नालगोंडा, आन्ध्र प्रदेश	3568	बाघ, तेंदुआ, रीछ, स्लॉथ भालू, नीलगाय, चीतल, सांभर, काला हिरन, गीदड़, लोमड़ी, भेड़िया मगर।
3.	पुलीकट (झील) जन्तु–विहार, जिला नैलोर, आन्ध्र प्रदेश	500	फ्लेमिंगो, पेल्किन, बत्तख, टील, स्टॉर्क, सारस, बगुला।
4.	काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान, शिवसागर, जिला जोरहाट, असम	430	गैंडा, हाथी, वन्य भैंसा, गौर, सांभर, अनूपी मृग, शूकर मृग, वन्य शूकर, बाघ, तेंदुआ, गिब्बन, अजगर, पेलकिन स्टॉर्क, फ्लारिकन।
5.	मनास जन्तु–विहार, जिला बारपेटा, असम	80	काजीरंगा के समान। साथ ही वन्य कुत्ता, तेंदुआ, स्वर्णिम लंगूर, जल मॉनीटर, विशाल चितकबरा धनेश।
6.	हजारीबाग जन्तु–विहार, हजारीबाग, बिहार	186	बाघ, तेंदुआ लकड़बग्घा, वन्य शूकर; गौर, सांभर, चीतल, नीलगाय, मोर।
7.	कैमूर जन्तु–विहार, रोहतास, बिहार	1342	बाघ, तेंदुआ, चिंकारा सांभर, नीलगाय, मगर।
8.	गिर राष्ट्रीय उद्यान, सागर– गिर, जिला जूनागढ़, गुजरात	1412	एशियाई सिंह, तेंदुआ, धारीदार लकड़बग्घा, सांभर नीलगाय, चीतल, चौसिंगा, चिंकारा।
9.	सुल्तानपुर (झील) पक्षी विहार, गुड़गाँव, हरियाणा	1.2	वन्य शूकर, मगर, अजगर, हरा कबूतर, सारस क्रेन, स्पॉट बिल, बत्तखें, गुलाबी कवची (Ruddy shell)।
10.	दाचिगम जन्तु–विहार श्रीनगर, जम्मू और कश्मीर	89	हिम तेंदुआ, काले और बभ्रु भालू, हंगुल, कस्तूरी, मृग, सेरो (Serow)।
11.	गोविंदसागर पक्षी विहार, बिलासपुर, हिमाचलप्रदेश	100	हंसक बत्तखें, राजहंस, सारस।
12.	बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान, जिला मैसूर, कर्नाटक	874	हाथी, बाघ, पैन्थर, वन्य शूकर, वन्य कुत्ता, रीछ, गौर, भौंकने वाला मृग, चौसिंगा, सांभर, चीतल, मालाबार गिलहरी, हरा कबूतर।

टिप्पणी

13.	पेरियार जन्तु विहार, जिला इडुक्की, केरल	777	हाथी, बाघ, पैन्थर, वन्य शूकर, वन्य कुत्ता, स्लॉथ, रीछ, गौर, नीलगाय, सांभर, भौंकने वाला मृग, काला नीलगिरि लंगूर, धूसर धनेश, बगुला।
14.	पेंच राष्ट्रीय उद्यान, नागपुर, महाराष्ट्र	257	बाघ, पैन्थर, स्लॉथ, रीछ, गौर, सांभर, चीतल, नीलगाय, चिंकारा, भौंकने वाला मृग, मोर।
15.	कीबुल लासजाओ राष्ट्रीय उद्यान (तैरता अनूप), मणिपुर	35	थॉमिन या भू–श्रृंगामी मृग (*Cervus eldi eldi*)
16.	भित्तरकनिका जन्तु विहार, कटक, ओडिशा	170	लवण जल मगर, तेंदुआ, लकड़बग्घा, चीतल, सांभर, विशाल गिलहरी, जल मॉनीटर, नागराज, अजगर, स्टॉर्क्स, आइबिस।
17.	चिल्का झील पक्षी विहार, बालागाँव, ओडिशा	900	हंसावर, पेलिकन, बगुला, आइबिस, कारमोरेन्ट, सारस, बत्तख, सैंडपाइपर, करल्यू।
18.	सिम्लीपाल जन्तु विहार, बड़ीपाद, मयूरभंज, ओडिशा	303	बाघ, तेंदुआ, हाथी, वन्य शूकर, गौर, सांभर, मूषक मृग, उड्डयन गिलहरी, मगर।
19.	सरिस्का (प्रोजेक्ट टाइगर), अलवर, राजस्थान	195	बाघ, पैन्थर, वन्य शूकर, लकड़बग्घा, सांभर, चिंकारा, नीलगाय, चौसिंगा, लंगूर।
20.	केवलादेव घाना पक्षी विहार, भतरपुर, राजस्थान	29	साइबेरियाई सारस, स्टॉर्क्स, बगुले, कॉरमोरेन्ट, चमस चंचु, बगुला, आइबिस, सांभर, चीतल, शूकर, अजगर।
21.	मरुस्थल राष्ट्रीय उद्यान, जैसलमेर, बाड़मेर, राजस्थान	3000	विशाल भारतीय हुकना, काला मृग, चिंकारा।
22.	कॉर्बेट राष्ट्रीय उद्यान, नैनीताल, उत्तराखण्ड	525	हाथी, बाघ, पैन्थर, स्लॉथ, रीछ, वन्य शूकर, नीलगाय, सांभर, चीतल, मगर, अजगर, नागराज, मोर, तीतर।
23.	मुदुमलाई जन्तु विहार, कोयम्बटूर, तमिलनाडु	958	हाथी, बाघ, पैन्थर, स्लॉथ, रीछ, वन्य कुत्ता, गौर, चीतल, सांभर।
24.	सुन्दरबन (बाघ आरक्षित क्षेत्र) 24–परगना, पश्चिम बंगाल	2585	बाघ, वन्य शूकर, मृग, ज्वारनदमुखी मगर, गंग–सूंस।
25.	जलदापाड़ा जन्तु–विहार, मदारीहाट, पश्चिम बंगाल	1555	गैंडा, हाथी, बाघ, तेंदुआ, गौर, मृग, सांभर, पक्षियों के प्रकार।
26.	सजनाखाली जन्तु– विहार, 24–परगना, पश्चिम बंगाल	362	बाघ, वन्य शूकर, चीतल स्टॉर्क्स, कारमोरेन्ट, बगुला, आइबिस, पेल्किन, बिटर्न, डार्टर।

टिप्पणी

(3) जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere Reserves) – सन् 1971 में यूनेस्को की मनुष्य एवं जीवमण्डल परियोजना (Man and Biosphere Programme of UNESCO) के अन्तर्गत मानव कल्याण हेतु जीवमण्डल के संरक्षण की दृष्टि से जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्रों (Biosphere Reserves) की स्थापना का शुभारम्भ किया गया। इस प्रकार के आरक्षित क्षेत्रों को प्रबन्धन के आशय से निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जाता है–

(i) केन्द्रीय क्षेत्र (Central Zone) – यह क्षेत्र पूर्णतया वर्जित होता है। इस क्षेत्र के पारिस्थितिक तन्त्र में कोई भी व्यवधान नहीं आने दिया जाता है।

(ii) प्रतिरोधक क्षेत्र (Buffer Zone) – मध्यवर्ती प्रतिरोधक क्षेत्र में सीमित मानव क्रिया–कलापों की अनुमति होती है।

(iii) परिचालन क्षेत्र (Manipulation Zone) – परिधीय परिचालन क्षेत्र में अनेक प्रकार के मानव क्रिया–कलापों की अनुमति होती है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्रों को आदर्श प्राकृतिक परिस्थितिक तन्त्रों के रूप में मान्यता दी गयी है जिसका उद्देश्य वन्य प्राणियों के संरक्षण तक ही सीमित न होकर वन्य जीवन के सम्पूर्ण जीनी बैंक और निकटवर्ती आदिवासियों की सभ्यता का संरक्षण भी होता है।

हमारे देश में सर्वप्रथम 1986 में नीलगिरि जीवमण्डल को आरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया था। इसके बाद 1988 में नन्दा देवी जीवमण्डल को आरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया। वर्तमान में देश में 18 जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्र हैं (सारणी 3.3)।

सारणी क्र. 3.3: Biosphere Reserves in Different States/U.T. of India

S. No.	Biosphere Reserve	(In km^2)	States/UT
1.	Nilgiri	5520 (Core 1240 & Buffer 4280)	Tamil Nadu, Kerala and Karnataka
2.	Nanda Devi	5860.69 (Core 712.12, Buffer 5,148.570 & T. 546.34)	Uttarakhand
3.	Nokrek	820 (Core 47.48 & Buffer 227.92, Transition Zone 544.60)	Meghalaya
4.	Great Nicobar	885 (Core 705 & Buffer 180)	Andaman and Nicobar
5.	Gulf of Mannar	10,500 km^2 Total Gulf area (Area of Islands 5.55 km^2)	Tamil Nadu
6.	Manas	2837 (Core 391 & Buffer 2,446)	Assam
7.	Sunderbans	9630 (Core 1700 & Buffer 7900)	West Bengal
8.	Simlipal	4374 (Core 845, Buffer 2129 & Transition 1400)	Orissa

टिप्पणी

9.	Dibru-Saikhowa	765 (Core 340 & Buffer 425)	Assam
10.	Dehang-Dibang	5111.50 (Core 4094.80 & Buffer 1016.70)	Arunachal Pradesh
11.	Pachmarhi	4926	Madhya Pradesh
12.	Khangchendzonga	2619.92 (Core 1819.34 & Buffer 835.92)	Sikkim
13.	Agasthyamalai	1828	Kerala
14.	Achanakamar-Amarkantak	3835.51 (Core 551.55 & Buffer 3283.86)	M.P. and Chhattisgarh
15.	Kachchh	12,454 km^2	Gujarat
16.	Cold Desert	7770	Himachal Pradesh
17.	Seshachalam Hills	4755.997	Andhra Pradesh
18.	Panna	2998.98	Madhya Pradesh

3.7 संकटापन्न प्रजातियों के लिए विशिष्ट परियोजनाएँ (Special Projects for Endangered Species)

वे जातियाँ अथवा वर्गक जो विलोपन के कगार पर हैं तथा यदि उनके विनाश के कारणों पर नियन्त्रण न स्थापित किया जा सका तो उनकी उत्तरजीविता (Survival) समाप्त हो सकती हैं, संकटापन्न जातियाँ (Endangered species) या वर्गक की श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। इनकी संख्या एवं आवास इतनी कम हो चुकी है कि ये लुप्तप्राय हो गये है; जैसे–बब्बर शेर, राइनोसेरॉस, बाघ आदि। भारतवर्ष में कुछ प्रजातियों के अनिश्चित अस्तित्व को देखते हुए सरकार ने इनके संरक्षण हेतु विशेष परियोजनाएँ स्थापित की हैं। इनमें से निम्नलिखित परियोजनाओं का वर्णन यहाँ किया जा रहा है–

(1) बाघ परियोजना,

(2) गिर सिंह परियोजना,

(3) मगर परियोजना,

(4) हाथी परियोजना,

(5) कस्तूरी मृग परियोजना।

(1) बाघ परियोजना (Project Tiger)

बाघ (*Panthera tigris*) की तीव्र दर से घटती हुई संख्या ने सन् 1972 में शासन का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इसी वर्ष बाघ को राष्ट्रीय पशु घोषित करने के साथ बाघों के संरक्षण हेतु एक विशेष बाघ परियोजना (Project Tiger) प्रारम्भ की गयी। यह परियोजना विश्व वन्य जीवन कोष (World Wild Life Fund) के

सहयोग से प्रारम्भ की गयी। इसके अन्तर्गत सरकार ने कुछ राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों को वैधानिक रूप से बाघ आरक्षित क्षेत्र के रूप में मान्यता दी। प्रत्येक बाघ आरक्षित क्षेत्र में एक केन्द्रीय क्षेत्र तथा केन्द्रीय क्षेत्र के चारों ओर एक प्रतिरोधक क्षेत्र होता है। देश में कुल 49 बाघ परियोजना क्षेत्र हैं जिनकी सूची सारणी 3.4 में दी गयी है।

सारणी क्र. 3.4: Tiger Reserves of India

S. No.	Name of Tiger Reserve	State	Area (in sq. km.)		
			Core	Buffer	Total
1.	Nagarjunsagar Srisailam TR (part)	Andhra Pradesh	2595.72	700.592	3296.31
2.	Namdapha TR	Arunachal Pradesh	1807.82	245	2052.82
3.	Pakke TR	Arunachal Pradesh	683.45	515	1198.45
4.	Manas TR	Assam	840.04	2310.88	3150.92
5.	Nameri TR	Assam	200	144	344
6.	Kaziranga TR	Assam	625.58	548	173.58
7.	Valmiki TR	Bihar	598.45	300.93	899.38
8.	Udanti-Sitanadi TR	Chhattisgarh	851.09	991.45	1842.54
9.	Achanakamar TR	Chhattisgarh	626.195	287.822	914.017
10.	Indravati TR	Chhattisgarh	1258.37	1540.7	2799.07
11.	Palamau TR	Jharkhand	414.08	715.85	1129.93
12.	Bandipur TR	Karnataka	872.24	584.06	1456.3
13.	Bhadra TR	Karnataka	492.46	571.83	1064.29
14.	Dandeli-Anshi TR	Karnataka	814.884	282.63	1097.514
15.	Nagarahole TR	Karnataka	643.35	562.41	1205.76
16.	Biligiri Ranganatha Temple TR	Karnataka	359.1	215.72	574.82
17.	Periyar TR	Kerala	881	44	925
18.	Parambikulam TR	Kerala	390.89	252.772	643.662
19.	Kanha TR	Madhya Pradesh	917.43	1134.361	2051.791
20.	Pench TR	Madhya Pradesh	411.33	768.30225	1179.63225
21.	Bandhavgarh TR	Madhya Pradesh	716.903	820.03509	1598.1
22.	Panna TR	Madhya Pradesh	576.13	1021.97	1578.55
23.	Satpura TR	Madhya Pradesh	1339.264	794.04397	2133.30797

टिप्पणी

24.	Sanjay-Dubri TR	Madhya Pradesh	812.571	861.931	1674.502
25.	Melghat TR	Maharashtra	1500.49	1268.03	2763.52
26.	Tadoba-Andhari TR	Maharashtra	625.82	1107.771	1727.5911
27.	Pench TR	Maharashtra	257.26	483.96	741.22
28.	Sahyadri TR	Maharashtra	600.12	565.45	1165.57
29.	Nawegaon-Nagzira TR	Maharashtra	653.674	–	653.674
30.	Bor TR	Maharashtra	138.12	–	138.12
31.	Dampa TR	Mizoram	500	488	988
32.	Similipal TR	Odisha	1194.75	1555.25	2750
33.	Satkosia TR	Odisha	523.61	440.26	963.87
34.	Ranthambore TR	Rajasthan	1113.364	297.9265	1411.291
35.	Sariska TR	Rajasthan	881.1124	332.23	1213.342
36.	Mukandra Hills TR	Rajasthan	417.17	342.82	759.99
37.	Kalakad- Mundanthurai TR	Tamil Nadu	895	706.542	1601.542
38.	Mudumalai TR	Tamil Nadu	321	367.59	688.59
39.	Sathyamangalam TR	Tamil Nadu	793.49	614.91	1408.4
40.	Annamalai TR	Tamil Nadu	958.59	521	1479.87
41.	Kawal TR	Telangana	893.23	1125	2019.12
42.	Nagarjunsagar Srisailam TR (Part)	Telangana	2166.37	445.0	261.39
43.	Dudhwa	Uttar Pradesh	1093.79	1107.9848	2201.7748
44.	Pilibhit	Uttar Pradesh	602.798	127.4518	730.2498
45.	Amangarh (buffer of Corbett Tiger Reserve)	Uttar Pradesh	–	80.6	80.6
	Corbett TR	Uttarakhand	821.99	466.32	1288.31
46.	Rajaji TR	Uttarakhand	255.63	819.54	1075.17
47.	Sunderbans TR	West Bengal	1699.62	885.27	2584.89
48.	Buxa TR	West Bengal	390.5813	367.3225	757.9038
49.	Orang Tiger Reserve	Assam	79.28	413.18	492.46
	Total		**39105.21**	**31138.89**	**70285.70**

(2) गिर सिंह परियोजना (Gir Lion Project)

एशियाटिक सिंह, **पैन्थेरा लियो पर्सिका** (*Panthera leo persica*) एक समय उत्तरी तथा मध्य भारत में फैले हुए थे, परन्तु अब ये गुजरात के काठियावाड़ के गिर वनों तक ही सीमित रह गये हैं। इन्हें बचाने के लिए गिर सिंह परियोजना सन् 1972 में प्रारम्भ की गयी। यह परियोजना 1412 वर्ग किमी क्षेत्र में परिचालित है। इसके केन्द्रीय क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग 259 वर्ग किमी है। यह परियोजना

अधिक सफल नहीं हो सकी क्योंकि मानसून के समय हजारों पशु चराई के लिए गिर जंगल में छोड़ दिये जाते हैं जो वन्य जन्तुओं के साथ न केवल चारे की स्पर्धा करते हैं अपितु जल को भी दूषित करके बीमारियाँ फैलाते हैं जिससे शाकाहारी जन्तुओं की संख्या में कमी आती है जिससे सिंह भी प्रभावित होते हैं।

(3) मगर परियोजना (Crocodile Project)

यह परियोजना 1975 में डॉ. एच. आर. बस्टर्ड (Dr. H.R. Bustard) की अनुशंसा पर भारत सरकार द्वारा FAO तथा UNDP के संयुक्त तत्वावधान में प्रारम्भ की गयी। भारत में पायी जाने वाली मगर की तीनों प्रजातियाँ–घड़ियाल, **गैवियालिस गैन्जेटिकस** (Gavialis gangeticus), मगर, **क्रोकोडाइलस पालस्ट्रिस** (*Crocodilus palustris*) तथा क्रोकोडाइलस पोरोसस (*Crocodilus porosus*) संकटापन्न अवस्था में पहुँच चुकी थी जिन्हें बचाने के लिए यह परियोजना प्रारम्भ की गयी। इस परियोजना के प्रमुख उद्देश्य हैं–श्रेष्ठ मगर क्षेत्र का चुनाव करके वहाँ से अंडे एकत्रित करना तथा अंडों से प्राप्त अल्प वयस्कों को पालकर प्राकृतिक आवास में छोड़ना। इस परियोजना हेतु 11 अभयारण्यों का चुनाव किया गया, जैसे–कृष्णा अभयारण्य, आन्ध्र प्रदेश, चम्बल अभयारण्य जिसमें उ.प्र., म.प्र. तथा राजस्थान प्रान्तों का 5400 वर्ग किमी क्षेत्र आता है।

(4) हाथी परियोजना (Elephant Project)

यह परियोजना 1992 में हाथी, एलिफस मैक्सिमस (*Elephas maximus*) के संरक्षण हेतु प्रारम्भ की गयी। इसका उद्देश्य हाथी के विकृत आवास को सुधारने के अतिरिक्त प्रवसन गलियारों (Migration Corridors) का निर्माण तथा हाथियों की संख्या की गतिकी के आँकड़े तैयार करना है। सम्पूर्ण भारत में हाथियों की संख्या लगभग 2200 है जो प्राकृतिक रूप से असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल, बिहार, ओडिशा, उत्तर प्रदेश, केरल, तमिलनाडु तथा कर्नाटक में पाये जाते हैं।

(5) कस्तूरी मृग परियोजना (Musk Deer Project)

कस्तूरी मृग, **मॉस्कस मॉस्चीफेरस** (Musk deer, *Moschus moschiferus*) लगभग 90 सेमी लम्बा एवं 60 सेमी ऊँचाई वाला खुरयुक्त रोमन्थी (Hoofed ruminant) जन्तु है। वास्तव में यह हिरण का ही एक अल्पविकसित रूप है जिसमें सींगों (Horns) तथा चेहरे की ग्रन्थियों (Facial glands) का अभाव होता है। मृगों में सामान्यतया अनुपस्थित रहने वाला पित्ताशय (Gall bladder) कस्तूरी मृगों में पाया जाता है। जम्मू–कश्मीर से लेकर सिक्किम तक सम्पूर्ण हिमालय इसका आवासीय परास (Habitat range) है जहाँ यह 2200 से 4000 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। सर्दियों में यह काफी नीचे तक प्रवसन कर जाता है। यह एकान्तवासी (Solitary) जन्तु है।

कस्तूरी मृग के शरीर पर लम्बे, घने, मोटे, शूकयुक्त (Bristly) बाल पाये जाते हैं। मादा मृग की पूँछ बहुत छोटी तथा रोंयेदार (Hairy) होती है। नर मृग

टिप्पणी

की पूँछ में एक विशिष्ट ग्रन्थि पायी जाती है जिसके स्त्रावण से पूँछ के बाल परस्पर चिपके रहते हैं। नर कस्तूरी मृग में **कस्तूरी ग्रन्थि** (Musk glands) की उपस्थिति इसका प्रमुख लक्षण है। यह ग्रन्थि एक गोलाकार थैले (Globular bag) के रूप में शिश्न (Penis) के अन्त में पायी जाती है जिसके मध्य में स्थित छिद्र द्वारा कस्तूरी का विसर्जन होता है। कस्तूरी एक दूधिया पदार्थ है जो कुछ समय बाद कणिकीय रूप ले लेता है। कस्तूरी एक बहुमूल्य पदार्थ है और इसी पदार्थ के कारण इस प्रजाति का उत्पीड़न होता है। पेशेवर शिकारी कस्तूरी मृग को मारकर कस्तूरी प्राप्त कर लेते हैं तथा उसे सीमा पार निर्यात करके अप्रत्याशित दामों पर विक्रय करते हैं।

कस्तूरी मृगों के परास में अत्यधिक क्षेत्रीय अस्थिरता (Undulating terrain) के कारण इनका कोई योजनाबद्ध सर्वेक्षण संभव नहीं हो सका है। ये अत्यधिक शर्मीले एकान्तवासी जन्तु हैं। इनके आवासीय अपकर्ष एवं लगातार बढ़ते हुए अवैध शिकार से चिन्तित होते हुए 1980 के प्रारम्भ में ब्रिटेन के वैज्ञानिक डॉ. ग्रीन (Dr. Green) ने इस प्रजाति की स्थिति का गहन सर्वेक्षण किया। डॉ. ग्रीन की ही संस्तुतियों के आधार पर राज्य सरकार ने इस प्रजाति के महत्वपूर्ण आवासीय स्थलों को राष्ट्रीय उद्यान तथा वन्य जीव अभ्यारण्य के रूप में अधिसूचित करते हुए कस्तूरी मृगों एवं उनके आवासीय स्थलों की सुरक्षा हेतु उपयुक्त उपाय किए। इस प्रजाति को वन्य जीव (रक्षण) अधिनियम के प्रथम सूची (Schedule-1) में शामिल किया गया। इसी के साथ कस्तूरी रखने अथवा बेचने को दण्डनीय अपराध की संज्ञा देते हुए अपराधी को 3 से 10 वर्षों के कारावास का प्रावधान किया गया। केन्द्र सरकार कस्तूरी मृगों के आवासीय स्थलों को सुरक्षित बनाने एवं उनके विकास हेतु राज्य सरकारों को आर्थिक सहायता प्रदान करती है, परन्तु परासीय अनिश्चितता एवं पेशेवर निपुणता सीमाकारी कारक का कार्य करते हैं।

ऐसे राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य जिनमें कस्तूरी मृगों की पर्याप्त संख्या पायी जाती है, निम्नलिखित हैं–

Name of National Park/Sanctuary	District & State	Area in sq. km.
(A) National Parks		
1. Kishtwar National Park	Doda, J & K	400
2. Great Himalayan National Park	Kullu, H.P.	1171
3. Nanda Devi National Park	Chamoli, Uttarakhand	630.33
4. Khangchendzhonga National Park	North-West Sikkim, Sikkim	850
(B) Sanctuaries		
5. Manali Wildlife Sanctuary	Kullu, H.P.	213.25
6. Kedarnath Musk Deer Sanctuary	Chamoli, Uttarakhand	957
7. Askot Musk Deer Sanctuary	Pithoragarh, Uttarakhand	600
8. Govind Pashu Vihar	Uttarkashi, Uttarakhand	472.08

टिप्पणी

डॉ. ग्रीन ने कस्तूरी मृगों की संख्या के आवर्धन हेतु बहिःस्थाने संरक्षण को योजनाबद्ध तरीके से अपनाने का सुझाव दिया। उनके इस सुझाव की पहल सिटी पार्क, श्रीनगर; कुफरी नेचर पार्क, शिमला तथा कन्चूला खरक, चमोली में की गई। परन्तु इस योजना में वांछित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। एक सर्वेक्षण के अनुसार 2009 में बन्दी–स्थिति (Capacity) में कस्तूरी मृगों की कुल संख्या मात्र 11 थी। कन्चूला खरक में इस कार्यक्रम की असफलता के प्रमुख कारण थे– देखने की अस्थिरता एवं निरीक्षण तथा मार्गदर्शन का अभाव। हाल ही में राष्ट्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण ने कस्तूरी मृगों के बहिःस्थान संरक्षण हेतु चोपटा (Chopta, Chamoli) में एक नये केन्द्र की स्थापना प्रस्तावित की है जहाँ अधिक तकनीकी निवेश के साथ इस दिशा में कार्य किया जा सके।

3.8 मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ का वन्य जीवन (Wild Life of Madhya Pradesh and Chhattisgarh)

मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4,42,840 वर्ग किमी है जिसमें 1,66,160 वर्ग किमी क्षेत्र वनों से घिरा हुआ है। यहाँ पर तीन राष्ट्रीय उद्यान (National Parks) तथा 22 अभयारण्य (Sanctuaries) हैं। ये राष्ट्रीय उद्यान तथा अभयारण्य कुल 5680 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले हुए हैं जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 1.3 प्रतिशत तथा कुल वन क्षेत्र का लगभग 3.4 प्रतिशत है। मध्य प्रदेश में वन्य–जीवन (सुरक्षा) अधिनियम, 1972 [Wild Life (Protection) Act, 1972] 1973 में लागू किया गया।

मध्य प्रदेश का कान्हा राष्ट्रीय उद्यान (Kanha National Park) बाघ परियोजना के अन्तर्गत बाघों के लिए भी आरक्षित है। राज्य में बाघों की कुल अनुमानित संख्या लगभग 580 है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश का राष्ट्रीय चम्बल अभयारण्य से सम्बन्धित चम्बल नदी मगरमच्छों के पुनर्वसन हेतु मगर परियोजना (Crocodile project) के लिए भी आरक्षित है।

मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ में स्थित विभिन्न राष्ट्रीय उ़द्यानों एवं अभयारण्यों तथा उनमें संरक्षण प्रदान किये जाने वाले विभिन्न वन्य प्राणियों की सूची सारणी 3.5 में दी जा रही है।

सारणी क्र. 3.5: National Parks and Sanctuaries of Madhya Pradesh and Chhattisgarh

Name of National Park/Sanctuary	District	Area to Sq. km.	Species	Nearest Railway Station and Distance to the N.P./ Sanctuary
(A) National Parks				
1. Kanha National Park	Mandla & Balaghat	940	Tiger, panther, gaur, barasingha, chital, sambar, black buck,	Jabalpur 170 km. Nagpur 260 km.

टिप्पणी

				chowsingha, barking deer, mouse deer, nilgai, wild dog, boar	Chiridongri (S.E. Rly) 110 km.
2.	Bandhavgarh National Park	Shahdol	105	Tiger, panther, gaur, chital, sambar, nilgai, chinkara, barking deer, wild boar and a variety of upland birds.	Umaria 30 km. (S.E./Rly)
3.	Shivpuri National Park	Shivpuri	156	Tiger, panther, sloth bear, hyaena, sambar, spotted deer, four-horned antelope, black buck, nilgai, chinkara, wild boar, crocodile etc.	Jhansi 97 km. Gwalior 120 km.
(B)					
4.	Bor Wildlife Sanctuary	Hoshang abad	802.89	Tiger, panther, bison, sambar, cheetal, nilgai, barking deer, chinkara, wild boar, bear.	Itarsi 104 km.
5.	Kutree Wild Buffaloes Game Sanctuary	Bastar	2273.58 1258.52	Wild buffalo, tiger, panther, sloth bear, nilgai, chital, sambar, wild pigs, barking deer, bison, wild dogs, chowsingha, hill myna etc.	Jagdalpur 200 km.
6.	Tamor-pigla Sanctuary	Surguja	608.52	Tiger, panther, gaur, cheetal, sambar, etc.	Rail head is Pimpri on Robertsganj Gurwa Road line in U.P.S.E. Rly. about 80 km. from the site of Camping *e.g.,* Wald orfnagar.
7.	Semarsot Sanctuary	do	430.361	do	Rail head is Garwa in Bihar S.E. Rly about 97 km. From the site of Camping *e.g.,* Balrampur.
8.	Panna Game	Panna	478.809	Tier, panther, sambar, chital,	Satna 95 km.
9.	Gomardha Game Sanctuary	Raigarh	133.38	Tiger, panther, sambar, chital, nilgai, gaur, barking deer.	Raigarh 70 km. Raipur 202 km.
10.	Badalkhol Game Sanctuary	Raigarh	104.45	Tiger, panther, sambar, chital, nilgai, etc.	Raigarh (M.P. 184 km.) Jharsagud Odisha 180 km.
11.	Barnawapara Game Sanctuary	Raipur	244.06	Tiger, panther, gaur, sambar, chital, bear, etc.	Raipur 103 km.

टिप्पणी

12.	Sirpar Bird Sanctuary	Raipur	43.568	Variety of upland birds and multitude of birds along with wild animals.	Raipur 68 km.
13.	Sitanadi Sanctuary	Raipur	1500 533.36	Tiger, panther, sambar, chital, bison, wild boar, barking deer, peacock, etc.	Dhamtari 98 km.
14.	Noradehi Game Sanctuary	Sagar, Damoh	1500	Tiger, panther, sambar, chinkara, chital, nilgai, bear etc.	Sagar 84 km.
15.	Narsinghagarh G. Sanctuary	Raigarh	57.197	Panther, sambar, chital, wild pig, peacock, nilgai.	Biaora 25 km.
16.	Dubari Game Sanctuary	Sidhi	364.593	Tiger, panther, sambar, chital, nilgai, barking deer, chinkara, etc.	Sidhi 65 km.
17.	Bagdara	do	478.900	Panther, black buck, chinkara, sambar, nilgai, wild pig, etc.	Mirjapur (U.P.) 80 km.
18.	Pachmarhi	Hoshang abad	654.49	Tiger, panther, bear, bison, spotted deer, sambar, barking deer, nilgai, etc.	Pipariya 25 km.
19.	Achanakmar Game Sanctuary	Bilaspur	551.52	Tiger, bison, sambar, chital, boar, peacock, etc.	Kagiroad 30 km.
20.	Ratapani	Raisen	530.36	Tiger, panther, sambar, chital, blue bull, chinkara, etc.	Barhheda Rly. Station inside Obedullaganj 10 km.
21.	Pench	Chhindwara & Seoni	449.39	Tiger, panther, paur, chital, sambar, nilgai, etc.	Seoni 45 km.
22.	Singhori	Bhopal	287.91	do	Bhopal 70 km.
23.	Gandhi Sagar	Raisen	224.65	Water birds, chital, sambar, chinkara, barking deer.	Neemach 60 km.
24.	Kheoni	Dewas	51	Panther, chital, sambar, nilgai, bear etc.	Dewas 110 km.
25.	National Chambal Sanctuary	Morena	3582	Gharial	

कान्हा राष्ट्रीय उद्यान (Kanha National Park)

यह देश का सबसे बड़ा राष्ट्रीय उद्यान है जो मध्य प्रदेश के मण्डला एवं बालाघाट जिलों के अन्तर्गत स्थित है। इसका क्षेत्रफल 940 वर्ग किमी है। यह क्षेत्र तीन तरफ से मैखाल पहाड़ियों (Maikhal hills) से गिरा हुआ है। यह उद्यान जबलपुर

टिप्पणी

से 170 किमी तथा नागपुर से 270 किमी दूर स्थित है। यहाँ साल वृक्ष तथा घास के चरागाह पाये जाते हैं। चरागाहों के मध्य अनेक धाराएँ बहती हैं।

यहाँ चीता, बारसिंगा, चितल, सांभर, काला हिरण, चौसिंघा, भौंकन मृग, मूषक मृग, नीलगाय, जंगली कुत्ते जंगली सूअर, अजगर तथा पीफाउल (Peafowl) पक्षी पाये जाते हैं।

वर्ष 1974 में इस पार्क में बाघ परियोजना (Project Tiger) प्रारम्भ की गयी। चीते एवं बारहसिंघा इस पार्क के प्रमुख आकर्षण हैं।

3.9 भारतीय वन्य जीव मण्डल (Indian Board for Wild Life)

सन् 1949 में भारत सरकार ने देश की विलक्षण एवं विपुल जैव विविधता के संरक्षण हेतु परामर्शदात्री समिति के रूप में **वन्य जीवन केन्द्रीय परिषद्** (Central Board for Wild Life) का गठन किया, जिसे 1952 में **भारतीय वन्य जीव मण्डल** (Indian Board for Wild Life) या IBWL के नाम से जाना जाने लगा। इसका प्रमुख उद्देश्य केन्द्र एवं राज्य सरकारों को देश के वन्यजीवों के प्रभावी संरक्षण हेतु अपनायी जाने वाली योजनाओं एवं कार्यान्वित की जाने वाली नीतियों तथा कार्यक्रमों के विषय में उचित सलाह देना था।

प्रारम्भिक वर्षों में मैसूर के महाराजा चामाराजेन्द्र वाडियार (Chamarajendra Wadiyar) को भारतीय वन्य जीव मण्डल का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। इसके अतिरिक्त वन्य जीवन के क्षेत्र में कार्यरत कुछ उत्साही एवं निष्ठावान कार्यकर्ताओं को इसका सदस्य बनाया गया जिनमें प्रमुख थे असम के हाथी विशेषज्ञ श्री पी.डी. स्ट्रेसी (P.D. Stracy), गुजरात के शेर विशेषज्ञ श्री धर्म कुमार सिन्हा (Dharam Kumar Sinha), दक्षिण भारत के हाथी विशेषज्ञ श्री एम. कृष्णन् (M. Krishnan) तथा श्री ई.पी.गी (E.P. Gee)। इस बोर्ड का एक पृथक् सचिवालय था। बोर्ड द्वारा की गई कुछ संस्तुतियाँ आज भी प्रासंगिक हैं; जैसे– वन्य जीवन सप्ताह (Wild Life Week) मनाने की प्रथा के स्थापन से जनता में वन्य जीव संरक्षण के प्रति जागरूकता पैदा करना, राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों की स्थापना तथा व्यावसायिक निपुणता रखने वाले वन्य जीव कार्मिकों की पदोन्नति करना।

साठ के दशक में बोर्ड को अधिक शक्तियाँ प्रदान करने तथा संस्तुतियों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कैबिनेट स्तर के मन्त्री डॉ. कर्णसिंह को बोर्ड का अध्यक्ष बनाया गया। इसी के साथ बोर्ड के सदस्यों के रूप में महत्वपूर्ण सरकारी विभागों के सचिवों, योजना आयोग के प्रतिनिधि एवं सैन्य प्रमुख को सम्मिलित करते हुए भारत सरकार के वन्य जीव विभाग के निर्देशक (संयुक्त सचिव स्तर) को बोर्ड के सदस्य सचिव (Member Secretary) के रूप में नामित किया गया। इसके अतिरिक्त वन्य जीव संरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले अधिकतम दस व्यक्तियों को बोर्ड के सदस्यों के रूप में सम्मिलित किया गया। इस बोर्ड ने देश में वन्य जीव संरक्षण को अधिक प्रभावी

टिप्पणी

बनाने हेतु अनेक प्रवर्तन (Initiatives) लिए। इनमें से प्रमुख हैं–देश में स्थापित राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों की स्थिति का विशेषज्ञों की एक समिति द्वारा आंकलन। इस समिति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्तुति थी, देश में तेंदुओं (Panthers) और बाघों (Tigers) के शिकार पर रोक लगाना तथा वन्य जीव रक्षण हेतु एक केन्द्रीय विधान लाना जो सम्पूर्ण देश में समान रूप से लागू हो सके। इसी संस्तुति के परिप्रेक्ष्य में ही वन्य जीव (रक्षण) अधिनियम, 1972 [Wild Life (Protection) Act, 1972] लागू किया गया तथा बाघ परियोजना (Project Tiger) प्रारम्भ की गई। इसी बोर्ड ने देश में स्थापित चिड़ियाघरों (Zoos) की स्थिति के आंकलन एवं उनमें सुधार हेतु योजनाएँ प्रस्तावित करने के उद्देश्य से विशेषज्ञों की एक अन्य समिति का गठन किया। समिति द्वारा प्रस्तावित कुछ महत्वपूर्ण संस्तुतियों को सरकार ने मान्यता प्रदान की। समिति की संस्तुतियों ने कई राज्य सरकारों को आधुनिक रूपरेखा (Design) पर आधारित चिड़ियाघरों की स्थापना हेतु प्रेरित किया।

भारतीय वन्य जीव बोर्ड मात्र एक अनुशंसात्मक संस्था (Recommendatory body) के रूप में कार्य कर रही थी अतः उसके द्वारा प्रस्तावित ऐसी संस्तुतियाँ राज्यों में उपेक्षित रह जाती थीं जो उनके अनुकूल नहीं होती थीं। इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भारतीय वन्य जीव बोर्ड के अध्यक्ष का उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए देश में वन्य जीवन से सम्बन्धित प्रकरणों का स्वयं पर्यवेक्षण (Supervision) किया। उन्हीं की अध्यक्षता में देश में वन्य जीवन संरक्षण हेतु एक बहुआयामी राष्ट्रीय वन्य जीवन कार्य योजना (National Wild Life Action Plan) प्रारम्भ की गई। इस कार्य योजना के अन्तर्गत देश में वन्य जीवन संरक्षण हेतु वैज्ञानिक निवेश (Scientific inputs) की आवश्यकता पर अत्यधिक जोर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप देहरादून में वन्य जीवन संस्थान (Wild Life Institute of India) की स्थापना हुई। यह संस्थान नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से वन्य जीवन के क्षेत्र में कार्यरत लोगों को व्यावसायिक निपुणता प्रदान करता है। इसी संस्थान में वन्य जीव रक्षण क्षेत्रों को वैज्ञानिक दृष्टि से विकसित करने हेतु कार्य होता है। इसके बाद स्व. श्री राजीव गाँधी के भारतीय वन्य जीव बोर्ड के अध्यक्षीय कार्यकाल में भी वन्य जीवन संरक्षण हेतु अनेक प्रभावी योजनात्मक निर्णय लिए गए।

1988 से लेकर 2001 तक भारतीय वन्य जीव बोर्ड ने किन्हीं परिस्थितियोंवश कोई विशिष्ट कार्य नहीं किया। इसी के पश्चात् केन्द्रीय सरकार ने वन्य जीवन (रक्षण) संशोधन अधिनियम, 2003 [Wild Life (Protection) Ammendment Act, 2003] पारित करके भारतीय वन जीव बोर्ड को संवैधानिक दर्जा प्रदान करते हुए इसका नाम राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड (National Board for Wild Life) कर दिया जिसके अग्रलिखित अधिदेशात्मक कार्य (Mandatory Functions) निर्धारित किए गये–

1. वन्य जीवन संरक्षण को प्रोत्साहित करने, अनाधिकार शिकार (Poaching) को नियन्त्रित करने तथा वन्य जीवों तथा उसके उत्पादों के अवैध व्यापार

टिप्पणी

को रोकने हेतु केन्द्र सरकार को सलाह देना एवं उससे सम्बन्धित योजनाएँ बनाना।

2. देश में स्थापित राष्ट्रीय पार्कों, अभयारण्यों एवं अन्य आरक्षित क्षेत्रों के प्रबन्धन एवं ऐसे स्थानों पर होने वाले क्रिया–कलापों को प्रतिबन्धित करने हेतु संस्तुति करना।
3. वन्य जीवों एवं उनके आवासों से सम्बन्धित विभिन्न परियोजनाओं एवं क्रिया–कलापों के परिणामों का आंकलन करना।
4. देश में चल रहे वन्य जीवन संरक्षण से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों का समय–समय पर पुनरीक्षण (Review) करना तथा उससें सम्भावित सुधारों हेतु सुझाव देना।
5. कम–से–कम दो वर्ष में एक बार देश में वन्य जीवों की स्थिति (Status) पर प्रतिवेदन (Report) तैयार करना एवं उसे प्रकाशित करना।

उपर्युक्त बोर्ड का गठन निम्नलिखित प्रकार से होता है–

1.	प्रधानमंत्री	– अध्यक्ष
2.	मंत्री, पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय	– उपाध्यक्ष
3.	तीन संसद सदस्य	– सदस्य
4.	वन्य जीवन संरक्षण से सम्बन्धित पाँच अराजकीय संगठनों से नामांकित	– सदस्य
5.	संरक्षण, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के क्षेत्र में कार्य कर रहे दस उत्कृष्ट कार्यकर्ता	– सदस्य
6.	पर्यावरण, रक्षा, सूचना एवं प्रसारण तथा जनजाति कल्याण मन्त्रालयों के सचिव	– सदस्य
7.	थल सेना प्रमुख	– सदस्य
8.	महानिदेशक, वन	– सदस्य
9.	महानिदेशक, पर्यटन, भारत सरकार	– सदस्य
10.	महानिदेशक, भारतीय अनुसन्धान परिषद्	– सदस्य
11.	निदेशक, वन्य जीवन संस्थान, देहरादून	– सदस्य
12.	निदेशक, जूलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, कोलकाता	– सदस्य
13.	निदेशक, बोटेनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, कोलकाता	– सदस्य
14.	निदेशक, आई.वी.आर.आई., बरेली	– सदस्य
15.	सदस्य सचिव, राष्ट्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण	– सदस्य
16.	निदेशक, राष्ट्रीय समुद्र–विज्ञान संस्थान, गोआ	– सदस्य
17.	चक्रानुक्रमानुसार केन्द्र द्वारा नामित दस राज्यों एवं केन्द्र शासित राज्यों में से प्रत्येक से एक–एक प्रतिनिधि	– सदस्य

गैर–सरकारी सदस्यों एवं राज्य सरकारों से आये प्रतिनिधियों की सदस्यता अवधि तीन वर्ष होती है। बोर्ड की बैठक वर्ष में एक बार होती है।

बोर्ड के अधिशासी कर्त्तव्यों (Executive functions) के क्रियान्वयन हेतु एक स्थायी समिति (Standing Committee) होती है। बोर्ड के उपाध्यक्ष, सदस्य सचिव एवं अध्यक्ष द्वारा बोर्ड के सदस्यों में से नामित कोई दस सदस्यों से मिलकर स्थायी समिति का गठन होता है। लगभग तीन महीनों में एक बार इस समिति की बैठक होती है। इस समिति की प्रमुख उपलब्धि है वन्य जीव आवासों का विभिन्न विकासशील परियोजनाओं हेतु बुद्धिसंगत उपयोग एवं ऐसी परियोजनाओं के कारण वन्य जीवों एवं उनके आवासों पर पड़ने वाले संघातों (Impacts) के न्यूनीकरण हेतु मापदण्डों का निर्धारण। इसके अतिरिक्त यह समिति वन्य जीवन संरक्षण से सम्बन्धित विभिन्न क्रिया–कलापों के संचालन में पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय की सहायता करती है।

3.10 वन एवं वन्य जीवन नियम (Forest and Wild Life Legislations)

अंग्रेजी शासन ने अपने शासनकाल में वन्य जीवन के लिए कुछ सरकारी अधिनियम बनाये; जैसे–मद्रास वाइल्ड एलीफैन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट, 1873 (Madras Wild Elephant Preservation Act, 1873), ऑल इण्डिया एलीफैन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट, 1879 (All India Elephant Preservation Act, 1879); द वाइल्ड बर्डस् एण्ड एनिमल्स प्रोटेक्शन एक्ट, 1912 (The Wild Birds and Animals Protection Act, 1912) तथा बंगाल राइनोसेरॉस प्रिजर्वेशन एक्ट, 1932 (Bengal Rhinoceros Preservation Act, 1932) आदि। भारत सरकार ने वन एवं वन्य जीवन से सम्बन्धित निम्नलिखित अधिनियम जारी किए हैं–

(1) भारतीय वन अधिनियम, 1927 तथा संशोधित 1984 (The Indian Forest Act, 1927 and Amendment, 1984) – यह उपनिवेशी अधिनियम (Colonial statute) है। इसके विधिकरण के उद्देश्य हैं–वनों से सम्बन्धित कानूनों का समेकन, वन उत्पादनों का परिवहन तथा लकड़ी एवं अन्य वनोत्पादनों पर आरोप्य शुल्क (Leviable duty) का निर्धारण।

(2) वन्य जीवन (रक्षण) अधिनियम, 1972; नियम, 1973 तथा संशोधन, 1991, 2003 [The Wild Life (Protection) Act, 1972; Rules, 1973 and Amendment 1991, 2003] – इस अधिनियम को केन्द्र सरकार ने दिसम्बर 1972 में लागू किया जिसे 1991 तथा 2003 में पुनः संशोधित किया गया। इस अधिनियम में 7 अध्याय (Chapters), 6 सूचियाँ (Schedules) तथा 66 खण्ड (Sections) हैं। इस अधिनियम द्वारा सरकार ने वन्य जीवन के वैधानिक संरक्षण, अभ्यारण्यों के राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीय उद्यानों एवं प्राणिविहारों की स्थापना और वन्य जन्तुओं का चोरी से शिकार करने वालों को कठोर दण्ड देने के अधिकार प्राप्त किए।

टिप्पणी

(3) वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 तथा नियम 1981 [The Forest (Conservation Act) 1980 and Rules 1981] – शासन ने भारतीय संविधान में बयालीसवाँ संशोधन (42nd Amendment in Indian Constitution) करके वन्य जीवन के संरक्षण एवं जंगलों के अधिग्रहण सम्बन्धी अधिकार प्राप्त किए। सन् 1980 में वन (संरक्षण) अधिनियम लागू कर वनों के रक्षण एवं संरक्षण की व्यवस्था की तथा केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना किसी भी जंगल का किसी भी कार्य के लिए विनाश करना प्रतिबन्धित किया।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. भारत में बब्बर शेर पाया जाता है–
   (अ) सुन्दरवन में, (ब) गुजरात के गिर वन में,
   (क) नीलगिरि वन में, (ड) कार्बेट उद्यान में।
2. भारत का राष्ट्रीय पशु है–
   (अ) बब्बर शेर, (ब) बाघ,
   (क) हाथी, (ड) मृग।
3. जीवनमण्डल आरक्षित क्षेत्रों (Biosphere reserves) में सबसे बाहरी परिधीय क्षेत्र कहलाता है–
   (अ) परिचालन क्षेत्र, (ब) केन्द्रीय क्षेत्र,
   (क) प्रतिरोधक क्षेत्र, (ड) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
4. निम्नलिखित में से कौन–सी वस्तु प्राणि उत्पाद नहीं है–
   (अ) फर, (ब) लाख,
   (क) कस्तूरी, (ड) राल।
5. भारतीय वन्य जन्तुओं में कौन–सा वनमानुष सम्मिलित है?
   (अ) गोरिल्ला, (ब) ओरंग–उटान,
   (क) गिब्बन, (ड) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
6. हिम चीता (Snow Leopard) किस अभयारण्य में पाया जाता है?
   (अ) दाचीगाम, (ब) सुन्दरवन,
   (क) पेरियार, (ड) मनास।
7. भारतीय गेंडा निम्नलिखित में से किसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण संरक्षित वन्य जन्तु है?
   (अ) गिर राष्ट्रीय उद्यान, (ब) कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान,
   (क) बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान, (ड) काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान।

टिप्पणी

8. एशियाटिक सिंह अब किस प्रदेश तक सीमित रह गये हैं?

(अ) मध्य प्रदेश, (ब) उत्तर प्रदेश,

(क) राजस्थान, (ड) गुजरात।

9. किस राज्य में कान्हा नेशनल पार्क स्थित है?

(अ) उत्तर प्रदेश, (ब) मध्य प्रदेश,

(क) राजस्थान, (ड) गुजरात।

10. भारत का राष्ट्रीय धरोहर पशु घोषित किया गया है–

(अ) हाथी, (ब) बाघ,

(क) मृग, (ड) गिर सिंह।

11. गिर सिंह परियोजना किस राज्य में स्थित है?

(अ) महाराष्ट्र, (ब) गुजरात,

(क) राजस्थान, (ड) उत्तर प्रदेश।

12. भारतीय वन्य जीव बोर्ड के प्रारम्भिक अध्यक्ष थे–

(अ) सी. राजगोपाल, (ब) सी. वाडियार,

(क) पी.डी. स्ट्रेसी, (ड) एम. कृष्णन्।

13. भारतीय वन्य जीव मण्डल की स्थापना हुई–

(अ) सन् 1949 में, (ब) सन् 1950 में,

(क) सन् 1951 में, (ड) सन् 1952 में।

14. राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड का अध्यक्ष होता है–

(अ) प्रधानमन्त्री, (ब) पर्यावरण एवं वन मन्त्री,

(क) कृषि मन्त्री, (ड) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

15. निम्नलिखित में से किसकी अनुशंसा पर मगर परियोजना प्रारम्भ की गई?

(अ) डॉ. बस्टर्ड, (ब) डॉ. ग्रीन,

(क) डॉ. सालिम अली, (ड) इनमें से कोई नहीं।

16. मगर परियोजना के अन्तर्गत किसका संरक्षण किया जाता है?

(अ) गैवायालिस गैन्जेटिकस, (ब) क्रोकोडाइलस पालस्ट्रिस,

(क) क्रोकोडाइलस पोरोसस, (ड) उपर्युक्त सभी।

17. भोपाल गैस त्रासदी के बाद ऐसी दुर्घटनाओं को रोकने हेतु बनाया गया अधिनियम है–

(अ) पर्यावरण (रक्षण) अधिनियम,

टिप्पणी

(ब) वायु (प्रदूषण निरोधन एवं नियन्त्रण) अधिनियम,

(क) उपर्युक्त दोनों,

(ड) दोनों में से कोई नहीं।

18. भारत सरकार ने वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम कब पारित किया?

(अ) 1952, (ब) 1962,

(क) 1972, (ड) 1982।

3.11 भारत की संकटापन्न प्रजातियाँ (Endangered Species of India)

परिचय (Introduction)

जो जातियाँ वर्तमान समय में विलुप्त होने की स्थिति में हों तथा जिन जीव प्रजातियों के अस्तित्व को मनुष्य एवं मनुष्य के द्वारा निर्मित कारणों या मनुष्य की क्रियाओं के कारण संकट/खतरा उत्पन्न हो गया हो संकटापन्न प्रजातियाँ कहलाती हैं।

या

इस प्रकार के वन्य जीव जिनका अस्तित्व विनाश की ओर अग्रसर हो और इन वन्य जीवों का वर्तमान समय के पर्यावरण कारकों की उपस्थिति के कारण निरन्तर जीवित रहना दुविधामय हो **संकटापन्न जीव प्रजातियाँ** कहलाती हैं।

शहरीकरण, औद्योगीकरण, जनसंख्या वृद्धि के कारण वनों का विनाश, वन्य जीव जात के आवास स्थल धीरे–धीरे कम होते जा रहे हैं। अतः सुरक्षित एवं अनुकूल आवास स्थलों की कमी के कारण वन्य जीव जात प्रजाति का उसके प्राकृतिक आवास में संरक्षण आवश्यक है। प्रकृति के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (International Association for Conservation of Nature) ने 1984 में रेड–डाटा बुक (Red Data Book) का प्रकाशन कर संकटापन्न प्रजातियों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया।

(अ) संकटापन्न प्रजातियाँ (Endangered species) – यह वह जीव जात की प्रजातियाँ हैं जो कि विलुप्त होने की स्थिति में हो या फिर इन प्रजातियों को विलुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। इनका प्राकृतिक आवास नष्ट हो चुका हो। प्रजातियों की संख्या में इतनी कमी आ गई हो जिससे कि इसमें प्रजनन करने की स्थिति समाप्त हो गई है। इसके परिणामस्वरूप इन प्रजातियों में विलुप्त होने की सम्भावना हो गई। उदाहरणः भारतीय सोन चिड़िया, एशिया का शेर, गेंडा आदि।

(ब) दुर्लभ प्रजातियाँ (Rare species) – ऐसी वन्य प्रजातियाँ जो की एक विशिष्ट भू–भाग में या फिर कुछ सीमित क्षेत्र में ही पाई जाती हैं। यह वन्य जीव जात की प्रजातियाँ जीवन के प्रारम्भ से ही असुरक्षित नहीं होती बल्कि धीरे–धीरे

विलुप्ता की स्थिति में आ जाती हैं और फिर अन्त में समाप्त हो जाती है। उदाहरणः **सफेद शेर** केवल भारत वर्ष में बाँधवगढ़ में ही पाया जाता है।

टिप्पणी

(स) संकटमयी प्रजातियाँ (Threatened species) – वन्य जीव जात प्रजातियों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो जाने के कारण, वन्य प्रजातियाँ विलुप्त होने की स्थिति में पहुँच गई हैं संकटमयी प्रजातियाँ कहलाती हैं।

(द) विलुप्त प्रजातियाँ (Extinct species) – वन्य जीव जात– प्राणियों एवं वनस्पतियों की प्रजातियाँ एक समय पाई जाती थी लेकिन पर्यावरणीय, प्राकृतिक कारकों के प्रभाव के कारण वर्तमान में अपने भौगोलिक क्षेत्रों के प्राकृतिक आवासों में नहीं पाये जाते है या विलुप्त हो गये हैं। इन प्रजातियों के केवल जीवाश्म पाये जाते हैं। उदाहरणः ट्रायलोबाईट, आर्कियोप्टेरिक्स आदि।

(इ) प्रहार सुलभ प्रजातियाँ (Vulnerable species) – यह वह वन्य जीव जात–पादपों एवं प्राणियों की प्रजातियाँ होती है जो कि कुछ ही वर्षों में विलुप्त होने की स्थिति में हैं, और भविष्य में पूर्णरूप से विलुप्त हो सकती हैं। क्योंकि इन प्रजातियों की संख्या दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। उदाहरणः चीता, काला हिरन, कुक्कट, सारस एवं तितलियों की कुछ प्रजातियाँ आदि।

स्थानीय जातियाँ (Endemic species) – किसी एक भू–भाग या भौगोलिक क्षेत्र या स्थान में पाई जाने वाली या विकसित होने वाली वन्य जीव जात प्रजातियों को **स्थानीय प्रजातियाँ** कहते हैं।

विश्व में संकटापन्न प्रजातियों के बारे में सर्वप्राय वर्ष 1968 मे UNESCO ने वैज्ञानिकों एवं विद्वान संरक्षणकर्ताओं को प्राणी एवं पादप प्रजातियों के संरक्षण की ओर आकर्षित किया। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संरक्षण संघ (IUCN) ने 1988 में इन प्रजातियों का वर्णन **रेड डाटा बुक** (Red Data Book) में किया है। IUCN ने अन्तर्राष्ट्रीय जैविकी कार्यक्रमों एवं WCMC के साथ मिलकर जीव–जगत की संकटापन्न प्रजातियों–प्राणी प्रजातियाँ 2000 एवं 6000 पादप प्रजातियों को पहचाना। वर्ष 1969 में IUCN ने भारतीय पादप/वनस्पतिक सर्वेक्षण संगठन (Botanical Survey of India) एवं भारतीय प्राणी सर्वेक्षण संगठन (Zoological Survey of India) के साथ मिलकर क्रमशः पादप एवं प्राणी संकटापन्न प्रजातियों की पहचान की।

वर्ष 1980 में वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून (Forest Research Institute, Dehradun) ने भारतीय पादप सर्वेक्षण संगठन देहरादून (BSI) में भारत की संकटापन्न पादप प्रजातियाँ नामक ग्रन्थिका (Booklet)/रेड डाटा बुक (Red Data Book) को प्रस्तुत किया जिसमें भारतवर्ष में 100 संकटापन्न पादप प्रजातियों का उल्लेख किया गया था। वर्तमान समय तक इस ग्रन्थिका में संकटापन्न प्रजातियों की संख्या में वृद्धि हुई है। रेड डाटा बुक के प्रथम संस्करण (1987) में 235 संकटापन्न पादप प्रजातियों का उल्लेख किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN) की रेड डाटा बुक (Red Data Book) में भारतीय सर्वेक्षण संगठन (ISI) ने संकटापन्न प्राणी प्रजातियों की एक सूची प्रकाशित की है। इसमें लगभग 600 प्राणी प्रजातियों के नामों को उल्लेख

टिप्पणी

किया गया है। इस सूची में कुछ ऐसी प्रजातियाँ हैं जिनकी संख्या वर्तमान समय 100 से कम है और प्रजातियों की संख्या 10 या इससे कम हैं। ईसा के सम्वत् के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक भारतवर्ष में लगभग 300 प्राणी एवं पक्षी प्रजातियाँ पूर्णतया नष्ट हो चुकी हैं तथा 300–400 अन्य प्रजातियाँ संकटापन्न स्थिति में हैं। भारतवर्ष की प्रमुख संकटापन्न प्राणी प्रजातियाँ हैं–

राज्य	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम
Andhra Pradesh	Blackbuck	*Antilope cervicapra*
Arunachal Pradesh	Gayal	*Bos frontalis*
Assam	One-horned rhino	*Rhinoceros unicornis*
Bihar	Ox	*Bos gaurus*
Chhattisgarh	Wild buffalo	*B. Bubalis ornee*
Goa	Gaur	*Bos gaurus*
Gujarat	Asiatic lion	*Panthera leo persica*
Haryana	Blackbuck	*Antilope cervicapra*
Himachal Pradesh	Snow leopard	*Uncia uncia or Panthera uncia*
Jammu & Kashmir	Kashmir stag/*Hangul*	*Cervus elaphus hanglu*
Jharkhand	Indian elephant	*Elephas maximus indicus*
Karnataka	Indian elephant	*Elephas maximus indicus*
Kerala	Indian elephant	*Elephas maximus indicus*
Madhya Pradesh	Barasingha (swamp deer)	*Rucervus duvaucelii*
Maharashtra	Indian giant squirrel	*Ratufa indica*
Manipur	Sangai	*Cervus eldi eldi*
Meghalaya	Clouded leopard	*Neofelis nebulosa*
Mizoram	Hoolock gibbon	*Hoolock hoolock*
Nagaland	Gayal/Mithun	*Bos frontalis*
Odisha	Sambar	*Rusa unicolor*
Punjab	Blackbuck	*Antilope cervicapra*
Rajasthan	Camel	*No Scientific name*
Sikkim	Red panda	*Ailurus fulgens*
Tamil Nadu	Nilgiri tahr	*Nilgiritragus hylocrius*
Telangana	Spotted deer	*Axis axis*
Tripura	Phayre's langur	*Trachypithecus phayrei*
Uttar Pradesh	Swamp deer	*Rucervus duvaucelii*

टिप्पणी

Uttarakhand	Alpine Musk Deer	*Moschus chryosogaster*
West Bengal	Fishing cat	*Prionailurus viverrinus*
Andaman and Nocobar Islands	Dugong	Dugong
Delhi	Nilgai	Boselaphus tragocamelus
Lakshadweep	Butterfly fish	*Chaetodon decussatus*
Puducherry	Squirrel	*Sciuridae*

वर्ष 1970 में IUCN के उत्तरजीविता सेवा आयोग (Survival Service Commission) की **रेड डाटा बुक** के अनुसार विश्व भर में लगभग 20,000 पादप प्रजातियाँ तथा 3,500 प्राणी प्रजातियाँ विलुप्त होने की स्थिति में हैं।

उपरोक्त प्राणी प्रजातियों के अतिरिक्त कुछ पादप एवं प्राणी प्रजातियाँ ऐसी हैं जो कि सीमित क्षेत्र में पाई जाती हैं। किसी विशेष भू–भाग/स्थान–पहाड़ी, पठार, द्वीप, घाटी, नदी आदि तक सीमित प्राणी एवं पादप प्रजातियाँ **स्थानीय प्रजातियाँ** (Endemic Species) कहलाती है।

पादप प्रजातियों में कुल **5 हजार** प्रजातियाँ स्थानीय विशेष प्रजातियाँ भारतवर्ष में हिमालय पर्वत एवं पश्चिमी घाट के सदाबहार वनों में पाई जाती है।

प्राणी प्रजातियों में भारतवर्ष के पश्चिमी घाट में पाई जाने वाली उभयचरी प्राणियों की संख्या का 2/3 भाग स्थानीय विशेष प्रजातियाँ होती है।

आधुनिक अध्ययन के अनुसार भारतवर्ष में पाये जाने वाले संवहनीय वनस्पति की कुल संख्या का 35% स्थानीय विशेष प्रजातियाँ हैं भारतवर्ष में एक बीजपत्री (monocotyleds) की 588 प्रजातियों में से 22 प्रजातियाँ स्थानीय विशेष होती है। केरल की शान्त घाटी (Silent valley) के ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वन स्थानीय विशेष है। पश्चिम बंगाल के सुंदर वन में पाये जाने वाले लवणोद्भिद (Halophytes) विशेष क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्राणी प्रजातियों में सफेद शेर बाँधवगढ़ (रीवा) में ही पाया जाता है। एक सींग का गेंडा (Rhinoceros) केवल आसाम एवं उसके आसपास के स्थानीय क्षेत्र में पाया जाता है काला हिरन राजस्थान एवं मध्य प्रदेश के विशेष भू–भाग में पाया जाता है। बायसन होशंगाबाद के वनीय क्षेत्र में पाया जाता है। सफेद/भूरा नाग केवल ग्वालियर के वनीय क्षेत्र में पाया जाता है। भारतीय डालफिन केवल गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों में ही पाई जाती है। एशियाई सिंह–गुजरात; धारीदार मुश्कबिलाव–केरल; जंगली गधा–गुजरात–कच्छ की खाड़ी क्षेत्र में; सोन चिड़िया–राजस्थान का मरुक्षेत्र; जोर्डन कर्सर–आंध्र प्रदेश आदि स्थानी प्रजातियों के अन्तर्गत आते हैं।

टिप्पणी

3.12 जैव विविधता का संरक्षण–स्थानास्थ एवं बहिः स्थानास्थ संरक्षण (Conservation of Biodiversity: In-situ and Ex-situ)

(अ) स्थानास्थ (In-situ) एवं (ब) बहिः स्थानास्थ (Ex-situ)

(अ) स्थानास्थ (In-situ) – इसके अन्तर्गत किसी भी प्रजाति का संरक्षण उसके मूल आवासों में और स्थानान्तरित किये बिना प्राकृतिक आवास में अनुकूल दशाएँ प्रदाय कर किया जाता है। इसको स्थानास्थ संख्या के नाम से जाना जाता है। यह एक महत्वपूर्ण विधि है जो कि संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण के लिए जाता है। इस विधि के अन्तर्गत वन्य प्राणियों एवं पादपों का प्राकृतिक क्षेत्र/स्थल का चयन करके प्राणियों के विचरण के लिए पर्याप्त स्थान, खाद्य जाल (food webs), खाद्य श्रृंखला (food chain) के अनुसार प्राणी एवं पादपों की प्रजातियों को संरक्षण प्रदान किया जाता है। इस कार्य के लिए राष्ट्रीय उद्यान (National Park), अभ्यारण्यों (Sanctuaries) एवं जैव मण्डल आरक्षण स्थल (Biosphere reserves) को स्थापित किया गया। इन संरक्षण स्थलों की स्थापना के लिए वर्ष 1952 में भारतीय वन्य प्राणी परिषद (India Board of wild life) का गठन किया। वर्ष 1970 में IUCN ने भारतीय वन्य प्राणी परिषद के तत्वाधान वन्य जीव के संरक्षण के लिए प्रभावी कानून बनाए। भारतवर्ष में अनेक भू–भागों में राष्ट्रीय पार्क, अभ्यारण्यों एवं जैवमण्डल आरक्षण स्थलों को स्थापित कर वन्य जीव जातों को प्राकृतिक आवास में संरक्षण दिया जा रहा है, जिससे प्रकृति की सुन्दर धरोहर को बचाया एवं संरक्षण प्रदाय किया जा सके।

(ब) बहिः स्थानास्थ संरक्षण (Ex-situ) – इस विधि के अन्तर्गत संकटापन्न जीव–जात–पादपों एवं प्राणियों को उनके आनुवंशिक स्रोतों के द्वारा उसके प्राकृतिक आवास से अन्यत्र आवास या कृत्रिम आवास में संरक्षण प्रदान करना। वर्तमान समय में तीव्र गति से नष्ट होते प्राकृतिक आवासों के कारण संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अप्राकृतिक, कृत्रिम आवास संरक्षण अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। सामान्यतः इस प्रकार का संरक्षण कृषि फसलों के विकास के लिए किया जा रहा है। कृषि फसलों के अतिरिक्त, कुक्कर एवं पशुओं आदि में भी इस विधि के द्वारा विविधता का संरक्षण किया जाता है। इस विधि की सफलता कृत्रिम, अप्राकृतिक आवासों में पादप एवं प्राणि प्रजातियों को आवासों की कई परिस्थितियों/दशाओं पर निर्भर करती है। कृत्रिम आवासों में प्रजातियों को प्राकृतिक आवास के समान वातावरण, विचरण के लिये पर्याप्त स्थान, तापमान, प्रकाश एवं भोजन आदि की आपूर्ति के द्वारा ही प्रजनन एवं संवर्द्धन की स्थिति निर्मित होती है। इन प्रजातियों को अनुकूल दशाएँ प्राप्त होने पर इनके प्राकृतिक आवास में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

19. रेड डाटा बुक में है–

(अ) पादप समुह का विवरण, (ब) विलुप्त प्रजातियों का वर्णन

(क) प्राणी समूह का विवरण (ड) उपरोक्त में से कोई नहीं

20. टाईगर संरक्षण कब प्रारम्भ हुई–

(अ) 1972 (ब) 1956

(क) 1983 (ड) 1985

21. IUCN के अनुसार विश्व में विलुप्त प्राणियों की संख्या है–

(अ) 700 (ब) 10,000

(क) 20,000 (ड) 2,400

3.13 प्रदूषण के प्रकारः वायु, जल, मिट्टी/मृदा, तापीय एवं ध्वनि प्रदूषण (Types of Pollution: Air, Water, Soil, Thermal and Noise Pollution)

पर्यावरणीय निम्नीकरण (Environmental Degradation)

'पर्यावरण' (Environment) अजैविक एवं जैविक घटकों का एक ऐसा संयोजन है जो सभी जीवधारियों के विकास हेतु अनुकूल आवास (Habitat) उपलब्ध कराता है। इस आवास को सम्पोषित करने के लिए पर्यावरण के तत्व निरन्तर क्रियाशील रहते हैं तथा परस्पर सामंजस्य बनाये रखते हैं। ये पर्यावरणीय तत्व जब अपने स्वाभाविक गुणों के विपरीत जीवधारियों को प्रभावित करने लगते हैं तब इस परिवर्तित स्थिति को पर्यावरणीय निम्नीकरण (Environmental degradation) कहते हैं।

पर्यावरणीय निम्नीकरण की प्रक्रिया (Process of Environmental Degradation)

पर्यावरणीय निम्नीकरण जीवधारियों विशेषकर मनुष्य द्वारा पर्यावरण की अवमानना एवं शोषण के साथ प्रारम्भ होता है। पर्यावरणीय संसाधनों के अतिदोहन के परिणामस्वरूप पर्यावरण की क्रियाशीलता कम होने लगती है जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण निम्नीकृत हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि लगातार बढ़ रही जनसंख्या के सम्पोषण हेतु मृदा का उपयोग बढ़ता चला जाये और उत्पादन को बनाये रखने के लिए विभिन्न रासायनिक उर्वरकों का उपयोग किया जाता रहे तो मृदा की उत्पादकता घटती चली जाती है। मृदा की उत्पादकता कम हो जाने पर हम अन्य संसाधनों का अधिक उपयोग करने लगते हैं जो दुरुपयोग

टिप्पणी

की स्थिति तक पहुँच जाता है। इससे पर्यावरण के अनेक तत्व अस्वाभाविक प्रतिक्रिया करने लगते हैं। इस प्रक्रिया को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

मानवीय क्रियाकलाप

↓

पर्यावरण पर दबाव

↓

पर्यावरणीय निम्नीकरण

↓

पारिस्थितिकीय क्षति

वैज्ञानिकों का मानना है कि पर्यावरण तभी निम्नीकृत होता है जब उसके प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया जाये। यदि उसके साथ सहयोग का रास्ता अपनाया जाये तो विभिन्न पर्यावरणीय तत्व छोटी–मोटी क्षति को संवर्धित कर सन्तुलन स्थापित रखते हैं। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में निम्नलिखित पर्यावरणीय तत्वों की भूमिका प्रमुख है–

1. शुद्ध वायु,
2. शुद्ध जल,
3. उपजाऊ मृदा,
4. खनिज सम्पदा,
5. पादप एवं जन्तु,
6. अनुकूल मौसम एवं जलवायु।

पर्यावरणीय निम्नीकरण के प्रमुख कारण

(Main Causes of Environmental Degradation)

पर्यावरणीय निम्नीकरण मनुष्य की महत्वाकांक्षी विकास योजनाओं, प्रकृति के प्रति निष्ठुरता, तकनीकी वैज्ञानिक प्रयोग, अज्ञानता, जनसंख्या वृद्धि, अधिक पशुपालन आदि कारकों से सम्बन्धित है। अध्ययनों के आधार पर पर्यावरणीय निम्नीकरण हेतु उत्तरदायी कारकों को निम्न प्रकार से सूचीबद्ध किया गया है–

1. वन विनाशन (Deforestation),
2. जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion),
3. औद्योगिक विकास (Industrial Development),
4. तकनीकी विकास (Technical Development),
5. संसाधनों का अविवेकपूर्ण उपयोग (Indiscriminate Use of Resources),
6. गहन कृषि प्रणाली (Intensive Agricultural Practices),

7. शस्य वैज्ञानिक विधियों का दोषपूर्ण उपयोग (Faulty use of Agronomic Procedures),
8. अत्यधिक पशुचारण (Overgrazing),
9. नगरीकरण (Urbanization),
10. यातायात के साधनों का तीव्र विस्तार (Rapid Development of Means of Transportation)।

पर्यावरणीय निम्नीकरण के प्रभाव

(Effects of Environmental Degradation)

पर्यावरणीय निम्नीकरण प्रकृति के अजैविक तथा जैविक घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों में असन्तुलन स्थापित करता है जिसके फलस्वरूप जीवन की गुणवत्ता घटने लगती है। पर्यावरणीय निम्नीकरण के निम्नलिखित तीन प्रभावी पक्ष विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं–

1. प्रदूषण (Pollution),
2. प्राकृतिक प्रकोप (Natural hazards),
3. सांस्कृतिक समस्याएँ (Cultural problems)।

3.14 वातावरणीय प्रदूषण (Environmental Pollution)

प्रदूषण का मूल कारण मानव है तथा जैसे–जैसे मानव संख्या में वृद्धि होती है, तदनुरूप प्रदूषण भी बढ़ता जाता है। जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ भूमण्डलीय देशों के बीच मची विकास की होड़ में मानव ने जाने–अनजाने प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों का इतना अन्धाधुन्ध दोहन किया है कि जैवमण्डल के विभिन्न जैविक और अजैविक कारकों के मध्य स्थापित सन्तुलन इतना अधिक अव्यवस्थित हो गया है कि आज मानव का वातावरण मानव के लिए ही नहीं अपितु अन्य सभी जीवित जीवों की उत्तरजीविता का दुश्मन बन गया है।

विश्व की लगभग 80 प्रतिशत आबादी गरीब तथा विकासशील देशों में रह रही है जहाँ मुख्यतया मानव एवं जन्तुओं के अपशिष्टों के कारण प्रदूषण होता है। धनी एवं विकसित देश जहाँ विश्व की कुल 20 प्रतिशत आबादी ही रहती है, 80 प्रतिशत प्रदूषण के लिए उत्तरदायी हैं। प्रदूषण के कारण वातावरण की गुणवत्ता में होने वाली कमी के परिणामस्वरूप वनस्पति आच्छादन एवं जैविक विविधता में कमी, परिवेशी वातावरण एवं खाद्यान्नों में हानिकारक रसायनों की सान्द्रता में वृद्धि, वातावरणीय दुर्घटनाओं की आशंकाओं में वृद्धि तथा जीवनाधार तन्त्रों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है।

जनसंख्या वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत में भी वृद्धि हुई है तथा कुल ऊर्जा की माँग भी अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ी है। इसका स्पष्ट प्रमाण औद्योगिक संयन्त्रों, जीवाश्मीय ईंधन से चलाये जा रहे विद्युत् संयन्त्रों एवं लोगों को

लाने एवं ले जाने वाले परिवहन के साधनों से निकलने वाले विभिन्न प्रकार के वायु प्रदूषक हैं।

टिप्पणी

आज भारत विश्व के दस अग्रणी औद्योगिक देशों में से एक है। रसायन, धातु, उर्वरक, पेट्रोलियम, खाद्य आदि अनेकानेक उद्योगों का जाल सम्पूर्ण देश में फैला हुआ है। इन तमाम उद्योगों में उपमार्जक (Detergents), पीड़कनाशी (Pesticides), जैवनाशी (Biocides), प्लास्टिक एवं प्लास्टिककारी (Plastic and plasticizers), घोलक (Solvents), पेन्ट (Paints), रंजक (Dyes), औषधियाँ (Medicines), खाद्य संयोजी (Food additives) तथा अन्य विभिन्न प्रकार के रसायनों (Chemicals) जैसे उत्पाद मानव हितों के लिए उत्पादित किये जा रहे हैं। इन सभी पदार्थों में पारिस्थितिक तन्त्र को अव्यवस्थित करने एवं हानि पहुँचाने की क्षमता अन्तर्निहित है।

परमाणु ऊर्जा संस्थानों से उत्पन्न होने वाला विकिरण (Radiation) तथा कचरे के रूप में निकलने वाले रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radioactive waste) के कारण प्रदूषण फैलने की पूर्ण आशंका है। अभी तक रेडियोधर्मी अपशिष्टों के निष्पादन की कोई उपयुक्त एवं सुरक्षित कार्ययोजना तैयार नहीं की जा सकी है। इसी प्रकार औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले अपशिष्टों एवं जहरीली गैसों से भी मानव पर्यावरण निरन्तर प्रदूषित हो रहा है। खनन क्रिया–कलापों के कारण निकले ठोस अपशिष्टों (Solid wastes) के प्रबन्धन की भी कोई निश्चित कार्य योजना वांछित नहीं है।

मोटरगाड़ियों एवं अन्य स्रोतों से होने वाले ध्वनि प्रदूषण (Noise pollution) विशेषकर शहरों एवं महानगरों में होने वाले शोर प्रदूषण की समस्या भी आज हमारे सामने मुँहबाए खड़ी हुई है। उपर्युक्त सभी समस्याओं का वांछित उपयुक्त समाधान यदि शीघ्र न निकाला गया तो निःसन्देह जीवन प्रदूषित होते–होते एक दिन उजड़ जायेगा।

प्रदूषण (Pollution) वायु, भूमि एवं जल की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में होने वाला वह अवांछित परिवर्तन है जो मानव जीवन को, वांछित प्रजातियों को, औद्योगिक प्रक्रियाओं को, जीवन दशाओं को एवं सांस्कृतिक सम्पदाओं को हानिकारक रूप में प्रभावित करता है अथवा हमारे कच्चे माल के संसाधनों को नष्ट कर सकता है। प्रदूषक उन वस्तुओं के अवशिष्ट होते हैं जिन्हें हम बनाते हैं, प्रयोग करते हैं और फेंक देते हैं। प्रदूषण केवल इसलिए नहीं बढ़ता कि उपलब्ध स्थान में लोगों की संख्या बढ़ने के प्रति व्यक्ति स्थान कम हो जाता है अपितु प्रति व्यक्ति वस्तुओं की माँग बढ़ती जाती है और फेंके गये पदार्थों की मात्रा में वर्ष दर वर्ष वृद्धि होती जाती है। जैसे–जैसे पृथ्वी पर जनसंख्या घनत्व बढ़ता जाता है, दूरियाँ सिमटती जाती हैं और एक व्यक्ति का निवास स्थान दूसरे के कचरे का स्थान बनता जाता है।

विभिन्न प्रकार के प्रदूषक (Different Kinds of Pollutants)

प्रदूषक उन वस्तुओं के अपशिष्ट होते हैं जिन्हें हम बनाते हैं, प्रयोग करते हैं और फेंक देते हैं तथा जो वातावरण को किसी न किसी प्रकार से प्रदूषित करते हैं।

ओडम (Odum) ने प्राकृतिक विघटन के आधार पर प्रदूषकों को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया है–

टिप्पणी

(1) जैव–निम्नीकरणीय प्रदूषक (Biodegradable Pollutants) – ऐसे प्रदूषक जिनका विघटन प्रकृति में आसानी से हो जाता है, जैव–निम्नीकरणीय प्रदूषक कहलाते हैं; जैसे–गन्दी नालियों द्वारा निकले कार्बनिक पदार्थों की मात्रा यदि इतनी रहती है कि वे सूक्ष्मजीवों (Micro-organism) द्वारा विघटित किये जा सकें तो वे पारिस्थितिक तन्त्र को न केवल सन्तुलित रखते हैं अपितु उपयोगी सिद्ध होते हैं क्योंकि इस प्रकार ऊर्जा का उत्पादन होता है, परन्तु यदि वातावरण में इनकी मात्रा इतनी अधिक हो जाये कि वे सूक्ष्मजीवों द्वारा पूर्ण रूप से विघटित न किये जा सकें तो ऐसे पदार्थ वातावरण को प्रदूषित करने लगते हैं; जैसे–घरेलू वाहितमल (Domestic sewage), कूड़ा–करकट, लकड़ी आदि।

(2) अनिम्नीकरण प्रदूषक (Non-degradable Pollutants) – ऐसे प्रदूषक जिनका निम्नीकरण या तो बिल्कुल नहीं होता या जो प्रकृति में अत्यन्त मन्द गति से निम्नीकृत होते हैं, अनिम्नीकरणीय प्रदूषक कहलाते हैं; जैसे– ऐलुमिनियम (Aluminium), पारे के लवण (Mercury salts), सीसा (Lead), आर्सेनिक (Arsenic), फीनॉल के कुछ यौगिक (Phenolic compounds), प्लास्टिक (Plastic), डी. डी. टी. (DDT) आदि। ऐसे अनिम्नीकरणीय प्रदूषक वातावरण में न केवल एकत्रित होते हैं अपितु खाद्य श्रृंखला के एक पोषक स्तर (Trophic level) से दूसरे पोषक स्तर को स्थानान्तरित होने के कारण इनका जैविक आवर्धन (Biomagnification) भी हो सकता है।

प्रदूषकों की वातावरण में उत्पत्ति के आधार पर इन्हें दो प्रकार में वर्गीकृत किया गया है–

1. **प्राथमिक प्रदूषक (Primary Pollutants)** – इस प्रकार के प्रदूषक किसी अभिज्ञेय स्रोत (Identifiable source) से वातावरण में सीधे मुक्त होते हैं; जैसे– कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड आदि।
2. **द्वितीयक प्रदूषक (Secondary Pollutants)** – इस प्रकार के प्रदूषक प्राथमिक प्रदूषकों द्वारा रासायनिक अभिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं; जैसे–धुन्ध (Smog) बनने के दौरान होने वाली प्रकाश–रासायनिक अभिक्रिया द्वारा उत्पन्न परॉक्सीएसिटाइल नाइट्रेट (Peroxyacetyl nitrate) या PAN।

प्रकृति में अस्तित्व (Existence) के आधार पर भी प्रदूषकों को दो वर्गों में बाँटा गया है–

(i) परिमाणात्मक प्रदूषक (Quantitative Pollutants) – ऐसे पदार्थ या कारक जो सामान्यतया वातावरण में उपस्थित रहते हैं परन्तु जब इनकी सान्द्रता एक निश्चित सीमा (Threshold value) से अधिक हो जाये तो ये प्रदूषक का कार्य करने लगते हैं, परिणामस्वरूप प्रदूषक कहलाते हैं; जैसे– नाइट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड आदि।

टिप्पणी

(ii) गुणात्मक प्रदूषक (Qualitative Pollutants) – इस प्रकार के प्रदूषक सामान्यतया वातावरण में नहीं पाये जाते परन्तु मानवीय क्रिया–कलापों के परिणामस्वरूप वातावरण में प्रवेश करते हैं; जैसे–विभिन्न कीटनाशी (Insecticides), कवकनाशी (Fungicides), शाकनाशी (Herbicides) आदि।

मुख्य प्रदूषक (Principal Pollutants)

वायु, जल एवं भूमि को प्रदूषित करने वाले प्रमुख प्रदूषक निम्नलिखित हैं–

1. **गैसें (Gases)** – नाइट्रोजन के ऑक्साइड (NO, NO_2), सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S), कार्बन मोनो–ऑक्साइड तथा कार्बन डाइऑक्साइड (CO एवं CO_2), क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन आदि हैलोजेन (Halogens), क्लोरोफ्लोयूरोकार्बन (Chlorofluorocarbons), ओजोन (Ozone) आदि।
2. **फ्लोराइड यौगिक (Fluoride compounds)** – जैसे–सिलिकन टेट्राफ्लोराइड (Silicon tetrafluoride)।
3. **धातुएँ (Metals)** – जैसे– पारा (Mercury), सीसा (Lead), कैडमियम (Cadmium), निकिल (Nickel), जस्ता (Zinc), टिन (Tin) आदि।
4. **जटिल कार्बनिक पदार्थ (Complex Organic Substances)** – जैसे–बेन्जीन (Benzene), बेन्जोपाइरीन (Benzopyrenes), ऐसीटिक अम्ल (Acetic acid), ईथर (Ehter) आदि।
5. **कृषि रसायन (Agro-chemicals)** – जैसे– विभिन्न प्रकार के पीड़कनाशी (Pesticides) तथा उर्वरक (Fertilizers)।
6. **रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radioactive wastes)** – जैसे–क्रिप्टन (Krypton), यूरेनियम (Uranium), प्लूटोनियम (Plutonium), कोबाल्ट (Cobalt) आदि।
7. **जैविक घटक (Biotic components)** – जैसे– पराग (Pollens), कवकों के बीजाणू (Fungal spores), जीवाणु (Bacteria), विषाणू (Virus) आदि।
8. **कणिकामय या निक्षेपित पदार्थ (Particulate or Deposited Matter)** – जैसे– धूल (Dust), धुआँ (Smoke), कालिख (Soot), रेत के कण (Grit) आदि।
9. **ठोस अपशिष्ट (Solid wastes)** – जैसे– घरेलू, नगरपालिका एवं उद्योगों से निकला अपशिष्ट।
10. **ऊष्मा (Heat)** – जैसे– भाप, गर्म जल आदि।
11. **ध्वनि या शोर (Noise)**।

प्रदूषण के प्रकार (Kinds of Pollution)

टिप्पणी

प्रदूषण को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है जिनमें प्रमुख आधार हैं– प्रदूषित होने वाले वातावरण के आधार पर; जैसे– जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा मृदा प्रदूषण अथवा प्रदूषकों के आधार पर; जैसे– पीड़कनाशी प्रदूषण, पारा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, तापीय प्रदूषण आदि। अध्ययन की सुविधा हेतु प्रदूषण को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा गया है–

1. वायु प्रदूषण (Air pollution),
2. जल प्रदूषण (Water Pollution),
3. मृदा प्रदूषण (Soil Pollution),
4. तापीय प्रदूषण (Thermal Pollution),
5. ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)।

3.15 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल का एक सुरक्षात्मक आवरण पाया जाता है। यह एक कवच का कार्य करता है। इसमें नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड, उत्कृष्ट गैसें; जैसे– आर्गन, क्रिप्टन, हीलियम, जल–वाष्प तथा निलम्बित ठोस कण आदि पाये जाते हैं। चित्र 3.3 में समुद्र स्तर के किनारे की शुष्क वायु का संघटन दिखाया गया है। नाइट्रोजन गैस जैविक रूप से निष्क्रिय होती है। ऑक्सीजन का उपयोग जीवों द्वारा श्वसन में तथा कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग हरे पौधों द्वारा प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया में किया जाता है।

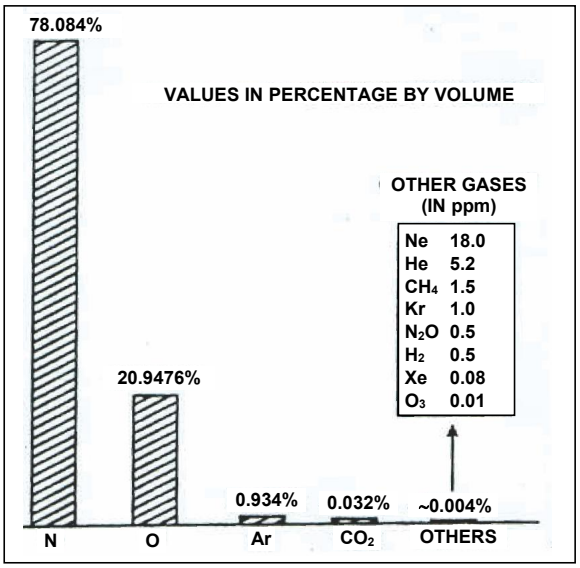

चित्र क्र. 3.3: Composition of unpolluted dry air near sea level

वायुमण्डल को ताप एवं पृथ्वी की सतह से ऊँचाई के आधार पर निम्नलिखित चार विभिन्न पर्तों या क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) क्षोभमण्डल (Troposphere),

(ii) समतापमण्डल (Stratosphere),

(iii) मध्यमण्डल (Mesosphere),

टिप्पणी

(iv) बाह्य वायुमण्डल (Thermosphere)।

उपर्युक्त चारों क्षेत्रों का ताप एवं उनकी पृथ्वी की सतह से ऊँचाई सारणी 3.6 में दिखायी गयी है।

सारणी क्र. 3.6: Major Regions of the Atmosphere

Region	Altitude range (km)	Temperature range (°C)
Troposphere	0 to 6-17	15 to 56
Stratosphere	6-17 to 50	56 to –2
Mesosphere	50 to 85	–2 to –92
Thermosphere	Above 85	–92 to 1200

वायु प्रदूषण के कारण (Causes of Air Pollution)

वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं – जीवाश्म ईंधन (Fossil fuels) का प्रयोग, उद्योग (Industries), कारखाने (Factories), जंगली आग (Forest fires) तथा ज्वालामुखीय गतिविधियाँ (Volcanic activities)। वाहनों में, घरों में, फैक्ट्रियों में पेट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल, आदि के दहन (Combustion) से कार्बन मोनोऑक्साइड (Carbon monoxide), कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon dioxide), सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), नाइट्रोजन ऑक्साइड्स (Nitrogen oxides) तथा कणिकामय पदार्थ (Particulate matter) उत्पन्न होते हैं। ये सभी वायु को प्रदूषित करते हैं।

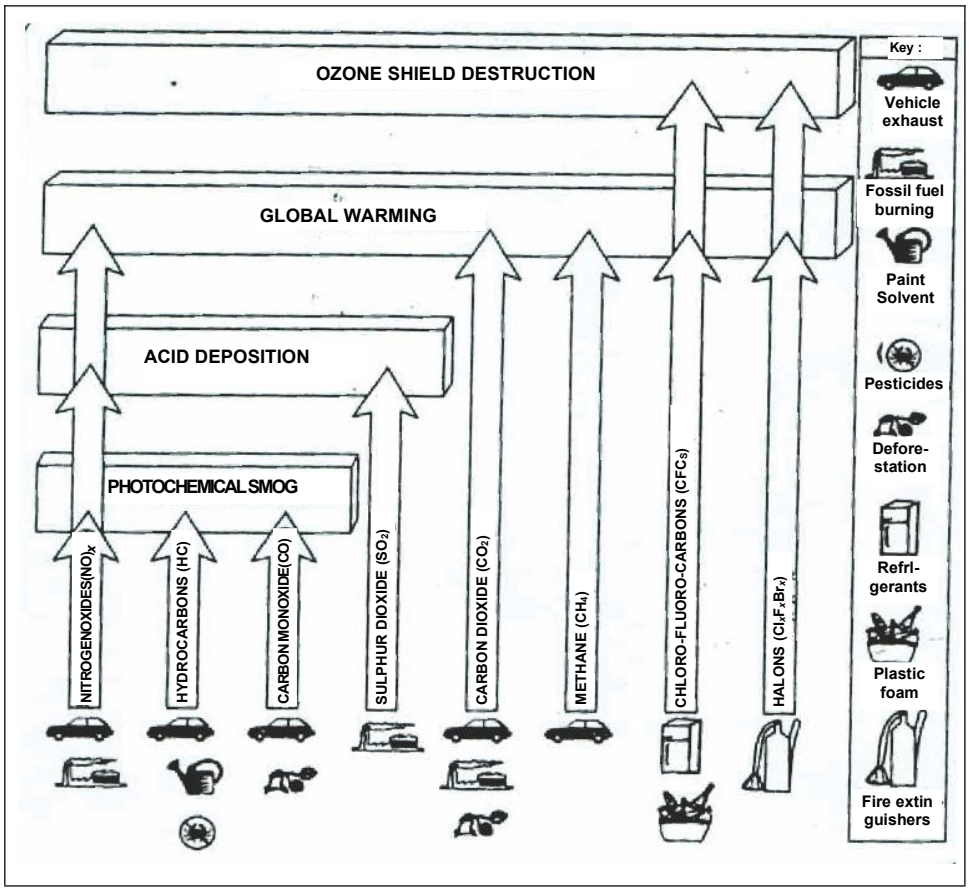

चित्र क्र. 3.4: Different sources of air pollution

तापीय बिजली घरों (Thermal power plants), स्टील कारखानों, कागज एवं शक्कर की मिलों में, काँच उद्योगों आदि में कोयला एवं फर्नेस ऑयल (Furnace oil) के दहन से CO_2, CO, SO_2, ऐश (Ash), फ्लाई ऐश (Fly ash), धूल के कण तथा कुछ भारी धातुएँ वायुमण्डल में मुक्त होती हैं। इसी प्रकार कपड़ा मिलों, सीमेण्ट कारखानों, एस्बेस्टस कारखानों, कीटनाशक कारखानों आदि से निकले विभिन्न प्रकार के रसायनों से भी वायु प्रदूषण होता है।

वायु प्रदूषक (Air Pollutants)

वायु प्रदूषण के विभिन्न स्रोतों से निकलने वाले विभिन्न वायु प्रदूषकों को दो प्रकारों में विभाजित किया गया है (सारणी 3.7)–

सारणी क्र. 3.7: Classification of Air Pollutants

Major classes		Sub-classes	Typical members of sub-classes
(i)	Gaseous pollutants		
	(a) Inorganic gases	Oxides of carbon	Carbon monoxide, carbon dioxide
		Oxides of sulphur	Sulphur dioxide, sulphur trioxide
		Oxides of nitrogen	Nitrogen dioxide, nitric oxide, Nitrous oxide
		Others	Hydrogen sulphide, ammonia,

टिप्पणी

			chlorine
	(b) Organic gases	Hydrocarbons	Hexane, benzene, ethylene, methane, butane, butadiene
		Aldehydes and Ketones	Formaldehyde, acetone
		Others	Hydrocarbons, amines, alcohols, carboxylic acids
(ii)	Particulates	Solid	Dust, smoke, fume, fly ash
		Liquid	Mist, spray

(A) गैसीय प्रदूषक (Gaseous Pollutants) – इनके अन्तर्गत अकार्बनिक (Inorganic) एवं कार्बनिक (Organic) गैसें आती हैं; जैसे– CO, CO_2, SO_2, मीथेन (Methane), इथाइलीन (Ethylene), एसीटोन (Acetone), फॉर्मेल्डिहाइड (Formaldehyde) आदि।

(B) विविक्त या कणिकीय पदार्थ (Particulate matter) – इनके अन्तर्गत धूल (Dust), धुआँ (Smoke), फ्लाई ऐश (Fly ash), धुंध (Smog), कोहरा (Mist) आदि आते हैं।

उपर्युक्त में से CO, CO_2, SO_2, NO_x तथा कणिकीय पदार्थ प्रमुख वायु प्रदूषक (Major Air Pollutants) हैं। इसके अतिरिक्त वाहनों में सीसायुक्त पेट्रोल (Leaded Petrol) के उपयोग से निकलने वाला सीसा (Lead), ईंट भट्टों (Brick kilns) से निकलने वाली फ्लोरीन गैसें (Fluorine), पौधे के, पराग कण (Pollen grains) आदि लघु प्रदूषक (Minor pollutants) का कार्य करते हैं।

(1) कार्बन मोनोऑक्साइड (Carbon monoxide या CO) – यह मुख्यतया जीवाश्म ईंधन (Fossil fuel) के अपूर्ण दहन (Incomplete combustion) से मुक्त होती है। बड़े–बड़े शहरों में जहाँ स्वचालित वाहनों का अत्यधिक परिचालन होता है, वहाँ CO का प्रदूषण भी उतना ही अधिक होता है।

कार्बन मानोऑक्साइड एक रंगहीन, गन्धहीन, स्वादहीन तथा अनोत्तेजक (Non-irritating) गैस है अतः बिना अभिज्ञान में आये यह गम्भीर प्रभाव उत्पन्न करती है। 1000 ppm से अधिक सान्द्रता होने पर यह बहुत तीव्रता से मृत्यु का कारण बनती है। इतनी सान्द्रता पर मानव एक घण्टे में बेहोश हो जाता है तथा चार घण्टे में उसकी मृत्यु हो जाती है।

वायुमण्डल में CO बहुत कम अवधि के लिए ही रहती है। सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में हरे पौधे CO का उपयोग करके 5–फॉर्मिल टेट्राहाइड्रोफोलिक अम्ल (5-Formyl tetrahydrofolic acid) संश्लेषित करते हैं जिसका उपयोग प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के उपापचय में होता है। सूर्य के प्रकाश की अनुपस्थिति में हरी पत्तियों में CO के ऑक्सीकरण से CO_2 बनती है। इस प्रकार पौधे CO के हानिकारक प्रभावों से बचाने का कार्य करते हैं।

मानव की लाल रुधिर कणिकाओं (Erythrocytes) में हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) नामक श्वसन रंजक (Respiratory pigment) पाया जाता है जो ऑक्सीजन का परिवहन करता है। कार्बन मोनोऑक्साइड का हीमोग्लोबिन के प्रति

तीव्र लगाव होता है। यह ऑक्सीजन की अपेक्षा 210 गुना अधिक तीव्रता से हीमोग्लोबिन से संयोजित होकर कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन (Carboxyhaemoglobin) बनाती हैं।

$$\underset{\text{Haemoglobin}}{Hb} + \underset{\text{Carbon monoxide}}{CO} \longrightarrow \underset{\text{Carboxyhaemoglobin}}{HbCO}$$

इस प्रकार CO हीमोग्लोबिन से संयोजित होकर ऑक्सीजन के परिवहन को बाधित कर देती है जिससे श्वासावरोध (Asphyxia) के कारण मृत्यु हो जाती है। CO विषाक्तता से फेफड़े का कैंसर (Lung cancer) तथा सेरिब्रल एनॉक्सिया (Cerebral anoxia) जैसे रोग हो जाते हैं तथा श्रवण शक्ति एवं दृष्टि पर भी विपरीत प्रभाव पड़ते हैं।

(2) कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon dioxide or CO_2) – यह गैस मुख्यतया जीवाश्म ईंधन जैसे कोयला, तेल, गैस आदि के जलाने से मुक्त होती है तथा वायुमण्डल में मिल जाती है। पौधे प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया में CO_2 का उपयोग करते हैं, परन्तु वनों की कटाई एवं अत्यधिक ईंधन के जारण के कारण वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि हो जाने से यह प्रमुख प्रदूषक बन गयी है। अकेले तापीय बिजलीघर ही प्रतिवर्ष 50 मि. टन CO_2 मुक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कोयला जलाने से लगभग 20–40 प्रतिशत राख (Ash) बनती है जो अत्यन्त हानिकारक होती है।

पृथ्वी की सतह के तापमान का संधारण (Maintenance) पृथ्वी पर टकराने वाली सूर्य की किरणों की ऊर्जा तथा सतह से विकरित (Radiate) होकर वापस अन्तरिक्ष में जाने वाली ऊष्मा के मध्य स्थापित सन्तुलन द्वारा होता है। जब CO_2 की मात्रा में वृद्धि होती है तब पृथ्वी की सतह से विकरित होकर वापस अन्तरिक्ष में जाने वाली ऊष्मा CO_2 द्वारा रोक ली जाती है जिससे वायुमण्डलीय ताप में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार CO_2 की मोटी पर्त किसी ग्रीन हाउस के शीशे की तरह कार्य करने लगती है, इसीलिए इस प्रभाव को **ग्रीन हाउस प्रभाव** (Green house effect) कहते हैं। सन् 1900 में वायुमण्डल में CO_2 की सान्द्रता 290 ppm थी जो 1960 में बढ़कर 315 ppm हो गयी। वर्तमान मे 1 ppm प्रतिवर्ष की दर से वायुमण्डल में CO_2 की सान्द्रता में वृद्धि हो रही है। वैज्ञानिकों का मत है कि अगले 100 वर्षों में यह सान्द्रता बढ़कर लगभग 500 ppm हो जायेगी जिसके कारण वायुमण्डलीय ताप में 3-8°C की वृद्धि हो जायेगी। इससे न केवल पादप एवं जन्तु ही प्रभावित होंगे वरन् बर्फ की ध्रुवीय टोपियों (Polar ice caps) के पिघलने से समुद्र का स्तर कुछ मीटर ऊँचा हो जायेगा जिससे तटीय क्षेत्र तथा शहर जलमग्न हो जायेंगे।

(3) सल्फर डाइऑक्साइड (Sulphur dioxide or SO_2) – वातावरण में उत्सर्जित होने वाली कुल SO_2 का 75 प्रतिशत भाग जीवाश्म ईंधन के जलने से तथा शेष 25 प्रतिशत भाग पेट्रोलियम शोधन संयन्त्रों एवं गंधक के अयस्कों को पिघलाने वाले उपस्करों से निकलती है। यह तीक्ष्ण गंध वाली रंगहीन गैस है जो जल में अत्यन्त घुलनशील होती है। वायुमण्डल में यह गैस 12 घण्टे से 6 दिन तक बनी रहती है। एक बड़ा तापीय बिजलीघर लगभग 100 टन SO_2 प्रतिवर्ष

टिप्पणी

मुक्त करता है। **रोबिन्सन** एवं **रोबिन्सन** (Robinson and Robinson 1971) के अनुसार मानव द्वारा प्रतिवर्ष 6 लाख टन गन्धक जलाया जाता है। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि वायुमण्डल में SO_2 की सान्द्रता तीव्र गति से बढ़ती है।

SO_2 नेत्रों एवं श्वसन तन्त्र में तीव्र उत्तेजना पैदा करती है। नम श्वसन रास्ते में यह आसानी से अवशोषित हो जाती है जिसके फलस्वरूप तीव्र उत्तेजना (Irritation) उत्पन्न होने के कारण म्यूकस (Mucus) का स्रावण बढ़ जाता है तथा पक्ष्माभों (Cilia) की गति क्षीण हो जाती है एवं श्वसन मार्ग सँकरा हो जाने से साँस लेने में कष्ट होता है।

SO_2 से अल्फा अल्फा (alfa alfa), कपास (Cotton), गेहूँ (Wheat), सेब (Apple), अंगूर (Grapes) आदि की फसलें गम्भीर रूप से प्रभावित होती हैं। पत्तियों पर चकत्ते पड़ जाते हैं। ऐसा क्लोरोफिल-a (Chlorophyll-a) के फियोफाइटिन-a (Phaeophytin-a) में परिवर्तित हो जाने के कारण होता है। पत्तियाँ मुरझा जाती हैं जिससे उत्पादकता में कमी आ जाती है।

SO_2 से कागज पीला पड़कर भंगूर हो जाता है।

SO_2 से चूना पत्थर (Limestone) तथा संगमरमर (Marble) गम्भीर रूप से प्रभावित होते हैं। चूना पत्थर SO_2 को अवशोषित करता है तथा यह अवशोषण नमी के साथ बढ़ता जाता है। SO_2 के चूना पत्थर के साथ प्रतिक्रिया करने पर कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) बनता है जो जल में घुलकर विक्षालित (Leach) हो जाता है जिससे चूना पत्थर कमजोर होकर टूटने लगता है। संगमरमर की सरंध्रता (Porosity) कम होने के कारण इस पर SO_2 का प्रभाव चूना पत्थर की अपेक्षा कम पड़ता है।

SO_2 से लोहा व स्टील का क्षरण (Corrosion) होता है। यह चमड़े को भी क्षतिग्रस्त करती है।

(4) नाइट्रोजन ऑक्साइड्स (Nitrogen Oxides) – स्वचालित वाहनों एवं कारखानों आदि से प्रतिवर्ष लगभग 48 लाख मी. टन नाइट्रोजन ऑक्साइड वायुमण्डल में मिलती हैं। नाइट्रोजन के प्रमुख ऑक्साइड हैं–नाइट्रिक ऑक्साइड (NO), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) तथा नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2)। नाइट्रस ऑक्साइड अधिक प्रदूषण नहीं करती। नाइट्रिक ऑक्साइड नाइट्रिक अम्ल (HNO_3) बनाने वाले कारखानों एवं स्वचालित वाहनों से निकलती है। इसकी अधिकतर मात्रा रासायनिक क्रियाओं द्वारा नाइट्रोजन डाइऑक्साइड बनाती है जो विषैली होती है और वायुमण्डल में मिल जाती है। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड भूरे लाल रंग की गैस होती है तथा हानिकारक होती है। बड़े–बड़े शहरों में इसके द्वारा फोटोकेमिकल धुन्ध बनता है।

नाइट्रोजन डाइऑक्साइड हृदय, फेफड़ों एवं वृक्कों में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त यह नेत्रों को भी नुकसान पहुँचाती है। सिगरेट तथा सिगार मे 300–1500 ppm NO_2 होती है अतः धूम्रपान करने वाले मनुष्यों में फेफड़ों के विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

नाइट्रोजन डाइऑक्साइड पौधों के लिए भी हानिकारक होती है। यह पौधों की वृद्धि को कम कर देती है तथा पत्तियों को क्षतिग्रस्त करती है।

(5) कणिकीय पदार्थ या एयरोसॉल (Particulate Matter or Aerosols) – किसी भी पदार्थ चाहे द्रव हो अथवा ठोस, के 0.002 मिमी. व्यास के कणों के वायुमण्डल में विसर्जित होने से बने पृथक् समूह को एयरोसॉल या कणिकीय पदार्थ कहते हैं। ठण्डे या नम मौसम में इन कणों पर जलवाष्प एकत्रित होकर कुहरे (Fog) का निर्माण होता है। एयरोसॉल का निर्माण प्राकृतिक स्त्रोतों के अतिरिक्त मानवीय क्रियाकलापों द्वारा भी होता है। जीवाश्म ईंधन के जलने से निकले कार्बन के कण, सीसायुक्त पेट्रोल के वाहनों में उपयोग से निकले सीसे के कण, तापीय बिजली घरों से निकली फ्लाई ऐश (Fly ash), सीमेण्ट कारखानों से निकली सीमेण्ट की धूल, एस्बेस्टस इकाइयों से निकली एस्बेस्टस की धूल, कपड़ा मिलों से निकली कपड़े की धूल (Cotton dust), जीवाणु, विषाणु, पराग कण, कवक आदि कणिकीय पदार्थों के वायुमण्डल में एकत्रित होने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

WHO मार्गदर्शिका के अनुसार यदि वायुमण्डल में कणिकीय पदार्थों का स्तर 90 मिग्रा. प्रति घनमीटर से अधिक हो तो यह मानव के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। कोलकाता जैसे शहर में कणिकीय पदार्थों का स्तर लगभग 350 मिग्रा. प्रति घनमीटर पाया गया है।

कणिकीय पदार्थ श्वास के साथ फेफड़ों में जाकर तपेदिक तथा कैन्सर जैसे विकार उत्पन्न करते हैं। एस्बेस्टस से एस्बेस्टोसिस (Asbestosis), सिलिका से सिलिकोसिस (Silicosis), रूई या सूत से बाइसिनोसिस (Byssinosis) जैसे विकार उत्पन्न होते हैं।

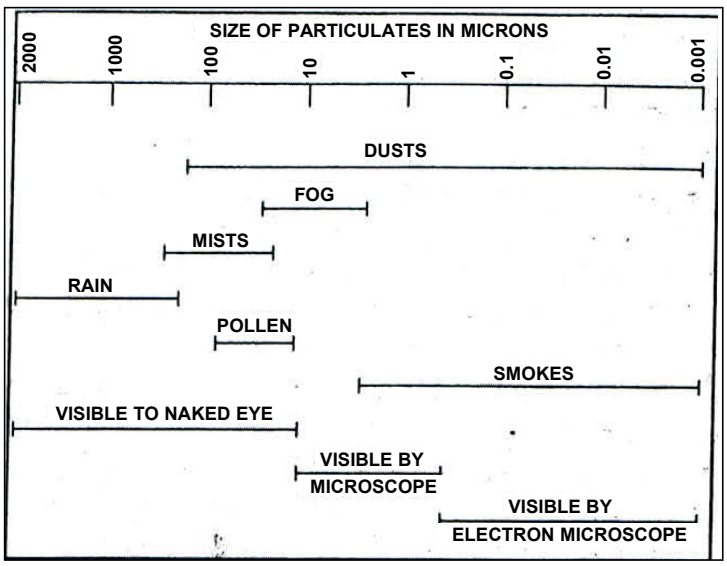

चित्र क्र. 3.5: Characteristics of particulate matter

(6) प्रकाश–रासायनिक धुन्ध (Photo-chemical Smog) – यह सर्वप्रथम 1940 में अमेरिका के **लॉस एन्जिलिस** (Log Angeles) शहर में संज्ञान में आया, इसीलिए इसे लॉस एन्जिलिस धुन्ध (Los Angeles Smog) भी कहते हैं।

टिप्पणी

धुन्ध के लिए प्रमुख रूप से नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन्स उत्तरदायी होते हैं। ये मुख्यतया स्वचालित वाहनों में जीवाश्म ईंधन के अपूर्ण जारण से वातावरण में मुक्त होते हैं। सूर्य के प्रकाश में पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet radiations) की उपस्थिति में नाइट्रोजन ऑक्साइड हाइड्रोकार्बन्स के साथ प्रतिक्रिया करके एक द्वितीयक प्रदूषक (Secondary pollutant) बनाती है जिसे परॉक्सिल एसिटाइल नाइट्रेट या PAN कहते हैं।

$$\text{Nitrogen oxide} + \text{Hydrocarbons} \xrightarrow{\text{UV radiations}} \text{Peroxyl Acetyl Nitrate (PAN)} + \text{Ozone}(O_3)$$

परॉक्सिल एसिटाइल नाइट्रेट (PAN) से एक पीली–भूरी धुन्ध बनती है जो जलवाष्प एवं CO, CO_2, SO_2 तथा धूल के साथ मिलकर और घनी हो जाती है।

धुन्ध मनुष्य में नेत्र में उत्तेजना उत्पन्न करने के साथ फेफड़ों एवं मस्तिष्क के विकार उत्पन्न करती है। यह फेफड़ों की कूपिकाओं (Alveoli) को क्षतिग्रस्त करके एम्फीसीमा (Emphysema) रोग उत्पन्न करती है जिससे श्वासावरोध (Asphyxia) एवं सिरदर्द (Headache) होता है।

धुन्ध से पौधों में प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है तथा पत्तियाँ चितकबरी (Leaf mottling) हो जाती हैं जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

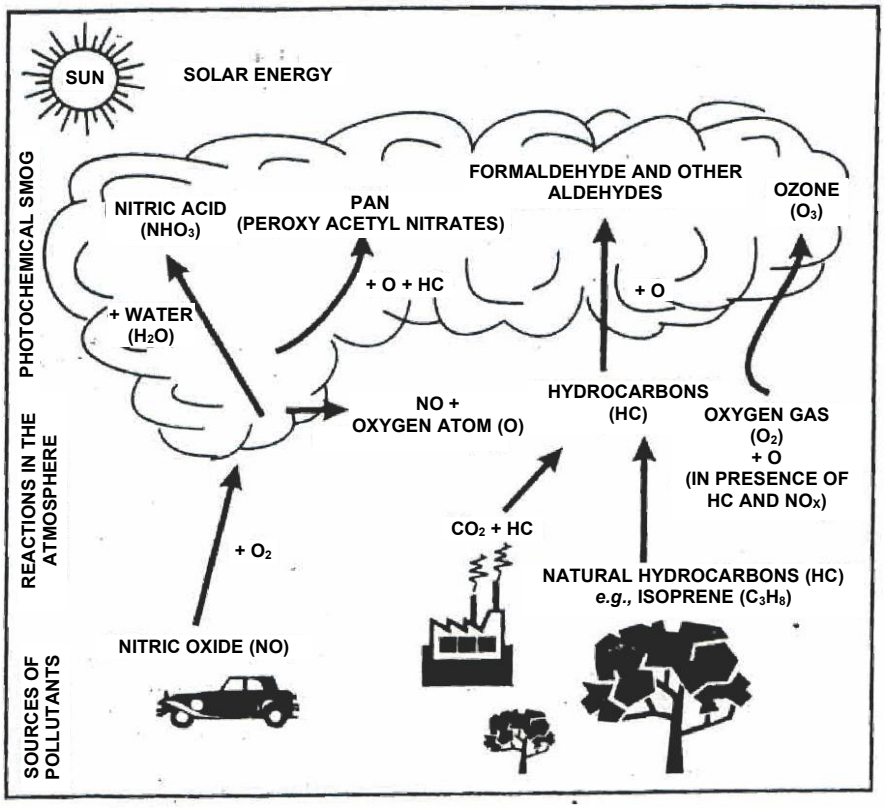

चित्र क्र. 3.6: Photochemical smog formation

(7) अम्ल वर्षा (Acid Rains) – जीवाश्म ईंधन के जलने से मुक्त हुई कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड आदि गैसें वायुमण्डल में उपस्थित जल के साथ क्रिया करके अम्ल बनाती हैं। कार्बन

टिप्पणी

डाइऑक्साइड के कार्बोनिक अम्ल (H_2CO_3), सल्फर डाइऑक्साइड से सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड से नाइट्रस तथा नाइट्रिक अम्ल (HNO_2 व HNO_3) अम्ल बनते हैं। ये अम्ल वर्षा के जल के साथ मिलकर अम्ल वर्षा (Acid rains) के रूप में पृथ्वी पर बरसते हैं जिसका pH 3–6 होता है। अम्ल वर्षा पादपों, जन्तुओं एवं भवनों के लिए हानिकारक होती है।

अम्ल वर्षा से जलीय जीव, जैसे–प्लवक (Planktons) तथा मछलियाँ गम्भीर रूप से प्रभावित होती हैं। अम्लीय जल पौधों की पत्तियों को हानि पहुँचाकर प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया को बाधित करता है। लाइकेन (Lichens) अम्ल वर्षा के प्रति अधिक सुग्राही होते हैं जिन्हें अम्ल वर्षा संकेतक (Acid rain indicator) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अम्ल वर्षा से मृदा की अम्लीयता में pH 4 तक की वृद्धि हो जाती है जिससे मृदा जीवों के लिए हानिकारक हो जाती है।

अम्ल वर्षा से प्राचीन भवन तथा मूर्तियाँ गल जाती हैं जिसे पत्थर–कोढ़ (Stone leprosy) कहते हैं। मथुरा तेलशोधक संयन्त्र से निकली सल्फर डाइऑक्साइड गैस से बने अम्ल के वर्षा के साथ बरसने के कारण आगरा स्थित ताजमहल सर्वाधिक प्रभावित हुआ है।

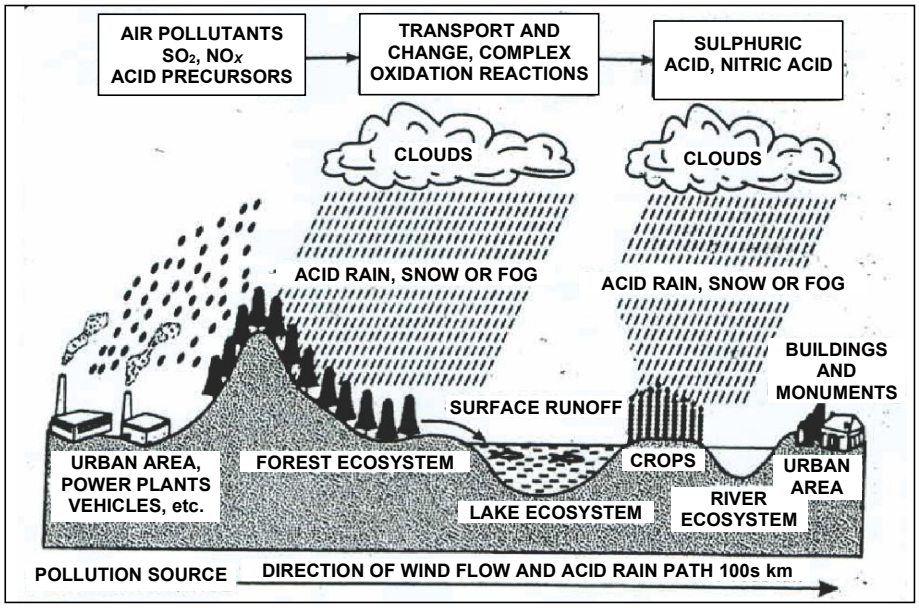

चित्र क्र. 3.7: Different area affected with acid rains

(8) ओजोन पर्त की क्षीणता (Depletion of Ozone Layer) – हम वायुमण्डल की क्षोभमण्डल (Troposphere) नामक पर्त में रहते हैं। क्षोभमण्डल के ठीक ऊपर की पर्त को समतापमण्डल (Stratosphere) कहते हैं। यह क्षोभमण्डल ध्रुवों पर पृथ्वी की सतह से 8–10 किमी तथा भूमध्य रेखा पर 16–18 किमी ऊपर से लेकर 50 किमी की ऊँचाई तक पाया जाता है। समतापमण्डल में ओजोन या O_3 (Ozone or O_3) गैस का एक कवच स्थापित है जो सूर्य की पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet rays) को अवशोषित करके पृथ्वी की सतह तक आने से रोकता है। पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से तरह–तरह के घातक उत्परिवर्तनों (Mutations) के अतिरिक्त त्वचा का कैन्सर तथा मोतियाबिन्द (Cataract) जैसे– विकार उत्पन्न

होते हैं तथा हमारी प्रतिरोधक क्षमता (Immunity) भी प्रभावित होती है। ओजोन टमाटर, तम्बाकू, सेम आदि पौधों को भी प्रभावित करती है।

टिप्पणी

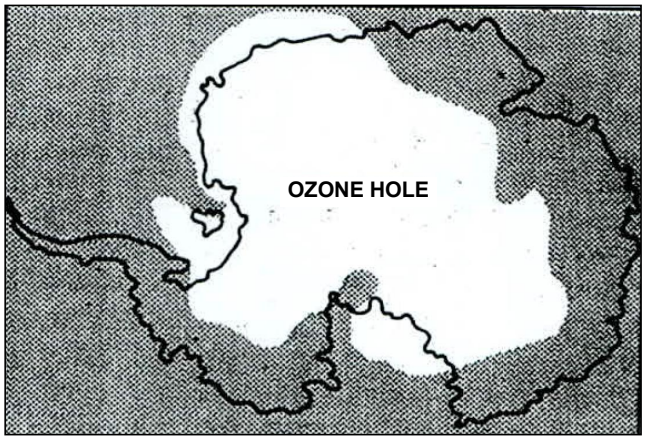

चित्र क्र. 3.8: Thinning of ozone layer in Antarctica

समतापमण्डल में क्लोरीन के परमाणु के विसरण से ओजोन के अणु नष्ट हो जाते हैं जिससे ओजोन कवच पतला हो जाता है। क्लोरीन (Chlorine) का एक परमाणु एक लाख ओजोन अणुओं को नष्ट करता है। क्लोरीन परमाणु क्लोरोफ्लोरोकार्बन (Chlorofluorocarbons या CFCs) के विघटन से बनते हैं। फ्रीऑन (Freon) एक ऐसा घातक क्लोरोफ्लोरोकार्बन है जो रेफ्रीजरेटर, एअर–कण्डीशनर, फोम तथा एयरोसॉल स्प्रे में प्रयुक्त होता है।

एण्टार्कटिका (Antarctica) के ऊपर एक महाद्वीप के आकार के क्षेत्र में ओजोन की पर्त बहुत पतली हो गयी है जिसे ओजोन छिद्र (Ozone hole) कहते हैं।

3.16 जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल में किसी पदार्थ के मिलाने अथवा किसी भी प्रकार से जल के भौतिक एवं रासायनिक लक्षणों में ऐसा परिवर्तन करना जिससे कि जल की उपयोगिता प्रभावित हो, जल प्रदूषण कहलाता है। जीवन के लिए जल अत्यन्त आवश्यक होता है। जल से ही पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई। जीवद्रव्य (Protoplasm) में 90 प्रतिशत जल होता है। पृथ्वी की लगभग 78 प्रतिशत सतह जलमग्न है। कुल जल का 97.5 प्रतिशत भाग खारे जल के रूप में समुद्रों एवं महासागरों में भरा हुआ है तथा शेष 2.5 प्रतिशत जल ही पीने के लिए उपलब्ध है। इस 2.5 प्रतिशत में से 0. 025 प्रतिशत जल नदियों, झीलों, तालाबों आदि में 2.475 प्रतिशत हिमनदों, भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है।

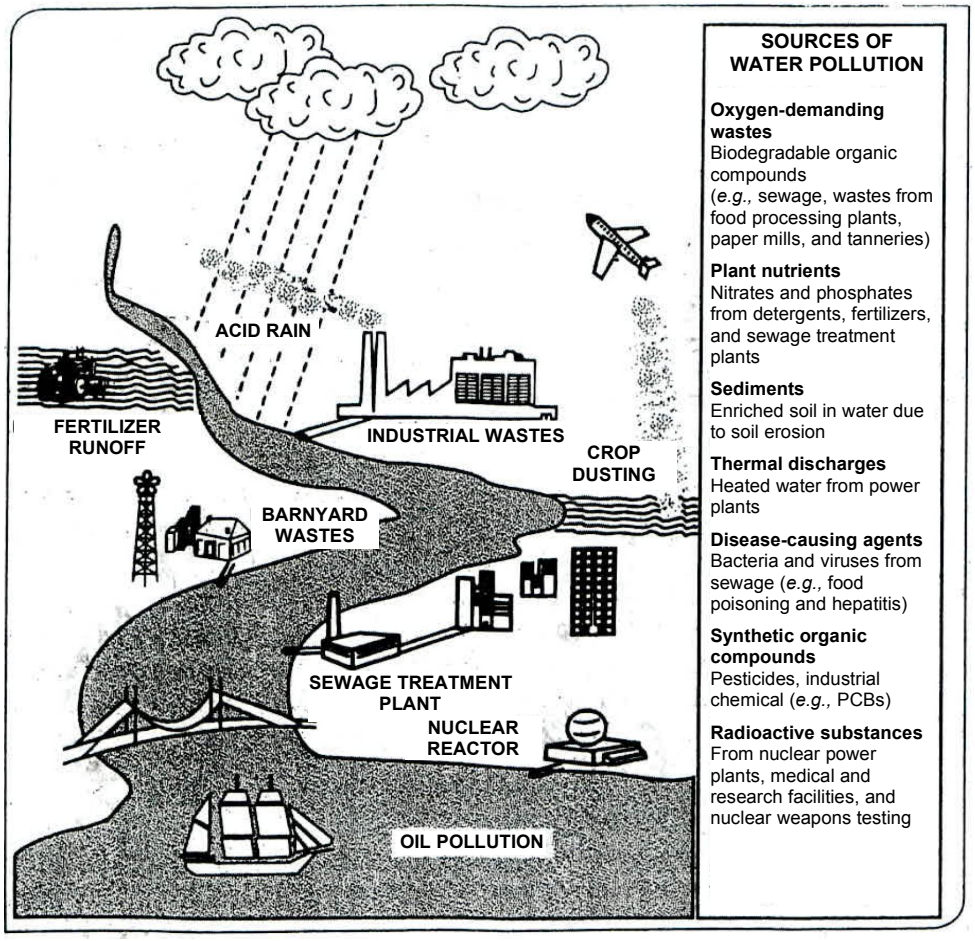

चित्र क्र. 3.9: Different sources of water pollution

प्राकृतिक उपलब्ध जल मानवीय क्रिया–कलापों के कारण अत्यन्त प्रदूषित हो गया है। विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थ; जैसे–उर्वरक, पीड़कनाशी, अपमार्जक (Detergents), फीनॉलिक पदार्थ (Phenolic substances) आदि जल को प्रदूषित करते हैं जिससे जल गंदला (Turbid) तथा बदबूदार हो जाता है और पीने, नहाने अथवा कपड़े धोने लायक नहीं रहता।

जल प्रदूषण के स्रोत (Sources of Water Pollution)

जल प्रदूषण के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं–

1. वाहित मल (Sewage),
2. औद्योगिक बहिःस्रावी पदार्थ (Industrial Effluents),
3. कृषि विसर्जित पदार्थ (Agricultural Discharges),
4. भौतिक प्रदूषक (Physical Pollutants)।

(1) वाहित मल (Sewage) – वाहित मल में मुख्यतया कार्बनिक पदार्थ, मानव मल, घरेलू अपशिष्ट, साबुन तथा अन्य अपमार्जक पाये जाते हैं। वाहित मल तालाबों, झीलों एवं नदियों के जल में मिलते रहते हैं। जलीय कायों में इन पदार्थों को ऑक्सीकरण जीवाणु (Aerobic bacteria) विघटित करते हैं परन्तु जल का

टिप्पणी

अधिक संदूषण (Contamination) होने पर जल काय की स्वतः शोधन क्रियाकलाप (Self purifying activity) समाप्त हो जाती है जिससे जल प्रदूषित हो जाता है और उपयोग के लायक नहीं रह जाता है।

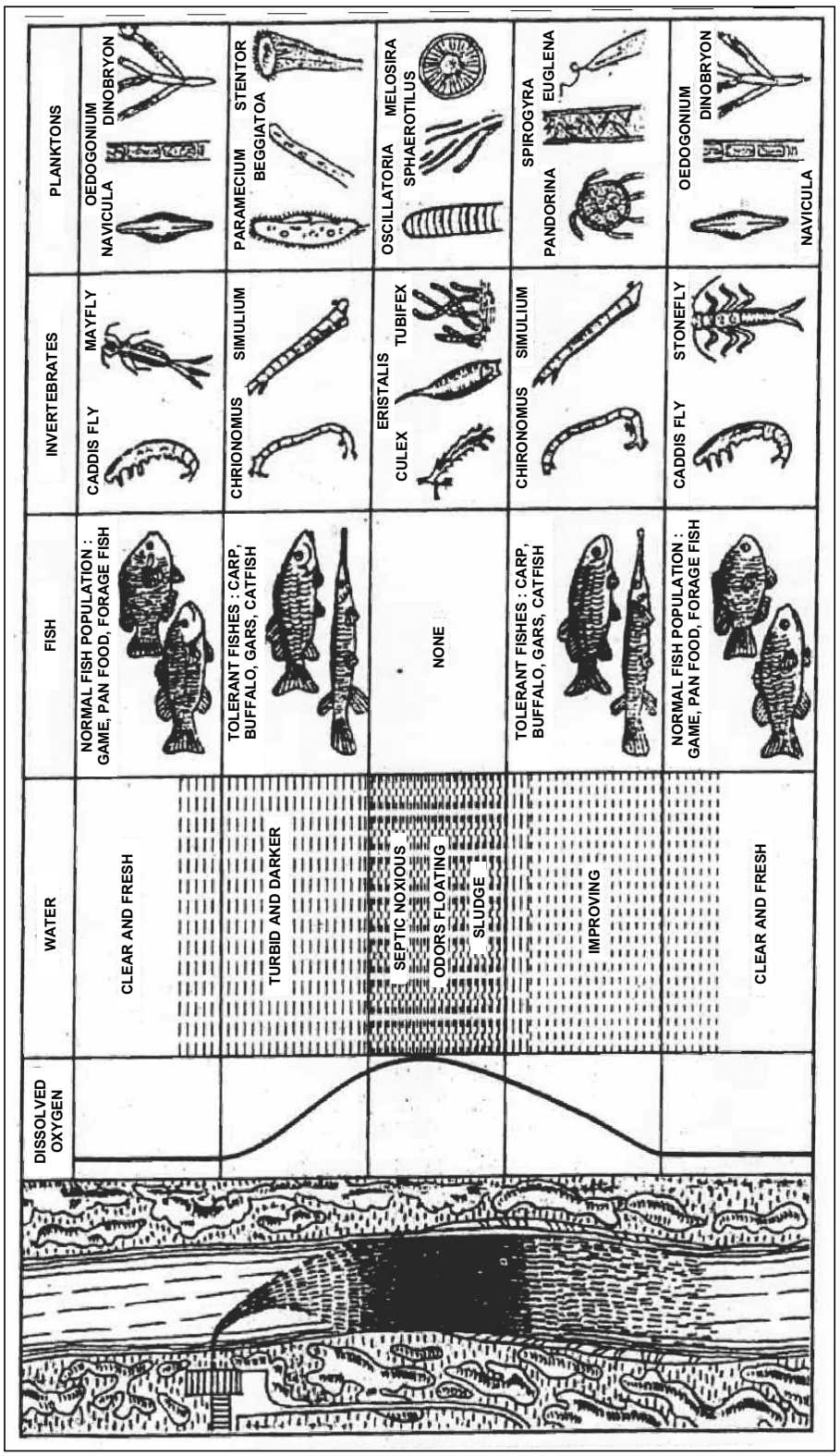

चित्र क्र. 3.10: Pollution of a stream with untreated sewage and its subsequent recovery

टिप्पणी

अपमार्जकों में फॉस्फेट्स (PO_4) प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जिसके कारण जल में शैवालों (Algae) की अत्यधिक मात्रा में वृद्धि होने लगती है। इसे सुपोषण (Eutrophication) कहते हैं। शीघ्र ही शैवालों में नीली–हरी शैवाल (Blue-green algae) प्रभावी हो जाती है जिससे जल उफान (Water blooms) तथा तैरती हुई पर्त (Floating scum) बनती है। शैवाल उफान का जन्तुप्लवक (Zooplanktons) उपयोग नहीं करते तथा इसके कारण अन्य जलीय पादपों को प्रकाश–संश्लेषण के लिए प्रकाश नहीं मिल पाता। शैवालों की अति वृद्धि से ऑक्सीजन की खपत में वृद्धि हो जाती है, परन्तु प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया के बाधित होने से ऑक्सीजन मुक्त नहीं हो पाती अतः जल में दुर्गन्ध आने लगती है। कुछ अपघटित पादप स्ट्राइकनीन (Strychnine) जैसे जहरीले पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिससे जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है (चित्र 3.10)।

वाहित मल और अन्य अपशिष्टों को ऑक्सीकर जीवाणु (Aerobic bacteria) अपघटित (Decompose) करते हैं अतः इनके एकत्रित होने से जैविक ऑक्सीजन माँग (Biological Oxygen Demand or BOD) बढ़ जाती है। **जल के इकाई आयतन (Unit volume) में सूक्ष्मजीवों (Microbes) द्वारा जैविक ऑक्सीकरण के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा जैविक ऑक्सीजन माँग (BOD) कहलाती है**। BOD का मान जल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के समानुपाती होता है अतः इसका उपयोग जल प्रदूषण एवं अपशिष्ट स्तर मापन के लिए किया जाता है। BOD का परीक्षण 20°C पर पाँच दिन तक किया जाता है। हालांकि BOD के स्थान पर रासायनिक ऑक्सीजन माँग (Chemical Oxygen Demand) या COD अधिक उपयोगी मानक होता है। **जल के किसी नमूने में किसी प्रबल रासायनिक आक्सीकारक द्वारा कार्बनिक पदार्थों के ऑक्सीकरण के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा रासायनिक ऑक्सीजन माँग (COD) कहलाती है**। जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा (Dissolved oxygen) या DO तथा BOD जल में उपस्थित जीवधारियों के प्रकार को प्रदर्शित करते हैं।

जल की अनॉक्सीकरण परिस्थितियों (Anaerobic condition) में विभिन्न रोगजनक विषाणु, जीवाणु, प्रोटोजोआ आदि पनपने लगते हैं जिनके अनेक घातक रोगों; जैसे–हेपेटाइटिस (Hepatitis), हैजा (Cholera), अमीबीय पेचिश (Amoebic dysentery), डायरिया (Diarrhoea) का संक्रमण होता है। इसके अतिरिक्त कई प्रकार के कृमियों (Worms) का संक्रमण भी होता है।

(2) औद्योगिक बहिःस्रावी पदार्थ (Industrial Effluents) – विभिन्न औद्योगिक इकाइयों से निकले बहिःस्रावी पदार्थों में अकार्बनिक तथा कार्बनिक दोनों प्रकार के प्रदूषक पाये जाते हैं; जैसे–तेल, ग्रीस, प्लास्टिक, प्लास्टिसाइजर, धात्विक अपशिष्ट तथा निलम्बित ठोस, फीनॉल्स आदि। इनमें से अनेक प्रदूषक अपघटित नहीं होते और गम्भीर प्रदूषण समस्या उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार कोयले की खानों से निकला सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) गम्भीर प्रदूषक का कार्य करता है जो न केवल जल की कठोरता बढ़ाता है अपितु जीवों पर हानिकारक प्रभाव डालता है।

टिप्पणी

अनेक भारी धातुएँ; जैसे– Cd, Au, As, Cr, Hg, Ni, Zn आदि उद्योगों एवं कृषि क्षेत्रों से निकलकर पीने वाले जल की वितरण प्रणाली में मिलकर गम्भीर स्वास्थ्य समस्या उत्पन्न करते हैं।

तेल एवं अन्य ग्रीसी (Greasy) पदार्थ जल की सतह पर फैलकर जल काय (Water body) की स्वतः शोधन प्रक्रिया को अवरुद्ध करते हैं तथा जलीय जीवों के श्वसन को भी बाधित करते हैं।

(3) कृषि विसर्जित पदार्थ (Agricultural Discharges) – कृषि की आधुनिक पद्धति में अनेक प्रकार के रासायनिक उर्वरकों, पीड़कनाशियों (Pesticides) एवं अन्य मृदा योज्यों (Soil additives) का प्रयोग किया जाता है। इन पदार्थों की कुछ मात्रा सिंचाई, वर्षा, जल निकास के माध्यम से नदियों एवं तालाबों में पहुँचकर प्रदूषण की समस्या उत्पन्न करते हैं।

रासायनिक उर्वरकों एवं संश्लेषित चारे के अत्यधिक प्रयोग से प्रायः जल में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाती है। मानव अथवा जन्तुओं के लिए जब ऐसा जल पीने के उपयोग में लाया जाता है तब ये नाइट्रेट शरीर के अन्दर पहुँच जाते हैं जहाँ आँत में स्थित जीवाणु नाइट्रेट को जहरीले नाइट्राइट में परिवर्तित कर देते हैं। नाइट्राइट रुधिर की हीमोग्लोबिन के साथ संयोजित होकर मीथेमोग्लोबिन (Methaemoglobin) बनाते हैं जिससे रुधिर की ऑक्सीजन परिवहन क्षमता कम हो जाती है। इस व्याधि को मीथेमोग्लोबिनेमिया (Methaemoglobinaemia) कहते हैं। यह एक घातक व्याधि है जिससे कैन्सर भी जो सकता है।

(4) भौतिक प्रदूषक (Physical Pollutants) – रासायनिक उद्योगों, तापीय एवं न्यूक्लियर पावर संयन्त्रों में जल का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में होता है। प्रयुक्त होने के बाद जल अत्यधिक गर्म हो जाता है। यह जल जब नदियों या झीलों में डाला जाता है तो इससे जलीय जीवन प्रभावित होता है। इसे तापीय प्रदूषण (Thermal Pollution) कहते हैं।

फ्लुओरीन प्रदूषण (Fluorine Pollution) – मृदा, जल, वायुमण्डल, पादप एवं जन्तु ऊतकों में फ्लुओरीन की कुछ–न–कुछ मात्रा पायी जाती है। प्रकृति में फ्लुओरीन फ्लुओराइड (Fluoride) के रूप में पायी जाती है। कभी–कभी भूमिगत जल में फ्लुओरीन की मात्रा अत्यधिक पायी जाती है। 1.5 ppm तक का फ्लुओरीन स्तर सुरक्षित माना जाता है। फ्लुओरीन संदूषित जल के पीने से **फ्लुओरोसिस** (Fluorosis) नामक रोग हो जाता है। फ्लुओरोसिस से ग्रसित मनुष्य के दाँतों में धब्बें पड़ जाते हैं (Teeth mottling), जोड़ों एवं हड्डियों में दर्द होता है तथा घुटने आगे की तरफ मुड़ जाते है जिसे **नॉक–नी सिण्ड्रोम** (Knock-knee syndrome) कहते हैं।

3.17 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

पृथ्वी की पर्पटी (Earth's crust) की ऊपरी अपक्षीण (Weathered) पर्तें जो जीवन का संभरण करने में सक्षम हों, मृदा कहलाती हैं। मृदा का निर्माण विभिन्न जलवायु

कारकों; जैसे–जल तथा ताप एवं जैविक कारकों; जैसे– पादप, जन्तु तथा सूक्ष्मजीवों की संयुक्त क्रिया से होता है।

टिप्पणी

ऐसे सभी पदार्थ जो मृदा तन्त्र का हिस्सा न हों और जो मृदा की उत्पादकता को हानिकारक रूप से प्रभावित करें, मृदा प्रदूषक कहलाते हैं।

मृदा प्रदूषण मुख्यतया रासायनिक उर्वरकों, पीड़कनाशियों एवं ठोस अपशिष्टों द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त मृदा अप्रत्यक्ष प्रभावों (Indirect effects): जैसे– अम्ल वर्षा (Acid rains) से भी प्रदूषित हो सकती है।

(1) रासायनिक उर्वरक (Chemical Fertilizers) – आधुनिक कृषि में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कृषि पैदावार बढ़ाने के लिए व्यापक पैमाने पर किया जा रहा है। इन उर्वरकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से पैदावार में वृद्धि तो होती है, परन्तु साथ–ही–साथ मृदा प्रदूषित भी होती है। मृदा में अनावश्यक जमाव होने के कारण ये न केवल मृदा के सामान्य संघटन को प्रभावित करते हैं अपितु वर्षा जल के साथ बहकर ये पदार्थ तालाबों, नदियों आदि जल स्त्रोतों में पहुँचकर जल को सुपोषित (Eutrophication) करके जल प्रदूषण के कारक बनते हैं।

(2) पीड़कनाशी (Pesticides) – फसलों को कीटों, कवकों, परजीवी कृमियों, खरपतवारों आदि के प्रकोप से बचाने के लिए विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों (Insecticides), कवकनाशकों (Fungicides), कृमिनाशकों (Nematicides), जैवनाशकों (Herbicides) का प्रयोग किया जाता है। इन रासायनिक पदार्थों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से न केवल मृदा अपितु जल एवं वायु भी प्रदूषित होती है।

कीटनाशी अत्यन्त हानिकारक रसायन होते हैं जो न केवल वांछित लक्ष्य जीवों (Target organisms) को समाप्त करते हैं अपितु अलक्ष्य जीवों (Non-target organisms) को भी प्रभावित करते हैं। मृदा में उपस्थित लाभप्रद जीवों, जैसे–केंचुआ (Earthworm) तथा सूक्ष्मजीवों (Microbes) के लिए भी ये घातक सिद्ध होते हैं। केंचुये को पक्षी, मेंढक आदि जीव खाते हैं तथा खेतों पर उगाये गये चारे को मवेशी (Cattles) खाते हैं। इस प्रकार ये प्रदूषण मृदा से खाद्य श्रृंखला में पहुँच जाते हैं। अनेक कीटनाशक रसायन जैविक आवर्धन (Biomagnification) के परिणामस्वरूप तृतीयक उपभोक्ताओं (Tertiary consumers) में एकत्रित हो जाते हैं।

कीटनाशकों के प्रयोग से मृदा में उपस्थित विघटनकर्ता भी समाप्त हो जाते हैं अतः कृषि अपशिष्टों के विघटन एवं पुनर्चक्रण की क्रिया भी प्रभावित होती है जिससे मृदा की उर्वरकता भी कम हो जाती है तथा नाइट्रीकारक जीवाणुओं के प्रभावित होने से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण भी प्रभावित होता है जिससे पैदावार कम हो जाती है। पैदावार में वृद्धि हेतु जब रासायनिक उर्वरकों का अधिक प्रयोग किया जाता है तो उनके कारण भी प्रदूषण में वृद्धि होती है।

(3) ठोस अपशिष्ट (Solid Wastes) – ठोस अपशिष्टों के अन्तर्गत मुख्यतया शहरों से निकलने वाला कूड़ा–कचरा (Garbage), अस्पतालों के अपशिष्ट (Hospital wastes), मानव एवं जन्तुओं का मल आदि आते हैं।

टिप्पणी

बड़े–बड़े शहरों में कूड़े–कचरे की अत्यधिक मात्रा बनती है। एक आंकलन के अनुसार शहरों में औसतन 350–1000 ग्राम कचरा प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकलता है। दिल्ली में लगभग 4000 टन, कोलकाता में 3150 टन, मुम्बई में 6000 टन तथा हैदराबाद में 1300 टन कचरा प्रतिदिन बनता है। इसके अतिरिक्त कसाईखानों (Abattoirs) से निकले जन्तु अपशिष्ट, प्लास्टिक के थैले, PVC तथा रबर के सामान, टायर–ट्यूब, काँच एवं सिरैमिक के सामान, ऐलुमिनियम के डिब्बे भी ठोस अपशिष्टों की श्रेणी में आते हैं। कसाईघरों से निकले जन्तु अपशिष्टों के अतिरिक्त अन्य अपशिष्टों का जैविक निम्नीकरण नहीं होता जिसके कारण ये लम्बी अवधि तक मृदा में बने रहते हैं।

अस्पतालों से निकले अपशिष्ट अत्यन्त संकटकारी (Hazardous) होते हैं। ये अनेक प्रकार के विषाणु, जीवाणु एवं परजीवी संक्रमण के अतिरिक्त अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करते हैं।

(4) मृदा लवणीयता (Soil Salination) – सिंचाई हेतु उपयोग में लाये जाने वाले जल में घुलित लवण मृदा की ऊपरी सतह पर जमा हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रीष्म काल में मृदा की निचली पर्तों से केशिकीय क्रिया (Capillary action) द्वारा लवण ऊपरी सतह पर आकर जमा हो जाते हैं। इन लवणों के एकत्रित होने के फलस्वरूप मृदा की उत्पादकता कम हो जाती है तथा भूमि की गुणवत्ता भी निम्नीकृत हो जाती है।

3.18 तापीय प्रदूषण (Thermal Pollution)

जब किसी पदार्थ के विसर्जन से वातावरण के किसी भाग के तापमान में वृद्धि हो जाए तो इस प्रकार के प्रदूषण को **तापीय प्रदूषण** कहते हैं। यहाँ पर ऊष्मा (Heat) प्रदूषक का कार्य करती है। तापीय प्रदूषण के लिए गर्म बहिःस्राव, गर्म जल तथा गर्म वायु उत्तरदायी होते हैं। रासायनिक उद्योगों तथा परमाणु ऊर्जा उत्पादन संयन्त्रों में जल की अत्यधिक मात्रा का उपयोग शीतलक (Coolant) के रूप में किया जाता है अतः वहाँ से निकाला गया जल अत्यधिक गर्म होता है जिसे नदी में छोड़ा जाता है। इसी प्रकार जिन उद्योगों में भाप का उपयोग किया जाता है वहाँ से भी गर्म जल विसर्जित होता है। यह गर्म जल जिस नदी या झील या अन्य जलीय काय में विसर्जित किया जाता है उस जलीय क्षेत्र के तापमान में वृद्धि हो जाती है जिससे उस जल क्षेत्र से पादप एवं जल जीवन का विनाश हो जाता है। इसके अतिरिक्त वहाँ के जल में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

तापीय प्रदूषण के परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होते हैं–

1. मछलियों में अण्डोद्भेदन (Hatching) समय से पूर्व हो जाता है जिससे उनकी फिंगरलिंग्स (Fingerlings) प्राकृतिक भोजन के अभाव में मर जाते हैं।
2. ट्राउट (Trout) मछलियों में अण्डा देने की प्रक्रिया बाधित होती है।

3. सालमन (Salmon) मछलियों में जलांडक (Spawn) नहीं बनते।
4. चूँकि गर्म जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है अतः जैविक ऑक्सीजन माँग (Biological Oxygen Demand) बढ़ जाती है।
5. हरे शैवालों का स्थान नीली–हरी शैवाल से लेती हैं।
6. जलमग्न पौधों (Macrophytes) में परिवर्तन होने लगते हैं।
7. जलीय जन्तुओं का प्रवसन (Migration) भी प्रभावित होता है।

3.19 शोर प्रदूषण (Noise Pollution)

प्रबल, कोलाहलपूर्ण, अरुचिकर या असहनीय ध्वनि को शोर (Noise) कहते हैं तथा इससे होने वाले प्रदूषण को शोर प्रदूषण (Noise pollution) कहते हैं। ध्वनि की तीव्रता 'लार्न बैरोमीटर' (Learn barometer) अथवा सोनोमीटर (Sonometer) से मापी जाती है। ध्वनि की तीव्रता मापने की इकाई डेसीबेल (Decibel) कहलाती है जो 'बेल' (Bel) के दसवें भाग के बराबर होती है। 'बेल' शब्द **अल्फ्रेड ग्राहम बेल** (Alfred Graham Bel) के नाम पर रखा गया है। तकनीकी रूप से डेसीबेल ध्वनि दाब की वह मात्रा है जो 0.0002 माइक्रोबार्स (Microbars) के बराबर हो।

मानव कान 0° से 180 dB (Decibel) तक की तीव्रता वाली ध्वनि के प्रति संवेदनशील होता है। 0 dB सुनने की अवसीमा (Threshold of hearing) तथा 140 dB दर्द की अवसीमा (Threshold of pain) है अर्थात् डेसीबल पैमाने पर 'शून्य' ध्वनि तीव्रता का वह स्तर है जहाँ से ध्वनि कानों को सुनाई देती है तथा 140 ध्वनि तीव्रता का वह देहरी स्तर है जहाँ से ध्वनि के कारण दर्द का अनुभव होता है। 80 dB से अधिक तीव्रता वाली ध्वनि को हम प्रदूषक का दर्जा दे सकते हैं।

सारणी क्र. 3.8: Perceptibility at Different Intensity Levels of Sound

Intensity level in dB	Perceptibility
0	Threshold of hearing
10	Just audible
10-30	Very quite
30-50	Quite
50-55	Normal voice
60-70	Moderately loud
70-100	Very loud
100-130	Uncomfortable
130-140	Painfully loud
140-180	Severely loud

शोर प्रदूषण के स्रोत (Sources of Sound Pollution)

टिप्पणी

शोर हमारी औद्योगिक प्रगति एवं आधुनिक सभ्यता का प्रतिफल (Byproduct) है। एक समय था जब शोर केवल औद्योगिक इकाइयों तक ही सीमित था इसके बावजूद यह कोई चिन्तनीय विषय नहीं था क्योंकि तब औद्योगिक इकाइयों की संख्या भी सीमित थी, परन्तु जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ विकसित हुई आधुनिक सभ्यता ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ध्वनि की तीव्रता के स्तर को बढ़ाने का कार्य किया है। शोर का स्रोत प्राकृतिक भी हो सकता है; जैसे–बादलों की गड़गड़ाहट (Thunder) और मानव निर्मित भी, जैसे–हवाई जहाज, लाउडस्पीकर आदि। मानव निर्मित शोर के स्रोतों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–औद्योगिक (Industrial) तथा अनौद्योगिक (Non-industrial) स्रोत।

(A) औद्योगिक स्रोत (Industrial Sources) – शोर विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के **प्रो. लेहमान** (Lehman) के अनुसार "शोर प्रौद्योगिकी की प्रगति का नहीं अपितु प्रतिगति का प्रतीक है।" वैज्ञानिक मानकों के अनुसार कारखानों में ध्वनि का अधिकतम मान्य स्तर 90 dB होना चाहिए लेकिन आंकलन के दौरान यह ध्वनि स्तर 120 dB पाया गया। **तिवारी** तथा **अली**, 1989 (Tiwari and Ali, 1989) के अनुसार विभिन्न औद्योगिक इकाइयों में शोर का सर्वाधिक स्तर मृतिकाओं (Ceramics) तथा ढलाईघरों (Foundries) में होता है जो लगभग 90–100 dB मापा गया।

(B) अनौद्योगिक स्रोत (Non-industrial Sources) – इसके अन्तर्गत आने वाले स्त्रोतों को निम्नांकित वर्गों में बाँटा गया है–

1. **घरेलू शोर (Domestic noise)** – टी. वी. (Television); रेडियो (Radio), म्यूजिक सिस्टम (Music System), कूलर (Cooler), पंखे (Fans), वातानुकूलक (Air-conditioners), बच्चों का चिल्लाना आदि।
2. **ध्वनि विस्तारक (Loud-Speakers)।**
3. **निर्माण कार्य (Construction Work)** – डीजल–कंकरीट मिक्सर (Diesel concrete mixer), रोड रोलर (Road roller), कंकरीट ब्रेकर (Concrete breaker) आदि।
4. **यातायात का शोर (Traffic Sound)** – स्वचालित सड़क वाहन; जैसे–कार, स्कूटर आदि तथा रेलगाड़ी, हवाई जहाज आदि।
5. **भीड़भाड़ वाले बाजार (Crowded Markets)।**
6. **थियेटर, सर्कस तथा मेला (Theatres, Circus and Carnivals)।**
7. **धार्मिक स्थलों पर होने वाला शोर (Noise at Religious Places)।**

प्रमुख स्रोतों के कारण होने वाले शोर के स्तरों को सारणी 3.9 में दर्शाया गया है।

सारणी क्र. 3.9: Level of Noise Created from Different Source

Sources	Noise level (in dB)
Ceramic Industry	90-100
Foundry	90-100
Chemical Industry	85-100
Diesel concrete mixer	75-80
Concrete breaker	80-90
Road roller	70-75
Traffic	50-90
Heavy truck	90
Passenger car	80
Motor cycle	94
Scooter	80
Train whistle (at 50 ft.)	110
Aeroplane (1000 ft.)	100
Jet aircraft	120-140
Thunder storm	110
Sirens and Horns	150
Deepawali	73-114
Alarm clock	70-80
Office	60-80
Library	30-35
Breathing	10
Music function	86-96

टिप्पणी

शोर प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Noise Pollution)

(1) श्रवण प्रभाव (Auditory effects) – 80 dB से अधिक तीव्र शोर के प्रभाव से कान में सीटियाँ बजने लगती हैं और कानों पर प्रतिकूल असर पड़ने के कारण श्रवण थकान (Auditory fatigue) उत्पन्न होती है। 100 dB की ध्वनि के प्रभाव में लम्बी अवधि तक रहने से अस्थायी रूप से सुनाई देना बन्द हो जाता है तथा यही दशा लगातार बनी रहे तो स्थायी रूप से मनुष्य बहरा हो जाता है। 160 dB से अधिक तीव्र ध्वनि के कारण कानों की कर्ण झिल्ली (Tympanic membrane) फट सकती है। WHO के एक अध्ययन के अनुसार विकसित देशों में 5 प्रतिशत बच्चों में किसी–न–किसी स्तर का बहरापन (Deafness) पाया जाता है (T.O.I., 1987)। सारणी 3.10 में अधिक तीव्र शोर के कारण मानव में उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रभावों को दिखाया गया है।

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.10: Human Health Hazards due to High Intensity Noise

Noise Intensity (in dB)	Health Hazards
80	Annoyance
90	Adverse effect on hearing
110	Stimulation of reception in skin
120-135	Nausea, vomiting, dizziness and interference in touch sensitivity
140	Ear pain, Insanity due to prolonged exposure
150 (Long duration)	Burning of skin, effect on pulse rate
160 (Long duration)	Minor permanent changes
180	Major permanent auditory damage
190	Lung damage

(2) अन्य प्रभाव (Other effects) – शोर के कारण निद्रा की गहराई एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है जिससे मानव का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। स्वाभाविक एवं अच्छी निद्रा (Sound sleep) के लिये यह आवश्यक है कि ध्वनि स्तर 30 dB से अधिक न हो। लगातार तीव्र ध्वनि से खीज (Annoyance) उत्पन्न होती है।

अत्यधिक शोर वाले माहौल में लगातार रहने से शरीर पर अन्य कई प्रकार के प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं; जैसे–विक्षिप्तता (Neurosis), चिन्ता (Anxiety), अनिद्रा (Insomnia), उच्च रक्तचाप (Hypertension), हृदय–स्पन्दन दर में वृद्धि, पाचन में रुकावट (Indigestion), मिचली, थकान आदि। इसके अतिरिक्त पुतलियाँ (Pupils) सिकुड़ जाती हैं जिससे दृष्टि भी प्रभावित होती है।

ध्वनि प्रदूषण से गर्भस्थ शिशुओं में शारीरिक विकृति तथा विक्षिप्तता विकसित हो सकती है तथा महिलाओं में गर्भपात (Abortion) हो सकता है।

(3) वन्य जन्तुओं पर प्रभाव (Effect on Wild Life) – ध्वनि प्रदूषण का वन्य जन्तुओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शोर वाले आवासीय वातावरण में प्रवासी पक्षियों (Migratory birds) की आमद में कमी हो जाती है। चिडियाघरों में रहने वाले शेरों, हिरणों एवं गैंडों में यातायात शोर के कारण सुस्ती एवं निष्क्रियता के अतिरिक्त अस्वस्थता भी देखी गयी है। मलेशिया में किये गये एक अध्ययन के अनुसार शोर से वन्य जन्तुओं में स्वभाव, स्वास्थ्य एवं संगम (Mating) प्रभावित होता है।

(4) अजैविक वस्तुओं पर प्रभाव (Effect on Non-living Things) – शोर से इमारतों, भवनों की दीवारों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कंकार्ड जेट विमानों से लन्दन (London) के संसद भवन एवं गिरजाघरों को खतरा उत्पन्न हो गया था।

शोर प्रदूषण पर नियन्त्रण (Control of Noise Pollution)

टिप्पणी

1. कारखानों में जिन स्रोतों पर ध्वनि उत्पन्न होती हैं वहाँ रवशामकों (Silencers) का प्रयोग होना चाहिए। मशीनों के खराब कलपुर्जों को बदला जाना चाहिए तथा कारखानों में प्लास्टिक फर्श लगाना चाहिए।
2. बिल्डिंगों की दीवारों में ध्वनि अवशोषी पदार्थ, जैसे– टाइल्स तथा ध्वनि वाधिका (Acoustic tiles and baffles) का प्रयोग करना चाहिए।
3. ध्वनि अवशोषी वृक्ष; जैसे– नीम, अशोक, बरगद, कैजूराइना लगाने से ध्वनि प्रदूषण में कमी हो जाती है।
4. स्वचालित वाहनों के हॉर्न मधुर होने चाहिए तथा ध्वनि विस्तारकों के प्रयोग पर नियन्त्रण स्थापित करना चाहिए।
5. आम जनता को ध्वनि प्रदूषण के कारणों एवं निदान के प्रति शिक्षित एवं जागरूक बनाने के उपाय करने चाहिए।

3.20 प्रदूषण नियन्त्रण (Pollution Control)

निम्नलिखित निरोधक उपायों (Preventive measures) द्वारा प्रदूषण की समस्या को अत्यधिक सीमा तक नियन्त्रित किया जा सकता है–

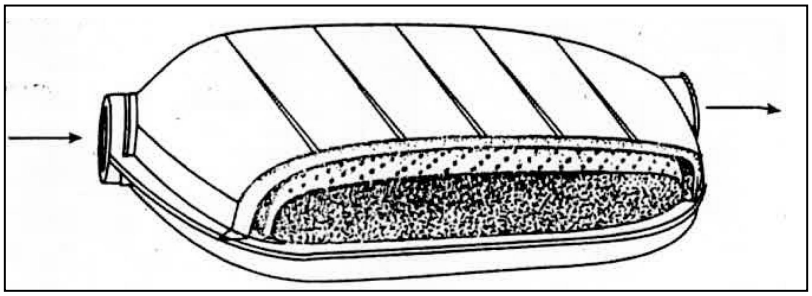

चित्र क्र. 3.11: Catalytic converter

(1) स्वचालित वाहनों से होने वाले प्रदूषण को उत्प्रेरक संपरिवर्तकों (Catalytic converters) के प्रयोग द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। इसके लिए वाहनों के इन्जन से निकलने वाली गैसों को उत्प्रेरक संपरिवर्तक में रखे विषमांगी उत्प्रेरक (Heterogeneous catalyst) के ऊपर से प्रवाहित किया जाता है। स्वचालित वाहनों के इन्जन में पेट्रोल एवं डीजल के जारण से कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल मुक्त होता है तथा इसके साथ ही कार्बन मानोऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी अवांछित विषैली गैसें भी मुक्त होती हैं। उत्प्रेरक संपरिवर्तक में रखे विषमांगी उत्प्रेरक कार्बन मोनोऑक्साइड को अपेक्षाकृत कम हानिकारक कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित कर देते हैं। इसी प्रकार नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) एवं नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) को संपरिवर्तक में रखे विषमांगी उत्प्रेरक नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन में परिवर्तित कर देते हैं।

टिप्पणी

$$2CO + O_2 \xrightarrow{\text{उत्प्रेरक}} 2CO_2$$

$$2NO \xrightarrow{\text{उत्प्रेरक}} N_2 + O_2$$

$$2NO_2 \xrightarrow{\text{उत्प्रेरक}} N_2 + 2O_2$$

इसके अतिरिक्त विषमांगी उत्प्रेरक बिना जले हाइड्रोकार्बन को कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल में ऑक्सीकरण को भी उत्प्रेरित करते हैं।

उत्प्रेरक संपरिवर्तकों के अन्दर विषमांगी उत्प्रेरकों के रूप में पैलेडियम (Palladium), प्लेटिनम (Platinum), रोडियम (Rhodium) आदि धातुओं के अतिरिक्त क्रोमियम ऑक्साइड (Chromium oxide) तथा कॉपर ऑक्साइड (Copper oxide) का भी प्रयोग किया जाता है।

सीसा युक्त पेट्रोल (Leaded petrol) उत्प्रेरक संपरिवर्तक में रखे विषमांगी उत्प्रेरकों के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है अतः इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उत्प्रेरक संपरिवर्तक का प्रयोग करने के लिए स्वचालित वाहन में सीसा–रहित पेट्रोल का ही प्रयोग करना चाहिए।

(2) औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले कणिकीय पदार्थों के लिए चक्रवात संग्राहकों (Cyclone collectors) तथा स्थिरवैद्युत अवक्षेपकों (Electrostatic precipitators) का उपयोग करना चाहिए।

चक्रवात संग्राहकों (Cyclone collectors) में कणिका युक्त अपशिष्ट गैसों का अपकेन्द्रीकरण (Centrifugation) किया जाता है जिससे कणिकाएँ चक्रवात संग्राहक की दीवार से टकराकर तली में एकत्रित हो जाती हैं (चित्र 3.12)।

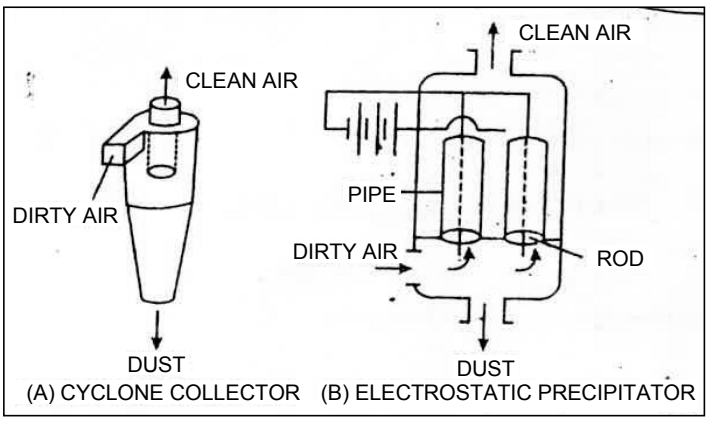

चित्र क्र. 3.12: Cyclone collector and electronic precipitator

स्थिरवैद्युत अवक्षेपकों (Electrostatic precipitators) में अवक्षेपक के अन्दर विद्युत् बलों (Electrical forces) का प्रयोग किया जाता है। इसमें इलेक्ट्रॉन के एक उच्च वोल्टेज इलेक्ट्रोड (High voltage electrode) के दूसरे उच्च वोल्टेज इलेक्ट्रोड की तरफ जाने से गैसों में उपस्थित कणिकाएँ आवेशित हो जाती हैं। आवेशित होते ही ये कणिकाएँ धनात्मक आवेश वाले इलेक्ट्रोड की तरफ आकर्षित हो जाती हैं। अवक्षेपकों की सहायता से चिमनी से निकलने वाली गैसों से 99 प्रतिशत कणिकीय प्रदूषकों को अलग किया जा सकता है।

टिप्पणी

(3) सीसायुक्त पेट्रोल के स्थान पर बिना सीसे वाला पेट्रोल तथा गैसोहॉल (Gasohol) (पेट्रोल तथा ऐल्कोहॉल का मिश्रण) तथा एल. पी. जी. (Liquid Petroleum Gas) के प्रयोग को प्रोत्साहित करके वायु प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

(4) वैकल्पिक ऊर्जा अथवा ऊर्जा के गैर–परम्परागत स्त्रोतों (Non-conventional sources) का उपयोग करने से प्रदूषण को नियन्त्रित किया जा सकता है; जैसे– सौर ऊर्जा (Solar energy), वायु ऊर्जा (Wind energy), ज्वार ऊर्जा (Tidal energy), भू–तापीय ऊर्जा (Geothermal energy)।

(5) नगरपालिका वाहित मल (Municipal sewage) में शहरों एवं कस्बों से निकली गन्दगी, कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ तथा जीवाणु होते हैं जो विभिन्न व्याधियाँ फैला सकते हैं। इस वाहित मल से नदी, तालाब, झील आदि का जल प्रदूषित होता है। अतः इस वाहित मल का शुद्धीकरण करना आवश्यक होता है।

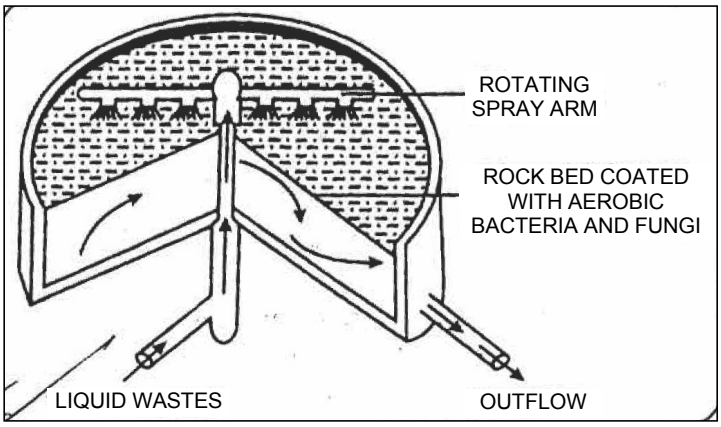

चित्र क्र. 3.13: A sewage treatment pond (Diagrammatic)

वहित मल के शुद्धीकरण (Sewage treatment) में सर्वप्रथम गन्दगी को विशेष निस्यन्दों द्वारा छानकर अलग किया जाता है। फिर गन्दगी को बैठने (settling) दिया जाता है। इस क्रिया में अकार्बनिक पदार्थ एवं कुछ कार्बनिक पदार्थ पृथक् हो जाते हैं तथा शेष कार्बनिक पदार्थ जल में घुली हुई एवं निलम्बित अवस्था में रह जाते हैं। इन पदार्थों का अब खनिजीकरण (Mineralization) किया जाता है जिसके फलस्वरूप ये अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसमें ऑक्सीजन जल में प्रविष्ट करायी जाती है। यह ऑक्सीजन हरे शैवालों की प्रकाश–संश्लेषी क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती है। इस प्रकार शैवाल गन्दे जल में बैक्टीरिया को अपनी प्रकाश–संश्लेषी क्रियाओं द्वारा ऑक्सीजन उपलब्ध कराते हैं तथा बदले में बैक्टीरिया जटिल कार्बनिक पदार्थों के ऑक्सीकरण द्वारा शैवालों को पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। वाहित मल के उपर्युक्त शुद्धिकरण प्रक्रिया के लिए विशेष प्रकार के खुले तालाबों का प्रयोग किया जाता है।

(6) घरों से निकले गोबर (Dung) को कम्पोस्ट गड्ढों (Compost pits) में एकत्रित करके गोबर की खाद बनायी जा सकती है। इसके अतिरिक्त गोबर गैस संयन्त्र (Gobar gas plant) लगातार गोबर गैस बनाकर ईंधन के रूप में प्रयोग की जा सकती है। इसके लिए एक ढक्कनदार सिलिण्डर को भूमि में

टिप्पणी

तीन–चौथाई दबा दिया जाता है इस सिलिण्डर में गोबर को जल की कुछ मात्रा के साथ मिलाकर डाला जाता है। सिलिण्डर में गोबर के किण्वन (Fermentation) से उत्पन्न गैस को ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(7) रेडियोधर्मी विकिरण के प्रभाव से बचने के लिए परमाणु विस्फोटों पर नियन्त्रण स्थापित करना चाहिए तथा परमाणु संयन्त्रो में सुरक्षा हेतु विशेष प्रबन्ध करने चाहिए।

(8) वैधानिक नियन्त्रण (Legislative Control) – प्रदूषण नियन्त्रण हेतु तीन अधिनियम बनाये गये–

(i) जल (प्रदूषण निरोधक एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1974 [Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974]

(ii) जल (प्रदूषण निरोधक एवं नियन्त्रण) उपकर अधिनियम, 1977 [Water (Prevention and Control of Pollution) Cess Act, 1977] तथा

(iii) वायु (प्रदूषण निरोधक एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1981 [Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981]।

3 दिसम्बर, 1984 को भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड, इण्डिया लिमिटेड के कारखाने में एक संयन्त्र से निकली विषैली मिथाइल आइसो–सायनेट (Methyl iso-cyanate, MIC) गैस के रिसाव से हजारों मनुष्यों की मृत्यु हो गयी। इस घटना को भोपाल गैस त्रासदी (Bhopal Gas Tragedy) के नाम से जाना जाता है। इस दुर्घटना के बाद ऐसी दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के लिए वातावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 [Environmental (Protection) Act, 1986] लागू किया गया तथा 1987 में कारखाना अधिनियम, 1948 (The Factories Act, 1948) को संशोधित किया गया।

जनवरी 1994 में भारत सरकार ने एक नियम लागू किया जिसके अनुसार प्रत्येक औद्योगिक इकाई की स्थापना अथवा प्रसार तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि पर्यावरणीय निकासी (Environmental clearance) न प्राप्त हो जाये तथा सभी वृहत परियोजनाओं के प्रबन्धन को अनुमति प्राप्त करने से पूर्व Environmental Impact Assessment Report तथा Environmental Management Plan प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा।

प्रदूषण का मूल्य (Cost of Pollution)

प्रदूषण से होने वाले नुकसान के मूल्य का आंकलन कई प्रकार से किया जा सकता है। प्रमुख तरीके निम्नलिखित हैं–

1. **मानव स्वास्थ्य का मूल्य (Cost of Human Health)** – प्रदूषण के परिणामस्वरूप अनेक घातक विकार उत्पन्न होते हैं; जैसे–दमा तथा श्वास के अन्य विकार, तपेदिक, उच्च रक्तचाप, लकवा आदि।

टिप्पणी

2. **कार्यकुशलता में कमी (Loss of Efficiency)** – औद्योगिक वातावरण में वातावरण के प्रदूषित होने से कामगारों की क्रियाशीलता एवं कार्यकुशलता प्रभावित होती है जिससे उत्पादन में गिरावट आती है।
3. **मृदा उर्वरकता का क्षरण (Decline in Soil Fertility)** – मृदा प्रदूषण से मृदा की उर्वरकता में कमी आती है जिससे उत्पादकता में कमी आती है। पृथ्वी की प्रतिवर्ष लगभग 27 मि.हे. उर्वरक भूमि प्रदूषण से वीरान हो जाती है।
4. **जैविक विविधता में कमी (Loss of Biodiversity)** – प्रदूषण के फलस्वरूप हजारों पादप एवं जन्तु प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं तथा एक आंकलन के अनुसार प्रतिदिन लगभग तीन प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं।
5. **धातुओं का संक्षारण (Corrosion of Metals)** – प्रदूषण से लोहा, स्टील, ताँबा, पीतल, जिंक आदि धातुएँ संक्षारित होती हैं जिससे भारी नुकसान उठाना पड़ता है।
6. **इमारतों एवं अन्य वस्तुओं को नुकसान (Damage to buildings and other articles)**।
7. **प्रदूषण नियन्त्रण पर खर्च (Expenditure on Pollution Control)** – प्रदूषकों के निष्पादन तथा प्रदूषण नियन्त्रण में उपयुक्त होने वाले उपस्करों में धन एवं मानव शक्ति (Man power) दोनों का उपयोग करना पड़ता है।

1995 में किये गये एक अध्ययन के अनुसार भारत में वातावरणीय प्रदूषण से प्रतिवर्ष 9715 मि. डॉलर की हानि होती है जो सकल घरेलू उत्पाद या जी. डी. पी. (Gross domestic product or GDP) का लगभग 4.53 प्रतिशत है (सारणी क्र. 3.11)

सारणी क्र. 3.11: Major Environmental Costs Estimated for India (1995)

Problem	Low estimate (million US $)	High estimate (million US $)	Average (million US $)
Urban air pollution	517	2,102	1,310
Water Pollution (heath impacts)	3,076	8,344	5,710
Solid degradation	1,516	2,368	1,642
Range Land degradation	283	417	328
Deforestation	183	244	214
Tourism	141	283	213
Total costs of environmental degradation	5,672	13,758	9,715
Total cost, % of Gross domestic product	2.64%	6.41%	4.53%

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

22. वायु प्रदूषण के लिए संकेतक (Indicators) का कार्य करते हैं–
    (अ) हरी शैवाल तथा जलीय लिवरवर्ट,
    (ब) फर्न तथा साइकस,
    (क) नीम तथा नींबू,
    (ड) लाइकेन तथा मॉस।
23. जलीय BOD बढ़ाने वाले जीव हैं–
    (अ) शैवाल, (ब) जलीय पौधे,
    (क) गाद, (ड) शर्करा मिल के अपशिष्ट।
24. ओजोन छिद्र बना है–
    (अ) यूरोप में, (ब) जापान में,
    (क) आस्ट्रेलिया में, (ड) अण्टार्कटिका में।
25. किस गैस ने भोपाल गैस त्रासदी में हजारों जानें लीं–
    (अ) CO, (ब) SO_2,
    (क) O_3, (ड) MIC.
26. महानगरों में प्रमुख वायु प्रदूषक हैं–
    (अ) O_3, (ब) CO_2 तथा SO_2,
    (क) NO_2 तथा CO_2, (ड) इनमें से कोई नहीं।
27. निम्नलिखित में से किस भारी धातु को उत्प्रेरक संपरिवर्तकों में उत्प्रेरक के रूप में प्रयोग किया जाता है?
    (अ) पैलेडियम, (ब) वैनेडियम,
    (ब) रेडियम, (ड) कॉपर।
28. जब नदी में मलयुक्त जल की भारी मात्रा प्रवाहित कर दी जाती है तब उसका BOD–
    (अ) बढ़ जायेगा, (ब) कम हो जायेगा,
    (क) समान बना रहेगा, (ड) बहुत कम हो जायेगा।
29. धुन्ध बनती है–
    (अ) NO_3 + कुहरे से, (ब) धुएँ + कुहरे से,
    (क) धुएँ + CO_2 से, (ड) इनमें से किसी से नहीं।
30. मृदा प्रदूषण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है–
    (अ) प्लास्टिक, (ब) काँच,
    (क) अपमार्जक, (ड) मल।

टिप्पणी

31. किसके द्वारा वायु प्रदूषण नहीं होता?

(अ) CO_2, (ब) CO,

(क) SO_2, (ड) H_2।

32. कार्बन मोनोऑक्साइड का प्रभाव अत्यन्त घातक होता है क्योंकि हीमोग्लोबिन के लिए इसकी बद्धता ऑक्सीजन की तुलना में होती है–

(अ) 50 गुना, (ब) 100 गुना,

(क) 250 गुना, (ड) 1000 गुना।

33. किसके कारण धुएँ से आँखों में जलन पैदा होती है?

(अ) SO_2, (ब) NO,

(क) PAN, (ड) O_3।

34. PAN है एक प्रमुख –

(अ) मृदा प्रदूषक, (ब) जल प्रदूषक,

(क) वायु प्रदूषक, (ड) ध्वनि प्रदूषिक।

35. किसके प्रति लाइकेन सर्वाधिक संवेदनशील होता है?

(अ) SO_2, (ब) O_2,

(क) NO_2, (ड) CO_2.

36. पत्थर कोढ़ (Stone leprosy) का मुख्य कारण होता है–

(अ) अम्ल वर्षा, (ब) प्रकाश रासायनिक धुन्ध,

(क) कार्बन डाइ–ऑक्साइड, (ड) ऑक्सीकर जीवाणु।

37. अम्ल वर्षा के संकेतक का कार्य करते हैं–

(अ) हरी शैवाल, (ब) फर्न तथा साइकस,

(क) लाइकेन, (ड) नीम।

38. नॉक–नी सिण्ड्रोम का प्रमुख कारण होता है–

(अ) पारा प्रदूषण, (ब) सीसा प्रदूषण,

(क) फ्लुओरीन प्रदूषण, (ड) कार्बन मोनोऑक्साइड प्रदूषण।

39. वायुमण्डल का वह क्षेत्र जो पृथ्वी की सतह के करीब होता है–

(अ) स्ट्रेटोस्फियर, (ब) मीसोस्फियर,

(क) आयनोस्फियर, (ड) ट्रोपोस्फियर।

40. ध्वनि की तीव्रता मापने की इकाई है–

(अ) डेसीमल, (ब) डेसीबल,

(क) वाट, (ड) इनमें से कोई नहीं।

टिप्पणी

41. शोर प्रदूषण कितनी डेसीबल ध्वनि से होता है?

(अ) 50–60, (ब) 60–70,

(क) 80–90, (ड) 20–30।

3.21 नगरीकरण तथा मानव जनसंख्या (Urbanization and Human Population)

परिचय (Introduction)

'नगरीकरण' शब्द का निर्माण नगर से हुआ है। नगरीकरण उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिसके माध्यम से नगरों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त, नगरीकरण का अर्थ लोगों के द्वारा नगर की सभ्यता को स्वीकारना भी होता है। लगभग सभी देशों में गाँवों से नगरों की ओर जनसंख्या का प्रवसन (Migration) निरन्तर होता रहता है। सामान्यतया प्रवसन छोटी प्रशासनिक इकाई से बड़ी प्रशासनिक इकाई की तरफ होता है; उदाहरणार्थ गाँव से कस्बों, कस्बों से तहसील मुख्यालय, तहसील मुख्यालय से जिला मुख्यालय तथा जिला मुख्यालय से महानगरों की ओर होता है। प्रवसन या तो विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों से होता हुआ महानगरों में होता है अथवा एक ही बार में गाँव से महानगरों में होता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रवसन के लिए कितनी दूरी तय करनी है। यह तथ्य भी विचारणीय है कि प्रवसन की प्रवृत्ति सामान्यतया एकतरफा होती है। गाँवों से शहरों की तरफ तो अधिकांशतया प्रवसन होता है परन्तु शहरों से गाँवों की ओर प्रवसन बहुत कम देखा जाता है।

थॉम्पसन तथा **लुइस** (Thompson and Lewis) के शब्दों में, 'Urbanization is the movement of people from communities concerned chiefly with agriculture to other communities, generally larger, whose activities are primarily centred in government, trade, manufacture and allied interest..

अर्थात् नगरीकरण सम्बन्धित समुदायों से लोगों का गतिशील होना है जो मुख्यतया कृषि से अन्य समुदायों में होता है, जो सामान्यतया वृहत् होते हैं तथा जिनकी गतिविधियाँ मुख्यतया सरकार, व्यापार, उत्पादन तथा वन्य क्षेत्रों में केन्द्रित होती हैं। इसी प्रकार इटली के भूगोलवेत्ता **विडाल डी ला ब्लाश** (Vidal de la Blache) के अनुसार, "A city is a social organisation of much greater scope, it is the expression of a stage of civilisation which certain localities have not achieved and which they may perhaps never themselves attain."

अर्थात् नगर एक विस्तृत कार्यक्षेत्र वाला सामाजिक संगठन है जो सभ्यता के एक स्तर को प्रदर्शित करता है जिसे अन्य क्षेत्र प्राप्त नहीं कर पाये हैं और सम्भवतया प्राप्त भी नहीं कर पायेंगे।

टिप्पणी

इस प्रकार नगर किसी भी देश के निवास का केन्द्र बिन्दु होता है। गाँवों की ओर सभ्यता का प्रसारण नगरों से ही होता है। वास्तव में साहित्य, संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, फैशन आदि का विकास नगरों से ही होता है। ग्रामीण अंचलों के निवासी अधिकतर नगरीय संस्कृति का अनुकरण करते हैं परन्तु इस अनुकरण में समयान्तराल होता है और जब तक ग्रामीण क्षेत्र नगरीय संस्कृति का अनुकरण करते हैं तब तक नगरीय संस्कृति में पुनः परिवर्तन हो जाता है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल अन्तरिम जनसंख्या 1,210,193,422 है जिसमें 377,105,760 लोग नगरों में रहते हैं अर्थात् कुल आबादी का 31.16 प्रतिशत लोग नगरों में रह रहे हैं। सन् 1951 में 17.30 प्रतिशत लोग ही नगरों में रहते थे। इस प्रकार विगत 50 वर्षों में नगरीय जनसंख्या में 10.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारत में कुल 1827 नगर थे तथा नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 10.84 था जबकि 2011 में नगरों की संख्या बढ़कर 3,800 हो गयी तथा नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 31.16 हो गया।

सारणी क्र. 3.12: Urbanization in Different Provinces (2011)

States/Union Territories	Total Population	Urban Population	Percentage
Uttar Pradesh	199,581,520	34,539,582	17.30
Maharashtra	112,372,972	41,100,980	36.5
Bihar	103,804,637	8,681,800	8.3
West Bengal	91,347,736	22,427,251	24.5
Andhra Pradesh	84,665,533	20,808,940	24.5
Madhya Pradesh	72,597,565	15,967,145	21.9
Tamil Nadu	72,138,958	27,483,998	38.0
Rajasthan	68,621,012	13,214,375	19.2
Karnataka	61,130,704	17,961,529	39.3
Gujarat	60,383,628	18,930,250	31.3
Odisha	41,947,358	5,517,238	13.1
Kerala	33,387,677	8,266,925	24.7
Jharkhand	32,966,238	5,993,741	18.1
Assam	31,169,272	3,439,240	11.0
Punjab	27,704,236	8,262,511	29.8
Chhattisgarh	25,540,196	4,185,747	16.3
Haryana	25,353,081	6,115,304	24.1
Jammu and Kashmir	12,548,926	2,516,638	20.0
Uttarakhand	10,116,752	2,179,074	21.5
Himachal Pradesh	6,856,509	595,581	8.6
Tripura	3,671,032	545,750	14.8
Meghalaya	2,964,007	454,111	15.3

टिप्पणी

Manipur	2,721,756	575,968	21.1
Nagaland	1,980,602	342,787	17.3
Goa	1,457,723	670,577	46.0
Arunachal Pradesh	1,382,611	227,881	16.4
Mizoram	1,091,014	441,006	40.4
Sikkim	607,688	59,870	9.8
Delhi	16,753,235	12,905,780	77.1
Puducherry	1,244,464	648,619	52.1
Chandigarh	1,054,686	808,515	76.6
Andaman and Nicobar Islands	379,944	116,198	30.5
Dadra and Nagar Haveli	342,853	50,463	14.7
Daman and Diu	242,911	57,348	23.6
Lakshadweep	64,429	26,967	41.0
India	**1,210,854,977**	**377,105,760**	**31.16**

वर्तमान समय में देश में 53 ऐसे नगर हैं जिनकी जनसंख्या दस लाख से अधिक है। इसमें मुम्बई प्रथम स्थान पर तथा कोटा तिरेपनवें स्थान पर है। नगरों की जनसंख्या में 70 प्रतिशत की वृद्धि प्रजननीय परिवर्तनों (Reproductive changes) के कारण होती है जो कि एक प्रकार की प्राकृतिक वृद्धि होती है तथा लगभग 30 प्रतिशत की वृद्धि गाँवों से नगर की ओर प्रवसन (Migration) के परिणामस्वरूप होती है।

सारणी क्र. 3.13: Urban Areas/Cities with a Population Exceeding one Million (2011)

Place in 2011	Urban Area/City	Population (2011)
1	Mumbai	18,414,288
2	Delhi	16,314,838
3	Kolkata	14,112,536
4	Chennai	8,696,010
5	Bangalore	8,499,399
6	Hyderabad	7,749,334
7	Ahmedabad	6,240,201
8	Pune	5,049,968
9	Surat	4,585,367
10	Jaipur	3,073,350
11	Kanpur	2,920,067
12	Lucknow	2,901,474
13	Nagpur	2,583,911
14	Ghaziabad	2,358,525
15	Indore	2,210,447
16	Coimbatore	2,151,466

टिप्पणी

17	Kochi	2,117,990
18	Patna	2,046,652
19	Kozhikode	2,030,519
20	Bhopal	1,883,381
21	Thrissur	1,854,783
22	Vadodara	1,817,191
23	Agra	1,746,467
24	Visakhapatnam	1,730,320
25	Malappuram	1,698,645
26	Thiruvananthapuram	1,687,406
27	Kannur	1,642,892
28	Ludhiana	1,613,878
29	Nashik	1,562,769
30	Vijayawada	1,491,202
31	Madhurai	1,462,420
32	Varanasi	1,435,113
33	Meerut	1,424,908
34	Rajkot	1,390,933
35	Faridabad	1,404,653
36	Jamshedpur	1,337,131
37	Srinagar	1,273,312
38	Jabalpur	1,267,564
39	Asansol	1,243,008
40	Prayagraj	1,216,719
41	Dhanbad	1,195,298
42	Vasai-Virar	1,221,233
43	Aurangabad	1,189,376
44	Amritsar	1,183,705
45	Jodhpur	1,137,815
46	Ranchi	1,126,741
47	Raipur	1,122,555
48	Kollam	1,110,005
49	Gwalior	1,101,981
50	Durg-Bhilainagar	1,064,077
51	Chandigarh	1,025,682
52	Tiruchirappalli	1,021,717
53	Kota	1,001,365

टिप्पणी

नगरीकरण के कारण (Factors Influencing Urbanization)

नगरीकरण के अनेक कारण हैं जिन्हें दो समूहों में बाँटा जा सकता है–

(1) निष्कासन प्रभाव (Push Factors) – इसके अन्तर्गत धार्मिक भेदभाव, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के अवसरों का अभाव, जाति प्रथा अनार्थिक जोत आदि कारक आते हैं। ये ऐसे कारक हैं जो लोगों को गाँवों से शहरों की ओर जाने को विवश करते हैं।

(2) आकर्षण प्रभाव (Pull Factors) – इसके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, रहन–सहन, रोजगार के अवसर, यातायात सुविधाएँ जैसे कारक आते हैं जो लोगों को गाँवों से नगरों की ओर जाने को प्रेरित करते हैं।

औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण अत्यन्त घनिष्टता के साथ एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं। जब किसी देश का औद्योगिकीकरण होता है तब नगरों का भी विकास होता है। **किंग्सले डेविस (Kingsley Davis)** ने अपनी पुस्तक, **'भारत और पाकिस्तान की जनसंख्या'** (The Population of India and Pakistan) में यह मत व्यक्त किया है नगरों में नवागन्तुकों की संख्या में वृद्धि औद्योगिक विकास से अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। जिस स्थान पर भी औद्योगिकीकरण होता है वहाँ पर यातायात के साधन व्यापार तथा अन्य सम्बन्धित विविध गतिविधियों का प्रारम्भ हो जाता है जो अन्ततः श्रमिकों की संख्या को प्रभावित करते हैं। नगरों का विकास केवल उद्योग–धन्धों से ही सम्बन्धित नहीं होता, बल्कि यह व्यापार तथा वाणिज्य पर भी निर्भर करता है।

नगरीकरण के प्रभाव (Effect of Urbanization)

नगरीकरण से उत्पन्न प्रभावों के दो पक्ष हैं–लाभ तथा हानि। नगरीकरण से एक लाभ यह है कि गाँवों में भूमि के अपखण्डन तथा उप–विभाजन में कमी आती है जिससे कृषि क्षेत्र में सुधार करना आसान हो जाता है। रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा के अतिरिक्त अनेक प्रकार के सामाजिक लाभ नगरीकरण से ही सम्बन्धित हैं परन्तु इसके कई दुष्प्रभाव भी हैं जो मानव के लिए अत्यन्त गम्भीर समस्या उत्पन्न करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(1) अतिसंकुलता (Overcrowdling) – सन् 1901 में भारत का जनसंख्या घनत्व 77 वर्ग प्रति किमी था अर्थात् प्रति व्यक्ति 3.2 एकड़ भूमि उपलब्ध थी 1951 में जनसंख्या घनत्व 117 प्रति वर्ग किमी हो गया और भूमि की उपलब्धता लगभग 2 एकड़ प्रति व्यक्ति रह गयी। 2011 में भारत का जनसंख्या घनत्व 382 प्रति वर्ग किमी हो गया अर्थात् प्रति व्यक्ति केवल तीन–चौथाई एकड़ भूमि उपलब्ध रह गयी। इस प्रकार जनसंख्या में जिस तिव्रता के साथ वृद्धि हुई उसी तीव्रता के साथ नगरीय जनसंख्या में भी वृद्धि होती गयी। जनसंख्या वृद्धि का असर गाँवों पर कम प्रभावी रहा क्योंकि गाँवों से नगरों को प्रवसन करने वालों की संख्या में भी वृद्धि होती रही। अतः नगरों में अतिसंकुलता की समस्या उत्पन्न हुई। आवासीय सुविधाओं की अपर्याप्तता निम्न कोटि के मकानों के निर्माण को प्रोत्साहित करती है तथा जलप्रदाय एवं अपशिष्ट समापन

सुविधाओं की कमी न पूरी होने वाली आवश्यकताओं में वृद्धि करती है। अतिसंकुलता सहवास को भी प्रभावित करती है जिसका परिणाम कई यौन रोगों की उत्पत्ति में होता है।

(2) जलवायुवीय परिवर्तन (Climate Change) – नगरीय जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि न केवल वायु प्रदूषण में ही वृद्धि कर रही है अपितु जलवायु को भी परिवर्तित कर रही है। नगरों में तीव्रता से बढ़ रही ऊर्ध्वाधर सतहों (Vertical surfaces) द्वारा अवशोषित होने वाली सौर विकिरणों एवं मशीनों द्वारा उत्पन्न ऊष्मा के कारण नगरों के वायु तापमान में 1-3° फारेनहाइट की वृद्धि एवं आर्द्रता में 6 प्रतिशत की कमी सम्भावित है। इसके अतिरिक्त कणिकीय वायु प्रदूषण के कारण धुँधलेपन (Cloudiness) में 10 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी के कारण सूर्य के प्रकाश में भी 15 प्रतिशत की कमी होने की सम्भावना है।

(3) प्रदूषण (Pollution) – नगरीकरण एवं नगरों में बढ़ रही जनसंख्या से जहाँ एक ओर भोजन एवं साधनों की कमी, वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण की समस्या है वहीं दूसरी ओर ठोस अपशिष्टों के निपटान की भी समस्या है। इन ठोस अपशिष्टों की मात्रा भी दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है। जल प्रदाय (Water supply) की माँग बढ़ने के साथ अपशिष्ट एवं गन्दे जल के निपटान की अपर्याप्त व्यवस्था के कारण संचारी एवं संक्रामक रोगों का प्रसार बढ़ रहा है। केवल औद्योगिकीकरण ही अकेले सभी प्रकार के प्रदूषणों की उत्पत्ति हेतु पर्याप्त है।

(4) स्वास्थ्य (Health) – नगरों में जल, वायु तथा भूमि प्रदूषण की अभिवृद्धि से मानव स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न हो गया है। औषधि विज्ञान में हुई प्रगति के बावजूद व्याधियों में अभिवृद्धि हुई है। नगरीय क्षेत्रों में शोरगुल तथा भीड़भाड के कारण भी शारीरिक एवं मानसिक विकारों में अभिवृद्धि हुई है। मकानों का आकार छोटा होना, अपर्याप्त संवातन (Ventilation) तथा स्थानाभाव जैसी समस्याएँ भी बहुत–सी व्याधियों को जन्म देती हैं।

आवासीय समस्या, आर्थिक तंगी जैसी समस्याओं के कारण वृहत नगरों में मलिनावासों (Slums) की उत्पत्ति हुई। भोजन एवं रोजगार की तलाश में गाँवों से हजारों की संख्या में गरीब लोग शहरों की तरफ प्रवसन करते हैं परन्तु शहरों में उन्हें आवास उपलब्ध नहीं होता। इसकी परिणति मलिनावासों के रूप में होती है। देश के 26 राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के 607 शहरों में 2001 की जनगणनानुसार लगभग 4 करोड़ लोग मलिनावासों में रह रहें हैं जो कुल नगरीय जनसंख्या का 14 प्रतिशत है। वृहत् मुम्बई में कुल जनसंख्या का 48.88 प्रतिशत भाग मलिनावासी है। मलिनावासों में रहने वाले लोग वातावरणीय, सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक एवं शिक्षा सम्बन्धी अनेकानेक प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं जिसकी परिणति उनके खराब स्वास्थ्य में होती है। वे न केवल कुपोषण तथा भुखमरी के शिकार होते हैं अपितु नाना प्रकार की व्याधियों से भी ग्रसित रहते हैं।

नगरीय समस्या के समाधान (Solutions of Urban Problems)

नगरीकरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए निम्न उपाय किये जाने चाहिए–

टिप्पणी

(1) उद्योगों का विकेन्द्रीकरण (Decentralization of Industries) – नये उद्योगों को शहरों से दूर स्थापित करके नगरों पर पड़ने वाले जनसंख्या दबाव को कम किया जा सकता है।

(2) श्रमिकों के लिए उपयुक्त बस्तियों की स्थापना (Establishment of Suitable Colonies for Labourers) – श्रमिकों के लिए शहर से बाहर स्वच्छ एवं स्वास्थ्यपूर्ण स्थान पर बस्तियाँ निर्मित की जानी चाहिए।

(3) नगरों का योजनाबद्ध विकास (Planned Development of Urban Areas) – नगरों के योजनाबद्ध विकास द्वारा अनेक प्रकार की समस्याओं से बचा जा सकता है। योजनान्तर्गत शहर के बाहर चौड़ी सड़कों का निर्माण करके खुले एवं कम मंजिलों वाले मकान का निर्माण कर आवासीय समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। ऐसे स्थानों पर उद्यानों, खेलकूद तथा मनोरंजन स्थलों के निर्माण को प्राथमिकता देनी चाहिए। स्वच्छ जल आपूर्ति के अतिरिक्त गन्दे, दूषित जल के निकास एवं ठोस अपशिष्टों के निपटान की भी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) जनता में जीवन एवं स्वास्थ्य के प्रति पर्याप्त जागरूकता लाने के लिए नियमित शैक्षणिक कार्यक्रम संचालित करने चाहिए।

3.22 मानव जनसंख्या (Human Population)

जीवों के वंशवृक्ष पर सर्वोच्च स्थान मानव का ही है। अपने सोचने, समझने तथा कार्य करने की अपूर्व क्षमता के कारण वह विकास के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया है। विकास के साथ–साथ मानव जनसंख्या में भी उतनी ही तीव्र दर से वृद्धि हुई है। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य के लगभग विश्व की जनसंख्या आधा अरब थी उन्नीसवीं शताब्दी तक विश्व जनसंख्या एक बिलियन हुई, इसके पश्चात् विश्व जनसंख्या दो बिलियन होने में एक शताब्दी से अधिक समय लगा, तीन बिलियन होने में आधे से कम शताब्दी का समय लगा। इसके पश्चात् एक बिलियन जनसंख्या में वृद्धि में लगभग तेरह वर्षों से कम समय लगा है। (सारणी 3.14) जनसंख्याशास्त्रियों के अनुमान जब 2022 में विश्व जनसंख्या 8 बिलियन हो जायेगी तब एक बिलियन जनसंख्या वृद्धि में लगे समय में वृद्धि हो जायेगी। जब इस शताब्दी के अन्त तक जनसंख्या लगभग 10 बिलियन हो जायेगी तब जनसंख्या वृद्धि रुक जायेगी (चित्र क्र. 3.14 & 3.15)।

टिप्पणी

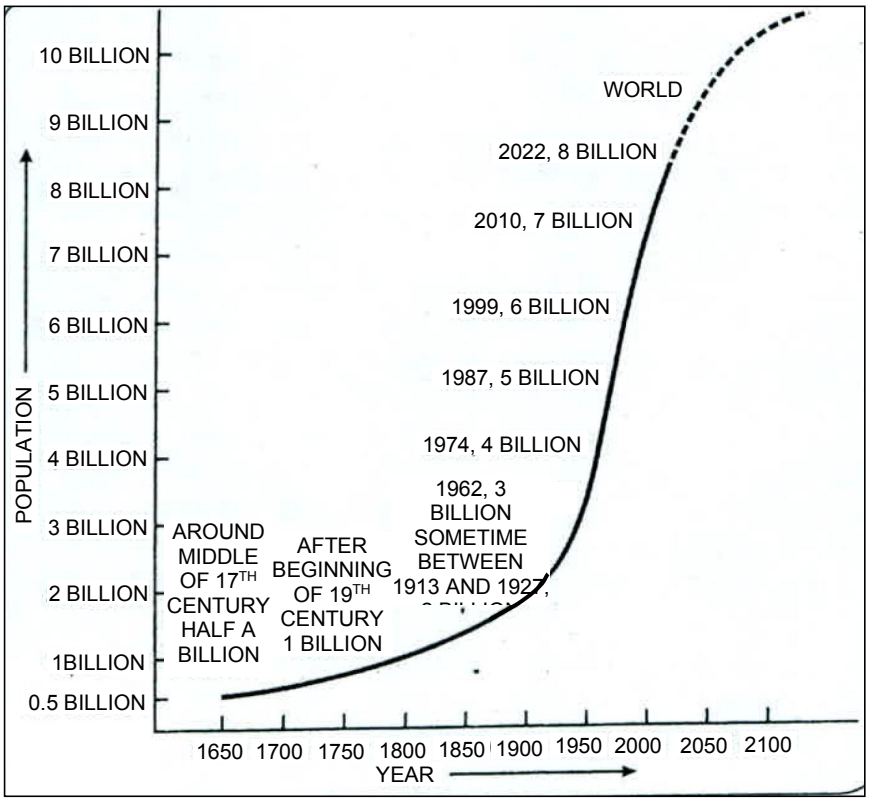

चित्र क्र. 3.14: World population in billion

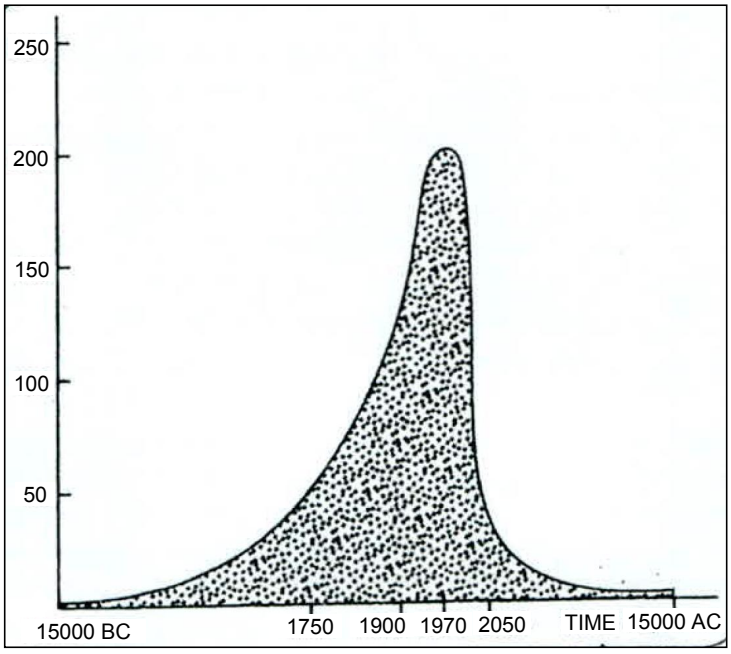

चित्र क्र. 3.15: Long-term world population growth rate

टिप्पणी

सारणी क्र. 3.14: Increase in World Population

World Population	Year
Half billion	Near the middle of Seventeenth Century
One billion	Beginning of 19th Century
Tow billion	1918-1927
Three billion	1960
Four billion	1974
Five billion	1987
Six billion	1999
Seven billion	2010
Eight billion	2022

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। 2001 में भारत की कुल जनसंख्या 1,027,015,247 थी। भारत का भू–क्षेत्र विश्व के भू–क्षेत्र का लगभग 2.4 प्रतिशत है जबकि भारत की जनसंख्या विश्व जनसंख्या की लगभग 16.7 प्रतिशत है। भारत की राष्ट्रीय आय विश्व की कुल आय का केवल 1.2 प्रतिशत है। भारत की जनसंख्या वृद्धि एवं जनसंख्या घनत्व में 1901–2011 तक हुई वृद्धि को सारणी 3.15 में दर्शाया गया है।

सारणी क्र. 3.15: Growth of India Population (1901-2011)

Year	Total population (In crores)	Decade Growth in Population (In crores)	Population (in percentage)	Average Annual Growth Rate	Density of (Per square km)
1901	23.84	0.24	–	0.24	77
1911	25.21	1.37	5.75	0.58	82
1921	25.13	–0.08	–0.31	–0.04	81
(1901-21)	–	1.53	–	0.19	–
1931	27.90	2.77	11.0	1.04	90
1941	31.87	3.97	14.22	1.33	103
1951	36.11	4.24	13.31	1.25	117
(1921-51)	–	10.98	–	1.22	–
1961	43.92	7.81	21.51	1.96	142
1971	54.82	10.90	24.80	2.20	177
1981	68.33	13.51	24.66	2.22	216
(1951-81)	–	32.22	–	2.14	–
1991	84.63	16.30	23.85	2.14	267
2001	102.70	18.06	21.34	1.93	324
2011	121.08	18.38	17.83	1.76	382

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि मानव जनसंख्या जिस तीव्रता से बढ़ रही है वह दिन दूर नहीं है जब मानव की जनसंख्या पृथ्वी की धारण क्षमता से अधिक हो जायेगी। जैसे–जैसे मानव विकास के नये–नये आयामों पर पहुँचता जा रहा है उसेकी जनसंख्या भी उसी अनुसार बढ़ती जा रही है। जनसंख्या विस्फोट (Population explosion) का कारण जन्म–दर वृद्धि नहीं है अपितु मृत्यु–दर में लगातार होने वाली कमी है।

सारणी क्र. 3.16: Natality and Mortality Rate in India

Duration	Natality Rate (Per thousand)	Mortality Rate (Per thousand)	Natural Growth Rate of Population
1901-11	49.2	42.6	6.6
1911-21	48.1	47.2	0.9
1921-31	46.6	36.5	10.1
1931-41	45.2	31.2	14.0
1941-51	39.9	27.4	12.5
1951-61	40.9	22.8	18.1
1961-71	40.0	17.8	22.2
1971-81	37.9	15.4	22.5
1981-91	31.5	10.4	21.1
1991-98	28.0	9.5	18.5
1999	26.1	8.7	17.4
2001	25.0	9.0	16.0

मानव जनसंख्या का वातावरण पर प्रभाव
(Effect of Human Population on Environment)

मानव ने जाने–अनजाने अपने वातावरण पर अत्यधिक सीमा तक नियन्त्रण स्थापित कर लिया है तथा अपने समुदाय (Community) एवं पारिस्थितिक तन्त्र (Ecosystem) को रूपान्तरित भी किया है। हालांकि यह नियन्त्रण अपूर्ण है और आज भी मानव को उन दशाओं के प्रति अपने आपको अनुकूलित करना पड़ता है जिन्हें बदलना मानव के वश में नहीं है। इस प्रकार मानव की जनसंख्या में हुई अपार वृद्धि ने वातावरण को अत्यधिक प्रभावित किया है जिसके दुष्परिणाम मानव के भविष्य के लिए एक चिन्तनीय विषय है। मानव जनसंख्या के कारण वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का बहुत कुछ वर्णन पूर्व अध्यायों में किया गया है। यहाँ पर उन प्रभावों का वर्णन संक्षेप में किया जा रहा है–

(1) जलवायु पर प्रभाव (Effect on Climate) – औद्योगिकीकरण, वन विनाशन, शहरीकरण जैसे क्रियाकलापों ने वातावरण के विभिन्न अजैविक कारकों को प्रभावित किया है। इसके परिणामस्वरूप मौसमी चक्र में भी बदलाव आया है। वायुमण्डलीय तापमान में वृद्धि हुई है।

टिप्पणी

(2) प्रदूषण (Pollution) – तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण ने वायु, मृदा एवं जल–प्रदूषण की समस्या उत्पन्न की है। यातायात के साधनों में हुई वृद्धि ने न केवल वायु प्रदूषण को बढ़ावा दिया है अपितु शोर प्रदूषण जैसी समस्या भी उत्पन्न की है। वातावरण में वाहनों द्वारा मुक्त की जा रही कार्बन मोनोऑक्साइड गैस के घातक परिणाम जन्तुओं एवं पादपों पर प्रकट हो रहे हैं। कार्बन डाइऑक्साइड एवं क्लोरोफ्लोरोकार्बन जैसी गैसों की सान्द्रता में वृद्धि के परिणाम ग्रीन हाउस प्रभाव एवं आयोज ह्रास के रूप में सामने आ रहे हैं जिनका प्रभाव सभी जीवों पर सांघातिक होता है।

जनसंख्या वृद्धि के साथ कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं पादप सुरक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से रासायनिक प्रदूषण में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। अवशेषी विषाक्तता के परिणाम जैविक आवर्धन के रूप में सामने आ रहे हैं तथा ऐसे कीटनाशकों को प्रतिबन्धित करने के पश्चात् भी वातावरण से उनका सफाया करना तुरन्त सम्भव नहीं है।

(3) प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास (Depletion In Natural Resources) – मानव हस्तक्षेप से पूर्व धरती के जंगल और दूसरे भूमि से सम्बन्धित संसाधनों की उत्पादन क्षमता 150 बि. टन थी। मानव ने इसमें से लगभग 12 प्रतिशत नष्ट कर दिया है तथा 27 प्रतिशत का मानव सीधा उपयोग करता है। इस प्रकार केवल एक प्रजाति मानव ही लगभग 40 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग कर रही है। वस्तुतः इस 40 प्रतिशत तक मानव की सीधी पहुँच थी। खनन, वन विनाशन आदि क्रियाकलापों ने मानव के भविष्य के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है।

इसी प्रकार मानव ने जलीय सम्पदा का भी इतना अधिक दोहन किया है कि आज मछली, झींगा, शुक्तियों जैसे जलीय जन्तु संकटावस्था में पहुँच गये हैं।

(4) मानव स्वास्थ्य (Human Health) – अत्यधिक जनसंख्या के कारण विश्व के अनेक देशों में कुपोषण (Malnutrition) जैसे परिस्थितियों का सामना मानव को करना पड़ रहा है। ऐसे स्थानों पर विभिन्न प्रकार की व्याधियों के कारण मृत्युदर अधिक है। रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाने के कारण कुपोषित तथा अल्पपोषित बच्चों में सूखा (Rickets), रक्तअल्पता (Anaemia), शुष्कअक्षिपाक (Xerophthalmia) आदि व्याधियों का पाया जाना स्वाभाविक बात है।

विकासशील एवं विकसित देशों में बढ़ते प्रदूषण के परिणामस्वरूप आम जनमानस विभिन्न प्रकार के विकारों से ग्रसित हो रहा है। भारत जैसे देश में अत्यधिक जनसंख्या, घनी आबादी, मल जल के निकास की अपर्याप्त व्यवस्था, ठोस अपशिष्टों के समापन व्यवस्थाओं में कमी आदि के कारण मानव अनेक प्रकार के परजीवी संक्रमणों एवं विभिन्न प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है।

विकिरण प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, शोर प्रदूषण, धातु प्रदूषण विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों के लिए एक समस्या के रूप में सामने हैं जिनके दूरगामी प्रभावों के कारण त्वरित समाधान वांछित है।

(5) उत्पादकता में कमी (Loss of Productivity) – मृदा की गुणवत्ता में प्रदूषण के कारण आ रही गिरावट के परिणामस्वरूप उत्पादकता में कमी हो रही है

जिसे पूरा करने के लिए मानव विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बिना सोचे–समझे करता चला जा रहा है। इसके दूरगामी परिणाम भी हानिकारक होंगे।

टिप्पणी

समाधान (Solution)

जनसंख्या समाधान के निम्न उपाय किये जाने चाहिए–

1. अधिक उम्र में विवाह, ब्रह्मचर्य का पालन तथा परिवार नियोजन द्वारा।
2. विभिन्न संसाधनों; जैसे– वन, खनिज, पशु, जल, मृदा आदि का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयोग विकास एवं संरक्षण द्वारा।
3. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के निवासियों के जीवन–स्तर में वृद्धि द्वारा।
4. शिक्षा का प्रसार व्यापक स्तर पर किया जाना चाहिए।
5. पर्यावरण सुरक्षा हेतु जन–जागरूकता अभियान चलाना जाना चाहिए।

3.23 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1. (ब)
2. (ब)
3. (अ)
4. (ड)
5. (क)
6. (अ)
7. (ड)
8. (ड)
9. (ब)
10. (अ)
11. (ब)
12. (ब)
13. (ड)
14. (अ)
15. (अ)
16. (ड)
17. (अ)
18. (क)
19. (ब)
20. (अ)
21. (क)
22. (ड)
23. (ड)
24. (ड)
25. (ड)
26. (ब)
27. (अ)
28. (अ)
29. (ब)
30. (अ)
31. (ड)
32. (क)
33. (ब)
34. (क)
35. (अ)
36. (अ)
37. (क)
38. (क)
39. (ड)
40. (ब)
41. (क)

टिप्पणी

3.24 सारांश (Summary)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मध्य प्रदेश में तथा अन्य राज्यों में भी वन्य जीवों को संरक्षित करने के लिए शासन एवं स्थानीय स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं जो कारगर साबित हो रहे फिरभी बढ़ती जनसंख्या के कारण वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं जिनका संरक्षण करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हैं कि भारत में पक्षी स्तनधारी सरीसृप एवं अन्य जीवों की प्रजातियाँ धीरे–धीरे विलुप्त होती जा रही है। जिनका संरक्षण करना अनिवार्य हो गया है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पर्यावरणीय निम्नीकरण एवं प्रदूषण वर्तमान में औद्योगिकरण, जनसंख्या वृद्धि के कारण इसकी क्वालिटी को प्रभावित कर रहे है।

3.25 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **रेड डाटा बुक** : ऐसी किताब जिसमें विलुप्त प्राणियों या पेडपौधे एवं जीव–जन्तुओं का वर्णन हो।
- **टाइगर संरक्षण** : बाघों की संख्या में वृद्धि करना एवं उन्हें संरक्षण प्रदान करना।

3.26 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Question and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. भारतीय वन्य जीवन के महत्व पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
2. भारत के प्रमुख वन्य जन्तुओं के नाम लिखिए।
3. वन्य जीवन की विलुप्ति के कारणों को समझाइए।
4. जंगली जीवों के संरक्षण एवं महत्व पर टिप्पणी लिखिए।
5. मध्य प्रदेश में वन्य जीवन संरक्षण के प्रयासों का वर्णन कीजिए।
6. राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्यों में अन्तर लिखिए।
7. मध्य प्रदेश के राष्ट्रीय पार्क तथा अभयारण्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
8. मध्य प्रदेश के वन्य जीव अभयारण्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. वन्य जीवन संरक्षण से जुड़ी विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के बारे में लिखिए।
10. संकटग्रस्त जातियों की अवधारणा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
11. संकटग्रस्त जन्तुओं से क्या तात्पर्य है? संक्षेप में इन्हें वर्गीकृत कीजिए।

12. संकटापन्न प्रजातियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
13. संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण की विशिष्ट परियोजनाओं के नाम लिखिए।
14. संकटापन्न प्रजातियों के लिए विशिष्ट परियोजनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
15. राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड के चार प्रमुख कार्य बताइए।
16. निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए–
    (i) राष्ट्रीय उद्यान, (ii) अभयारण्य,
    (iii) संकटग्रस्त प्रजातियाँ।
17. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–
    (i) राष्ट्रीय उद्यान, (ii) अभयारण्य,
    (iii) जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्र, (iv) कान्हा राष्ट्रीय उद्यान।
18. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) गिर सिंह परियोजना, (ii) मगरमच्छ परियोजना,
    (iii) कस्तूरी मृग परियोजना, (iv) बाघ परियोजना,
    (v) वन्य जीवन (रक्षण) अधिनियम।
19. रेड डाटा बुक क्या है?
20. स्तनधारियों की संकटापन्न प्रजातियों के नाम लिखिए।
21. जीवों की विलुप्तता के कारण लिखिए।
22. प्रोजेक्ट टाइगर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
23. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:
    (अ) स्थानास्थ (In-situ) संरक्षण,
    (ब) बहिः स्थानास्थ (Ex-situ) संरक्षण,
    (स) बीज बैंक।
24. वातावरणीय निम्नीकरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
25. जल तथा वायु प्रदूषकों पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
26. किन्हीं दो वायु प्रदूषकों के विषय में लिखिए।
27. शोर क्या है? शोर के प्रदूषण एवं प्रभावों को समझाइए।
28. शोर प्रदूषण के प्रभावों एवं नियन्त्रण पर टिप्पणी लिखिए।
29. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–
    (i) वायु प्रदूषण,
    (ii) वायु प्रदूषण के कारण,
    (iii) जल प्रदूषण,
    (iv) जल प्रदूषण के कारण,

टिप्पणी

टिप्पणी

(v) मृदा प्रदूषण,

(vi) तापीय प्रदूषण,

(vii) तापीय प्रदूषण के प्रभाव,

(viii) शोर प्रदूषण।

30. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

(i) अम्ल वर्षा,

(ii) ओजोन पर्त की क्षीणता,

(iii) ओजोन छिद्र,

(iv) प्रकाश–रसायनी धुन्ध

(v) उत्प्रेरक संपरिवर्तक।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. वन्य जीवन संरक्षण पर एक निबन्ध लिखिए।
2. वन्य जीवन संरक्षण पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
3. वन्य जीवन क्या है? वन्य जीवन के संरक्षण की विधियों का वर्णन कीजिए।
4. मध्य प्रदेश से सम्बन्धित वन्य जीवन संरक्षण पर एक निबन्ध लिखिए।
5. वन्य जीवन संरक्षण के प्रबन्धन पर निबन्ध लिखिए।
6. वन्य जीवन से आप क्या समझते हैं? वन्य जीवन के महत्व पर प्रकाश डालिए।
7. वन्य जीवन से आप क्या समझते हैं? भारत में वन्य प्राणियों की विविधता पर कारण सहित प्रकाश डालिए।
8. भारत में वन्य जीवन के महत्व तथा विलुप्ति के कारणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
9. भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों में वन्य जीवन संरक्षण का वर्णन कीजिए।
10. अभयारण्य तथा राष्ट्रीय उद्यान में क्या अन्तर है? भारत के किन्हीं दो प्रदेशों के प्राणिजात का वर्णन कीजिए।
11. अभयारण्य तथा राष्ट्रीय उद्यान में क्या अन्तर है? भारत के पाँच राष्ट्रीय उद्यानों तथा उनके जन्तुओं के बारे में लिखिए।
12. पाँच राष्ट्रीय उद्यानों एवं पाँच अभयारण्यों के बारे में लिखिए।
13. भारत के किन्हीं पाँच राष्ट्रीय उद्यानों तथा मध्य प्रदेश के पाँच अभयारण्यों का वर्णन कीजिए।
14. विलुप्त होती प्रजातियों के संरक्षण हेतु दो प्रमुख परियोजनाओं का विवरण दीजिए।

15. संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण हेतु विभिन्न परियोजनाओं का विवरण दीजिए।
16. कस्तूरी मृग परियोजना पर एक लेख लिखिए।
17. मगरमच्छ परियोजना का वर्णन कीजिए।
18. भारतीय वन्य जीव मण्डल पर एक निबन्ध लिखिए।
19. वन्य जीवन के संरक्षण में भारतीय वन्य जीवन परिषद् की भूमिका का वर्णन कीजिए।
20. भारतीय वन्य जीवन मण्डल के संगठन एवं कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिए।
21. संकटापन्न प्रजातियाँ किसे कहते हैं? भारत की संकटापन्न प्रजातियों का वर्णन करें।
22. जैव विविधता के हाट स्पाट पर निबंध लिखिए।
23. जैव विलुप्तता के कारणों का वर्णन करें।
24. जैव विविधता के संरक्षण पर निबंध लिखिए।
25. वातावरणीय निम्नीकरण एवं प्रदूषण का विस्तृत वर्णन दीजिए।
26. प्रदूषण से आप क्या समझते हैं? वातावरणीय प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिए।
27. प्रदूषण से आप क्या समझते हैं? विभिन्न प्रकार के प्रदूषण का वर्णन करते हुए मनुष्य पर उसका प्रभाव समझाइए।
28. प्रदूषण क्या है? विभिन्न प्रदूषकों पर एक निबन्ध लिखिए।
29. वायु प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिए।
30. वायु प्रदूषण के प्रमुख कारणों एवं नियन्त्रण के उपायों का वर्णन कीजिए।
31. वायु प्रदूषण के कारणों एवं प्रभावों का वर्णन कीजिए।
32. जल प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिए।
33. जल प्रदूषण के कारणों, प्रभावों एवं नियन्त्रण के उपायों का वर्णन कीजिए।
34. जल प्रदूषण क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन करते हुए पारिस्थितिक प्रभाव को जल, जीवन एवं मनुष्य में भी बताइए।
35. ध्वनि प्रदूषण क्या है? ध्वनि प्रदूषण के स्रोत, प्रभाव तथा नियन्त्रण का वर्णन कीजिए।
36. जल प्रदूषण एवं शोर प्रदूषण पर निबन्ध लिखिए।
37. शोर क्या है? आम जन–जीवन पर होने वाले ध्वनि के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
38. मृदा प्रदूषण पर विस्तृत लेख लिखिए।
39. पर्यावरण के अपविकास तथा इसकी रोकथाम का वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

टिप्पणी

40. प्रदूषण नियन्त्रण पर लेख लिखिए।
41. नगरीकरण पर एक निबन्ध लिखिए।
42. नगरीकरण से आप क्या समझते हैं? नगरीकरण के लाभ एवं हानियों पर प्रकाश डालिए।
43. नगरीकरण से आप क्या समझते हैं? नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं की व्याख्या कीजिए।
44. शहरीकरण क्या है? शहरीकरण के कारणों एवं प्रभावों का वर्णन कीजिए।
45. नगरीकरण एवं मानव जनसंख्या के पर्यावरण पर प्रभावों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
46. नगरीकरण क्या है? मानव जनसंख्या का वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

3.27 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Fundamental of Ecology by – E.P. Odum & G.W. Barret.
2. Ecology and Applied Zoology by – S.M. Saxena & Mukesh Dixit.
3. Unified text book Zoology by – J.K. Awasthi.
4. Ecology and Applied Zoology by – Shivesh Pratap Singh & H.N. Baijal.
5. A Text book of Applied Zoology of Apiculture, Sericulture, and their Pest control by – Pradip V. Jabde.
6. Aquaculture by – N. Arumugam.
7. Wild Life in Central India by – S.K. Tiwari.
8. Fish and Fisheries of India by – Jhingaran.
9. Fresh water Aquaculture by – R.S. Rath.
10. Ecology and Environmental Biology by – Pranav Kumar.
11. Ecology and Applied Zoology by – Himalaya Publishing House.

इकाई 4 जल कृषि (Aquaculture)

टिप्पणी

संरचना (Structure)

4.0 परिचय

4.1 उद्देश्य

4.2 जल संवर्धन का इतिहास

- 4.2.1 जल संवर्धन की सम्भावनायें
- 4.2.2 उच्च जल संवर्धन उत्पादकता हेतु नियोजन
- 4.2.3 वर्तमान रणनीति एवं भविष्य हेतु योजनाएँ

4.3 झींगा संवर्धन : स्वच्छ जलीय झींगा संवर्धन, झींगा मत्स्यन, संरक्षण एवं प्रक्रिया

- 4.3.1 व्यावसायिक महत्व के झींगे

4.4 स्वच्छ जलीय झींगे का संवर्धन

4.5 संवर्धन प्रौद्योगिकी

- 4.5.1 झींगा संवर्धन हेतु तालाब प्रबन्धन

4.6 झींगा मत्स्यन

- 4.6.1 जलयान
- 4.6.2 मत्स्य संभार

4.7 झींगों का परिरक्षण तथा प्रसंस्करण

4.8 झींगों के परजीवी तथा बीमारियाँ

4.9 मोती संवर्धन तथा मोती उद्योग

- 4.9.1 मोती उत्पादक स्थल एवं जन्तु

4.10 मोती उत्पादक जन्तु

4.11 मोती निर्माण

4.12 मोती संवर्धन

- 4.12.1 मोती के प्रकार
- 4.12.2 मोतियों का प्रसंस्करण एवं कृत्रिम रंजन
- 4.12.3 मोती शुक्तियों के दुश्मन जन्तु

4.13 मोती उद्योग

4.14 संवर्धित प्रजातियाँ

4.15 राना टिग्रीना की जैविकी

4.16 मेंढ़कों का संवर्धन

4.17 मेंढ़कों का अन्तर्कक्षीय संवर्धन

4.18 प्रजनन एवं चयन

4.19 मिश्रित संवर्धन

- 4.19.1 बीमारियाँ
- 4.19.2 उपयोग (Utilization or Economic Importance) (आर्थिक महत्व)

4.20 संवर्धन योग्य मछलियों के विशिष्ट लक्षण

4.21 सफरी (कार्प) पालन

- 4.21.1 अन्य मछलियों पर कार्प मछलियों की उपरिता
- 4.21.2 कृत्रिम निषेचन की प्रक्रिया

4.22 पोनों को रोपणशालाओं में स्थानान्तरण करने हेतु सावधानियाँ

4.23 जलशाला निर्माण हेतु आवश्यक सामग्री

- 4.23.1 जलशाला टैंक
- 4.23.2 सजावटी सामान

4.23.3 जलशाला स्थापन
4.23.4 जलीय पौधे
4.23.5 जलशाला की मछलियाँ
4.24 जलशाला प्रबन्धन
4.25 जलशाला मछलियों का प्रजनन
4.25.1 अण्डे तथा बच्चों की देखभाल
4.26 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.27 सारांश
4.28 मुख्य शब्दावली
4.29 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.30 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

4.0 परिचय (Introduction)

Aquaculture: (जल कृषि) – यह अंग्रजी के दो शब्दों Aqua = Water (जल) तथा Culture = To production (खेती करना = उत्पादन करना) इसे Aqua farming भी कहते हैं। भारत एवं अन्य प्रगतिशील देश तथा बड़ी जनसंख्या वाले राष्ट्रों की आहार, प्रोटीन, खाद्य पदार्थों की पूर्ति में अत्यधित सहायक सिद्ध हो रहा है। क्योंकि भारत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में कृषि के अन्य आयामों की तरह जल कृषि भी सहायक या मद्दगार साबित हो रही है।

विभिन्न प्रकार के खाद्यान्नों के उत्पादन के लिए वैज्ञानिकों ने तकनीकों की सहायता से क्रान्ति ला दी है। जैसे– ''हरितक्रांति'' एवं नीलीक्रांति आदि। इसी दिशा में देश में उपलब्ध जल संसाधनों से अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करके नीली क्रान्ति (Blue Revolution) को सफल बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

किसी भी देश की उन्नति, समृद्धि तथा खुशहाली उसके उत्पादन पर निर्भर करती है। उत्पादन में खाद्य पदार्थों की आत्मनिर्भरता का प्रमुख स्थान होता है। सन 1947 में 33 करोड़ की जनसंख्या वाले भारत देश में कुल 50 मिलियन टन खाद्यान्नों की पैदावार होती थी और हमें विदेशों से खाद्यान्न मंगवाना पड़ता था। आज 1.4 बिलियन जनसंख्या वाले भारतवर्ष में लगभग 203 मिलियन टन खाद्यान्नों का उत्पादन हो रहा है। यह सब डॉ. नारमन ई. बोरलॉग (Dr. Norman E. Borlaug) द्वारा प्रस्तावित हरित क्रान्ति की बदौलत ही सम्भव हो सका। हरित क्रान्ति के साथ (White revolution) आयी और इस दिशा में भी देश ने काफी प्रगति की।

जैसे–जैसे देश विकास की ओर अग्रसर होता गया वैसे–वैसे देश के बुद्धिजीवियों चिन्तकों एवं वैज्ञानिकों की दृष्टि नये–नये क्षेत्रों में नया निर्माण व प्रगति करने की ओर अग्रसरित होती गई। कृषि क्षेत्र में अनाज एवं दुग्ध के बाद वैज्ञानिकों ने कृषि के अन्य क्षेत्रों पर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया और यह देखा कि यदि देश के एक–तिहाई भू–भाग में हम हरित क्रान्ति ला सकते हैं तो दो–तिहाई वाली अथाह जल सम्पदा में भी नीली क्रान्ति (Blue revolution) लायी जा सकती है ताकि हम पौष्टिक आहार की कमी, विदेशी मुद्रा की कमी तथा रोजगारों की कमी जैसी ज्वलन्त समस्याओं से छुटकारा पा सकें। इस दृष्टिकोण

टिप्पणी

के साथ जल संवर्धन (Aquaculture) के द्वारा उपलब्ध जल संसाधनों से अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करके नीली क्रान्ति (Blue revolution) को सफल बनाने के व्यापक प्रयास प्रारम्भ किये गये हैं। नियन्त्रित दशाओं के अन्तर्गत आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण जलीय जन्तुओं एवं पादपों के उत्पादन करने को जल संवर्धन या जल कृषि कहते हैं। (Aquaculture is the farming and husbandry of economically important aquatic animals and plants under controlled conditions)

जल संवर्धन के अन्तर्गत मछलियों, झींगी (Shrimps), झींगा (Prawns), केक़ड़ा (Crabs), सीपी (Mussels), शुक्ति (Oysters), समुद्री खरपतवार (Weeds) आदि कृषि योग्य जीवों का पालन–पोषण किया जाता है। उपर्युक्त जन्तुओं में सर्वाधिक माँग स्वच्छ जल में पायी जाने वाली मेजर कार्प मछलियों (Major carp fishes) एवं खारे जल के झींगों (Brackish water Prawns) की है अतः इन्हें ही जल संवर्धन में सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। जल संवर्धन के अन्तर्गत तालाब संवर्धन (Pond Culture), पेन संवर्धन (Pen Culture), पिंजड़ा संवर्धन (Cage Culture) आदि आते है। जल संवर्धन की असीमित समृद्ध सम्भावनाओं को देखते हुए आज यह एक उभरते उद्योग के रूप में तेजी से विकसित हो रहा है और ऐसी सम्भावना है कि नवीन तकनीकियों का उपयोग करके विश्व के कुल मत्स्य उत्पादन का चौथाई हिस्सा इससे प्राप्त किया जा सकेगा।

मोती संवर्धन विज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसके अंतर्गत मोती का निर्माण करना व पालन–पोषण किया जाता है। साथ ही अधिक से अधिक इस क्षेत्र में और कैसे वृद्धि हो, विभिन्न प्रकार की नई–नई तकनीकों का अध्ययन किया जा रहा है। मोती का निर्माण फाइलम– मोलस्का समुदाय के जन्तुओं द्वारा निर्मित कैल्शियम के चमकदार संग्रन्थन (Concertion) को मोती कहते है। इसे मुक्ता के नाम से भी जाना जाता है। इसका उपयोग मुख्यतः आभूषणों के निर्माण में (Ornamentation) किया जाता है। इसके अतिरिक्त ये औषधि निर्माण एवं धार्मिक अनुष्ठानों में भी प्रयुक्त किये जाते हैं। हालांकि मोती शुक्तियों (Pearl oysters) की कोई पौष्टिक उपयोगिता नहीं होती है, परन्तु इनके द्वारा उत्पन्न किये गये मोती व्यवसायिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। अतः आज विश्व व्यापार में इसकी काफी मांग है, साथ ही यह विदेशी मुद्रा अर्जन के अच्छे साधन या विकल्प बन गये हैं।

मेंढ़क संवर्धन या मेंढ़क पालन भी एक महत्वपूर्ण तथा अच्छे व्यवसाय के रूप में जाना जाता है इसका कल्चर वाणिज्यिक स्तर पर आर्थिक लाभ प्राप्त करने के साथ–साथ आहार के रूप में अनेक खाद्य सामग्री भी तैयार की जाती है जिसके कारण भारत एवं अन्य देशों में इसके प्रोटीन की मांग बढ़ती जा रही है।

विश्व बाजार में मेंढ़कों की अत्यधिक माँग है। इनकी आपूर्ति आयातित जंगली मेंढ़कों (Wild frogs) द्वारा की जाती है। इसका एक प्रमुख कारण यह हैं कि मेंढ़कों का व्यावसायिक उत्पादन आर्थिक रूप से लाभप्रद साबित नहीं हो पाया है। हालांकि विश्व के कई देशों में मेंढ़क फार्मों का संचालन किया जा रहा है परन्तु मेंढ़कों की यह खेती भी छोटे–छोटे प्राकृतिक तालाबों तथा दलदली क्षेत्रों

टिप्पणी

तक ही सीमित है। इन प्राकृतिक स्थानों पर बाड़ा (Fence) लगाकर वयस्क मेंढ़कों तथा उनके लार्वों को परभक्षियों (Predators) से सुरक्षित कर दिया जाता है और इन्हें स्वतः अपनी संख्या बढ़ाने का अवसर दिया जाता है। इसी प्रकार चिकित्सा एवं जैविक अनुसन्धान कार्यों के लिए मेंढ़कों की आपूर्ति करने हेतु गहन अन्तर्कक्ष संवर्धन (Indoor Culture) तकनीकें विकसित की गयी हैं परन्तु यह कहना कठिन है कि इन अन्तर्कक्षीय तकनीकों का उपयोग व्यवसायिक स्तर पर बड़े मेंढ़कों के उत्पादन के लिए आर्थिक दृष्टि से सफल होगा या नहीं।

भारत 1960 के दर्शक से ही मेढ़कों की टाँगों का निर्यात करता आया है। प्रारम्भ में यह निर्यात अमेरिका तथा फ्रांस तक ही सीमित था परन्तु आज भारत इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्वीडन, इटली, स्विट्जरलैण्ड, जापान, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों को भी मेंढ़क की टाँगें निर्यात कर रहा है। भारत में मेंढ़कों का संवर्धन व्यापक पैमाने पर किया जा रहा है। चेन्नई के भवानीसागर स्थित स्वच्छजलीय जैविक केन्द्र (Freshwater Biological Station, Bhawanisagar, Chennai) तथा कटक के बैरकपुर स्थित केन्द्रीय अन्तर्देशीय मात्स्यकी अनुसन्धान संस्थान (Central Inland Fisheries Research Institute, Barrackpore, Cuttuck) में मेंढ़कों के तालाब संवर्धन (Pond Culture) के सम्भावित प्रतिस्थापन (substitution) के लिए लगातार प्रायोगिक परीक्षण किये जा रहे है।

Classification

Phylum- Chordata

Sub-phylum-Craniata vertebrata

Super class- Gnanthostomal

Class- Amphibia

Sub-class- Apsidospondyli

Super order-Salienta

Order- Anura

Genus- Rava

Species- Tigrina

यह हम सभी जानते है कि विश्व एवं देश पर निरन्तर जनसंख्या के बढ़ने के कारण दबाव बढ़ रहा है। इसी से निपटने के लिए खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ाना तो आवश्यक हो ही गया है, साथ ही साथ दिन–प्रतिदिन बढ़ रही कुपोषण एवं प्रोटीन की कमी को दूर करके इन सभी समस्याओं से निजात अथवा छुटकारा पाया जा सकता है।

मछली पालन में वृद्धि करके प्रोटीन एवं कुपोषण की परेशानियों को दूर करने का प्रयास निरन्तर वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है। क्योंकि प्राचीन काल से ही मानव द्वारा मछली प्रोटीन का आहार के रूप में उपयोग में लाया जाता रहा है। ये भारतीयों (Indian) के लिए सर्वोत्तम सम्पूरक भेजन (Complementary food) का कार्य करती है। जिसमें प्रोटीन 15–20%, वसा, विटामिन A, D, E, K के अतिरिक्त कॅल्शियम, फॉस्फोरस तथा लोह जैसे खनिजों की उपयोगी मात्रा

पायी जाती है। भोजन के पौष्टिक गुणों के साथ–साथ दूसरी विशेषता यह भी है कि इनका माँस स्वादिष्ट एवं सुपाच्य होता है।

टिप्पणी

भारत में नदियों, तालाबों, झीलों, नहरों आदि के रूप में पाये जाने वाले 9.6 मि. हि. अन्तर्देशीय जल में प्रतिवर्ष लगभग 7 मि. टन स्वच्छ जलीय मछलियों की उपज प्राप्त होती है। जिसमें 35% Major carps, 33% Cat fishes, 10% line fishes, 4.8% Feather backs एवं 4.4% भाग मुलेट मछलियों तथा शेष भाग अन्य प्रकार की मछलियों का होता है।

परिभाषा– ऐसी मछलियाँ जो Fresh water में रहती है और मानव द्वारा उन्हें भोजन के रूप में उपयोग में लाया जाता हैं उसे Fresh water Edible fishes कहा जाता है।

सामान्यतः यह देखा गया है कि कुछ मछलियाँ, जिनके पालने या रख–रखाव में कोई समस्या नहीं होती है, किन्तु उपभोक्ता द्वारा पसंद नहीं की जाती है। कुछ मछलियों जिनमें प्रजनन बहुत ही आसान होता है, परन्तु ये 10 सेमी से अधिक वृद्धि नहीं करती हैं जिससे इनमें बहुत कम मात्रा में माँस प्राप्त होता है। परिणाम स्वरूप अपेक्षित आर्थिक लाभ नहीं होता है। मांसाहारी मछलियों की तुलना में शाकाहारी मछलियों को अपेक्षाकृत अधिक पसन्द किया जाता है। भारत वर्ष में कार्प या सफरी मछलियों का संवर्धन आर्थिक एवं व्यावहारीक दृष्टि से सर्वथा अनुकूल है। क्योंकि इनमें अनेक विशेषताएँ होती है।

मानव के आर्थिक विकास में मछलियों का सदैव से ही विशेष योगदान रहा है। प्राचीन समय से ही इनका उपयोग मानव भोजन के रूप में होता आ रहा है। आजकल मछलियों से खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त अन्य अनेक बहुउपयोगी व व्यावसायिक महत्व की वस्तुएँ भी तैयार की जाती हैं। आधुनिक संसार में 30–40% मानव आबादी प्रोटीन की कमी के कारण कुपोषण (Malnutrition) का शिकार है। मत्स्यपालन से संसार में प्रोटीन की उपलब्धता में वृद्धि सम्भव हो सकी है। आज विश्व के अनेक देशों में मत्स्यपालन व्यवसाय का एक महत्वपूर्ण साधन तथा विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक अच्छा माध्यम बन चुका है।

वर्तमान परिवेश में लोगों के रहन–सहन, आचार–विचार एवं कार्यशैली में निरंतर परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। इसी कारण एक आज जलशाला को लोग अपने जीवन में मनोरंजन व खुशी का अंग स्तर बन गया है और व्यक्ति सजावट के रूप में अपने घरों में बहुतायत से प्रयोग में ला रहा है।

रंग–बिरंगी मछलियाँ प्राचीनकाल से मानव के आकर्षण एवं मनोरंजन का साधन रही हैं। प्रकृति की इन सुन्दर सजावटी मछलियों (Ornamental fishes) को रखने तथा पालने की परम्परा आज से हजारों वर्ष पूर्व चीन से प्रारम्भ हुई, जहाँ गोल्ड (Gold fish) को काँच के बर्तनों में रखा जाता था। धीरे–धीरे इन मछलियों को अन्य देशों में भी पाला जाने लगा। इस दिशा में सर्वाधिक रुचि इंग्लैण्ड (England) तथा स्काटलैण्ड (Scotland) के लोगों ने दिखायी। इंग्लैण्ड में ही 1853 में सबसे पहले जलशाला (Aquarium) का निर्माण किया गया। इसी देश के प्रकृति वैज्ञानिक हेनरी गूज़ (Henry Goose) ने सर्वप्रथम एक्वैरियम (Aquarium)

टिप्पणी

नाम दिया। धीरे–धीरे विश्व के अनेक देशों के निवासियों ने भी रंगीन मछलियों के पालने में रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी। आज रंगीन मछलियों का पालन–पोषण एक शौक (Hobby) बन गया है। भारत में भी 1951 में मुम्बई में तारापुर जलशाला की स्थापना के साथ लोगों में रंगीन सजावटी मछलियों को पालने के प्रति चेतना जागृत हुई और आज सम्पूर्ण भारत में देशी मछलियों के अतिरिक्त विदेशी जाति की मछलियों का आयात करके यहाँ की जलवायु के अनुरूप बनाकर व्यापक पैमाने पर पालन एवं प्रजनन किया जा रहा है।

आज विश्व में प्रतिवर्ष एक अरब डालर से भी अधिक की रंगीन मछलियों का व्यापार होता है। अमेरिका, यूरोप तथा जापान व्यावहारिक दृष्टि से सबसे आगे है। सर्वाधिक पालन एवं विपणन स्वच्छ जलीय मछलियों का होता है। भारत भी अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा जापान की तरह स्वच्छ जलीय मछलियाँ निर्यात कर रहा है। भारत में कोलकाता, मुम्बई तथा चेन्नई सबसे प्रमुख निर्यातक केन्द्र हैं।

ऐसे पात्र को जिसमें प्रकृति का अनुकरण करते हुए जलीय पौधों, कंकड़ों, पत्थरों एवं अन्य कृत्रिम सजावटी सामान रखकर जलीय जीवों को रखा जाता है, जलशाला (Aquarium) कहते हैं।

4.1 उद्देश्य (Objectives)

जल संवर्धन, अथवा जल कृषिका भी सामान्य कृषि की भाँति मनुष्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान है, जिसका निम्नलिखित उद्देश्य है–

- जल संवर्धन का उद्देश्य-देश में उपलब्ध जल संसाधनों से अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करके नीली क्रांति (Blue Revolution) को सफल बनाना है।
- जल संवर्धन के अंतर्गत– मछली पालन, झींगा पालन, मोती पालन, मेंढ़क पालन एवं कार्प संवर्धन आदि आते हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य हैं–
  - (i) मछली पालन संवर्धन (Fish culture) का उद्देश्य– मछली प्रोटीन, वसा विटामिन्स, मेडिसिन तैयार करना तथा मछली के सह–उत्पादों से भी Raw material (कच्चे पदार्थ) तैयार किये जाते है जैसे– क्रीम, अचार, सीरप व टॉनिक आदि।
  - (ii) झींगा संवर्धन का उद्देश्य-मत्स्य पालकों को उद्यमी बनाना, रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाना आदि।
  - (iii) मोती संवर्धन का उद्देश्य– सौन्दर्य प्रसाधनों के रूप में।
  - (iv) मेंढक संवर्धन का उद्देश्य– वसा, प्रोटीन, खाद्य पदार्थ सामग्री तैयार करने में।
  - (v) कार्प संवर्धन का प्रमुख उद्देश्य–मेजर कार्प मछलियों का पालन पोषण करना तथा उनसे प्रोटीन, वसा, मिनरल प्राप्त करना तथा मत्स्य कृषकों आर्थिक स्थिति को बेहतर करना तथा उनको आत्म निर्भर बनाना आदि Aquaculture के प्रमुख उद्देश्य हैं।

टिप्पणी

- जल संवर्धन उद्देश्य– मत्स्य पालकों किसानों को आर्थिक रुप से मजबूत करना। उनकी दयनीय दशा को सुधारना।
- जल कृषि की नई–नई तकनीकों के बारे में किसानों को जानकारी उपलब्ध करवाना।
- जल संवर्धन एवं इससे जुड़े उद्योगों में, सहकारी संस्थाएँ, समितियों की स्थापना करना जिससे ग्रामीण इलाके की पंचायतों में इसके बारे में जानकारी देना आदि इसका प्रमुख उद्देश्य है। जिससे रोजगार के नये अवसर स्थापित हों सकें।
- जल संवर्धन का उद्देश्य – भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश की अर्थव्यवस्था में सहायक के रूप में, आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में।
- जल संवर्धन के अन्तर्गत – मछली पालन करके प्रोटीन के मुख्य स्रोत के रूप में, कुपोषण को दूर करने में। संतुलित आहार की धारणा को परिलक्षित करने में मछली का महत्वपूर्ण योगदान है।
- औषधियों के रूप में।

4.2 जल संवर्धन का इतिहास (History of Aquaculture)

जल संवर्धन एवं मत्स्य पालन का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ ही हुआ। प्रागैतिहासिक काल में पाषाण युग के दौरान मत्स्य आखेट एक सामान्य बात थी। झीलों एवं नदियों की तटवर्ती गुफाओं के निकट उत्तर पाषाण युग के मत्स्यावशेष पाए गए है। 2500 ई. पूर्व काल की मिस्त्री उत्कीर्णन (Egyptian engraving) में एक तालाब में दिखायी गई टिलापिया (Tilapia) मछली के आधार पर मिस्त्रवासियों को प्रथम मत्स्य पालक माना जाता है। यूनान में 1000 ई. पूर्व लौह युग में लवणित (Salted), शुष्कित (Dried) तथा धूमित (Smoked) मछलियों का व्यापार होता था। रोमन राजवंश के दौरान 400 से 500 ई. पूर्व के मध्य सुसंगठित मत्स्य पालन आरम्भ हो चुका था। हिन्द–प्रशान्त क्षेत्र में चीन में (200 ई. पूर्व) मत्स्य पालन की सामान्य परम्परा प्रचलित थी। 1368 से 1644 ई. के मध्य पिंग रजवंश के समय फ्राई पालकर वयस्क मछलियों में परिवर्तित करने की प्रक्रिया के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है। अठारहवीं सदी के आते आते चीन में मछलियों को बर्फ में रखकर परिरक्षित करने का कार्य प्रारम्भ हो चुका था। वैज्ञानिक ढंग से मत्स्य संवर्धन का कार्य उन्नीसवीं सदी में प्रारम्भ हो सका। चीन में सात प्रकार की मछलियों कॉमन कार्प (Common carp), सिल्वर कार्प (Silver carp), ग्रास कार्प (Grass carp), मड कार्प (Mud carp), बिग–हेड कार्प (Big-head carp), ब्लैक कार्प (Black carp) तथा ब्रीम (Bream) का पालन होता था। चीन से ही मत्स्य संवर्धन की तकनीक मलेशिया, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया आदि अन्य देशों में पहुँची।

भारत में मत्स्य संवर्धन का इतिहास युगों पुराना है। मोहेनजोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई में 2500 से 1500 ई. पूर्व मछलियों के अवशेष एवं उत्कीर्णन प्राप्त हुए

टिप्पणी

है। उन्नीसवीं शताब्दी में बिहार एवं पश्चिमी बिहार में कार्प मछलियों के जलांडकों के संग्रहण एवं परिवहन का कार्य प्रारम्भ हो चुका था। 1841 में ऑस्फ्रोंनीमस गोरामी (Osphronemus gourami) नामक विदेशी (Exotic) खाद्य मछली जावा से भारत में लायी गयी। इसी प्रकार 1909 में गैम्बूसिया एफिनिस (Gambusia affinis) तथा लेबिस्टिस रेटीकुलेटस (Lebistes reticulatus) नामी विदेशी लार्वाभक्षी मछलियाँ भारत में आयातित की गयी। परन्तु मत्स्य पालन पर विशेष ध्यान तब दिया गया जब द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात खाद्य सामग्री का अभाव उत्पन्न हुआ। 1911 में मद्रास के सुन्केसुला (Sunkesula) (अब आन्ध्र प्रदेश में) नामक स्थान पर प्रथम वैज्ञानिक मत्स्य फार्म स्थापित किया गया। भारत सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की मत्स्यकी के क्षेत्र में समुचित प्रौद्योगिकी विकास की सम्भावनाओं पर कार्य करने हेतु अनेक संगठन एवं संस्थान स्थापित किये गये है जिनमें प्रमुख है– Central Inland Fisheries Research Institute (CIFRI) जिसको वर्तमान में Central Inland Capture Fisheries Research Institute (CICFRI) के नाम से जाना जाता है, तथा Central Institute of Fresh -water Aquaculture (CIFA)। सरकार ने 1973 मे मत्स्य कृषक विकास एजेन्सी (Fish Farmers Development Agency) या FFDA की अवधारणा प्रारम्भ की। ये विकास एजेन्सियाँ देश में जल संवर्धन के विकास की सम्भावनाओं पर तेजी से कार्य कर रही हैं। समुद्री उत्पादों, विशेषतः झींगियों (Shrimps) के निर्यात हेतु उत्पादन में वृद्धि करने के लिए भारत सरकार ने एक अन्य एजेन्सी स्थापित की है जो समुद्री उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकारण (Marine Products Export Development Authority, MPEDA) के नाम से जानी जाती है। यह एजेन्सी विभिन्न राज्य सरकारों से सम्बन्धित मत्स्य विभागों के घनिष्ठ सहयोग से कार्य कर रही है।

4.2.1 जल संवर्धन की सम्भावनायें (Scope of Aquaculture)

जल संवर्धन में एशिया (Asia) विश्व में महत्वपूर्ण स्थान रखता है जहाँ कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग उत्पादित होता है। भारतवर्ष में इसके विकास के लिए पर्याप्त जल संसाधन उपलब्ध है। भारत में छोटे–छोटे पोखरों, तालाबों, जलाशयों, झीलों, बीलों एवं नदियों सहित बहुत बड़ा समुद्रीय भाग उपलब्ध है। नदियों के रूप में उत्तर में गंगा, ब्रह्मपुत्र और नर्मदा, पूर्वी तट पर कृष्णा, गोदावरी, कावेरी तथा महानदी, पश्चिमी तट पर नर्मदा तथा ताप्ती हैं जिनकी कुल लम्बाई 27,360 किमी. है। इसके अतिरिक्त 1.97 मि. हेक्टेयर क्षेत्र जलाशयों के रूप में, 2.22 मि. हेक्टेयर क्षेत्र पोखरों एवं तालाबों के रूप में तथा 1.30 मि. हेक्टेयर क्षेत्र झीलों, बीलों एवं परित्यक्त जल (derelict water) के रूप मे उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त 7517 किमी. लम्बा तटीय किनारा; मुख्य एस्चुअरी, जैसे– पश्चिमी बंगाल की हुगली, महानदी (उड़ीसा), गोदावरी एवं कृष्णा (आन्ध्रप्रदेश), कावेरी (तमिलनाडु), नर्मदा एवं ताप्ती (गुजरात); मुख्य तटीय लैगून, जैसे– चिल्का झील (उड़ीसा), पुलीकाट झील (तमिलनाडु/आन्ध्रप्रदेश), वेम्बानन्द झील (केरल) भी जल संवर्धन हेतु उपलब्ध है। इस प्रकार विभिन्न स्त्रोतों के रूप में करीब 4 मि. हेक्टेयर स्वच्छ जल, 1.2 मि. हेक्टेयर खारा जल तथा 8 मि. हेक्टेयर समुद्री जल विभिन्न प्रकार की मछलियों, झीगों आदि पालने वाली प्रजातियों के साथ प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों के रूप में

टिप्पणी

उपलब्ध है। तथा ठण्डे एवं उष्ण जल की मात्स्यिकी सम्पदा पायी जाती है। भारत की भौगोलिक स्थिति और आर्द्र–उष्ण जलवायु जलीय सम्पदाओं में मछली तथा झींगा उत्पादन के अत्यधिक अनुकूल है। समुद्र की उत्पादन क्षमता लगभग 5 मि. टन प्रतिवर्ष मानी जाती है जबकि उत्पादन लगभग 3 मि. टन का है। 1975 में 4000 टन झींगा उत्पादन कर भारत विश्व में दूसरे स्थान पर था, सन 1985 में यह उत्पादन 17000 टन का हुआ परन्तु विश्व में भारत का स्थान सातवाँ रह गया और 1989 में 24000 टन झींगा उत्पादन करने पर भी भारत सातवें स्थान पर ही रहा। भारत में कुछ मत्स्य उत्पादन पद्धतियाँ आज भी तिरस्कृत (neglected) है। उनमें प्रगति तथा विकास की सम्भावनायें बहुत हैं अतः ये काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती है, जैसे– तटीय समुद्र मे मत्स्य पालन, सजावटी मछलियों का प्रजनन, संवर्धन तथा पालन, पहाड़ी ठण्ड़े इलाकों में मत्स्य पालन और अन्तर्देशीय बँधे जल में समन्वित मछली पालन, आदि।

भारत के बहुत से राज्यों में दलदली (Swamps) परित्यक्त क्षेत्र पड़े है जिन्हें सुधार कर मछलियाँ पालने हेतु तालाबों में विकसित किया जा सकता है। इसी प्रकार, कच्छीय दलदली स्थानों (Marshy Swaps) में वायु–श्वसनी (Air breathing) माँसाहारी म्यूरेल्स (Murrels), कोई (Koi), सिंघी (Singhi), मागुर (magur) आदि आर्थिक महत्व रखने वाली मछलियों को पाला जा सकता है जो कि कम ऑक्सीजन वाले जल में भी जीवित रह सकती हैं।

धान के खेत वर्ष में 3–8 महीने जल से भरे रहते हैं जहाँ धान की खेती के साथ–साथ मत्स्य संवर्धन का कार्य भी किया जा सकता है। पश्चिमी बंगाल, उडीसा तथा आन्ध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्रों में स्थित धान के खेतों में झींगों के पालन की परम्परा लम्बे समय से चली आ रही है किन्तु इस परम्परागत पालन से उत्पादन दर मात्र 200 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष होती है। नई एवं कम खर्चीली तकनीकों के विकास से उत्पादन दर बढ़कर 1000 से 12000 किग्रा. तक हुई है।

स्वच्छ जल में पाये जाने वाले मैक्रोब्रैकियम (Macrobrachium) झींगो की मादायें वर्ष भर अण्डे देती हैं तथा यह प्रजाति समूह पालन (mass rearing) के सर्वथा अनुकूल है। एकल संवर्धन करने के अतिरिक्त इस झींगे का भारतीय मेजर कार्प (Major carp), माइनर कार्प (Minor carp) आदि मछलियों के साथ मिश्रित संवर्धन (Polyculture) किया जा सकता है।

अन्तर्स्थलीय जल में मत्स्य पालन को निम्नलिखित प्रणालियों में विकसित करके अपार सम्भावनाओं को लाभ में बदला जा सकता है–

1. मत्स्य उद्यमी– विभिन्न सरकारी अनुसंधान संस्थानों विश्वविद्यालयों एवं अन्य संगठनो के विस्तार कार्यक्रमों और प्रयासों से प्रेरित होकर गत दो–तीन दशकों में कई शिक्षित युवकों एवं व्यवसाइयों ने जल संवर्धन व्यवसाय अपनाया है। इस प्रकार विभिन्न व्यावसायिक कार्यक्रमों के माध्यम से विभिन्न वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुचनाओं का आदान–प्रदान करके एवं प्रशिक्षण देकर इस व्यवसाय को बढ़ाया जा सकता है।

टिप्पणी

2. मत्स्यपालक – परम्परागत ढंग से मत्स्य व्यवसाय करने वाला वर्ग 'मछुआरा' नाम से जाना जाता है। यह समुदाय अधिकांशतया समुद्री तटवर्ती क्षेत्रों या राज्यों में अधिक रहता है। जो लोग समुद्र के निकट रहते हैं उनका मुख्य व्यवसाय समुद्र से मछली पकड़ना होता है लेकिन जो लोग तट से दूर रहते हैं वे उपलब्ध जल के अनुसार स्वच्छ जल या खारे जल में मत्स्य पालन का व्यवसाय करते है। साधनों की कमी के कारण इस वर्ग की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं होती है। यदि यह वर्ग सहकारिता, मिश्रित मछली पालन या समन्वित मछली पालन का व्यवसाय अपनाये तो इससे न केवल इस वर्ग की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा अपितु इससे कुल राष्ट्रीय मत्स्य उत्पादन में भी अत्यधिक वृद्धि होगी।

3. सरकारी स्तर पर मत्स्य पालन– देश के विभिन्न कृषि विश्वविद्याालयों, कृषि संस्थानों एवं अभिकरणों आदि में भी मत्स्य पालन कार्य होता है। इन संगठनों में होने वाले अनुसंधान कार्य का लाभ भी जल संवर्धन उद्योग को मिलता है। भारत में अन्तर्स्थलीय मत्स्यकी पालन के क्षेत्र में बीज उत्पादन एवं क्रय–विक्रय बहुत कुछ सरकारी साधनों पर निर्भर है। कुछ राज्य सरकारें छोटे–छोटे मछुआरों से लेकर मत्स्य उद्यमियों तथा संस्थाओं को मात्र बीज ही नहीं उपलब्ध कराती अपितु उपलब्ध उत्पादनों को खरीद कर उनके विक्रय का काम भी करती हैं। बड़ी–बड़ी झीलों, बीलों, नदियों तथा नहरों आदि में मत्स्य पालन का कार्य सरकारी तन्त्र द्वारा ही संचालित होता है।

4. सहकारी संस्थाएँ, समितियाँ आदि– गाँवों में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के जल स्रोत या तो ग्राम पंचायत की सम्पत्ति होती है या फिर किसी ऐसे व्यक्ति की जिसकी मत्स्य पालन के प्रति कोई विशेष रूचि नहीं होती। ऐसी दशा में विभिन्न संस्थाओं अथवा समितियों का गठन करके जल सम्पदा का उपयोग किया जा सकता है तथा परिवहन, विपणन और बैंकों अथवा वित्तीय संस्थाओं से ऋण जैसी सुविधायें उपलब्ध कराकर इस व्यवसाय को व्यापक स्तर पर विकसित किया जा सकता है।

4.2.2 उच्च जल संवर्धन उत्पादकता हेतु नियोजन (Planning for Higher Aquacultural Productivity)

कृषि एवं पशुपालन के समान जल संवर्धन का उद्देश्य भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के माध्यम से मछलियों के प्राकृतिक उत्पादन स्तर से कहीं अधिक उत्पादकता प्राप्त करना है। कृषि की तरह जल संवर्धन के अनेक उद्देश्य में प्रमुख है–अवांछित पौधों एवं जन्तुओं का उन्मूलन एवं वांछित प्रजातियों से उनका आपूरण, संकरण (Cross & breeding) तथा चयन (Selection) द्वारा प्रजातियों को सुधारना एवं उन्नत करना, एवं उपयुक्त उर्वरकों के प्रयोग द्वारा जीव प्रारूपों (Bio - types) की उत्पादकता में सुधार करना आदि। जिस प्रकार कृषि उत्पादन के लिए हमारा प्रयास कृषि योग्य भूमि के प्रत्येक खण्ड का अधिकतम उपयोग करके उत्पादकता में वृद्धि करना होता है उसी प्रकार जल संवर्धन में भी हमारा लक्ष्य प्रत्येक उपर्युक्त जलीय स्थान पर उच्चतम मत्स्यकी उत्पादन सुनिश्चित करना होना चाहिए। इस प्रकार समुद्री संवर्धन (Mariculture) के विपरित विगत वर्षो में पक्ष प्राणी एवं कवच

प्राणी (Fin fish and Shell fish) उत्पादकता की उच्च दर प्राप्त करने हेतु जल संवर्धन प्रौद्योगिकी में महान प्रगति हुई है (सारणी 4.1)

टिप्पणी

सारणी क्र. 4.1: Present Status of Different Farming Systems in Asia

Farming System	Prevalent	Country
1. INTEGRATED FARMING		
A. Fish-cum-Duck (Polyculture of fish and duck)	Nepal, Indonesia, China, India	India, Indonesia (W.Java) Common carp and tilapia
B. Fish-cum-Pig (Polyculture of fish and pig)	China, Indonesia, Vietnam, Thailand, Philippines, India	India
C. Fish-cum-Paddy	China, Indonesia, India, Japan, Thailand Malaysia, Vietnam, Kampuchea, Nepal	Japan, China, Thailand, Malaysia, Indonesia, India
2. CARP FARMING		
A. Pond Culture I. Chinese Polyculture	China, Vietnam, Laos, Malaysia, Indonesia, Singapore	China
II. Indian Polyculture (Composite fish culture)	India, Pakistan, Bangladesh, Nepal, Burma, Sri-Lanka	India
III. Monoculture with aeration	Japan	Japan
IV Monoculture with running water	Japan	Japan
B. Cage Culture I. Monoculture of common carp	Indonesia, Japan, Vietnam	Japan
3. SEWAGE-FED FISH FARMING		
A. Pond Culture I. Polyculture of carps	India, China, Indonesia	India,
II. Monoculture of Tilapia	Indonesia	Indonesia

टिप्पणी

4. AIR BREATHING FISH FARMING		
A. Pond Culture		
I. Clarias	Thailand, India, Indonesia	Thailand
II. Snakehead	Thailand, India, Indonesia	Thailand
B. Cage Culture		
I. Snakehead	Kampuchea, Laos, Vietnam	Vietnam
5. MULLET FARMING		
A. Polyculture with Penaeid Prawn	India	India
6. SHRIMP FARMING		
A. Fresh-water Macrobrachium culture	Malaysia, India, Thailand, Taiwan, Japan	Thailand, Malaysia, India,Taiwan (Province of china)
B. Salt water Penaeid culture	Chain, Japan, India, Thailand, Philippines, Indonesia, Taiwan	Japan
7. MOLLUSCS CULTURE	China, Japan, Republic of Korea, Malaysia, Philippines and Thailand	-

जल संवर्धन का सफल विकास प्रमुख रूप से उस प्रौद्योगिकी संवेष्टन (Technology package) पर निर्भर करता है जो स्थानीय परिस्थितियों के पूर्णतः अनुकूल हो। जल संवर्धन के विकास हेतु उपयुक्त योजनाओं एवं रणनीतियों को लागू करने से पूर्व सम्बन्धित प्रजातियों, प्रौद्योगिकी, उत्पादन पद्धतियों, प्रबन्धन की भूमिका, स्थानीय अथवा क्षेत्रीय संगठनात्मक ढाँचा, सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए एवं इन सभी विषयों को विशेष महत्व देना चाहिए। मत्स्य कृषि के विकास के लिए समय–समय पर निवेश एवं निर्गत का विश्लेषण करते रहना चाहिए।

जल संवर्धन से उत्पादन प्राप्त करने के लिए बीज एवं खाद्य पदार्थ आवश्यक निवेश है। विभिन्न प्रजातियों की बीज उत्पादन के लिए बड़ी संख्या में अंडज उत्पत्तिशालाओं (Hatcheries) के स्थापन की आवश्यकता होती है। चूँकि तालाबों और टैंकों की प्राकृतिक उत्पादकता इतनी नहीं होती कि जिससे संवर्धित प्रजातियों की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके अतः कृत्रिम सन्तुलित भोजन (Artificial balanced diet) के रूप में संपूरक भोजन की आवश्यकता होती है और हमें उच्च उत्पादकता प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रजातियों के लिए संभरक (Feed) निर्मित करना पड़ता है। जल संवर्धन का दूसरा प्रमुख कारक जल की गुणवत्ता का प्रबन्धन (Water quality management) है जो उपयुक्त

वातावरण बनाये रखने के लिए आवश्यक है ताकि स्वस्थ मछलियों का उत्पादन निरन्तर बना रहे।

टिप्पणी

4.2.3 वर्तमान रणनीति एवं भविष्य हेतु योजनाएँ (Present Strategies and Future Policies)

मत्स्यकी को सामान्य रूप से तीन प्रकारों में विभाजित कर सकते है– स्वच्छ जलीय (Fresh - water), ज्वारनदमुखीय (Estuarine) तथा समुद्री (Marine) मत्स्यकी। उपर्युक्त में से स्वच्छ जलीय एवं ज्वारनदमुखीय मत्स्यकी को सामूहिक रूप से अन्तर्देशीय मत्स्यकी (Inland fisheries) कहते हैं।

स्वच्छ जलीय जल संवर्धन (Fresh-water aquaculture) – स्वच्छ जलीय मत्स्य संवर्धन के लिए तालाबों के समुचित प्रबन्धन की दिशा में अनेक देशों के संयुक्त अनुसन्धान प्रयासों के परिणामस्वरूप अत्यधिक प्रगति हुई है। परन्तु निम्न एवं उपरिभूमि (Low and upland) क्षेत्रों में जल प्रबन्धन तथा तालाबों में पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण एवं प्रबन्धन से सम्बन्धित अध्ययन बहुत ही आवश्यक है। कार्प, कैट फिश (Cat fishes), स्नेकहेड (Snakehead) आदि स्वच्छ जलीय मछलियों के बीज उत्पादन को और अधिक उन्नतिशील बनाने हेतु अच्छी गुणवत्ता वाले प्रजनकों (Brooders) के चयन एवं संग्रहण के लिए उचित मानकों के निर्धारण तथा फ्राई एवं फिंगरलिंग्स (Fry and Fingerlings) के पोषण एवं परिचर्या (Nursing) में सुधार करने के लिए अनुसन्धान एवं विकास की आवश्यकता है। मछलियों के स्वास्थ्य मॉनीटरिंग (Monitoring) के लिए उपयुक्त प्रयोगशाला नैदानिक विधियाँ (Laboratory diagnostic methods) विकसित करना, सम्बधित बीमारियों का अध्ययन करना, रोग निरोधक (Prophylactic) एवं रोगनाशक (Curative) मानदण्डों का निर्धारण करना आदि से सम्बन्धित अध्ययन, उत्पादन प्रौद्योगिकी के अभिन्न अंग है।

वर्तमान समय में मछलियों के लैंगिक विकास एवं परिपक्वता के लिए हार्मोन एवं अन्य कार्यिकीय कारकों के परिचालन की ओर वैज्ञानिकों का झुकाव बढ़ा है। अण्डजनन (Spawing) के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करने हेतु वैज्ञानिकों ने प्रजनन के पारिस्थितिक कार्यिकीय (Ecophysiological) पहलू की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। आनुवंशिक अनुसन्धान प्रक्रियाओं के विकास तथा जायाजनन (Gyunogenesis) एवं बहुगुणिता (Polyploidy) जैसी परिचालन तकनीकों के अतिरिक्त अन्य परिष्कृत आनुवंशिक यान्त्रिकी (Genetic engineering) के विकास पर समुचित ध्यान देने से जल संवर्धन की उत्पादकता में अत्यधिक वृद्धि की जा सकती है। उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी को भी उन्नतिशील बनाने की प्रबल आवश्यकता है।

खारा–जल संवर्धन (Brackish-water Aquaculture)– खारे जल में जल संवर्धन के विकास की अपार सम्भावनाएं निहित हैं परन्तु भारत ने इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति नहीं की है। पीनिड झींगों (Peenid Prawns), मुलेट (Mullets), मिल्क फिश (Milk fish), मसिल (Mussels) के प्रजनन एवं पालन की तकनीक तो विकसित कर ली गयी है परन्तु खाद्य शुक्तियों (Edible oysters) तथा सीपियों

टिप्पणी

(Claim) खारे जल में संवर्धन में अभी भारत को निपुणता प्राप्त करना बाकी है। खारे जल की अधिक संवर्धन योग्य मछलियों का संवर्धन उस क्षेत्र की प्राकृतिक बीज आपूर्ति पर निर्भर करता है फिर भी झींगे (Shrimps), ग्रुपर्स (Groupers), मिल्क फिश (Milk fish), समुद्री बास (Sea bass) तथा मुलेट्स (Mullets) जैसी प्रजातियों के प्रजनन तकनीकों के मानकीकरण में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की जा चुकी है। भारत सरकार ने प्रौद्योगिकी पैकेज, प्रशिक्षण, प्रसार एवं आर्थिक सहायता के माध्यम से खारे जल संवर्धन के विकास हेतु व्यापक योजनायाँ तैयार की है।

समुद्री जल संवर्धन (Mariculture)– भारत में महाचिंगटों (Lobsters), शुक्तियों (Oysters) तथा समुद्री खरपतवारों के संवर्धन हेतु विशिष्ट कार्य योजना तैयार करने की प्रबल आवश्यकता है। हालांकि केन्द्रीय समुद्री मत्स्यकी अनुसन्धान संस्थान (Central Marine Fisheries Research Institute (CMFRI) ने मोती शुक्तियों, खाद्य शुक्तियों तथा समुद्री खरपतवारों के संवर्धन की तकनीक विकसित कर ली है। परन्तु कार्य क्षेत्रों में इन तकनीकों के सफल उपयोग पर निपुणता प्राप्त करना अभी बाकी है। स्लिपर, शुक्ति, क्रॉसोस्ट्रिया इरैडिली (Slipper oyster, Crassostrea eradelie) तथा मसिल, पर्ना विरिडस (Mussel, Perna viridus) के पालन में विशेषतः इनके प्रजनकसंग्रहों के अण्डजनन उत्प्रेरण की दिशा में पर्याप्त उन्नति हुई है। इसी प्रकार एनाडेरा ग्रैनोसा (Anadara granosa) तथा एनाडोरा ब्रॉटोनाई (Anadora broughtoni) में अण्डजनन के कृत्रिम उत्प्रेरण एवं स्पैट पालन (Spat rearing) पर सफलतापूर्वक प्रयोग किये जा चुके हैं। परिवहन के दौरान होने वाली मृत्युर्ता (Mortality) में कमी लाने के उद्देश्य से पैकिंग एवं संचालन की उन्नत तकनीक भी विकसित की जा चुकी है।

जल संवर्धन का महत्व (Significance of Aquaculture)

1. **उच्च उत्पादकता (High productivity)**– जल सवर्धन से उत्पादकता बहुत अधिक होती है। परम्परागत कृषि की अपेक्षा जल संवर्धन से 15 गुना अधिक उत्पादकता प्राप्त होती है।
2. **खाद्य परिवर्तन अनुपात (Food conservation ratio)**– पादक–प्लवक तथा जन्तु-प्लवक आहार श्रृंखला एवं खाद्य जल की विशालतम संख्या, ऊर्जा तथा जैव–भार से युक्त प्रथम खाद्य स्तर (first trophic level) का निर्माण करते हैं। इसी कारण प्लवकों को जलसंसार के छोटे–बड़े सभी जन्तुओं का खाद्याधार और जीवनाधार माना जाता है। प्लवक छोटे–छोटे डिम्भकों का भोजन बनते है और प्लवकों को छोटी मछलियाँ तथा मछलियों की विकासीय प्रावस्थाएँ खाती है। इस प्रकार, इनमें संचित ऊर्जा के प्रवाह से सम्पूर्ण जलीय ईकोतन्त्र तथा जलीय समुदाय को ऊर्जा प्राप्त होती है।
3. **सर्वोत्तम आहार (Best food)**

टिप्पणी

4. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Enhancement in national Income)**– मत्स्यन उद्योग (Fishing industry) के अन्तर्गत मानव के भोजन के साथ–साथ आर्थिक विकास का रास्ता भी खुलता है, क्योंकि–

   (i) मत्स्य उत्पादन के अन्तर्गत मछली ही नहीं, बल्कि मोलस्का एवं झींगा – पालन तथा मोती उद्योग भी आते है।

   (ii) मत्स्य उद्योग से मांस के अतिरिक्त कई अन्य उपयोगी पदार्थ भी मिलते हैं और कई प्रकार की Side industries को पनपने का अवसर मिलता है।

5. **रोजगार के अवसर (Employment prospectus)**– जल कृषि में अपना योगदान देने वाले हजारों लोंगों को रोजगार मिलता है और मानव ऊर्जा का इससे सम्बन्धित उद्योगों में उचित उपयोग हो पाता है।

   मछलियों से हमें मत्स्य–तैल (Fish-oil) प्राप्त होता है उनके सम्पूर्ण शरीर से तन–तैल (Body-oil) तथा उनके यकृत से यकृत–तेल (Liver-oil) बनाये जाते है। मत्स्य–तेल ट्राईग्लिसेराइडों (Triglycerides) का मिश्रण होता है, जिसमें कोलेस्टेरॉल, ऐल्कोहॉल, रंगा (Pigments), विटामिन्स, ईथर, फैटी ऐल्कोहॉल (Fatty alcohols) आदि शामिल होते हैं।

6. **रोगों से रोकधाम (Ex-Larvieidal fishes)**– बिना तेल वाली मछलियों, मत्स्य अपशिष्ट तैलों तथा मत्स्य कचरा से मत्स्य भोजन (Fish meal) बनाया जाता हैं, इसमे 55 से 70% प्रोटीन, 10 से 20% खनिज, 6 से 12% जल मात्रा एवं 5.3% कैल्शियम के साथ–साथ विटामिन A, D, व K भी पायी जाती है। यह भोजन मछलियों आदि के लिए सुपाच्य (Easily digestable) एवं उच्च ऊर्जायुक्त होता है।

7. **अपशिष्ट पदार्थों का उपयोग**– मछलियों के अपशिष्ट (Wastes) से वसा (Fat) को अलग करके सफेद पाउडर के रूप में प्राप्त मत्स्य प्रोटीन (Fish Protein) में 80 से 90% विलयशील, गंधहीन व स्वादहीन प्रोटीन प्राप्त होती है। इसका उपयोग आइस्क्रीम व औषधि–निर्माण तथा पेन्ट, वार्निश, कपड़ा, कागज तथा सौंदर्य–प्रसाधन (Cosmetics) उद्योगों में किया जाता है।

   मत्स्य आटा (Fish Flour)– यह मानव के लिए अति पोषक होता है तथा 3–4 वर्षीय बच्चों द्वारा भी आसानी से पचा लिया जाता है। इसका उपयोग बिस्कुट, ब्रेड, केक, मिठाई तथा सूप (Soup) आदि के निर्माण में किया जाता है।

   मत्स्याड़ (Fish Roes)– उच्च गुणवत्ता वाले इस मानव–भोजन में थाइमीन, इक्थुलिन (Ichthulin), क्रिएटीनीन, टउरीन (Taurine), टाअरासिन, जैन्थीन व हाइपोजैन्थीन (Xanthine and Hypoxanthine), उच्च मात्रा में कोलेस्टोरॉल (14%) व लेसिथिन (Lecithin, 59%) आदि के साथ विटामिन A, D, व E भी उपस्थित होते है।

टिप्पणी

8. **सह उत्पाद (fish by-products)**– मत्स्य पालन द्वारा कुछ अन्य सहउत्पाद जैसे कि Fish selage (rich in vitamins), मत्स्य उर्वरक, मत्स्य त्वचा, सिल्वर स्केल्स मत्स्य इसिनालास (Isinalass) स्टेरॉल्स (Sterols), स्क्वेलीन (Squalene), लेसिथिन (Lecithin)

जलीय उत्पादन जल कृषि ते कई प्रकार की आयुर्वेदिक व यूनानी पद्धति की औषधियाँ भी प्राप्त होती है।

कछुओं, मगरों एवं घड़ियालों–जैसी संकटग्रस्त (Endangered) प्रजनियों के जल कृषि के माध्यम से चलायी गयी पुनर्वास (Rehabilitation) योजना के अन्तर्गत उत्पादन करके उन्हें विलुप्ति (Extinction) से बचा लिया गया है।

अतः जल–कृषि की मानव के आर्थिक विकास तथा प्रजातियों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है। दिन–प्रतिदिन जल–कृषि का विस्तार बढ़ता ही जा रहा है।

जल संवर्धन की समस्याएँ (Problems of Aquaculture)

जल संवर्धन का परिरूप नीली क्रान्ति है। जल संवर्धन की अपार सफलता को देखते हुए इसका दोहन अनियन्त्रित ढंग से किया गया है, जिसका परिणाम जल–संवर्धन क्षेत्रों के प्राकृतिक सन्तुलन में गिरावट व जलीय वातावरण में उपस्थित जल–जीवों का ऱ्हास दर्ज किया गया है। जल संवर्धन के लिए दूसरी प्रमुख समस्या जलीय प्रदूषण है जिससे जल–संवर्धन की उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। देश की औद्योगिक इकाइयाँ जैसे चमड़ा उद्योग, रासायनिक उत्पाद, पेन्ट, पेपर, बैटरी, प्लास्टिक बनाने वाली इकाइयाँ आदि अधिक विषैले पदार्थ जल स्रोतों में प्रवाहित करती है। इन विषैले पदार्थों का प्रभाव प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों प्रकार से पड़ता है। प्रदूषण तत्वों के लम्बे समय तक बने रहने से अनेक प्रकार के जलीय जन्तुओं के पूर्णरूप से विलुप्त होने की सम्भावना पैदा हो रही है, जो कि प्राकृतिक जलीय सन्तुलन को प्रभावित करके जल–संवर्धन को भी प्रभावित करेगी।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. सिफरी (CIFRI) की स्थापना कलकत्ता में किस वर्ष में हुई थी?

   (अ) 1944 (ब) 1947

   (क) 1959 (ड) 1974

2. जलीय संवर्धन में किस प्रकार के प्राणियों का संवर्धन किया जाता है?

   (अ) सभी प्रकार के अकशेरूक प्राणी

   (ब) सभी प्रकार के कशेरूक प्राणी

   (क) आर्थिक महत्व के जलीय प्राणी

   (ड) हानिकारक एवं लाभकारी दोनों प्रकार के जलीय प्राणी

टिप्पणी

3. भारतवर्ष के मत्स्य जलीय संवर्धन को किस वर्ष में प्रोत्साहित किया गया था?

(अ) 1956 (ब) 1944

(क) 1988 (ड) 1962

4. नीली क्रान्ति से तात्पर्य है–

(अ) जलसंवर्धन के अन्तर्गत होने वाली खेती।

(ब) स्थल के अन्तर्गत होने वाली खेती।

(क) उपरोक्त में से कोई नहीं।

(ड) उपरोक्त सभी।

5. मच्छरों के लार्वा को खाने वाली मछली है–

(अ) कनला।

(ब) लेबियो।

(क) गम्बूसिया।

(ड) उपरोक्त सभी।

4.3 झींगा संवर्धन : स्वच्छ जलीय झींगा संवर्धन, झींगा मत्स्यन, संरक्षण एवं प्रक्रिया (Prawn Culture : Culture of Fresh Water Prawn, Methods of Prawn Fishing, Preservation and Processing of Prawns)

झींगा मछली पालन एक महत्वपूर्ण व्यवसाय के साथ–साथ भोजन प्राप्त करने, प्रोटीन की प्रतिपूर्ति करने तथा आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद है भारत एवं अन्य विकसित देशों के आहार, निरंतर बढ़ रही जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति (भरपाई) करने में मील का पत्थर साबित हो रहा है।

अतः झींगा संवर्धन से अनेकों लाभ हैं जिसके कारण इसका संवर्धन करने का महत्व बढ़ जाता है तथा वर्तमान में तो इसकी अत्यधिक आवश्यकता बढ़ गई है।

झींगा (shrimps or Prawn) दुनिया के सभी स्वच्छ, खारे एवं समुद्री जलों में पाये जाते हैं। इनका उपयोग मानव भोजन के रूप में किया जाता है। सर्वप्रथम जापान के वैज्ञानिक मौतोसाकू फ्यूजीनगा (Motosaku Fujinaga, 1934) ने कुरूमा झींगी (Kurauma shrimp) पीनियस जैपोनिकस (Penaeus japonicus) को पालने एवं अण्डजनन कराने में आंशिक सफलता प्राप्त की। फ्यूजीनगा ने उन्नतीस वर्षों तक लगातार प्रयास करके एक अंडज उत्पत्तिशाला (Hatchery) एवं फार्म

टिप्पणी

(Farm) की स्थापना की। 1960 में मलेशिया के वैज्ञानिक डॉ. एस. डब्ल्यू. लिंग (Dr. S. W. Ling) ने स्वच्छ जलीय महाझींगे, मैक्रोब्रैकियम रोजेन्बर्गाई (Macrobrachium rosenbergii) को पालने में सफलता प्राप्त की। आज विश्व के कई देशों विशेषकर भारत (India), मलेशिया (Malaysia), सिंगापुर (Singapore), फिलीपीन्स (Philippinece), ताइवान (Taiwan), जापान (Japan), अमेरिका (America) आदि में झींगा संवर्धन व्यापक स्तर पर किया जा रहा है। भारत का झींगा उत्पादन एवं निर्यात में विश्व में प्रमुख स्थान है। जहाँ 1993 में भारत 74,000 टन झींगा प्रतिवर्ष उत्पादित करता था वहीं आज यह उत्पादन करीब 5 लाख टन प्रतिवर्ष हो गया है। भारत में होने वाले कुल झींगा उत्पादन का करीब नब्बे प्रतिशत भाग केरल एवं महाराष्ट्र में उत्पादित होता है।

झींगा स्वादिष्ट होने के साथ ही पौष्टिक आहार (Nutritive food) भी है। इसमे पाये जाने वाले पौष्टिक गुण निम्नलिखित है–

1. जैव–प्रोटीन का यह महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 20 से 22 प्रतिशत होती है।
2. अन्य खाद्य पदार्थों की तुलना में झींगों में चर्बी (Fat) की मात्रा कम होती है।
3. आवश्यक वर्सीय अम्लों की उपस्थिति शरीर की वृद्धि के लिए सहायक होती है।
4. मानव शरीर की आवश्यकताओं का पूरा करने के लिए अनिवार्य खनिज लवण (Mineral salts); जैसे– सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाये जाते है।

Systematic Position/ classification:

Phylum- Arthropoda

Sub-phylum- Mandibulata

Class- Crustacea

Order- Decapoda

Genus- Palaemon

Species- Malcomso

4.3.1 व्यावसायिक महत्व के झींगे (Prawns of Commercial Value)

भारत में झींगे की अनेक जातियाँ पायी जाती है परन्तु संवर्धन के लिए केवल उन जातियों का चयन किया जाता है जो आकार में बड़ी, वजन में अधिक तथा आसानी से उपलब्ध हों। संवर्धन की दृष्टि से निम्न प्रजातियाँ व्यापारिक रूप से महत्वपूर्ण है–

1. **मैक्रोब्रैकियम रोजेन्बर्गाई (Macrobrachium rosenbergii)**– इसे सामान्य रूप से महाझींगा (Giant prawn) कहते हैं। नर की अधिकतम

लम्बाई 320 मिलीमीटर तथा मादा की 250 मिलीमीटर होती है। स्वभाव से यह सर्वाहारी होता है।

टिप्पणी

2. **मैक्रोब्रैकियम मैल्कॉमसोनाई (Macrobrachium malcolmsonii)**– सामान्यतः मानसून नदी झींगा के नाम से जाना जाने वाला यह झींगा सर्वाहारी होता है। नर की अधिकतम लम्बाई 230 मिलीमीटर तथा मादा की 200 मिलीमीटर होती है। यह भारत की नदियों में तथा सिन्धु नदी में मुख्य रूप से पाया जाता है।
3. **मैक्रोब्रैकियम इडी (Macrobrachium idae)**– सामान्यतः ओराना नदी झींगा (Orana river prawn) के नाम से पहचाने जाने वाले इस सर्वाहारी झींगे की अधिकतम लम्बाई 150 मिलीमीटर होती है। यह केरल तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल के स्वच्छ एवं खारे पानी वाले तालाबों में पाया जाता है।
4. **मैक्रोब्रैकियम बरमैनिकम (Macrobrachium Burmanicum)**– अधिकतम 200 मिलीमीटर लम्बाई वाला शुद्ध रूप से मीठे पानी का यह झींगा उत्तर प्रदेश और बिहार में गंगा नदी तथा इसकी सहायक नदीयों तथा असम में ब्रह्मपुत्र नदी में बहुतायत में पाया जाता है।
5. **पैलीमॉन स्टाइलीफेरा (palaemon stylifera)**– इसकी अधिकतम लम्बाई 105 मिलीमीटर होती है। यह पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है। यह सड़े–गले कार्बनिक पदार्थों एवं गहरे समुद्री जीवों को खाता है।
6. **पीनियस इण्डिकस (Penaeus indicus)**– सामान्य रूप से इसे सफेद झींगा कहते हैं। 230 मिलीमीटर की अधिकतम लम्बाई वाला यह झींगा सर्वाहारी होता है। यह कर्नाटका, केरल तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, ओडिशा तथा पश्चिम बंगाल के तटवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है।
7. **पीनियस मानोडॉन (Penaeus monodon)**– सामान्य रूप से इसे टाइगर झींगा कहते है। इसकी अधिकतम लम्बाई 320 मिलीमीटर होती है तथा स्वभाव से यह सर्वाहारी होता है। यह पूर्वी एवं पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्रों तथा ओडिशा की चिल्का झील में पाया जाता है।
8. **पीनियस सेमीसल्केटस (Penaeus semisulcatus)**– स्वभाव से माँसाहारी इस झींगे की अधिकतम लम्बाई 250 मिलीमीटर होती है। यह तमिलनाडु तथा आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों तथा पश्चिमी बंगाल के तालाबों में पाया जाता है।
9. **मेटापीनियस ब्रेवीकॉर्निस (Metapenaeus brevicornis)**– 125 मिलीमीटर की अधिकतम लम्बाई वाला यह झींगा सर्वाहारी होता है तथा पश्चिम बंगाल, उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में मिलता है।
10. **मेटापीनियस डॉबसोनाई (Metapenaeus dobesonl)**– इसकी अधिकतम लम्बाई 120 मिलीमीटर होती है। यह पूर्वी एवं पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्रों के खारे जल एवं पेलीयोन गाल्कोम्सो में पाया जाता है।

टिप्पणी

4.4 स्वच्छ जलीय झींगे का संवर्धन (Culture of Fresh Water Prawn)

भारत में स्वच्छ जल की केवल 25 किस्में पायी जाती हैं जिनमें से 10 प्रजातियाँ व्यवसायिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनमें से मैक्रोब्रैकियम रोजेन्बर्गाई (Macrobrachium rosenbergii) का नाम सर्वोपरि है। इसे स्कैम्पी (Scampi) भी कहते हैं। विशालकाय आकार होने के कारण इसे महाझींगा (Grant prawn) भी कहते हैं। कार्प मछलियों के साथ इसका सामंजस्य अच्छा होने के कारण इसका मिश्रित पालन भी किया जाता है।

वितरण (Distribution)– यह उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में एश्चुअरी से लेकर स्वच्छ जल की नदियों एवं तालाबों में पाया जाता है। प्राकृतिक रूप में यह प्रजनन के लिए एश्चुआरीन जल में अभिगमन करता है तथा किशोर (Juvenile) अवस्था में आने पर वापस स्वच्छ जल में आ जाता है।

पहचान के लक्षण (Identifying features)– स्वच्छ जल (मैक्रोब्रैकियम समूह) एवं खारे जल (पीनीड समूह) के झींगों को बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। पीनीड समूह (Penaeid group) के झींगों के उदर खण्डों के प्लूरा (Pleura) छत की टाइलों की सजावट की तरह नियमित होती हैं, जबकि मैक्रोब्रैकियम समूह (Macrobrachium group) में दूसरे उदर खण्ड का प्लूरा पहले तथा तीसरे खण्डों पर चढ़ा हुआ होता है।

महाझींगा का शरीर लम्बा, अनुप्रस्थ काट में गोल तथा रंग धुसर–नीला होता है। नर झींगा की अधिकतम लम्बाई 320 मिलीमीटर तथा मादाओं की अधिकतम लम्बाई 250 मिलीमीटर होती है। सिर का हिस्सा पूरी लम्बाई का प्रायः आधा होता है तथा रॉस्ट्रम (Rostrum,) वक्रित (Curved) होता है जिसके ऊपरी तथा निचले भागों में दाँतों की संख्या क्रमशः 11 से 14 तथा 8 से 14 होती है। किशोर झींगे (Juvenile Prawn) के कैरापेस (Carapace) के पार्श्व भाग पर कई क्षैतिज काली पट्टियाँ (Horizontal black bands) पायी जाती हैं जो वयस्क बनने पर विलुप्त हो जाती हैं। पैरों का दूसरा जोड़ा चिमटेदार (Chelate) होता हैं। यह पैर मादा की अपेक्षा नर में काफी बड़ा होता है। नर में जनन छिद्र पाँचवे पैर की कॉक्सा (Coxa) पर तथा मादा में तीसरे पैर की कॉक्सा पर स्थित होता है।

टिप्पणी

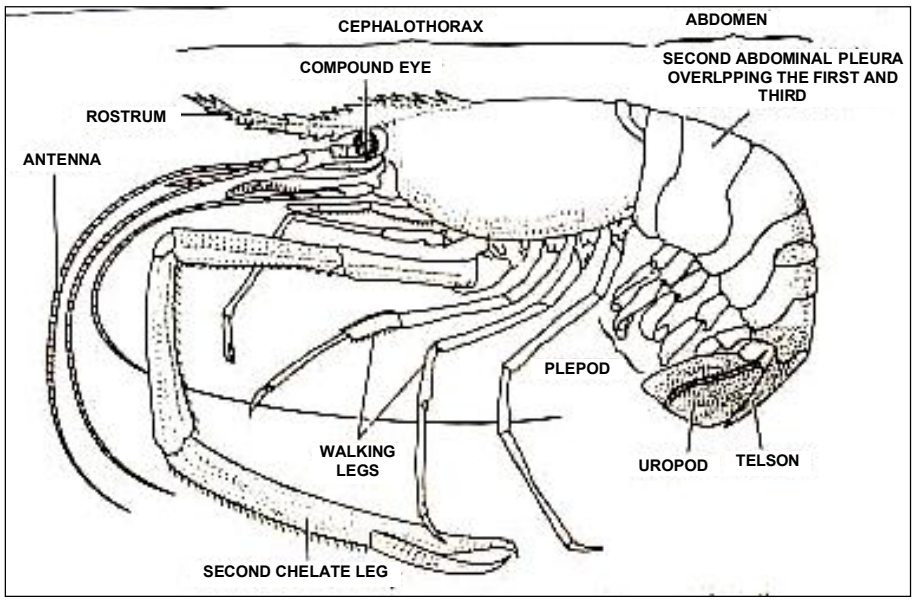

चित्र क्र. 4.1: External features of Macrobrachium rusenbergil

आहार स्वभाव (Feeding habits)– महाझींगा सर्वाहारी (Omnivorus) स्वभाव का होता है। यह छोटे–छोटे जलीय कृमियों (Worms), कीटों (Insects), मोलस्क (Molluscs), क्रस्टेशियन (Crustaceans), मछली एवं अन्य जीवों के अवशेषों (Offals) शैवालों (Algae), जलीय पौधों की मुलायम पत्तियों एवं तनों का भक्षण करता है।

जीवनचक्र (Life cycle)– मैक्रोब्रेकियम रोजेन्बर्गाई 5–6 महीने की उम्र से ही प्रजनन के लिए सक्षम हो जाता है। यह पूरे वर्ष प्रजनन करता है लेकिन वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में ही प्रजनन की प्रखरता देखने में आती है। मैथुन की क्रिया कड़े कवच वाले परिपक्व नर एवं निर्मोचन (Moulting) के तुरन्त बाद की मादा के बीच स्वच्छ जल के क्षेत्र में सम्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में नर अपने शुक्राणुओं (Sperms) को मादा के शिरावक्ष (cephalothorax) में स्थित जनन छिद्र के निकट जमा कर देता हैं ताकि अण्डों के निकलते ही उनका निषेचन (fertilization) हो जाये। निषेचित अण्डे उदर खण्डों की प्लूरल प्लेट (Pleural Plate) के नीचे की तरफ बढ़ा जाने से बने अण्ड कक्ष (Brood chamber) में स्थानान्तरित कर दिये जाते है। निषेचन के बाद नर उसी स्थान पर रह जाता है जबकि मादाएँ बच्चे जनने के लिए अनुप्रवाहित होकर खारे क्षेत्रों में पहुँच जाती है।

प्रत्येक मादा 5,000 से 30,000 अण्डे उत्पन्न करती है। दूसरे शब्दों में, छोटी मादा (8-10 gm) 500 से 600 अण्डे और बड़ी मादा (60gm) 300 से 400 अण्डे उत्पन्न करती है। प्रारंम्भ में अण्डों का रंग चमकाला नारंगी होता है जो उत्तरोत्तर भूरा होता जाता है। इसके बाद इनका रंग धूसर (Grey) और अन्ततः हैचिंग से पहले गहरा धूसर हो जाता है। मादा 15 से 25 दिनों तक इन अण्डों को अण्ड कक्ष में रखती है। हैचिंग के बाद शिशु झींगों (लार्वो) को पानी में आजाद कर दिया जाता है। लार्वे प्लवकी (Plantonic) होते है तथा इनका विकास खारे पानी (14 ± 2 ppt) में होता है। तापमान के अनुरूप 3 से 6 हफ्ते में 11 निर्माचन (Moulting) करके ये लार्वो पोस्टलार्वा (Postlarvae) में बदल जाते हैं। ये

टिप्पणी

पोस्टलार्वा तलजीवी होते हैं और रिंगी (Crawling) प्रकृति के होते है। एक या दो सप्ताह के अन्दर ये स्वच्छ जल में लौट जाते हैं तथा वयस्क में बदल जाते है।

सारणी क्र. 4.2: महाझींगा के लार्वों की विभिन्न अवस्थाएँ

अवस्था	उम्र (दिन)	साइज (मि. मी.)	लक्षण
I	1–2	2.0-2.1	स्थिर आँखें
II	3–5	2.2-2.4	डंडीयुक्त आँखे
III	6–8	2.5-2.7	यूरोपोड विकसित
IV	8–13	2.8-3.1	रोस्ट्रम के ऊपरी भाग पर दो दाँत
V	12–19	3.8-3.4	टेल्सन लम्बा और सँकरा
VI	15–24	3.5-3.6	प्लियोपोड की कलियाँ विकसित
VII	22–26	3.9-4.5	प्लियोपोड बाइरैमस और नंगा
VIII	24–28	4.5-4.8	प्लियोपोड सीटीयुक्त
IX	26–30	4.6-4.9	प्लियोपोड के एण्डोपोड इण्टरनीयुक्त
X	29–33	4.8-5.0	रोस्ट्रम के ऊपरी भाग में 3–5 दाँत
XI	32–35	4.9-5.2	रोस्ट्रम के ऊपरी भाग के आधे हिस्से में दाँत
पोस्टलार्वा	34–51	5.3-6.0	रोस्ट्रम के ऊपरी तथा निचले भाग में दाँतों का विकास

मृदु जलीय झींगा संवर्धन के लिए निम्नलिखित प्रावस्थाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है–

बीज (Seed)– बीज प्राप्त करने के दो तरीके है–

1. हैचरी अवस्था– इसमें परत्परांगत ढंग से प्राकृतिक स्रोतों से बीज एकत्र करना है। इस तरीके से शिशु झींगों को नदियों के स्वच्छ जल के ज्वारीय क्षेत्रों (tidal meas) से एकत्र किया जाता है। दूसरा तरीका हैचरी (Hatchery) में बीज तैयार करने की आधुनिक तकनीक है। चूँकि प्रकृति में बीज एकत्रीकरण में अनिश्चितताएँ होती हैं इसिलिए बीज उत्पादन के लिए हैचरी स्थान श्रेयस्कर होता है।

हैचरी एक ऐसा स्थल होता है जहाँ परिपक्व अथवा गर्भवती (Berried) झींगो को प्रजनन के लिये प्ररित किया जाता है तथा लार्वो को पालकर संग्रहण के लिए पोस्टलार्वो में परिवर्तित कराया जाता है।

टिप्पणी

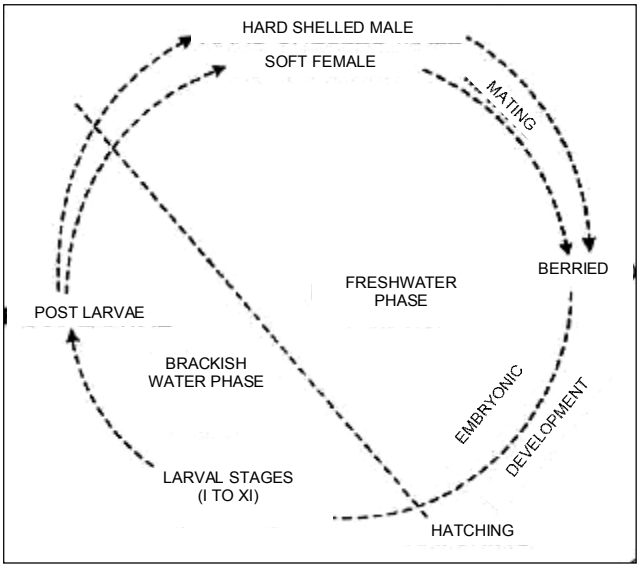

चित्र क्र. 4.2: Line diagram of Macrobrachium rosenbergii life cycle

निषेचन एवं अण्डजनन की दृष्टि से विभिन्न आकार के अण्डजनन हौजों (Tanks) को तैयार किया जाता है। 10 जोड़ी झींगों के लिए 200 × 100 × 40 cm वाले हौज तथा 24 जोड़ी झींगों के लिये 300 × 150 × 40 cm

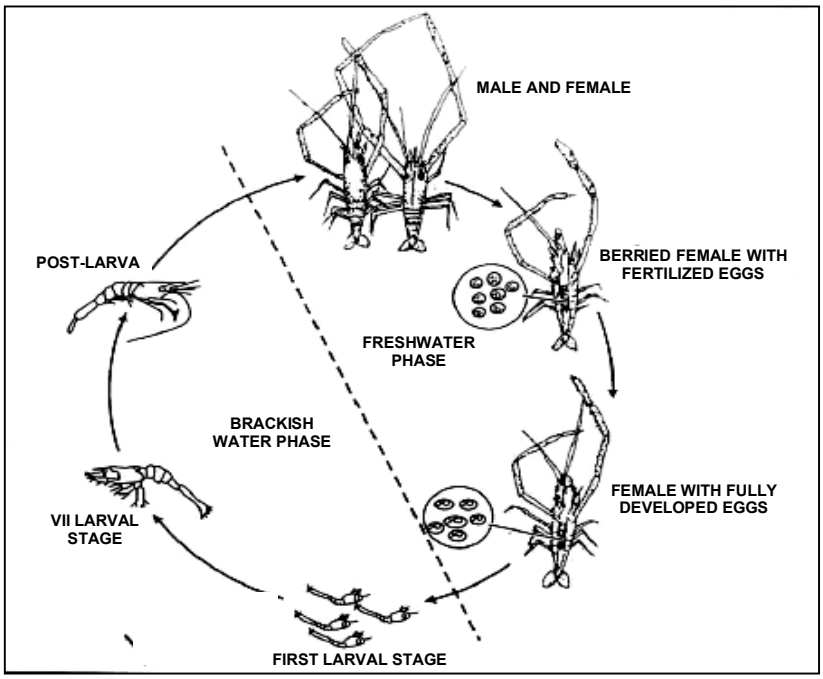

चित्र क्र. 4.3: Life-cycle of Macrobrachium rosenbergii

300 × 150 × 40cm वाले हौज उपयुक्त होते हैं। इन हौजों की स्वच्छता एवं वायु के आदान–प्रदान की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। जब अण्डों का रंग धूसर होने लगता है तब प्रत्येक मादा को अलग–अलग हैचिंग टैंकों में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

हौजों में 4–5 ppt खारेपन का करीब 100 लीटर जल रखा जाता है। हैंचिंग होते ही लार्वो को रियरिंग हौजों (rearing tanks) में रखा जाता है। इन

टिप्पणी

टैंकों/हौजों में जल समान खारेपन का होता है। अब धीरे–धीरे जल का खारापन बढ़ाकर 14 ± 2 ppt कर दिया जाता है तथा लार्वों की सभी 11 अवस्थाओं को इसी खारेपन में पाला जाता है। लार्वा रियरिंग हौजों को ढक कर रखना चाहिए ताकि सूर्य की सीधी किरणों से इन्हें बचाया जा सके। जल दूषित न हो इसके लिए हौजों की तली पर बचे हुए भोजन एवं लार्वों के उत्सर्जन आदि के फलस्वरूप उत्पन्न मलवें की समय–समय पर साइफन द्वारा सफाई की जाती है। आवश्यकतानुसार समान खारेपन एवं तापमान वाले जल से टैकों के जल को आंशिक तौर पर बदलना भी जरूरी होता है।

हैचिंग के प्रथम 24 घण्टे तक लार्वा अपने पीतक (yolk) के सहारे जीते हैं इसिलिए इस दौरान इन्हें बाहर से भोजन देने की आवश्यकता नहीं होती है। दूसरे दिन से लार्वा को निर्धारित भोजन दिया जाता है।

सारणी क्र. 4.3: महाझींगा के लार्वा को भोजन देने का निर्धारित सारणी

लार्वों की आयु (दिन)	अवस्था	भोजन के विभिन्न घटक और उनकी मात्रा	
		अण्डे का कस्टर्ड	मोयना (Moina) और आर्टीमिया (Artemia)
2–5	I–II	1 ग्राम/1000 लार्वा	1–3 लार्वा
6–15	III–V	2 ग्राम/1000 लार्वा	4–6 लार्वा
16–20	VI–XI	3 ग्राम/1000 लार्वा	10–20 लार्वा

थाईलैण्ड में लार्वो को सूखे हुए कुक्कुट शावक रक्त (Chicken blood) का पाउडर भोजन के रूप में दिया जाता है। हवाई (अमेरिका) में महाझींगा के लार्वों को पादपप्लवक (Phytoplanktons) खिलाए जाते है।

लार्वो को कृत्रिम भोजन देने पर सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बचे हुए भोजन के कणों एवं मल पदार्थों को प्रतिदिन दो बार हटाने की व्यवस्था होनी चाहिए। कभी–कभी अधिक भोजन खा लेने से अथवा गन्दगी से लार्वों में कवकों का असाध्य संक्रमण हो जाता है। ऐसे संक्रमित लार्वों के उपंगों के आधार तथा पुँछ पर सफेद धब्बे पड़ जाते है। संक्रमित लार्वों को तुरन्त निकालकर नष्ट कर देना चाहिए और यदि संक्रमित लार्वो की संख्या अधिक है तो सभी लार्वों को समाप्त कर देना चाहिए।

लार्वा लगभग 35 से 40 दिनों में कायान्तरित (Metamorphosis) होकर पोस्टलर्वा (Postlarva) की अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था में इनकी रूपरेखा नन्हें वयस्क झींगों जैसी होती है तथा ये पूर्णतया नितलजीवी (Benthic) होती है।

2. नर्सरी अवस्था (Nursery Phase)– नर्सरी अवस्था वास्तव में हैचरी एवं संवर्धन तालाब के बीच की एक कड़ी है। इस चरण में हैचरी में तैयार किये गये पोस्टलार्वों (1 सेमी के छोटे बीज) को पालकर बाल अवस्था (Juvenile stage)

(2–3 सेमी) में विकसित कराया जाता है। नर्सरी के रूप में 50 से 200 वर्गमीटर क्षेत्रफल के मिट्टी के तालाबों, सीमेण्ट के हौजों (cisterns), फाइबर ग्लास के टैंकों का उपयोग किया जाता है।

टिप्पणी

नर्सरी में रखने से पहले पोस्टलार्वो को 2–3 दिन तक कम खारेपन वाले जल में उत्तरोत्तर रखते हुए स्वच्छ जल के लिये पूर्णरूप से अनुकूलित (Acclimatise) कर लिया जाता है। नर्सरियों में पास्टलार्वों को 2,000 से 3000 प्रति वर्गमीटर की दर से संग्रहित करते हैं। पास्टलार्वों में इस अवस्था में किसी आधार पर चिपके रहने की आदत होती है अतः अधिक–से–अधिक आधार उपलब्ध कराने के लिये नर्सरियों में पॉलीथिन के फीते रख दिये जाते है। भोजन के रूप में पोस्टलार्वों को मायना (Moina), कायरोनामस (Chironomus), लार्वा, केंचुओं के टुकड़े, सीपी (Mussel) का माँस, छोटी झींगी (Acetes), धान की चोकर (Rice bran) तथा मूँगफली की खली (oil cake) से तैयार की गई गुटिका (pellets) दी जाती है। प्रत्येक पोस्टलार्वा को 10–15 मोयना तथा शेष भोजन पोस्टलार्वो के कुल भार के 10 प्रतिशत की दर से दिया जाता है, प्रतिदिन 3–4 बार भोजन देते हैं। बीजों की उत्तरजीविता (survival) प्रबन्ध कौशल के अनुरूप 30–90 प्रतिशत तक होते है।

4.5 संवर्धन प्रौद्योगिकी (Culture Technology)

झींगों के संवर्धन तथा खेती के लिए निम्नलिखित कारकों का विशेष ध्यान रखना चाहिए–

1. **स्थान चयन (Site Selection)**– स्थान चयन के समय मुख्यतः स्थलाकृति (Topography) मृदा के प्रकार, स्वच्छ जल का स्रोत, आवागमन की सुविधा आदि बातों का ध्यान रखना चाहिए। मिट्टी में जल अवरोधन की क्षमता अधिक होनी चाहिए। स्वच्छ जल के झींगों के संवर्धन के लिये सबसे उपयुक्त मृदा विन्यास (soil texture), बलुई दुमट (sandy loam), बलुई–मटियार दुमट (sandy-clay loam), गाद मटियार (silt-clay) या गाद–मटियार दुमट (silt-clay loam) होती है।
2. **तालाब (Pond)**– स्वच्छ जल के झींगों के संवर्धन के लिए विभिन्न आकार, आकृति एवं गहराई के तालाबों का उपयोग किया जाता है। 0.2–1.0 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाला तालाब इस कार्य के लिये सर्वथा अनुकूल होता है। मृदा अपरदन (Soil erosion) रोकने के लिए तालाब पर बाँध बनाने चाहिए। तालाब के छिछले सिरे पर जलागमन के लिए तथा विपरित गहराई वाले सिरे पर जल निर्गमन के लिए पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।
3. **जल (Water)**– जल की आपूर्ति एवं गुणवत्ता झींगा संवर्धन के सबसे महत्वपूर्ण पहलू हैं। संवर्धन के लिए तालाब के जल के विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक गुण निम्न प्रकार होने चाहिए–

टिप्पणी

तापमान	:	18–34°C
कठोरता ($CaCO_3$)	:	40–150 ppm
पारदर्शिता	:	40 सेमी लगभग
pH	:	7.0–8.5
घुलित ऑक्सिजन	:	5–8 ppm
लवणता	:	0.25–0.75 ppm
कैल्शियम	:	150 ppm से कम
फॉस्फोरस	:	1 ppm से कम
नाइट्रेट	:	1 ppm से कम

4. **वातन (Aeration)**– सामान्यतया स्वच्छ जल के झींगों के तालाबों में वातन की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं की जाती परन्तु जल में लहरें पैदा करके घुलित ऑक्सीजन में वृद्धि की जाती है। इसके लिए तालाब के जल की सतह के ऊपर से जल को छोड़ा जाता है जल को निरन्तर बदलते रहने से भी घुलित ऑक्सीजन की मात्रा एवं गुणवत्ता को एक समान बनाये रखा जा सकता है।

4.5.1 झींगा संवर्धन हेतु तालाब प्रबन्धन (Pond Management for Prawn Culture)

तालाब को तैयार करते समय सबसे पहले पुराने तालाब से झींगे तथा जल निकालकर उन्हें सूखने दिया जाता है। फिर कीचड़/मिट्टी निकालकर बाँधों पर डाली जाती है। तालाब सूखने तक इसमें हल जोतकर मिट्टी को उलट पुलट दिया जाता है (Tilting)। इसके बाद इसमें चूने का पाउडर 200 से 500 किलोग्राम प्रति हेक्टयर की दर से मिलाया जाता है ताकि अनचाहे कीट या अन्य जीव–जन्तु समाप्त हो जायें एवं जल का pH 8 के निकट बना रहे। चूना मिलाने के कुछ दिन बाद तालाब में जल भर दिया जाता है। अब अच्छे उर्वरक और खाद का चयन करके इनका मिश्रण या घोल तालाब में डाला जाता है।

झींगा संग्रहण (Stocking of Prawn)

चूना एवं खाद मिलाने के करीब पन्द्रह दिन बाद तालाब में बीजों (seeds) का संग्रहण किया जाता है। सामान्यतया 3–4 हफ्ते उम्र के पोस्टलार्वों का संग्रहण किया जाता है। बीजों के परिवहन के लिए पॉलिथिन के थैलों का उपयोग किया जाता है। झींगों के इन बीजों को तालाब के जल के ताप एवं pH पर अनुकुलित करने के लिए पहले 15 से 20 मिनट तक पॉलिथिन के थैलों को तालाब में तैराते हैं उसके बाद थैलों के पोस्टलार्वो को तालाब में छोड़ते है। संग्रहण करने के लिए 22–24° C का ताप उपयुक्त होता है। 20°C से कम ताप पर संग्रहण नहीं किया जाता है। तालाब में 40,000 ± 10,000 प्रति हेक्टेयर की दर से बीजों का संग्रहण किया जाता है।

टिप्पणी

झींगा का आहार (Feed of Prawn)

झींगे दिन के समय छिपने वाले स्थानों में आराम करते हैं और रात के समय सक्रियता से भोजन करते है। हालांकि तालाब में जैविक चक्र द्वारा उत्पादित भोजन उपलब्ध रहता है फिर भी तेज वर्धन के लिये संचित झींगों को अलग से भोजन देने की आवश्यकता होती है। इसके लिये संपूरक भोजन के रूप में चावल के टूकडे, खुली, कसावा (Tapioca) की जड़, छोटी झींगी (Acetes), घोंघा (Snail), सीपी (Mussel), झींगा और मछलियों के अवशेष आदि दिये जाते है। तालाब में भोजन कितना डाला जाये उसका पता करने के लिये झींगों की संख्या तथा उनका वजन जानना आवश्यक होता है। भोजन की मात्रा प्रत्येक पन्द्रह दिन में एक बार झीगों के वजन और जीवित झींगों की संख्या का अनुमान लगाकर बढ़ायी जाती है। भोजन की मात्रा कुल भार की 10–20 प्रतिशत की दर से सुनिश्चित की जाती है। भोजन दिन में एक या दो बार दिया जाता है। भोजन को मिट्टी के बने खुले कटोरों (Troughs) या प्लास्टिक की ट्रे में दिया जाता है। ये बर्तन तालाब में किनारे–किनारे पानी की तह में रखे जाते है। इस प्रकार झींगों की वृद्धि–दर देखने का कार्य सहज हो जाता है। स्वभक्षण (Cannibalism) से बचाव के लिए झींगों को कभी भूखा नहीं रहने दिया जाता है।

आमतौर पर झींगों को दिये जाने वाले आहार से झींगों का भार बढ़ता है। कच्चा आहार (raw feed) देने पर खाद्य परिवर्तन अनुपात (Food conversion ratio) 1:7–8 होता है और संयुक्त सूखा आहार (dry feed) देने पर यह अनुपात 1:2–3 होता है। आठ महीने से अधिक हो जाने पर खाद्य परिवर्तन अनुपात कम हो जाता है।

झींगा का फसल संग्रहण (Harvesting of Prawn)

फसल प्राप्ति के समय का निर्धारण झींगो की वृद्धि –दर तथा बिक्री योग्य आकार के आधार पर किया जाता है। बड़े आकार के झींगों को पकड़ने के लिये 4–5 सेमी मेश (mesh) वाले ड्रैग जाल (Drag Net) का उपयोग किया जाता है। झीगों को पकड़ने के लिए एक दूसरी विधि भी है जिसके अन्तर्गत तालाब में पहले एक छँटा जाल (Cast net) फेंककर झींगे इकट्ठा किये जाते है फिर शेष बचे झींगों को तालाब का जल निकालने के पश्चात कीचड़ से चुना जाता है। इस कार्य में प्रति हेक्टेयर लगभग 20 घण्टे का समय लगता है।

झींगे के संग्रहण हेतु सुबह का समय सर्वोत्तम होता है क्योंकि इस समय तापमान कम होता है तथा इस समय निकाले गये झींगे जल्दी खराब नहीं होते। झींगों को घूप में नहीं रखना चाहिए तथा पकड़ने के तुरन्त बाद संरक्षण की प्रक्रिया पूर्ण करनी चाहिए।

4.6 झींगा मत्स्यन (Prawn Fishing)

टिप्पणी

इनमें से कुछ केवल मछलियों को पकड़ने के लिए, कुछ केवल झींगों को पकड़ने के लिए तथा कुछ झींगों, महाझींगों (Lobsters) तथा केंकड़ों (Crabs) को पकड़ने के निम्न संसाधन उपयोग में लाये जाते हैं।

4.6.1 जलयान (Crafts)

जलयान का प्रयोग मछुआरों एवं संभारों को लानें–ले जाने तथा बड़े–बड़े जालों के संचालन हेतु किया जाता है। इसके अन्तर्गत बेड़ो (Rafts), डोंगियों (Canoes), साधारण एवं यन्त्रसज्जित नावों (Boats) तथा जलपोंतों (Ships) को सम्मिलित किया गया है–

1. **बेड़े (Rafts)**– बेड़े सर्वाधिक साधारण एवं पुरातन मत्स्यन नौयान है जिनका प्रयोग अन्तर्देशीय जल में मत्स्यन हेतु किया जाता है। ये लट्ठों (Logs) या पटरों (Planks) जैसे उत्प्लावक वस्तुओं को जोडकर बनाये गये प्लेटफार्म के समान होते हैं। भारत में उपयोग में लाये जाने वाले सर्वाधिक पुरातन बेड़े को कैटामारन (Catamaran) के नाम से जाना जाता है। कैटामारन शब्द की उत्पत्ति तमिल शब्द कट्टू मारम (Kattu maram (Kattu = बाँधना, maram = लकड़ी) से हुई है। कैटामारन अनेक लकड़ी के लट्ठों को बाँधकर तैयार किया जाता है जिनके अग्र सिरों को काटकर तिरछा (Slanting) कर दिया जाता है जो जल को काटने में सहायक होता है। दक्षिण भारत एवं बिहार के कुछ भागों में मिट्टी के बर्तनों से बने बेड़े का उपयोग किया जाता है जिसे चट्टी (Chatty) कहते हैं। चट्टी में तीन– तीन मिट्टी के घडों की तीन कतारें होती हैं। प्रत्येक कतार के घडों के मुख के दोनों ओर बाँसों को बाँधकर प्लेटफार्म तैयार किया जाता है तथा घडों के मुख को बन्द कर दिया जाता है।

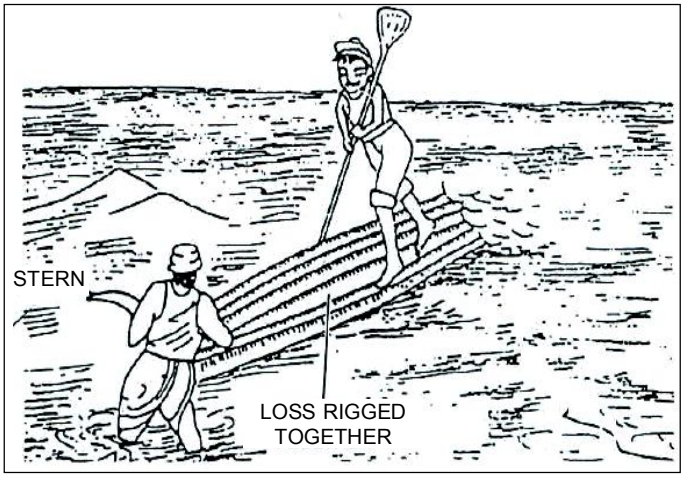

चित्र क्र. 4.4: A Raft

टिप्पणी

2. **डोंगी (Canoe)**– छोटी एवं खुली नावों को डोंगी कहते हैं। इनका उपयोग नदियों, एस्चुअरी तथा तटवर्ती छिछले समुद्र में किया जाता है ये सामान्यतया 3.5 × 14 मीटर की होती हैं और पतवारों द्वारा चलाई जाती हैं। इन्हें वान्ची (Vanchi), थोनी (Thoni) तथा होडी (Hodi) आदि नामों से जाना जाता है। डोंगियों का निर्माण एक ही लट्ठे को बीच में काटकर भी किया जाता है। इस प्रकार से बनी डोंगी को डोंगा (Donga) या डग–आउट डोंगी (Dug-out Canoe) भी कहते हैं। इन डोंगियों का उपयोग काठियावाड़, केरल, कोंकण तथा तमिलनाडु में मत्स्यन हेतु किया जाता है।

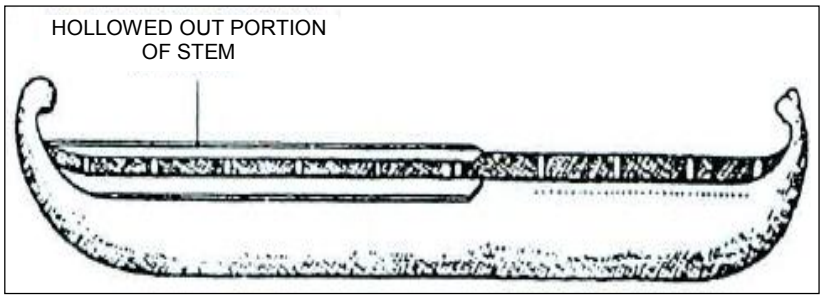

चित्र क्र. 4.5: A dugout canoe

बड़ी नावों का निर्माण पटरों (Planks) से किया जाता है तथा इनका आमाप 18 x 3 मीटर तक होता है। इनका उपयोग क्लोम–जाल (Gill net) तथा महाजाल (Drag net) के परिचालन हेतु किया जाता है।

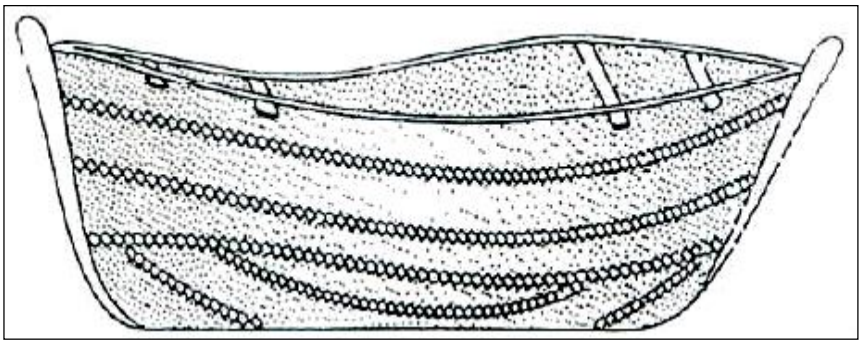

चित्र क्र. 4.6: Masula boat

बड़ीं नावें अनेक प्रकार की होती है जिन्हें विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है। मैसुला (Masula) नावें पट्टी एवं ढाँचा (Ribs and frame) रहित होती है तथा इनमें पटरों को रस्सियों की सहायता से सिला जाता है। इनकी लकड़ी चौडाई 2.5 मीटर तथा गहराई 1.25 मीटर होती है। इसी प्रकार पट्टी एवं ढाँचे पर पटरों को कील की सहायता से ठोंक कर बनाई गई नाव का नाव (Nava) के नाम से जाना जाता है।

भारत में सबसे पहले मोटरयुक्त नावों का प्रयोग महाराष्ट्र में प्रारम्भ हुआ। एक ओर जहाँ गैर–यन्त्र सज्जित (Non-mechanised) नावों से 5–20 मीटर की गहराई तक ही मत्स्यन कार्य किया जा सकता है वहीं दूसरी ओर मोटरयुक्त इन नावों से 40 मीटर की गहराई तक झींगा पकड़ने का कार्य किया जाता है। इन

टिप्पणी

नावों पर 8 से 10 मछुआरे कार्य करते हैं। इन मोटरयुक्त नावों के कारण बहुत कम समय में ही मत्स्यन क्षेत्र में जाकर तट पर वापस लौटना सम्भव हो सका। ऐसी ही कुछ मोटरयुक्त नावों के नाम है– सत्पथी (Satpathi), मछुवा (Machua), नौक (Nauk) आदि।

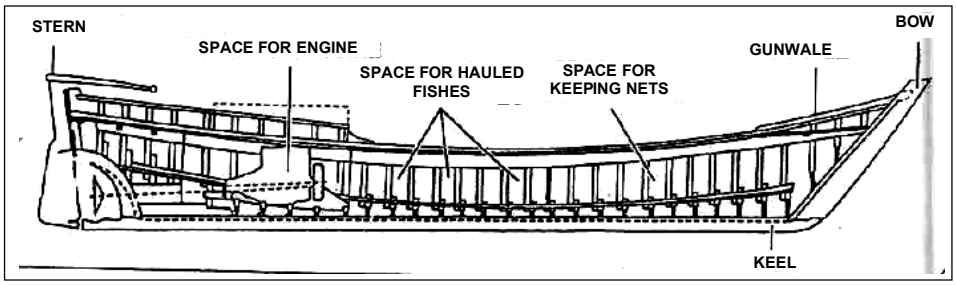

चित्र क्र 4.7: A Mechanises Satpathi boat

4. **जलपोत (Ships)**– आजकल मत्स्यन के लिए जलपोतों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें ट्रॉलर (Trawler) कहते है ये तकनीकी रूप से अति विकसित होते है। उच्च क्षमता वाले इंजन के साथ इन ट्रॉलरों में वातानुकूलित कमरे, प्रयोगशालाएँ तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त ये प्रतिध्वनिक गम्भीरमापक (Ecosounders), प्रशीतक, राडार, रेड़ियो, टेलीफोन जैसे उपकरणों से सुसज्जित होते हैं। आधुनिक समय में इन ट्रॉलरों के निर्माण में लकड़ी एवं स्टील के स्थान पर फाइबर ग्लास (Fibre glass) का प्रयोग किया जा रहा है।

4.6.2 मत्स्य संभार (Fishing Gears)

मत्स्यन में झींगों को पकड़ने के लिए प्रयोग मे लायी जाने वाली युक्तियों (Devices) को मत्स्यन संभार या साज –सामान कहते हैं। झींगा सामान्यतया तली में रहना पसन्द करते हैं और अपने प्लिओपॉड्स (Pleopods) की सहायता से तैरकर अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। इनके आहार, स्वभाव, प्रवसन, प्रजनन आदि के अनुरूप इनको पकड़ने के लिए विभिन्न युक्तियों का निर्माण किया जाता है। इन युक्तियों में प्रमुख हैं– जाल (Nets) तथा विपाश (Traps)–

1. **जाल (Nets)**– सामान्यतया जाल कपास (Cotton), सन (hemi), नाइलॉन (nylon) या इनके मिश्रण से बनाये जाते हैं। निम्न प्रकार के जालों का उपयोग झींगा पकड़ने के लिए किया जाता है–

   (i) बैरियर जाल (Barrier nets)– ये दीवार की तरह के जाल होते हैं जो तटों पर बाँस के डण्डों की सहायता से लगाये जाते है। गुजरात में इन्हें पट्टीजाल (Patti net), आन्धप्रदेश में मूलकाठी जाल (Moolakathi net), बंगाल में चारपठा जाल (Charpata net) तथा तमिलनाडु में कोंडावलाई (Kondavalai) कहते हैं।

   (ii) नौका कोना–जाल (Boat seines) – ये बड़े आकार के जाल होते हैं जिसका पाश्च सिरा तिकोने थैले की तरह का होता है तथा मुख के आगे दोनों तरफ पंख समान फैला रहता है। मध्य के भाग पर

टिप्पणी

कई छल्ले लगे रहते हैं जिनके बीच में भिन्न आकार के जाल–छिद्रा (Mesh) वाला जाल लगा होता है। इन्हें पश्चिमी तट पर सुल्तान जाल (Sultan net), ओडिशा में इरगवी जाल (Ergavi net) आन्ध्र प्रदेश मे इरेगा जाल (Erega net) तथा तमिलनाडु में थुरीवलाई (Thurivalai) के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार के जाल गहरे जल में झींगा पकड़ने के काम आते हैं।

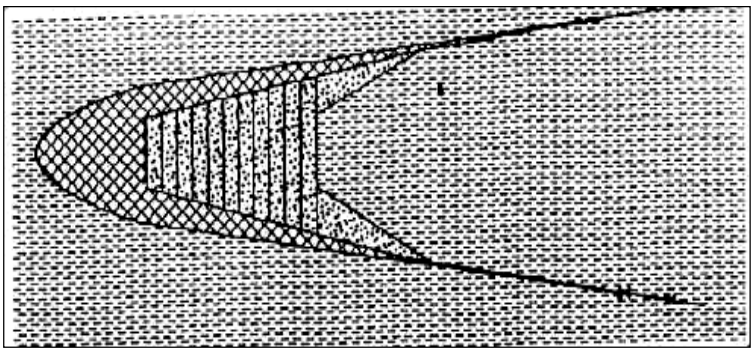

चित्र क्र. 4.8: Ergavi net

(iii) तीर कोना –जाल (Shore sceines) – इस प्रकार के जाल समुद्र के किनारे छिछले जल में झींगों को पकड़ने के काम आते हैं। इन्हें कोंकण में रम्पानी जाल (Rampani net), आन्ध्र प्रदेश में अलीवीवाला (Alivivala), केरल में काम्बावाला (kambavala) तथा तमिलनाडु मं पेरियावलाई (Periavalai) के नाम से जाना जाता है।

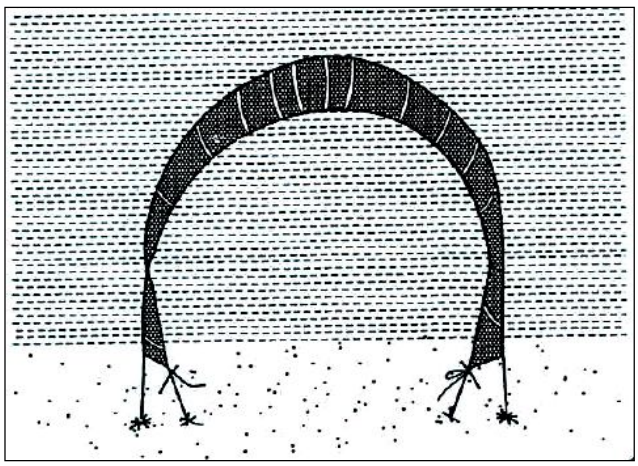

चित्र क्र. 4.9: Rampani Net

(iv) महाजाल (Drag nets)– ये जाल नाव से बाँध दिये जाते हैं और जैसे–जैसे नाव बढ़ती जाती है जाल भी जल में खिंचता चला जाता है। गुजरात में यह बेरीवाला (Barivala), आन्ध्र प्रदेश में पक्का

टिप्पणी

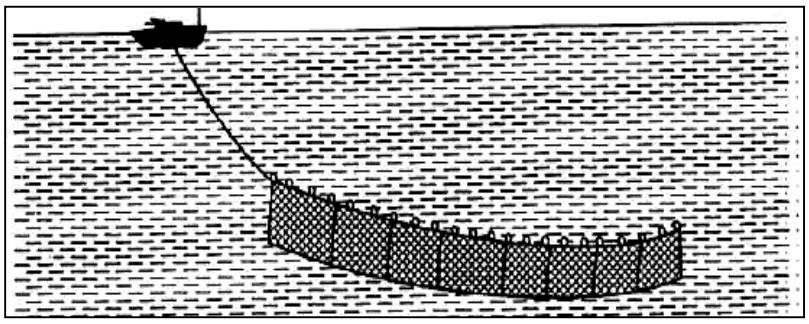

चित्र क्र. 4.10: A Drag net

देवूवाला (Pakka devuvala), केरल में कोरुवाला (Koruvala) तथा तमिलनाडु में कोंडावलाई (Kondavlai) के नाम से ही जाना जाता है।

(v) प्रवाही जाल (Drift nets) – इस प्रकार के जाल जल की सतह से नीचे फैलाये जाते हैं और फिर ऊपर की तरफ खींचकर उठा लिये जाते हैं। आन्ध्र प्रदेश में केलावाला (kelavala) तथा केरल में कन्थावाला (Kanthavala) के नाम से इन्हें पुकारा जाता है।

(vi) पाश जल (Cast nets)– इस प्रकार के जाल का प्रयोग एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाता है। इसे महाराष्ट्र में पैग जाल (Pag net), उड़ीसा में केफा जाल (Kepha net) तथा बंगाल में केपला जाल (Kepla net) के रूप मे जाना जाता है।

2. **विपाश (Traps)**– विपाश झींगों तथा मछलियों को पकड़ने की प्राचीन युक्तियों में से एक है। देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की युक्तियों का उपयोग किया जाता है। इनका प्रयोग जन्तु को घेरने अथवा फाँसने हेतु किया जाता है। कुछ विपाशों में जन्तु को आकर्षित करने हेतु चारे (Bait) का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए यहाँ दो विपाशों का वर्णन किया जा रहा है–

(i) ओट्टल (ottal)– ओट्टल (Ottal) नामक मानव परिचालित विपाश का प्रयोग केरल में झींगा पकड़ने के लिए किया जाता है। यह एक टोकरीनुमा (Basket like) विपाश है जो लकड़ी की पतली पट्टियों या बेंत को रस्सियों की सहायता से बाँधकर बनाया जाता है और दोनों सिरों पर खुला रहता है। ऊपर वाला मुख सँकरा 15 सेमी. व्यास का तथा नीचे वाला मुख बड़ा लगभग 50 सेमी. व्यास का होता है तथा इसकी ऊँचाई 50–60 सेमी. होती है। चौड़े वाले सिरे पर पट्टियों के सिरे नुकीले होते हैं जिनकी सहायता से यह कीचड़ में आसानी से धँस जाता है। इस प्रकार इन्हें जल में डुबोकर झींगों के ऊपर रख दिया जाता है तथा ऊपरी मुख से हाथ डालकर झींगों को बाहर निकाल लेते है।

टिप्पणी

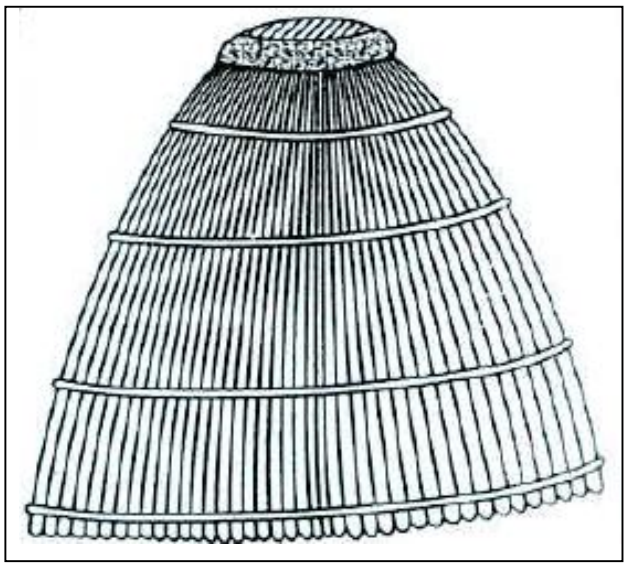

चित्र क्र. 4.11: Ottal

झींगों को आकर्षित करने के लिए चारे का उपयोग करते है। चारे हेतु पकायी हुई जड़ा अथवा मछली या चूजों की आँत के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता हैं। चारे को एक लकड़ी में फसा कर जल में धँसा देते हैं। जैसे ही झींगे आकर्षित होकर चारे को पकड़ते हैं लकड़ी हिलने लगती है। उसी समय विपाश को ऊपर से जल में डुबोकर झींगों को बन्द कर लेते हैं तथा ऊपरी मुख से हाथ डालकर बाहर निकाल लेते हैं। उपर्युक्त वर्णित विपाश को ओड़िशा में पोलुहा (Poluha), बिहार में मुछू (Muchu), बंगाल मे पोलो (Polo), मध्य प्रदेश में छापा (Chhapa) नाम से जाना जाता है।

(ii) बाजा (Baja)– यह भी एक प्रकार का विपाश है जिसे नदियों तथा झींलों में विशिष्ट प्रकार से– झींगों को पकडने के काम आता है।

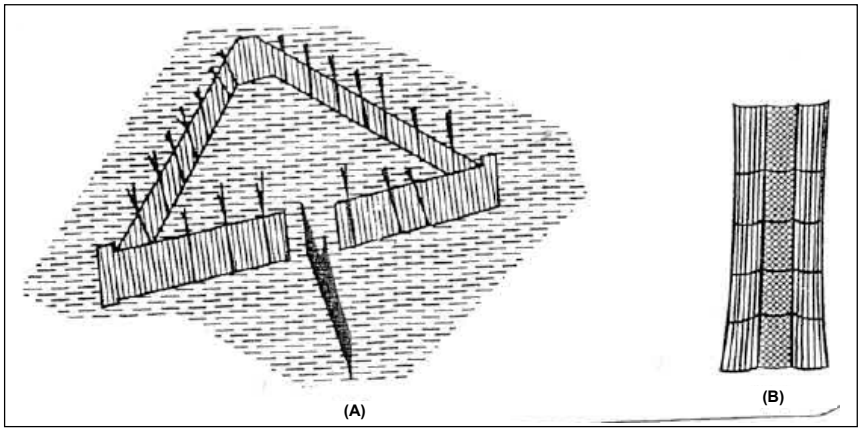

चित्र क्र. 4.12: A Baja trap (A) and its longitudinal value (B)

टिप्पणी

4.7 झींगों का परिरक्षण तथा प्रसंस्करण (Preservation and Processing of Prawns)

झींगों को पकड़ने के पश्चात् संरक्षण की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देनी चाहिए क्योंकि सामान्यतया 4 घंटे बाद झींगे खराब होने लगते हैं तथा 6 से 8 घण्टों बाद खाने योग्य नहीं रहते।

विकृति के कारण (Causes of Spoilage)– झींगों की विकृति के तीन सम्भावित कारण होते है– **स्वलयनीय** (Autolytic), **जीवाण्विक** (Bacterial) तथा **रासायनिक** (Chemical)।

स्वलयनीय विकृति– झींगे के शरीर में पहले से ही पाये जाने वाले अन्तराकोशिक एवं आन्तरकोशिक एन्जाइमों के क्रियाकलापों के कारण होती है। ये एन्जाइम ऊतकों के लगभग सभी घटकों को निम्नीकृत करके अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, स्केटॉल (Skatol) स्वतन्त्र वसीय अम्ल, ग्लिरॉल आदि मुक्त करते हैं।

जीवाण्विक विकृति– ताजे झींगों के मांस में पहले से ही पाये जाने वाले जीवाणुओं के कारण होती है। ये जीवाणु अधिकतर मध्यतापरागी (Mesophiles) होते हैं जो 10– 45° तापक्रम पर बहुत तीव्रता से वृद्धि करते हैं। झींगे की पेशियों में स्वतन्त्र अमीनो अम्ल अधिक पाये जाते हैं जो ताजे झीगों में पाये जाने वाले जीवाणुओं के लिए अभीष्ट भोजन (ideal food) का कार्य करते हैं अतः झींगों की मृत्यु के पश्चात ये जीवाणु वृद्धि करके तीव्रता से विकृति उत्पन्न करते है। चूँकि जीवाणुओं की सर्वाधिक संख्या सिर वाले क्षेत्र में पायी जाती है अतः साबुत झींगों में विकृति बहुत तीव्रता से उत्पन्न होती है।

रासायनिक विकृति– वायुमण्डलीय ऑक्सीजन द्वारा होने वाले ऑक्सीकरण के कारण होती है जिसके परिणामस्वरूप विकृतिगंधिता (Rancidity), दुर्दमता (Malignancy) तथा प्रोटीन एवं वसा में जल अपघटीय परिवर्तन उत्पन्न होते है। झींगों में टाइरोसिनेज (Tyrosinase) एन्जाइम की उपस्थिति में टाइरोसिन (Tyrosine) या हाइड्रॉक्सीफिनाइएलेनीन (Hydroxyphenylalanine) तथा ऑक्सीजन के मध्य होने वाली अन्योन्यक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली अतिकृष्णता (Melanosis) बहुत महत्वपूर्ण विकृति होती है। काला विवर्णन (Black discoloration) सबसे पहले सिर तथा पूँछ वाले क्षेत्र में प्रारम्भ होती है तत्पश्चात् यह उदर क्षेत्र में एवं मांस में फैल जाता है।

परिरक्षण तथा प्रसंस्करण (Preservation and Processing)– झींगों को पकड़ने के तुरन्त बाद उन्हें साफ पानी से धोकर उपयुक्त टोकरी, बॉक्स या क्रेट्स में छोटे–छोटे बर्फ के टुकडों से बनी सतहों के बीच रखना चाहिए । सम्पूर्ण झींगों को उचित रूप से बर्फ से ढ़कने के बाद संसाधन संयन्त्रों में भेजा जाता है। बर्फ के टुकड़ों को 5–10 ppm के क्लोरीन जल से धोकर जीवाणुओं के संदूषण (Contamination) से मुक्त कर लेना चाहिए। थोड़े समय के लिए यदि परिरक्षण करना हो तो झींगों को बर्फ में रखना श्रेयस्कर होता हैं। 0°C में रासायनिक

क्रियाओं की दर बहुत कम हो जाती है जिससे रासायनिक विकृति रुक जाती है। इसके अतिरिक्त 0°C पर मीजोफिलिक जीवाणु भी मर जाते है जिससे जीवाण्विक विकृति भी नहीं होने पाती है।

टिप्पणी

झींगों को निर्यात करने के लिए इन्हें संरक्षित करना आवश्यक होता है। लम्बी अवधि कि लिये झींगों को संरक्षित करने के लिए निम्नलिखित दो विधियाँ प्रचलन में है–

1. सर्वप्रथम झींगों का सिर अलग करके काइटिन प्लेटों को हटाया जाता है। इसके पश्चात इन्हें खौलते हुए 10 प्रतिशत लवणीय जल (Brine solution) में 1.5 से 3 मिनट तक डुबोया जाता है। इसे विवर्णन (Blanching) कहते है। विवर्णन करने के उपरान्त झींगों को, पहले से 2°C पर ठण्डे किये गये शुद्ध क्लोरीन जल में डुबोया जाता है। इसे कांचितीकरण (Glazing) कहते हैं। अब झींगों को पॉलिथिन स्तरित कार्ड बोर्ड के डिब्बों में बन्द कर −14° से −23°C के गहरे हिमीकरण (Deep freezing) में संग्रहित कर लिया जाता है।
2. दूसरी विधि में झींगो के सिर तथा काइटिन प्लेटों को अलग करने के बाद शुद्ध क्लोरीन जल में साफ किया जाता है उसके बाद 3–5 मिनट तक पानी से निकाला जाता है। अब इन्हें 12 प्रतिशत सोडियम ट्राइपॉलीफॉस्फेट (Sodium Tripolyphosphate) 4 प्रतिशत पोटेंशियम डाइहाइड्रोजन फॉस्फेट (potassium dihydrogen phosphate) तथा 16 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride) मिश्रित घोल में 90 ml/kg की दर से मिलाया जाता है। माँस तथा घोल के इस मिश्रण को 5% लवणीय जल में 45 सेकण्ड के लिए ठण्डा किया जाता है और इसके तुरन्त बाद इसे बर्फ के पानी में ठण्डा कर दिया जाता है। ठण्डे होने के उपरान्त निर्जलीकरण करके इन्हें वायुरोधी डिब्बो या टिनों में बन्द कर दिया जाता है। डिब्बों अथवा टिनों में बन्द किये गये झींगों के साथ सबसे बडी समस्या माँस के काले पड़ जाने की होती है। चूँकि झींगे के माँस में ताँबा (Copper) होता है अतः इन्हें ताँबे अथवा लोहे के टिनों में संग्रहित नहीं करना चाहिए अन्यथा माँस काला पड़ सकता है–
   (i) डिब्बे के अन्दर के लवणीय घोल का pH 6.4–6.6 के मध्य व्यवस्थित रखना चाहिए। इस कार्य हेतु लवणीय घोल में ऐसीटिक अम्ल मिलाना चाहिए।
   (ii) डिब्बों को 20–25 मिनट तक 0.7 kg/sq. m. के वाष्पीय दाब पर संसाधित करना चाहिए।
   (iii) माँस को ताँबे अथवा लोहे के संदूषण से मुक्त रखने के हर सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए।

टिप्पणी

4.8 झींगों के परजीवी तथा बीमारियाँ (Parasites and Diseases of Prawns)

झींगों को अनुकूलतम वातावरण मिलते रहने पर बीमारियों की सम्भावनाएँ बहुत क्षीण हो जाती हैं। कभी–कभी वातावरणीय दशाओं के प्रतिकूल हो जाने पर विशेषकर घुलित ऑक्सीजन के कम हो जाने पर झींगों में समूह मर्त्यता (Mass mortality) देखी जाती है–

1. Protozoan diseases, 2. Algal, 3. Bacterial (Black spot disease), 4. Viral disease, प्रोटोजोआ संघ के जन्तु; जैसे– वरटीसेला (Vorticella), इस्पीस्टाइलिस (Epistylis), एसिनेटा (Acineta), जूथैम्नियम (Zoothamnium), वैजिनीकोला (Vaginicola) तथा कुछ शैवाल (Algae) झींगों के शरीर के विभिन्न भागों पर कॉलोनी बनाकर बाह्य– परजीवी के रूप में रहते हैं। मैलाकाइट ग्रीन (Malachite green) के 0.2 ppm घोल से प्रतिदिन आधे घण्टे अथवा कॉपर सल्फेट (Copper sulphate) के 0.4 ppm घोल से केवल एक बार उपचार करने पर प्रोटोजोन संक्रमण से लार्वो की सुरक्षा की जा सकती है।

स्वच्छ जल के झींगों के संवर्धन में ब्लैक स्पॉट बीमारी (Black spot disease) का पाया जाना एक आम बात है यह बीमारी जीवाणुओं एवं कवकों के संक्रमण से हो जाती है, परन्तु स्वस्थ झींगों में यह बीमारी नुकसान देय नहीं होती क्योंकि निर्मोचन के समय यह स्वतः दूर हो जाती है। स्यूडोमोनास (Pseudomonas), एअरोमोनास (Aeromonas) जैसे बैक्टीरिया ब्लैक स्पॉट बीमारी फैलाते हैं।

कुछ वाइरस (Virus); जैसे– मोनोडॉन बैकुलो वाइरस (Monodon Baculo Virus– MBV) तथा इनफेक्शन हिमैटोपॉइटिक हाइपोडर्मा–नेक्रोसिस वाइरस (Infectious Hematopoietic Hypoderma–Necrosos Virus–IHHNV) भी झींगों में संक्रमण करते हैं। दोनों विषाणुओं (Viruses) के संक्रमण से पोस्टलार्वा तथा बाल अवस्था में समूह मर्त्यता होती है।

झींगों के लार्वा निकोटीन (Nicotine) के प्रति अतिसंवेदनशील होते है अतः जिन टैंकों अथवा तालाबों में लार्वा पालन हो रहा हो, उसके आस–पास सिगरेट आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

6. स्कैम्पी या महाझींगा कहते है–

(अ) पीनियस मोनोडॉन को (ब) मेटापीनियस एफिनिस को

(क) मैक्रोब्रैकियम रोजेन्बगाई को (ड) मैक्रोब्रैकियम मैल्क्मसोनाई को।

टिप्पणी

7. टाइगर झींगा है–

(अ) पीनियस मोनोडॉन (ब) पैलीमॉन स्टाइलीफेरा

(क) मैक्रोब्रैकियम रोजेन्बर्गाइ (ड) इनमें से कोई नहीं।

8. 19 जोड़ी उपांग निम्न में से पाये जाते है

(अ) झींगा मछली में (ब) काकरोच में

(क) मेंढ़क में (ड) उपरोक्त में से कोई नहीं।

9. झींगा मछली के श्वसन अंग होते है–

(अ) फेफडे (ब) गिल्स

(क) मैलपीघियन नली (ड) कोई नहीं।

10. झींगा में लार्वा कितने निर्मोचन (Moulting) करता है?

(अ) 6 (ब) 8

(क) 9 (ड) 11।

11. झींगा बीज के संग्रहण का तात्पर्य निम्न के संग्रहण से होता है–

(अ) लार्वा की VII अवस्था (ब) लार्वा की IX अवस्था

(क) लार्वा की XI अवस्था (ड) पोस्ट–लार्वा।

12. समुद्री झींगों की कौन–सी प्रजाति भारतीय सन्दर्भ के अनुसार पालने के लिए सर्वथा उपयुक्त होती है?

(अ) पीनियस इण्डिकस (ब) पीनियस मोनोडॉन

(क) पीनियस सेमीसल्केटस (ड) मेटापीनियस डॉबसोनाई।

13. निम्न में से कौन–सा कथन सत्य है?

(अ) झींगों को ताँबे के बर्तन में संग्रहीत नहीं करना चाहिए

(ब) झींगों के लार्वा निकोटिन के प्रति अतिसंवेदनशील होते है

(क) उपर्युक्त दोनों कथन सत्य है

(ड) उपर्युक्त दोनों कथन असत्य हैं।

14. झींगा पकड़ने के जाल बने होते है–

(अ) कपास के (ब) सन के

(क) नाइलॉन के (ड) इनमें से कोई नहीं।

15. झींगों की विकृति का कारण है–

(अ) स्वलयनीय (ब) जीवाण्विक

(क) रासायनिक (ड) उपरोक्त सभीं।

टिप्पणी

4.9 मोती संवर्धन तथा मोती उद्योग (Pearl Culture and Pearl Industry

Brief History– मोती के निर्माण की क्रिया/प्रक्रिया प्राचीन है। प्राचीन भारतीय एवं चीनी साहित्य में भी इसका उल्लेख है। वैदिक साहित्य के अनुसार भारत में मोती आर्यों के आगमन के पूर्व से ही (1500 BC) जाना जाता था। मकदूनिया साम्राज्य के समय से ही भारत की खाड़ी (Persian Gulf) में मोती का प्रचलन था।

संवर्धित मोती की उत्पत्ति चीन में 13 वीं शताब्दी में हुई जब हुछो (Hoochow) निवासी ये–जिन–यांग (ye-Jin-yang) ने यह खोज की कि मोती की उत्पत्ति स्वच्छ जल की सीपी (fresh water Mussel) में किसी विजातीय द्रव्य के प्रवेश करा देने से की जा सकती है। इस खोज के बाद भी 1890 तक मोतियों का व्यावसायिक उत्पादन संभव नही हो सका।

मोती संवर्धन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का खोज सर्वप्रथम जापान में हुई जो वर्तमान में मोती संवर्धन का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। कोकिची मिकीमोटो (Kokichi Mikimoto) ने 1890 में जापान के टाबा (Taba) द्वीप पर एक शुक्ति फार्म (Oyster farm) की स्थापना की। प्रारंभ में उन्हें ऐच्छिक सफलता नहीं मिली परन्तु 1893 में पहली बार उन्हें तब सफलता मिली जब उनके द्वारा पाले गये शुक्तियों में से एक शुक्ति के अन्दर मोती निकली। इसके बाद ही मिकीमोटो ने विधिवत् मोती संवर्धन का कार्य प्रारम्भ किया। आज मिकीमोटो को जापान के मोती उद्योग के जनक के रूप में जाना जाता है। भारत में 1938 में मद्रास मात्स्यक केन्द्र (Madras Fisheries Centre) द्वारा मन्नार की खाड़ी (Gulf of Mannar) तथा गुजरात के सिक्का (Sikka) क्षेत्र में वैज्ञानिक विधि से व्यापक स्तर पर मोती संवर्धन के प्रयास किये गये परन्तु इसमें सफलता नहीं मिली। इसके बाद केन्द्रीय समुद्री मात्स्यक अनुसंधान संस्थान (Central Marine Fisheries Research Institute) द्वारा 1959 में कच्छ तथा मन्नार की खाड़ियों में एक सर्वेक्षण द्वारा मोती बैंकों को चिह्नित किया गया। इसी संस्थान के प्रयासों से 25 जुलाई, 1973 को पहला संवर्धित मोती उत्पादित किया गया।

Defination and Systematic Position of Pearl Oyster (परिभाषा एवं वर्गीकरण की स्थिति पर्ल ओएस्टर)

Systematic Position–

Kingdom– Animalia

Class– Bivaluia

Order– Pteriiday

Family– Pteriioae

Genus– Pinctada vulgaris or pearl oyster

Pearl oyster एक मोलस्का संघ के अन्तर्गत आने वाला जीव है जो लवणीय, अलवणीय खारे पानी एवं समुद्रवासी भी होते हैं। उनकी कुछ प्रजातियॉ

उभयचर स्वभाव की भी होती हैं। मोलस्का जीवों के कवचों (Shells) को pearl Industry में बहुतायत से प्रयोंग में लाया जाता है। अतः इसे विज्ञान की एक ऐसी शाखा में सम्मिलित किया जाता है, जिसके अंतर्गत इनके Shels (कवचों) का अध्ययन किया जाता है इसलिये व्यापारिक रूप से इसकी अनेक प्रजातियाँ जो मानव जीवन के लिए लाभदायक है।

टिप्पणी

4.9.1 मोती उत्पादक स्थल एवं जन्तु (Pearl Production Sites and Animals)

फारस की खाड़ी में पाया जाने वाला मोती शुक्ति पिंकटाडा वुल्गेरिस (Pinctada vulgaris) श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले मोती उत्पन्न करता है। मोती की सर्वाधिक उपज खाड़ी जल के उस भाग से होती है जो ओमान (Oman) प्रायद्वीप से मुडकर कतर (Qatar) तक जाता है। इस जल में 8–20 फेदम (48–120 फुट) की गहराई में मोती बैंक पाये जाते है।

इसी प्रकार बहरीन (Bahrain) के आस–पास का क्षेत्र भी उच्च कोटि के मोतियों के लिए जाना जाता है। ईरान के लिंगेह (Lingeh) शहर में फारस की खाड़ी में उत्कृष्ट मोतियों का बाजार है। यह शहर फारस की खाड़ी के मोतियों का पर्याय बन चुका है। फारस की खाड़ी के बाद श्रीलंकाई जल (Ceylonese water) का नम्बर आता है जो मोतियों का बहुत अच्छा स्रोत है। पूर्वी अफ्रीका में जंजीबार (Zanzibar) द्वीप से लेकर मोज़म्बिक (Mozambique) के इन्हम्बेन (Inhambane) तक का तटीय जल अफ्रीकन मोतियों के लिए जाना जाता है। सेलीबीज (Celebes) के मोती अपने प्यारे रंगों के कारण विश्व में अपनी अलग पहचान रखते है। ऑस्ट्रेलिया (Australia) के जलों में पाये जाने वाले शुक्ति पिंकटाड़ा मारगैरिटीफेरा (Pinctada margaritifera) तथा पीं मैक्सिमा (P. Maxima) चाँदी जैसे सफेद मोतियों का उत्पादन करते हैं। अमेरिका में कैलीफोर्निया (California) तथा मैक्सिकों (Mexico) की खाड़ी से धातु की चमक वाले गहरे वर्ण के मोती प्राप्त होते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध के शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की नदियों में पायी जाने वाली स्वच्छ जल की सीपी यूनिओ मारगैरिटीफेरा (Unio margaritifera) से भी अच्छे किस्म के मोती प्राप्त होते है। अमेरिका की मिसीसिपी (Mississippi) तथा सहायक नदियों से भी स्वच्छ जल वाले मोती प्राप्त होते है। $23\frac{1}{4}$ कैरेट (Carats) वाला गुलाबी रंग का प्रसिद्ध रानी मोती (Queen pearl) भी 1857 में अमेरिका में स्वच्छ जल की सीपी से प्राप्त हुआ था।

भारत में मोती शुक्ति (Pearl oysters) सामान्यतया चट्टानी कटकों (rocky ridges) अथवा समुद्र तट से 19 कि. मी. दूर 10 से 12 फेदम (18–22 मीटर) की गहराई पर स्थित मृत प्रवालों (dead corals) से निर्मित विस्तृत मोती बैकों (Pearl banks) या पार्स (pars) पर पाये जाते है। मोती शुक्तियों के संस्तर (beds) पश्चिमी तट की अपेक्षा पूर्वी तट पर अधिक विस्तृत एवं उत्पादक हैं। ये कुमारी अन्तरीप (Cape Comorin) से किलाकराई (Kilakarai) तक फैले हैं जिसमें तूतीकोरिन (Tuticorin) के आस – पास का क्षेत्र सर्वाधिक उत्पादकता वाला क्षेत्र है। इन संस्तरों से उच्च गुणवत्ता वाले लिंघा मोती (Lingha pearls) प्रचुर मात्रा में

टिप्पणी

प्राप्त होते हैं। पश्चिमी तट पर मोती शुक्ति सौराष्ट के हालार जनपद के उत्तर में कच्छ की खाड़ी (Gulf of Kutchh) और जामनगर के निकट स्थित भित्तियों (reefs) से पकड़े जाते है। भारत में मन्नार की खाड़ी (Gulf of Mannar), कच्छ की खाड़ी (Gulf of Kutchh) तथा पाक खाड़ी (Pak Bay) मोती संवर्धन के प्रमुख केन्द्र है।

4.10 मोती उत्पादक जन्तु (Pearl Producing Animals)

मोलस्का (Mollusca) समुदाय के बाइवाल्विया वर्ग (Class Bivalvia) की टेरिड़ी कुल (Family Pteride) के अन्तर्गत आने वाले मोती शुक्तियों (Pearl oysters) के जीनस पिंकटाडा (Pinctadae) से उत्तम कोटि के मोती प्राप्त होते हैं। पिंकटाडा की कई प्रजातियाँ भारतीय जलों में पायी जाती है; जैसे– पी. वुल्गैरिस (P. Vulgaris) पी. मारगैरिटीफेरा (P. Margaritifera), पी. एनोमिओइडिस (P.anomioides), पी. चेमनिटजाई (p. Cheminizi) और पी. एट्रोपरपुरिया (P. Atroparpuria)। पी. वुलैरिस प्रजाति सामान्यतया सभी जगह पायी जाती है विशेषकर मन्नार की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी तथा पाक खाड़ी में।

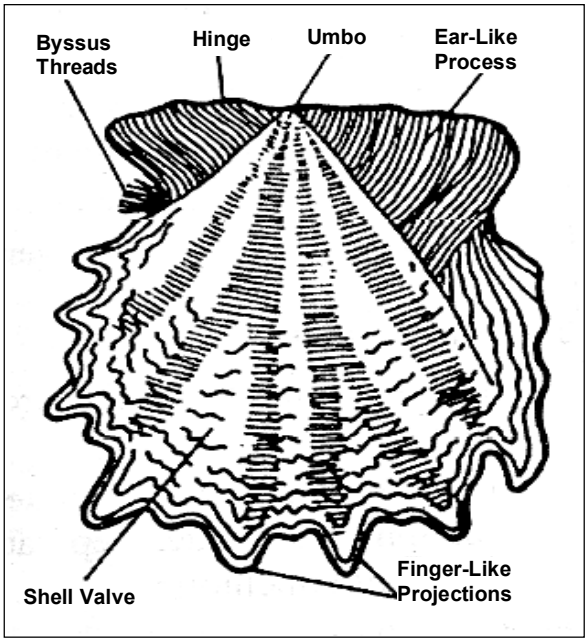

चित्र क्र 4.13: Pearl Oyster, Pinctada vulgaris

पिंकटाडा के अतिरिक्त और भी कई ऐसे मालस्कन जन्तु है जो स्वच्छ जल अथवा समुद्री जल में पाये जाते हैं तथा मोती की तरह के संग्रथन उत्पन्न करते हैं। समुद्री जल में प्रमुख है; इयर–शेल, हेलिआटिस (Ear-shell, Haliotis) (Class Gastropoda, Family Haliotidae), समुद्री मसिल, माइटिलस (Sea mussel, Mytilus) (Class Bivalvia, Family Mytilidae) तथा विण्डोपैन शुक्ति, प्लैकुना (Windowpain oyster, Placuna Family Anomiidae)। स्वच्छ जल में पाये जाने वालों में प्रमुख हैं मसिल, यूनिओं तथा एनोडॉटा (Mussel, Unio and Anodonta) (Family Unionideae)।

टिप्पणी

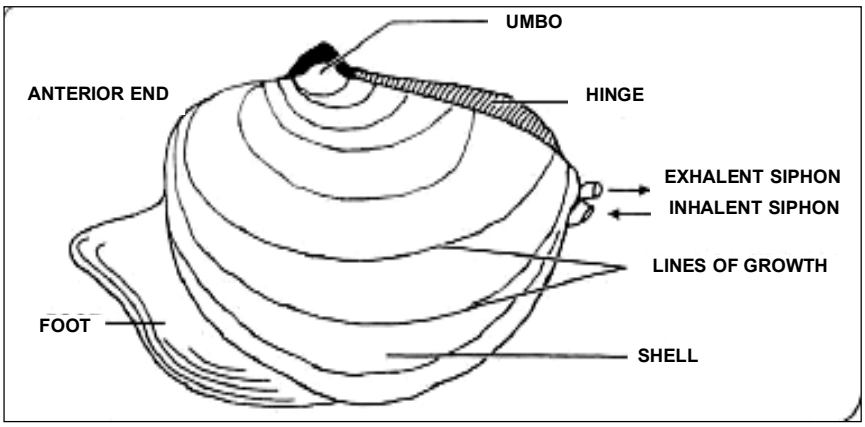

चित्र क्र. 4.14: Freshwater Mussel, Anodonta

मैण्टिल तथा कवच की संरचना (Structure of Mantle and Shell)

शुक्ति (Oyster) का शरीर बाहर की तरफ से त्वचा की एक मांसल पालि (lobe) द्वारा ढ़का रहता है जिसे मैण्टिल (Mantle) कहते हैं। मैण्टिल ही अपने बाहर की तरफ कवच (shell) का स्रावण करता है। मैण्टिल की बाहरी पर्त स्तम्भाकार एपीथीलियम (Columnar epithelium) की बनी होती है जिनमें नेक्रे (Nacre) स्रावित करने वाली कोशिकाएँ पायी जाती है। मैण्टिल की अन्दर वाली पर्त पक्ष्माभि एपीथिलीयम (Ciliated epithilium) की बनी होती है जिसमें म्यूकस (mucus) स्रावित करने वाली कोशिकाएँ पायी जाती हैं। मैण्टिल की दोनों एपीथिलीयम के मध्य में तन्तुमय संयोजी ऊतक पाया जाता है।

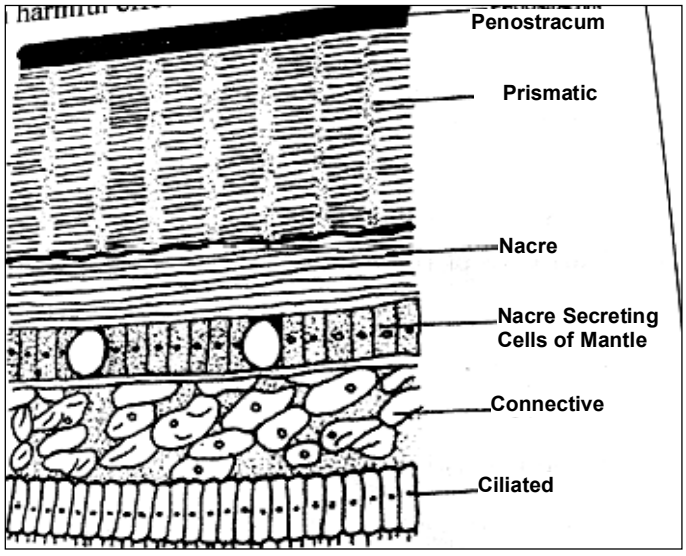

चित्र क्र. 4.15: T.S of Shell and mantle of oyster

कवच (Shell) अग्रलिखित तीन पर्तों का बना होता है–

1. **पेरीऑस्ट्रेकम (Periostracum)**– यह सबसे बाहर की तरफ पायी जाने वाली पतली श्रृंगी (horny) पर्त है जो कॉन्चियोलिन (Conchiolin) नामक कार्बनिक पदार्थ की बनी होती है और कवच को भूरा रंग प्रदान करती है।

टिप्पणी

2. **प्रिज्मैटिक पर्त (Prismatic layer)**– यह पर्त रवेदार (Crystalline) कैल्साइट (calcite) (एक प्रकार का कैल्शियम कार्बोनेट, $CaCO_3$) के स्तम्भों की बनी होती है जिनके बीच–बीच में कॉन्चियोलिन की पतली पर्तें पायी जाती हैं।

3. **नेक्रियस पर्त (Nacreous layer)**– यह पर्त नेक्रे (nacre) नामक सतरंगी (iridescent) पदार्थ की बनी होती है जिसे मोती की माता (Mother of Pearl) कहते हैं। यह कैल्शियम कार्बोनेट तथा कॉन्चियोलिन की एकान्तरित पर्तों की बनी होती है जो सतह के समानान्तर व्यवस्थित होती है।

कवच की नेक्रियस पर्त का स्रावण मैण्टिल की सम्पूर्ण बाहरी सतह द्वारा होता है जबकि शेष दोनों पर्तें मैण्टिल के किनारों (edges) द्वारा स्रावित होती है।

4.11 मोती निर्माण (Pearl Formation)

मोती निर्माण शुक्ति की रक्षात्मक प्रतिक्रिया का एक परिणाम है। जब भी कोई विदेशी वस्तु; जैसे– बालू का कण या कोई अण्डा या कोई सूक्ष्म जीव–जन्तु शुक्ति के शरीर में प्रवेश करके कवच तथा मैण्टिल के बीच पहुँच जाता है तब मैण्टिल एपीथीलियम उसे चारों तरफ से घेरकर अपने अन्दर कर लेती है। घेरने के उपरान्त मैण्टिल एपीथीलियम उसके चारों तरफ नेक्रे (nacre) की संकेन्द्रित पर्तें स्रावित करना प्रारम्भ कर देती है। कालान्तर में नेक्रे की कई पर्तो के स्रवित होने के परिणामस्वरूप मोती का निर्माण होता है।

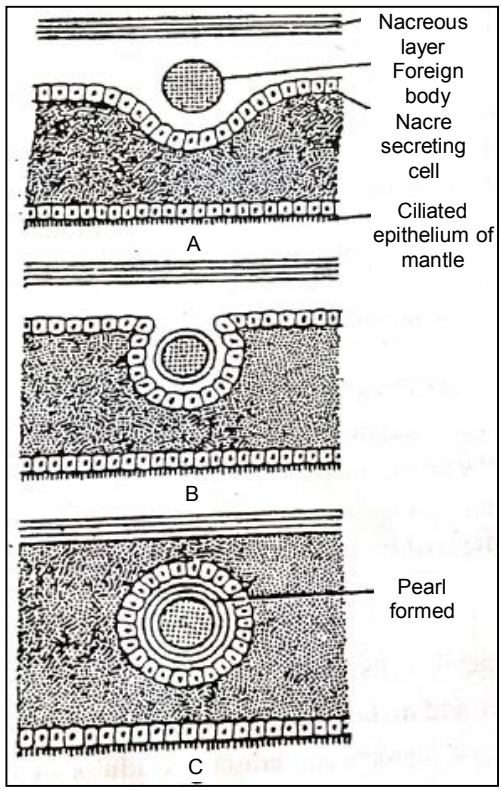

चित्र क्र. 4.16: Process of Pearl Information

टिप्पणी

मोती शुक्तियों का आहार (Food of Pearl Oysters)– मोती शुक्ति फिल्टर फीडिंग (Filter feeding) द्वारा भोजन करते है। ये मुख्यतः डायएटम्स (Diatoms), फ्लैजिलेट्स (Flagellates), नॉप्लियस (Nauplius), कोपीपॉड्स (Copepods), सूक्ष्म–भ्रूणों एवं लार्वो तथा शैवालों का भक्षण करते हैं।

जननद की परिपक्वता (Maturity Gonads)– जब शुक्ति 16 मिमी. की हो जाती है इनमें जननदों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। गर्मी के महीनों में 29–32°C का ताप, 32–35 प्रतिशत लवणता तथा 7.5–8.5 pH जननदों की परिपक्वता के लिए सर्वाधिक अनुकूल होती है।

वातावरणीय कारक (Environmental Factors)– शुक्तियों के लिए जल का ताप 27–32°C तथा लवणता 24–50 प्रतिशत होनी चाहिए। इनके संवर्धन के लिए मन्नार की खाड़ी के पार क्षेत्र (Paar region) का कड़ी चट्टानी या पथरीली अधःस्तर (substraturn), कच्छ की खाड़ी के खड्डास क्षेत्र (Khaddas region) का गादी (silty) अधः स्तर तथा कन्याकुमारी से किलाकराई तक का बलुई तटीय क्षेत्र उपयुक्त माने गये हैं। इनके लार्वा प्रकाश की तरफ गति करते हैं जबकि वयस्क अँधेरे में रहना पसन्द करते हैं।

4.12 मोती संवर्धन (Pearl Culture)

मोती संवर्धन निम्नलिखित चरणों में किया जाता है–

1. मोती शुक्तियों का संचयन (Collection of Pearl oysters),
2. कलमी ऊतक तैयार करना (Preparation of Graft tissue)
3. केन्द्रक तैयार करना (Preparation of Nucleus),
4. केन्द्रक का निवेशन (Insertion of Nucleus),
5. शुक्तियों का पालन (Rearing of Oysters)
6. मोती की उपज प्राप्त करना (Harvesting of Pearls)

1. मोती शुक्तियों का संचयन (Collection of Pearl Oysters)– मोती शुक्तियों का संचयन निम्नलिखित तीन विधियों द्वारा किया जाता है–

(A) प्राकृतिक वातावरण से जलांडकों का संचयन (Spat collection from Natural Environment),

(B) हैचरी में जलांड़कों का उत्पादन (Spat production in hatcheries)

(C) शुक्तियों का संचयन (Collection of Oysters)

टिप्पणी

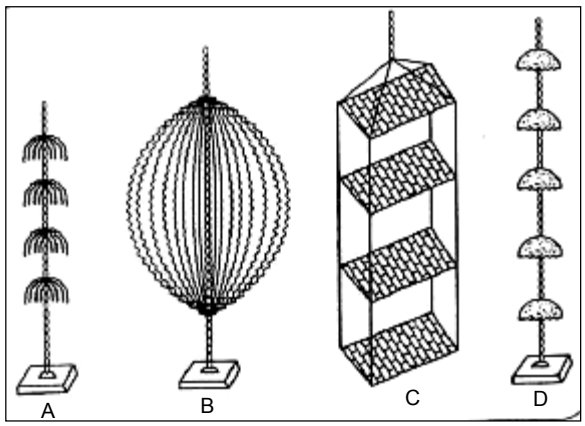

चित्र क्र. 4.17: Different types of spat collectors

(A) प्राकृतिक वातावरण से जलांडकों का संचयन (Spat collection from Natural Environment)– जलांडकों के संचयन के लिए निम्न प्रकार के संग्राहकों (collectors) का उपयोग किया जाता है–

(i) एक 9 मीटर की रस्सी पर नाइलॉन के गुच्छे लगा दिये जाते हैं जिनके मध्य 25 सेमी की दूरी रखी जाती है।

(ii) एक 6 मीटर लम्बी रस्सी के मध्य में नाइलॉन की डोरी से तकली बनाकर जलांडकों का संचयन किया जाता है

(iii) कैजूराइना (Casuarina) के लट्ठों पर बाँस की बनी 1.25 × 1.25 मीटर आकार की रैंकें (racks) लगाकर जलांडकों के संचयन की व्यवस्था की जाती है।

(iv) एक डोरी पर नारियल की गुठलियाँ (Kernels) जगह–जगह लगाकर जलांडकों का संचयन किया जाता है।

उपर्युक्त संग्राहकों को शुक्तियों के प्राकृतिक वातावरण में ले जाकर लकड़ी के लट्ठे से बने बेड़े (raft) से जल में 4 से 5 फीट की गहराई पर लटका दिया जाता है। संग्राहकों के निचले स्वतन्त्र सिरे से सीसे (Lead) का एक टुकड़ा बाँध दिया जाता है ताकि ये जल में डूबे रहें।

(B) हैचरी में जलांड़कों का उत्पादन (Spat production in hatcheries)– मोती शुक्ति, पिंकटाडा फुकाटा (Pinctada fucata) के संवर्धन हेतु हैचरी का निर्माण निम्न प्रकार से किया जाता है–

हैचरी के लिए उपयुक्त स्थान पर 15 × 10 मी. के आकार का एक भवन निर्मित कराया जाता है। इस भवन के आधे भाग की छत एस्बेस्टस (Asbestos) से ढ़की जाती है तथा शेष आधे भाग की छत पर पारदर्शी शीटें (Transparent Sheets) लगायी जाती है। एस्बेस्टस से ढ़के गये हिस्से में अनुकूलन कक्ष (conditioning chamber), शैवाल संवर्धन कक्ष, प्रयोशाला तथा कर्मचारी कक्ष बनाया जाता है। भवन के पारदर्शी छत वाले हिस्से में जलांडकों के पालने तथा मिश्रित शैवाल संवर्धन की जाती है।

टिप्पणी

सर्वप्रथम समुद्री जल को निस्यन्दित (filter) करके एक टैंक में भरा जाता है। इस टैंक से ही हैचरी को एक मोटर की सहायता से जलापूर्ति की जाती है। टैंक से आपूर्ति किये जाने वाले जल को 15, 10, 5, 3 तथा 2μ के निस्यन्दकों (filters) की सहायता से निस्यन्दित किया जाता है। इस निस्यन्दित जल को अल्ट्रा वॉयलेट कक्ष में प्रवेश कराने के बाद लार्वा पालने वाले टैकों में ले जाया जाता है।

हैचरी मे निम्न टैंकों की व्यवस्था की जाती है–

(i) मैचुरेशन टैंक (Maturation tanks)– ये 75 लीटर की क्षमता वाले 75 × 50 × 25 सेमी आकार के टैंक होते हैं जिनमें परिपक्व शुक्तियों को प्रजनन से पहले तक रखा जाता है।

(ii) स्पानिंग टैंक (Spawning tank)– 100 लीटर की क्षमता वाले इन टैंकों में थर्मामीटर, हीटर तथा वातक (aerator) लगाकर अण्डे देने की व्यवस्था की जाती है।

(iii) लार्वा पालने के लिए टैंक (Larval rearing tanks)– ये टैंक 200 × 100 × 50 मिमी आकार के होते हैं तथा इनकी क्षमता 1,000 लीटर की होती है। ये पारदर्शी छत वाले हिस्से में रखे जाते है।

(iv) जलांडको को पालने के लिए टैंक (Spat rearing tanks)– ये टैंक स्थापित जलांडकों को पालने के काम में आते हैं। कुछ टैंकों में जलांडकों को स्थापित करने के लिए भी अलग से व्यवस्था होती है।

(v) शैवाल संवर्धन टैंक (Algal culture tanks)– इन टैंकों की अन्दर वाली सतह सफेद रंग से रँगी जाती है। तथा इनमें शैवालों का संवर्धन किया जाता हैं।

अण्डजनन (Spawning)– शुक्तियों को अण्डजनन के लिए निम्न प्रकार से प्रेरित किया जा सकता है–

(i) जल के ताप को 28 से 35°C तक बढ़ाकर।

(ii) समुद्री जल का pH बढ़ाकर (9 pH)।

(iii) समुद्री जल में 0.2 मिली N/10 अमोनियम हाइड्रॉक्साइड का घोल मिलाकर।

(iv) समुद्री जल में सोडियम हाइड्रॉक्साइड मिश्रित 6 प्रतिशत का हाइड्रोजन परऑक्साइड का घोल मिलाकर।

अण्डों का विकास (Development of eggs)– सामान्यतया पहले नर द्वारा शुक्राणुओं को मुक्त किया जाता है। शुक्राणुओं के मुक्त होने के एक घण्टे के अन्दर मादाएँ अण्डों को मुक्त करती है। निषेचन (Fertilization) की क्रिया बाहर होती है। 47μ आकार के जाइगोट (zygote) धीरे–धीरे तल में व्यवस्थित हो जाते है। जल को 30μ जाल छिद्रों (mesh) वाले फिल्टर से छानकर जाइगोट को अलग कर लेते है। इन जाइगोट को 50 लीटर पानी की क्षमता वाले टैंकों मे रखा जाता है जिसमें जीवाणुविहीन (sterilised) जल भरा होता है।

टिप्पणी

(C) शुक्तियों का संचयन (Collection of Oysters)– समुद्र के तल से गोताखोरों की सहायता से मोती शुक्तियों का संचयन किया जाता है। ये गोताखोर इस कार्य के लिए प्रशिक्षित किये जाते हैं तथा ये दो से ढ़ाई मिनट तक जल के अन्दर रह सकते हैं। ये गोताखोर नाव से समुद्र में गोता लगाते समय अपनी कलाई से एक रस्सी बान्ध लेते है जिसकी सहायता से आवश्यकता पड़ने पर नाविक इन्हें ऊपर खींच लेते हैं। गोताखोर की बायीं कलाई से बाँस की बनी टोकरी बन्धी रहती है। ये गोताखोर एक हाथ में जाल (hand net) की सहायता से शुक्तियों को इकट्ठा करके टोकरी में रखते जाते है। एक बार में एक गोताखोर दस शुक्तियों तक इकट्ठा कर लेता है।

एकत्रित की गयी शुक्तियों को पालने वाले पिंजडों (rearing cages) में रखा जाता है। इन पिंजडों को नाइलॉन या तार की जाली से ढंककर रखा जाता है। अब इन शुक्तियों को साफ करके संवर्धन पिंजडों या टैंकों में 10–20 दिनों तक रखा जाता है ताकि ये अपने को परिवर्तित वातावरण के प्रति अनुकूलित कर सकें।

2. कलमी ऊतक तैयार करना (Preparation of Graft Tissue)

शुक्ति के शरीर के अन्दर निवेशित किये गये ऊतक के टुकडे को कलमी ऊतक (graft tissue) कहते हैं। एक स्वस्थ शुक्ति के मैण्टिल के किनारे से मैण्टिल की एक पट्टी काटकर निकाल लेते है। मैण्टिल की इस पट्टी को धोकर साफ कर लिया जाता है। अब इस पट्टी से 2 × 2 मिमी. के चौकर टुकड़े काट लिये जाते है। ये ही टुकडे कलम (graft) के रूप में उपयोग किये जाते हैं। चूँकि नेक्रे (nacre) स्रावित करने वाली कोशिकाएँ मैण्टिल की बाहरी सतह पर ही पायी हैं अतः इसकी पहचान बहुत आवश्यक होती है। इन टुकडों को समुद्री जल में 22°C पर 48 घण्टे तक रखा जा सकता है।

3. केन्द्रक तैयार करना (Preparation of Nucleus)

मोती निर्माण के लिए कोई भी विदेशी वस्तु केन्द्रक का कार्य कर सकती है परन्तु यह देखा गया है कि यदि केन्द्रक कैल्शियम का बना हो तो नेक्रे का निक्षेपण (deposition) बहुत अच्छा होता है। अतः मोलस्का के जन्तुओं का कवच ही केन्द्रक के रूप में उपयोग में लाया जाता है। केन्द्रक गोल दाने के रूप में प्रयोग किया जाता है।

4. केन्द्रक का निवेशन (Insertion of Nucleus)

केन्द्रक को शल्य क्रिया द्वारा सन्निविष्ट कराया जाता है इसके लिए शुक्ति को बेहोश करना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए जिस टैंक में शुक्तियों को रखा हो उसके जल में मीथेनॉल (Methanol) के रवे (Crystals) मिला देते है। मीथेनॉल के प्रभाव से 60–90 मिनट के अन्दर शुक्तियों का निश्चेतन हो जाता है। उनकी एडक्टर पेशियाँ (Adductor Muscles) शिथिल पड़ जाती हैं जिससे वाल्वों को आसानी से खोला जा सकता हैं। केन्द्रक के आरोपण के लिए जननद (Gonads) उपयुक्त स्थान होते है जिसमें अधरतल का भाग सर्वाधिक उपयुक्त होता है।

टिप्पणी

शुक्ति को एक मेज पर इस प्रकार रखते है कि उसके कवच का दाहिना वाल्व ऊपर की तरफ रहे अब कवच को खोलकर पाद (Foot) को अनावृत (Expose) कर लेते है, जननद को अनावृत करने के लिए एक पैने चाकू की सहायता से पाद में एक चीरा लगाते है। अब कलमी ऊतक (Graft tissue) पर एक केन्द्रक रखकर कलमी ऊतक को जननद में आरोपित कर देते है। यहाँ इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि सन्निविष्ट किया गया केन्द्रक कलमी ऊतक (मैण्टिल) की बाहरी सतह के सम्पर्क में रहे।

सामान्यतया एक शुक्ति में एक या दो केन्द्रकों को सन्निविष्ट कराया जाता है हालांकि 2–3 मिमी. व्यास वाले छोटे मोतियों को अधिक संख्या में उत्पादित करने के उद्देश्य से बहुआरोपण भी किया जा सकता है।

शुक्तियों की शल्क क्रिया 30–45 मिनट की सुरक्षित सीमा के अन्दर पूर्ण कर लेनी चाहिए। शल्क क्रिया के पश्चात् शुक्तियों को धीमी गति से बह रहे समुद्री जल में रखना चाहिए जिससे कुछ मिनटों के अन्दर शुक्तियाँ बेहोशी के प्रभाव से मुक्त हो जाती है। जब शुक्तियाँ अपने वाल्व को खोलने तथा बन्द करने लगें तब उन्हें प्रकृतिस्थ (Recovered) समझना चाहिए।

5. शुक्तियों का पालन (Rearing of Oysters)

प्रचालित (operated) शुक्तियों को पिंजड़ें में रखकर पिंजडों की बेड़े (raft) से समुद्री जल में 6–10 फीट की गहराई पर एक हफ्ते तक लटकाते है। इस अवधि में शुक्तियाँ अपने आपको यथास्थिति में (recover) कर लेती है। अब एक बार पुनः इनका परीक्षण किया जाता है ताकि मृत शुक्तियों को हटाया जा सके। परीक्षण के बाद शुक्तियों को फिर से पिंजड़े में रखकर पिंजडों को समुद्री जल में 6–10 फीट की गहराई में ही लटका देते हैं और 3 साल तक के लिए इन्हें बिना किसी बाधा के लटका रहने देते है।

6. मोती की उपज प्राप्त करना (Harvesting of Pearls)

मोती की उपज दिसम्बर से फरवरी के महीनों में ली जाती है। केन्द्रक के निवेशन के तीन साल बाद शुक्तियों को पिंजड़े से बाहर निकालकर मोतियों को निकाल लिया जाता है। निकालने के बाद इन्हें साफ कर लिया जाता है।

मोती का संघटन (Composition of Pearls)

मोती मुख्यतया नेक्रे (nacre) का बना होता है। नेक्रे एक प्रकार का एरैगोनाइट (Aragonite) कैल्शियम कार्बोनेट है जिसमें विशिष्ट ऑर्थोरॉम्बिक क्रिस्टल तन्त्र तथा चमक पायी जाती है। किसी – किसी मोती में कैल्साइट भी पाया जाता है। कैल्साइट भी एक प्रकार का कैल्शियम कार्बोनेट होता है परन्तु इसकी क्रिस्टल संरचना एरैगोनाईट से भिन्न होती है। नेक्रे में कॉन्चिओलिन (conchiolin) की भी थोड़ी–सी मात्रा पायी जाती है। मोती में निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते है–

1. जल 2–4 %
2. कार्बनिक पदार्थ 3.5–6%
3. कैल्शियम कार्बोनेट 90%,
4. अवशेषी पदार्थ 1%।

टिप्पणी

मोतियों की छँटाई एवं श्रेणीकरण (Sorting and Grading of Pearls)

आज सम्पूर्ण विश्व में विक्रय किये जाने वाले मोतियों में से 99% से अधिक मोती संवर्धित मोती होते हैं। संवर्धित किये गये मोतियों में से 60% मोती ही विक्रय कोटि के होते है तथा इनमें से केवल 4 % मोती ही उच्चकोटी के होते है। विक्रय कोटि के मातियों के उत्पादन में नेक्रे की वांछित मोटाई के आधार पर सामान्यतया एक से चार वर्ष का समय लगता है।

मोती का रंग बहुत से कारकों पर निर्भर करता है जैसे उस मोलस्क प्राणी के नेक्रे का रंग जिसमें यह संवर्धित किया गया है, केन्द्रक की स्थिति, वृद्धि की अवधि तथा जल की गुणवत्ता। उपर्युक्त के अतिरिक्त शुक्ति के शरीर के अन्दर निवेशित किये गये मैण्टिल के रंग का सीधा प्रभाव मोती के रंग पर पड़ता है। यदि मैण्टिल का रंग पीला हो तो उससे बने मोती का रंग क्रीमी होता है जबकि मैण्टिल का रंग सफेद होते पर उससे बने मोती का रंग भी सफेद होता है।

प्राकृतिक मोतियों को संवर्धित मोतियों से पृथक् करने का सबसे विश्वसनीय तरीका एक्स–रे चित्रण (X-radiography) तथा एक्स–रे प्रतिदीप्ति (X-ray fluoresence) परीक्षण है, जो मोती के अन्दर के केन्द्रक को व्यक्त करते है।

मोतियों की छँटाई का कार्य विभिन्न चरणों में किया जाता है। सर्वप्रथम उन मोतियों को पृथक् किया जाता है जिनका उपयोग संवर्धित मोती उद्योग में किया जा सकता हो तत्पश्चात् ऐसे मोतियों को निम्न तीन वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है–

1. बेदाग मोती,
2. वे मोती जिन पर एक धब्बा (blemish) हो,
3. ऐसे मोती जिन पर एक से अधिक धब्बे हों। ऐसे मोतियों का उपयोग मुख्यतया नेकलेस (Necklaces) हेतु किया जाता है।

अब मोतियों को अग्रलिखित गुणों अथवा लक्षणों के आधार पर श्रेणीकृत किया जाता है–

1. **नेक्रे की मोटाई (Thickness of Nacre)** – इसका निर्धारण इस तथ्य पर किया जाता है कि मोती कितने समय तक शुक्ति के अन्दर रहा। नेक्रे की मोटाई जितनी अधिक होगी उतना ही मोती अधिक महँगा होगा।
2. **दीप्ति (Luster)**– मोती की चमक का सीधा सम्बन्ध मोती की सतह अथवा अन्दर से होने वाले परावर्तन (Reflection) तथा अपवर्तन (Refraction) से होता है।
3. **वर्ण (Colour)** – मोतियों के सर्वाधिक लोकप्रिय रंग सफेद, रूपहला (silver) तथा क्रीमी होते हैं। इसके अतिरिक्त ये गुलाबी, सुनहरे, चमेलिया (Lavender) भी होते हैं। पिंकटाडा मैक्सिमा (Pinctada Maxima) नामक विरल शुक्ति द्वारा उत्पन्न ऑस्ट्रेलियाई दक्षिण समुद्री मोती (Australian south sea pearls) इन्द्रधनुष के लगभग सभी रंगों को प्रदर्शित करते है।

टिप्पणी

4. **आकार (Shape)**– मोती विभिन्न आकार के होते है परन्तु बहुधा ये वृताकार, अर्ध–वृताकार, अण्डाकार, नाशपातीकार, बैरोक (Baroque) या अर्ध–बैरोक होते हैं। इनमें वृताकार मोती सर्वाधिक विरल होते हैं।

5. **आमाप (Size)** – मोतियों का व्यास सामान्यतया 2.5–10.0 मिमी होता है। ऑस्ट्रेलियाई मोतियों का औसत आमाप 2.5–14.0 मिमी. होता है परन्तु कुछ आस्ट्रेलियाई मातियों का व्यास 20 मिमी. तक पाया गया है। आमाप के आधार पर मोतियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया हैं–

वर्ग (Class)	व्यास (Diameter) मिमी- में (In mm-)
सूक्ष्म दानेदार (Minute granular)	2.6 से कम
महीन मोती (Fine pearls)	2.6 – 4.9
छोटे मोती (Small pearls)	5.0 – 6.9
मध्यम मोती (Medium pearls)	7.0 – 8.3
वृहत् मोती (Large pearls)	8.3 से अधिक

मोतियों का श्रेणीकरण (Grading of pearls) – शिराय (Shirai, 1970) ने मोतियां को विभिन्न मानकों के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया है–

वर्ग A–1 (Class A-1)	वर्ग A–2 (Class A-2)	वर्ग B (Class B)	वर्ग C (Class C)
उच्चकोटि के पूर्णतया वृताकार, गुलाबी, दोषरहित मोती या ऐसे मोती जिन पर सुई की नोंक के बराबर धब्बे हों।	प्रथम श्रेणी के मोती जिन पर सुई की नोंक से कुछ बडे धब्बे, गड्ढे या उभार हों।	अनियमित आकार के क्रीमी रंग के बड़े धब्बे पाय जाते है।	अनियमित आकार के ऐसे रद्दी मोती जिन पर सूक्ष्म फुँसी रूपी उभार पाये जाते है।

4.12.1 मोती के प्रकार (Types of Pearls)

मोतीयों का रंग उनको बनाने वाले जन्तु एवं वातावरण के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। ये सफेद, क्रीमी, धूसर (grey), नीले, चमेलिया (Lavender), बैंगनी (mauve) तथा काले रंग के होते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं–

1. **लिंघा मोती (Lingha Pearl)**– ये सर्वोत्तम गुणवत्ता वाले मोती है जो समुद्री शुक्तियों द्वारा निर्मित किये जाते है।

2. **बीज मोती (Seed Pearl)**– एक चौथाई ग्रेन (Grain) से कम के मोती को बीज मोती कहते है। 9,000 बीज मोती मिलकर एक आउन्स (one ounce) के बराबर होते है।

टिप्पणी

3. **बटन मोती (Button Pearl)**– ये कवच से जुड़े पाये जाते हैं तथा अर्ध–गोलाकार (hemispherical) होते है।

4. **बैरोक मोती (Baroque Pearl)**– ये शरीर के अन्दर बनते है परन्तु इनकी आकृति उतनी अच्छी नहीं होती जितनी बटन माती की होती है।

6. **ब्लिस्टर मोती (Blister Pearl)**– ये खोखले होते हैं तथा इन पर अनियमित घुण्डियाँ (knobs) पायी जाती है।

4.12.2 मोतियों का प्रसंस्करण एवं कृत्रिम रंजन (Processing and Artificial Colouring of Pearls)

मोतियों की गुणवत्ता तथा उनके रूप–रंग को निखारने के लिए आजकल मोतियों का प्रसंस्करण एवं रंजन किया जाता है। इसके साथ ही नेक्रे की पर्त को हटाकर मोतियों पर से छोटे–छोटे दाग–धब्बों एवं खरोंचों को भी दूर कर लिया जाता हैं।

प्रसंस्करण के लिए सर्वप्रथम मोतियों में छेद करते हैं ताकि उनकी लड़ी (String) बनाई जा सके। इसके लिए मोतियों में 0.3 mm व्यास का एक सीधा छेद करते हैं। अब इन छिद्रित मोतियों को कपड़े के एक छोटे थैले में भरकर दो दिनों तक भाप में पकाते हैं ताकि सतह की अशुद्धता दूर हो जाये। अब इन्हें वायु में सुखा लेते हैं। धब्बों आदि को दूर करने के उद्देश्य से इन्हें हाइड्रोजन परऑक्साइड (Hydrogen peroxide) तथा पेट्रोलियम ईथर (Petroleum ether) के मिश्रण में रखकर सूर्य के प्रकाश में रखा जाता है और फिर इन्हें साफ कर लिया जाता है।

संवर्धित मोतियों का रंजन भी किया जा सकता है। इसके लिए पहले इन्हें विरंजित (Bleaching) किया जाता हैं। गुलाबी रंग में रँगनें के लिए मोतियों को 1–24 घण्टे के लिए इयोसिन रंजक (Eosin stain) में रखते है। रंगों के परिचालन हेतु आरोपण के समय विभिन्न रंगों के केन्द्रक का भी उपयोग किया जाता है।

4.12.3 मोती शुक्तियों के दुश्मन जन्तु (Enemies of Pearl Oysters)

पॉलिकीट्स, बार्नेकिल्स, तारामीन जैसे जन्तु शुक्तियों के कवच को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त ईल मछली (Eel), ऑक्टोपस (Octopus), सीपियाँ (Sepia) जैसे जन्तु शुक्तियों के प्राकृतिक दुश्मन हैं।

4.13 मोती उद्योग (Pearl Industry)

मोती संवर्धन के आधुनिकीकरण का श्रेय जापानी शोधकर्ता माइस एवं निशीकावा (Mise and Nishikawa) को जाता है जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के अन्त में एक विशिष्ट तकनीक द्वारा शुक्ति के जननांगों में गोल मोती उत्पादित करने में सफलता प्राप्त की। इसके पूर्व तक उत्पादित किए गये मोती वृत्ताकार न होकर फफोले (Blister) की तरह के होते थे। कोकिची मिकीमोटो (Kokichi Mikimoto)

ने इस तकनीक को पेटेण्ट कराया और इस प्रकार सन् 1916 में गोल मोतियों की प्रथम उपज प्राप्त हुई। धीरे–धीरे बड़ी संख्या में उच्च गुणवत्ता वाले मोतियों का उत्पादन होने लगा जिससे इनके दामों में कमी आयी और ये अधिक–से–अधिक लोंगों के लिए सुगम होते गये।

अन्तर्राष्ट्रीय मोती पुनरुत्थान कमेटी (International Pearl Reival Committee) की रिपोर्ट के अनुसार, वर्तमान में विश्व स्तर पर मोती संवर्धन 1.5 अरब डालर का एक उद्योग हैं जिसमे आधे से भी अधिक का व्यापार काले मोतियों का हो रहा है। इन काले मोतियों का उत्पादन काले होंठ वाली मोती शुक्ति पिंकटाडा मारगैरिटीफेरा (Black-lip pearl oyster, Pinctada margaritifera) द्वारा किया जाता है। वर्तमान में दक्षिण समुद्री मोतियों (South sea pearls) का उत्पादन विश्व स्तर पर उत्पादित कुल मोतियों का मात्र एक प्रतिशत ही है। गुणवत्ता, आमाप एवं दामों की दृष्टि से ऑस्ट्रेलिया मोती उत्पादन के क्षेत्र मे प्रथम स्थान रखता है परन्तु उत्पादित मोतियों की संख्या एवं वजन की दृष्टि से इण्डोनेशिया का स्थान विश्व में सबसे ऊपर है। ऑस्ट्रेलिया का ब्रूमे (Broome) शहर मोती के नगर के रूप में जाना जाता है।

आज विश्व में मोती कवच से बनाये गये आभूषणों का भी व्यापार हो रहा है। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में मोती कवच से बनाये गये बटनों एवं बक्कलों (Buckles) की खपत वस्त्र उद्योग में बडें पैमाने पर हो रही है।

भारत के तूतीकोरिन नामक शहर में सन् 1972 में केन्द्रीय समुद्री मात्स्यकी शोध संस्थान (Central Marine Fisheries Research Institutes, CMFRI) ने एक मोती संवर्धन शोध योजना प्रारम्भ की। CMFRI में पिंकटाडा फुकाटा (Pinctada fucata) नामक मोती शुक्ति के कृत्रिम अण्डजनन (Spawning) तथा लार्वों के पालन आदि की तकनीक विकसित की गई। इसके अतिरिक्त इस संस्थान ने पिंकटाडा मारगैरिटीफेरा के बीज उत्पादन में भी सफलता प्राप्त की जिनसे उच्च कोटि के काले मोतियों का उत्पादन होता है। इन्हीं प्रयासों से उत्साहित होकर तमिलनाडु मात्स्यकी विकास निगम (Tamilnadu Fisheries Development Corporation) तथा दक्षिणांचल पेट्रो–रसायन उद्योग निगम लिमिटेड (Southern Petro & Chemical Industries Corporation Ltd.) ने संयुक्त रूप से 1983 में मोती संवर्धन हेतु एक कम्पनी की स्थपना की जिसके फार्म क्रुसादई (Krusadai) तथा मण्डपम (Mandpam) में स्थापित किए गये। इसी के पश्चात् अन्य कम्पनियों ने भी मोतियों के व्यावसायिक उत्पादन में रुचि लेना प्रारम्भ किया।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

16. किस देश में मोती संवर्धन की उत्पत्ति हुई?

(अ) भारत (ब) चीन

(क) जापान (ड) मलेशिया।

टिप्पणी

17. सबसे अच्छा मोती होता है–

(अ) बटन मोती (ब) लिंघा मोती

(क) बैरोक मोती (ड) ब्लिस्टर मोती।

18. मोती उत्पादित करने वाले मोती शुक्ति पाये जाते हैं–

(अ) स्वच्छ जल में (ब) समुद्री जल में

(क) दोनों में (ड) इनमें में से कोई नहीं।

19. निम्न में से किस पदार्थ को मोती की माता (Mother of Pearls) कहते हैं?

(अ) कैल्साइट (ब) कॉन्चिओलिन

(क) नेक्रे (ड) इनमें में से कोई नहीं।

20. मोती संवर्धन में किसे कलमी ऊतक के रूप में प्रयोग किया जाता है?

(अ) पाद (ब) कवच

(क) क्लोम (ड) मैण्टिल।

21. नेक्रे स्रावित करने वाली कोशिकाएँ पायी जाती हैं–

(अ) मैण्टिल की बाहरी सतह पर (ब) मैण्टिल की अन्दरूपी सतह पर,

(क) मैण्टिल के किनारे पर (ड) सभी जगहों पर।

22. स्पैट बनने से ठीक पूर्व की अवस्था को कहते है –

(अ) ट्रोकोफोर लार्वा (ब) पेडीवेलिगर लार्वा

(क) वेलिगर लार्वा (ड) प्लैण्टीग्रेड।

23. सर्वाधिक प्रसिद्ध 'रानी मोती' (Queen pearl) है एक–

(अ) स्वच्छ जलीय मोती

(ब) समुद्र जलीय मोती

(क) कृत्रिम मोती

(ड) रंगीन कृत्रिम मोती।

24. मोती बनाने वाली वह समुद्री प्रजाति जो भारत में सामान्यतया पायी जाती है–

(अ) एबोलोन, हेलिओटिस (Ablone, Haliotis sp)

(ब) पिंकटाडा फुकाटा (Pinctada fucata)

(क) हिरियोप्सिस स्लेजिलाई (Hyriopsis schlegelii)

(ड) पैरीसिया कारुगेटा (Parreysia corrugata)।

टिप्पणी

25. मोती संवर्धन का प्रमुख उद्देश्य है–

(अ) आभूषण उद्योगों में (ब) पेण्ट उद्योगों में

(क) फर्नीचर उद्योगों में (ड) उपरोक्त सभी में।

26. समुद्र की गहराई में झीगों को पकड़ने वाले गोताखोरों को जापान में कहा जाता है–

(अ) कौटिल्य (ब) मुक्ताफना

(क) पी. वल्गेरित (ड) ए.एम.ए. (AMA)।

4.14 संवर्धित प्रजातियाँ (Cultured Species)

विश्व के कई देशों ने मेंढ़क के व्यावसायिक पालन हेतु प्रयास किये परन्तु उन्हें इस ओर वांछित सफलता पाप्त नहीं हुई। आज भी यूरोप तथा दक्षिण अमेरिका में मेंढ़कों की कुछ प्रजातियों जैसे राना टैम्पोरेरिया (Rana temporaria), राना डलमाटिना (Rana dalmatina), राना एस्कुलेंटा (Rana escultenta) आदि के पालन की तकनीक विकसित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। अमेरिका में उत्तरी अमेरिकन बुल फ्रॉग, राना कैटेस्बियाना (North American Bull Frog, Rana catesbeiana) का सफलतापूर्वक संवर्धन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित प्रजातियों का अन्तर्कक्षीय सवर्धन (Indoor Culture) भी किया जा रहा है–

1. अमेरिकन हरा मेंढक, राना क्लेमीटेन्स (American Green Frog, Rana clamitans)।
2. लेपर्ड मेंढक, राना पीपियेन्स (Leopard Frog, Rana pipiens)।
3. पिकेरेल मेंढक, राना पालस्ट्रिस (Pickerel Frog, Rana palustris)

भारत में मेंढ़कों की निम्न प्रजातियों का संवर्धन किया जा रहा है–

1. भारतीय बुल मेंढक, राना टिग्रीना (Indian Bull Frog, Rana tigrina)।
2. भारतीय हरा मेंढक, राना हैक्साडैक्टाइला (Indian Green Frog, Rana hexadactyla)
3. जॉर्डन का मेंढ़क राना क्रॉसा (Jadon's Frog, Rana crossa)

राना टिग्रीना तथा राना क्रॉसा भारत में प्राकृतिक रूप से जंगलों में पाये जाते हैं जबकि राना हेक्साडैक्टाइला प्रायद्वीपीय भारत में पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा तथा ओडिशा में पाया जाता है।

4.15 राना टिग्रीना की जैविकी (Biology of Rana Tigrina)

टिप्पणी

राना टिग्रीना एक दिनचर (dirunal) तथा जल–स्थलचर (amphibious) मेंढक है जो जल में या जलाशयों के निकट नम भूमि पर पाया जाता है। इसका शरीर 12–20 सेमी लम्बा होता है। त्वचा श्लेष्म (mucus) के कारण चिकनी तथा लसलसी होती है। पृष्ठ भाग पर त्वचा का रंग हरा होता है जिस पर काले या भूरे धब्बे पाए जाते है। अधर तल पर त्वचा का रंग हल्का पीला होता है। शरीर के मध्य पृष्ठ भाग पर आगे से पीछे तक एक हल्की पीली लाइन दिखाई देती है।

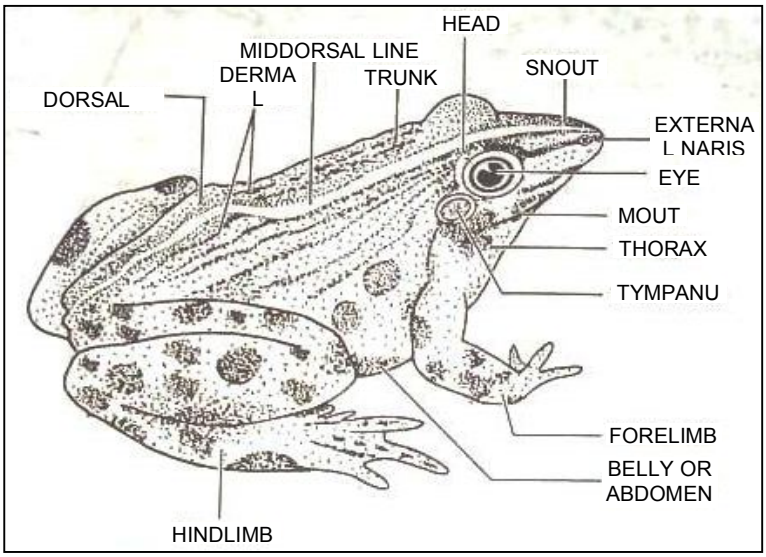

चित्र क्र. 4.18: External features of Rana tigrina

भारतीय बुल फ्रॉग जुलाई से सितम्बर तक जनन करता है। बरसात प्रारम्भ होते ही मेंढक ग्रीष्म सुप्तावस्था (aestivation) त्यागकर बाहर आ जाते हैं। अमेरिकन बुल फ्रॉग–अप्रैल तथा मई के महिने में जनन करता है। जनन काल में नर मेढ़क तीखी टर्र–टराहट द्वारा मेंढकी को मैथून (copulation) के लिए आवाहन करता है। मैथुन के समय मेंढकी की पीठ पर चढ़कर अपने अग्रपादों द्वारा उसके वक्ष भाग को कसकर पकड़ लेता है। इस प्रकार के मैथुनी आलिंगन को एम्प्लेक्सस (amplexus) कहते हैं। घण्टों मैथुनी आलिंगन के फलस्वरूप नर तथा मादा दोनों ही अपने–अपने युग्मकों (cloacal aperture) से ऐल्बुमेन (albumen) में सने अण्ड बाहर निकलते है। ठीक इसी समय नर के अवस्कर द्वार से शुक्राणु द्रव्य (spermatic fluid) निकलता है। एक मेंढकी एक बार में 600–700 अण्डे देती है तथा एक जनन काल में कई बार मैथुन करती है। अण्डों के चारों ओर का ऐल्बुमेन जल सोखकर तुरन्त फूल जाता है और लसदार जेली में परिवर्तित हो जाता है। इसी को मेंढक का जलांडक या स्पॉन (Spawn) कहते हैं। एक जनन काल में एक–एक मादा 5–6 वर्ग फीट के क्षेत्र में लसदार जेली में करीब 10,000–20,000 अण्डे देती है।

टिप्पणी

अण्डनिक्षेपण (oviposition) के लगभग 5 दिन बाद अण्डोद्भेदन (hatching) होता है जिसके परिणामस्वरूप टैंडपोल लार्वा (tadpole larvae) अण्डे से बाहर निकलता है। अमेरिकन बुल फ्रॉग के अण्डे ताप अनुसार 4 दिन से लेकर 3 सप्ताह में अण्डोद्भेदन करते हैं।

टैडपोल लार्वा जलचर (aqutic) होता है। हैचिंग के तुरन्त बाद से लेकर 24 घण्टे तक यह भोजन नहीं करता और अण्डपीत पर ही निर्वाह करता है इसके बाद यह भोजन लेना प्रारम्भ करता है। यह शाकाहारी (herbivorous) होता है तथा सूक्ष्म–पौधों और शैवालों को खाता है। टैडपोल कायान्तरण (metamophosis) करके वयस्क में बदल जाता हैं।

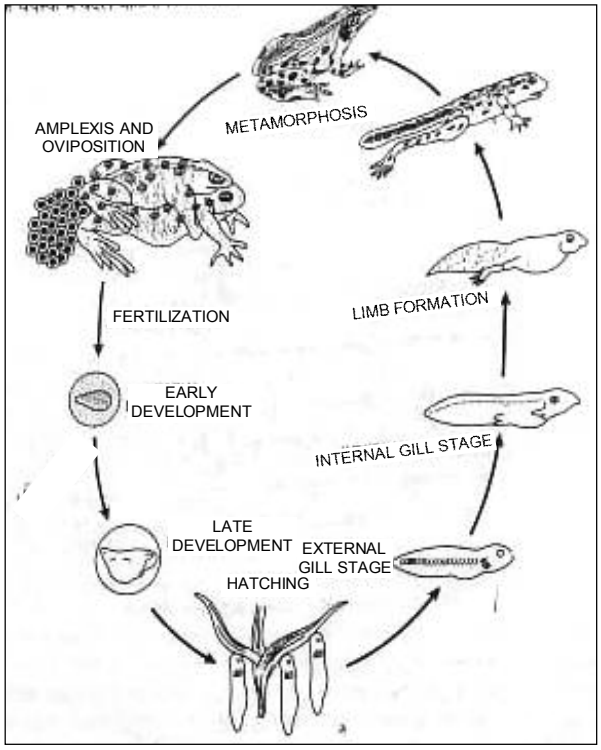

चित्र क्र. 4.19: Life cycle of rana tigrina

मेंढकों में वृद्धि बहुत धीरे–धीरे होती है। अण्ड निक्षेपण से लेकर वयस्क बनने तक का समय वातावरण के ताप, भोजन की उपलब्धता आदि पर काफी निर्भर करता है। भारत तथा अन्य गर्म देशों में यह लगभग डेढ–दों महीने में पूरा हो जाता है, लेकिन ठण्डे देशों में अधिक समय लगता है जहाँ टैंडपोल से मेंढक बनने में एक साल या उससे भी अधिक समय लग सकता है। भोजन के अभाव में कायान्तरण जल्दी प्रारम्भ हो जाता है। इसके विपरित भोजन की बहुतायत होने पर टैडपोल बड़ा एवं मोटा हो जाता है और कभी–कभी महीनों कायान्तरण नही होता।

4.16 मेंढकों का संवर्धन (Culture of Frogs)

मेंढक एक असमतापी (Poikilothermic) जन्तु है। विशेषज्ञों का मानना है कि ठण्डे देशों की अपेक्षा गर्म देशों में मेंढकों के संवर्धन की सम्भावनाएँ अधिक

टिप्पणी

व्यावहारिक हैं। ठण्डे देशों में जहाँ सर्दी में भी सूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है वहाँ पर संवर्धन कार्यक्रम चलाया जा सकता हैं। मेंढको के संवर्धन को निम्नलिखित चरणों में बाँटा जा सकता है–

1. तलाब की बनावट (Pond Design),
2. जल की गुणवत्ता (Quality of water)
3. संग्रहण (Collection)
4. प्रजनन (Breeding)
5. कृत्रिम संभरण (Artificial Feeding)
6. उपज प्राप्त करना (Harvesting of Crop)

1. **तलाब की बनावट (Pond Design)**– मेंढकों में क्षेत्रीयता (Territoriality) पाया जाना एक महत्वपूर्ण लक्षण है। एक परिपक्व मेंढक को अपने एकान्तिक संभरण क्षेत्र (Exclusive feeding territory) के रूप में कम से कम 21 फीट की तट रेखा (Shore line) की आवश्यकता होती है। इसी विशेषता (trait) के कारण बुल मेंढकों की संख्या उसके प्राकृतिक वातावरण में कम हो जाती है। अतः उपलब्ध तटीय रेखा एक क्रान्तिक कारक (Critical factor) का कार्य करती है। मेंढकों के लिए तालाब का आकार उतना मायने नहीं रखता जितनी कि उसकी तट रेखा क्योंकि मेंढक आराम करने तथा भोजन करने के लिए उथली तट भूमि का ही उपयोग करते हैं। खुले गहरे जल का ये कभी–कभी ही उपयोग करते हैं।

   अनियमित आकृति के तालाबों में नियमित, गोल या चौकोर तालाबो की अपेक्षा अधिक तटरेखा उपलब्ध होती है अतः तालाब लम्बे तथा सँकरे बनाने चाहिए या तालाब में छोटे–छोटे द्वीप या लघुनिवेशिकाएँ (coves) बना देनी चाहिए। आजकल तालाब के स्थान पर छोटी–छोटी खाइयाँ (ditches) बनाकर मेंढकों का संवर्धन किया जा रहा है। इस प्रकार की व्यवस्था मेंढकों के वहन करने की क्षमता बढ़ा देती है। तालाब चाहे जिस प्रकार का भी बनाया जाये, इसका कुछ भाग इतना गहरा होना चाहिए कि अत्यधिक सर्दी या गर्मी के समय मेंढक अपने को सुरक्षित रख सकें। यह गहराई उस स्थान की जलवायु पर निर्भर करती है। साधारणतया 2–12 फीट की गहराई पर्याप्त होती है।

   मेंढ़को के संवर्धन हेतु चयनित तालाब के चारों तरफ कम से कम 3 फीट ऊँची जाली की बाड़ (fence) लगा देनी चाहिए। बाड़ के ऊपरी सिरे को पंख के समान अन्दर तथा बाहर की ओर मोड़ देना चाहिए। यह बाड़ मछलियों, साँपों, कछुओं, जलीय पक्षियों जैसे परभक्षियों से मेंढकों को सुरक्षित रखती है। उड़ने वाले पक्षियों से मेंढको को सुरक्षित रखने के लिए तट रेखा के ऊपर भी एक तार की जाली तानी जा सकती है परन्तु इस प्रकार की व्यवस्था छोटे तालाबों में ही की जा सकती है।

टिप्पणी

2. **जल की गुणवत्ता (Quality of water)**– तलाब में सम्पूर्ण वृद्धि काल के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले जल की आपूर्ति के पर्याप्त साधन होना आवश्यक होता है। अच्छी वृद्धि के लिए जल का ताप 20–26°C तथा pH 6–7 अर्थात् हल्का अम्लीय होना चाहिए। जल में घुलित ऑक्सिजन की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक होती है क्योंकि टैडपोल लार्वा मछली की तरह क्लोम (gill) की सहायता से जलीय श्वसन करते हैं। जल में पीड़कनाशकों (pesticides) एवं अन्य जहरीले पदार्थों की उपस्थिति नही होनी चाहिए। हवा अथवा जल के साथ आये इन पीड़कनाशकों की अघातक सान्द्रता (Non-lethal concentration) भी मेंढ़क की टाँगों को मनुष्य के खाने के लिए अयोग्य बना देती है।

3. **संचयन (Collection)**– कुछ कृषक जनन काल के समय मेंढक के अण्डों तथा लार्वों का संचयन करते हैं, परन्तु यह देखा गया है कि संचित किये गये लार्वों में कभी–कभी रोगजनक जीवों का संक्रमण होता है। इस प्रकार के संक्रमित लार्वों की बहुधा कायान्तरण के समय मृत्यु हो जाती है। अतः परिपक्व प्रजनकों (breeders) को उनके प्राकृतिे स्रोतों से मानसून पूर्व के महीनों में ही पकड़ लिया जाता है। इन प्रजनकों को वैलिसनेरिया, हाइड्रिला, एजोला एवं वॉल्फिया जैसे जलीय पौधों से युक्त तालाब में रखा जाता है। सामान्यतया मादा एवं नर मेंढकों को 5 : 1 के अनुपात में 6,000 / हेक्टयर की दर से संचयन किया जाता है।

4. **प्रजनन (Breeding)**– वयस्क नर मेंढकों को निम्नलिखित कारणों से पहचाना जा सकता है–

   (i) पूर्ण विकसित मैथुन गद्दी की उपस्थिति।

   (ii) जबड़ों के कोण पर वोकल सैक की उपस्थिति। ये वोकल सैक राना टिग्रीना तथा राना क्रॉसा में पिगमेण्ट युक्त तथा राना हेक्साडैक्टाइला में सफेद होते है।

   (iii) नर की भुजाएँ मादा की अपेक्षा मजबूत होती है।

आकर के अनुसार 75 मिमी. से बड़े राना टिग्रीना, 65 मिमी. से बड़े राना हेक्साडैक्टाइला तथा 50 मिमी से बडा राना क्रॉसा को प्रजनन काल में परिपक्व कहा जा सकता है।

परिपक्व अण्डों वाली मादा को पहचानने के लिए मेंढक को एक बर्तन में रखते हैं जिसमें 2–3 इंच जल हो। बैठने पर केवल मादा मेंढक का उदर उभरा हुआ दिखाई देगा। ऐसे मेंढक में जाँघ की पेशियाँ गोल तथा पूरी दिखाई देंगी तथा उदर भाग की कशेरुकाएँ पूरी तरह माँस से ढ़की होगी।

मेंढकों में पीयूष ग्रन्थि का घोल तैयार करके इंजेक्शन लगाने से प्रजनन प्रेरित किया जा सकता है। इसके लिए परिपक्व मेंढ़कों में से प्रजनन काल में प्रजनन से पूर्व पीयूष ग्रन्थि (Pituitary gland) निकाल कर तुरन्त उसे ठण्डे ऐसीटोन (Acetone) में डाल देते है। इन ग्रन्थियों को होमोजिनाइजर में 0.5 मिली. आसुत जल, रिंगर घोल में बारीक पीसकर रख लेते हैं। पीयूष ग्रन्थि के

टिप्पणी

इस घोल को एक हाइपोडर्मिक सिरिंज (Hypodermic syringe) द्वारा त्वचा के ऊपर से प्रवेश करा देते हैं। इससे अण्डजनन हो जाता है।

अण्डों का कृत्रिम निषेचन शुक्राणुओं का प्रलम्बन (suspension) बनाकर किया जाता है। इसके लिए जीवित नर मेंढक में से वृषणों (Testes) को शल्क क्रिया द्वारा काट कर निकाल लेते है। इसे छोटे–छोटे टुकडों में स्कैल्पल की सहायता से काट कर 5 मिली. जल में मिला देते है। यह प्रलम्बन अण्डों के ऊपर डालने से सौ प्रतिशत निषेचन होता है।

कृत्रिम निषेचन कराने हेतु एक इनैमल ट्रे (36 × 31 × 6 सेमी) में 400 मिली. तालाब का जल लेते है। इसमें 50,000–60,000 अण्डे रखकर 20 मिली. शुक्राणुओं का प्रलम्बन डाल देते हैं तथा ट्रे को थोड़ा तिरछा कर देते हैं जिससे शुक्राणु अण्डों से अच्छी तरह से मिल सकें। निषेचित अण्डों को जेली कैप्सूल के फूलने तक इसी घोल में रहने देते है।

अब अण्डों की जेली को हटाया जाता है अन्यथा अण्डों के ट्रे की दीवार से चिपकने का खतरा बना रहता है। इस कार्य के लिए अण्डों को बहुत शीघ्रता से 0.4 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड तथा 0.3 प्रतिशत यूरिया का 2 : 1 के अनुपात में घोल बनाकर 1–2 घण्टे तक उपचारित करते है। इसके बाद अण्डों को जल से धोकर हैचिंग के लिए छोड़ देते हैं।

5. **कृत्रिम संभरण (Artificial Feeding)**– मेंढकों के संवर्धन में संभरण (feeding) एक अत्यन्त नाजुक प्रक्रिया है। संवर्धन के पणिामस्वरूप मेंढकों की सघनता (Density) बढ़ने पर उपलब्ध प्राकृतिक भोजन पर्याप्त नहीं होता, अतः स्वजातिभक्षण (Cannibalism) का खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त भोजन की कमी से मेंढकों की वृद्धि एवं माँस की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है अतः संपूरक (supplementary) भोजन की आपूर्ति करना आवश्यक हो जाता है।

बुल फ्रॉग के टैडपोल शाकाहारी होते हैं जो सूक्ष्म–पौधों एवं शैवालों का भक्षण करते है। संपूरक भोजन के रूप में इन लार्वो को उबला आलू, माँस के महीने टुकड़े या चूजे की आँतों से बना भोजन दिया जा सकता है।

टैंडपोल के कायान्तरण के फलस्वरूप मेंढक के बनते ही संभरण की प्रक्रिया और भी जटिल हो जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मेंढ़क केवल गतिशील जन्तुओं मुख्यतया कीटों (insects) का ही भक्षण करता है। मृत जीवों या स्थावर (non-motile) भोजन को यह अस्वीकार कर देता है। जापान में एक प्रयोग के दौरान मेंढकों को रेशम कीट के स्थावर प्यूपों (pupae) को खाने के लिए प्ररित किया गया। एक अन्य जापानी विधि के अनुसार रेशम कीट के मृत लार्वों को 12 मिमी. गहार ट्रे में रखकर तट के उथले जल में रख दिया जाता है। फिर इस ट्रे को एक छोटी मोटर द्वारा आगे–पीछे हिलाया डुलाया जाता है जिससे उसमें रखे मृत लार्वा भी आगे–पीछे हिलते–डुलते रहते हैं और मेंढक इन्हें जीवित समझकर खाते रहते है।

अधिकतर कृषक जीवित भोजन का संचयन करते हैं। इसके अतिरिक्त किनारे पर कीटों को आकर्षित करने वाले फूलों के पौधे लगाते हैं तथा रात में किनारे पर 100–200 W का लैम्प लगा देते है जिससे कीट आकर्षित होकर मेंढकों का शिकार बनते है।

टिप्पणी

तालाब में संवर्धित किये गये बुल मेंढकों को उसी प्रकार से पकड़ते है जैसे उंगली मेंढकों को पकड़ा जाता है। इन तकनीकों में हाथ से पकड़ना, जाल से पकड़ना, भाले से पकड़ना तथा मछली की तरह काँटे से पकड़ना शामिल है। काँटे मे चारे (Bait) के रूप में जीवित कीट, कैचुए या कृत्रिम चारे के रूप में लाल धागे या कपड़े का उपयोग किया जाता है। भाले का उपयोग (spearing) सामान्यतया रात में करते है। इसके लिए पहले मेंढक की आँखों पर प्रकाश बिन्दु (spot-light) फैंक कर उसे चकित कर देते है जिससे वह गतिहीन हो जाता है।

4.17 मेंढ़कों का अन्तर्कक्षीय संवर्धन (Indoor Culture of Frogs)

मेंढ़कों के अन्तर्कक्षीय संवर्धन की तकनीक सर्वप्रथम जापान के टी. कावामूरा (T. Kawamura) ने विकसित की। इसी तकनीक के आधार पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके अन्य देशों में भी मेंढकों का अन्तर्कक्षीय संवर्धन किया जा रहा है परन्तु व्यावसायिक स्तर पर इस विधि का उपयोग अभी नहीं किया जा रहा है। इस विधि को निम्नलिखित चरणों में बाँटा जा सकता है–

1. जल की पूर्ति (Supply of Water),
2. टैडपोल बोतल (Tadpole Bottles),
3. मेंढकों के पिंजड़े (Cages of Frog),
4. संभरण (Feeding)

1. **जल की पूर्ति (Supply of Water)**– अन्तर्कक्षीय संवर्धन के लिए जल की पूर्णकालिक निरन्तर आपूर्ति होना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जल का दबाव भी एक समान बना रहे ताकि जल के बहाव को आवश्यकतानुसार नियन्त्रित किया जा सके। आपूर्तित जल का pH 6–7 होना चाहिए जिसे ऐसीटिक अम्ल के नियन्त्रित प्रवेश की सहायता से व्यवस्थित रखा जा सकता है। जल का ताप 20–22°C होना आवश्यक होता है जिसके लिए हीटरों की मदद ली जा सकती है।
2. **टैडपोल बोतल (Tadpole Bottles)**– सर्व्रपथम संग्रहीत अण्डों को या उनसे निकले लार्वों को इनेमिल पैन (pan) में रखा जाता है प्रत्येक पैन में इनकी संख्या सीमित रखनी चाहिए। मृत भ्रूणों को नियमित रूप से निकालते रहना चाहिए तथा प्रत्येक तीसरे दिन जल बदलते रहना चाहिए।

जब टैंडपोल लार्वा तेजी से तैरने लगें तभी इन्हें टैडपोल बोतलों में स्थानान्तरित कर देना चाहिए।

टिप्पणी

टैडपोल बोतल एक गैलन की क्षमता वाली काँच या प्लास्टिक की बोतल होती है जिसके तल को निकालनें के बाद उलटकर रख देते हैं। इन बोतलों में नीचे से एक 10 मिमी. काँच की नली की सहायता से जलापूर्ति की जाती है तथा जल के निष्कासन के लिए एक 15 मिमी. प्लास्टिक साइफन की भी व्यवस्था कर दी जाती है। जल की धारा को इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं कि प्रतिदिन तीन बार बोतल का सम्पूर्ण जल बदल जाये। जल के आगम तथा निर्गम स्थलों पर स्टेनलेस स्टील की जाली लगी होती है जो लार्वों को बाहर जाने से रोके रखती है। टैडपोल बोतल में 25 टैडपोल से अधिक नही रखने चाहिए। इन बोतलों को रैक पर रखा जाता है।

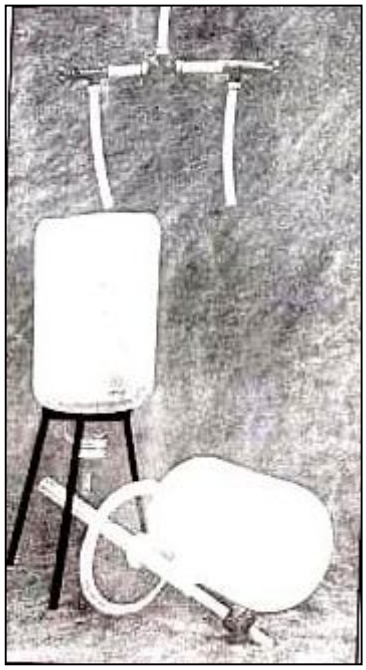

चित्र क्र. 4.20: Tadpole bottles

3. **मेंढ़कों के पिंजड़े (Cages of Frog)**– कार्यान्तरण के समय जैसे ही अगले पैर निकलते हैं मेंढ़कों को प्लास्टिक के आयताकार पिंजड़ों में स्थानान्तरित कर देते है इन पिंजड़ो में अन्दर की तरफ रबर की मैट लगी रहती है तथा आश्रय देने के लिए चिकनी मिट्टी के टुकड़े रखे रहते है। पिजड़ों को एक तरफ झुका कर इस प्रकार रखा जाता है कि इसका एक सिरा जल से भरा रहे तथा दूसरा सिरा सूखा रहे। तीसरे दिन इन पिंजडों का जल बदल देना चाहिए।

कार्यान्तरण के बाद पूर्ण मेंढक बनने पर इन मेंढकों को अन्य पिंजड़ों में स्थानान्तरित कर देते है। प्रत्येक पिंजड़ा 50.8 × 40.6 × 21.6 सेमी. आकार का होता है तथा इसमें दो मंजिले होती है। निचली मंजिल अपारदर्शी होती है जिसमें जल के अतिरिक्त किनारों पर शिलाफलक (Ledges) रखे रहते है। दूसरी मंजिल का पिंजडा सूखा तथा पारदर्शी होता है जिस पर रबड़ की एक मैट बिछी रहती है

टिप्पणी

तथा आश्रय (Shelter) देने के लिए चिकनी मिट्टी के टूटे बर्तन रखे रहते है। ऊपरी मंजिल की तली में एक छिद्र होता है जिसके द्वारा मेंढ़क दोनों मंजिलों में आ–जा सकता है निचली मंजिल में जल के आगम तथा निर्गम की अवस्था होती है। मेंढकों को पृथक् घर सुविधा प्रदान की जाती है। पिंजडों में स्थानांतरित करने से पहले उन्हें 6 ppm के कैल्शियम हाइड्रोक्लोराइड (Calcium hydrochloride) विलयन में 10 मिनट के लिए रखा जाता है।

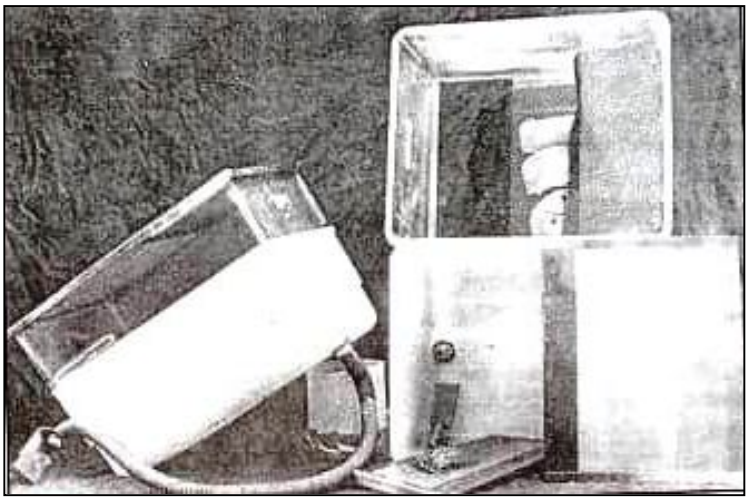

चित्र क्र 4.21: Cages for adult frogs

4. **संभरण (Feeding)**– टैडपोल लार्वों को प्रतिदिन दो बार रोमेन (Romaine) या एस्कारोल (Escarole) की उबली हुई सलाद भोजन के रूप में देते हैं। इसके अतिरिक्त संपूरक भोजन के रूप में सप्ताह में दो या तीन बार कच्चा या उबला यकृत दिया जाता है। कार्यान्तरण के उपरान्त इन्हें जीवित कीट भोजन के रूप में दिये जाते हैं जिनमें प्रमुख हैं–मीट फ्लाई, सारकोफेगा (Meat fly, Sarcophaga), ग्रीनबॉटल फ्लाई, फिनीसिया (Greenbottle fly, Phoenicia) तथा फील्ड क्रिकेट, एकीटा (Field cricket, Acheta)। कीटों के लिए कींटों का पालन प्रयोगशाला में ही किया जाता है।

4.18 प्रजनन एवं चयन (Breeding and Selection)

प्रयोगशाला में मेंढकों के प्रजनन की मानकीकृत प्रक्रिया (Standardised procedure) का वर्णन इसी अध्याय में किया जा चुका है। व्यावसासिक स्तर पर प्रजनन की प्रक्रिया पर शोधकार्य चल रहा है।

मेंढकों के व्यष्टिगत पहचान में उनकी त्वचा पर पाये जाने वाले निशानों की अत्यधिक भूमिका होती है। प्रत्येक मेंढक के त्वचीय निशान उसी प्रकार अनोखे (Unique) होते हैं जैसे मानव की उँगलियों पर पाये जाने वाले निशान। मेंढकों की पहचान कार्यान्तरण के तुरन्त पश्चात् कर ली जाती है और प्रत्येक मेंढक के प्रजनन विवरण का अभिलेख सूरक्षित रखा जाता है। इसी अभिलेख के आधार पर

प्रजनन मेंढकों का चयन किया जाता है। परिपक्व प्रजनकों के चयन की प्रक्रिया का वर्णन इसी अध्याय में किया जा चुका है।

टिप्पणी

4.19 मिश्रित संवर्धन (Polyculture)

आजकल भारत में मेंढकों एवं मछलियों का मिश्रित संवर्धन (Mixed/Polyculture) किया जा रहा है जो कि मेंढकों के एकल संवर्धन (Monoculture) से कहीं ज्यादा लाभप्रद साबित हो रहा हैं। मिश्रित संवर्धन के लिये भारतीय मेजर कार्प मछलियाँ; जैसे–कतला, कतला कतला (Catla, Catla catla), रोहू, लेबियो रोहिता (Rohu, Labeo rohita) तथा म्रिगाल, सिरहाइना म्रिगाला (Mrigal, Cirrhina mirgala) की फिंगरलिंग्स को छोटे मेंढकों के साथ संग्रहीत किया जाता है। इस प्रकार सामान्य एकल संवर्धन की तुलना में मछलियों की दोगुनी उपज प्राप्त की जाती है।

4.19.1 बीमारियाँ (Diseases)

मेंढ़को में प्रायः लाल पैरों वाली बीमारी **(Red leg disease)** होती देखी गयी है यह बीमारी एअरोमोनास बैक्टीरिया (Aeromonas bacteria) के संक्रमण से होती है। यह देखा गया है कि अधिकतर यह बीमारी मेंढकों को कम जगह में पालने से अथवा भोजन की कमी के कारण होती है। इस बीमारी के हो जाते ही संक्रमित मेंढकों को अलग करके उपयुक्त प्रतिजैविक (antibiotic) द्वारा उनका उपचार करना चाहिए। तीव्र संक्रमण होने पर मेढकों को तालाब से बाहर निकालकर 25–30 प्रतिशत के फ्रॉग रिंगर्स घोल (Frog Ringers Solutions) में रखकर तालाब को खाली करके अच्छी प्रकार से सुखाना चाहिए। पूरी तरह से सुखाने के बाद ही तालाब में दुबारा मेंढक पालने चाहिए।

4.19.2 उपयोग (Utilization or Economic Importance) (आर्थिक महत्व)

मेंढ़क का माँस उच्च प्रोटीनयुक्त होता है। मेंढक के पैरों, विशेषकर पिछले पैरों, की माँग विश्व बाजार में अत्यधिक है। भारत के अतिरिक्त बांग्लादेश, इण्डोनेशिया, क्यूबा, मैक्सिको तथा चीन भी मेंढकों का निर्यात करते है। मेंढकों की चमड़ी भी बहुत आर्थिक महत्व रखती है तथा इसकी इटली, अमेरिका तथा जापान में अत्यधिक माँग है। मेंढक के परिसंस्करण के बाद बचा हुआ व्यर्थ हिस्सा कुक्कुट आहार में प्रयोग किया जा सकता है। मेंढक के चूरे की भी विदेशी बाजार में बहुत माँग है। अतः मेंढक पालन एवं संवर्धन एक आर्थिक उद्योग का रूप ले सकता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

27. भारतीय मेंढक की कौन–सी प्रजाति का संवर्धन किया जाता है?

(अ) राना पीपियेन्स (ब) राना कैटेस्बियाना

(क) राना टिग्रीना (ड) राना हेक्साडैक्टाइला।

28. मेंढ़क में लाल पैर वाली बीमारी होती है–

(अ) प्रोटोजन परजीवी के कारण (ब) विषाणु के कारण

(क) जीवाणु के कारण (ड) उपर्युक्त तीनों के कारण।

29. टैडपोल लार्वा होता हैं–

(अ) शाकाहारी (ब) माँसाहारी

(क) परजीवी (ड) सर्वाहारी।

30. निम्नलिखित के द्वारा नर मेंढक को पहचाना जा सकता है?

(अ) अग्र पाद पर पायी जाने वाली मैथुन गद्दी द्वारा

(ब) स्वर कोष की उपस्थिति द्वारा

(क) टर्र–टराहट की आवाज उत्पन्न करने के कारण

(ड) उपर्युक्त सभी द्वारा।

31. मेंढक चला जाता है–

(अ) शीत निष्क्रियता में (ब) ग्रीष्मनिष्क्रियता में

(क) उपर्युक्त में से कोई भी नई (ड) उपर्युक्त में से सभी।

32. मेंढक के मैथुनी आलिगन को कहते हैं–

(अ) एम्प्लेक्सस (ब) डुप्लेक्सस

(क) बाईप्लेक्सस (ड) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

33. टैडपोल लार्वा मुख्यतया श्वसन करता है–

(अ) त्वचा द्वारा (ब) क्लोम द्वारा

(क) फुफ्फुस द्वारा (ड) अवस्कर द्वारा।

34. संवर्धन तालाब के जल की pH लगभग कितनी होनी चाहिए–

(अ) 8–9 (ब) 6–7

(क) 4–5 (ड) 8.6–9.6।

टिप्पणी

35. मेंढक में प्रमुख लक्षण पाया जाता है–

(अ) जल में रहने का

(ब) थल में रहने का

(क) जल एवं थल दोनों का

(ड) उपरोक्त में से कोई नही।

4.20 संवर्धन योग्य मछलियों के विशिष्ट लक्षण (Specific Characters of Culturable Fishes)

सफल संवर्धन हेतु मछली में निम्नलिखित गुणों का पाया जाना अतिआवश्यक है–

1. मछली–पालन हेतु उपयुक्त (Suitable) होना चाहिए।
2. मछली की तेजी से वृद्धि हो ऐसी होनी चाहिए।
3. मछली, वृद्धि करके अच्छी लम्बाई तथा भार (वजन) प्राप्त कर सकती है।
4. मछली का मांस पोषक एवं सुपाच्य (Easily digestible) हो।
5. इसका मांस स्वादिष्ट होना चाहिए।
6. ये शाकाहारी प्लवकभक्षी (Plankton feeden), सूक्ष्मजीवी, मलभक्षी Detritus feeder अर्थात् छोटी से छोटी भोजन श्रृंखला वाली मछली होनी चाहिए
7. इनमें पर्यावरणीय कारकों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता भी होना चाहिए।
8. इन्हें आसानी से Transport किया जा सके ऐसा गुण भी होना चाहिए।
9. इनमें मिश्रित पालन करने का भी गुण होना चाहिए।
10. इनमें प्रेरित प्रजनन का गुण होना चाहिए।
11. रोग प्रतिरोधक गुण भी होना चाहिए।
12. अधिक से अधिक आर्थिक महत्व वाली होना चाहिए।

कुछ प्रमुख खाने योग्य मीठे पानी की मछलियों की सामान्य जानकारी निम्नलिखित है–

(A) दीर्घ सफरियाँ (Major Carps)

इस श्रेणी में रोहू, कल्बासु, कुर्सा, मृगाला, रेबा तथा कटला आदि कार्प मछलियाँ शामिल हैं जो कि वर्ग (Class) – Teleostomi (Bony fishes); गण (Order) – Cypriniformes तथा कुल (Family) – Cyprinidae की सदस्य होती हैं। इनमें से प्रत्येक का वर्णन निम्न प्रकार है–

(1) रोहू या *लैबियो रोहिता* (*Labeo rohita*)– यह सर्वाधिक कीमती तथा प्रसिद्ध मेजर कार्प है जो कि भारत के दक्षिणी भाग को छोड़कर सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र

टिप्पणी

के मीठे जल में पायी जाती है। यह कार्प 3 फीट से 1 मीटर तक की लम्बाई तथा 20 से 25 किग्रा तक का वजन प्राप्त कर सकती है। इसके शरीर का रंग Dorsal सतह पर Bluish या Greyish या Blackish होता है, जबकि Ventral तथा Lateral सतहें चाँदी की तरह सफेद या हल्की पीली (Creamy pale) होती हैं। जीनस–*लैबियो* **(*Labeo*)** की भारत में पायी जाने वाली लगभग दो दर्जन प्रजातियों में से यह प्रजाति सर्वाधिक Common प्रजाति है। भारत के अतिरिक्त यह प्रजाति अफ्रीका एवं वेस्ट इंडीज जैसे उष्ण–कटिबन्धीय (Tropical) देशों में भी पायी जाती है। यह पाकिस्तान तथा बर्मा (म्यांमार) में भी पायी जाती है।

यह प्रजाति सामान्यतः मीठे पानी (तालाबों, नदियों, झीलों) के साथ–साथ ज्वारनदमुखों (Estuaries) के अल्पखारी (Brackish) जल में भी पायी जाती हैं। यह स्वच्छ जल को पसन्द करती है, परन्तु मटमैले (Turbid) तथा अल्प प्रदूषित मीठे जल में भी रह सकती है। यह तल–भोजी (Bottom-feeder) तथा शाकाहारी होती है और भोजन के रूप में शैवालों (Algae) एवं जलीय पौधों को खाती है। **रोहू** अंडनिक्षेपी (Oviparous) होती है। इसका जनन–काल जुलाई एवं अगस्त माह में होता है तथा इसके अंडों का बाह्य निषेचन जल में सम्पन्न होता है।

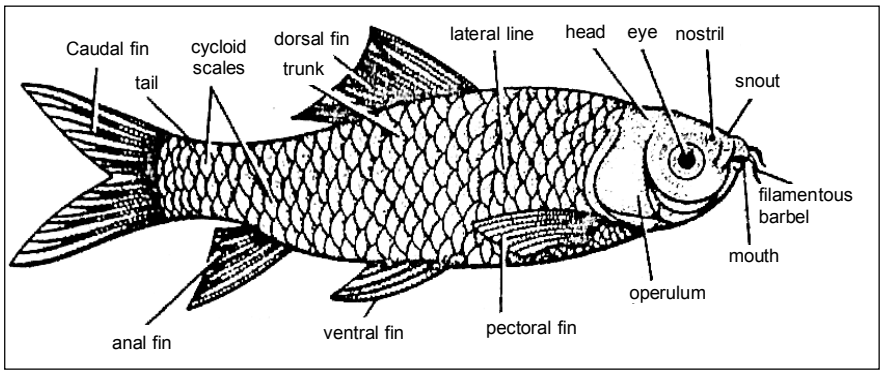

चित्र क्र. 4.22: लैबियो रोहिता (Labeo rohita)

इसके शरीर को सिर, धड़ एवं पूँछ (Head, trunk and tail) में विभक्त किया जा सकता है। सिर पर आगे की ओर छोटा, पिचका–सा तथा कुन्द (Blunt या Obtuse) थूथन (Snout) होता है, जिस पर नीचे की ओर उपान्तस्थ (Subterminal) मुख (Mouth) होता है। सिर के पीछे की ओर ऑपरकुलम (Operculum) होता है। मुख के कोणों पर दो मैक्सिलरी बार्बेल्स (Maxillary barbels) होते हैं, परन्तु Rostral barbels प्रायः नहीं होते। जबड़े (Jaws) दन्तविहीन होते हैं। Snout पर पृष्ठ सतह पर एक जोड़ी छोटे नासाद्वार (Nostrils) होते हैं। सिर के पार्श्वों पर स्थित आँखे प्लकरहित (Lidless) होती हैं।

सिर एवं पूँछ के मध्य का भाग Cross-section में अंडाकार तथा धड़ (Trunk) भाग Dorsal सतह की ओर उभरा हुआ होता है और सारा शरीर चक्रीय शल्कों (Cycloid scales) द्वारा ढका रहता है। शल्कें अतिव्यापी (Overlapping) होती हैं तथा शल्कों पर मौजूद संकेन्द्री छल्लेदार निशानों (Concentric ring-like

टिप्पणी

markings) द्वारा मछली की आयु निर्धारित की जाती है। धड़ से पूँछ तक दोनों एक–एक पार्श्व रेखा (Lateral line) होती है। Operculum के पीछे एक जोड़ी अंश–पंख (Pectoral fins) तथा पीछे एक जोड़ी अधर श्रोणि पंख (Ventral pelvic fins) एवं धड़ की पुष्ठ सतह पर एक पृष्ठ पंख (Dorsal fin) होता है। धड़ के पिछले भाग में अधर तल एक के बाद एक कुल तीन छिद्र होते हैं, जिनमें से अग्र छिद्र **गुदा (Anus)**, मध्य **जनन छिद्र (Genital aperture)** तथा **मूत्र छिद्र (Urinary aperture)** कहलाते हैं।

शरीर का पिछला 1/3 भाग पूँछ (Tail) कहलाता है जो कि पार्श्व सतहों की ओर से पिचका (Laterally compressed) होता है। पूँछ पंख (Tail fin) में गहरी खाँच के कारण दो समान पालियाँ (Lobes) होती हैं, अतः इसे समान पूँछ जिनके दोनो लोब उपर निचे बराबर होते है। **समपालि पूँछ पंख (Homocercal caudal fin)** कहा जाता है। पूँछ की अधर सतह पर मूत्र छिद्र के पीछे एक मध्यस्थ (Median) गुदा पंख (Anal fin) होता है। पूँछ ही प्रमुख प्रचलन अंग का कार्य करती है। सभी पंख (Fins) ग्रे या काले–से रंग के होते हैं (चित्र 4.22)। खाने हेतु पाली जाने वाली सभी मछलियों में यह सर्वाधिक उपयुक्त मछली होती है।

रोहू की जनन क्षमता (Fecundity) अन्य मछलियों (उदाहरण–**कटला**) की तुलना में उच्च स्तर की होती है। मादा लगभग 20 लाख अण्डे देती है, जिनका निषेचन जल में ही सम्पन्न होता है। एक वर्ष में बच्चे लगभग 45 सेमी लम्बाई तथा 700 ग्राम वजन प्राप्त कर लेते हैं। पोनों (Fries) की मृत्युदर (Mortality) कम होती है, अतः इन्हें लम्बी दूरी हेतु ट्रान्सपोर्ट किया जा सकता है।

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{16(3/13)};\ P_{17};\ V_{9};\ A_{7(2/5)};\ C_{19};\ LI_{40\ 41};\ Ltr_{6\frac{1}{2}\ 7\frac{1}{2}};\ B_{1pair}$$

जहाँ कि; D = Dorsal fin,

P = Pectoral fin,

V = Ventral fin,

A = Anal fin,

L_r = Lateral row of unperforated scale,

Ll = Lateral line of perforated scales,

Ltr = Lateral transverse line,

B = Barbels, and C = Caudal fin.

(2) कल्बासु या काला बांस (*Labeo Calbasu*) – भोजन की दृष्टि से श्रेष्ठ यह मछली पंजाब, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल की सभी तथा दक्षिण भारत की कुछ नदियों में बड़ी संख्या में पायी जाती है। यह मछली मीठे जल के तालाबों में भी मिलती है तथा अन्य मछलियों, जैसे कि **कटला** तथा **रोहू** के साथ भी रह सकती है। इसका शरीर मजबूत तथा सिर लम्बा एवं त्रिकोणीय (Conical) होता

टिप्पणी

है। दो जोड़ी लम्बे बार्बेल्स (Barbels) की उपस्थिति तथा सिर के अग्र कोण भाग (Conc) का विशिष्ट वर्णक (Pigmentaion) इस मछली की विशिष्ट पहचान होती है। अच्छी तरह से रख–रखाव किये गये तालाबों में यह मछली 25–30 सेमी की लम्बाई प्रति–वर्ष प्राप्त कर लेती है, परन्तु इसके शरीर की अधिकतम लम्बाई 90 सेमी तक पायी गयी है। सामान्य रूप से यह मछली 45 से 50 सेमी लम्बाई की होती है। इस मछली का भोजन छोटे–छोटे कीड़े (Insects) तथा शैवाल एवं घोंघे होते हैं। यह कटला एवं रोहू की तरह ही मानसून–काल में प्रजनन करती है। यह मछली पाकिस्तान तथा बर्मा (म्यांमार) में भी पायी जाती है।

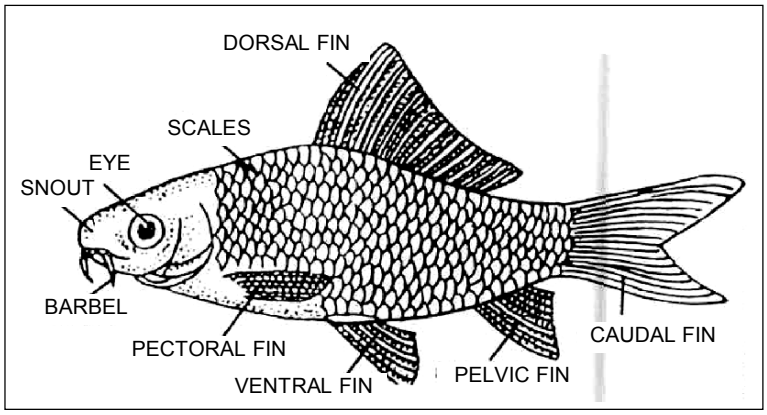

चित्र क्र. 4.23: लैबियो कल्बासु (Labeo calbasu)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{17(3/14)}; P_{19}; V_9; A_{7(2/5)}; C_{19}; LI_{41}; Ltr_{7\frac{1}{2}\ 8}; B_{2\ pairs}$$

(3) कुर्सा (Cursa–*Labeo gonius*)– यह मछली उत्तर भारत, आसाम, उड़ीसा में तथा कृष्णा नदी के मीठे पानी में पायी जाती है। इसके मांस का स्वाद अच्छा होने के कारण यह अच्छी कार्प मछलियों की श्रेणी में आती है। शरीर की पृष्ठ सतह राख के रंग की (Greyish) तथा अधर (Ventral) सतह हल्के रंग की या सफेद होती है। इसके होठ (Lips) मोटे तथा बाहर को निकले हुए–से होते हैं। इसकी शल्कें (Scales) छोटी, परन्तु उनके किनारे काले रंग के होते हैं (चित्र 4.24)। इसकी भोजन आदतें (Feeding habits) रोहू के समान होती हैं तथा इसके भोजन में कार्बनिक कूड़ा–करकट (Organic debris), वनस्पति पदार्थ तथा प्लवकीय शैवाल (Planktonic algae) आदि शामिल होते हैं। कुर्सा का प्रजनन–काल भी मानसून का समय ही होता है।

टिप्पणी

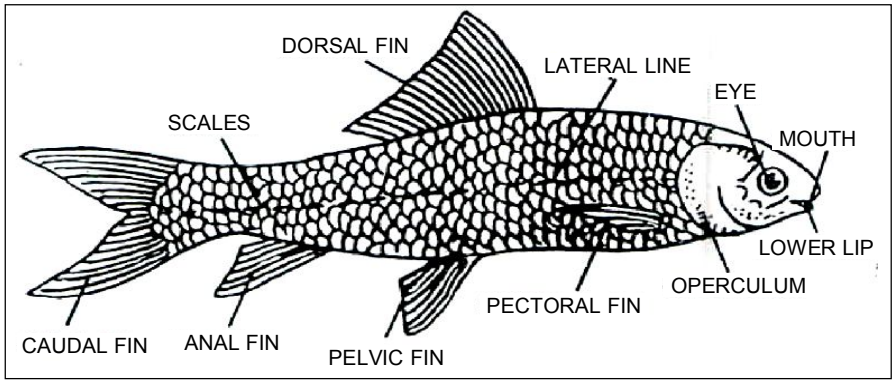

चित्र क्र. 4.24: *लैबियो गोनियस* (Labeo gonius)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{16(3/13)};\ P_{17};\ V_9;\ A_{7(2/5)};\ C_{19};\ Ll_{74};\ Ltr_{16\ 17};\ B_{1pair}$$

(4) मृगल या मृगाला (*Cirrhinus mrigala*)– यह कार्प प्रमुख रूप से उत्तरी भारत, पंजाब, पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा के मीठे जल में पायी जाती है। यह कार्प रोहू से बहुत मिलती–जुलती होती है, केवल इसका मुख चौड़ा तथा होठ पतले होते हैं। इसके शरीर की पृष्ठ सतह (Dorsal surface) गहरे राख के रंग–जैसी (Dark grey), परन्तु अधर (Ventral) सतह नारंगी–जैसे रंग की होती है। आठ माह में यह 20 सेमी तक लम्बाई प्राप्त कर लेती है। इसकी अधिकतम लम्बाई 90 सेमी से एक मीटर तक भी पायी गयी है (चित्र 4.25)। इस मछली की अँगुलिमीने (Fingerlings) तथा वयस्क तो सड़े–गले कार्बनिक पदार्थ ही अधिक खाते हैं, परन्तु इसके पोना रूप (Fry forms) की भोजन आदतें रोहू के समान होती हैं। इसके प्रमुख भोजन में बालू, कीचड़, शैवाल तथा सड़ी–गली वरस्पतियाँ शामिल होती है। इसकी मादाएँ एक वर्ष से पहले ही परन्तु नर एक वर्ष की आयु के बाद परिपक्व (Mature) होते हैं। इनका प्रजनन बाढ़ग्रस्त नदियों मे मानसून–काल (जुलाई से सितम्बर) में होता है।

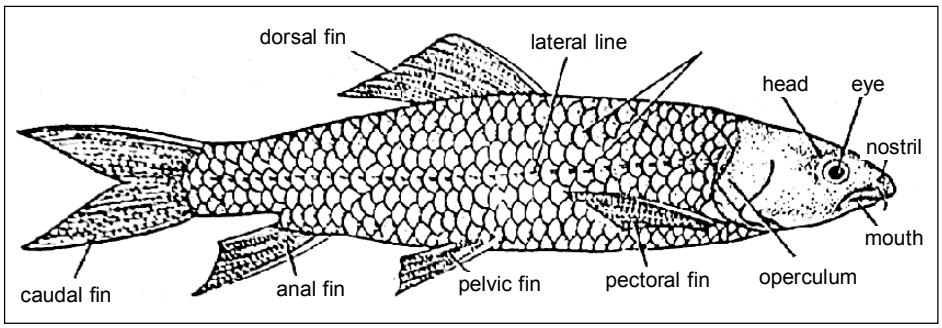

चित्र क्र. 4.25: सिर्रिनस मृगाला (*Cirrhinus mrigala*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{16(3/13)};\ P_{18};\ V_9;\ A_{8(2/6)};\ C_{15};\ Ll_{42\ 44};\ Ltr_{6\frac{1}{2}/6\frac{1}{2}};\ B_{1\,pair}$$

टिप्पणी

(5) *सिर्रिनस रेबा* (*Cirrhinus reba*)– यह कार्प सम्पूर्ण भारत में स्वच्छ जल में पायी जाती है। इस मछली को इसके षट्कोणीय शल्कों (Hexagonal scales), गहरा रंगायन (Dark pigmentation) तथा छोटे एवं गाबदुम आकार के या शुंडाकार (Tapering) सिर द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। नर, मादा की तुलना में छोटा होता है तथा इसकी अधिकतम लम्बाई 30 सेमी तक हो सकती है (चित्र 4.26)। इसके पोना रूप (Fry forms) जन्तुप्लवकों (Zooplanktons) को खाते हैं तथा कटला के पोना की तुलना में तीव्र वृद्धि करते हैं। वयस्क मछली का 60% भोजन प्लवकीय शैवालों का होता है, परन्तु बालू, कीचड़, कूड़ा–करकट तथा वनस्पति आदि भी भोजन का अंश होते हैं। इसका प्रजनन बाढ़ के उथले व किनारे के जल में मानसून महीनों (जूलाई से सितम्बर) में होता हैं। निषेचन के 14–15 घण्टों बाद अण्डों से लार्वे (Larvae) निकलते हैं, जिन्हें वयस्क अवस्था तक पहुँचने में $3\frac{1}{2}$ से 4 माह तक का समय लग जाता है। इसके पोना रूप को तालाबों तथा मौसमी जल (Seasonal waters) में भी एकत्रित करके उसमें वृद्धि कराना सम्भव होता है, क्योंकि इनकी वृद्धि अन्यन्त तीव्र होती है।

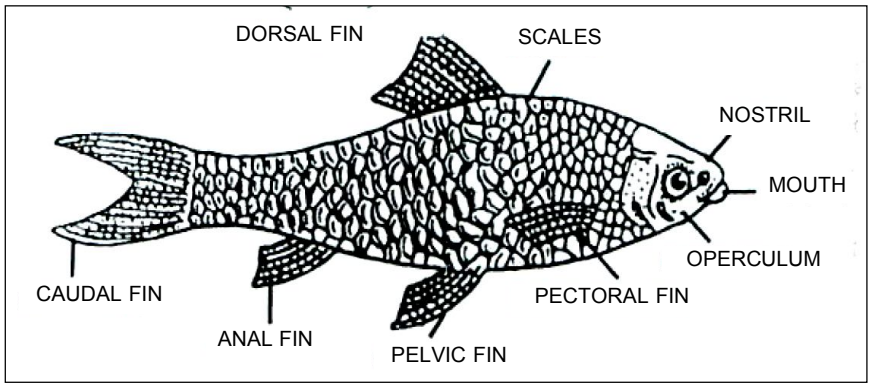

चित्र क्र. 4.26: सिर्रिनस रेबा (*Cirrhinus reba*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{11(2/9)};\ P_{16};\ V_{9};\ A_{8(2/6)};\ C_{19};\ Ll_{36\ 37};\ Ltr_{7/5};\ B_{1\ pair}$$

(6) *कटला–कटला* (*Catla-catla*)– रेबा की तरह ही यह कार्प भी सम्पूर्ण भारत में पायी जाती है। यह मछली अधिकतम 6 फीट की लम्बाई प्राप्त कर सकती है, परन्तु भोजन हेतु इसकी उपयोगिता 2 फुट की लम्बाई प्राप्त कर पाने तक ही होती है। इसका शरीर मजबूत तथा थूथन (Snout) चौड़ा एवं मुख तथा निचला होठ बड़ा होता है। शरीर की पृष्ठ सतह का रंग Greyish तथा अधर एवं पार्श्व सतहों का रंग चाँदी–जैसा होता है।

टिप्पणी

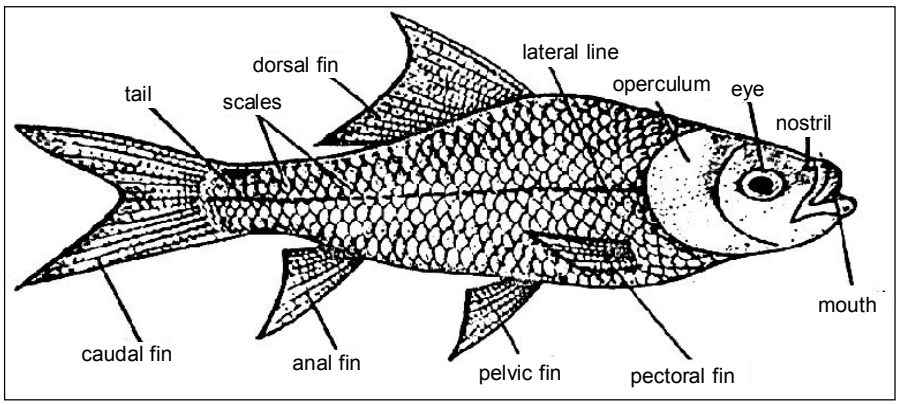

चित्र क्र. 4.27: *कटला–कटला* (***Catla-catla***)

यह मछली सभी कार्प मछलियों की तुलना में तीव्रतम वृद्धि करती है तथा सबसे बड़ी व शक्तिशाली मछली होती है तथा जाल में फँसने पर जाल–मुख से तेजी से निकलकर बाहर कूद जाती है। इसका प्रजनन मानसून–काल (जून से अगस्त) में होता है। निषेचन के 15–16 घण्टों के बाद अण्डों से 4.5–5.5 मिमी लम्बाई के डिम्भक (Larvae) निकलते हैं। इसके पोना 15 से 20 सेमी लम्बे होते हैं तथा पूर्णतः जल पिस्सुओं (Water fleas–***Daphnia***) का ही भोजन करते हैं। यह मछली 7.5 से 10 सेमी प्रति माह वृद्धि करती है तथा 2 पौण्ड प्रतिवर्ष की दर से वजन बढ़ा सकती है।

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{18\ 19(3/15\ 16)};\ P_{19};\ V_{9};\ A_{8(3/5)};\ C_{19};\ Ll_{43};\ Ltr_{7\frac{1}{2}/6\frac{1}{2}};\ B_{1\ pair}$$

(B) माइनर कार्प (Minor Carps)

1. लेबियो फिम्ब्रियेटस (Labeo fimbriatus)– यह लम्बे तथा रोहू या कालबसु की अपेक्षा अधिक गहरे शरीर वाली मछली है। सिर छोटा होता है तथा दोनों होंठ झल्लरी (Fringed) होते हैं। यह मछली पीले रंग की होती है। शरीर के दोनों तरफ बीच की कतार में पास जानेवाले शल्कों के मध्य में लाल रंग का बिन्दु पाया जाता है। पृष्ठ फिन पर गहरे रंग के रंजक (Pigments) समान रूप से फैले रहते हैं।

इस मछली के फ्राई जन्तुप्लवक तथा वनस्पतिप्लवक तथा फिंगरलिंग वनस्पतिप्लवक तथा सड़े पौधे खाते हैं। वयस्क मछली तली पर भोजन करती है (Bottom feeder) तथा शैवालों, सूक्ष्म–जीवों एवं सडी वनस्पतियों को खाती है।

टिप्पणी

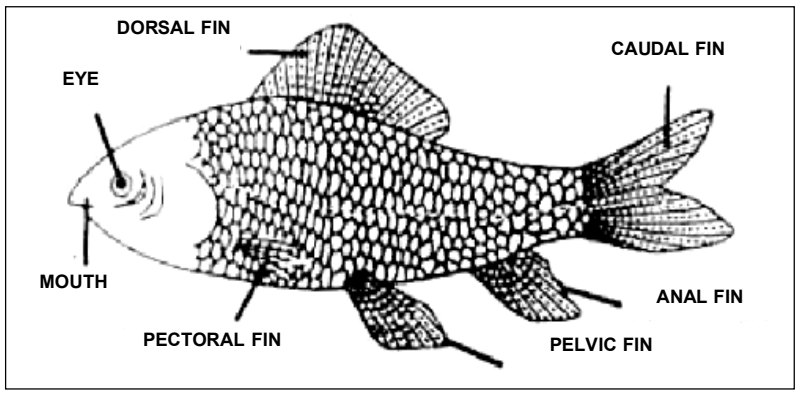

चित्र क्र. 4.28: Labeo fimbriatus (Bloch)

यह मछली मानसून के समय जून से सितम्बर के मध्य प्रजनन करती है। प्रथम वर्ष में अधिकतम 35 सेमी वृद्धि करती है। इसकी सामान्य लम्बाई 90 सेमी होती है। यह सम्पूर्ण भारत में पायी जाती है।

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{19\ 22}; P_{17}; V_9; A_7; C_{19}; Ll_{44\ 47}; Ltr_{9\ 10/8}$$

1. लेबियो बाटा (Labeo Bata)– यह तल पर भोजन करती है। यह शैवालों, सड़े कार्बनिक पदार्थों आदि का भक्षण करती है। यह मानसून काल में जून से सितम्बर के महीने में प्रजनन करती है। वृद्धि बहुत धीमी होती है। प्रथम वर्ष में यह 22–25 सेमी वृद्धि करती है।

यह मछली सम्पूर्ण भारत, पाकिस्तान, नेपाल तथा बांग्लादेश में पायी जाती है।

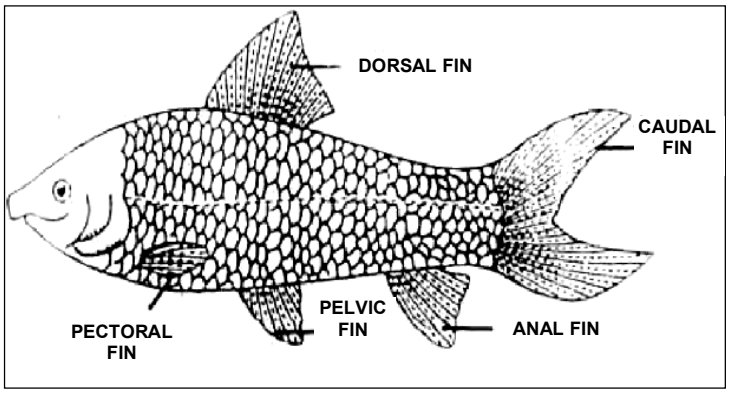

चित्र क्र. 4.29: *Labeo bata* (Ham.)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{11\ 12(2/3/9\ 10)}; P_{18}; V_9; A_{7(3/5)}; Ll_{37\ 40}; Ltr_{7/16/17}$$

(C) अशल्क मीनें या शिंगटी (Cat Fishes)

अशल्क (Scaleless) मीनें या कैट मछलियाँ (Cat Fishes) भी गण (Order) – Cypriniformes की सदस्य होती हैं। इनकी आँखें बहुत छोटी होती हैं, परन्तु स्पर्शकों (Tentacles) का कार्य सम्पन्न करने वाले बार्बेल्स (Barbels) अति

टिप्पणी

विकसित होते हैं, जो कि आँखों की दृष्टि की कमी की पूर्ति करने में सहायक होते हैं। बार्बेल्स (Barbels) रास्ता तलाश करने में अहम भूमिका निभाते हैं। इन्हीं बार्बेल्स (Barbels) के कारण इन्हें Cat Fishes कहा जाता है, क्योंकि Cats के मुख के आस–पास इसी प्रकार की संरचनाएँ (दृढ़ रोम–Vibrissae) पायी जाती हैं। इनका पोषक मूल्य (Nutritive Value) अधिक होता है। इनके रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा अत्यधिक होती है, जिससे ये अन्य मछलियों की तुलना में कम ऑक्सीजन वाले जल में रहने में भी समर्थ होती है। इस श्रेणी (Cat Fishes) में पढ़ीन, टेंगरा, दरियायी टेंगरा, सुतहवा टेंगरा, पायस, सिंघी तथा मांगुर आदि मछलियाँ शामिल हैं, जिनका वर्णन निम्न प्रकार है–

(1) पढ़ीन (*Wallago attu*) – इस प्रजाति (Family – ***सिलुरिडी Siluridae***) की मछलियाँ सम्पूर्ण भारत की नदियों एवं झीलों में पायी जाती है तथा इन मछलियों को मीठे पानी की शार्क (Fresh water sharks) भी कहा जाता है। यह प्रजाति सर्वाधिक बड़ी कैट मछलियों (Cat fishes) में से एक है। इसकी सामान्य लम्बाई 60 से 90 सेमी तक होती है, परन्तु ये 185 सेमी तक लम्बाई भी प्राप्त कर सकती हैं। यह प्रजाति खाने में अच्छी होने के साथ–साथ अच्छी आखेट मीन (Game fish) भी होती है। पढ़ीन स्वभाव से शिकारी मछलियाँ (Predatory fishes) होती हैं। अतः कार्प मछलियों के भण्डारण तालाब में अत्यधिक नुकसानदायक साबित होती हैं। इनका मुख बड़ा तथा दाँत नुकीले व धारदार होते हैं जो इसे सफल शिकारी मछली बनाते हैं। ये मछलियाँ मानव तथा अन्य जानवरों की लाशों का भी भोजन करती हैं।

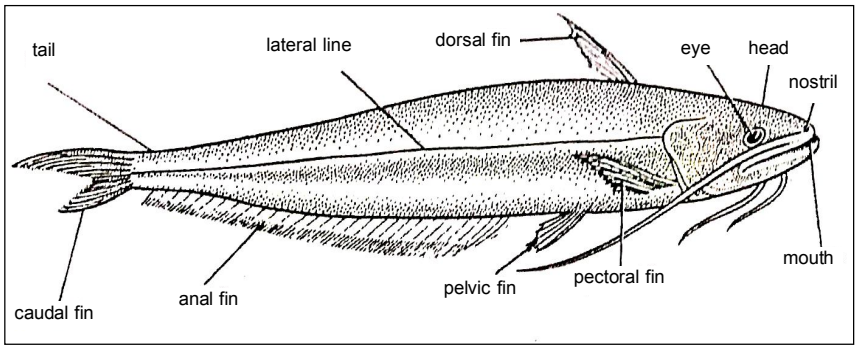

चित्र क्र. 4.30: *वैलैगो अट्टू* (*Wallago attu*)

इनमें प्रजनन वर्षा ऋतु में होता है तथा ये भारत, पाकिस्तान, बर्मा (म्यांमार), जावा, सुमात्रा तथा इंडोनेशिया में भी पायी जाती हैं।

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_5;\ P_{1/14};\ V_{10};\ A_{86(4/82)};\ C_{17};\ B_{2\ pairs}$$

(2) टेंगरा (*Mystus seenghaia*)– टेंगरा (Tengara) मछलियाँ (Family–**बार्ग्रिडी Bagridae**) गंगा तथा यमुना एवं इनकी सहायक नदियों के अतिरिक्त छोटे जलाशयों में भी पायी जाती हैं। शरीर की पृष्ठ सतह का रंग भूरा (Brown) तथा पार्श्वों (Sides) एवं पेट (Belly) का रंग चाँदी–जैसा होता है। यह मछली भी शिकारी होती है तथा छोटी कार्प व अन्य मछलियों एवं झींगों (Prawns)

टिप्पणी

का शिकार करती है। परिपक्व वयस्क की लम्बाई 45–50 सेमी होती है इसकी अधिकतम लम्बाई 117 सेमी तथा भार 11 किलोग्राम तक हो सकता है। इनके भोजन में कीटक (Insects), डिम्भक (Larvae), क्रेस्टेशियन्स तथा जलीय खर–पतवार (Aquatic weeds) भी शामिल होते हैं। यह नदियों एवं तालाबों में प्रजनन करती है तथा इसका प्रजनन–काल अप्रैल से जुलाई तक होता है। इस मछली में प्रजनन विशिष्ट प्रकार से होता है। ये तली (Bottom) में गड्ढा बनाकर उसमें अण्डे देती है और अण्डों की देखभाल भी करती है। अर्थात् इनमें **जनकीय देखभाल (Parental care)** पायी जाती है।

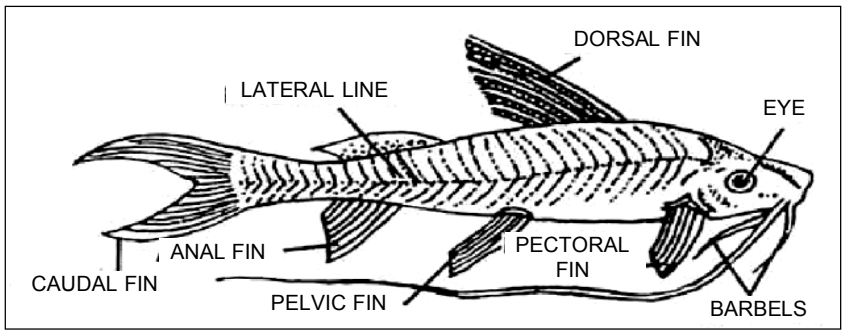

चित्र क्र. 4.31: मिस्टस सीघाला (*Mystus seenghala*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$D_{1/7/0}$; $P_{1/9}$; V_6; $A_{11\ 12(3/8\ 9)}$; $C_{19\ 21}$; $B_{4\ pairs}$

(3) दरियाई टेंगरा (*Mystus oar*)– यह मछली (Family–**Bagridae**) भारत के बहुत बड़े क्षेत्र में पायी जाती है तथा इसे भोजन के रूप में स्थानीय निवासी ग्रहण करते हैं। शरीर की पृष्ठ सतह का रंग Bluish grey तथा Sides एवं पेट का रंग सफेद होता है। इसकी अधिकतम लम्बाई 90 सेमी तक हो सकती है। नर मछलियों की अधर (Ventral) सतह प्रजनन काल के समय शोथ मुक्त (Inflammed) हो जाती है तथा इसमें बाहर की ओर को निकले हुए संवहनीय वलन (Vascular folds) रसांकुर (Villi) के रूप में विकसित हो जाते हैं जो कि अल्पवयस्क बच्चों के पोषण हेतु एक सफेद प्रोटीनयुक्त स्त्राव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार, नर मछली ही बच्चों की देखभाल (Parental care) प्रदर्शित करता है। मादा मछली बच्चों के पालन–पोषण तथा देखभाल में भाग नहीं लेती है। (चित्र 4.32)।

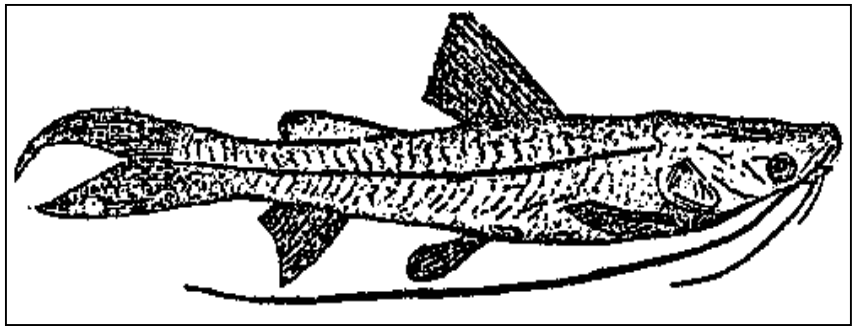

चित्र क्र. 4.32: *मिस्टस ओर* (*Mystus oar*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$D_{1/7/0}$; $P_{1/10}$; V_6; $A_{13(3/10)}$; C_{17}; $B_{4\ pairs}$

टिप्पणी

(4) सुतहवा टेंगरा (Sutahawa tengara – *Mystus cavasius*)– यह मछली (Family–**Bagridae**) सम्पूर्ण भारत में अत्यन्त सामान्य रूप से पायी जाती है। इसके शरीर की पृष्ठ सतह का रंग शीशा–जैसा (Lead coloured) तथा Sides एवं पेट का रंग पीला होता है (चित्र 4.33)। इसकी अधिकतम लम्बाई 45 सेमी तक हो सकती है। इस मछली का भोजन के रूप में बहुत अधिक उपयोग किया जाता है तथा मानव के लिए इसकी पार्टी सम्मानपूर्ण मानी जाती है।

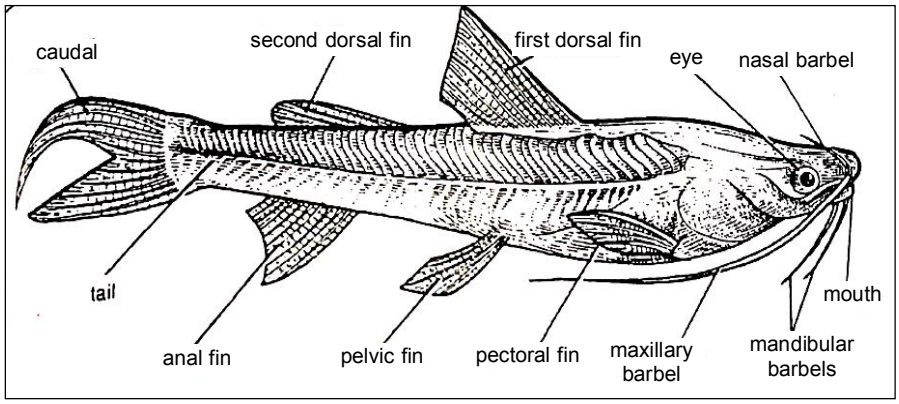

चित्र क्र. 4.33: मिस्टस कैवासियस (*Mystus cavasius*)

इसका **पंख सूत्र (Fin forumula)** इस प्रकार है–

$D_{1/7/9}$; $P_{1/9}$; V_6; $A_{11(3\ 4/7\ 8)}$; C_{16}; $B_{4\ pairs}$

(5) पागसा या पायस (Pangsa or Payas– *Pangasius pangasius*)– यह मछली (Family – **Shilbeidae**) बड़ी–बड़ी नदियों में विशेषतः बंगाल की खाड़ी के समीप के क्षेत्रों में मिलती है। इसका शरीर लम्बा तथा पार्श्व तरफ से चपटा–सा होता है तथा सिर कोमल त्वच (Soft skin) से ढका रहता है इसकी अधिकतम लम्बाई 120 सेमी तक हो सकती है (चित्र 4.34)। यह मछली मुख्यता मोलस्क्स (Molluscs) जन्तुओं का भोजन करती है, परन्तु इसके भोजन में छोटी, विशेषतः कार्प मछलियाँ भी शामिल होती हैं। इसका प्रजनन मानसून महीनों में होता है। यह विशेष रूप से रोहिणी एवं राप्ती नदियों में मिलती है।

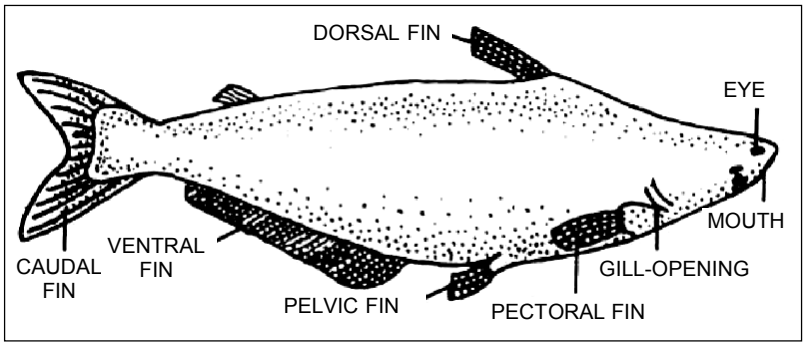

चित्र क्र. 4.34: पैन्गैसियस पैन्गैसियस (*Pangasius Pangasius*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$D_{3/7/0}$; $P_{1/12}$; V_6; $A_{31\ 34(4/27\ 3/29)}$; C_9; $B_{\ IX\ X}$

टिप्पणी

(6) सिंघी (Singhi – *Heteropneustes fossilis*)– सिंघी (Family – **Heteropneustidae**) एक सामान्यतः मिलने वाली Cat fish है, जिसमें वायु द्वारा सांस लेने के लिए सहायक श्वसन अंग (Accessory respiratory organs) भी पाये जाते हैं। अतः इसे **'वायुश्वासी मछली' (Live fish)** माना जाता है। ये सम्पूर्ण भारत में मीठे जल में पायी जाती है। इसका सिर चपटा एवं चौड़ा होता है। यह सामान्यतः 30 सेमी तक लम्बी होती है (चित्र 4.35)। इसके अंस पखों के कंटक (Pectoral spines) विषैले होते हैं। ये स्वभाव से शिकारी होती है, परन्तु मत्स्यभक्षी (Piscivorous) नहीं होती। इस मछली के प्रमुख भोजन में कीट–पतंगे, कृमि (Worms), शैवाल, कीचड तथा मछलियों के अवशेष शामिल होते हैं। इसका प्रजनन–काल अप्रैल से जून तक का होता है।

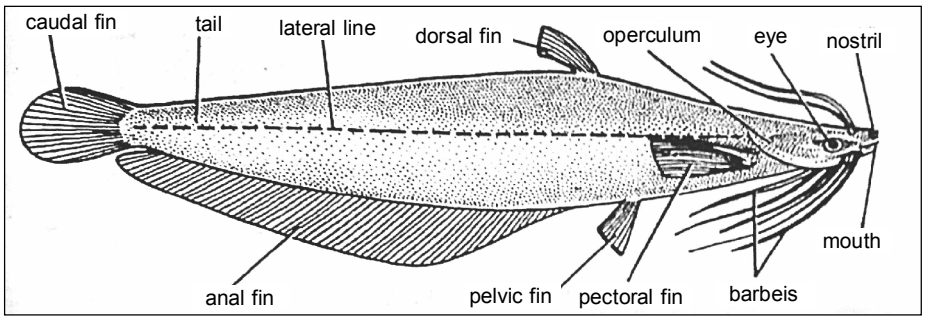

चित्र क्र. 4.35: हेटेरोप्न्यूस्टेस फोसिलिस (*Heteropneustes fossilis*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

D_6; $P_{1/7}$; V_6; $A_{62\ 66}$; C_{19}; $B_{4\ pairs}$

(7) मांगुर (Mangur – *Clarias batrachus*)– यह मछली (Family – **Clariidae**) भारत के मैदानी क्षेत्रों के मीठे जल में पायी जाती है। यह प्रायः कीचड़ में रहती है, परन्तु स्वतन्त्र रूप से जलीय श्वसन पर भी जीवित रह सकती है। शरीर लम्बा तथा सिर पार्श्वों की ओर से चपटा (Laterally compressed) होता है। शरीर का रंग समान रूप से लालिमायुक्त भूरा (Reddish-brown) या राखिया काला (Greyish-black) होता है। इसके भोजन में झींगे (Prawns), डिम्भक (Larvae), कीट–पतंगे, शैवाल तन्तु तथा बालू एवं कीचड़ शामिल होते हैं। इसकी अधिकतम लम्बाई 45 सेमी तक हो सकती है (चित्र 4.36)। इसका प्रजनन–काल अप्रैल से जून तक का होता है। यह मछली (कार्प मछलियों व अन्य Cat fishes की तुलना में) खानें में बहुत लज़ीज़ अर्थात् स्वादिष्ट (Delicious) होती है। अतः माँग (Demand) अधिक होने के कारण इससे कार्प मछलियों की तुलना में अधिक मुद्रा प्राप्त होती है। भारत के अतिरिक्त यह मछली मलाया श्रीलंका तथा बर्मा (म्यांमार) के साथ–साथ कुछ अन्य देशों में भी पायी जाती है। आजकल जैव–रसायन–विज्ञान में इस मछली की पिट्यूटरी ग्रन्थि पर उच्च गुणवत्ता का खोज कार्य जारी है।

टिप्पणी

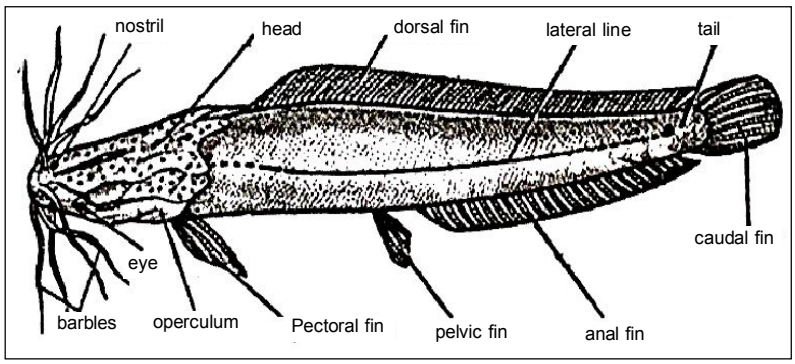

चित्र क्र. 4.36: क्लेरियस बेट्रेकस (*Clarius batrachus*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{65\ 70};\ P_{1/8};\ V_{6};\ A_{47};\ C_{17} : B_{4\ pairs}$$

(8) *ओमपॉक बाईमैकुलेटस* (Ompok bimaculatus) – इस मछली का शरीर अत्यधिक संपीडित (Compressed) होता है। मुख थोड़ा टेढ़ा हेाता है तथा मुख की खाँच नेत्र से पहले ही समाप्त हो जाती है। एक–एक जोड़ी मैक्सिलरी तथा मैन्डीबुलर बार्बेल पाये जाते है, जिनमें मैक्सिलरी बार्बेल फिन तक फैले रहते हैं। पृष्ठ फिन बहुत कम विकसित होता है। अंश कांटा मजबूत होता है।

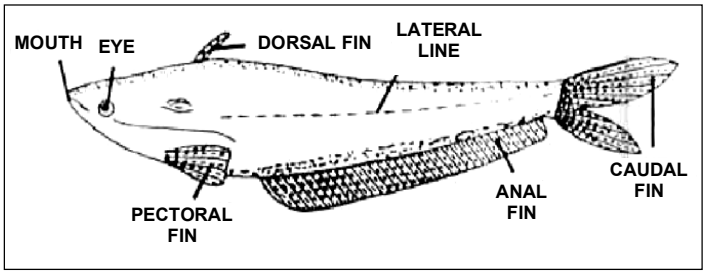

चित्र क्र. 4.37: Ompok bimaculatus *(Bloch)*

वैलेगो की तरह ओमपॉक भी एक परभक्षी मछली है जो जन्तुप्लवकों, कीटों तथा छोटी–छोटी मछलियों को खाती है। यह मानसून काल में जून से सितम्बर तक प्रजनन करती है।

यह मछली भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बर्मा तथा जावा में पायी जाती है।

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{4};\ P_{I(12\ 14)};\ V_{8\ 9};\ A_{59\ 73}$$

(D) वायुश्वासी मछलियाँ (Live Fishes or Air-Breathing Fishes)

ये मछलियाँ गण (Order)– ऑफियोसेफैलीफार्मिज (Ophiocephaliformes) तथा कुल (Family) ऑफियोसेफैलिडी (Ophiocephalidae) की सदस्य होती हैं। इस श्रेणी की 4 प्रमुख मछलियाँ–गुर्री, सौल, सोवरा तथा ऐनाबस हैं। इनमें जलीय श्वसन के अतिरिक्त सहायक श्वसन अंग भी होते हैं जिनके द्वारा वायु श्वसन सम्पन्न होता है। इनका विवरण निम्नलिखित प्रकार है–

टिप्पणी

(1) गुर्री या चन्ना (Gurrie–*Channa punctagus*) – यह मछली भारत एवं पाकिस्तान के समस्त मैदानी मीठे जल–स्त्रोतों में पायी जाती है। ये ठहरे हुए जल (Stagnant water) में रहना पसन्द करती है। शरीर का रंग उसे घेरने वाले जल के अनुसार बदला हुआ होता है। मैदानी क्षेत्रों में यह मछली 30 सेमी तथा पहाड़ी क्षेत्रों में 12 सेमी तक लम्बाई प्राप्त कर सकती है (चित्र 4.38)। इसके भोजन में जलीय कीट, छोटी मछलियाँ, मोलस्कस, चिंगट (Shrimps) तथा सूक्ष्म जीव शामिल होते है। इसका प्रजनन–काल वर्षा ऋतु में होता है। ये अत्यधिक मात्रा में गैमीट्स उत्पन्न करके भारी मात्रा में जाइगोट्स बनाती है तथा इनका विकास (Development) बहुत तीव्र गति से होता है।

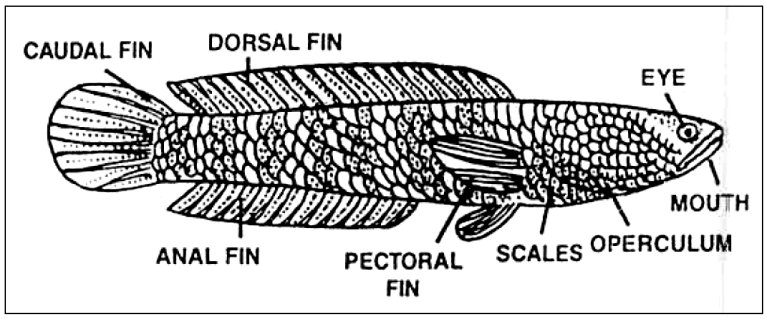

चित्र क्र. 4.38: चन्ना पंक्टैटस (*Channa punctatus*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{29\ 30};\ P_{16\ 17};\ V_6;\ A_{20\ 22};\ C_{12};\ Ll_{35\ 37};\ Ltr_{4\ 5/7}$$

(2) सौल (Saul–*Channa marulius*)– यह प्रजाति चीन, पाकिस्तान, श्रीलंका तथा भारत के मीठे जल में मिलती है। यह मछली उस गहरे स्वच्छ जल में रहना पसन्द करती है, जिसकी तली में बड़े–बड़े कणों वाली बालू (Coarse sand) या चट्टानें उपस्थित हों, विशेषतः जहाँ जल–धाराएँ मिलती हों। इसे दक्षिण भारत के सिंचाई कुओं (Irrigation Wells) में भी पाला जा सकता है। इन मछलियों की लम्बाई सामान्यतः 45 सेमी तथा अधिकतम 125 सेमी तक हो सकती है (चित्र 4.39)। इनके भोजन में छोटी कार्प मछलियाँ, मेढक, मृत जीव–जन्तु तथा रसोई के अपशिष्ट शामिल होते हैं। इसके पोने (Fries) को काफी दूर तक केवल कुछ बार जल बदलकर ट्रान्सपोर्ट किया जा सकता है। इस मछली–मांस की दावत को सम्मानपूर्ण माना जाता है। ये वर्षा ऋतु से पूर्व (अप्रैल से जून तक) प्रजनन करती है।

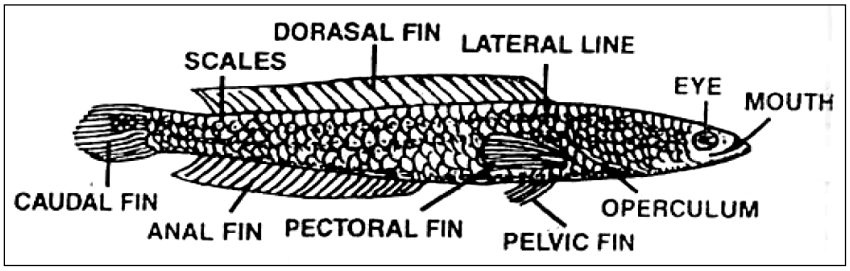

चित्र क्र. 4.39: *चेन्ना मैरूलियस* (*Channa marulius*)

टिप्पणी

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

D_{46}; P_{18}; A_{32}; V_6; $Ll_{65\ 66}$; $Ltr_{6/11}$

(3) सोवरा (Sowra–***Channa striatus***) – यह प्रजाति, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा दक्षिण भारत के मीठे पानी में पायी जाती है। इसके शरीर की पृष्ठ सतह का रंग गहरा–भूरा या काला तथा अधर सतह का रंग हल्का पीला या पीला होता है। तालाबी मछलियों में इनकी संख्या सर्वाधिक होती है। ये गँदले (Muddy) तथा ठहरे हुए (Stagnant) जल में रहना पसन्द करती हैं। इन मछलियों के भोजन में कृमि, मेढक, टैडपोल, अन्य मछलियाँ, कीट तथा छोटे साँप भी शामिल होते हैं। दो वर्ष की आयु प्राप्त करने पर मादाएँ परिपक्व होकर पूरे वर्ष–पर्यन्त प्रजनन करती रहती हैं, परन्तु प्रजनन मानसून के दिनों में चरम पर होता है। पूर्ण विकसित मछली की अधिकतम लम्बाई 90 सेमी तक हो सकती है (चित्र 4.40)। यह मछली रोहू तथा कटला मछलियों की तुलना में अधिक स्वादिष्ट होती है, साथ ही उनकी अपेक्षा इसका पालन भी सस्ता होता है। इन्हीं कारणों से इसकी बाजार में माँग अधिक होती है जिससे इनका मूल्य भी उच्च होता है।

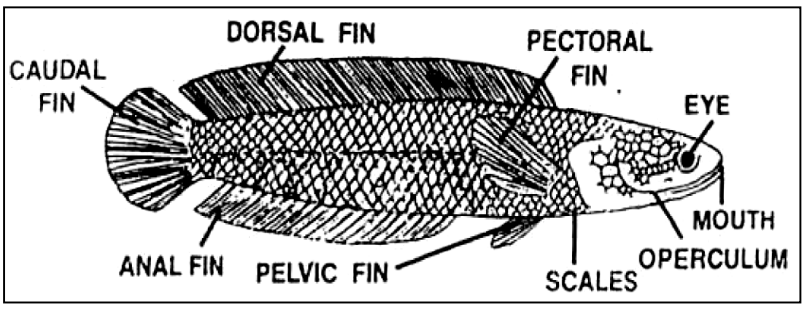

चित्र क्र. 4.40: *चन्ना स्ट्रिएटस* (*Channa striatus*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$D_{41\ 43}$; $P_{16\ 18}$; V_6; $A_{24\ 25}$; C_{10}; $Ll_{58\ 60}$; $Ltr_{7/10}$

(4) ऐनाबस टेस्टूडिनेअस (*Anabas testudineus*)– यह मछली [Order–**पर्सीफॉर्म्स (Preciformes)**; Family–**एनाबैन्टीडी (Anabantidae)**] भारत के मीठे जल तथा ज्वारनदमुखीय नमकीन जल (Estuarine water) में पायी जाती है। यह मछली जल के बाहर निकलकर धान के खेतों को पार कर सकती है तथा पेड़ की डालियों पर चढ़ सकती है अतः इसे **पर्च मछली (Perch fish)** भी कहते हैं। इसका शरीर मजबूत, थूथन (Snout) थोड़ा चपटा एवं सिगार के आकार का तथा हरे या हरेपनयुक्त भूरे रंग का होता है। इसका सिर चौड़ा होता है। इसकी लम्बाई 25–26 सेमी तक होती है (चित्र 4.41)। यह माँसाहारी मछली केंचुए आदि शिकार की खोज में जल से बाहर निकल सकती है तथा नम वायु में भी 6–7 दिनों तक जीवित रह सकती है। इसका माँस अत्यधिक पोषक होता है जिसके कारण बाजार में माँग अधिक होने से इसका मूल्य अधिक होता है। इसके माँस की गंध सोंधी तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाली होती है। यह वर्षा ऋतु में प्रजनन करती है तथा इसके पोने (Fries) तीव्रता से भोजन करने वाले (Voraceous feeders) होते हैं। भोजन हेतु यह मछली बहुत प्रसिद्ध है।

टिप्पणी

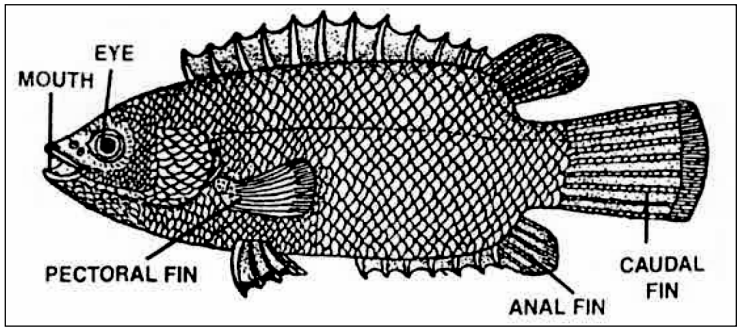

चित्र क्र. 4.41: *ऐनाबस टेस्टूडिनेअस* (***Anabas testudineus***)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{17(9\ 10)};\ P_{15};\ V_{1/5};\ A_{10\ 11};\ C_{17};\ Ll_{29};\ Ltr_{4/9}$$

(5) ***क्लेरियस बैट्रेकस*** **(*Clarias batrachus*)** – इस मछली का सिर लम्बा तथा अवनमित (Depressed) होता है। नेत्र छोटे होते हैं। बार्बेल 4 जोड़ी पाये जाते हैं। निचला जबड़ा ऊपरी जबड़े से छोटा होता है। पृष्ठ फिन लम्बा तथा पूँछ फिन तक फैला हुआ, अधर फिन छोटा तथा ऐनल फिन पूँछ फिन तक फैला हुआ पाया जाता है। शरीर का रंग लाल–भूरा या भूरापन लिए हुए काला होता है। सिंघी की तरह मांगुर का भी अंस काँटा जहरीला होता है।

यह परपक्षी मछली है जो कीटों, लार्वों, झींगों तथा शैवालों का भक्षण करती है। यह अप्रैल से प्रजनन करती है। यह भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका में पायी जाती है। इसका माँस बहुत स्वादिष्ट होता है। अतः इसकी अत्यधिक माँग है।

इसका **पंख सूत्र (fin formula)** इस प्रकार है–

$$D_{65\ 70};\ P_{1\ 8};\ V_{6};\ A_{47};\ C_{17}$$

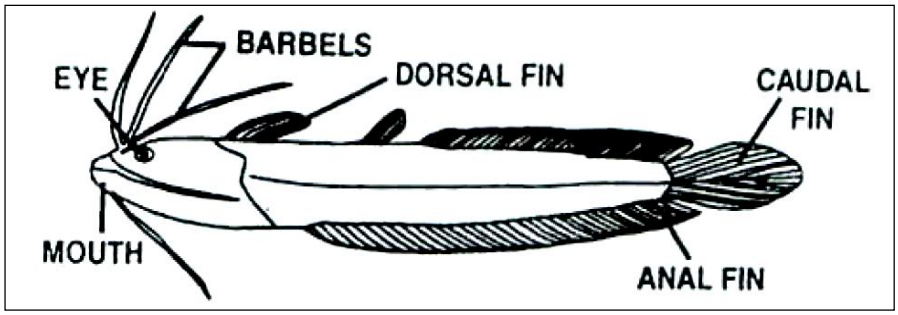

चित्र क्र. 4.42: ***Clarias batrachus*** **(Unn.)**

(6) ***हेटेरोप्न्यूस्टिस फॉसिलिस*** **(*Heteropneustes fossilis*)** – इस मछली का शरीर लम्बा होता है तथा इसका सिर चपटा तथा सामान्य से छः गुना अधिक लम्बा होता है। बार्बेल 4 जोड़ी, जिसमें मैक्सिलरी बार्बेल अंस फिन के आगे तक निकला रहता है। पृष्ठ फिन काफी आगे से निकलता है। इसके शरीर का रंग भूरा होता है।

टिप्पणी

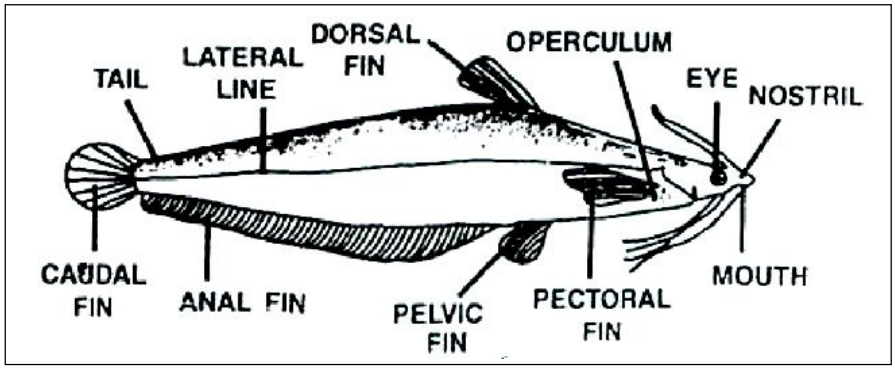

चित्र क्र. 4.43: ***Heteropneustes fossilis*** **(Bloch)**

इस मछली के अंस काँटे जहरीले होते हैं। इसमें सहायक श्वसन अंग पाए जाते हैं। अतः यह वातावरण की ऑक्सीजन में भी श्वसन कर सकती है। यह परभक्षी होती है और कीटों, कृमियों, शैवालों तथा कार्बनिक पदार्थों का भक्षण करती है। यह अप्रैल से जून तक प्रजनन करती है।

यह भारत, पाकिस्तान, चीन तथा श्रीलंका में पायी जाती है।

(E) अन्य मछलियाँ (Other Fishes)

(1) चीतल (Chital–नोटोप्टेरस चीताला Notopterus chitala)– इसे मोई (Moi) भी कहते हैं। इसका सिर ऊपर से गहरा अवतल (Deep concave) तथा इसकी पृष्ठ सतह उत्तल (Convex) एवं इसके पेट की सतह सीधी (Straight) होती है। इस मछली की पहचान बहुत आसान होती है, क्योंकि इसकी सँकरी पीठ का रंग ताँबे–जैसा भूरा (Coppery brown) या राखिया (Grayish) तथा पृष्ठ उभार (Dorsal ridge) तक पहुँचने वाली 15 चाँदी के रंग की आड़ी पट्टियाँ होती हैं। इसका थूथन (Snout) स्पष्ट (Distinct) होता है (चित्र 4.44)। यह मछली प्रमुख रूप से गंगा, महानदी एवं ब्रह्मपुत्र नदियों में पायी जाती है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। यह मानसूनी मौसम में प्रजनन करती है तथा अंडों को जलीय बिम्बों (Aquatic objects) से चिपका देती है, जिससे ये तेज जलधारा में स्थिर रहते हैं। यह मछली Order–क्लपीफार्मस (Clupeiformes) की Family–नोटोप्टैरिडी (Notopteridae) की सदस्य है।

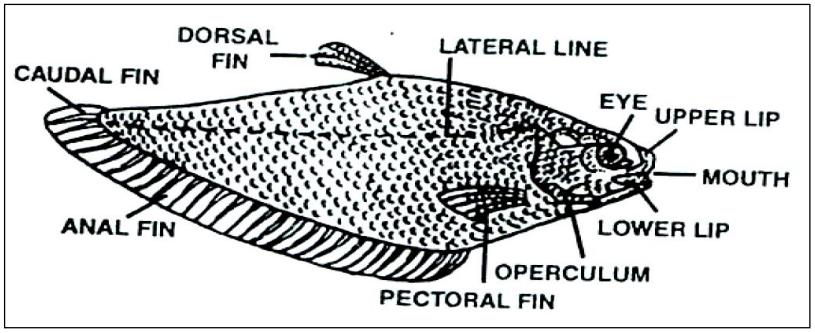

चित्र क्र. 4.44: *नोटॉप्टेरस चीताला* **(*Notopterus chitala*)**

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$D_{8(1/8)}$; P_{16}; V_6; $A_{110\ 118}$; $C_{12\ 14}$; $Ll_{160\ 180}$

टिप्पणी

(2) मुलेट (Mullet–मुगिल कार्सुला *Mugil corsula*) – यह मछली Order–**मुगिलफॉर्मिस (Mugilformes)** की Family–**मुगिलिडी (Mugilidae)** की सदस्य है। इसे सामान्यतः मीठे जल की राखिया मुगिल (Grey Mugil) कहा जाता है। थूथन (Snout) से पीछे सिर पर एक जोड़ी पृष्ठ आँखे (Dorsal eyes) होती हैं, जिन्हें तैरते समय यह जल सतह के ऊपर बनाए रखती है। इसकी दृष्टि (Vision) बहुत तेज होती है। यह मछली कीचड़, शैवाल तथा बालू खाना पसन्द करती है, जबकि इसके बच्चे तीव्र भोजन करने वाले लालची भोजनकर्ता (Voraceous feeders) होते हैं और क्रस्टेशियन्स के प्लावी अण्डों (Planktonic eggs) को खाते है। ये मछलियाँ लम्बी छलांग लगा सकती हैं तथा शीघ्रता से मर जाती हैं। यह मछली अधिकतम 45 सेमी तथा सामान्यतः 30 सेमी की लम्बाई प्राप्त करती है। मांस का भोजन बहुत उत्तम स्वाद एवं पोषक तत्वो से युक्त होता है। यह मछली उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा बर्मा (म्यांमार) में बहुतायत से मिलती है। यह वर्षा ऋतु में प्रजनन करती है।

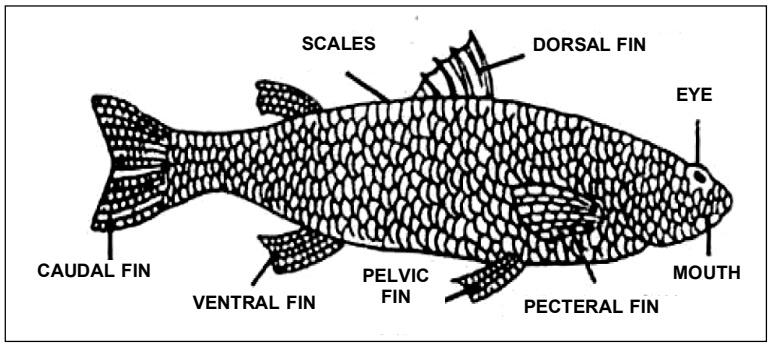

चित्र क्र. 4.45: *मुगिल कॉर्सुला* (*Mugil Corsula*)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$D_{4(1/8)}$; P_5; $V_{1/5}$; $A_{3/8\ 9}$; C_{15}; Ll_{52}; Ltr_{15}

(3) बाम (Baam–मैस्टोसैम्बेलस आर्मेटस *Mastocembelus armatus*)– यह मछली Order–**मैस्टोसैम्बलीफॉर्मिस (Mastocembeliformes)** की Family–**मैस्टोसैम्बिलिडी (Mastocembelidae)** की सदस्य होती है। यह भारत की पहाड़ियों तथा मैदानी भागों के मीठे जल तथा हल्के नमकीन जल में पायी जाती है। ये पृष्ठ सतह से भूरी तथा अधर सतह से पीली होती है। इसकी अधिकतम लम्बाई 60 सेमी तक हो सकती है (चित्र 4.46)। मानव भोजन के रूप में इसका माँस बहुत ही स्वादिष्ट होता है। ये वर्षा ऋतु में प्रजनन करती हैं। इनमें एक जोड़ी अंस पंख (Pectoral fins) होते हैं तथा शरीर की पृष्ठ एवं अधर सतहों के पखों को जोड़ते हुए पूँछ पंख होता है, परन्तु Ventral fin नहीं होता।

टिप्पणी

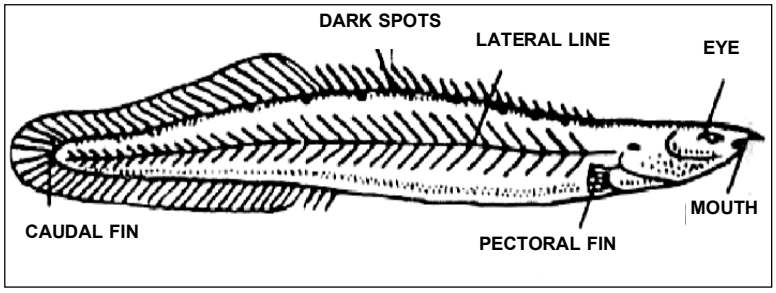

चित्र क्र. 4.46: *मैस्टोसेम्बेलस आर्मैंटस* (***Mastocembelus armatus***)

इसका **पंख सूत्र (Fin formula)** इस प्रकार है–

$D_{37\ 39/78\ 82}$; $P_{23\ 25}$; $A_{3/75\ 78}$

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

36. भारतवर्ष में मछली उद्योग कितना पुराना है?

(अ) 2500 वर्ष (ब) 2000 वर्ष

(क) 1500 वर्ष (ड) 1000 वर्ष

37. मछली के माँस में अधिक मात्रा में क्या पाया जाता है?

(अ) प्रोटीन (ब) फॉस्फोरस

(क) वसा (ड) जल

38. कुछ मछलियों को कैट मछलियाँ (Cat fishes) क्यों कहा जाता है?

(अ) रास्ते को खोज सकती हैं (ब) अच्छी प्रकार से देख सकती हैं

(क) अच्छा भोजन प्रदान करती है (ड) (अ) तथा (ब) दोनों।

39. कौन–सी मादा मछली लगभग 20,00,000 तक अण्डे देती है।

(अ) *लेबियो रोहिता* (ब) *कतला कतला*

(ग) *सिरहिना* (ड) *म्यूगिल*

40. टेंगरा मछली का पंख सूत्र निम्न में से कौन–सा है?

(अ) $D_{1/7/0}$; $P_{1/10}$; V_6; $A_{13(3/10)}$; C_{17}; $B_{4\ pairs}$

(क) $D_{1/7/0}$; $P_{1/9}$; V_6; $A_{11\ 12(3/8\ 4)}$; $C_{19\ 21}$; $B_{4\ pairs}$

(ब) $D_{1/7/9}$; $P_{1/9}$; V_6; $A_{11(3\ 4/7\ 8)}$; C_{16}; $B_{4\ pairs}$

(ड) D_6; $P_{1/7}$; V_6; $A_{62\ 66(3\ 10)}$; C_{19}; $B_{4\ pairs}$

41. किस **कैट मछली (Cat fish)** को **वायुश्वासी मछली (Live Fish)** भी माना जाता है?

(अ) *मांगुर* (ब) *सिंघी*

(क) दरीयाई टेंगरा (ड) सुतहवा टेंगरा

42. 'मोई' मछली का जन्तु–वैज्ञानिक नाम है–

(अ) नोटोप्टेरस चिताला (ख) क्लेरियस बैट्रेकस

(क) नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस (घ) चन्ना पंकटेटस

टिप्पणी

4.21 सफरी (कार्प) पालन (Carp Culture)

मत्स्यपालन के उद्देश्य (Aims of Pisciculture)– मत्स्यपालन के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं–

1. अधिकतम मात्रा में मछलियों का उत्पादन करना।
2. स्वादिष्ट एवं उच्च पोषकता का मत्स्य माँस प्राप्त करना।
3. मत्स्यपालन उद्योग से सम्बद्ध सह–उत्पाद (By-products) प्राप्त करना।

भारत की प्रमुख कार्प मछलियाँ (Major Carp Fishes of India) – निम्नलिखित हैं–

(1) रोहू (*Labeo rohita*), (2) कल्बासु या काला बांस (*Labeo calbasu*), (3) कुर्सा (*Labeo gonius*), (4) बैटा (*Labeo bata*), (5) फिम्ब्री (*Labeo fimbriatus*), (6) कटला–कटला (Catla-catla), (7) रेबा (*Cirrhinus reba*), (8) मृगाला (*Cirrhinus mrigala*), (9) सिर्रहोसा (*Cirrhinus cirrhosa*), (10) टॉर टॉर (*Tor tor*), (11) पुन्ती (*Barbus stigma*), (12) कर्नाटी (*Barbus carnaticus*)।

अन्य कार्प मछलियों में कुछ देशों से आयातित (Imported) कार्प जैसे कि **मिरर कार्प (Mirror carp), चाइनीज कार्प (Chinese carp), क्रूसियन कार्प (Crucian carp)** एवं **कॉमन कार्प (Common carp)** भी शामिल हैं।

पालन योग्य (कृष्य) मछलियों की गुणवत्ताएँ (Qualities of Cultivable Fishes)– निम्नलिखित गुणवत्ता वाली मछलियों का पालन ही अधिक लाभदायक होता है–

1. प्राकृतिक भोजन खाने की क्षमता होनी चाहिए।
2. कृत्रिम भोजन खाने की भी क्षमता होनी चाहिए।
3. विकास (Development) हेतु कम मात्रा में भोजन करने वाली होनी चाहिए।
4. शाकाहारी (Herbivorous) भोजन करने वाली होनी चाहिए, क्योंकि माँसाहारी मछलियाँ अन्य मछलियों को खाकर मत्स्य पालन में समस्या उत्पन्न करती हैं।
5. जलाशयों के जल के स्वभाव (pH, Salinity आदि) तथा मौसमी दशाओं (Climatic conditions) में होने वाले अचानक परिवर्तनों को सह सकने की क्षमता होनी चाहिए।

टिप्पणी

6. तीव्र गति से वृद्धि करने में सक्षम होनी चाहिए जिससे वे कम समय में कम भोजन व कम रख–रखाव खर्च पर अच्छी लम्बाई तथा अच्छा वजन प्राप्त कर सकती हों।
7. अन्य शाकाहारी मछलियों के साथ भी रह सकने के योग्य होनी चाहिए।
8. रोगों से लड़ने के प्रति प्रतिरोधक क्षमता (Resistance ability) होनी चाहिए।
9. प्रचूरोद्भवी (Prolific breeder) अर्थात् अत्यधिक संख्या में सन्तानोत्पादन करने की क्षमता वाली होनी चाहिए।
10. माँस स्वादिष्ट (Palatable) तथा उच्च पोषक–क्षमता वाला (Highly nutritive) होना चाहिए।

पालन योग्य (कृष्य) मछलियों के प्रकार (Types of Cultivable Fishes) – ये तीन प्रकार की होती हैं–

1. **देशज या देशी मछलियाँ (Indigenous or Native fishes)** – ये अपने देश में ही उत्पन्न हुई मृदु जल मछलियाँ होती हैं। उदाहरण **मेजर कार्प्स (Major carps)**।
2. **पर्यनुकूलित मछलियाँ (Acclimatized Fishes)** – ये वे नमकीन जल (Estuarine or Marine water) की मछलियां हैं, जिन्हें धीरे–धीरे मीठे जल में रहने हेतु अनुकूलित कर लिया जाता है, जैसे कि–**चैनॉस (Chanos)** तथा **मुलेट्स (Mullets)**।
3. **विदेशज या आयातित मछलियाँ (Exotic or Imported Fishes)** – ये अन्य देशों से आयातित मछलियाँ हैं, जैसे कि मिरर कार्प, चाइनीज कार्प, क्रूसियन कार्प एवं कॉमन कार्प आदि मछलियाँ।

4.21.1 अन्य मछलियों पर कार्प मछलियों की उपरिता (Superiority of Carps over Other Fishes)

मत्स्य पालन हेतु कार्प अन्य मछलियों की तुलना में निम्न कारणों से भारत में सर्वोत्तम कृष्य (Best cultivable) मछलियों का दर्जा प्राप्त कर चुकी हैं–

(1) कार्प मछलियाँ भोजन के रूप में जन्तु–प्लवकों एवं पादप–प्लवकों (Zoo-planktons and Phyto-planktons) सड़े–गले खर–पतवार (Decaying weeds), कूड़ा–करकट (Debris) तथा जीवित जलीय पौधों को ग्रहण करती हैं, जो कि आसानी से प्राप्य (Available) पदार्थ हैं।

(2) कार्प मछलियाँ कुछ उच्च तापक्रम वाले तथा गँदले (Turbid) जल में भी रह सकती हैं।

(3) कार्प मछलियाँ जल में घुलित ऑक्सीजन के उतार–चढ़ाव (Fluctuating–DO) को सहन कर सकती हैं।

टिप्पणी

(4) कार्प मछलियों में वृद्धि तीव्र होती है और ये कम समय में अच्छी लम्बाई व अच्छा वजन प्राप्त कर सकती हैं।

(5) कार्प मछलियों को आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ट्रान्सपोर्ट किया जा सकता है।

(6) अधिकांश कार्प मछलियों का माँस स्वादिष्ट तथा अधिक पोषक होता है।

कार्प पालन में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया (The Process involved in Carp Culture)

कार्प पालन की प्रक्रिया निम्न चरणों में की जाती है–

1. प्रजनन (Breeding)
2. स्फुटन (Hatching)
3. परिचर्या (Nursing)
4. पालन–पोषण (Rearing)
5. संग्रहण (Stocking)
6. मछली पकड़ना (Harvesting)

सामान्य स्तर का कार्प पालन छोटे–बड़े घरेलू एवं बगीचों के तालाबों में, विशेषतः पश्चिम बंगाल तथा बिहार राज्यों में किया जाता है। नदियों से पकड़कर एकत्रित किये गये 4 से 25 मिमी के पोनों (Fries) को बरसात में प्रति वर्ष तालाबों में डाल दिया जाता है ये पोने कई प्रजातियों की कार्प मछलियों के मिश्रित रूप में होते हैं। कुछ दिनों में पोने वृद्धि करके वयस्क बन जाते हैं। धीरे–धीरे आवश्यकतानुसार इन्हें पकड़कर पूरे वर्ष भोजन के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इन तालाबों में समय–समय पर कूड़ा–करकट, मॉस (Moss), शैवाल (Algae) आदि मिलते रहते हैं जिससे जलीय पौधों की वृद्धि और भोजन की व्यवस्था बनी रहती है।

परन्तु पिछले दो दशकों से वाणिज्यिक उद्देश्यों (Commercial purposes) हेतु तालाबों में नदियों के किनारे स्थित कृत्रिम निर्मित जलाशयों अथवा बड़े–बड़े पक्के टैकों में कार्प पालन को बड़े स्तर पर योजनाबद्ध रूप में संचालित किया जाने लगा है। इसे मत्स्य खेती (Fish farming) कहा जाता है। मत्स्यपालन देश के विभिन्न भागों में संचालित किया जाता है।

आजकल सरकारी तथा गैर–सरकारी अनेकों ऐसी एजेंसियाँ हैं, जो मत्स्य–कृषकों (Fish-farmers) को कार्प–मत्स्य पालन के सम्बन्ध में सम्पूर्ण आवश्यक जानकारी के साथ–साथ उनके मत्स्य जलाशयों (Fish farms) हेतु पोने (Fries) भी प्रदान करने की व्यवस्था संचालित करती हैं।

कार्प–मत्स्य खेती की व्यवस्था (Management of Carp-Fish Farming) – मत्स्य पालक एक जटिल तकनीकी प्रक्रिया है जिसे बड़े पैमाने पर सफलतापूर्वक संचालित करने हेतु मत्स्य पालन की विभिन्न समस्याओं, जैसे कि स्थलाकृति (Topography), जल की गुणवत्ता, जल–स्त्रोत, बीज–व्यवस्था तथा

टिप्पणी

अन्य भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों आदि की जानकारी होना अति आवश्यक होता है। जलाशय ही ऐसे स्थल होते हैं, जहाँ मछलियाँ विकास एवं वृद्धि करती हैं। अतः मछलियों के प्रजनन, अंडजोत्पत्ति (Hatching), परिचर्या (Nursing), पालन–पोषण (Rearing) तथा संग्रहण (Stocking) को ध्यान में रखते हुए विभिन्न आकार–प्रकार के जलाशयों की व्यवस्था करनी होती है। मछली की प्रजाति के अनुसार इन जलाशयों में कुछ भिन्नता हो सकती है। यहाँ तक कि एक ही प्रजाति की विभिन्न विकासीय प्रावस्थाओं के पालन हेतु भी भिन्न–भिन्न गुणधर्मों (Properties) वाले जलाशयों की आवश्यकता पड़ती है। अतः कार्प–मत्स्य पालन हेतु निम्नलिखित प्रकार के जलाशयों की व्यवस्था (चित्र 4.47) संचालित की जाती है–

(1) प्रजनन तालाब, (2) स्फुटन तालाब, (3) परिचर्या तालाब, (4) पालन–पोषण तालाब, (5) संग्रहण तालाब तथा (7) विपणनन तालाब।

(1) प्रजनन तालाब (Breeding Pond)– मत्स्य का कार्प पालन का प्रथम चरण मछलियों के प्रजनन का होता है। अतः प्रजनन की समुचित व्यवस्था हेतु प्रजनन तालाबों की आवश्यकता होती है। इन तालाबों को नदियों अथवा अन्य प्राकृतिक जल–स्त्रोतों के समीप ही निर्मित किया जाता है।

प्रजनन के प्रकार (Types of Breeding)– मछलियों में दो प्रकार का प्रजनन सम्पन्न होता है–(i) प्राकृतिक प्रजनन तथा (ii) प्रेरित प्रजनन।

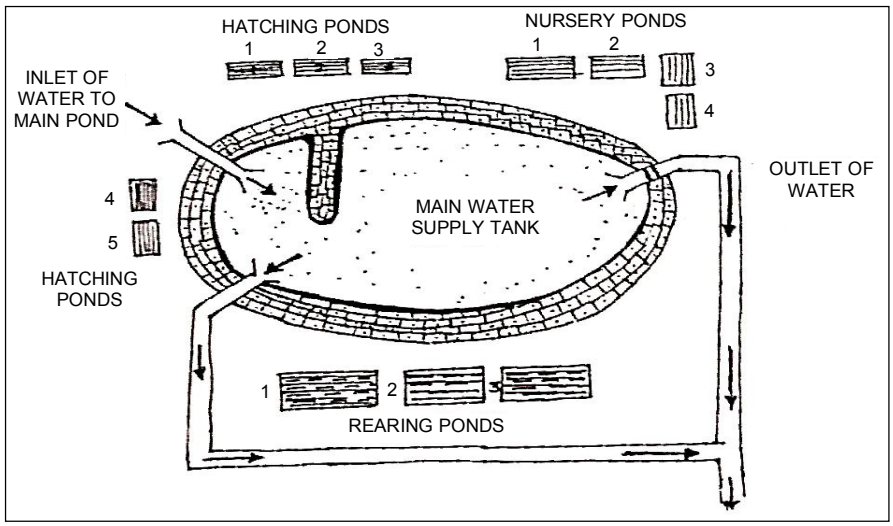

चित्र क्र. 4.47: एक मछली फार्म (A Fish farm)

(i) प्राकृतिक या बन्ध प्रजनन (Natural or Bundh Breeding)– प्राकृतिक बंध विशेष प्रकार के तालाब होते हैं, जिनमें नदियों–जैसी या प्राकृतिक जल–स्त्रोत–जैसी दशाओं की कृष्य मछलियों के प्रजनन हेतु व्यवस्था की जाती है। इन बन्धों का निर्माण नीची भूमि पर नदी या जल–स्त्रोत के समीप ही किया जाता है। उनमें बड़ी मात्रा में वर्षा जल एकत्र करने की व्यवस्था की जाती है। इन बन्धों में जल के प्रवेश एवं निकासी हेतु क्रमशः Inlets एवं Outlets भी होते हैं।

इन्हीं बन्धों में मछलियाँ अंडनिक्षेपण (Spawning) करती हैं। ये बन्ध तीन प्रकार के हो सकते हैं–

टिप्पणी

(a) क्लेदित बन्ध, (b) शुष्क बन्ध, तथा (c) आधुनिक बन्ध।

(a) क्लेदित बन्ध (Wet Bundh) – वे बन्ध जिनमें जल वर्ष–पर्यन्त भरा रहता है, क्लेदित या बहुवर्षीय (Perennial) बन्ध कहलाते हैं (चित्र 4.48)। बन्ध में जल प्रवेश द्वार ऊँचाई की ओर तथा अतिरिक्त जल के लिए निकास द्वार निचाई की ओर बनाया जाता है। बाँस की जाली की बाढ़ (Fencing) द्वारा जल निकास द्वार से जल की निकासी को नियन्त्रित किया जाता है, जिससे बन्ध में पल रही पछलियाँ बाहर न निकल जाएँ (चित्र 4.48)।

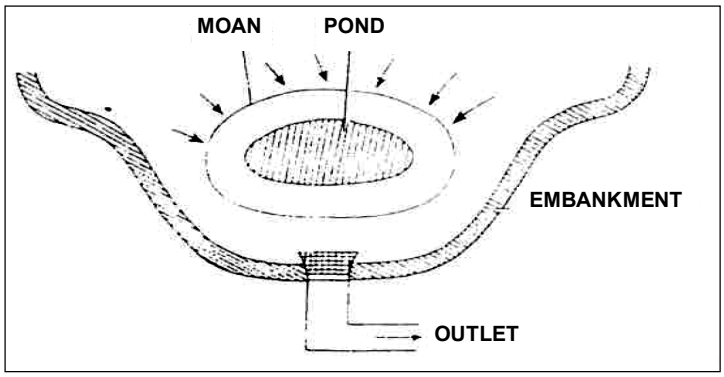

चित्र क्र. 4.48: वेट बन्ध (Wet bundh)

(b) शुष्क बन्ध (Dry Bundh)– ये बन्ध कम गहरे तथा पूर्णतः मौसमी (Seasonal) होते हैं। तीन ओर से मिट्टी की मेंड (Embankment) बनाकर एक ओर से बन्ध को खुला रखा जाता है। वर्षा जल इस बन्ध में भर जाता है, परन्तु बरसात के बाद इनका जल 2–3 माह में सूख जाता है (चित्र 4.49)।

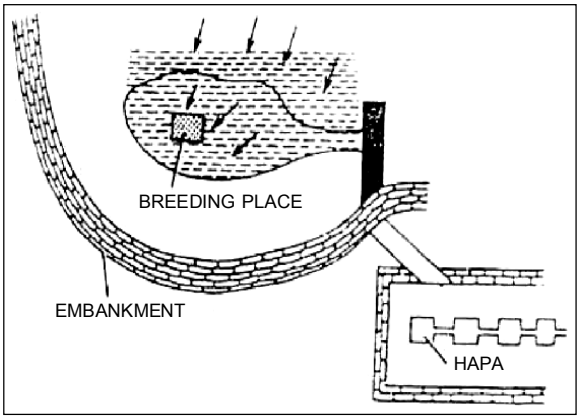

चित्र क्र. 4.49: शुष्क बन्ध (Dry bundh)

(c) आधुनिक बन्ध (Modern Bundh)– इसे 'पक्का बन्ध' (Pucca bundh) भी कहते हैं। इसका निर्माण ईंट–सीमेन्ट के द्वारा किया जाता है और इसकी दीवार में बंध के निम्नतम स्तर की ओर बाँस की जालीयुक्त एक निकास द्वार बनाया जाता है, जिससे मछलियों को रोके रखकर अतिरिक्त जल की निकासी होती है। इस निकास द्वार से बंध का सम्पूर्ण जल भी निकाला जा सकता

है। जिससे प्रत्येक अंडनिक्षेपण (Spawning) के बाद बन्ध का जल पूर्णरूप से बाहर निकाल दिया जाता है।

टिप्पणी

(ii) प्रेरित प्रजनन (Induced Breeding) – नदियों एवं तालाबों से एकत्र किये जाने वाले मत्स्य बीज (Fish seed) में कई प्रकार की मछलियों के अण्डों का मिश्रण होता है जिसमें शिकारी (Predatory) मछलियों के अण्डे भी हो सकते हैं, जिनसे उत्पन्न सन्तानें अन्य मछलियों पर शिकार कर सकती हैं। इस समस्या से निपटने हेतु कृत्रिम निषेचन की विधियों द्वारा उत्तम गुणवत्ता तथा विशुद्ध प्रजाति का मत्स्य बीज प्राप्त करने हेतु उच्च तकनीकों का उपयोग किया जाना आवश्यक होता है।

4.21.2 कृत्रिम निषेचन की प्रक्रिया (Process of Artificial Fertilization)

यह प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों में सम्पन्न होती है–

(a) विशुद्ध गैमीटों का एकत्रण (Collection of Pure Gametes)– परिपक्व अण्डों से युक्त मादा कार्प को हाथ में लेकर तौलिया द्वारा उसके शरीर की सतह को सुखाया जाता है तथा इसके पेट को ऊपर की ओर रखते हुए दाहिने हाथ के अँगूठे द्वारा पेट पर आगे से पीछे की ओर को दबाव बढ़ाया जाता है, जिससे मछली के अंडे द्रव सहित धार के रूप में बाहर निकलते हैं, जिन्हें एक अलग बर्तन में एकत्र कर लिया जाता है। इसके बाद उसी जाति की एक परिपक्व नर मछली को पकड़कर उसके पेट को नीचे की ओर को रखते हुए दाहिने अँगूठे एवं तर्जनी अँगुली (Index finger) की मदद से मछली पर आगे से पीछे की ओर दबाव बढ़ाकर उसके शुक्र द्रव (Milt या Spermatic fluid) को एक अलग बर्तन में एकत्र कर लिया जाता है। इस प्रकार, एक ही प्रजाति के अण्डे तथा शुक्राणु विशुद्ध रूप में प्राप्त हो जाते हैं।

(b) कृत्रिम निषेचन (Artificial Fertilization)– उपर्युक्त विधि से प्राप्त नर तथा मादा गैमीटों के बीच कृत्रिम निषेचन सम्पन्न कराने की दो विधियाँ काम में लायी जा सकती हैं–

(i) शुष्क विधि (Dry Method)– नर एवं मादा मछलियों से प्राप्त शुक्राणुओं तथा अंडाणुओं को आपस में अच्छी तरह से मिश्रित करके मिश्रण को आधा घण्टा तक शान्त छोड़ दिया जाता है। इस दौरान शुक्राणुओं द्वारा अण्डाणुओं का निषेचन (Fertilization) सम्पन्न हो जाता है। अब इस मिश्रण में जल मिला दिया जाता है।

(ii) नम विधि (Wet Method)– मादा से प्राप्त अण्डाणुओं (Eggs) में जल मिलाकर शुक्राणुओं को उसमें फैला दिया जाता है। यह विधि चिपचिपे प्रकार के अण्डाणुओं के लिए विशेषतः उपयोगी होती है।

प्रेरित प्रजनन के प्रकार (Types of Induced Breeding) – प्रजनन आदतों (Breeding habits) पर आधारित प्रेरित प्रजनन दो प्रकार का हो सकता है–

(i) तालाबों के बन्धित जल (Stagnant water) में सामान्यतः प्रजनन करने वाली मछलियों में प्रेरित प्रजनन।

(ii) बन्धित जल में सामान्यतः प्रजनन न करने वाली मछलियों में प्रेरित प्रजनन।

टिप्पणी

(i) बन्धित जल (जलाशयों) में सामान्यतः प्रजनन करने वाली मछलियों में प्रेरित प्रजनन (Induced Breeding in Pond Breeding Fishes) – वैसे तो जलाशयी प्रजनन करने वाली मछलियों में प्रजनन सामान्यतः होता ही रहता है, परन्तु प्रभावशाली एवं सफल प्रजनन हेतु जलाशयी मछलियों को भी प्रजनन हेतु प्रेरण (induction) प्रदान किया जा सकता है। सर्वप्रथम मछलियों को लिंग (नर व मादा) के आधार पर छाँटकर अलग किया जाता है, जिससे वन्य अण्डक्षेपण (Wild spawning) को रोका जा सके। इसके बाद उन्हें निम्नलिखित में से किसी एक प्रकार का उद्दीपन (Stimulus) प्रदान किया जाता है–

(a) प्रजनन तालाबों में विशेष रूप से चयनित परिपक्व या शावता मछलियों (Brood fishes) को डाल दिया जाता है। ये विपरीत परिपक्व लिंग जल में एक–दूसरे को प्रेरण प्रदान करते हैं।

(b) तालाब के पुराने जल को निकालकर नये वर्षा के जल से भरने पर भी उद्दीपन मिलता है।

(c) निक्षेपित अण्डों (Spawns) को चिपकने हेतु जल में कुछ चिपकावक स्थल (Attachment sites) प्रदान करने पर भी उद्दीपन प्राप्त होता है।

(d) तापक्रम तथा प्रकाश की विशिष्ट तीव्रता प्रदान करके भी मछलियों को प्रजनन हेतु उद्दीपित किया जा सकता है।

(ii) बन्धित जल में आसानी से प्रजनन न करने वाली मछलियों में प्रेरित प्रजनन (Induced Breeding in fishes not easily breeding in Stagnant waters) – कुछ मछलियाँ, जैसे कि **चाइनीज कार्प्स, कैट मछलियाँ**, मुलेट्स आदि सामान्यतः तालाबों के बन्धित जल में प्रजनन नहीं करती हैं। अतः इन्हें प्रजनन हेतु समुचित उद्दीपनों की आवश्यकता होती है जो कि निम्न प्रकार से प्रदान किये जा सकते हैं–

(a) प्रेरित बन्ध प्रजनन (Induced Bundh Breeding)– बन्ध में प्रजनन तभी शुरू होता है, जबकि लम्बे समय तक बरसाती फुहार पड़ती रहती है। कार्प मछलियों में प्रजनन बहुत ही रुचिकर (Interesting) होता है। नर एवं मादा मछलियाँ लैंगिक खेल (Sex play) खेलती हैं। पानी में तीव्र गतिशीलता के साथ नर मादा का पीछा करता है और तब नर मादा को साध (Hold) लेता है और मादा अण्डनिक्षेपण (Oviposition) कर देती है तथा साथ ही नर अण्डों पर शुक्राणु द्रव (Milt) बिखेर देता है। अण्डनिक्षेपण (Spawning) के कुछ समय बाद दोनों सहभागी दूर चले जाते हैं। कठिनता से अण्डनिक्षेपकों (Hard spawners) को बन्ध प्रजनन हेतु निम्न प्रक्रियाओं में से किसी एक के द्वारा प्रेरित किया जाता है–

(i) भारी मानसून प्रजनन को प्रेरित करती है।

(ii) जलधाराएँ भी प्रजनन हेतु प्रेरणा (Inducement) प्रदान करती हैं।

टिप्पणी

(iii) अण्डनिक्षेपण (Spawning) हेतु 24°C से 32°C का तापक्रम सफलतापूर्वक प्रेरक (Inducer) का कार्य करता है।

(iv) तड़ित झंझा (Thunder storm) के साथ तीव्र वर्षा भी अण्डनिक्षेपण को प्रेरित करती है।

पिट्यूटरी हॉर्मोन द्वारा प्रजनन प्रेरण (Breeding Inducement by Hypophysation)– नर एवं मादा मछलियों में पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pituitary gland) द्वारा स्त्रावित F.S.H. (Follicle stimulating hormone) उनको क्रमशः शुक्राणु तथा अण्डाणु निक्षेपण के लिए प्रेरण प्रदान करता है। भारत में **खान** (**Khan**, 1938) ने ***मृगाला*** (*Cirrhinus mrigala*) में स्तनधारी के पिट्यूटरी हॉर्मोन को निक्षेपित (Inject) करके अण्डनिक्षेपण (Spawning) कराने में सफलता पायी है।

पीयूषण की विधि (Method of Hypophysation)– सर्वप्रथम स्वस्थ वयस्क मछली की पीयूष (Pitutiary) ग्रन्थि को काटकर बाहर निकाला जाता है। इस प्रक्रिया को **पीयूषविचछेदन (Hypophysectomy)** कहते हैं। पीयूष ग्रन्थि को परिशुद्ध (Absolute) ऐलकोहॉल या ऐसीटोन से युक्त एक ट्यूब में रखकर उसे सीलित (Sealed) करके कक्ष तापक्रम (Room temperature) पर एक जलशोषक (Dessicator) में 36 घण्टे रखने के बाद शीतलक (Refrigerator) में रख दिया जाता है। यह पिट्यूटरी ग्रन्थि सजातीय मछली की होना ज्यादा उत्तम होता है।

पिट्यूटरी सार (Pitutiary extract) बनाने हेतु तुली हुई (Weighed) ग्रन्थि को आसवित जल (Distilled water) या 0.3% नमक के घोल (Saline) या ग्लिसरीन में समांगीकृत (Homogenize) किया जाता है और समांग (Homogenate) का 2000 चक्र प्रति मिनट (rpm) की गति से अपकेन्द्रण (Centrifugation) किया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त अधिप्लवी द्रव (Supernatant) को मछली की पीठ या पूँछाधार (Base of Tail) के स्थान पर अन्तःपेशीय निक्षेपण (Intramuscular injection) द्वारा निक्षेपित (Inject) कर दिया जाता है। कुछ मामलों में अंस पंख (Pectoral fin) के आधार भाग से अन्तःपेरीटोनियल (Intraperitoneal) निक्षेपण की सलाह भी दी जाती है।

पीयूषण की मात्रा (Dose of Hypophysation)– पहले 2–3 मिग्रा पीयूष सार प्रति किग्रा मछली के भार के अनुपात में निक्षेपित किया जाता है। प्रथम निक्षेपण के 6 घण्टों बाद मादा में कुछ उच्च मात्रा (5–6 मिग्रा) तथा नर में 2–3 मिग्रा प्रति किलोग्राम शरीर वजन के हिसाब से निक्षेपण किया जाता है। अब उपचारित (Treated) नर व मादा मछलियों को बाँस के खम्भों द्वारा प्रजनन तालाब के जल में लटकाये गये वस्त्र हापा (Cloth Hapa) में मुक्त कर दिया जाता है। यह प्रजनन हापा मच्छरदानी के कपड़े से चारों ओर बन्द थैली के रूप में बनाया जाता है। निक्षेपण के 24 घण्टों के बाद नर व मादा उद्दीपित होकर तेजी से हापा में इधर–इधर भागने लगते हैं। नर व मादा एक–दूसरे का पीछा करते हुए थूथन से एक–दूसरे को रगड़ प्रदान करते हुए (Spawning) करते हैं और परिणामतः अण्डे निषेचित हो जाते हैं, जिन्हें Spawning hapa से निकालकर अण्ड–स्फुटन हापा (Hatching Hapa) में स्थानान्तरित कर दिया जाता है

टिप्पणी

संश्लेषित हॉर्मोन का उपयोग (Use of Synthetic Hormone)– कृष्य मटलियों में Spawning को प्रेरित करने हेतु कृत्रिम या संश्लेषित Human Chorionic Gonadotropin (HCG) तथा **डिऑक्सीकॉर्टिकोस्टेरॉन (Deoxycorticosteron)**–जैसे हॉर्मोनों का उपयोग सफल हुआ है। HCG तथा स्तनधारी–पीयूषसार के मिश्रण, **सिनैफोरिन (Synaphorin)** में मत्स्य–पीयूषसार को मिलाकर उपयोग करने से भी प्रजनन हेतु प्रेरणा प्रदान की जाती है–

1. मत्स्य–बीज का संग्रह (Collection of Fish-Seed)– निषेचित अण्डों को बीज (Seed) कहा जाता है। प्रजनन तालाबों या नदियों से बीज संग्रह किया जात है। गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, गोमती, बेतवा, घाघरा एवं अन्य नदियों में मत्स्यसंग्रह केन्द्र स्थापित किये गये हैं और उन स्थलों से बीज–संग्रह किया जाता है। इन नदियों के मोड़ स्थलों पर जलधारा की गति मन्द होती है, अतः ऐस स्थल बीज–संग्रह हेतु उपयुक्ततम (Best) माने जाते हैं। अण्डसमूह (Spawn) के संग्रह हेतु बेन्ची (Benchi or Shooting) जाल का उपयोग किया जाता है (चित्र 4.50)। बेन्ची जाल एक कीपनुमा घनी मच्छरदानी या सस्ते मारकीन के कपड़े का बनता है, जिसके छेदों में से अण्डे बाहर न निकल सकें। यह जाल 10′ से 20′ लम्बा होता है तथा इसके दोनों सिरे खुले होते हैं। जाल का सँकरा सिरा एक छल्ले पर सिल दिया जाता है जो कि 2′ × 1′ × 1′ के चौकोर व लम्बे गमचा (Gamcha) से बँधा रहता है। इस जाल द्वारा मछली की सभी प्रवास्थाओं को पकड़ा जा सकता है। बेन्ची जाल से मत्स्य–बीज को बाहर निकालकर स्फुटन तालों या गड्ढों (Hatching ponds or Pits) में मुक्त कर दिया जाता है।

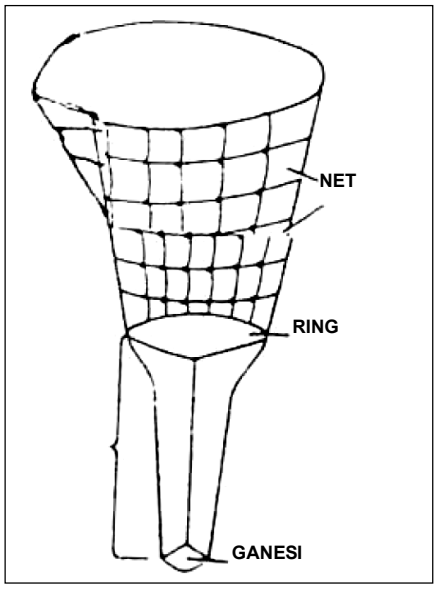

चित्र क्र. 4.50: बेन्ची जाल (Benchi jal)

2. स्फुटन तालाब या स्फुटन गड्ढे (Hatching Ponds or Hatching Pits)– जिस जलयुक्त गड्ढे में मत्स्य–बीज को स्फुटन हेतु रखा जाता है, वे स्फुटन गड्ढे कहलाते हैं। ये गड्ढे प्रजनन स्थल के समीप माप (Size) में छोटे तथा संख्या में अधिक निर्मित किये जाते हैं तथा इनमें भरा जल माह–दो–माह में सूख जाना चाहिए।

टिप्पणी

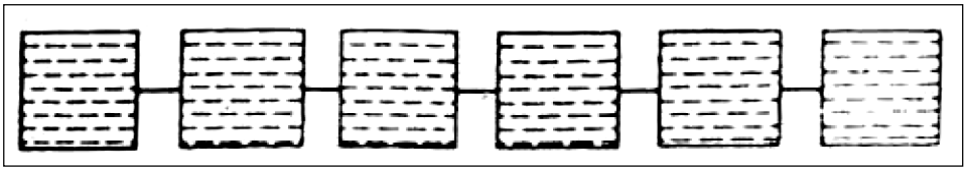

चित्र क्र. 4.51: हैचरीज (Hatcheries)

स्फुटन गड्ढों के प्रकार (Types of Hatching Pits) – ये गड्ढे मुख्यतः दो प्रकार के हो सकते हैं–

(i) स्फुटनशालाएँ (Hatcheries)– ये छोटे आकार के गड्ढे निषेचित अण्डों को स्थानान्तरित करने हेतु उपयुक्त जगह एवं आवश्यक संख्या के आधार पर पास–पास बनाये जाते हैं (चित्र 4.51)। अण्डे 2 से 16 घण्टों में स्फुटित हो जाते हैं, परन्तु ये गड्ढे इस कार्य हेतु अधिक उपयुक्त नहीं होते हैं, क्योंकि– (i) तापक्रम में अधिक व अप्रत्याशित उतार–चढ़ाव होता है। (ii) इनमें शिकारियों (Predators) का प्रवेश आसान होता है। (iii) इनमें भरा पानी सूखने पर अण्डों की मृत्युदर (Mortality) बढ़ जाती है।

(ii) स्फुटन हापा (Hatching Hapa)– यह चौकोर (Rectangular) बाँस के फ्रेम पर कसे गये दोहरे कपड़े की बनी संरचना होती है, जिसे उपयुक्त गहराई पर फिक्स कर दिया जाता है। हापा में रखे अण्डों को सतत् जलधारा द्वारा अच्छी आक्सीजन प्राप्त होती है। हापा का निचला मोटा कपड़ा बाह्य (Outer) हापा कहलाता है तथा इस पर मच्छरदानी कपड़ा (Inner Hapa) सिल दिया जाता है। इन दोनों कपड़ों के बीच स्फुटन अण्डों को रख जाता है (चित्र 4.52)। दो प्रकार के हापा बनाये जा सकते हैं–

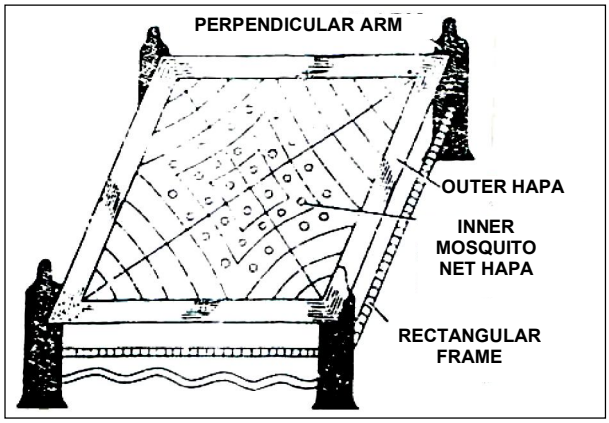

चित्र क्र. 4.52: हैचिंग हापा (Hatching hapa)

(a) स्थिर हापा (Fixed Hapa)– यह हापा तभी बन सकता है, जबकि हापा की भुजाओं के रूप में चार खड़े बाँस तालाब में गाड़े जा सकते हों। ये कुछ असुविधाजनक भी होते हैं।

(b) प्लावी हापा (Floating Hapa)– कठोर तली वाले तालाबों में, जहाँ कि स्थिर हापा नहीं बनाए जा सकते, प्लावी हापा का उपयोग किया जाता है। बांस की क्षैतिज बल्लियों पर ये हापा बाँधकर कतारों के रूप में तालाब–जल की

सतह (Surface) के समीप गहराई पर लटका दिये जाते हैं। ये हापा भी मोटे कपड़े के बाहरी तथा जालीदार कपड़े के भीतरी हापा के बने होते हैं। भीतरी हापा में अण्डों की Hatching होती है। अंण्ड–कलायें (Egg-membranes) भीतरी हापा में ही छूट जाती हैं, जबकि नवीन प्रावस्थाएँ बाहरी हापा में पहुँच जाती है। स्फुटन मीनों (Hatchlings) को हापा में 3–5 दिन तक रखकर विकसित हुए पोनों (Fries) को रोपणशालाओं (Nursery ponds) में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

टिप्पणी

4.22 पोनों को रोपणशालाओं में स्थानान्तरण करने हेतु सावधानियाँ (Precautions for Transfer of Fries to Nursery Ponds)

पोनों को ट्रान्सपोर्ट करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरतना आवश्यक होता है–

पोना पात्र (Fry-containers) के जल में–

(i) घुलित ऑक्सीजन (Dissolved oxygen–DO) की मात्रा में कमी न होने पावे।

(ii) CO_2 सान्द्रण (CO_2 Concentration) अधिक न बढ़ने पावे।

(iii) पोनों द्वारा उत्सर्जित अमोनिया के कारण जल विषैला (Toxic) न होने पावे।

(iv) पोनों की अतिसक्रियता (Hyperactivity) जनित तनाव (Strain) उन पर न पड़े।

(v) ट्रान्सपोर्ट के दौरान पोनों को शारीरिक चोट न लगने पावे।

पश्चिम बंगाल में पोना मीनों (Fish fries) के ट्रान्सपोर्ट हेतु पके हुए मिट्टी के पात्र या हण्डियों (Hundies) का उपयोग करने में उपर्युक्त लिखित समस्यायें बनी रहती हैं।

1. मत्स्य–पोनों का प्रानुकूलन (Conditioning of Fish-fries)

मत्स्य–पोनों के ट्रान्सपोर्ट की कठिनाइयों को दूर करने के लिए ट्रान्सपोर्ट करने से पहले पोनों को निश्चित समय के लिए पानी की कम मात्रा में रखकर प्रानुकूलित किया जाता है और तब उन्हें खुले या बंद पात्रों में डालकर ट्रान्सपोर्ट किया जाता है। पात्रों पर बाहर से टाट लपेटकर टाट को गीला बनाये रखा जाता है। मरे हुए पोने निकालकर फेंक दिये जाते हैं, अन्यथा ये प्रदूषण एवं संक्रमण (Infection) का कारण बन सकते हैं।

आजकल भारत में हापा से मत्स्य पोनों को रोपणशालाओं में ट्रान्सपोर्ट करने हेतु ऐल्केथीन थैलों (Alkathene bags) का उपयोग किया जाता है।

टिप्पणी

2. रोपणशाला या पौधशाला (Nursery Pond)

नव विकसित पोनों (Fries) को स्फुटनशाला या स्फुटन हापा से इन रोपणशालाओं में ट्रान्सफर किया जाता है। ये रोपणशालाएँ स्फुटन स्थल के समीप ही बनायी जाती हैं जो कि 3′ से 5′ गहरी जलशालाएँ (Reservoirs) होती हैं। आजकल आधा एकड़ क्षेत्रफल के बराबर निर्मित रोपणशाला 5′ से 8′ गहरी रखी जाती है। सामान्य प्रस्तावित आमाप 50′ से 60′ × 40′ से 50′ × 5′ से 8′ रखी जाती है। रोपणशालाओं को पोनों से स्फुटन (Hatching) से पूर्व ही तैयार कर लिया जाता है। इनमें जल के प्रवेश तथा निकास द्वारा दोनों ही नियंत्रित किये जाते हैं।

3. तालाबों की तैयारी (Preparation of Ponds)

इन रोपणशालाओं में भोजन के प्राकृतिक स्त्रोत कम होते हैं जिससे इनमें अधिक संख्या में पोनें छोड़े जाने पर उन्हें भोजन की कमी से जूझना पड़ता है। अतः रोपणशालाओं एवं उनके उपयोग में आने वाले तालों (Ponds) की विशेष तैयारी की आवश्यकता होती है। जलशाला की तैयारी में पहला कदम उसे जलरहित करना होता है। इसके बाद तालाब की तली (Bottom) में बुझा हुआ चूना (CaO) छिड़का जाता है, जिसकी मात्रा अम्लीय तालाबों में अधिक डाली जाती है। यह चूना जल की pH को बढ़ाने के साथ–साथ परजीवी मारक भी होता है। बलुअर (Sandy) मृदा की तुलना में भारी (Clay-युक्त) मृदा में अधिक मात्रा में चूने की आवश्यकता होती है। चूनाकरण (Liming) का कार्य समाप्त करके तालाब को दो सप्ताह के लिए सूखा ही रखा जाता है और उसके बाद ही उसमे पानी भरा जाता है। चूनाकरण के बाद जलभरण का कार्य करने पर तालाबों में भोजन की समुचित मात्रा पर मछलियों का विकास निर्भर करता है। जलाशय मे रासायनिक उर्वरक (Chemical fertilizer) के रूप में अमोनिया सल्फेट, सोडियम नाइट्रेट तथा सुपरफॉस्फेट को गोबर (Dung) के साथ उपयोग में लाया जाता है। गोबर की मात्रा की तुलना में रासायनिक उर्वरकों की मात्रा कम ही होनी चाहिए। मृदा की उर्वरकता (Soil fertility) तथा प्रकृति (Nature) के अनुसार ही उसमें उर्वरक मिलाये जाते हैं और इस तरह गोबर की मात्रा 5000 से 7000 किग्रा/हेक्टेयर तक हो सकती है। खाद (Manure) तथा उर्वरकों (Fertilizers) को मिलाने के बाद तालाब के जल में 10 से 15 दिनों में पादप–प्लवकों तथा 20 दिनों में जन्तु–प्लवकों की आबादी बढ़ती है। मछलियों की विकासशील प्रावस्थाएँ (Developing stages) इन दोनों प्रकार के प्लवकों को आसानी एवं चाव से खाती हैं। तालाब की उर्वरकता एवं जैविक उत्पादन बढ़ाने हेतु बीच–बीच में भी खाद व उर्वरक मिलाये जा सकते हैं। तालाब में हरी खाद को विकसित करने हेतु उसमें घास, पत्तियों, कोमल जलीय पौधों तथा केले के तनों एवं लेग्यूमिनस पादपों को भी निवेशित किया जाता है।

4. कार्प पोनों की पहचान करना (Identification of Carp Fries)

इस प्रकार से तैयार रोपणशालाओं में पोनें डालने से पूर्व उनमें यदि मांसभक्षी या शिकारी मछलियों के पोने शामिल हों, तो उन्हें निकार बाहर करना चाहिए। मेजर

कार्प मछलियों के पोनों (Fries) को निम्नलिखित प्रकार से पहचाना जा सकता है–

टिप्पणी

1. **सिर बड़ा बार्बेल अनुपस्थित, गिल्स का लाल रंग–कटला** का पोना।
2. **सामान्य आमाप का सिर–**

(A) पुँछ दण्ड (Caudal peduncle) पर चार काले धब्बों (Spots) से घिरा एक सफेद धब्बा–**कल्बासू** का पोना।

(B) पूँछ दण्ड पर काले स्पॉट्स के बीच सफेद स्पॉट अनुपस्थित।

(i) होठ झल्लरदार (Lips fringed) –

(a) शरीर पर लम्बी धारियाँ (Stripes या bands)–***लैबियो गोनियस*** का पोना।

(b) शरीर पर लम्बी धारियाँ अनुपस्थित–***रोहू*** का पोना।

(ii) होठ पूर्ण (Lips Entire)–

(a) पार्श्व रेखा (Lateral line) से ऊपर की ओर काले धब्बे–***लैबियो बैटा*** का पोना।

(b) काले धब्बे अनुपस्थित–

(i) होठों के किनारे (Margins) काले–***सिर्रिनस रेबा*** का पोना।

(ii) होठों के किनारे सफेद–***सिर्रिनस मृगाला*** का पोना।

रोपणशालाओं में पोनों की मृत्युदर (Mortality of Fries in Nursery Ponds)–रोपणशालाओं में निम्नलिखित कारणों से पोनों की मृत्युदर उच्च हो सकती है–

(i) स्फुटनशाला या स्फुटन हापा के जल की तुलना में रोपणशालाओं के जल की गुणवत्ता में अचानक परिवर्तन का होना।

(ii) रोपणशाला के जल में समुचित मात्रा में भोजन का न होना।

(iii) रोपणशाला के जल में शिकारी (Predatory) मछलियों एवं शिकारी कीटों का उपस्थित होना।

(iv) प्लवकों (Planktons) की अतिवृद्धि (Overgrowth) का होना।

(v) जल में घुलित ऑक्सीजन (DO) की कमी होना।

(vi) स्वजातिभक्षिता (Cannibalism) के कारण।

5. रोपणशालाओं हेतु सावधानियाँ (Precautions for Nursery Ponds)

(i) रोपणशाला में जल नियन्त्रित मात्रा में तथा संचालित (Circulate) होते रहना चाहिए।

(ii) रोपणशाला स्फुटनशाला के समीप ही होनी चाहिए।

टिप्पणी

(iii) रोपणशाला में शिकारियों (Predators) की उपस्थिति नहीं होनी चाहिए।

(iv) भीड़ को कम रखने के लिए रोपणशाला में पोने सीमित संख्या में ही होने चाहिए।

(v) जल में भोजन तथा घुलित ऑक्सीजन की मात्राएँ समुचित होनी चाहिए।

पोनों का पालन–पोषण तालाबों को स्थानान्तरण (Transfer of Fries to Rearing Ponds) – जब रोपणशाला में पोने बढ़कर 10 से 15 सेमी लम्बे हो जाते हैं तो उन्हें अँगुलिमीन (Fingerlings) कहा जाता है। इन अँगुलिमीनों को रोपणशाला के जल से निकालकर पालन–पोषण ताल में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

पालन–पोषण तालाब (Rearing Ponds) – अँगुलिमीनों के अच्छे स्वास्थ्य तथा वृद्धि के लिए उनका पालन–पोषण तालों में व्यायाम (Exercise) करना आवश्यक होता है। इसलिए पालन–पोषण तालों का आकार लम्बा एवं सँकरा (Long and Narrow) होना चाहिए, जिससे अँगुलिमीनें स्वतन्त्रतापूर्वक लम्बी दूरी की तैराकी कर सकें। इन तालों का जल मौसमी (Seasonal) या बहुवार्षिक (Perennial) हो सकता है। इन तालों में शिकारी जीव तथा विषैले पदार्थ नहीं होने चाहिए। ताल की गहराई 5–6 फीट होना चाहिए तथा इनमें पोषक भोजन–पदार्थों की मात्रा अँगुलिमीनों की संख्या के अनुपात में होनी चाहिए।

अँगुलिमीनों का संग्रहण तालों में स्थानान्तरण (Transfer of Fingerlings into Stocking Ponds) – अँगुलिमीनों की लम्बाई 20 सेमी तक हो जाने पर उन्हें अन्य प्रकार के तालों, भण्डारण या संग्रहण तालों (Stocking ponds) में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। अँगुलिमीनों के ट्रान्सपोर्ट हेतु 1000 लीटर क्षमता वाले पात्रों का उपयोग किया जाता है, जिनकी भीतरी सतह पर फोम चिपका होता है, जिससे अँगुलिमीनों को क्षति न पहुँचे। अँगुलिमीनों को अक्रिय (Inactive) बनाने हेतु किसी शामक (Sedative), जैसे कि सोडियम एमाइलेट और बार्बीफ्यूरेट (Sodium Amylate and Barbifurate) का उपयोग किया जाता है, जिससे अँगुलिमीनें यातायात (Transportation) के समय घुलित ऑक्सीजन का कम उपयोग करें।

अँगुलिमीनों के साथ परजीवी तथा शिकारी शामिल न हों, इस हेतु अँगुलिमीनों को पैकिंग से पूर्व ठीक प्रकार से साफ किया जाता है तथा उनके जल में प्रतिजैविक (Antibiotics), मेथिल ब्लू (Methyl blue), कॉपर सल्फेट, फार्मेलिन, पोटैशियम परमैंगनेट तथा साधारण नमक के उपयोग की सलाह दी जाती है। इन सावधानियाँ के साथ अँगुलिमीनों को भण्डारण तालों में स्थानान्तरित किया जाता है।

भण्डारण ताल (Stocking Ponds) – भण्डारण तालों (चित्र 4.47) को पहले खर–पतवार एवं शिकारी मछलियों से मुक्त किया जाता है, फिर इनमें समुचित मात्रा में प्लवकों की वृद्धि हेतु गोबर की खाद मिलाना आवश्यक होता है जिससे जल में भोजन समुचित मात्रा में उपलब्ध हो सके। अकार्बनिक रासायनिक

उर्वरकों (सुपरफॉस्फेट, अमोनियम नाइट्रेट तथा अमोनियम सल्फेट) का उपयोग भी प्रस्तावित मात्रा के अनुसार किया जाता है।

टिप्पणी

मछलियों के लिए कृत्रिम भोजन के रूप में चावल का पाउडर, धान की भूसी, खोपरा व सरसों तथा मूँगफली की खली (Cakes) का उपयोग भी किया जाता है। मछलियों के भोजन का उपयुक्त समय प्रातःकाल का होता है। जब मछलियाँ अधिकतम लम्बाई एवं भार प्राप्त कर लेती हैं तो उनकी उपज को एकत्र किया जाता है।

मत्स्य–एकत्रण या मछलियों का पकड़ना (Harvesting of Fish) – जल से पूर्ण–विकसित मछलियों को पकड़ना मत्स्य एकत्रण (Harvesting) कहलाता है। पूर्ण विकसित मछलियों को भण्डारण तालों से पकड़कर विपणन तालों (Marketing ponds) में एकत्र किया जाता है, जबकि छोटी मछलियों को भण्डारण ताल में ही वापस छोड़ दिया जाता है, जिससे वे अपनी वृद्धि पूरी कर सकें।

मछली पकड़ने की विधियाँ (Methods of Fishing) – विभिन्न प्रजातियों की मछलियों को पकड़ने हेतु भिन्न–भिन्न प्रकार की विधियाँ अपनाई जाती हैं जो कि मछलियों के आवास (Habitat) तथा उनकी आमाप (Size) के अनुसार निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं–

(1) गुंफन (Stranding)– यह विधि उथले जल में ही उपयोगी होती है। ताल में ऊँचाई वाले क्षेत्र को मिट्टी की मेंड़ (Embankment) बनाकर शेष ताल से पृथक् करके व फिर उसका जल निकाल देने पर मछलियों को एकत्रित करके पकड़ लिया जाता है।

(2) बंशी लगाना (Angling) – यह विधि बड़ी तथा शिकारी मछलियों हेतु उपयोगी होती है। नदी अथवा ताल के किनारों पर मछली पकड़ने वाली रॉड्स (Rods) को गाड़कर उनसे सस्सी द्वारा बँधे हुक में केंचुए के टुकड़े का चारा फँसा दिया जाता है। चारे के लालच में मछली हुक में फँस जाती है जिसे रस्सी को खींचकर बाहर निकाल लिया जाता है और हुक में चारा (Bait) पुनः फँसा दिया जाता है। मछली पकड़ने वाली छड़ को हाथ में पकड़कर भी Angling की जाती है।

(3) पाश या फंदा (Traps)– ये आकार, आमाप तथा संचालन (Operation) के मामलों में विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं। इन्हें टोकरी के रूप में बनाया जाता है। पिंजर पाश (Cage Trap) स्थिर (Fixed) प्रकार के तथा दर्वी व आवरण फंदे (Scoop and Cover traps) संचालन के समय गतिशील होते हैं। कीचड़ वाली तली के लिए आवरण पाश सम्पूर्ण देश में उपयोग में लाये जाते हैं। उल्टी टोकरी को कीचड़ में फँसाकर उसमें फँसी मछली को हाथ से टटोलकर पकड़ लिया जाता है।

(4) दर्वण (Scooping) – बाँस के चौकोर, गोल या तिकौने फ्रेम पर ढीला (Loose) जाल बाँध दिया जाता है और जाल सहित फ्रेम को जल में कीचड़ पर रख दिया जाता है तथा जाल में फँसी मछली को हाथ से टटोल कर पकड़ लिया जाता है।

टिप्पणी

(5) निमज्जन जाल (Dip Net) – एक गोलाकार फ्रेम पर जाल लगाकर डोलची के रूप में बनाया जाता है (चित्र 4.53)। फ्रेम से बँधी रस्सियों को पकड़कर डोलची को पानी में 5–10 मिनट के लिए लटका दिया जाता है और उसमें मछली आ जाने पर उसे झटके के साथ जल से बाहर निकालकर उसमें फँसी मछली को निकाल लिया जाता है।

(6) क्षिप्त जाल या घाघरिया जाल (Cast net or Ghagharia Jal) – यह जाल गोलाकार छाते या घाघरे के आकार का होता है जो सँकरे छोर की ओर बन्द रहता है तथा इससे एक लम्बी रस्सी बँधी होती है। जाल के खुले चौडे मुख के किनारों पर लोहे के डोबक (Sinkers) बाँध दिये जाते हैं (चित्र 4.54)। मछली पकड़ने के लिए जाल को घुमाकर तथा रस्सी को पकड़े रखकर पानी में फेंक दिया जाता है। डोबकों का भार इसे तली तक पहुँचा देता है। कुछ समय बाद रस्सी को खींचा जाता है जिससे डोबकों के भार से इसका चौड़ा मुख बन्द हो जाता है और मछलियाँ इसमें फँस जाती हैं। जाल को पानी से बाहर खींचकर उसमें फँसी मछलियों को निकाल लिया जाता है।

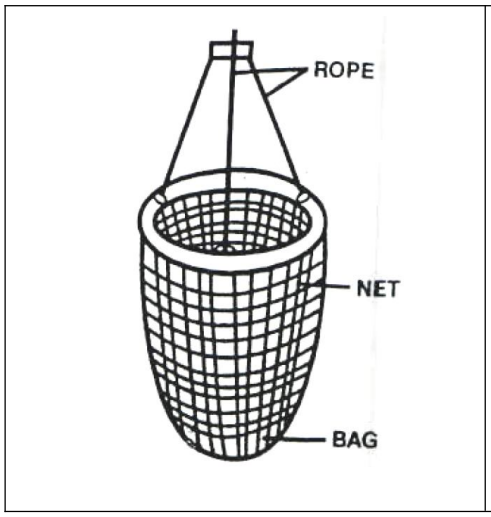

चित्र क्र. 4.53: डिप नेट (Dip net)

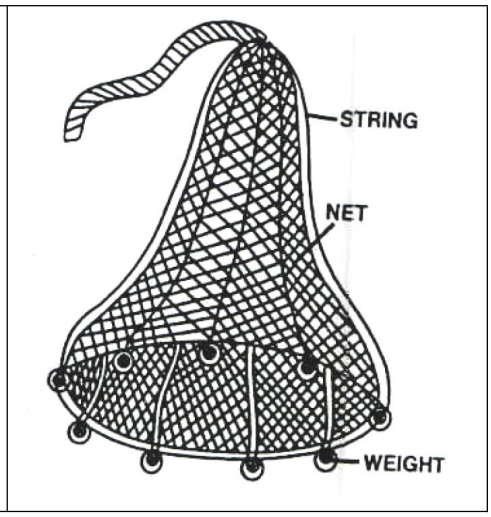

चित्र क्र. 4.54: कास्ट नेट (Cast net)

(7) संकर्ष या कर्षण जाल (Drag Net)– इस जाल का उपयोग मछलियों को नदियों तथा झीलों से पकड़ने हेतु किया जाता है। यह चादर की तरह आयताकार होता है, जिसके ऊपरी किनारे की रस्सी से प्लावक (Floats) तथा निचले किनारे की रस्सी से डोबक (Sinkers) बाँध दिये जाते हैं। ऊपरी कोनों से लम्बी रस्सियाँ बँधी रहती हैं (चित्र 4.55)। जाल की लम्बाई–चौड़ाई क्रमशः नदी की चौड़ाई तथा गहराई के अनुसार होती है। इसे कई लोग संचालित करते हैं। नदी के किनारों पर व्यक्ति रस्सी को पकड़कर जाल को नदी में डाल देते हैं, फिर उसे जल–प्रवाह की उल्टी दिशा में खींचा जाता है और जाल को पानी से बाहर खींचकर उसमें फँसी मछलियों को जाल से बाहर निकाल लिया जाता है।

टिप्पणी

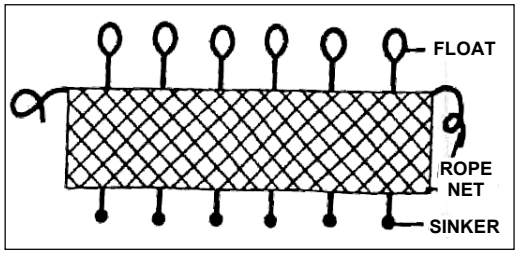

चित्र क्र. 4.55: ड्रैग नेट (Drag net)

6. कार्प मछलियों के रोग एवं उनका नियन्त्रण (Diseases of Carp Fishes and Their Control)

मत्स्य पालन की सफलता मुख्यतया मछलियों के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। मछलियों में बीमारी होने के मुख्य कारण होते हैं–वातावरण में तनाव (Stress), बीमारी फैलाने वाले कारक तथा पोषण की कमी।

(A) वाइरस से होने वाली बीमारियाँ (Viral Diseases)–

(i) स्प्रिंग वाइरेमिया (Spring Viremia)– यह बीमारी **रैब्डोवाइरस कार्पियो (*Rhabdovirus carpio*)** नामक वाइरस के संक्रमण से होती है। कामन कार्प में होने वाली यह बीमारी अभी तक यूरोपीय देशों में पायी गयी है। संक्रमित मछली का रंग काला, त्वचा तथा गलफड़ों पर घाव, शल्कों से रक्त का रिसाव, देहगुहा में द्रव का जमाव तथा खाने की तली में सूजन आदि लक्षण पाए जाते हैं।

(ii) मत्स्य चेचक (Fish Pox)– इस बीमारी में वाइरस से संक्रमित कामन कार्प के शरीर की अधिचर्म प्रचुराद्भवी (Proliferous epidermis) हो जाती है, जिससे त्वचा पर दाने या उभार बन जाते हैं।

(B) प्रोटोजोअन से होने वाली बीमारियाँ (Protozoan Diseases)–

(i) ट्राइकोडिनोसिस (Trichodinosis)– दूषित जल इस बीमारी का मुख्य कारण है जिसमें परजीवी का प्रभाव शरीर की ऊपरी त्वचा तथा गलफड़ों पर होता है। शरीर के ऊपरी भागों से लसलसा पदार्थ बहने लगता है। *ट्राइकोडिना* (*Trichodina*) तथा *ट्राइकोडिनेला* (*Trichodinella*) परजीवी द्वारा यह बीमारी होती है।

(ii) इक्थ्रियोफ्थिरियासिस या इक (Ichthyophthririasis or Ich)– इस बीमारी का परजीवी *इक्थियोफ्थिरियस मल्टीफिलिस* (*Ichthyophthirius multifilis*) प्रोटोजोआ है। यह परजीवी मछली की त्वचा में प्रवेश करता है। जिससे इसके चारों ओर कोष्ठ बन जाता है और इसी प्रकार के कोष्ठ पूरे शरीर, फिन्स तथा गलफड़ों पर सफेद चकत्ते के रूप में दिखायी देते हैं।

(iii) मिक्सोस्पोरिडियन बीमारी (Myxosporidian Disease) – *मिक्सोबोलस* (*Myxobolus*) परजीवी के ग्रसन से होने वाली इस बीमारी में मछली के शरीर, फिन, गलफड़ों तथा अन्य अन्तरांगों में प्रकोष्ठ बन जाते हैं।

टिप्पणी

(C) जीवाणु से होने वाली बीमारियाँ (Bacterial Diseases)–

(i) गलफड़ों की बीमारी (Gill Disease)– इस बीमारी में पूरे शरीर पर धब्बे पड़ जाते हैं तथा वृद्धि रुक जाती है। गलफड़ों पर घाव बन जाते हैं।

(ii) कॉलमनैरिस रोग (Columnaris Disease)– *फ्लेक्सीबैक्टर कॉलमनैरिस* (*Flexibacter columnaris*) जीवाणु के संक्रमण द्वारा यह बीमारी होती है। गलफड़े गल जाते हैं, फिन के किनारों पर घाव हो जाते हैं तथा मृत्युदर बहुत अधिक हो जाती है।

(iii) रक्तस्त्राव की बीमारी (Haemorrhagic Septicaemia)– *स्यूडोमोनास फ्लूओरिसेंस* (*Pseudomonas fluorescens*) तथा *एरोमोनास हाइड्रोफिला* (*Aeromonas hydrophilla*) जीवाणुओं द्वारा संक्रमण होता है। इस बीमारी में शरीर पर खरोंचें तथा घाव बन जाते हैं जिससे रक्तस्त्राव होता है, पेट फूल जाता है तथा नेत्र बाहर निकल जाते हैं।

(E) कृमियों से उत्पन्न होने वाली बीमारियाँ (Helminth Diseases) – *डेक्टाइलोगाइरस* (*Dactylogyrus*) तथा *गाइरोडैक्टाइलस* (*Gyrodoctylus*) नामक कृमि गलफड़ों तथा त्वचा पर आक्रमण करता है।

(F) क्रस्टेशियन जन्तुओं से होने वाली बीमारियाँ–

(i) आर्गुलस की बीमारी (Argulus Diseases) – *आर्गुलस* परजीवी इसका मुख्य कारण है, जिससे मछली के शरीर पर चकत्ते तथा घाव हो जाते हैं।

बीमारियों की रोकथाम (Prevention of Diseases)–

1. बीमार मछलियों को पहचानकर अलग कर देना चाहिए।
2. तालाब को संक्रमण से बचाने के लिए उसमें 0.25 ppm की दर से मैलाथिऑन (Malathion) या 50 ppm की दर से ब्लीचिंग पाउडर (Bleaching powder) का प्रयोग करना चाहिए।
3. बैक्टीरियाजनित रोगों के उपचार हेतु ऑक्सीटीट्रासाइक्लीन (Oxytetracyline), सल्फाडायाजीन (Sulfadiazine), टेरामाइसीन (Terramycin) आदि प्रतिजैविक (Antibiotic) दवायें उपयोग में लानी चाहिए।
4. प्रोटोजोआ–जनित बीमारियों के लिए कॉपर सल्फेट (Copper sulphate), कॉपर ऑक्सीक्लोराइड यौगिकों (Copper oxychloride) का उपयोग करना चाहिए।
5. फफूँद–जनित रोगों के लिए मैलाकाइट ग्रीन (Malachite green) का प्रयोग करना चाहिए।
6. कृमियों की रोकथाम के लिए प्रतिकृमि दवाइयों (Antihelminth medicines) का प्रयोग करना चाहिए।

7. मत्स्य–परिरक्षण (Preservation of Fish)

टिप्पणी

यदि पकड़ी गयी मछलियों को परिरक्षित नहीं किया जाता है, तो ये जल्दी ही खराब हो जाती हैं। मत्स्य माँस में प्रोटीनें, वसा, विटामिनें, अमीनो अम्ल, आयोडीन, फॉस्फोरस तथा अन्य खनिज तत्वों के साथ बहुतायत में जल भी होता है। मछली कई प्रकार के जीवाणुओं व फफूँदों से युक्त होती है जो कि उसकी मृत्यु के बाद उसका अपघटन (Decomposition) प्रारम्भ कर देते हैं। अतः मछलियों का परिरक्षण आवश्यक होता है तथा कई विधियों द्वारा किया जाता है, जिनमें से कुछ विधियाँ निम्नलिखित प्रकार हैं–

(1) शीतलन (Refrigeration)– मछली को 0°C तापक्रम पर परिरक्षित करना शीतलन कहलाता है। इसके लिए एक पात्र में बर्फ की एक के बाद एक परतों के बीच मछलियों को रखकर पात्र को बर्फ में रख दिया जाता है। बड़ी मछलियों को चीरकर उनके पेट में भी बर्फ भर दी जाती है। इस विधि द्वारा कुछ सीमित समय के लिए ही मत्स्य परिरक्षण किया जा सकता है।

(2) अति हिमायन (Deep freezing)– ताजी व अच्छी दशा वाली मछलियों की सफाई करके उन्हें –180°C तापक्रम पर लम्बे समय के लिए रखा जाता है। बड़ी मछलियों का अति हिमायन करने से पूर्व उनके सिर काटकर अलग कर दिये जाते हैं। यह विधि दीर्घकालिक परिरक्षण हेतु भी उपयोगी होती है।

(3) हिम शुष्कन (Freeze Drying)– यह विधि केवल सुपर–गुणवत्ता वाली मछलियों के परिरक्षण हेतु ही काम में लायी जाती है, क्योंकि यह विधि लम्बी तथा महँगी होती है। पहले मछली का –20°C पर हिमायन करके फिर उसको ऊर्ध्वपातन (Sublimation) द्वारा सुखाया जाता है। इस विधि में बर्फ बिना पिघले ही जल में बदल जाती है। बाद में मछली को हिमायन वेश्म (Freezing Chamber) में रखकर निर्वात (Vaccum) में सुखाया जाता है। अन्त में मछली को हॉट प्लेटों पर रखकर पूर्णतः सुखाने के बाद वातानुकूलित कक्ष में सील बन्द कर दिया जाता है।

(4) आतपन (Sun Drying)– भारत जैसे उष्णकटिबन्धीय (Tropical) देशों में, जहाँ सूर्य की गर्मी बहुत तेज होती है, छोटी–छोटी मछलियों को स्वच्छ करके उन्हें चटाइयों पर या पक्के फर्श पर डालकर तेज धूप में 5–7 दिन तक सुखाकर परिरक्षित किया जाता है। बड़ी मछलियों के छोटे–छोटे टुकड़ों को भी ऐसे ही सुखाया जा सकता है। इस विधि द्वारा परिरक्षित मछली केवल कुछ समय तक के लिये ही अपूर्ण रूप से परिरक्षित हो जाती है।

(5) सूर्य संसाधन (Sun Curing)– इस विधि में मछली का पेट चीरकर उसके आन्तरिक अंगों तथा गिल्स को निकाल दिया जाता है। फिर मछली को धोकर नमक के साथ 3 : 1 से 8 : 1 (मछली : नमक) के मिश्रण में रख दिया जाता है।

(6) मोना संसाधन (Mona Curing)– इस विधि में शरीर में कोई चीरा नहीं लगाया जाता, बल्कि मुख के रास्ते भीतर से आहार नाल को बाहर खींच

टिप्पणी

लिया जाता है और गिल्स को सीधे अलग करके मछलियों को धोकर साफ करके उनमें नमक मिलाकर सूर्य संसाधन की तरह सुखा लिया जाता है।

(7) लवणन (Salting)– मछलियों के सिरों को अलग करके तथा बड़ी मछली के टुकड़े करके टुकड़ों में नमक मिला दिया जाता है। मछली को नमक की एक के बाद एक परतों के बीच रखकर सुखाया जाता है। फिर उन्हें 16-25% नमक विलयन (Brine) में डुबोया जाता है। बाद में नमक व बर्फ के मिश्रण को मछलियों पर छिड़ककर उनका ठण्डा लवणन (Cold salting) किया जाता है। ठण्डा लवणन 3°C के ठण्डे कमरे में तथा प्रबल लवणन (Strong salting) सामान्य ताप पर किया जाता है।

(8) धूम्रण (Smoking)– लकड़ी के धुएँ से परिरक्षण धूम्रण कहलाता है। धुएँ का ताप तथा उसका परिभ्रमण (Circulation) नियन्त्रित रखा जाता है। धूम्रण गर्म या ठण्डा हो सकता है। हॉट स्मोकिंग में ताजी मछलियों को तेज आग (130°C) पर तपाया जाता है, और बाद में 40°C पर उनकी स्मोकिंग की जाती है। कोल्ड स्मोकिंग में मछलियों को सुखाकर, नमक मिलाकर पहले धुआँ–रहित आग (38°C) पर सेंककर फिर उनकी 28°C पर स्मोंकिंग की जाती है। आजकल यह विधि उपयोग में नहीं लायी जाती है।

(9) डिब्बाबन्दी (Canning)– यह लम्बी व जटिल प्रक्रिया है। सिर व आन्तरिक अंगों को पृथक् करके मछलियों को ब्राइन में उपचारित किया जता है। फिर धोकर, सुखाकर और 3–4 मिनट तक जैतून के तेल (Olive oil) में पकाया जाता है। फिर उन्हें ठण्डा करके ठंडे जैतून के तेल में ही डिब्बों में डालकर सील करके बाजार में बिक्रि के लिए भेज दिया जाता है। इस विधि को विदेशों (अमेरिका, फ्रांस, स्पेन व जापान तथा जर्मनी आदि) में अपनाया जाता है।

(10) रासायनिक परिरक्षण (Chemical Preservation)– कुछ रासायनिक पदार्थों जैसे सोडियम बेन्जोएट (Sodium benzoate), सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride), सोडियम नाइट्राइट (Sodium nitrite) आदि को परिरक्षकों (Preservatives) के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इनमें 0.02 प्रतिशत सोडियम नाइट्राइट से बर्फ के साथ परिरक्षण करने पर प्रभावी परिणाम प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार कुछ प्रतिजैविकों जैसे ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन (Oxytetracycline), क्लोरोमाइसिटीन (Chloromycetin) को भी प्रतिरक्षण के लिए प्रयोग किया जा रहा है। आजकल गामा किरणों (Gamma rays) की सहायता से भी प्रतिरक्षण करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

43. पालन–पोषण तालाब (Rearing pond) का प्रयोग किया जाता है–
   (अ) अंगुलिमीनों (Fingerlings) को वयस्क मछली में बदलने के लिए
   (ब) पोनो (Fries) को अंगुलिमीनों में बदलने के लिए
   (क) प्रजनकों को विकसित करने के लिए
   (ड) कोई नहीं।

टिप्पणी

44. जीवाणुजनित रोग है–

(अ) ट्राइकोडिनोसिस (ब) कॉलमनैरिस रोग

(क) 'इक' रोग (ड) उपर्युक्त सभी।

45. कवकजनित रोगों के उपचार के लिए क्या उपयोग करना चाहिए–

(अ) कॉपर सल्फेट (ब) सल्फाडायाजीन

(क) मैलाथिऑन (ड) मैलाकाइट ग्रीन

46. अति हिमायन (Deep freezing) के लिए तापक्रम होना चाहिए–

(अ) 0°C (ब) –20°C

(क) –10°C (ड) –180°C

47. स्फुटन हापा (Hatching Hapa) का आकार होता है–

(अ) आयताकार (ब) चौकोर

(क) गोल (ड) त्रिभुजाकार

48. 'पक्का बन्ध' (Pucca bund) को कहते हैं–

(अ) आधुनिक बन्ध (ब) शुष्क बन्ध

(क) क्लोदित बन्ध (ड) (क) व (ख) दोनों

49. प्रेरित बन्ध प्रजनन में अण्डनिक्षेपण (Spawning) हेतु अति उत्तम तापक्रम क्या होना चाहिए?

(अ) –10°C (ब) 10°C

(क) 24°C से 32 °C (ड) 40°C से 45°C

4.23 जलशाला निर्माण हेतु आवश्यक सामग्री (Requisites for Fabrication of Aquarium)

जलशाला निर्माण हेतु निम्नलिखित सामान (Equipments) की आवश्यकता होती है–

1. जलशाला टैंक (Aquarium Tanks),
2. टैंक का ढक्कन (Tank Cover),
3. सजावटी सामान (Decoratives),
4. प्रकाश व्यवस्था (Lighting),
5. तापक (Heater),

टिप्पणी

6. थर्मोमीटर (Thermometer),
7. वातक या वाहन व्यवस्था (Aerator and Aeration lines),
8. निस्यन्दक (Filters),
9. हथजाल (Hand Net),
10. परीक्षण किट (Test Kit),
11. मछली आहार (Fish Feed),
12. जलीय पौधे (Aquatic Plants),
13. मछलियाँ (Fishes)।

4.23.1 जलशाला टैंक (Aquarium Tank)

जलशाला टैंक का निर्माण लोहे (Iron) अथवा ऐलुमीनियम (Aluminium) के फ्रेम पर काँच की पट्टियों को बिटोमिन (Bitomin) से जोड़कर किया जाता है। आजकल फ्रेम को हटाकर केवल काँच की पट्टियों को सिलिकॉन रबर (Silicon rubber) से जोड़कर टैंक का निर्माण किया जाने लगा है। इस प्रकार के टैंक में जंग (Rust) या संक्षारण (Corrosion) की समस्या नहीं होती और यह पूर्ण रूप से रिसावमुक्त (Leakproof) तथा आकर्षक होता है। टैंक विभिन्न आकार एवं प्रकार के बनाए जाते हैं। सामान्यतया आयताकार टैंक को वरीयता दी जाती है क्योंकि इससे मछलियों को अधिक पृष्ठीय क्षेत्र (Surface area) उपलब्ध होता है तथा वातावरण से ऑक्सीजन भी अधिक द्रवीभूत होती है। टैंक का आकार आवश्यकतानुसार रखा जाता है। जलशाला टैंकों के कुछ सामान्य आकार निम्नलिखित सारणी में दिए जा रहे हैं–

लम्बाई (Length) सेमी में	चौड़ाई (Width) सेमी में	ऊँचाई (Height) सेमी में	जल धारण क्षमता (Water Holding Capacity) लीटर में
45	25	25	28
60	30	40	72
75	30	40	90
100	30	40	120

टैंक की मछली धारण क्षमता जल के पृष्ठीय क्षेत्र (Surface area) पर निर्भर करती है। सामान्यतया 2.5 समी लम्बी मछली के लिए औसतन 50 वर्ग सेमी पृष्ठीय क्षेत्र की आवश्यकता होती है। इस प्रकार एक 100 × 100 सेमी आकार के 3,000 वर्ग सेमी पृष्ठीय क्षेत्र वाले टैंक में 2.5 सेमी लम्बी 60 मछलियाँ या 5 सेमी लम्बी 30 मछलियाँ रखी जा सकती हैं।

जलशाला टैंक को ढकने के लिए एक ढक्कन की आवश्यकता होती है। यह ढक्कन धूल–मिट्टी एवं अन्य अवांछनीय पदार्थों को जलशाला में जाने से तथा मछलियों को बाहर निकलने से रोकता है। इसके अतिरिक्त ढक्कन प्रकाश व्यवस्था

के लिए भी एक आधार प्रदान करता है। ढक्कन को अन्दर की तरफ से सफेद पेण्ट से रंग देना चाहिए जिससे प्रकाश परावर्तित हो सके।

टिप्पणी

4.23.2 सजावटी सामान (Decoratives)

जलशाला को सुन्दरता प्रदान करने तथा मछलियों के लिए प्राकृतिक वातावरण स्थापित करने के लिए टैंक को सजाने की आवश्यकता होती है। इसके लिए बजरी, कंकड़ों, पत्थरों, खिलौने एवं कृत्रिम पौधों का उपयोग किया जाता है।

टैंक की तली पर बजरी की पर्त बिछायी जाती है। इसके लिए नदी अथवा समुद्र के किनारे की सफेद अथवा रंगीन बजरी का प्रयोग किया जाता है। यह बजरी 3–5 मिमी आकार वाली हो तो अच्छा रहता है। बजरी की पर्तों की गहराई 7–8 सेमी रखी जाती है। बजरी एक अच्छे निस्यन्दक (Filter) का कार्य करती है तथा अनखाये खाद्य पदार्थों एवं मल पदार्थों को रोकन का काम करती है। इसके अतिरिक्त यह जलीय पौधों की वृद्धि के लिए एक माध्यम का कार्य करती है। बजरी को बिछाने के पहले अच्छी प्रकार से धोकर साफ करके सुखा लिया जाता है।

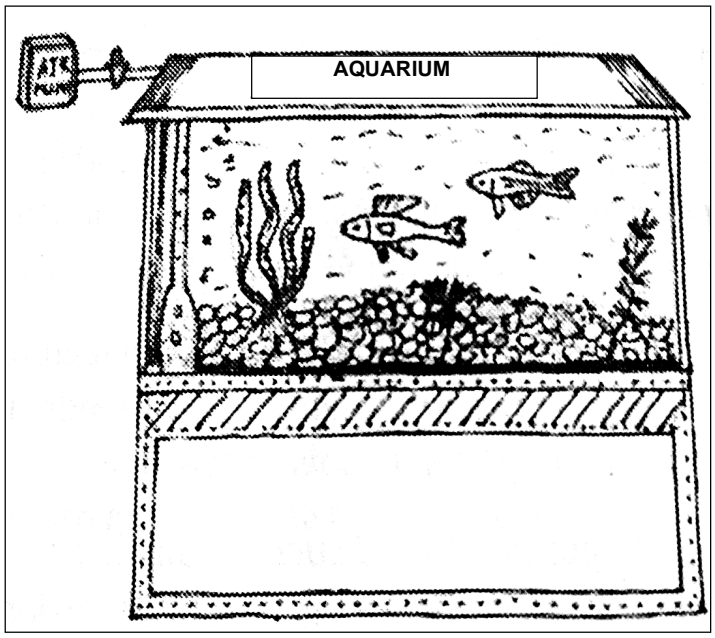

चित्र क्र. 4.56: An Aquarium showing arrangement of various component

बजरी के अतिरिक्त विभिन्न आकार एवं प्रकार के पत्थरों तथा बटियों (Pebbles) का उपयोग भी सजावट के लिए किया जाता है। पत्थरों को जोड़कर विभिन्न आकृतियाँ बनाकर जलशाला को और सुन्दर बनाया जा सकता है। आजकल बाजार में कृत्रिम सजावटी सामान भी उपलब्ध हैं जो विभिन्न रूपों तथा आकृतियों में विशेष रूप से जलशाला के लिए बनाए गए हैं। प्लास्टिक के पौधों का भी प्रयोग किया जाता है। परन्तु यह प्लास्टिक अच्छी गुणवत्ता वाली होनी चाहिए क्योंकि सामान्य प्लास्टिक से जहरीले रसायनों के मुक्त होने का खतरा बना रहता है। प्लास्टिक के पौधे लगाने के दो फायदे होते हैं। एक तो जब इन पर

शैवाल (Algae) जम जाती है तो ये प्राकृतिक रूप ले लेते हैं। दूसरे इन पौधों को मछलियाँ खाती भी नहीं हैं।

टिप्पणी

4.23.3 जलशाला स्थापन (Setting of Aquarium)

जलशाला स्थापन के लिए टैंक को लोहे के स्टैण्ड पर, दीवार में जगह बनाकर या किसी उपयुक्त ऊँचाई की मेज पर रखना चाहिए। रखने का स्थान समतल होना चाहिए और आवश्यकता हो तो टैंक के नीचे 10 मिमी. मोटी थर्मोकोल (Thermocol) शीट रखी जा सकती है। टैंक के रखने के स्थान पर सूर्य का प्रकाश सीधे अथवा अधिक नहीं पड़ना चाहिए। अधिक धूप जलशाला का ताप बढ़ाती है और शैवालों की वृद्धि को प्रोत्साहित करती है।

टैंक रखने के बाद टैंक के तल पर बजरी के नीचे रखी जाने वाली निस्यन्दक प्लेट (Filter plate) रखकर ऊपर से बजरी की 7–8 सेमी मोटी तह जमा देते हैं। सजावटी सामानों तथा वातन पत्थर (Aeration stone) को यथास्थान व्यवस्थित करने के बाद टैंक को जल से भरते हैं। टैंक भरने के लिए कुएँ अथवा नल के पीने वाले जल का प्रयोग किया जाता है। यदि जल क्लोरीनयुक्त हो तो उसी का वातन कर देना चाहिए जिससे क्लोरीन दूर हो जाती है। पहले टैंक का तीन चौथाई भाग जल से भरकर पोधे लगा देते हैं फिर उसके बाद टैंक को पूरा भरकर ढक्कन से ढककर 24 घण्टे तक वातन (Aeration) करते हैं। वातन के समय फिल्टर भी चालू कर देते हैं। 24 घण्टे बाद टैंक में मछलियों को छोड़ देते हैं।

4.23.4 जलीय पौधे (Aquatic Plants)

जलशाला में पौधों की उपस्थिति अपना विशेष महत्व रखती है। पौधे जलशाला की सुन्दरता बढ़ाने के अतिरिक्त अग्रलिखित महत्त्वपूर्ण लाभ देते हैं–

1. पौधे मछलियों की प्राकृतिक वातावरण उपलब्ध कराते हैं।
2. ये मछलियों को आश्रय देकर सुरक्षा की भावना उत्पन्न कराते हैं।
3. ये कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करके ऑक्सीजन मुक्त करते हैं।
4. ये अपघटन अथवा सड़न (Decomposition) के परिणामस्वरूप बने नाइट्रेट्स को अवशोषित करते हैं।
5. ये अण्डे देने के लिए माध्यम उपलब्ध करते हैं।

पौधों का रोपण भी एक कला है। जलशाला सुन्दर एवं प्राकृतिक दिखायी दे इसके लिए अच्छी कल्पनाशक्ति, अनुभव एवं पौधों की उपलब्धता होनी चाहिए। जलशाला में पीछे की तरफ तेजी से वृद्धि करने वाले घास की तरह के' जैसे– **वैलिसनेरिया** (*Vallisneria*), **सैगीटेरिया** (*Sagittaria*) पौधे लगाने चाहिए। जलशला के मध्य में तलवार जैसी पत्तियों वाला **इकाइनोडोरस** (*Echinodorus*) या विलो मॉस **फॉण्टिनैलिस** (Willow Moss, *Fontinalis*) जैसे पौधे लगाने से सुन्दरता बढ़ जाती है। इसके अलावा ये तैरते हुए अपरदों (Floating detritus) को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं। छोटे

पोधे; जैसे–**हाइग्रोफिला** (*Hygrophila*), **क्रिप्टोकोराइनी** (*Cryptocoryne*) आगे की तरफ तथा झाड़ीदार पौधे; जैसे–**लुडवीजिया** (*Ludwigia*), **सिरैटोफाइलम** (*Ceratophyllum*) को कोनों पर लगाया जा सकता है। उपर्युक्त पौधों के अतिरिक्त फैन वर्ट, **कैबोम्बा** (Fanwort, *Cabomba*), **एम्बुलिया** (*Ambulia*), **मिरियोफिलम** (*Myriophyllum*) आदि को भी लगाया जा सकता है।

टिप्पणी

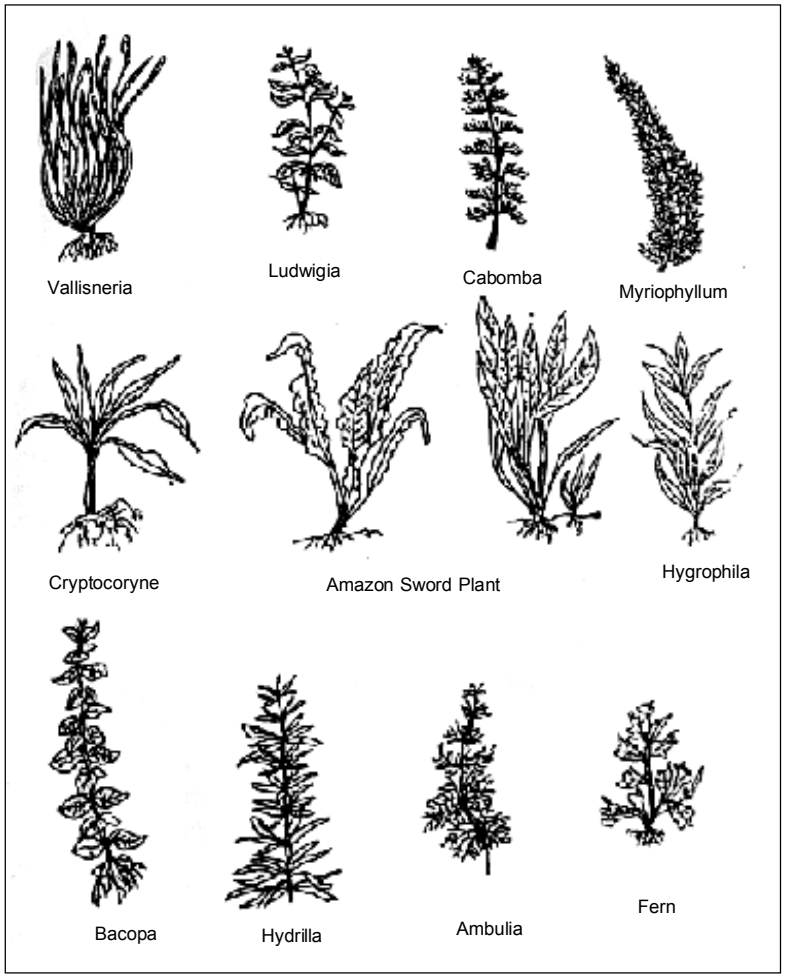

चित्र क्र. 4.57: Aquarium plants

पौधों को लगाने से पूर्व पौधों को विसंक्रमित करना आवश्यक होता है। इससे पौधों में लगे जीवाणु, कीटों के अण्डों तथा परजीवियों से छुटकारा मिल जाता है। विसंक्रमण (Disinfection) के लिए पौधों को पोटैशियम परमैंगनेट (Potassium permanganate) के एक प्रतिशत घोल में 20 मिनट तक रखने के बाद बहते हुए जल में अच्छी तरह से धो लेना चाहिए।

4.23.5 जलशाला की मछलियाँ (Aquarium Fishes)

जलशाला में रखी जाने वाली मछलियों को दो वर्गों में बाँटा गया हैं–पहला वर्ग अण्डे देने वाली (Oviparous) मछलियों का है तथा दूसरा वर्ग बच्चे देने वाली (Ovoviviparous) मछलियों का है। इनमें से कुछ मछलियों के नाम सारणी 4.4 में दिए जा रहे हैं–

टिप्पणी

सारणी Ø- 4.4: जलशाला हेतु कुछ मछलियाँ

	सामान्य नाम (Common Name)	जन्तु वैज्ञानिक नाम (Zoological Name)	कुल (Family)
A. अण्डे देने वाली मछलियाँ (Oviparous Fishes)			
1.	विंडो टेट्रा (Window Tetra)	**जिन्मोकोरिम्बस टर्नेट्जाई** (*Gymnocorymbus ternetzi*)	कैरसिडी (Characidae)
2.	कार्डिनल टेट्रा (Cardinal Tetra)	**कीरियोडॉन एक्सेलरोडाई** (*Cheriodon axelrodi*)	
3.	हेड तथा टैल लाइट टेट्रा (Head and Tail Light Tetra)	**हेमीग्रैमस ओसेलीफर** (*Hemigrammus ocellifer*)	
4.	एक्स–रे फिश (X-ray Fish)	**प्रिसटेला रिडली** (*Pristella riddlei*)	
5.	गोल्ड फिश (Gold Fish)	**कैरेसियस ऑरेटस** (*Carrassius auratus*)	सिप्रिनिडी (Cyprinidae)
6.	टाइगर बार्ब (Tiger Barb)	**पुन्टियस टेट्राजोना** (*Puntius tetrazona*)	
7.	ज़ेब्रा फिश (Zebra Fish)	**ब्रैकिडेनियो रेरियो** (*Brachidanio rario*)	
8.	सियामीज़ फाइटिंग फिश (Saimese Fighting Fish)	**बीटा स्प्लेन्डेन्स** (*Betta splendens*)	एनाबैण्टिडी (Anaban-tidae)
9.	किसिंग गुरामी (Kissing Gourami)	**हीलोस्टोमा टेमिन्काई** (*Helostoma temmincki*)	
10.	ड्वार्फ गुरामी (Dwarf Gourami)	**कोलिसा लेटिया** (*Colisa latia*)	
11.	एन्जिल फिश (Angel Fish)	**टेरोफिलम सीलेर** (*Pterophyllum sealare*)	सिकलिडी (Cichlidae)
12.	ऑस्कर (Oscar)	**एस्ट्रोनोटस ओसिलेटस** (*Astronotus ocellatus*)	
13.	डिस्कस (Discus)	**सिम्फाइसोडॉन डिस्कस** (*Symphysodon discus*)	
(B) बच्चे देने वाली मछलियाँ (Ovoviviparous Fishes)			
1.	गप्पी (Guppy)	**प्वाइसीलिया रेटीकुलेटा** (*Poecilia reticulata*)	प्वाइसिलिडी (Poecilidae)

2.	ब्लैक मोली (Black Molly)	**प्वाइसीलिया स्फीनॉप्स** (*Poecilia sphenops*)	
3.	स्वार्ड टेल (Sword-tail)	**जीफोफोरस हिलेरी** (*Xiphophorus helleri*)	
4.	प्लेटी (Platy)	**जीफोफोरस मैकुलेटस** (*Xiphophorus maculatus*)	

टिप्पणी

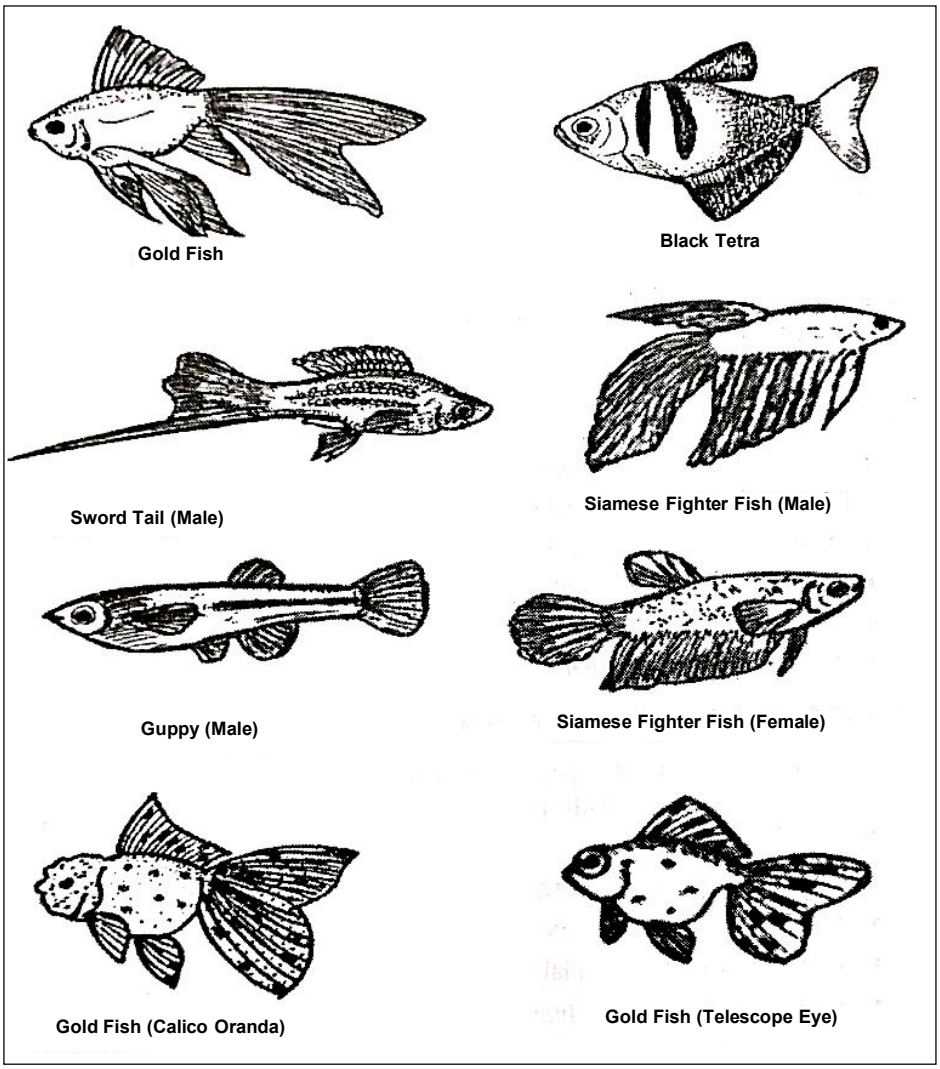

टिप्पणी

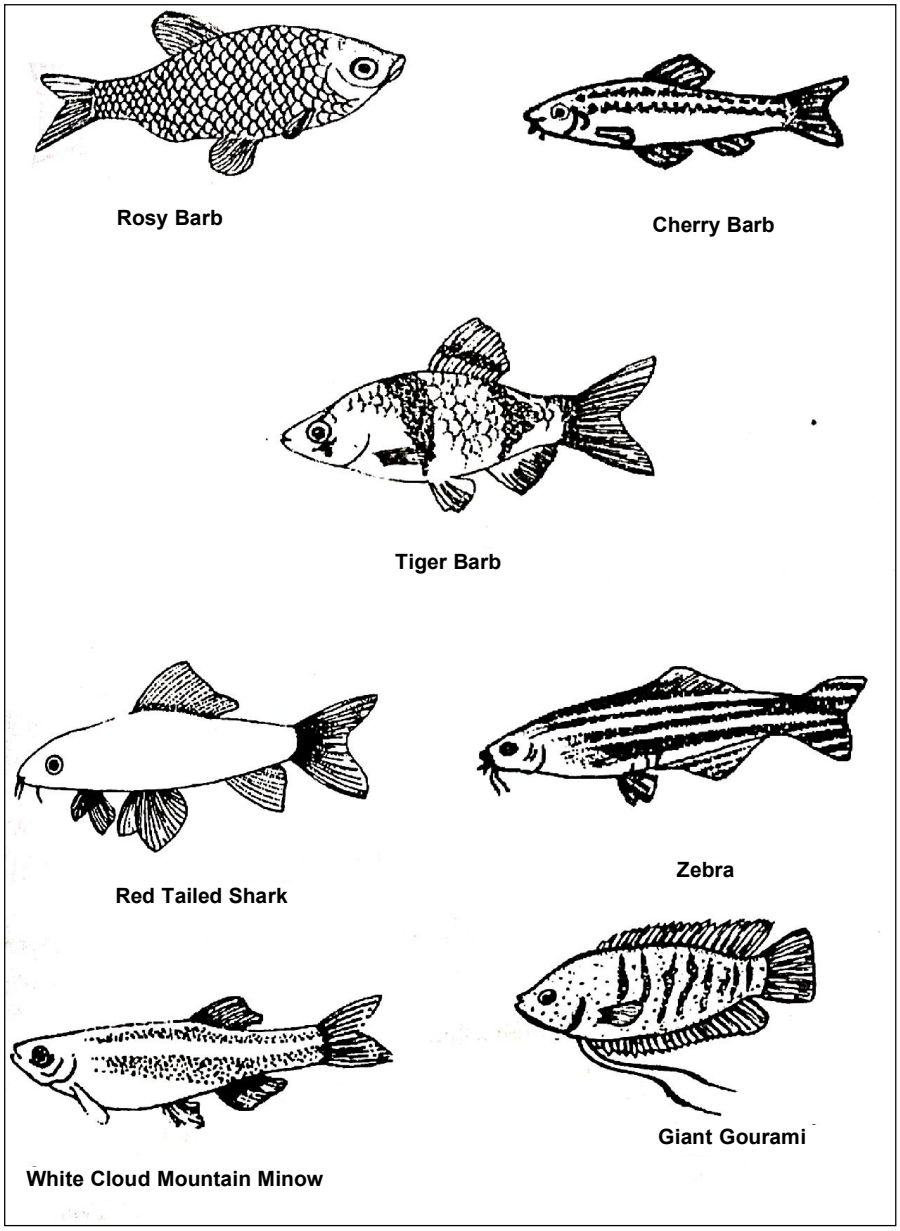

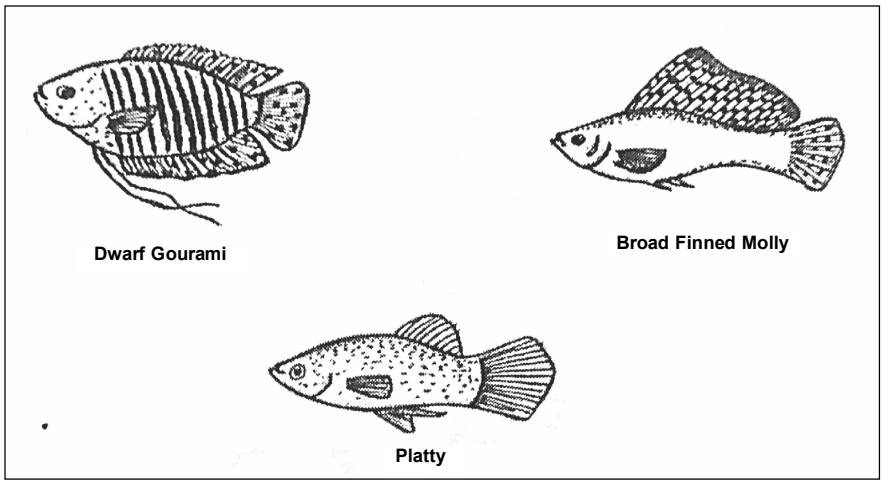

चित्र क्र. 4.58: Aquarium fishes

4.24 जलशाला प्रबन्धन (Maintenance of Aquarium)

टिप्पणी

जलशाला के प्रबन्धन के लिए अग्रलिखित क्रियाकलापों का नियमित निष्पादन आवश्यक होता है–

1. प्रदीपन (Lighting)
2. तापन (Heating)
3. वातन (Aeration)
4. निस्यन्दन (Filtration)
5. जल गुणवत्ता प्रबन्धन (Water Quality Management)
6. संभरण (Feeding)।

(1) प्रदीपन (Lighting)– जलशाला का समुचित प्रदीपन न केवल सौन्दर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है अपितु यह मछलियों तथा जलीय पौधों की वृद्धि के लिए भी आवश्यक होता है। प्रदीपन में प्रकाश की मात्रा, तीव्रता तथा प्रदीपन की अवधि की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसे तेजी से वृद्धि करने वाले पौधों के लिए तीव्र प्रकाश की तथा धीमी गति से वृद्धि करने वाले पौधों के लिए हल्के प्रकाश की आवश्यकता होती है। सामान्यतया एक वर्ग फुट जल सतह के लिए 40 वाट के सामान्य टंगस्टन बल्ब अथवा 10 वाट की प्रतिदीप्ति ट्यूब (Fluorescent tube) का प्रकाश पर्याप्त होता है। प्रतिदिन 10–15 घण्टे प्रदीपन करना चाहिए। आजकल जलशाला के प्रदीपन के लिए विशेष रूप से बनायी गयी ट्यूबलाइटें बाजार में उपलब्ध हैं।

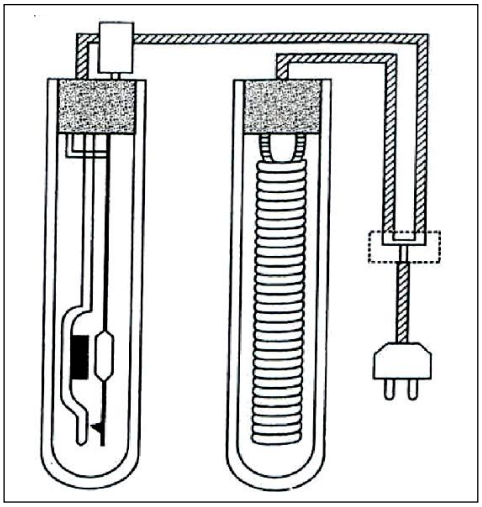

चित्र क्र. 4.59: Heater with thermostat

(2) तापन (Heating)– जलशाला में पाली जाने वाली अधिकांश मछलियों के लिए 22-30°C ताप की आवश्यकता होती है। जलशाला में ताप की अधिक अस्थिरता नुकसानदायक होती है। ताप मापन के लिए जलशाला में एक थर्मोमीटर लगाना आवश्यक होता है। सर्दी के दिनों रात के समय पानी ठण्डा हो जाता है।

टिप्पणी

इसके नियन्त्रण के लिए जलशाला में तापक (Heater) लगाया जाता है। इस तापक का मूल तत्व (Element) एक काँच की नली के अन्दर बन्द होता है तथा इसे एक थर्मोस्टेट (Thermostat) द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। यह स्वचालित होता है। तापक की विद्युत्–शक्ति (Power) जल की मात्रा पर निर्भर करती है। सामान्यतया 60 सेमी लम्बी जलशाला में प्रत्येक 5 लीटर जल के लिए 10 वाट का तापक एवं 120 सेमी जलशाला में प्रत्येक 5 लीटर जल के लिए 6 वाट का तापक पर्याप्त होता है।

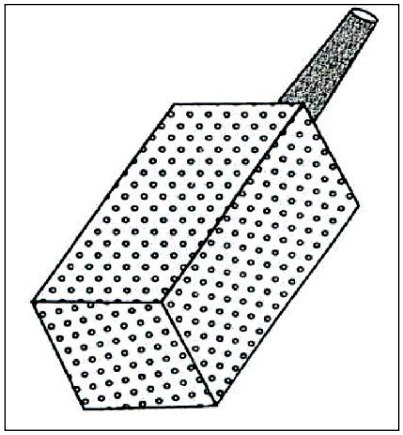

चित्र क्र. 4.60: Aeration stone

(3) वातन (Aeration)– जलशाला में नियमित वातन करना आवश्यक होता है। यह जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ाता है। वातन के लिए वातक के रूप में वायु पम्प (Air pump) का प्रयोग किया जाता है। इस वातक को रबर की नलियों द्वारा वातन पत्थर (Aeration stone), निस्यन्दन प्रणाली (Fileration system) तथा खिलौनों से जोड़ देते हैं। वातन पत्थर एक प्रकार का झामक पत्थर (Pumice stone) होता है जो जल को हिलाने के साथ–साथ वायु के बुलबुले (Bubbles) उत्पन्न करता है जिससे जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त गर्मी के दिनों में जब जल का ताप बढ़ जाता है तब वातन द्वारा जल के ताप को कम किया जाता है। वातक को जल स्तर से थोड़ा ऊपर रखना चाहिए जिससे वातन बन्द होने पर जल साइफन की क्रिया द्वारा पम्प में न पहुँच सके अन्यथा पम्प के जल जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

(4) निस्यन्दन (Filtration)– मछलियों की उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुई अमोनिया तथा नाइट्राइट जल में निरन्तर संचित होते रहते हैं और एक निश्चित स्तर पर पहुँचने के उपरान्त घातक प्रभाव डालते हैं। जल में उपस्थित मल पदार्थों एवं अनखाये खाद्य पदार्थों के जीवाणु अपघटन (Bacterial decomposition) से भी अमोनिया उत्पन्न होती है। कुछ अमोनिया नाइट्रीकारी जावाणुओं (Nitrifying bacteria) द्वारा नाइट्राइट (NO_2) और फिर नाइट्रेट (NO_3) में परिवर्तित कर दी जाती है। नाइट्रेट की कुछ मात्रा की खपत पौधे कर लेते हैं। अधिक मात्रा में नाइट्राइट अथवा नाइट्रेट भी मछलियों के लिए हानिकारक होते हैं। हानिकारक पदार्थों को दूर करने के लिए जल का निस्यन्दन आवश्यक होता है। निस्यन्दन के लिए विभिन्न प्रकार के निस्यन्दकों का प्रयोग किया जाता है–

टिप्पणी

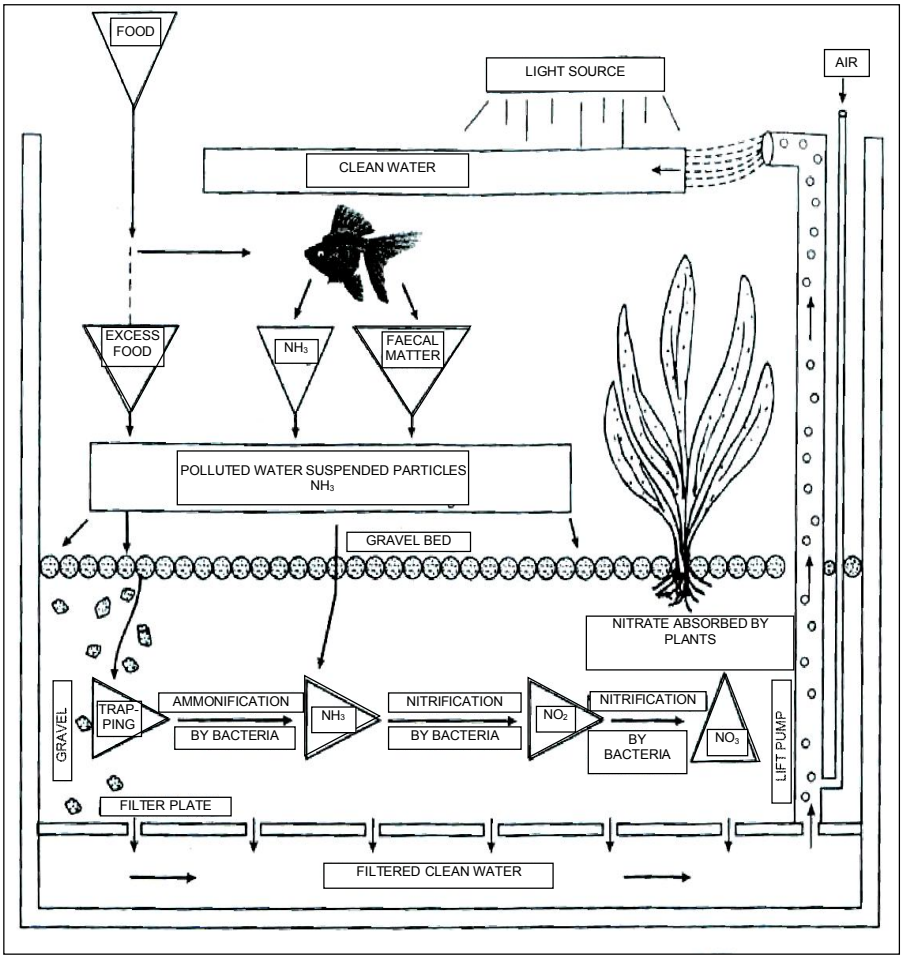

चित्र क्र. 4.61: Water purification system in aquarium

(i) बजरी के नीचे रखने वाला निस्यन्दक (Undergravel filter) – यह एक प्रकार का जैविक निस्यन्दक (Biological filter) है। इसमें एक ट्रे की तरह की प्लास्टिक की प्लेट होती है जिसमें छिद्र होते हैं। इस प्लेट के एक तरफ वायु उत्थापक नलिका (Air lifting tube) लगी रहती है। इस नलिका में नीचे से वायु प्रवाहित की जाती है जिससे बजरी द्वारा निस्यन्द किया हुआ साफ जल प्लेट के नीचे से नली के द्वारा ऊपर चढ़ता है और जल की ऊपरी सतह पर गिरता है।

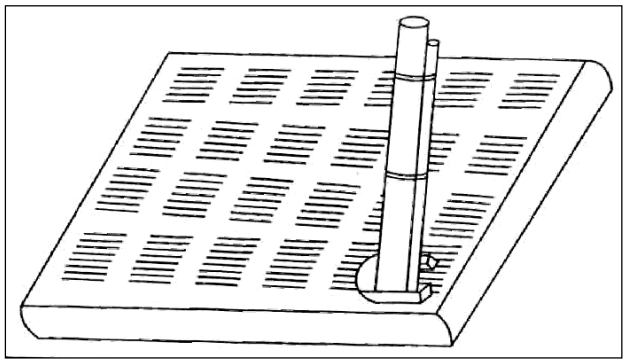

चित्र क्र. 4.62: Under-gravel filter

टिप्पणी

(ii) फोम निस्यन्दक (Foam Filter)– यह एक प्लास्टिक की डिब्बी होती है जिसके अन्दर फोम की एक मोटी पर्त लगी होती है। डिब्बी के ऊपर तथा नीचे की तरफ छिद्र होते हैं। डिब्बी को वातक से जोड़ देते हैं। डिब्बी में वायु प्रवाहित करने पर जल अन्दर प्रवेश करता है जिससे जल में उपस्थित निलम्बित कण (Suspended particles) फोम में फँस जाते हैं जिन्हें फोम में उपस्थित जीवाणु अपघटित कर देते हैं। इस प्रकार जल निस्यन्दित हो जाता है। समय–समय पर फोम को जल में खंगाल (Rinse) कर साफ करते रहना चाहिए।

(iii) पावर निस्यन्दक (Power Filter) – इस निस्यन्दक का उपयोग बड़े आकार की जलशालाओं के लिए किया जाता है। इस निस्यन्दक में एक पात्र के अन्दर फोम अथवा अन्य निस्यन्दक माध्यमों में कई पर्तें होती हैं जिसमें एक पम्प की सहायता से जल प्रवाहित किया जाता है।

(5) जल गुणवत्ता प्रबन्धन (Water Quality Management) – जल मछलियों की प्राथमिक आवश्यकता है अतः जल के भौतिक–रासायनिक गुणों (Physico-chemical properties) को बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। निम्नलिखित प्राचलों (Parameters) का समय–समय पर परीक्षण करके व्यवस्थित रखना जलशाला के सामान्य संचालन के लिए अनिवार्य होता है–

(i) ताप (Temperature) – जलशाला में जल का ताप 22-30°C होना चाहिए। जल में होने वाला 2-3°C से अधिक का ताप परिवर्तन मछलियों के लिए नुकसानदायक होता है और यदि ताप परिवर्तन अचानक हो तो यह घातक होता है। ताप कम होने पर मछलियों की क्रियाशीलता, भूख तथा प्रतिरोधात्मक क्षमता कम हो जाती है और विभिन्न संक्रमणों से ग्रस्त हो जाती हैं। ऐसे समय तापक (Heater) का प्रयोग करना चाहिए। गर्मियों में ताप बढ़ने पर वातन (Aeration) द्वारा ताप कम किया जा सकता हैं।

(ii) क्लोरीन (Chlorine)– जलशाला के लिए प्रायः पीने वाले जल का प्रयोग किया जाता है जिसमें क्लोरीन होती है जो मछलियों के लिए घातक होती है। जल में उपस्थित क्लोरीन को दूर करने के लिए या तो जल को पहले 24–48 घण्टे तक रखा रहने देना चाहिए या फिर सोडियम थायोसल्फेट (Sodium thiosulphate) की कुछ बुँदें जल में मिलाकर क्लोरीन को दूर कर देना चाहिए।

(iii) जल का pH (pH of Water)– अधिकांश सिकलिड (Cichlid) एवं टेट्रा (Tetra) मछलियाँ 6.8–7.2 pH में रहना पसन्द करती हैं, जबकि बच्चे देने वाली मछलियाँ (Ovoviviparous) हल्के क्षारीय माध्यम अर्थात् 7.2–7.4 pH में रहना पसन्द करती हैं। जल को यदि थोड़ा अम्लीय बनना हो तो मॉस पीट (Moss peat) को जल में भिगोकर उसके रस को जल में मिलाकर थोड़ी अम्लीयता उत्पन्न की जा सकती हैं। इसके विपरीत यदि जल की क्षारीयता बढ़ानी हो तो जल में सोडियम बाइकार्बोनेट (Sodium bicarbonate) की थोड़ी–सी मात्रा मिला देनी चाहिए।

(iv) जल की कठोरता (Hardness of Water)– अधिकतर अण्डे देने वाली मछलियों को पालने के लिए मृदु जल (Soft water) जिसमें कार्बोनेट की

मात्रा 10–80 पी पी एम (ppm) हो, की आवश्यकता होती है, जबकि अधिकांश बच्चे देने वाली मछलियों के लिए 120–200 पी पी एम कार्बोनेट वाले कठोर जल (Hard water) की आवश्यकता होती है। जल की कठोरता को कम करने के लिए आसुत जल (Distilled water) या वर्षा के जल (Rain water) का प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

(6) संभरण (Feeding)– मछलियों की सामान्य वृद्धि एवं प्रजनन के लिए समुचित संभरण की आवश्यकता होती है। सन्तुलित आहार की कमी से मछलियों की वृद्धि प्रभावित होती है और वे अनेक बीमारियों से ग्रस्त हो जाती हैं। मछलियों को प्राकृतिक सजीव भोजन (Live feed) के रूप में ट्यूबीफेक्स कृमि (Tubifex worms), डैफ्निया (*Daphnia*), साइक्लोप्स (*Cyclops*), मच्छर के लार्वा (Mosquito larva) काइरोनोमस लार्वा (Chironomus larva) दिए जा सकते हैं। प्राकृतिक भोजन के अतिरिक्त कई प्रकार के कृत्रिम आहार (Artificial feed) भी उपलब्ध हैं। ये आहार पाउडर, दाने, गोली या पपड़ी के रूप में होते हैं। भोजन एक बार में देने की बजाय थोड़ी–थोड़ी मात्रा में दिन में तीन–चार बार देना चाहिए। अधिक मात्रा में भोजन डालने से न केवल जल गन्दा होता है अपितु अनखाये भोजन से सड़ांध उत्पन्न होती है तथा जीवाणु संक्रमण का खतरा उत्पन्न हो जाता है। मछलियों को एक ही प्रकार का भोजन नियमित रूप से नहीं देना चाहिए बल्कि बदल–बदल कर विभिन्न प्रकार का भोजन देना चाहिए। प्राकृतिक सजीव भोजन कृत्रिम भोजन की अपेक्षा अधिक लाभदायक होता हैं।

4.25 जलशाला मछलियों का प्रजनन (Breeding of Aquarium Fishes)

अण्डे देने वाली तथा बच्चे देने वाली मछलियों में भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रजनन होता है अतः दोनों प्रकार की मछलियों के लिए प्रजनन कराने की व्यवस्था अलग तरीके से की जाती है। अण्डे देने वाली मछलियों में भी अण्डे देने का तरीका भिन्न–भिन्न होता है। जैसे कुछ मछलियाँ पत्तियों या अन्य किसी वस्तु से अण्डे चिपकाती हैं, कुछ बुलबुलों का घोंसला बनाकर अण्डे देती हैं अतः ऐसी मछलियों के अण्डे देने के लिए विशेष प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रजनन कराने के लिए स्वस्थ एवं रोगमुक्त प्रजनकों का चयन करना चाहिए। टैंकों में अधिक संख्या में मछलियों को नहीं रखना चाहिए। इससे इनकी वृद्धि तथा लैंगिक परिपक्वता पर खराब प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त जल को स्वच्छ तथा उसकी गुणवत्ता को मछलियों के प्राकृतिक वातावरण और स्वभाव के अनुरूप रखना चाहिए। यदि किसी मछली में बीमारी के लक्षण दिखायी दें तो उसे तुरन्त अलग करके उपचार करना चाहिए।

लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेने के बाद नर तथा मादा मछलियों को पहचान कर प्रजनन के कुछ दिन पूर्व से ही अलग–अलग टैंकों में रखते हैं। अण्डे देने वाली मछलियों के नर पतले, अधिक रंगीन तथा पुष्ट फिन वाले तथा मादाएँ गोल पेट वाली होती हैं। बच्चे देने वाली मछलियों में नर का एनल फिन

टिप्पणी

गोनोपोडियम (Gonopodium) में रूपान्तरित हो जाता है। प्रजनकों में अच्छी लैंगिक परिपक्वता लाने के लिए मछलियों को उनके स्वभाव के अनुसार सजीव भोजन खिलाना चाहिए। भोजन थोड़ी–थोड़ी मात्रा में दिन में तीन–चार बार देना चाहिए।

4.25.1 अण्डे तथा बच्चों की देखभाल (Caring of Eggs and Young Ones)

सामान्यतया प्रजनन के उपरान्त प्रजनकों को टैंक से बाहर निकाल लेते हैं। परन्तु स्वभाव से जो मछलियाँ अण्डों की सुरक्षा करने वाली होती हैं इन्हें हैचिंग हो जाने तक टैंक में बने रहने देते हैं। अण्डे से निकले हैचलिंग्स के योक सैक (Yolk sac) में तीन दिनों का भोजन संग्रहीत रहता है। परन्तु योक (Yolk) समाप्त होने के पूर्व से ही उन्हें भोजन देना प्रारम्भ कर देना चाहिए। हैचलिंग्स का आकार इतना छोटा होता है कि ये केवल सूक्ष्मजीवी भोजन इनफसोरिया (Inufsoria) खाते हैं। इनफसोरिया वास्तव में सूक्ष्मजीवी, एककोशीय सीलियेट प्रोटोजोअन (Ciliate protozoan) जन्तुओं का समूह है जिसमें **पैरामीशियम** (*Paramecium*), **स्टोलोनाइकिया** (*Stolonychia*), **फैब्रिया** (*Fabria*) जैसे जन्तु आते हैं। इन्हें मछली के हैचलिंग्स आसानी से पकड़कर खा सकते हैं। अतः समुचित मात्रा में भोजन डालते रहना चाहिए।

प्रजनन के पूर्व या तो इनफसोरिया को उनके प्राकृतिक आवास से कपड़े के जाल की सहायता से पकड़कर संग्रहीत कर लेना चाहिए अथवा इसका कल्चर तैयार कर लेना चाहिए ताकि हैचलिंग्स के लिए भोजन की कमी न होने पाए। कल्चर तैयार करने के लिए पानी को उबाल कर ठण्डा करके एक जार में भर लेना चाहिए। फिर इस जल में केले के छिलके (Banana pealings) या पत्तागोभी के कटे पत्तों को डालकर जार को थोड़े प्रकाश में रख देने हैं। दो या तीन दिन बाद इसमें पैरामीशियम संचारित (Inoculate) कर देते हैं। तीन–चार दिन में कल्चर बनकर तैयार हो जाता है। इनफसोरिया न मिलने पर मुर्गी के अण्डे का योक (Yolk) भी खिलाया जा सकता है। योक को किसी बारीक कपड़े में रखकर मसलने के योक के सूक्ष्म कण जल में मिल जाते हैं।

चार–पाँच दिन में हैचलिंग्स जब वृद्धि कर जाते हैं तब इन्हें डैफ्निया (*Daphnia*), मोयना (*Moina*), साइक्लोप्स (*Cyclops*) आदि खिलाना प्रारम्भ कर देते हैं। लगभग 10–15 दिनों बाद इनमें वर्णकन (Pigmentation) होने लगता है। इस अवस्था में इन्हें 100 × 30 × 30 सेमी आकार के फ्राई पालन–पोषण टैंक (Rearing tank) में स्थानान्तरित कर देते हैं। इस समय इन्हें अच्छी प्रकार से भोजन कराते हैं। टैंक में जल गन्दा नहीं होने देना चाहिए और आवश्यकतानुसार सायफन करके जल बदलते रहना चाहिए–

(1) टेट्रा तथा बार्ब मछलियों का प्रजनन (Breeding of Tetras and Barbs) – अधिकांश बार्ब मछलियों का प्रजनन सभी प्रकार के जल में किया जा सकता है परन्तु टेट्रा मछलियों के लिए थोड़े अम्लीय मृदु जल (Acidic soft water) की आवश्यकता होती है। मॉस पीट (Moss peat) को जल में भिगोकर

इसका रस मिलाने से जल थोड़ा अम्लीय हो जाता है। जल की कठोरता कम करने के लिए आसुत जल या वर्षा का जल प्रयोग करते हैं।

टिप्पणी

टेट्रा तथा बार्ब मछलियाँ छोटे तथा चिपचिपे अण्डे देती हैं तथा ये अपने अण्डों को खा जाती हैं। अण्डों को सुरक्षित बनाए रखने के लिए प्रजनन टैंक के एक–तिहाई भाग में छोटे तथा घनी पत्तियों वाले पौधे या नाइलॉन का बना प्रजनन झाड़न (Breeding mop) का प्रयोग किया जाता है। पौधों को लगाने से पूर्व इसमें चिपके हुए घोंघे (Snails), कीटों के अण्डों तथा लार्वों को निकाल देते हैं तथा रोगाणुओं को मारने के लिए पौधों को पोटैशियम परमैंगनेट के घोल में 20 मिनट तक रखने के बाद साफ जल से धो देते हैं। प्रजनन के लिए नर तथा मादा मछलियों को 2 : 1 के अनुपात में रखते हैं। 24 घण्टे में प्रजनन की क्रिया सम्पन्न हो जाती है जिसके बाद प्रजनकों को टैंक से बाहर निकाल देते हैं।

(2) फाइटर तथा गौरामी मछलियों का प्रजनन (Breeding of Fighter and Gourami Fishes) – ये मछलियाँ एनाबैण्टिडी कुल की सदस्य हैं और वायुश्वासी (Air breathing) मछलियाँ हैं। इनमें विशिष्ट लैबरिन्थाइन अंग (Labyrinthine organ) पाया जाता है जो वायुश्वसन में सहायता करता है। अधिकांश नर मछलियाँ प्रजनन के समय बुलबुलों का घोंसला बनाती हैं जिसमें अण्डों तथा बच्चों को सुरक्षित रखा जाता है। घोंसला (Nest) बनाने के लिए नर मछली सतह से थोड़ी हवा लेकर उसमें लार मिलाकर छोटे–छोटे बुलबुले बनाकर सतह पर जमा करती है। बुलबुलों पर लार का आवरण होने के कारण ये जल्दी फूटते नहीं है। इस प्रकार के अनेक बुलबुले जल की सतह पर साबुन के फेन (Froth) के समान लगते हैं। प्रजनन के लिए मध्यम आकार का टैंक लेते हैं जिसमें स्वच्छ जल भरकर एक दो जलकुम्भी (*Eichhornia*) के पौधे रखते हैं जो बुलबुलों से बने घोंसले को फूटने से बचाने में सहायता करते हैं। टैंक में पहले एक परिपक्व नर मछली को छोड़ते हैं जो शीघ्र ही अपना घोंसला बनाना प्रारम्भ कर देती है। घोंसला बन जाने पर एक परिपक्व मादा मछली को भी टैंक में छोड़ देते हैं। प्रजनन की क्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद मादा मछली को टैंक से बाहर निकाल देते हैं। नर मछली अण्डों की सुरक्षा करती है। अण्डों की हैचिंग हो जाने के बाद नर मछली को भी टैंक से निकाल देते हैं।

(3) सिकलिड मछलियों का प्रजनन (Breeding of Cichlid Fishes) – सिकलिड कुल की सभी मछलियों में पैतृक रक्षण (Parental care) अति विकसित होती है। अपने अण्डों तथा बच्चों की देखभाल में नर तथा मादा दोनों मछलियाँ सहयोग करती हैं, प्रजनन के पूर्व नर मछली अपने प्रजनन क्षेत्र (Breeding territory) का निर्धारण करती है। कुछ प्रजातियाँ जैसे एन्जिल मछली (Angel fish) अपने अण्डों को किसी पत्थर, प्लेट अथवा पत्तियों पर व्यवस्थित रूप से चिपकाती है। अण्डे देने के बाद मादा मछली के साथ ही नर मछली अण्डों तथा बच्चों की सुरक्षा करती हैं। दूसरी प्रजातियाँ जिन्हें मुख प्रजनक (Mouth brooder) कहते हैं; जैसे–**टिलापिया** (*Tilapia*) में मादा मछली किसी सुरक्षित जगह पर अण्डे देने के उपरान्त अण्डों को अपने मुख में रख लेती है जो अण्डजोत्पत्ति (Hatching) तक मुख में ही बने रहते हैं।

टिप्पणी

सिकलिड मछलियों के प्रजनन स्वभाव की विविधता के अनुसार प्रजनन टैंकों की व्यवस्था की जाती है। ये मछलियाँ अपनी जोड़ी का चुनाव स्वयं करती हैं अतः चयनित जोड़ियों को ही प्रजनन टैंकों में रखा जाता है। एन्जिल मछलियों के प्रजनन के लिए टैंक में एक–दो काँच की प्लेटों को तिरछा खड़ा कर देते हैं जिन पर ये अण्डे देती हैं। प्रजनन के बाद काँच की प्लेटों को अन्य टैंक में स्थानान्तरित कर देते हैं। जिस टैंक में अण्डे रखे जाते हैं उसका वातन करते रहना चाहिए ताकि अण्डों पर गन्दगी का जमाव न हो सके। अण्डे 4–5 दिन में हैच कर जाते हैं। मुख प्रजनकों (Mouth brooders) के लिए टैंक में कोई मिट्टी का बर्तन अथवा पत्थर के टुकड़े रख देते हैं जिन पर अण्डे देने के बाद ही मादा मछली उन्हें अपने मुख में रखती है।

(4) गोल्डफिश का प्रजनन (Breeding of Goldfish) – गोल्डफिश जून से सितम्बर तथा दिसम्बर से मार्च तक प्रजनन करती है। प्रजनन काल में नर मछलियों के क्लोम आवरण (Gill operculum) पर छोटे–छोटे दाने के समान संरचनाएँ दिखायी देती हैं। कभी–कभी ये रचनाएँ फिन तथा 'शल्कों पर भी दिखायी देती हैं जिससे उनका शरीर खुरदुरा (Rough) हो जाता है। मादा गोल्डफिश का पेट अण्डों से भरा होने पर फूला दिखयी देता है। प्रजनन के लिए 100 × 30 × 40 सेमी आकार के बड़े टैंक की आवश्यकता होती हैं। टैंक में जल का ताप 20-30°C बना रहना चाहिए। नर तथा मादा प्रजनकों को 2 : 1 के अनुपात में प्रजनन टैंकों में रखा जाता है तथा टैंक के एक–तिहाई भाग में घनी पत्तियों वाले पौधों; जैसे–सिरैटोफाइलम (*Ceratophyllum*) या मिरियोफाइलम (*Myriophyllum*) को रखा जाता है। 6–12 घण्टों में मादा मछली अण्डे दे देती है। प्रजनन के उपरान्त प्रजनकों को टैंक से निकाल देते हैं।

(5) बच्चे देने वाली मछलियों का प्रजनन (Breeding of Ovoviviparous Fishes) – प्वाइसिलिडी कुल की सभी मछलियाँ बच्चों को जन्म देती है। इसकी रंगीन प्रजातियों में प्रमुख हैं; गप्पी (Guppy). मोली (Molly), प्लेटी (Platy) तथा स्वार्डटेल (Swordtails)। इन मछलियों में अण्डों का निषेचन, भ्रूण का विकास तथा संरक्षण मादा मछली की देहगुहा में होता है परन्तु भ्रूण अपना पोषण अण्डे में उपस्थित योक (Yolk) द्वारा ही प्राप्त करता है इसीलिए इन्हें ओवोविवीपेरस (Ovoviviparous) कहा जाता है। इन मछलियों में लिंग भेद करना बहुत आसान होता हैं। इनकी नर मछलियों का एनल फिन (Anal fin) एक पतली नली के समान संरचना में परिवर्तित हो जाता है जिसे गोनोपोडियम (Gonopodium) कहते हैं। गोनोपोडियम का मुख्य कार्य शुक्राणुओं को मादा की गुदाद्वार (Vent) में पहुँचाना होता है। मछलियों में लैंगिक परिपक्वता 12 से 20 हफ्तों में आ जाती है। इनका प्रजनन काल निश्चित नहीं होता है। 25–40 दिनों की गर्भावधि (Gestation period) के अन्तराल पर प्रजनन वर्ष भर होता रहता है।

टिप्पणी

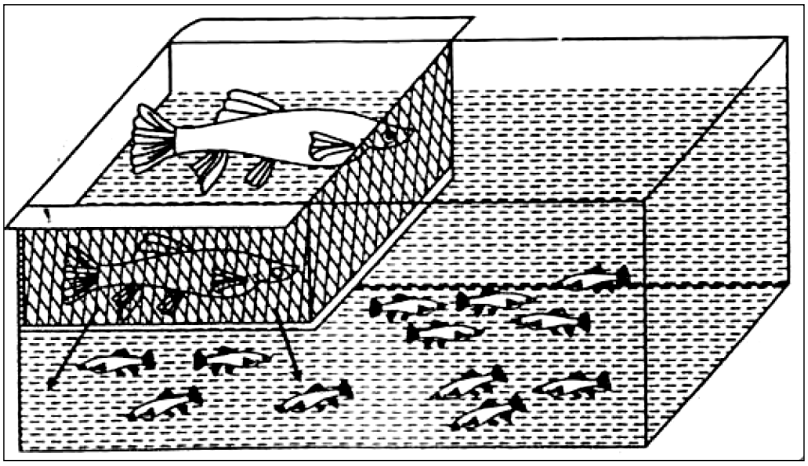

चित्र क्र. 4.63: Arrangement of breeding trap in an aquarium for ovoviviparous fishes

ये मछलियाँ प्रायः अपने बच्चों को खा जाती हैं अतः इन्हें सुरक्षित रखने के लिए टैंक में घनी पत्तियों वाले पौधे या प्रजनन ट्रेप (Breeding trap) लगा देने हैं जिससे ये अपने बच्चों को नहीं खा पातीं। प्रजनन पूर्ण हो जाने पर मादा मछली को टैंक से हटा देते हैं।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

50. बुलबुलों का घोंसला बनाने वाली मछली है–
    (अ) किसिंग गौरामी, (ब) मोली
    (क) गप्पी (ड) गोल्डफिश।
51. जलशाला में मॉस पीट का रस मिलाया जाता है–
    (अ) जल को मृदु बनाने के लिए
    (ब) जल की कठोरता में वृद्धि करने के लिए
    (क) जल को अम्लीय बनाने के लिए
    (ड) जल को क्षारीय बनाने के लिए।
52. निम्नलिखित मछलियों में बच्चे देने वाली मछली है–
    (अ) एन्जिल फिश (ब) टाइगर फिश
    (क) डिस्कस फिश (ड) गप्पी।
53. जलशाला मे वातन किया जाता है–
    (अ) ताप कम करने के लिए
    (ब) घुलित ऑक्सीजन की मात्रा में वृद्धि करने के लिए
    (क) दोनों कार्यों के लिए
    (ड) उपर्युक्त में से किसी के लिए नहीं।

टिप्पणी

54. हैचलिंग्स को आहार के रूप में दिया जाता है–

(अ) पैरामीशियम (ब) डैपिनया

(क) मच्छरों कें लार्वा (ड) काइरोनोमस लार्वा।

4.26 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.	(ब)	15.	(ड)	29.	(अ)	43.	(अ)
2.	(क)	16.	(ब)	30.	(ड)	44.	(ब)
3.	(ब)	17.	(ब)	31.	(क)	45.	(ड)
4.	(अ)	18.	(क)	32.	(अ)	46.	(ड)
5.	(क)	19.	(क)	33.	(ब)	47.	(अ)
6.	(क)	20.	(घ)	34.	(ब)	48.	(अ)
7.	(अ)	21.	(अ)	35.	(क)	49.	(क)
8.	(अ)	22.	(घ)	36.	(क)	50.	(अ)
9.	(ब)	23.	(अ)	37.	(ड)	51.	(क)
10.	(ड)	24.	(ब)	38.	(क)	52.	(ड)
11.	(क)	25.	(अ)	39.	(अ)	53.	(क)
12.	(ड)	26.	(ड)	40.	(ब)	54.	(अ)
13.	(क)	27.	(अ)	41.	(ब)		
14	(ड)	28.	(क)	42.	(अ)		

4.27 सारांश (Summary)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है एक्वाकल्चर (Aquaculture) अर्थात् जल संवर्धन या जल कृषि की आवश्यकता भारत जैसे प्रगतिशील देश के लिए मील का पत्थर साबित हो रही है क्योंकि यह (भारत) एक कुषिद्ध आधारित देश है। यह न केवल संतुलित आहार की अवधारणा में ही सहायक सिद्ध हो रहा है बल्कि देश की बढ़ती आबादी को भोजन की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि झींगा मछली पालन एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। यह केवल सन्तुलित आहार की अवधारणा की पूर्ति करने में ही सहायक नहीं है बल्कि भारत जैसे विकासशील देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के साथ ही साथ आम लोगों एवं खासतौर से युवाओं के लिए रोजगार की अनेक संभावनाओं को परिपक्षित करता है।

उपरोक्त सभी वर्णन से स्पष्ट है, कि मोती संवर्धन (Pearl culture) भी व्यावहारिक प्राणिकी की महत्वपूर्ण शाखाओं में से एक है। इसका उपयोग आभूषण उद्योगों में तथा अधिक लाभ–प्राप्त करने में किया जाता है। इस क्षेत्र में भी रोजगार के अवसर प्राप्त हो रहे है।

उपरोक्त समस्त वर्णन से स्पष्ट है कि मेंढक संवर्धन का उपयोग प्रोटीन के रूप में, अन्य खाद्य पदार्थो के रूप में बहुतायत रूप से उपयोग में लाया जा रहा है। विश्व व्यापार में मेंढक प्रोटीन एवं इससे बने अन्य प्रोडक्ट की अधिक माँग है। इस व्यवसाय से भी आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मीठे पानी की खाद्य मछलियों के पालन–पोषण में वृद्धि करके कुपोषण से होने वाली भयानक बिमारियों से आम लोगों को बचाया जा सकता है तथा संतुलित आहार की अवधारणा को सार्थक बनाया जा सकता है। साथ ही प्रोटीन की कमी को दूर कर सकते हैं तथा इनकी खेती करके मनुष्य अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार भी सकता है। इनमें भविष्य में अनेक अवसर हैं।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कार्य कल्चर (कार्पपालन) अन्य मछली पालन की तरह यह भी बहुत उपयोगी है। इसमें रख–रखाव में कोई समस्या भी नहीं होती है इन्हें आसानी से पाला जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि जलशाला एवं इसका प्रबंधन करना अति महत्वपूर्ण होता जा रहा है क्योंकि इसका उपयोग घरों, ऑफिस, कालेजों एवं रिसार्ट, रेस्टोरेण्ट में सौन्दर्य प्रसाधनों के रूप में व्यापक रूप से लाया जा रहा है।

4.28 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **नीली क्रांतिः** जलीय स्थल में होने वाली खेती।
- **मत्स्य आखेटः** मछली पालने के छोटे छोट तालाब।
- **पोखरः** छोटा तालाब।
- **ज्वारनदमुखीयः** नदीयों एवं समुद्रीय छोर के मुहाने (संगम स्थल)
- **फ्राई एवं फिन्गर लिंग्सः** मछलियों के बच्चे।
- **स्कैम्पीः** झींगा अथवा खाद्य लोब्सटर (Lobster)
- **नेक्रेः** मोती की माता (स्रावण करने वाली कोशिकाएँ)।
- **मुक्ताः** मोती, कलमी : मोती का छोटा टुकड़ा या बूटी।
- **कॉन्थिओलिनः** एक प्रकार का अघुलनशील प्रोटीन।
- **ठण्डे रक्त (Cold blood):** तापमान अस्थिर (शरीर)
- **कृत्रिमः** बनावटी,
- **अण्डोद्भेदनः** अण्डों का फटना।

टिप्पणी

- **कायान्तरणः** लार्वा अवस्था पाया जाना (लार्वा से व्यूपा में – वयस्क में बदलता)
- **Homocircle Tail :** Candle fin are equal both lower and upper part.
- **विषम पूछ (Heterocircle Tail):** जिनके पूछ का एक हिस्सा छोटा तथा दूसरा हिस्सा बड़ा।

4.29 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Question and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (i) जल–कृषि का महत्व। (ii) जल–कृषि का विस्तार क्षेत्र।
   (iii) मोलस्का पालन। (iv) कोस्टल फिशरी।
   (v) जलाशय मत्स्य पालन। (vi) वाहित मलभोजी मत्स्य पालन।
   (vii) झील मत्स्य पालन। (viii) नदीय मत्स्य पालन।
   (ix) कैटफिश कल्चर। (x) मेंढक पालन।
   (xi) स्पंज पालन। (xii) प्रवाल पालन।
   (xiii) जल–संवर्धन की समस्याएँ।
   (xiv) जलीय संवर्धन के प्रकार एवं महत्व।
   (xv) जल–कृषि की सम्भावनाएँ।
2. भारत में पाये जाने वाले व्यावसायिक महत्व के झींगों के नाम लिखिए।
3. व्यावसायिक महत्व के झींगों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. स्वच्छजलीय झींगा संवर्धन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. झींगा को पालने के लिए उपयुक्त तालाब प्रबन्धन का वर्णन कीजिए।
6. झींगा के संवर्धन में काम आने वाले जालों पर टिप्पणी लिखिए।
7. झींगा के परिरक्षण एवं प्रसंस्करण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
8. झींगों के परजीवियों एवं बीमारियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
   (i) मत्स्यन जलयान (ii) मत्स्यन संभार,
   (iii) मत्स्यन विपाश, (iv) मत्स्यन जाल।
10. भारत में मोती शुक्तियों के वितरण पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
11. मोती उद्योग की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
12. मोती का संघटन देते हुए उसके आर्थिक महत्व का वर्णन कीजिए।

13. मोती की संरचना एवं उपयोग पर टिप्पणी कीजिए।
14. कलमी ऊतक व केन्द्रक को तैयार करना, केन्द्रक का निवेशन और शुक्तियों के पालन की विधि पर टिप्पणी कीजिए।
15. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–
    (i) जलांडक संग्राहक (Spat collections)
    (ii) हैचरी में जलांडकों की उत्पादन प्रक्रिया
    (iii) मोती निर्माण
    (iv) मोती के प्रकार।
16. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) राना टिग्रीना की जैविकी,
    (ii) टैंडपोल बोतल,
    (iii) संवर्धन और संभरण,
    (iv) मेंढक की लाल पैरों वाली बीमारी (Red-leg disease)
    (v) मेंढकों में उत्प्रेरित प्रजनन।
17. मेंढक संवर्धन पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
18. मेंढक संवर्धन हेतु आप तालाब का निर्माण किस प्रकार करेंगे? व्याख्या कीजिए।
19. मेंढक संवर्धन में प्रयुक्त होने वाली सावधानियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
20. लैबियो की किन्हीं 2 प्रजातियों का सचित्र वर्णन कीजिए।
21. कैट फिशेज (Cat fishes) की किन्हीं 2 प्रजातियों का चित्र सहित वर्णन कीजिए।
22. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) ऐनाबास (*Anabas*)। (ii) लेबियो।
    (iii) मुगिल (*Mugil*)। (iv) कटला (*Catla*)।
    (v) चन्ना (*Channa*)। (vi) वैलैगो (*Wallago*)।
    (vii) रीबा। (viii) बाटा।
    (ix) भारतीय अलवणीय जल की दीर्घ शफरे।
    (x) म्रिगला
23. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) मत्स्य–पालन के उद्देश्य तथा भारत में पाली जाने वाली मेंजर कार्प्स के जन्तु–वैज्ञानिक नाम लिखिए।
    (ii) मछलियों का पकड़ना (Harvesting of Fish)।

टिप्पणी

टिप्पणी

(iii) कार्प मछलियों की अन्य मछलियों पर उपरिता (Superiority)।

(iv) मछलियों की परिरक्षण विधियाँ।

(v) मत्स्यन विधियाँ (Fishing methods) या मछली पकड़ना (Harvesting)।

(vi) तालों की उर्वरकता (Fertility of Ponds)।

(vii) पालने योग्य (कृष्य) मछलियों के प्रमुख प्रकार एवं उनकी गुणवत्ता (Qualities)।

(viii) प्राकृतिक प्रजनन व उत्प्रेरित प्रजनन (ब्रीडिंग)।

(ix) कार्य–संवर्धन की कार्यविधि। (जबलपूर, 2005)

(x) मछली पकड़ने के जाल। (जबलपूर, 2005)

24. जलशाला का प्रबन्ध पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

25. निम्न में से किन्हीं दो पर टिप्पणी लिखिए–

(i) जलशाला टैंक, (ii) निस्यन्दक,

(iii) जलशाला मछलियाँ, (iv) जलीय पौधे।

26. जलशाला की बच्चे देने वाली मछलियों का प्रजनन आप किस प्रकार करायेंगे? समझाइए।

27. निम्नलिखित पर संक्षिप्त लेख लिखिए–

(i) जलशाला के प्रकार,

(ii) जलशाला सामग्री,

(iii) जलशाला में जल गुणवत्ता प्रबन्धन,

(iv) जलशाला निस्यन्दक,

(v) जलशाला प्रबन्धक।

28. जलीय जीवशाला की मछलियों एवं उनके अनुरक्षण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जल–कृषि की परिभाषा, विस्तार –क्षेत्र एवं महत्व का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. किन्ही पाँच प्रकार की फिशरीज (Fisheries) का वर्णन कीजिए।
3. जल–कृषि का महत्व समझाइये। समुद्री मत्स्यपालन एवं जलाशयी मत्स्यपालन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. जल–कृषि पर निबन्ध लिखिये।
5. मैक्रोब्रैकियम रोजेन्बर्गाई की पहचान के लक्षण देते हुए उसकी संरचना एवं जीवन चक्र पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

6. झींगा संवर्धन पर एक निबन्ध लिखिए।
7. स्वच्छजलीय झींगों के संवर्धन का विस्तृत वर्णन कीजिए।
8. व्यावसायिक महत्व के झींगों की प्रजातियों के नाम लिखिए एवं इनके संवर्धन का वर्णन कीजिए।
9. झींगा पकड़ने के काम आने वाले विभिन्न जालों एवं संभारों का वर्णन कीजिए।
10. झींगा मत्स्यन पर एक निबन्ध लिखिए।
11. झींगों के परिरक्षण एवं प्रसंस्करण पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
12. मोती संवर्धन पर या मोती उद्योग पर विस्तृत लेख लिखो।
13. भारत में मुक्ता संवर्धन पर निबन्ध लिखिए।
14. जलांडकों (Spats) के संचयन पर विस्तृत लेख लिखिए।
15. मोती शुक्तियों (Pearl oysters) के संवर्धन पर एक लेख लिखिए।
16. भारत में मोती संवर्धन का वर्णन कीजिए।
17. मोती संवर्धन का वर्णन कीजिए।
18. मोती उद्योग पर विस्तृत लेख लिखिए।
19. मेंढक पालन क्या है? अन्तः मेंढ़क पालन को समझाइए।
20. मेंढक की संवर्धित प्रजातियों के नाम देते हुए संवर्धन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
21. मेंढकों के अन्तर्कक्षीय संवर्धन पर लेख लिाखिए।
22. मेंढकों में प्रजनन पर एक लेख लिखिए।
23. मेंढक संवर्धन पर निबंध लिखिए।
24. मेजर कार्प्स का विस्तृत वर्णन कीजिए।
25. कोई मीठे जल में पाये जाने वाली खाद्य मछलियों का वर्णन कीजिए।
26. वायु में श्वास लेने वाली मछलियों का वर्णन कीजिए।
27. कैट फिशेज (Cat fishes) का सचित्र वर्णन कीजिए।
28. माइनर कार्प्स का सचित्र वर्णन कीजिए।
29. कार्प–पालन हेतु मछली फार्म की व्यवस्था पर एक निबन्ध लिखिए।
30. कार्प–पालन (Carp-Culture) पर एक तथ्यपरक लेख लिखिए।
31. मछलियों में प्रेरित प्रजनन (Induced breeding) के प्रकार तथा विधियों का वर्णन कीजिए।
32. जलशाला में रखी जाने वाली किन्हीं दस मछलियों के नाम देते हुए जलशाला स्थापन की विधि का वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

टिप्पणी

33. जलशाला किसे कहते हैं? जलशाला निर्माण हेतु आवश्यक सामग्री का वर्णन कीजिए।
34. जलशाला प्रबन्धन पर एक निबन्ध लिखिए।
35. जलशाला में पाली जाने वाली मछलियों के प्रजनन कराने की विधियों का वर्णन कीजिए।
36. जलशाला के स्थापन में जल की गुणवत्ता के महत्व पर प्रकाश डालिए।
37. जलशाला का वर्णन कीजिए तथा उसके रखरखाव को समझाइए।

4.30 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. Fundamental of Ecology by – E.P. Odum & G.W. Barret.
2. Ecology and Applied Zoology by – S.M. Saxena & Mukesh Dixit.
3. Unified text book Zoology by – J.K. Awasthi.
4. Ecology and Applied Zoology by – Shivesh Pratap Singh & H.N. Baijal.
5. A Text book of Applied Zoology of Apiculture, Sericulture, and their Pest control by – Pradip V. Jabde.
6. Aquaculture by – N. Arumugam.
7. Wild Life in Central India by – S.K. Tiwari.
8. Fish and Fisheries of India by – Jhingaran.
9. Fresh water Aquaculture by – R.S. Rath.
10. Ecology and Environmental Biology by – Pranav Kumar.
11. Ecology and Applied Zoology by – Himalaya Publishing House.

इकाई 5 आर्थिक कीट विज्ञान (Economic Entomology)

टिप्पणी

संरचना (Structure)

5.0 परिचय

5.1 उद्देश्य

5.2 रेशम उत्पादन करने वाले शलभ

5.3 शहतूत रेशम–कीट

- 5.3.1 रेशम ग्रन्थि तथा रेशम

5.4 रेशम उद्योग तथा इसका प्रबन्धन

- 5.4.1 रेशम–कीट की व्याधियाँ
- 5.4.2 रेशम कीट के शत्रु
- 5.4.3 रेशम के उपयोग

5.5 भारत में रेशम उद्योग

5.6 मधुमक्खी

- 5.6.1 मधुमक्खियों की प्रजातियाँ
- 5.6.2 मधुमक्खियों का सामाजिक संगठन

5.7 मधुमक्खी के उत्पाद

5.8 मधुमक्खी पालन

5.9 आधुनिक विधि से मधुमक्खी पालन हेतु आवश्यक उपकरण

- 5.9.1 छत्ते का प्रबन्धन
- 5.9.2 मधुमक्खियों की बीमारियाँ
- 5.9.3 मधुमक्खियों के शत्रू

5.10 भारत मे मधुमक्खी पालन

5.11 लाख कीट की वर्गीकृत स्थिति

- 5.11.1 लाख कीट की संरचना
- 5.11.2 जीवन वृत्त
- 5.11.3 पोषक पौधे

5.12 लाख

- 5.12.1 लाख के उपयोग
- 5.12.2 लाख कीट की किस्में एवं फसलें
- 5.12.3 लाख की खेती
- 5.12.4 लाख कीट के शत्रु
- 5.12.5 लाख के उपयोग एवं आर्थिक महत्व

5.13 भारत में लाख उद्योग

5.14 सीटोफिलस ओराइजे लिन्नेस

- 5.14.1 जीवन वृत्त

5.15 ट्राइबोलियम कैस्टेनियम हर्बस्ट

- 5.15.1 जीवन वृत्त

5.16 सब्जियों के पीडक

5.17 पियरिस ब्रेसिके लिन्नेस

- 5.17.1 जीवन चक्र

5.18 डेकस कुकरबिटे कॉक

- 5.18.1 जीवन वृत्त

टिप्पणी

5.19 तिलहन फसलों के पीड़क
5.19.1 तिलहन फसलों के प्रमुख पीड़क
5.20 कीटपीड़कों का जैविक नियन्त्रण
5.20.1 जैविक नियन्त्रण के आवश्यक तत्व
5.20.2 जैविक नियन्त्रण के कारक
5.20.3 जैविक नियन्त्रण की योजना
5.20.4 जैविक नियन्त्रण के प्रभाव
5.20.5 जैविक नियन्त्रण समस्याएँ
5.20.6 जैविक नियन्त्रण के लाभ
5.21 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.22 सारांश
5.23 मुख्य शब्दावली
5.24 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.25 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय (Introduction)

रेशम कीट– रेशम की खोज चीन में हुई। चीन के क्वांग–टी (Kwang-Ti) प्रान्त की राजकुमारी लोजू (Lotzu) ने 2697 ई. पूर्व रेशम कीट तथा रेशम की खोज की। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार रेशम की खोज चीन की साम्राज्ञी सी–लिंग (Si-Ling) ने आज से 4,000 वर्ष पूर्व तब की जब अचानक उनके हाथ से रेशम–कीट का कोकून गर्म चाय में गिर गया। गर्म चाय में गिरने से कोकून मुलायम हो गया और रेशम का धागा साम्राज्ञी की दृष्टि में आ गया। साम्राज्ञी के सम्मान में चीन में इसे सी (Si) नाम से जाना जाने लगा। प्रारम्भ में लगभग 1,500 वर्षों तक चीनियों ने रेशम उद्योग को पूर्णतया गुप्त रखा और इस गोपनीयता को बनाये रखने के लिए कानून का सहारा लिया। रेशम उद्योग की गोपनीयता को भंग करने वाले के लिए चीन ने कानून में मृत्युदण्ड का प्रावधान किया गया। इस प्रकार रेशम का एकमात्र उत्पादक होने के कारण चीन ने वर्षों सोने के भाव में रेशम का एकछत्र व्यापार किया। परन्तु 550 ई. में यूरोप के दो जासूसों ने साधुओं का वेश धारण करके चीन के रेशम उद्योग का निरीक्षण किया और तकनीकी जानकारी के साथ ही अपने साथ रेशम कीट का कोकून भी छिपाकर यूरोप ले आये। इस प्रकार इस्ताम्बुल (Istanbul) के कुस्तनतुनियां (Constantinople) शहर में प्रथम बार चीन से बाहर रेशम उद्योग की स्थापना हुई। धीरे धीरे विश्व के अन्य देशों में भी रेशम उद्योग फलने फूलने लगा। आज चीन के अतिरिक्त जापान, भारत, कोरिया, इटली, रूस, ब्राजील, ईरान तथा थाईलैण्ड में रेशम कीटों का पालन तथा रेशम उत्पादन किया जा रहा है। वर्तमान में विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 24 मिलियन किग्रा. रेशम का उत्पादन हो रहा है। जिसका 70 प्रतिशत भाग अकेले जापान उत्पादित कर रहा है।

भारत मे सर्वप्रथम लेफ्रॉय (Lefroy, 1905-1906) ने दिल्ली स्थित पूसा संस्थान (Pusa Institute) में रेशम–कीट पालन की आधारशिला रखकर रेशम उद्योग को दिशा दी। आज कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू, पश्चिम बंगाल, तथा

जम्मू–कश्मीर प्रान्त रेशम उद्योग के लिए जाने जाते है। इसके अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार तथा महाराष्ट्र प्रान्तों में भी विभिन्न स्थानों पर रेशम उद्योग एक लघु उद्योग के रूप में संचालित हो रहा है।

रेशम के व्यापारिक उत्पादन हेतु रेशम–कीटों के व्यापक पालन (Mass rearings) को रेशम उद्योग अथवा रेशम–कीट पालन (Sericulture) कहते हैं। रेशम के कीटों का गत हजारों वर्षों से इतना अधिक तथा विस्तृत पालन हुआ है कि आज ये बिना मानव देखभाल के नहीं रह सकते। शायद अब इनका मूल प्रजाति समूह भी नहीं बचा है। गुणवत्ता हेतू लगातार होने वाली विभिन्न चयन प्रक्रियाओं के कारण आज का रेशम कीट अपने पूर्वजों से काफी भिन्न हो गया है। वयस्क मॉथ भारी शरीर एवं कमजोर पंखों के कारण उड़ नहीं सकते तथा लार्वों में भोजन खोजने की क्षमता का ह्रास हो गया हैं यहाँ तक कि अगर भोजन इनके अत्यन्त नजदीक न रखा जाये तो ये भूखों मर जायेंगे।

मधुमक्खी :

PHY – ARTHROPODA

Class – INSECTA

Sub class – PTERYGOTA

ORD – HYMENOPTERA

Family – APIDAE

Genus – APIS

Species – Indica

मधुमक्खियों का उपयोग भारतीय सभ्यता में अतिप्राचीन काल से होता आ रहा है। मानव जाति की उत्पत्ति के पूर्व मधुमक्खियों में अधिक विकसित सामाजिक संगठन (Social organization) पाया जाता है। चूँकि मधुमक्खियों द्वारा शहद का उत्पादन (Production) किया जाता है। अतः इनका महत्व व्यापारिक रूप से अधिक है।

मानव शहद तथा मोम (Honey and Wax) का उपयोग अनादिकाल से करता रहा तथा इनका वर्णन वेद पुराण, महाभारत एवं रामायण आदि सभी ग्रन्थों में भी मिलता है। चरक संहिता (Charak Samhita) में चरक मुनि ने शहद के औषधीय गुणों का विस्तृत वर्णन किया है। शहद को पूर्णतः संतुलित आहार के रूप में माना जाता है। फाहियान Fahiyan तथा Whenson जेसे विदेशी पर्यटकों ने भी शहद के औषधीय गुणों का वर्णन किया है।

रामायण महाकाव्य के अनुसार तो महाराज सुग्रीव ने किष्किन्धा पर्वत पर मधुबन सम्पोषित कर रखा था जहाँ मधुमक्खियों के पालने एवं शहद निकालने की समुचित व्यवस्था थी। भारत में 2000 ईसा पूर्व से ही मधुमक्खी पालन संगठित रूप से किया जाता था। मिश्र (Egypt) में 663 ई.पू. की पिरामिडों पर मिली खुदाई से वहाँ पर होने वाले मधुमक्खी पालन के संकेत मिलते है। सन 1878 में रस के पोक्रोपोविक ने सर्वप्रथम मधुमक्खियों को पेटिकाओं में पालन में सफलता प्राप्त की।

इसी दौरान एल. एल. लैंग्स्ट्रॉय (L.L. Langstroth) जिन्हें अमेरिका में आधुनिक मधुमक्खी पालन का पिता कहा जाता है।

टिप्पणी

भारत में आधुनिक मधुमक्खी पालन की शुरुआत सर्वप्रथम 1884 में जॉन डगलस (John Doglus) ने की जो डाक एवं तार विभाग में एक कर्मचारी की हैसियत से कार्यरत थे। क्योंकि इन्होंने "Handbook of Bee Keeping" नामक एक पुस्तक भी लिखी।

न्यूटन को भारत की आधुनिक मधुमक्खी पालन का पिता माना गया है। न्यूटन की प्रेरणा से ही 1917 में ट्रॉवनकोर तथा 1925 में मैसूर में राजकीय स्तर पर मधुमक्खी पालन प्रारंभ किया गया।

उत्तरप्रदेश में 1938 में नैनीताल के ज्योलीकोट में राजकीय मधुमक्खीशाला की स्थापना हुई।

परिभाषा – शहद के व्यापारिक उत्पादन हेतू मधुमक्खियों के व्यापक पालन (Mass Rearing) को मधुमक्खी पालन (Apiculture) कहते हैं।

लाख :

लैक कल्चर यह लाख के कीडे (Lac Insect) द्वारा लाख प्राप्त करने की विधि है। जिसका अत्याधिक आर्थिक महत्व होता है। लाख एक रेजिनयुक्त स्राव है जिसको लाख कीट द्वारा अपने शरीर के चारों ओर रक्षात्मक आवरण के रूप मे उत्पादित किया जाता है। ये लेसीफर लक्का या टैकार्डिया जीनस के अंतर्गत आता है। लेसीफर लक्का भारत का एक सामान्य लाख कीट है। यह अंजीर कुल के पेडों पर रहते है।

लाख सामान्य शब्दों में कहा जाय तो वास्तव में यह एक रालदार (Resinous) पदार्थ है जो लाख कीट द्वारा स्रावित किया जाता है। इसका ज्ञान मानव को अतिप्राचीन समय से ही है। इस बात का प्रमाण अथर्वेद (Athravaveda) में भी मिलता है। जिसमें लाख कीट को लाक्षा (Laksha) नाम से वर्णित किया गया है। लाक्षा एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है एक लाख जो संभवतः इस कीट की व्यक्तिगत संख्या के आधार पर रखा गया था। इसे हिन्दी में लाख और अंग्रेजी में लैक (Lac) नाम से जाना जाता है।

आज से लगभग 5,000 वर्ष पूर्व महाभारत काल में लाख की बहुत बढ़िया पैदावार होती थी। तथा कौरवों द्वारा लाक्षाग्रह निर्माण संभव हो सका। अबुल फज़न 1590 ने भी अपनी पुस्तक आइने–अकबरी (Aine-E-Akbari) में लाख का वर्णन किया है। लाख तथा लाख कीट के बारे में प्रथम वैज्ञानिक कीर व गिलोवर (Keer and Gilovar) ने अपनी रिपाटरी 7821 में प्रस्तुत की थी जिसमें लाख कीट कोकस लैक्का (Coccus Lacca) नाम दिया गया था।

बाद में इस कीट का नाम लैखीफ (laccofer lacca) लैक्का रखा गया। अन्त में चटर्जी व ग्रीन (Green, 1922) ने इसे फादर टैकार्ड़ के सम्मान में टैकाडिया लैक्का नाम दिया गया। लाख कीट को कई अन्य नाम भी दिये गये

जैसे लाक्षादिया इंडिका (Lakshadia indica) करिया लाक्का, कार टेरिया लाक्का आदि परन्तु भारत में लैसीफर (लक्का) Laccifer Lacca नाम को ही सर्वाधिक महत्व या मान्यता दी गई।

टिप्पणी

परिभाषा (Definition)

''लाख के व्यापारिक उत्पादन के लिए लाख कीटों के व्यापक पालन–पोषण (Mass-Rearing and Nutrition) को लाख संवर्धन (Lac culture) कहते हैं।''

कीटः

कीट मनुष्य के सबसे बडे शत्रु होतें हैं, वे फसलों के पकने से पहले ही व बाद में उसे नष्ट कर देते हैं। यह नुकसान अनाजों की संख्या पर ही नही अपितु उसकी गुणवत्ता पर भी प्रभाव डालते है। सम्पूर्ण (भारत में) या विश्व की 3/4 भाग से अधिक भाग कींटों से भरा हुआ है। जो ये सभी जन्तु फाइलम आर्थ्रोपोडा संघ की Insecta class (वर्ग) के अंतर्गत आते है। इसी कारण आर्थ्रोपोडा विश्व का सबसे बडा संघ माना जाता है। इन अनाजों के नुकसान की भरपाई करने के लिए आज बहुत सारे जरूरी तथा उपयोगी रसायन उपलब्ध हैं।

एक अनुमान के अनुसार, रोगजनक कीट वर्ष भर में हमारी फसलों पर 1600 करोड़ का प्रभाव डालतें हैं। भारतवर्ष में आकडों के अनुसार, चुहे, कीट तथा सूक्ष्मदर्शी जीव 10 प्रतिशत –15 प्रतिशत फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। जो 50 मिलियन लोगों के लिए संख्या में भरपूर अनाज है। इसलिए यह जरूरी है कि अनाजों का संग्रह तभी किया जाना चाहिए जब कींटो का आक्रमण न हुआ हो। कभी–कभी इन रोग जनकों को नष्ट करने के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से पीड़कों को मारने के लिए कीटनाशी या पीड़क नाशियों का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में हमारी फसलों को मार देते है जिसके कारण इन्हे पीड़कनाशी कहते हैं। वर्तमान में अनेक प्रकार की अथवा भिन्न–भिन्न फसलों को नुकसान से बचाने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के पीड़कनाशियों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

वैसे तो कीटों की 100 से अधिक प्रजातियाँ भण्डारित अनाजों को नुकसान पहुँचाती है जिसमें लगभग 17 प्रजातियाँ भारी क्षति पहुँचाती है। कुछ संग्रहित अनाजों के पीड़कों की सूची (सारणी में क्र. 5.3) दी गई है परन्तु पाठ्यक्रम को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत अध्याय में केवल तीन पीड़कों का ही वर्णन किया जा रहा है।

जैविक नियन्त्रण (Biological control) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम स्मिथ (Smith) ने 1919 में किया परन्तु इस दिशा में कार्य वर्षों पूर्व से प्रारंभ हो चुका था। पुरातन या प्राचीन काल में एशिया के कई देशों में बागों एवं भण्डारित खाद्यान्नों के हानिकारक कीटों को नियंत्रिक करने के लिए चीटियों (Ants) का प्रयोग किया जाता रहा है। परन्तु जैविक नियन्त्रण का वास्तविक प्रमाण सर्व प्रथम वैलिसनियेराई (Vallisnieri) नें 1706 में दिया जब उन्होंनें यह बताया कि ब्रैकोनिड, एपैण्टेलिस ग्लोमरेटस वन्दगोभी के कैटरपिलर पर परजीवी है।

टिप्पणी

कृषि–फसलों, कृषि–उत्पादों, जन्तु–उत्पादों एवं अन्य मानवोपयोगी वस्तुओं को क्षति पहुँचाने या उन्हें नष्ट करने वाले कीटों (Insects) को पीड़क (Pests) कहा जाता है। इन कीट–पीड़कों को उनके प्राकृतिक शत्रुओं व उनके प्रभावों द्वारा नियन्त्रित करना जैविक नियन्त्रण (Biological control) कहलाता है। अर्थात् जीवधारियों द्वारा कीट–पीड़कों के नियन्त्रण को जैविक नियन्त्रण कहते हैं। जैविक नियन्त्रण के अन्तर्गत कीट–पीड़कों की आबादी में उनके प्राकृतिक शत्रुओ कें एक परभक्षी (Predaceous) एवं परजीवी (Parasitic) कीटों तथा अन्य जन्तुओं अथवा रोगजनक जीवधारियों को प्रवेशित (Introduce) कराकर, उन्हें बढ़ावा (Encouragement) देकर अथवा कृत्रिम रूप से उनकी संख्या पर कीट–पीड़कों को नियन्त्रित करना शामिल है।

स्पष्ट है कि जैविक नियन्त्रण सैद्धान्तिक रूप से प्राकृतिक नियन्त्रण प्रक्रिया है जिसमें और अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करने हेतु पीड़कों के प्राकृतिक शत्रुओं के हेर–फेर (Manipulation) में मानव की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रकृति में जैविक नियन्त्रण की एजेन्सियों मे ंसे पादपभोजी कीट–पीड़कों को सन्तुलित करने हेतु कीट–शत्रु (Insect enemies) ही विशेषतः महत्वपूर्ण भूमिका में आते है। वर्तमान समय में अनुप्रयुक्त पारिस्थितिकी (Applied Ecology) के क्षेत्र में जैविक नियन्त्रण विधियों पर किये जाने वाले अध्ययनों ने नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। जैविक नियन्त्रण का सम्बन्ध उन पर्यावरणी कारकों से है, जो पीड़क समष्टि (Population) के नियन्त्रण तथा स्थिरीकरण में प्रभावकारी भूमिका निभाते हैं।

अतः जैविक नियन्त्रण में अति आवश्यक तत्वों में किसी प्रजाति के पीड़क स्तर (Pest status) का निर्धारण करना तथा किसी को पीड़क समष्टि के स्थायित्व को हानिरहित सीमा तक कम करने वाले पूर्व–जैविक उपायों की पूर्ण जानकारी प्राप्त करना शामिल है। इस प्रकार, जैविक नियन्त्रण प्रोग्राम की सफलता हेतु पीड़कों के प्राकृतिक शत्रुओं की उत्पत्ति, उनके वितरण, आवासों, व्यवहार व जीवनचक्र (Life cycles) की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के साथ–साथ उनकी वर्गीकरण स्थिति (Systematic position) का आकलन करना भी आवश्यक होता है।

5.1 उद्देश्य (Objectives)

Economic Entomology जीव विज्ञान की ऐसी शाखा है जिसके अंतर्गत आर्थिक महत्व रखने वाले कीटों का पालन–पोषण किया जाता है।

इसके कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- Economic Entomology के अंतर्गत निम्नलिखित कीटों को कल्चर किया जाता है एवं उनका पालन पोषण किया जाता है। जैसे–
  - (i) रेशम कीट पालन/रेशम संवर्धन (Sericulture)– इसका प्रमुख उद्देश्य रेशम का उत्पादन करना, रेशम के उद्योगों की स्थापना करना तथा रेशम कीट पालकों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने

में, रोजगार के नये आयाम उपलब्ध करवाना आदि। कपड़ा उद्योगों, कारखानों के निर्माण करने में सहायक सिद्ध करने में;

(ii) मधुमक्खी पालन (Apiculture)– इसका प्रमुख उद्देश्य शहद प्राप्त करना, व्यापारिक लाभ कमाना, शहद एवं इसके उजाड़, मोम आदि से विभिन्न प्रकार की औषधियों को तैयार करने में, घरेलू खाद्य सामग्री बनाने में, व्यापारिक दृष्टिकोण से पालन पोषण किया जाता है।

(iii) LAC culture– लाख उत्पादन करना, आभूषणों के (लाख संवर्धन) निर्माण में, सौंदर्य प्रसाधनों के रूप में इस उद्योग का बड़े पैमाने पर लाख का पालन–पोषण एवं कल्चर किया जाता है। वार्निश, पेण्टिंग के रूप में, चूडी बनाने वाले कारखानों के रूप में लाख उत्पादन का महत्व अधिक हो जाता है।

(iv) मोती संवर्धन (Pearl culture)– इसका प्रमुख उद्देश्य– मोती का निर्माण करना, सजावट के रूप में, आभूषणों, खिलौने आदि के रूप में आभूषण उद्योगों में एवं सजावट के रूप में प्रयोग किया जाता है।

- यद्यपि कीट हमारे लिए लाभदायक होते हैं लेकिन कुछ कीट हमारे लिए नुकसानदायक सिद्ध होते है। जो कि पीड़क (Pests) कहलाते महत्वपूर्ण हैं। ये विभिन्न प्रकार के होते हैं, किन्तु यहाँ पर दो प्रकार के पीड़क हैं–

  अनाज के पीड़क– (Stored grain Pest)– ये कॉमन पीड़क की श्रेणी में आते हैं जो कि हमारे घरेलू होते है तथा ये गेहू, चावल, दाल आदि अनाजों में पाये जाते हैं। जिनका उद्देश्य अनाजों को नष्ट होने से बचाना है।

  सब्जी के पीड़क (Vegetable Pest)– ये भी common Pest की श्रेणी में आते हैं– ये हमारी सब्जी वाली फसलों को नष्ट कर देते हैं।

  Pest के control के लिए– Pesticides, Pest control Management System का प्रयोग किया जाता है।

- Biological control of insect Pest– कीटनाशकों को जैविक नियंत्रण के द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

- Pesticides, Insecticides, एवं Agriculture में उपयोग होने वाले विभिन्न के शारनाशी (Hesticides, fugicides) का समुचित मात्रा में उपयोग करने के लिए नियमों का पालन करना पड़ता है।

- अतः व्यवहारिक जीव विज्ञान हमारे जीवन से काफी घनिष्ठता से जुड़ें रहते हैं। जिन्हें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सामना करना पड़ता हैं। तथा हमारे व्यवसाय, रोजगार, तथा जीविता से जुड़े रहते हैं।

टिप्पणी

5.2 रेशम उत्पादन करने वाले शलभ (Silk Producing Moths)

सभी शलभ वर्ग–इन्सेक्टा (Class-Insecta) के गण –लेपिडोप्टेरा (Order-Lepidoptera) के अंतर्गत आते हैं। ये हल्के रंग के रात्रिचर (nocturnal) कीट हैं जो बैठते समय अपने पंखों को फैलाये रखते है तथा इनकी श्रृंगिका (Antenna) द्विकघाकार (Bipectinate) होती है। रेशम का उत्पादन इन्हीं शलभों के कैटरपिलर (Caterpillar) द्वारा अपने चारों ओर कोया या कोकून (Cocoon) बनाने के लिए किया जाता है। शलभों की निम्नलिखित 5 प्रजातियाँ से रेशम का व्यापारिक स्तरपर उत्पादन किया जाता है –

1. शहतूत–रेशम कीट, **बॉम्बिक्स मोराई** (Mulberry silkworm, *Bombyx mori*)
2. टसर रेशम–कीट, **एन्थेरिया पेफिया** (tassar silkworm, *Antheraea paphia*)
3. मूंगा रेशम – कीट, **एन्थेरिया आसामेन्सिस** (Muga silkworm, *Antheraea assamensis*)
4. एरी रेशम– कीट, **फिलोसेमिया रिसिनाई** (Eri silkworm, *Philosamia ricini*)
5. एटलस रेशम–कीट, **एटेकस एटलस** (Atlas silkworm, *Attacus atlas*)

1. शहतूत– रेशम कीट, बॉम्बिक्स मोराई (Mulberry Silkworm, Bombyx mori)

संघ (Phylum) – आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)

वर्ग (Class) – इन्सेक्टा (Insecta)

उप–वर्ग (Sub-class) – टेरीगोटा (Pterygota)

गण (Order) – लेपिडोप्टरा (Lepidoptera)

कुल (Family) – बॉम्बीसिडी (Bombycidae)

यह मुख्य रेशम कीट है। मूल रूप से यह चीन मे पाला जाता था। परन्तु आज विश्व के प्रायः सभी रेशम उत्पादक देश इसे पालकर रेशम प्राप्त कर रहे हैं। भारत में कश्मीर, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बंगाल, कर्नाटक तथा तमिलनाडू प्रान्तों में यह कीट पाला जा रहा है। शहतूत, **मोरस अल्बा** (Mulberry, *Morus alba*) इसके कैटरपिलर का प्राकृतिक भोजन है इसीलिये इसे शहतूत रेशम कीट (Mulberry silkworm) कहते है। तथा इसके द्वारा स्रावित रेशम को शहतूत रेशम (Mulbery silk) कहते है। शहतूत रेशम सफेद रंग का होता है।

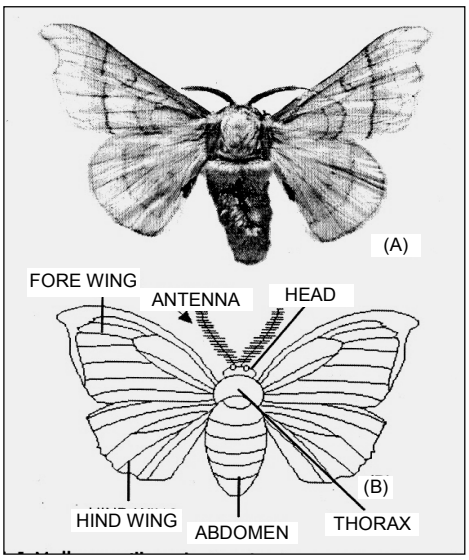

चित्र क्र. 5.1: Mulberry silkmoth, Bombyx mori : (A) photograph and (B) diagram

2. टसर रेशम–कीट, एन्थेरिया पेफिया

(Tassar Silkworm, *Antheraea paphia*)

गण (Order) : लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera)

कुल (Family) : सैटरनिडी (Saturniidae)

ये जंगली रेशम कीट हैं। जिन्हें पालना अत्यन्त कठिन कार्य है अतः इनके कैटरपिलर को जंगलों से एकत्र किया जाता है। ये कीट मुख्यतया भारत, चीन श्रीलंका तथा मलेशिया के कुछ भागों मे पाये जाते हैं। भारत में यह उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले में, असम, पश्चिम बंगाल, आंध्रप्रदेश तथा मध्यप्रदेश के जंगलो में पाया जाता है। यह प्रजाती वर्ष में एक या दो पीढ़ियाँ ही देती है। वयस्क के पंखों का विस्तार (Wing span) 140–190 मिमी. तक होता हैं। इसके कैटरपिलर बेर, **जिजीफस जुजूबा** (*Zizyphus jujuba*), साल, **शोरिया रोबस्टा** (*Shorea robusta*), अर्जुन, **टर्मिनेलिया अर्जुना** (*Terminalia arjuna*), असन **टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा** (*Terminalia tomentosa*) तथा अंजीर, **फाइकस कैरिका** (Fig. *Ficus carica*) आदि पेड़ों की पत्तियों को खाते हैं। इसका कोया (Cocoon) बड़ा एवं कड़ा होता हैं। जिससे रेशम के धागे को निकाला (Reelable Cocoon) जा सकता हैं। यह रेशम ताम्बई (Coppery) या भूरे (Brown) रंग का होता है। चूँकी इस रेशम–कीट के वयस्कों एवं कैटरपिलर को पालना बहुत कठिन हैं अतः टसर रेशम उद्योग उतना विकसित नहीं हो सका जितना शहतूत रेशम उद्योग विकसित हुआ है।

टिप्पणी

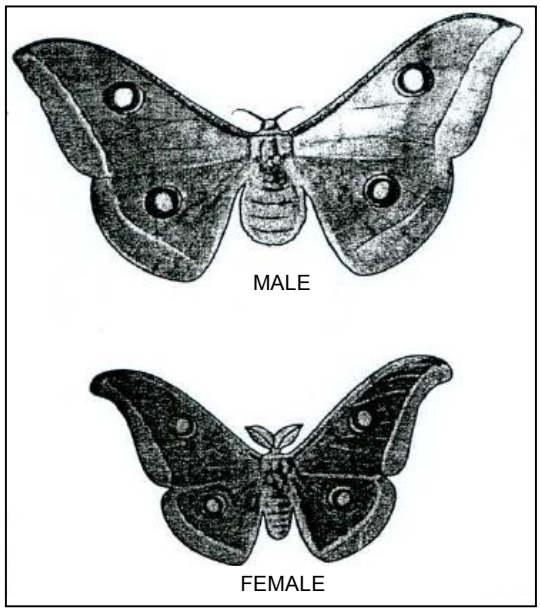

चित्र क्र. 5.2: Antheraea paphia (Male and Female)

3. मूगा रेशम–कीट, एन्थेरिया आसामेन्सिस (*Muga Silkworm, Antheraea assamensis*)

गुण (Order) : लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera)

कुल (Family) : सैटरनिडी (Saturnidae)

ये जंगली तथा अर्द्धपालित (Semi-domesticated) रेशम–कीट हैं। यह मूल रूप से असम का निवासी हैं। ये कीट एक वर्ष मे अधिकतम पाँच पीढियाँ देते हैं। इसके कैटरपिलर सोम, **मैकिलस बॉम्बीसिना** (Som, *Machilus bombycina*), स्वालू, **लिट्सिया पॉलीएन्था** (Soalu, *Litsaea, Polyantha*) तथा सिनैमॉन (Cinnamon) पेड़ों की पत्तियों को खाते है। वयस्क कीट के पंखों का विस्तार 150–170 मिमी. होता है। वयस्क शलभ के अगले पंख मे पाया जाने वाला काँटा इन्हें कोया से बाहर निकलने में मदद करता है। इनके कैटरपिलर सफेद या अम्बर कोया (Cocoon) बनाते है। जिससे सफेद या पीले रंग का रेशम प्राप्त होता हैं। चूँकी मूगा रेशम–कीट की कोया उत्पादकता कम होती है अतः इस रेशम–कीट को पालना आसान नही है।

4. एरी रेशम–कीट, फिलोसेमिया रिसीनाई (*Eri Silkworm, Philosamia ricini*)

गण (Order) : लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera)

कुल (Family) : सैटरनिडी (Saturniidae)

इस कीट को **अटेकस रिसिनाई** (*Attacus ricini*) के नाम से भी जाना जाता है। भारत में यह असम, बंगाल, बिहार, ओडिशा तथा मणिपुर मे पाला जाता है। परन्तु असम में यह कीट प्राकृतिक रूप से बहुतायत में मिलता है। ये रेशम कीट प्रतिवर्ष अधिकतम पाच पीढ़ियाँ देती हैं। इसके कैटरपिलर का मुख्य भोजन

अरण्डी, **रिसिनस कम्यूनिस** (Castor, *Ricinus communis*) का पत्तियाँ हैं इसलिये इसके द्वारा उत्पादित रेशम को अरण्डी रेशम (Castor silk) भी कहते हैं। अरण्डी के अतिरिक्त इसके केटरपिलर कसेरु हेटरोपनैक्स (Kasseru, Hetropanax fragrans), कसावा, मैनीहॉट यूटिलिसी, पपिता, **कैरिका पपाया** (Papaya, *Carica papaya*) आदि की पत्तीयों पर भी पाले जा सकते हैं। वयस्क शलभ के पंख चाकलेटी या काले रंग के होते हैं। जिन पर सफेद अर्धचन्द्राकार निशान पाये जाते हैं। पंखो का विस्तार 136–144 मिमी. होता है। कैटरपिलर हरे रंग के होते हैं जिन पर काली या नीली गुलिकाएँ (Tubercles) पायी जाती है। इसके कोया (Cocoon) से रेशम के धागे को खोला नहीं जा सकता (Non-reelable cocoon) अतः इससे धागे को काता जाता है (Spun silk)। ये रेशम दूधिया रंग का होता है।

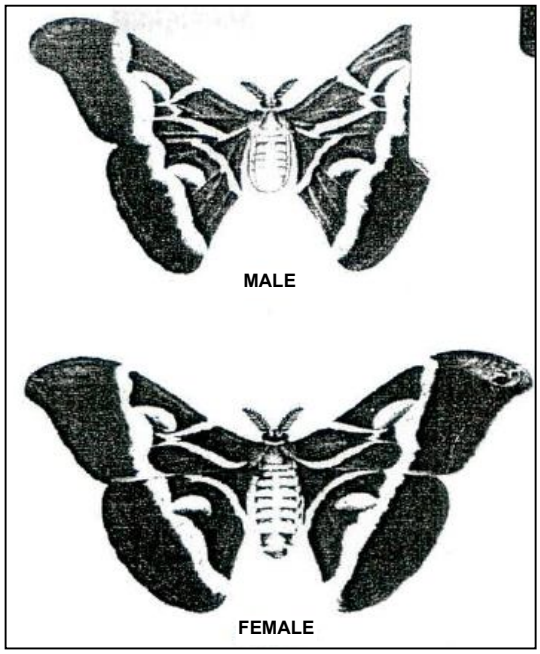

चित्र क्र 5.3: Philosamia ricini

5. एटलस रेशम–कीट, एटेकस एटलस (Atlas Silkworm, *Attacus atlas*)

गण (Order) : लेपिडोप्टेरा (Iepidoptera)

कुल (Family) : सैटरनिडी (Saturniidae)

यह रेशम–कीट सबसे बड़े आकार का कीट है। जिसका पंख विस्तार 270 मिमी. (10) लगभग $10\frac{1}{2}$ इंच) होता हैं। इसके पंख काले–लाल रंग के होते है। जिस पर अनेक प्रकार के सफेद तथा रंगी निशान पाये जाते है। मूल रूप से यह दक्षिणी एशिया तथा मलेशिया मे पायी जाने वाली प्रजाती है। इसके कैटरपिलर दारूहल्दी (Barberry), दालचीनी (Cinnamon) तथा भिसा (Willow) पेड़ों की पत्तियों को खाते हैं। कैटरपिलर धूसर, मोटा कोया बनाते है जो एक सिरे पर खुला रहता है। इससे निकला रेशम धूसर रंग का होता है ।

टिप्पणी

हालांकि उपर्युक्त वर्णित प्रजातियों के अतिरिक्त अन्य कई प्रजातियाँ भी रेशम उत्पादन करती हैः– जैसे– देवमूगा रेशम–कीट, **थियोफिला रेलीजिओसी** (Deomuga silkworm, *Theophila religiosae*), ओक रेशम–कीट, **एन्थेरिया यामामाई** (Oak silkworm, *Antheraea yamamai*) तथा **एन्थरिया परनायी** (*Antheraea pernyi*) आदि। परन्तु सामान्यतया केवल चार प्रजातियों का ही उपयोग रेशम उद्योग के लिए किया जाता है। ये प्रजातियाँ हैं– **बॉम्बिक्स मोराई** (*Bombyx mori*), **एन्थेरिया पेफिया** (*Antheraea paphia*), **एन्थेरिया आसामेन्सिस** (*Antheraea assamensis*) तथा **फिलोसेमिया रिसिनाई** (*Philosamia ricini*)।

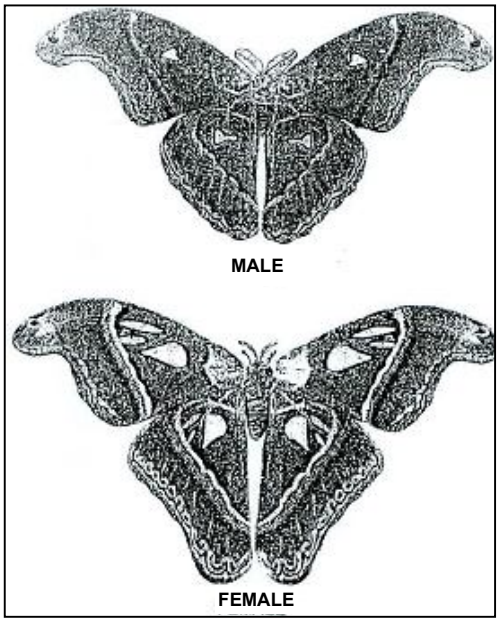

चित्र क्र. 5.4: Attacus atlus

5.3 शहतूत रेशम–कीट (Mulberry Silkworm)

यह पूर्णतया पालतू कीट है। एशिया के मूल निवासी इस रेशम–कीट को गत हजारो वर्षों में इतना अधिक पाला गया है कि आज यह बिना मानव देखभाल के जीवित नहीं रह सकता। लगातार चयन एवं संस्करण (Selection and hybridization) करके मानव ने इसकी कई प्रजातियाँ (Races) विकसित कर ली हैं जो एक वर्ष में 2 या 7 पीढ़ियाँ देती हैं जिन्हें निम्नलिखित तीन श्रेणीयों में बाँटा गया है –

1. **एक प्रज प्रजाति (Univoltine Race)**– एक वर्ष में एक पीढ़ी या फसल (crop) देती है।
2. **द्विप्रज प्रजाति (Bivoltine Race)**– एक वर्ष मे दो पीढ़ियाँ या फसल देती है।

जीवनवृत्त (Life History)– शहतूत रेशम–कीट, **बॉम्बिक्स मोराई** (Mulberry silkworm, *Bombyx mori*) के वयस्क शलभ 2.5–4 सेमी लम्बे, सफेद

अथवा मखनियाँ (Creamy) रंग के होते हैं तथा इनका पंख विस्तार (wing span) 40–44 मिमी. होता है। शरीर मोटा तथा मजबूत होता है परन्तु पंख कमजोर होते हैं अतः ये उड़ नहीं सकते। नर मादा शलभ से छोटा होता है। नर का उदर लम्बा तथा सँकरा होता है जबकि मादा का उदर मोटा होता है। वयस्क शलभ भोजन नहीं करते। इनका जीवन काल (life span) 2–3 दिन का होता है।

मैथुन, निषेचन तथा अण्ड निक्षेपण (Copulation, Fertilization and Oviposition)– नर तथा मादा कोकून या कोया से बाहर आने (Emergence) के तुरन्त बाद मैथुन करते हैं। मैथुन के समय नर तथा मादा विपरीत दिशा से आकर अपने उदर के अन्तिम सिरे से एक दूसरे से जुड़ जाते हैं और 2–3 घण्टे तक इसी अवस्था में बने रहते है। यदि मैथुन के बाद नर एवं मादा अलग अलग नहीं होते तो दोनो की मृत्यू हो जाती है। सामान्यतया मैथुन के बाद नर मादा के अलग होते ही नर शलभ की मृत्यू हो जाती है। कुछ समय बाद मादा अण्डे देना प्रारम्भ करती है तथा अण्डे देने (Oviposition) के बाद मादा शलभ की भी मृत्यु हो जाती है। निषेचन आन्तरिक होता है। एक मादा 300–500 अण्डे देती है। अण्डों की संख्या जलवायु पर निर्भर करती है। मादा अपने अण्डों को पत्तियों की ऊपरी सतह पर चिपका देती है।

अण्डे (Eggs)– अण्ड़ों को रेशम बीज (Silk seed) कहते हैं। प्रारम्भ में अण्डों का रंग सफेद होता है। परन्तु जैसे–जैसे अण्ड निक्षेपण बढ़ता जाता है, अण्डों का रंग गहराता चला जाता है। करीब 2.000 अण्डों का भार 1 ग्राम होता है अर्थात् एक अण्डे का वजन लगभग 0.5 मिग्रा. होता है। अण्डें दो प्रकार के होते हैं– उपरति (Diapause) प्रकार तथा अनुपरति (Non diapause) प्रकार। उपरति प्रकार के अण्डें ठण्डे वातावरण वाले क्षेत्रों में दिये जाते हैं। जबकि अनुपरति प्रकार के अण्डे गर्म क्षेत्रों में दिये जाते हैं। उपरति में अण्डे की सभी जीवमूलक क्रियाएँ (Vital activities) अति सूक्ष्म स्तर पर होती है।

अण्डोद्भेदन (Hatching)– एकप्रज प्रजाति (Univoltine race) में अण्डें मई जून के महीने में दिये जाते हैं। जो फरवरी माह तक सुप्तावस्था में रहते हैं। अतः तब तक इन्हें 4.4°C तापक्रम पर या पहाड़ों के ठण्डें वातावरण में रखा जाता है। फरवरी–मार्च में जब तापक्रम लगभग 18°C हो जाता है तब अण्डोद्भेदन होता है। द्विप्रज अथवा बहुप्रज प्रजाति में 10–18 दिनों की उद्भवन अवधि (Incubation period) के बाद अण्डोद्भेदन होता है। अण्डोद्भेदन के परिणामस्वरुप अण्डे से 3–4 मिमी लम्बा लार्वा निकलता है। जिसे कैटरपिलर (Caterpillar) कहते है।

कैटरपिलर (Caterpillar)– अण्डोद्भेदन के परिणामस्वरुप अण्डे से निकला कैटरपिलर हल्के पीले तथा खुरदुरे शरीर वाला लार्वा होता है। लार्वा के सिर पर एक जोड़ी सूक्ष्म श्रृंगिकाएँ (antennae), 2 जोड़ी साधारण नेत्र (Simple eyes) तथा काटने एवं चबाने वाले मुखांग (Mandibulate mouth parts) पाये जाते है। मुखांगों में लेबियम (Labium) पर रेशम का धागा बनाने वाले स्पिन्नरेट (Spinneret) पाये जाते हैं। प्रथम इंस्टार (Instar) लार्वा के मुखांग पूर्ण विकसित

तथा मजबूत नहीं होते अतः यह केवल कोमल, मुलायम नई पत्तियों को ही खा सकता है।

टिप्पणी

वक्ष (Thorax) तीन खण्डों का बना होता है। तथा प्रत्येक खण्ड पर एक जोड़ी पाद (Legs) पाये जाते है। अग्रवक्ष (Prothorax) थोड़ा बड़ा होता है जिसके पार्श्व पर एक जोड़ी श्वासरन्ध्र (Spiracles) स्थित होते हैं। उदर 10 खण्ड़ों का बना होता है। तीसरे से लेकर छठे तथा अन्तिम उदर खण्डों में एक–एक जोड़ी प्रपाद (Prolegs) पाये जाते हैं। प्रत्येक प्रपाद पर चूषक का कार्य करने वाले क्रोचेट्स (Crochets) पाये जाते हैं। प्रथम आठ उदर खण्डों के पार्श्व भाग पर एक–एक जोड़ी श्वासरन्ध्र स्थित होते हैं तथा आठवें खण्ड के पृष्ठ भाग पर एक पृष्ठीय सींग (Dorsal horn) पाया जाता है। कैटरपिलर अतिभक्षक (Voracious) होते हैं तथा अपने वजन से कई गुना अधिक खाते हैं एवं तीव्रता से वृद्धि करते हैं। प्रथम इंस्टार लार्वा 4 बार निर्मोचन करके क्रमशः द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम इंस्टार लार्वा में परिवर्तित हो जाता है। अण्डोद्भेदन से लेकर पंचम इंस्टार लार्वा बनने में 30–45 दिन का समय लगता है। यह अवधि ताप, आर्द्रता (Humidity) भोजन की उपलब्धता एवं प्रजाति (Race) पर निर्भर करती है। पूर्ण विकसित पंचम इंस्टार लार्वा लगभग 7.5 सेमी लम्बा होता है। तथा इसका वजन 4–6 ग्राम तक होता है। इसमे पूर्ण विकसित लार ग्रन्थि पायी जाती है।

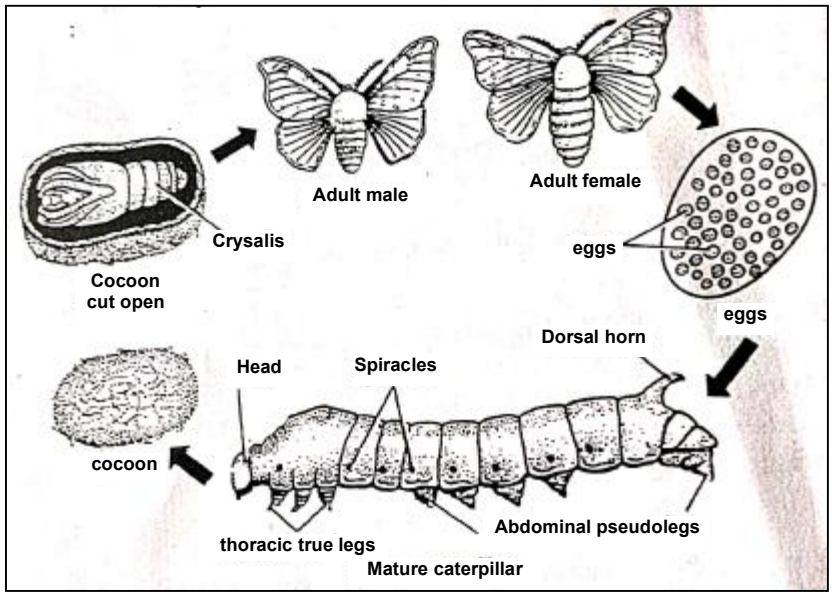

चित्र क्र. 5.5: Life cycle mulberry silk worm

प्यूपा (Pupa)– पूर्ण विकसित कैटरपिलर शीघ्र ही भोजन करना बन्द कर देते हैं, तथा पत्तियों में दुबककर प्यूपा में परिवर्तित हो जाते है। इस समय कैटरपिलर अपनी रेशम ग्रन्थियों (जो कि परिवर्तित लार ग्रन्थियाँ होती हैं से एक द्रव स्रावित करते हैं। यह द्रव लेबयिम पर स्थित स्पिन्नरेट (Spinneret) के द्वारा रेशम के धागे के रूप में बाहर निकलता है जो वायु के सम्पर्क मे आते ही सूख जाता है। इसी धागे को कैटरपिलर अपने चारों ओर लपेट कर कोया या कोकून (Cocoon) का निर्माण करता है। प्यूपा अवस्था 12–16 दिन की होती है।

कोया (Cocoon)– सफेद रंग का कोया 1,000 – 2,000 मीटर लम्बे रेशम के एक ही धागे का बना होता है। यह धागा समकेन्द्रीय ढंग से कोया मे लिपटा रहता है। कैटरपिलर अपने सिर को 65 बार प्रति मिनट की दर सें घुमाकर अपने चारों ओर रेशम के धागे के समकेन्द्रीय छल्ले (Concentric rings) बनाकर कोये (Cocoon) का निर्माण करता है। इस प्रकार 2–3 दिन के अन्दर कोया बनकर तैयार हो जाता है। इसी के साथ कैटरपिलर निष्क्रिय प्यूपा में बदल जाता है। पूर्ण विकसित प्यूपा 2.5–4 सेमीं लम्बा तथा कोया 6–8 सेमी लम्बा होता है। प्यूपा सहित कोये का वजन 1.9 – 2.4 ग्राम होता है। जबकि केवल कोये का वजन लगभग 0.5 ग्राम होता है। एक पाउण्ड (0.45 किग्रा) रेशम प्राप्त करने के लिए लगभग 2,500 कोये की आवश्यकता होती है। रेशम के धागे का आकार 2.0–2.8 डेनियर (Denier) होता है।

पूर्ण कीट निर्गमन (Emergence of Imago)– प्यूपा अवस्था में कायान्तरण (Metamorphosis) होता है जिसके दौरान उदरीय प्रपाद (Abdominal prolegs) विलुप्त हो जाते हैं तथा वक्ष पर एक जोड़ी पंख निकल आते है। काटने तथा चबाने वाले (Mandibulate) मुखांगों के स्थान पर सायफनिंग (Siphoning) मुखांग बन जाते है। इस प्रकार से बना वयस्क शलभ कोकून के अग्र सिरे पर एक क्षारीय द्रव स्रावित करता है जिससे उस स्थान पर रेशम के धागे गल जाते हैं और एक छोटा सा गोल छिद्र बन जाता है। इसी छिद्र से वयस्क शलभ बाहर निकल आता है। इस क्रिया में रेशम के धागे छोटे–छोटे टुकड़ों में बँट जाते हैं अतः रेशम के धागे को एक ही अंश (Single piece) में प्राप्त करने के लिए पूर्ण कीट के निर्गमन से पूर्व ही कोये के अन्दर स्थित प्यूपा को मारना आवश्यक होता है।

5.3.1 रेशम ग्रन्थि तथा रेशम (Silk Gland and Silk)

रेशम कीट के कैटरपिलर की वक्षीय गुहा में एक जोड़ी रेशम ग्रन्थियाँ पायी जाती है, जो रेशम का स्रावण करती है। ये रेशम ग्रन्थियाँ वास्तव में रूपान्तरित लार ग्रन्थियाँ होती है। दोनों रेशम ग्रन्थियाँ एक नलिका में खुलती है। और यह नलिका एक खोखले काँटे (Spine) द्वारा लेबियम के अवाले भाग के मध्य में बाहर खुलती है। इस खोखले काँटे को स्पिन्नरेट (Spinneret) कहते हैं। प्रत्येक ग्रन्थि तीन भागों की बनी होती है जिन्हें क्रमशः अग्र (Anterior), मध्य (Middle) तथा पश्च (Posterior) भाग कहते हैं।

अग्र भाग पतला, नलिका के समान होता है। जो किसी प्रकार का स्रावण नही करता अपितु मध्य तथा पश्च भाग के स्रावण को स्पिन्नरेट तक ले जाने का कार्य करता है। मध्य भाग चौड़ा नलिका समान होता है तथा ग्रन्थिल होता है। यह स्रावण के अतिरिक्त आशय (Reservoir) का भी कार्य करता है। पश्च भाग अतिवलित (Folded) नलिका समान ग्रन्थिल रचना होती है। इसकी कोशिकाओं में बड़े आकार का शाखान्वित केन्द्रक (Branched nucleus) पाया जाता है।

टिप्पणी

रेशम ग्रन्थि के पश्च भाग की कोशिकाएँ फाइब्रिनोजन (Fibrinogen) प्रोटीन का स्रावण करती है जो बाहर आते ही फाइब्रोइन (Fibroin) में परिवर्तित हो जाता है। यह फाइब्रोइन (Fibroin) पश्च भाग से मध्ये भाग में आकर संचित हो जाता है। मध्य भाग से यह दो पतले तन्तुकों (Fibres) के रूप में स्पिन्नरेट से बाहर निकलता है। फाइब्रोइन के इन तन्तुओं को ब्रिन (Brin) कहते हैं। दोनो ब्रिन रेशम के धागे का मर्म (Core) बनाते हैं। रेशम ग्रन्थि के मध्य भाग की ग्रन्थिल कोशिकाएँ सेरिसिन (Sericin) नामक एक अन्य प्रोटीन का स्रावण करती है। जो गर्म जल में घुलनशील होती है। यही सेरिसिन प्रोटीन दोनो ब्रिन्स को चारों ओर से घेरे रहती है। दोनों रेशम ग्रन्थियों के जोड़ पर एक अन्य ग्रन्थि बाहर आकर खुलती है। जिसे लियोनेट की ग्रन्थि (Lyonnet's gland) कहते है। लियोनेट ग्रन्थि का स्रावण सम्भवतया रेशम के रास्ते को चिकना बनाने का कार्य करता है।

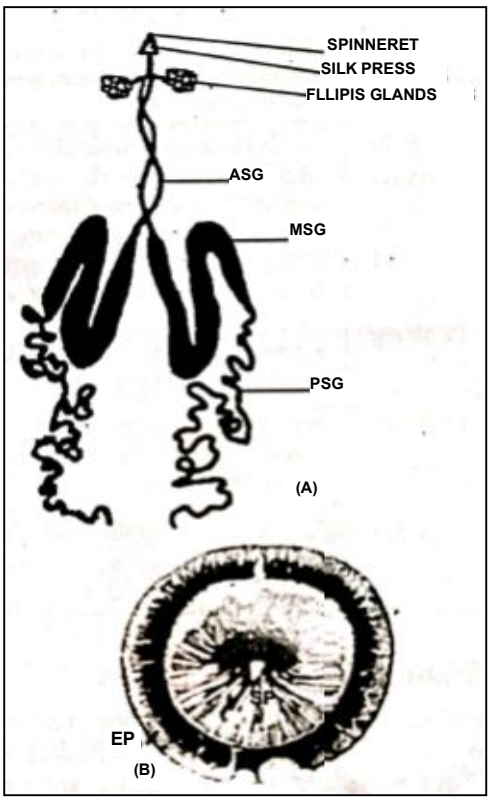

चित्र क्र. 5.6: Life cycle of mulberry silk worm

फाइब्रोइन से बने धागे तथा सेरिसिन से बने आवरण को कच्चा रेशम (Raw silk) कहते हैं। फाइब्रोइन एक प्रकार की अघुलनशील स्क्लेरोप्रोटीन (Seleroprotein) होती है जो लीथियम थायोसाइनेट (Lithium thiocynate) अथवा क्यूप्रिक लवण तथा इथाइलीन डाईअमीन (Cupric salts and Ethylene diamene) के मिश्रण में आंशिक रूप से घुलनशील होती है जबकि सेरिसिन गर्म जल में घुलनशील होती है। फाइब्रोइन प्रोटीन के अमीनों अम्लों का संगठन अन्य प्रोटीन से भिन्न होता है। इसमें ग्लाइसीन (Glycine), अलेनीन (Alaninie), टाइरोसीन (Tyrosine) तथा सेरीन (Serine) की मात्रा अधिक होती है। तथा सल्फरयुक्त अमीनो अम्लों का अभाव होता है। रेशम, रूई, ऊन तथा रेयॉन से

कम घनत्व वाला रेशा होता है तथा रेशम की नमी धारण करने की क्षमता बहुत ज्यादा होती है। यह अपने वजन के एक तिहाई के बराबर भी नमी धारण कर ले तो भी गीला मालूम नहीं पड़ता। यह ऊन से अधिक ऊष्मा प्रतिरोधी होता है और 170°C से कम ताप पर विघटित नहीं होता। यह हल्कें क्षारीय घोलों तथा निर्जल धुलाई वाले विलायकों से अप्रभावित रहता है। इसके धागे की मोटाई डेनियर में मापी जाती है। जो 9,000 मीटर लम्बे धागे के ग्राम भार के बराबर होता है।

5.4 रेशम उद्योग तथा इसका प्रबन्धन (Sericulture Industry and Its Management)

रेशम उद्योग की स्थापना एवं उसके प्रबन्धन को निम्नलिखित घटकों (Components) में बाँटा गया है –

1. खाद्य वनस्पति की खेती
2. रेशम–कीटों का पालन
3. कोकून से रेशम प्राप्त करने की प्रक्रिया।

1. खाद्य वनस्पति की खेती (Cultivation of Food Plants)– **बॉम्बिक्स मोराई** (*Bombyx mori*) का एकमात्र भोजन शहतूत की पत्तियाँ हैं अतः सम्पूर्ण रेशम उद्योग की प्राथमिक आवश्यकता शहतूत की पत्तियों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता है। शहतूत मोरेसी कुल (Moraceae family) का पौधा है जिसकी लगभग 20 प्रजातियाँ पायी जाती है। इनमें से प्रमुख प्रजातियाँ हैं– **मोरस अल्बा** (*Morus alba*), **मो. इण्डिका** (*M. indica*), तथा **मो. सिरेटा** (*M. serrata*)। ये पौधे गर्म एवं ठण्डी दोनों प्रकार की जलवायु में उगाये जा सकते हैं। इनकी खेती करने के लिए 25–30°C ताप तथा 60–80 आर्द्रता एवं साधारणतया उदासीन मिट्टी की आवश्यकता होती है परन्तु यदि मिट्टी हल्की अम्लीय अथवा क्षारीय हो तो भी इन पर कोई विशेष अन्तर नहीं आता। पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए अच्छी वर्षा बहुत सहायक होती है। साधारणतया 600–250°C मिमी. वर्षा प्रतिवर्ष की दर से इन पौधों की वृद्धि के लिए आदर्श मानी जाती है। शहतूत के पौधों की वृद्धि एवं रख–रखाव पर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि रेशम की मात्रा एवं गुणवत्ता शहतूत की पत्तियों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। आजकल वैज्ञानिकों द्वारा तैयार की गयी शहतूत की उच्च पैदावार वाली किस्मों का प्रयोग रेशम–कीट पालन में किया जा रहा है।

शहतूत की खेती के लिए या तो शहतूत के बीजों को बोया जाता है या फिर तने की कटान (Stem cuttings) रोपी जाती है। बीजों की दिसम्बर अथवा मई के महीनेमें बोया जाता है। उसके बाद उत्पन्न हुए पौधों को जून, जुलाई तथा अक्टूबर–नवम्बर के महीने मे स्थांनान्तरित कर दिया जाता है। तने की कटानों को सीधे खेत में रोपा जा सकता है या फिर पहले नर्सरी में लगाकर बाद में प्रतिरोपण (Transplantation) किया जाता है। सबसे पहले 2–3 सेमी. मोटे तने के 22–25

टिप्पणी

सेमी लम्बे टुकड़े इस प्रकार से काटे जाते हैं कि प्रत्येक टुकडें में 3–4 कलिकाएँ (Buds) हों। फिर इन टुकड़ों को पहले से तैयार किये गये 50 × 50 × 50 सेमी के गड्ढों में रोपा जाता है। इन गड्ढों को मानसून के पूर्व ही खोदकर गैमैक्सीन (Gammaxene) तथा कम्पोस्ट खाद डालकर तैयार कर लिया जाता है तथा पहली मानसून वर्षा के बाद इनमें तने की कटानों को रोपा जाता है। ये गड्ढे या तो 90 सेमी की दूरीपर स्थित एकल कतारों में लगाये जाते हैं जिसमें प्रत्येक के दो पौधों के मध्य 50 सेमी की दूरी रखी जाती है या फिर पौधे 60 सेमी की दूरी पर स्थित पट्टियों पर दो या तीन कतारों में लगाये जाते हैं जिसमें प्रत्येक कतार के दो पौधों के मध्ये 30 सेंमी की दूरी रखी जाती है। रोपे गये तने की कटानों को तब तक भली–भाँति सिंचित करते रहना चाहिए जब तक उनमें जड़ें निकलकर भूमि को अच्छी प्रकार से न पकड़ लें। खेत में खरपतवारों की सफाई नियमित रूप से करते रहना चाहिए ताकि मिट्टी में उपस्थित सम्पूर्ण पोषण पौधों को उपलब्ध होता रहे। कतारों के मध्य में घास–पात से मिट्टी को ढककर रखने से (Mulching) मिट्टी ढीली बनी रहती है तथा खरपतवार से भी बचाव बना रहता है।

पौधों के सम्पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेने पर उनकी नियमित छँटाई (Pruning) करनी चाहिए ताकि नये कल्ले फुटते रहें तथा कतारों के मध्य पर्याप्त स्थान बना रहे। पौधों की छँटाई तीन प्रकार से की जाती है –

1. पौधे से सीधे पत्तियों को तोड़कर मुलायम पत्तियों को कैटरपिलर की आरम्भिक इंस्टारों को तथा परिपक्व पत्तियों को कैटरपिलर की बाद के इंस्टारों को खिलाते है।
2. पौधे की शाखाएँ काट लेते हैं फिर इन शाखाओं से पत्तियाँ तोड़कर तृतीय इंस्टार कैटरपिलर को खिलाते है।
3. पौधे की ऊपर को टहनियों को काटकर उसकी पत्तियों को चतुर्थ एवं पंचम इंस्टार कैटरपिलर को खिलाते हैं

2. रेशम–कीटों का पालन (Rearing of Silkworms)– रेशम–कीटों के पालन के लिए 20–28°C ताप, 70–85 प्रतिशत आर्द्रता, 16 घण्टे का दीप्तिकाल (Photoperiod) तथा प्रदूषण रहित वातावरण की आवश्यकता होती है अतः पालन–पोषण स्थल पर इस प्रकार की जलवायु होने से उत्पादन अच्छा होता है। पालन–पोषण कक्ष का दरवाजा उत्तर की तरफ तथा खिड़कियाँ दक्षिण की तरफ हो तो इस प्रकार की व्यवस्था सर्वोत्तम होती है क्योंकि शुद्ध ताजी वायु उत्तर से प्रवेश करके दक्षिण से बाहर जा सकती है।

(A) पालन–पोषण हेतु आवश्यक उपकरण (Equipments for Rearing)– रेशम कीटों को पालने के लिए निम्न उपकरणों की आवश्यकता होती हैं –

(i) धानी (Stand)– ये धानियाँ बाँस तथा लकड़ी की बनी होती है। जिन पर रेशम–कीट पालने वाली ट्रे को रखा जाता है। इन धानियों के पायों (Legs) को कटोरों (Bowls) में रखा जाता है। तथा

कटोरों में कीटनाशक मिला जल भर दिया जाता है ताकि चींटियाँ रेशम–कीटों तक न पहुँच सकें।

(ii) ट्रे (Trays)– ये बाँस या लकड़ी की बनी अण्डाकार या गोल छिछली ट्रे होती है। जिनमें कैटरपिलर रखकर पाले जाते हैं।

(iii) मेमिया कागज (Paraffin paper)– यह मोटे कागज पर मोम की पतली पर्त चढ़ाकर तैयार किया जाता है। इस कागज से ट्रे को ढका जाता है ताकि आर्द्रता बनी रहे और पत्तियाँ मुरझाने न पायें।

(iv) पकड़ने वाली लकड़ियाँ (Chopsticks)– ये लकड़ियाँ एक सिरे पर मोटी तथा दूसरे सिरे पर पतली होती हैं जिनसे कैटरपिलर को हिलाया–डुलाया या पकड़ा जाता है।

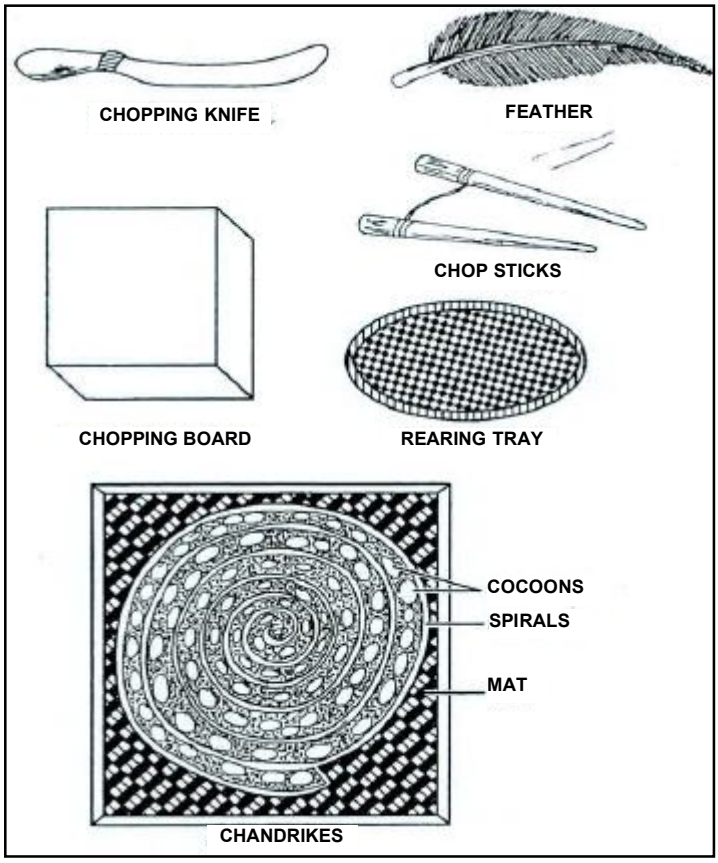

चित्र क्र. 5.7: Sericulture equipments

(v) फलक, चाकू तथा चटाई (Board, Knife and mat)– ये सामान पत्तियों के टुकड़े करने के काम आते हैं। चटाई पर फलक रखकर उस पर चाकू की सहायता से पत्तियों के टुकड़े करके कैटरपिलर को खिलाया जाता है।

(vi) जाल (Net)– ट्रे की सफाई एवं पत्तियों के बदलने के समय इस जाल का प्रयोग किया जाता है। सूती धागे अथवा नाइलोन के बने इन जालों की सहायता से बिना हाथ से छुए लार्वों को अनखाई बची पत्तियों एवं गन्दगी से अलग किया जाता है। भिन्न–भिन्न

टिप्पणी

आकार के छिद्रों वाले जालों का प्रयोग कैटरपिलर के इंस्टार के अनुसार किया जाता है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय इंस्टार कैटरपिलर के लिए 2 वर्ग मिमी. चतुर्थ इंस्टार के लिए 10 वर्ग मिमी. तथा पंचम कैटरपिलर के लिए 20 वर्ग मिमी छिद्रों वाले जाल का प्रयोग उचित रहता है।

(vii) चन्द्रिकेस (Cocoonage)– कैटरपिलर को कोकून बनाते समय एक आधार की आवश्यकता होती है जिसके लिए एक युक्ति के रूप में चन्द्रिकेस का निर्माण किया जाता है। वास्तव में चन्द्रिकेस बाँस की खपच्चियों (Split bamboo) से बनी एक आयताकार चटाई होती है। जिस पर बाँस की खपाची से ही सर्पिलाकार चक्र बना देते हैं। इन्हीं चक्रों को आधार बनाकर कैटरपिलर कोकून निर्मित करते हैं।

(viii) अन्य विविध सामान (Other miscellaneous items)– उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त आर्द्रता मापने के लिए आर्द्रतामापी (Hygrometer), ताप के लिए थर्मोमीटर (Thermometer), तापक (Heater), कूलर (Cooler) आदि की भी आवश्यकता होती है।

(B) अच्छी गुणवत्ता वालें अण्ड़ों की व्यवस्था (Arrangement for Quality Seeds)

अण्ड़ों की व्यवस्था सरकार द्वारा स्थापित ग्रेनेज (Grainage) से की जा सकती है। विभिन्न सरकारी केन्द्रों से कोकून भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इन कोकूनो से प्यूपा निकाल कर पहले इनका परीक्षण कर लेना चाहिए। पेब्राइन जैसी बीमारियों से ग्रसित या संक्रमित प्यूपा निकलने पर उस बैच के कोकूनों को हटा देना चाहिए। स्वस्थ कोकूनों को 23–25 °C ताप, 70–80 प्रतिशत आर्द्रता वाले स्वच्छ हवादार कक्ष में निर्गमन हेतु रखना चाहिए। सामान्यतया कोकून के शलभों का निर्गमन प्रातःकाल की बेला में होता है। शलभों का लिंग भेद करके नर तथा मादा शलभ अलग–अलग छाँट लेते हैं। अब नर शलभों को मादा शलभों की ट्रे में रख देते है। जैसे ही मैथुन क्रिया आरम्भ होती है वैसे ही मैथुनरत शलभों को प्लास्टिक के काले रंग के पात्रों में स्थानान्तरित कर देते है। तीन घण्टे में मैथुन क्रिया पूर्ण हो जाती है। जिसके पश्चात् नर शलभ को अलग कर देते हैं। बारह घण्टे के अन्दर मादा शलभ 400–600 अण्डे देती है। अण्डों के समूह में से कुछ अण्डों को लेकर उनका एक बार फिर से परीक्षण कर लेते हैं और यदि अण्डों में संक्रमण पाया जाता है तो सम्पूर्ण अण्डों को नष्ट कर देते है। अण्ड निक्षेपण के लिए प्लास्टिक पात्र में मोटे कागज के टुकड़ों का उपयोग करते हैं। इन कागज के टुकड़ों को प्रयोग में लाने से पूर्व फार्मेलीन के 2 प्रतिशत घोल में डुबोकर विसंक्रमित कर लेते है।

अण्डों को अलग करने के लिए कागज के टुकड़ों को गीला कर लेते है जिससे अण्डे आसानी से अलग हो जाते हैं। इन अण्डों को भी फार्मेलीन के 2 प्रतिशत घोल में विसंक्रमित करके संग्रहीत कर लेते है।

(C) अण्डोद्भेदन (Hatching)– 10–18 दिन की उद्भवन अवधि (Incubation period) के बाद अण्डोद्भेदन होता है और 3–4 मिमी लम्बा कैटरपिलर निकलता है। अण्डोद्भवन के लिए उद्भवन कक्ष (Incubation chamber) का प्रयोग किया जा सकता है।

(D) कैटरपिलर का पालन पोषण (Rearing of Caterpillars)– अण्डों से निकलने वाले कैटरपिलर लार्वों को पालने वाली ट्रे में रखा जाता है। प्रथम एवं द्वितीय इंस्टार कैटरपिलर बहुत कोमल होते हैं अतः इनको रखने के लिए पहले ट्रे में मोमिया कागज बिछाते है जिसके ऊपर कटी हुई शहतूत की मुलायम पत्तियों का बिछौना बिछा देते हैं। अब पत्तियों पर कैटरपिलर छोड़ देते हैं। ट्रे के किनारे–किनारे जल में सोखी हुई फोम की कतरनें रख देते हैं ताकि ट्रे में पर्याप्त आर्द्रता बनी रहें। आवश्यक हो तो नमी रोकने के लिए ट्रे को ऊपर से भी मोम के कागज से ढक देते हैं। नमी के कारण कवकों का प्रकोप हो सकता है अतः कैटरपिलर को कवकों के प्रकोप से बचाने के लिए चूना तथा सेरीसन का पाउडर (Lime and ceresin) या डाइथेन एम 45 (Dithan M-45) का छिड़काव ट्रे में कर देते हैं।

प्रथम तथा द्वितीय इंस्टार कैटरपिलर को मुलायम, कोमल पत्तियों के टुकड़े खिलाये जाते हैं तथा कैटरपिलर के शेष इंस्टार को परिपक्व पत्तियों के टुकड़े खिलाये जाते है। कैटरपिलर जैसे– जैसे वृद्धि करते जाते है उनकी खुराक भी बढ़ती जाती है उसी के अनुसार उन्हें भोजन उपलब्ध कराया जाता है। दिन में कम से कम चार बार भोजन देना आवश्यक होता है। विभिन्न इंस्टार कैटरपिलरों की वृद्धि एवं खाद्य दर तालिका 5.1 में दी जा रही है।

सारणी क्रः 5.1

Instar	Increase in Weight (in mg)	Duration (in Days)	Mulberry Leaves Consumed (in gm)
I	0.45	3-4	17
II	540	2-3	80
III	760	3-4	350
IV	3000	5-6	2500
V	5000	6-8	18000

पालन ट्रे की नियमित साफ–सफाई करना अत्यन्त आवश्यक होता है। ट्रे में अनखाई पत्तियों एवं कैटरपिलर के मल इत्यादि पदार्थों को समय से हटाते रहना चाहिए। सफाई का कार्य प्रथम, चतुर्थ तथा पंचम इंस्टार कैटरपिलर के लिए दिन में एक बार, द्वितीय कैटरपिलर के लिए दिन में दो बार तथा तृतीय इंस्टार कैटरपिलरों के लिए दिन में तीन बार की जानी चाहिए। सफाई की परम्परागत विधि के अन्तर्गत प्रथम से तृतीय इंस्टार कैटरपिलरों को पंख की सहायता से एक ट्रे से दूसरी ट्रे में स्थानान्तरित करते हैं जबकि चतुर्थ तथा पंचम इंस्टार

टिप्पणी

कैटरपिलरों को लकड़ी की डण्डियों या तीलियों की सहायता से स्थानान्तरित करते हैं। सफाई का दूसरा तरीका भूसी (husk) के माध्यम से किया जाता है। इसमें भूसी को एक पतली पर्त के रूप में ट्रे में फैला दिया जाता है जिसके ऊपर शहतूत की पत्तियों के टुकड़े डाल देते है। लार्वा भूसी पर से रेंगकर ताजी पत्तियों पर पहुँच जाते हैं जिन्हें नयी ट्रे में स्थानान्तरित कर देते है। तीसरा तरीका जाल विधि का है। इसमें कैटरपिलरों के आकार के अनुसार विभिन्न आकार के छिद्रों वाले जाल का उपयोग किया जाता है। जाल को ट्रे के ऊपर रख देते हैं तथा जाल के ऊपर ताजी पत्तियों के टुकड़े रख दिये जाते है। कैटरपिलर स्वयं भोजन की खोज में जाल के छिद्रों से होकर ऊपर की पत्तियों में आ जाते है।

कैटरपिलरों के पालन–पोषण के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वृद्धि की अवस्था होने के कारण ये तीव्रता से वृद्धि करते हैं। कैटरपिलरों के विभिन्न इंस्टार भिन्न–भिन्न दर से वृद्धि करते हैं। (देखें तालिका 5.1)। अतः जैसे–जैसे कैटरपिलर वृद्धि करते जाये उन्हें अधिक स्थान उपलब्ध कराते रहना चाहिए। इस क्रिया को स्पेसिंग (Spacing) कहते है। प्रत्येक पालन ट्रे से आवश्यकता से अधिक कैटरपिलरों को निकाल कर नई ट्रे में स्थानान्तरित करते रहना चाहिए ताकि कैटरपिलरों का जमावड़ा (Overcrowding) न होने पाये।

(E) कोकून का बुनना (Spinning of Cocoons)– पूर्ण विकसित पंचम इंस्टार कैटरपिलर कोकून निर्मित करने से पूर्व भोजन करना बन्द कर देता है। इसका शरीर सिकुड़कर पारभासी (Translucent) हो जाता है और यह कोकून बनाने के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश में घूमने लगता है। इसी समय इन कैटरपिलरों को कोकूनेज या चन्द्रिकेस (Chandrikes) में स्थानान्तरित कर देते है। कोकून बनाते समय 24°C ताप तथा 60–70 प्रतिशत आर्द्रता उपयुक्त होती है। अधिक या कम ताप या आर्द्रता होने पर अच्छी गुणवत्ता वाले कोकून नहीं बनते। कोकून बनाने में 2–3 दिन का समय लगता है।

3. कोकून से रेशम प्राप्त करने की प्रक्रिया (Processing of cocoons to obtain silk)– कोकून से रेशम का धागा प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रियाएँ की जाती हैं–

(i) कोकून के अन्दर उपस्थित प्यूपा को मारना (Killing of pupa inside the cocoon)– कोकून के अन्दर उपस्थित प्यूपा को मारने की प्रक्रिया स्टिफलिंग (Stifling) कहलाती है। ऐसा न करने पर प्यूपा वयस्क में कायान्तरित हो जाता है और वयस्क कोकून को तोड़कर बाहर निकल आता है जिससे रेशम के धागे के टुकड़े हो जाते है। कोकून के अन्दर के प्यूपा को मारने के लिए या तो कोकून को सूर्य के प्रकाश में सुखाते हैं या फिर कोकून में गर्म वायु अथवा वाष्प प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार गर्मी या ऊष्मा के कारण प्यूपा मर जाते है।

(ii) लपेटना (Reeling)– इसके लिए पहले कोकून को जल में उबालते है जिससे रेशम के ऊपर का सेरेसिन (Serecin) आवरण घुल जाता है जिससे धागा ढीला हो जाता है। अब ब्रुश चलाकर रेशम के धागे के सिर को खोज लेते हैं। इसके बाद कच्चे रेशम के धागे को कोकून से खोलकर रील या चर्खी में लपेट लेते हैं। इस प्रकार से प्राप्त रेशम के धागों को अम्लो के घोल में अथवा सड़ाकर (Fermentation) साफ किया जाता है जिससे उसमें चमक आ जाये। इसके बाद धागों को एक बार फिर से जल में धोया जाता है। फिर साफ किये गये धागों की रील (Reel) अथवा लच्छी (Skein) बना लेते हैं। इन्हीं धागों को ऐंठकर रेशम का धागा बनाया जाता है।

कुछ कोकूनों को आगे की फसल के लिए वयस्क प्राप्त करने के उद्देश्य से अलग कर लिया जाता है। जब इनसे वयस्क बाहर आ जाते हैं तब कटे कोकून से रेशम की रूई को अलग कर लेते हैं जिसे कातकर रेशम का धागा तैयार करते हैं, इसे कती रेशम (Spun silk) कहते हैं।

5.4.1 रेशम–कीट की व्याधियाँ (Diseases of Silkworms)

रेशम–कीट में निम्नलिखित व्याधियाँ पायी जाती है–

1. पेब्राइन रोग (Pebrine disease)– रेशम–कीट का यह सबसे घातक रोग है। इसका रोगकारक (Causative agent) **नॉसीमाबॉम्बाइसिस** (*Nosemabombycis*) नामक स्पोरोओजन प्रोटोजोआ (Sporozoan protozoa) है। अण्डे से लेकर वयस्क तक की सभी अवस्थाओं को संक्रमित करने वाला यह परजीवी बीजाणुओं (Spores) के माध्यम से संक्रमण करता है। ये बीजाणु या तो भोजन के साथ कैटरपिलर के शरीर में प्रवेश करते हैं या वयस्क मादा के अण्डाशय (Ovary) से सीधे अण्डे में प्रवेश कर जाते हैं।

संक्रमित अण्डे कम चिपकते हैं तथा अधिकतर निषेचित नहीं हो पाते और समाप्त हो जाते हैं। संक्रमित कैटरपिलर का शरीर सिकुड़ जाता है तथा शरीर पर काले या गहरे बादामी धब्बे पड़ जाते है। इनकी भूख मर जाती है और ये सुस्त पड़ जाते है। संक्रमित प्यूपा फूलकर गहरे रंग के हो जाते हैं। संक्रमित वयस्क शलभों के शरीर पर शल्करहित (Scaleless) धब्बे पड़ जाते हैं तथा इनके पंख पूरी तरह नहीं फैलते और मादा शलभ की अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है।

इस बीमारी को नियन्त्रित करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए–

(i) रोगमुक्त अण्डों एवं वयस्कों का उपयोग करना चाहिए।

(ii) संक्रंमित अवस्थाओं को अलग करके नष्ट कर देना चाहिए।

(iii) पालन–पोषण हेतु प्रयुक्त स्थान एवं समस्त उपकरणों को फार्मेलीन (Formaline) के 2 प्रतिशत घोल में विसंक्रमित कर लेना चाहिए।

टिप्पणी

2. मस्करडीन रोग (Muscardine disease)– यह एक कवक जनित (Fungus born) रोग है। कवकों की तीन प्रजातियाँ तीन प्रकार के मस्करडीन रोग उत्पन्न करती है। **ब्यूवेरिया बेसियाना** (*Beauveria bassiana*) द्वारा सफेद मस्करडीन, **स्पाइकेरिया प्रेसिना** (*Spicaria prasina*) द्वारा हरी मस्करडीन तथा **इस्केरिया फेरिनोसा** (*Iscaria farinosa*) द्वारा पीला मस्करडीन रोग होता है। कैटरपिलर, प्यूपा तथा वयस्क अवस्थाओं को संक्रमित करने वाला यह रोग बीजाणुओं से अंकुरित माइसीलियम (Mycelium) के त्वचा द्वारा प्रवेश करने के कारण होता है।

शरीर में प्रवेश करके माइसीलियम तेजी से वृद्धि करके पूरे शरीर में फैल जाते हैं और संधि झिल्लियों (Arthroidal membrane) को भेदकर शरीर से बाहर भी निकल आते हैं। सभी अन्तरांग भी इससे प्रभावित हो जाते है। संक्रमित अवस्था शिथिल पड़ जाती है। उल्टी एवं दस्त होने लगते हैं तथा शरीर ऐंठने लगता है। प्रकोप बढ़ने पर शरीर बीजाणुओं से ढक जाता है।

इस रोग का निदान सम्भव नहीं हैं इसलिए पहले से ही इस रोग के रोकथाम के निम्न उपाय कर लेने चाहिए –

(i) पालन–पोषण स्थान एवं प्रयुक्त होने वाले उपकरणों को फॉर्मेलीन के 2 प्रतिशत घोल में विसंक्रमित कर लेना चाहिए।

(ii) पालन–पोषण कक्ष में गन्धक (Sulphur) जलाकर धुआँ करते रहने से कवक के आक्रमण से बचा जा सकता है।

(iii) कक्ष स्वच्छ तथा हवादार होना चाहिए।

(iv) सक्रंमित अवस्थाओं को तुरन्त अलग करके नष्ट कर देना चाहिए।

3. ग्रेसरी रोग (Grasserie disease)– यह एक वायरस जनित रोग है। जो बोरीलिया (Borrelia) वायरस या विषाणु के संक्रमण से होता है। अधिकतर कैटरपिलरों को संक्रमित करने वाला यह रोग मुख के बजाय त्वचा की हायपोडर्मिस में पॉलीहेड्रल काय (Polyhedral bodies) के संक्रमण से होता है। पॉलीहेड्रल काय क्षतिग्रस्त त्वचा के माध्यम से संक्रमण उत्पन्न करते हैं।

रोग के कारण रेशम–कीट के शरीर तथा देहगुहीय तरल में पॉलीहेड्रल काय बन जाती हैं जिससे शरीर फूल जाता है तथा त्वचा फट जाती है जिससे द्रव बाहर निकलने लगता है जो संक्रमण की दर को और अधिक बढ़ा देता हैं। कैटरपिलर की भूख समाप्त हो जाती है। कोकून पतले तथा भंगुर बनते हैं।

इस रोग का निदान सम्भव नहीं है अतः पहले से ही इसकी रोकधाम के निम्नलिखित उपाय कर लेने चाहिए –

(i) पालन–पोषण स्थल अथवा कक्ष में चूने का पाउडर डालकर सफाई करनी चाहिए।

(ii) उपकरणों को कीटाणुरहित कर लेना चाहिए।

(iii) कीटों को घाव होने से बचाना चाहिए।

टिप्पणी

(iv) पालन–पोषण दशाएँ (Conditions) पूर्ण रूप से अनुकूल रहनी चाहिए। प्रायः इस रोग पर प्रभाव तब अधिक होता है जब वातावरण का ताप तीव्रता से घटता है।

(v) प्रभावित कीटों को छाँटकर तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए।

4. फ्लेचरी रोग (Flacherie disease)– यह रोग मुख्यतया **बेसिलस थूरिनजियेन्सिस** (*Bacillus thuringiensis*) नामक जीवाणु के संक्रमण से होता है परन्तु अब कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह एक प्रकार का कायिकी रोग (Physiological disease) भी है। इसके अतिरीक्त **माइक्रोकोकस** (*Micrococcus*) जीवाणु की कुछ प्रजातियाँ भी यह रोग पैदा करती हैं। यह रोग मुख्यतया कैटरपिलरों में बीजाणुओं के भोजन के साथ प्रवेश करने से होता है।

सक्रंमित कीट की भूख तथा शरीर की चमक समाप्त हो जाती है। रक्त परिवहन अनियमित तथा तेज हो जाता है। शरीर से तरल बाहर निकलने लगता है। निर्मोचन (Moulting) ठीक प्रकार से नहीं होता। भूख समाप्त हो जाती है। उल्टी एवं दस्त होने लगते हैं। शरीर काला होकर सड़ने लगता है।

इस रोग से बचने के निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए –

(i) तन्दरुस्त प्रजाति का चयन करना चाहिए।

(ii) पालन–पोषण की वातावरणीय दशाओं को पूर्णतया अनुकूल बनाये रखना चाहिए।

(iii) भोजन की प्रचुर आपूर्ति बनाये रखनी चाहिए।

(iv) साफ–सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

5. कोर्ट रोग (Court disease)– यह रोग भोजन में कुछ आवश्यक तत्वों की कमी से होता है। इसमें कैटरपिलर प्यूपा में तो परिवर्तित होता है परन्तु कोकून नहीं बनता। प्यूपा भी सामान्य से छोटे आकार का बनता है।

6. गैटाइन रोग (Gattine disease)– यह रोग **स्ट्रेप्टोकोकस बॉम्बाइसिस** (*Streptococcus bombysis*) नामक जीवाणु के संक्रमण से होता है। यह कैटरपिलर की पूर्व इंस्टारों में अधिक होता है। कीट भोजन करना बन्द कर देते है। इनके शरीर का अग्र भाग पारभासक (Translucent) हो जाता है। नियमित साफ–सफाई तथा विसंक्रमित उपकरणों के प्रयोग से इस रोग से बचा जा सकता है।

5.4.2 रेशम कीट के शत्रु (Enemies of Silkworms)

रेशम–कीट के निम्नलिखित मुख्य तीन शत्रु हैं –

(i) कुन्जी मक्खी (Kunji Fly)– कुन्जी मक्खी, **ट्राइकोलाइगा बॉम्बाइसिस** (*Tricholyga bombysis*) डिप्टेरा (Diptera) गण का कीट हैं जो अपने अण्डे रेशम–कीट के शरीर पर निक्षेपित कर देती हैं। अण्डों के

टिप्पणी

अण्डोद्भेदन से निकले मैगॉट (Maggots) या लार्वा कैटरपिलर को खाते हैं।

इसके उत्पीड़न से बचने के लिए पालन–पोषण कक्ष को मक्खी रोधक (Fly proof) होना चाहिए तथा कक्ष में यदि दरारें या चटकन (Cracks and crevices) हों तो उन्हें बन्द कर देना चाहिए।

(ii) बीटल (Beetle)– डर्मेस्टिस कैडेवेरिनस (*Dermesties cadeverinus*) नामक कोलिओप्टेरो (Coleoptera) गण के इस कीट के वयस्क तथा लार्वा कोकून तथा प्यूपा दोनों को ही खा जाते हैं। यह कीट कोकून के संग्रहण के समय कोकून पर आक्रमण करता है।

इस कीट के प्रकोप से रेशम–कीटों को बचाने के लिए पालन–पोषण कक्ष में साफ सफाई रखने के साथ दरारें (Crevices) आदि बन्द कर देना चाहिए ताकि मादा डर्मेस्टिस बीटल को अण्डे देने के लिए स्थान न मिल सके। इसके अतिरिक्त विकर्षकों (Repellents) का प्रयोग करना चाहिए। कक्ष को मिथाइल ब्रोमाइड (Methyl bromide) तथा पैराडाइक्लोरोबेन्जीन (Paradichlorobenzene) से धूमित (Fumigation) करना चाहिए।

(iii) चींटियाँ (Ants)– चींटियाँ अधिकतर पालन–पोषण ट्रे में उपस्थित कैटरपिलरों पर आक्रमण करती हैं और उन्हें खा जाती हैं। इनसे बचने के लिए ट्रे के पायों के नीचे कीटकनाशक मिश्रित जल से भरे कटोरे (Ant bowls) रखने चाहिए।

(iv) कुछ कशेरुकी जन्तु (Vertebrate animals)– जैसे छिपकली (Lizards), पक्षी (Birds), आदि भी रेशम कीटों तथा प्यूपों को खा जाते हैं। अतः इनसे भी रेशम–कीटों को बचाने के लिए पर्याप्त उपाय करने चाहिए।

5.4.3 रेशम के उपयोग (Uses of Silk)

रेशम के धागे से वस्त्र बुने जाते हैं जिनकी अपनी अलग पहचान हैं। वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त पैरासूट (Parachute) निर्माण में भी रेशम प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त मछली पकड़ने की डोरी, जाल, छानने के लिए छन्नी, बिजली के तारों हेतु रोधन (Insulation) तथा अन्य इलेक्ट्रॉनिक सामानों के निर्माण में रेशम का प्रयोग होता है। टायरों में भी रेशम प्रयुक्त किया जा रहा है।

कैट गट (Cat gut)– रेशम–कीट से बना एक अन्य उत्पाद है जिसका प्रयोग शल्य चिकित्सकों (Surgeons) द्वारा शल्य चिकित्सा में घुलनशील टाँके (Stiches) लगाने के लिए किया जाता है। यह कैटगट वास्तव में कैटरपिलर की आहारनाल को खींचकर सुखाकर तैयार की जाती है। शल्य चिकित्सा के अतिरिक्त टेनिस तथा बैडमिण्टन रैकेट की बुनाई में भी कैट गट का प्रयोग किया जाता है।

5.5 भारत में रेशम उद्योग (Sericulture Industry in India)

टिप्पणी

भारत में **लेफ्रॉय** (Lefroy) ने 1905–06 में रेशम–कीट पालन एवं रेशम उद्योग की आधारशिला रखी परन्तु इसका सुनियोजित विकास अप्रैल, 1949 में रेशम बोर्ड (silk board) की स्थापना के बाद हो सका। आज भारत मे रेशम उद्योग एक प्रमुख कुटीर उद्योग (Cottage Industry) है जिसमें 7,00,000 से भी अधिक कृषक परिवार कार्य कर रहे हैं। आज देश के लगभग 56 लाख लोग रेशम उद्योग पर आश्रित है। जिसमें से 47 लाख लोग कृशक है तथा शेश रीलर (Reeler), बुनकर (Weaver) आदि कार्यों में संलग्न हैं। हांलाकि रेशम कीट पालन एक पूरक व्यवसाय माना जाता है परन्तु तकनीकी नवीनता उपलब्ध होने के कारण इसे गहन पैमाने पर अपनाकर पर्याप्त आमदनी अर्जित की जा सकती है। कृषकों के लिए यह व्यवसाय सतत् आमदनी का एक साधन है।

भारत विश्व में रेशम उत्पादित करने वाला दूसरा सबसे बड़ा देश है। जहाँ प्रतिवर्ष लगभग 16,500 मि. टन रेशम उत्पादित होता है जो विश्व के कुल उत्पादन का 18 प्रतिशत है। यहाँ यह तथ्य विशेष रूप से ध्यान देने येाग्य है कि भारत मे रेशम की आवश्यकता वर्तमान उत्पादन से कहीं ज्यादा है। गत वर्ष भारत ने चीन से लगभग 9258 टन रेशम आयात किया है जिसका मूल्य 6 अरब रूपये है। अतः देश में कच्चे रेशम (Raw silk) के उत्पादन को बढ़ाने की दिशा में पर्याप्त अवसर हैं। इससे कच्चे रेशम के उत्पादकों एवं रेशम उत्पादों के निर्यातकों के हितों की रक्षा हो सकेगी।

भारत मे रेशम की सभी चारो किस्मों, अर्थात् शहतूत (Mulberry), टसर (Tassar), मूगा (Muga), तथा एरी (Eri) का उत्पादन किया जाता है। शहतूत रेशम भारत की सबसे सामान्य किस्म है। यहाँ उत्पादित कुल रेशम का 87 प्रतिशत रेशम शहतूत होता है। चूँकि रेशम उत्पादन मे विश्व में अग्रणी स्थान रखने वाले देश चीन में उत्पादन या तो स्थिर है या फिर कम हो रहा है तथा जापान में भी रेशम उत्पादन लगातार कम हो रहा है। अतः भारत में इस क्षेत्र में निर्यात की अपार सम्भावनाएँ हैं।

भारत में शहतूत रेशम की पैदावार हेतु अनुकूल जलवायु की व्यापकता के कारण इसका उत्पादन कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल तथा जम्मू और कश्मीर में प्रमुख रूप से किया जा रहा है। इन पाँचों राज्यों में देश कच्चे रेशम की कुल पैदावार का 95 प्रतिशत भाग उत्पादित होता है।

वर्तमान विश्व परिदृश्य में भारतीय रेशम उद्योग के लिए अपार सम्भावनाएँ निहित है। आज अच्छी गुणवत्ता वाले रेशम की लगातार बढ़ रही माँग को पूरा करने के लिए द्विप्रज रेशम (Bivoltine silk) के अधिक से अधिक उत्पादन की आवश्यकता है जिसका उत्पादन मूल्य कम होता है। इस तथ्य पर विचार करते हुए भारत सरकार ने जापान की अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी एजेन्सी (International Co-

operative Agency) के तकनीकी सहयोग से देश में द्विप्रज रेशम उत्पादन में वृद्धि करने हेतु हर सम्भव प्रयास प्रारम्भ किए हैं।

टिप्पणी

गैर शहतूत रेशमी (Non mulberry silks) में टसर रेशम (Tassar silk) का अधिकतर उत्पादन जनजातियों द्वारा जंगली वृक्षों पर रेशम कीटों को पालकर किया जाता है। विश्व में अधिकतम टसर रेशम उत्पादित करने वाले देशों में चीन के पश्चात् दूसरा स्थान भारत का है। चूँकि टसर रेशम कीट पालन बाहरी वृक्षों पर किया जाता है जो बड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं अतः इसके उत्पादन हेतु समुचित प्रसार योजना की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त ओक टसर कीटों, एन्थेरिया रॉयली (Antherea royeli) एवं एन्थेरिया पर्नियी (Antherea perniyi) के संवर्धन को अच्छी तरह से अपनाया नहीं जा सका है अतः इसके स्थापन में भी सरकारी सहयोग की आवश्यकता है।

एरी रेशम (Eri silk) का अधिकतर उत्पादन देश के पूर्वी भागों में किया जाता है। इसे अन्य प्रकार के रेशमों, ऊन, जूट, कृत्रिम रेशों के साथ भी मिश्रित किया जा सकता है। परन्तु इसके उत्पादन में सबसे बड़ी बाधा पर्णसमूह, की उचित मात्रा की कम आपूर्ति है तथा इसके विपणन हेतु उचित सुविधा भी उपलब्ध नहीं है।

सुनहरा मूगा रेशम (Golden muga silk) उत्पादित करने वाला अकेला भारत देश है। इसका उत्पादन असम, मेघालय, तथा नगालैण्ड में होता है। अभी तक इसका विस्तार आन्ध्र प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल तक ही हो सका है। इस रेशम के व्यावसायिक बीज उत्पादन की आवश्यकता है।

आज विश्व बाजार की माँग को पूरा करने हेतु भारत को 1,20,000 मीट्रिक टन रेशम की आवश्यकता है। वर्तमान में रेशम उद्योग की उत्पादकता 9 प्रतिशत ही है। जर्मनी भारतीय रेशम का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। भारत में रेशम उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है तथा इसके और अधिक विकास हेतु रेशम संवर्धन के प्रत्येक क्षेत्र में और अधिक तकनीकी एवं आर्थिक शोधों की आवश्यकता है।

भारत में रेशम अनुसन्धान एवं विकास हेतु विभिन्न स्थानों पर अनेक अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये गये हैं जिनमें से मुख्य संस्थानों के नाम निम्नलिखित हैं–

(i) केन्द्रीय रेशम अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर (Central Sericulture Research and Training Institute, Mysore)

(ii) केन्द्रीय रेशम अनुसन्धान संस्थान, बरहामपुर, ओडिशा (Central Sericulture Research and Training Institute, Berhampur, Odisha)

(iii) केन्द्रीय टसर अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान, राँची, बिहार (Central Tassar Research and Training Institute, Bihar)

(iv) केन्द्रीय रेशम तकनीकी अनुसन्धान संस्थान, बंगलौर (Central Silk Technological Research Institute, Bangalore)

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. विश्व में रेशम का सर्वाधिक उत्पादन होता है।
   (अ) चीन में (ब) जापान में
   (क) भारत में (ड) ब्रम्हदेश में।
2. रेशम धागा निम्न प्रोटीन का बना होता है।
   (अ) कैसीन (ब) माइरीसीन
   (क) फाइब्रोइन (ड) उपर्युक्त तीनों।
3. रेशम कीट के प्यूपा को कहते हैं–
   (अ) क्राइसैलिस (ब) इमैगो
   (क) मैंगोट (ड) नायड।
4. एरी रेशम कीट खाता है–
   (अ) शहतूत (ब) बेर
   (क) साल (ड) अरण्डी।
5. सर्वाधिक बड़ा रेशम कीट है–
   (अ) एटेकस एटलस (ब) फिलोसेमिया रिसिनाई
   (क) एन्थेरिया पोफिया (ड) बॉम्बिक्स मोराई।
6. किसके कोकून से रेशम के धागे को लपेटा नहीं जा सकता?
   (अ) बॉम्बिक्स मोराई (ब) एन्थेरिया पेफिया
   (क) फिलोसेमिया रिसिनाई (ड) उपर्युक्त कोई नहीं।
7. निम्नलिखित के संक्रमण से पेब्राइन रोग होता है–
   (अ) ब्यूवेरिया बेसियाना (ब) बोरीलिया
   (क) बैसिलस थूरिनजियेन्सिस (ड) नॉसीमा नोटेबिलिस।
8. भारतीय रेशम बोर्ड की स्थापना हुई–
   (अ) 1949 (ब) 1951
   (क) 1953 (ड) 1955।
9. कोकून के अन्दर उपस्थित प्यूपा को मारने की प्रक्रिया कहलाती है–
   (अ) सीडलिंग (Seedling)
   (ब) स्टिफलिंग (Stiffling)
   (क) किलिंग (Killing)
   (ड) प्यूपलिंग (Pupling)।

टिप्पणी

10. रेशम ग्रंन्थियाँ निम्नलिखित के रूपान्तरण से बनती है–

(अ) लार ग्रन्थि (ब) लेबियन ग्रन्थि

(क) मैण्डीबुलर ग्रन्थि (ड) उपर्युक्त में से कोई नही।

11. किस रेशम कीट के कोये से रेशम के धागे को खोला नहीं जा सकता?

(अ) बॉम्बिक्स मोराई (ब) एन्थेरिया पेफिया

(क) फिलोसेमिया रिसिनाई (ड) उपर्युक्त सभी।

12. बॉम्बिक्स मोराई है–

(अ) टसर रेशम कीट

(ब) एटलस रेशम कीट

(क) मूगा रेशम कीट

(ड) शहतूत रेशम कीट।

13. चन्द्रिकोश का उपयोग निम्न उद्देश्य के लिए किया जाता है–

(अ) अण्डनिक्षेपण

(ब) कैटरपिलर पालन

(क) कोया निर्माण

(ड) रेशम के धागे की रील बनाने में।

5.6 मधुमक्खी (Honey Bee)

वर्गीकरण (Classification)

- **संघ (Phylum)–** आर्थ्रोपीडा *(Arthropoda)*
- **वर्ग (Class)–** इन्सेक्टा *(Insecta)*
- **उप–वर्ग (Sub-class)–** टेरीगोटा *(Pterygota)*
- **गण (Order)–** हाईमेनॉप्टेरा *(Hymenoptera)*
- **कुल (Family)–** एपिडी *(Apidae)*
- **वंश (Genus)–** एपिस *(Apis)*
- **Species–** Indica

5.6.1 मधुमक्खियों की प्रजातियाँ (Species of Honey Bees)

टिप्पणी

मधुमक्खियों की निम्नलिखित चार मुख्य प्रजातियाँ पायी जाती है–

1. **एपिस डॉरसेटा** *(Apis dorsata)*
2. **एपिस इण्डिका** *(Apis indica)*
3. **एपिस फ्लोरिया** *(Apis florea)*
4. **एपिस मेलीफेरा** *(Apis mellifera)*

1. एपिस डॉरसेटा *(Apis dorsata)*– इन्हें सारंग (Sarang) या पहाड़ी मधुमक्खी या चट्टानी मधुमक्खी (Rock bee) भी कहते है। ये सबसे बड़े आकार की मधुमक्खियाँ (Giant bee) होती हैं जो समुद्र तल से 1,200 मीटर ऊँचाई से लेकर मैदानों तक बहुत बड़े आकार के छत्ते बनाती हैं। एक मीटर लम्बे तथा 70 सेमी चौड़े विशाल छत्तों को यह चट्टानों अथवा ऊँचे पेड़ों की डालों से लटकाती हैं। एक–एक पेड़ पर कई छत्ते लटके हुए पाए जाते हैं। ये छत्तों का निर्माण ऊपर से नीचे की तरफ करती हैं। छत्ते के ऊपरी हिस्से में शहद तथा पराग (Pollens) संचित करती हैं, जबकि छत्ते का निचला भाग रानी, नर, लार्वों एवं अण्डों के उपयोग में लाती है। ये शहद भी बहुत अधिक मात्रा में बनाती हैं। एक–एक छते से 50–100 किग्रा. शहद प्राप्त होता है। इनके श्रमिकों (Workers) में फूलों का रस चूसने की अत्याधिक क्षमता होती है। एक श्रमिक एक मिनट में 20 फूलों का रस चूस सकती हैं। ये मक्खियाँ अत्याधिक क्रोधी स्वभाव की होती हैं और वृन्द प्रवृत्ति (Swarming nature) की होती है। ये अपने दुश्मनों का मीलों पीछा करके आक्रमण करती हैं। इनका डंक (Sting) बड़ा एवं जहरीला होता है। वृन्द प्रवृत्ति होने के कारण ये 5–6 महीने से अधिक एक स्थान पर नहीं रूकती और काफी दूर तक स्थानान्तरण करती हैं। क्रोधी स्वभाव, भ्रमणशील एवं वृन्द प्रवृत्ति के कारण इन्हें पालना सम्भव नहीं है।

2. एपिस इण्डिका *(Apis indica)*– इन्हें भारतीय मधुमक्खी (Indian bee) भी कहते हैं। इन्हें ही हमारे देश में पाला जाता हैं। ये एपिस डॉरसेटा के ठीक विपरीत स्वभाव की होती है। ये स्वभाव से शान्त होती है तथा वृक्षों के खोखलों, तनों, चट्टानों, खाली सुनसान इमारतों आदि अंधेरे स्थानों पर अपने छत्तो का निर्माण करती है। ये पीढ़ियों तक एक ही स्थान पर रहना पसन्द करती हैं। ये एक ही स्थान पर कई छत्तों का निर्माण करती है। छत्तो के सभी कोष (Cells) समान गहराई के होते हैं। छत्ते के ऊपरी भाग में शहद तथा पराग एकत्रित करती है, जबकि छत्तो के निचले भाग में अंण्डों तथा शिशुओं को रखती हैं। प्रत्येक छत्ते से प्रतिवर्ष 2–3 किग्रा. शहद प्राप्त होता है। ये सामान्यतया जब तक उकसाई न जाये मनुष्य पर आक्रमण नहीं करतीं। भारतीय मधुमक्खी की दो उपजातियाँ पायी जाती हैं– मैदानी तथा पहाड़ी। पहाड़ी मधुमक्खी अधिक मात्रा में शहद एकत्र करती है और बड़े आकार की होती है। ये अधिक ऊँचाई पर रहना पसन्द करती हैं। मैदानी तथा पहाड़ी मधुमक्खियों की अनेक संकर (Hybrid) जातियाँ भी पायी और पाली

जाती है। भारतीय मधुमक्खियों में शहद लूटने (Robbing) एवं लूटकर भागने (Absconding) की प्रवृत्ति पायी जाती हैं।

टिप्पणी

3. एपिस मेलीफेरा *(Apis mellifera)*– इसे इटैलियन या यूरोपियन मधुमक्खी के नाम से जाना जाता है। भार में इसे Apis mellifera indica कहते हैं यह भारतीय मधुमक्खी से काफी समानता रखती है। यह अपने छत्ते समानान्तर छत्ते बनाती है। एक छत्ते से लगभग औसतन 50–200 किग्रा शहद प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। इसके द्वारा बहुत कम मात्रा में शहद का उत्पादन होता है।

4. एपिस फ्लोरिया *(Apis florae)*– यह सबसे छोटे आकार की मधुमक्खी है। इसके श्रमिक की औसत लम्बाई 4–6 मिमी होती है। ये डंक मारने वाली भ्रमणशील स्वभाव की मधुमक्खी है जो 5–6 महीने से अधिक एक स्थान पर नहीं रुकती। ये अपने छत्ते खुले स्थानों, पेड़ों की शाखाओं या झाड़ियाँ में बनाती है। छोटे आकार के छत्ते बनाती है जो साधरणतया 15–45 सेमी लम्बे तथा 15–30 सेंमी चौड़े होते है। एक छत्ते से औसतन 200–500 ग्राम शहद प्राप्त होता है। अतः आर्थिक दृष्टि से इनका पालना लाभप्रद नहीं होता। इसके अतिरिक्त भ्रमणशील स्वभाव होने के कारण भी इन्हें पालना सम्भव नहीं है।

5.6.2 मधुमक्खियों का सामाजिक संगठन (Social Organization of Honey Bees)

मधुमक्खी एक सामाजिक कीट है, जो निवह या कॉलोनी बनाकर रहती है। प्रत्येक कॉलोनी (Colony) में वातावरण एवं स्थान के अनुसार 5,000 से 50,000 तक मधुमक्खियाँ होती है। इनकी कॉलोनी अत्यन्त संगठित एवं सुव्यवस्थित होती है जिसमें श्रम विभाजन (Division of Labour) देखने को मिलता है। कॉलोनी में विभिन्न क्रिया–कलापों के निष्पादन हेतु तीन विभिन्न जातियाँ पायी जाती हैं। ये जातियाँ (Castes) हैं– नर मधुमक्खियाँ या ड्रोन्स (Drones), रानी मधुमक्खी या क्वीन (Queen) तथा श्रमिक मधुमक्खियाँ या वर्कर्स (Workers)।

नर मधुमक्खी (Drones)– नर मधुमक्खियाँ अनिषेचित अण्डों से अनिशेचकजनन द्वारा बनती है। ये आकार में रानी मधुमक्खी से छोटी तथा श्रमिकों से बड़ी होती है। इनका शरीर स्थूल, अपेक्षाकृत मोटा, उदर लम्बाई मे छोटा एवं भोथरा (Blunt) होता है। उदर का रंग गहरा काला चमकीला होता है। इनके जनन अंग (Reproductive organs) विकसित होते हैं परन्तु इनमें डंक (Sting) नहीं होता। ये भोजन के लिए पूर्ण रूप में श्रमिकों पर निर्भर रहती है। ये भोजन स्वयं एकत्रित नहीं करतीं वरन् श्रमिकों से लेकर खाती हैं और शहद की भीख माँगती हैं। इनका कार्य केवल रानी मधुमक्खी के साथ मैथुन (Copulation) करना होता है। अक्सर ये मैथुन समाप्त होते ही मर जाती है। भोजन की कमी होने पर श्रमिक मधुमक्खियाँ इन्हें छत्ते से भगा देती है। जिससे ये भूख के कारण मर जाती है। एक कॉलोनी में नर मधुमक्खियों की संख्या एक दर्जन से लेकर 300 तक हो सकती है।

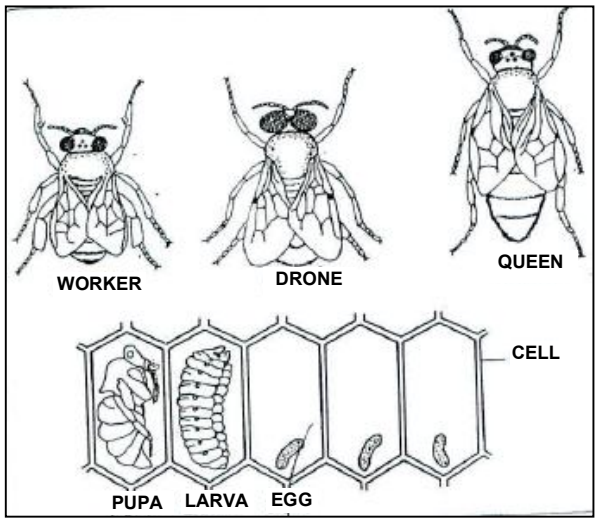

चित्र क्र. 5.8: Different castes and life history of honey bee

रानी मधुमक्खी (Queen)– यह पूर्ण विकसित जननक्षम (Fertilize) मादा होती है। सामान्यतया एक कॉलोनी में एक ही रानी मधुमक्खी पायी जाती है। यह 15–20 मिमी लम्बी आकार में सबसे बड़ी मधुमक्खी होती है जिसका उदर लम्बा, नुकीला फूला हुआ होता है। पैर तथा पंख छोटे होते हैं। यह न तो पराग एकत्रित करती है और न ही मोम अथवा शहद उत्पादित करती है। इसका कार्य केवल अण्डे देना होता है। अण्डे देने के लिए इसमें डंक सहित अण्डनिक्षेपक (Sting cum ovipositor) पाया जाता है। रानी मक्खी का जीवन काल 2 से 5 वर्ष का होता है। तथा यह जीवन में केवल एक बार मैथुन करती है जो मैथुन उड़ान (Nuptial flight) के दौरान होता है। मैथुन उड़ान के समय बहुत से नर मादा का पीछा करते हैं परन्तु इनमें से केवल एक ही नर मैथुन करता है।

मैथुन क्रिया में 15 से 20 मिनट का समय लगता है। मैथुन के समय यह अपनी शुक्रग्राहिका (Spermatheca) में लगभग दो करोड़ शुक्राणुओं (Spermatozoa) का संचय कर लेती हैं जो लगभग 3 वर्ष तक जीवित बने रहते हैं। मैथुन के पश्चात् यह अपनी कॉलोनी में वापस लौट आती है तत्पश्चात् आजीवन अण्डे देने का कार्य करती है। रानी मधुमक्खी अपनी इच्छानुसार एवं आवश्यकतानुसार दो प्रकार के अण्डे देती है– निषेचित (Fertilized) तथा अनिषेचित (Unfertilized)। निषेचित अण्डों से रानी मधुमक्खियाँ तथा श्रमिक मधुमक्खियाँ बनती हैं, जबकि अनिषेचित अण्डों से नर मधुमक्खियाँ उत्पन्न होती हैं। एक रानी मक्खी 200 से 3,000 अण्डे प्रतिदिन तथा लगभग 15 लाख अण्डे अपने सम्पूर्ण जीवन काल में देती है। श्रमिकों द्वारा रानी को रॉयल जैली (Royal jelly) खिलायी जाती हैं । जब रानी मधुमक्खी की अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है तब श्रमिक मधुमक्खियाँ इसे या तो मार देती हैं अथवा कॉलोनी से भगा देती है। तथा विकसित हो रहे लार्वों को रॉयल जेली खिलाकर नयी रानी मधुमक्खी बना लेती हैं

श्रमिक मधुमक्खियाँ (Workers)– ये वास्तव में बाँझ मादाएँ (Sterile female) होती हैं जो निषेचित अण्डे से विकसित होती हैं ये आकार में सबसे छोटी

टिप्पणी

होती हैं परन्तु संख्या में सबसे अधिक होती है। कॉलोनी में इनकी संख्या लगभग 90 प्रतिशत होती है। इनके जननांग अविकसित होते हैं अतः ये अण्डें नहीं देती। इन्हें शहद मिश्रित पराग भोजन के लिए दिया जाता हैं। इनका जीवन काल 6 सप्ताह का होता है। अपने सम्पूर्ण जीवन काल में ये कॉलोनी की व्यवस्था से सम्बन्धित कार्य करती है; जैसे– छत्ता बनाना, पराग व मकरन्द (Nectar) एकत्रित करना, अण्डों, बच्चों तथा रानी की देखभाल करना, छत्ते को वातानुकूलित बनाए रखना, मरम्मत एवं सफाई करना तथा कॉलोनी की सुरक्षा करना। इनके सिर में ग्रसनीय ग्रन्थियाएँ (Pharyngeal glands) पायी जाती हैं जिनसे स्रावित द्रव को शहद में मिलाकर रानी के भोजन के लिए रॉयल जेली (Royal jelly) बनाती हैं। इनका अण्डनिक्षेपक (Ovipositor) डंक (Sting) में रुपान्तरित हो जाता है जिससे ये कॉलोनी की सुरक्षा करती है। इनके उदर की निचली सतह पर मोम ग्रन्थियाँ होती हैं जिससे निकले मोम की सहायता से ये छत्ते का निर्माण करती हैं। प्रत्येक श्रमिक मक्खी अपने 6 सप्ताह के जीवन काल में प्रथम तीन सप्ताह छत्ते के अन्दर का कार्य करती है तथा आखिरी तीन सप्ताह छत्ते के बाहर का कार्य करती है।

जीवन वृत्त (Life History)– मैथुन या कामद उड़ान (Nuptial flight) के दौरान वायु में ही मादा मक्खी नर मक्खी से शुक्राणुओं को लेकर अपनी शुक्रग्राहिका (Spermatheca) में संचित कर लेती हैं और कॉलोनी में वापस आकर अण्डे देती हैं छत्ते में सामान्यतया तीन प्रकार के जनन कक्ष (Brood cells) होते है। सबसे छोटे आकार के श्रमिक कक्ष (Worker cell), मध्यम आकार के नर कक्ष (Drone cells) तथा सबसे बड़े आकार का रानी कक्ष (Queen cell)। रानी मधुमक्खी दो प्रकार के अण्डे देती है। निषेचित, जिसमें 32 गुणसूत्र (Chromosomes) होते हैं जिनसे रानी तथा श्रमिक मधुमक्खियाँ विकसित होती हैं तथा अनिषेचित जिसमें 16 गुणसूत्र होते हैं, जो अनिषेकजनन (Parthenogenesis) द्वारा विकसित होकर नर मधुमक्खी बनाते हैं। अण्डे लम्बे, बेलनाकार तथा हल्के पीले रंग के होते है। रानी छत्ते के प्रत्येक जनन कक्ष में केवल एक अण्डा देती हैं जो कक्ष के एक तरफ की दीवार से चिपका रहता है। तीन दिन में अण्डोद्भेदन (Hatching) द्वारा अण्डे से लार्वा (Larva) बाहर आ जाता है।

सभी प्रकार के अण्डों से निकलनेवाले लार्वों को श्रमिकों द्वारा प्रथम तीन दिन रॉयल जेली (Royal jelly) खिलायी जाती है। रॉयल जेली शिशु (Young) श्रमिकों की पार्श्व ग्रसनीय ग्रन्थियों (Pharyngeal gland) से स्रावित होने वाला पतली जेली की तरह का सफेद स्रावण होता है। रॉयल जेली में 45.15 प्रतिशत प्रोटीन, 33.55 प्रतिशत वसा, 20.29 प्रतिशत शर्कराएँ मुख्यतया ग्लूकोज तथा लेव्यूलोज (Glucose and Levulose), 2–3 प्रतिशत खनिज पदार्थ, विटामिन्स (विटामिन 'बी' समूह के सभी विटामिन) आदि पाए जाते हैं। रॉयल जेली अत्यधिक गुणकारी भोजन है। प्रथम तीन दिन तक सभी लार्वों को रॉयल जेली खिलाने के बाद जिन लार्वो को रानी मधुमक्खी में बदलना है उन्हें तो अगले 5 दिनों तक रॉयल जेली खिलाना जारी रखा जाता हैं परन्तु जिन लार्वों से नर अथवा श्रमिक

बनने हैं उन्हें पराग मिश्रित नियन्त्रित भोजन 6–7 दिनों तक खिलाया जाता है। इसके बाद रानी कक्ष को आठवें दिन, श्रमिक कक्ष को नौवें दिन तथा नर कक्ष को दसवें दिन श्रमिकों द्वारा बन्द कर दिया जाता है। नर कक्ष की सील ऊपर की तरफ उठी रहती है जबकि अन्य कक्षों की सील चपटी होती है। सीलबन्द कक्षों के अन्दर लार्वा प्यूपा में बदल जाते हैं करीब दो सप्ताह की प्यूपा अवस्था के उपरान्त निर्गमन (Emergence) होता है और शिशु मधुमक्खियाँ बाहर आ जाती हैं। इस प्रकार मधुमक्खियाँ में पूर्ण कायान्तरण (Complete metamorphosis) होता है।

वृन्दन या प्रवास (Swarming)– किसी कॉलोनी में जब मधुमक्खियों की संख्या बहुत अधिक (Overcrowding) हो जाती है तब रानी मधुमक्खी कुछ नर तथा श्रमिक मधुमक्खियों को साथ लेकर उड़ जाती हैं और किसी अन्य स्थान पर नया छत्ता बनाकर रहने लगती हैं इस प्रवृत्ति को वृन्दन या प्रवास (Swarming) कहते हैं। वृन्दन प्रायः वसन्त ऋतु के अन्त में या ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में तब होता है जब अधिक मात्रा में भोजन उपलब्ध हो। इसके साथ ही यह क्रिया अधिकतर प्रातःकाल के समय सम्पन्न होती है। रानी मधुमक्खी के छत्ते को छोड़ते ही श्रमिक मक्खियाँ विकासशील लार्वों को रॉयल जेली खिलाना प्रारम्भ कर देती हैं जिससे ये रानी मधुमक्खियों मे परिवर्तित हो जाती है। प्रथम रानी के निर्गमन के साथही यह कक्षों में बन्द शेष विकासशील रानी मक्खियों को मार कर अपना वर्चस्व कायम कर लेती है। शीघ्र ही यह नई रानी नर मधुमक्खियों के साथ मैथुन हेतु कामद उड़ान (Nuptial flight) पर निकल जाती है।

विस्थापन (Supercedure)– जब कॉलोनी में रानी की अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है या रानी की अचानक मृत्यु हो जाती है तब इस रानी का स्थान एक नवजात तथा शक्तिशाली रानी ले लेती है। इस प्रक्रिया को विस्थापन कहते है।

प्रपलायन (Absconding)– प्रतिकूल परिस्थितियों में मधुमक्खी की सम्पूर्ण कॉलोनी का एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाने को प्रपलायन कहते है। छत्ते को छोड़ने से पूर्व अण्डे देना बन्द हो जाता है और संचित किया गया शहद चूस लिया जाता है।

वातानुकूलन (Airconditioning)– शीत ऋतु में जब कॉलोनी का ताप कम हो जाता है तब ठण्ड से बचने के लिए श्रमिक मधुमक्खियाँ छत्ते पर सधन रूप से एकत्रित हो जाती हैं और टाँगों को आपस में रगड़ती हैं जिससे गर्मी उत्पन्न हो जाती है और छत्ते का तापक्रम बढ़ जाता है। इसी प्रकार गर्मी के दिनों में जब कॉलोनी का तापक्रम बढ़ जाता है तब श्रमिक मक्खियाँ जल लाकर छत्ते पर छिड़क देती हैं और सघनता से अपने पंखों में कम्पन उत्पन्न करके जल को वाष्पित करती हैं जिससे छत्ते का ताप कम हो जाता है। इस प्रकार वातानुकूलन द्वारा मधुमक्खियाँ छत्ते के तापक्रम को नियन्त्रित करती हैं।

लूटना (Robbing)– जब कॉलोनी के आस–पास के क्षेत्र में भोजन की कमी हो जाती है उस समय एक छत्ते की मधुमक्खियाँ दूसरे छत्ते से जबरदस्ती

शहद छीनकर अथवा लूटकर ले जाती है। इस प्रकार के व्यवहार (Behaviour) को लूटना कहते हैं।

टिप्पणी

छत्ता (Hive)– छत्ता मधुमक्खियों की शिल्पकारिता या वास्तुकारिता (Architecture) का उत्कृष्ट नमूना है। छत्ते का निर्माण श्रमिक मधुमक्खियाँ अपने उदर के अधर तल पर स्थित मोम ग्रन्थियों से स्रावित मोम (Wax) से करती हैं। श्रमिक मधुमक्खियाँ इस मोम को टाँगों से खुरचकर तथा सिर में स्थित शीर्ष ग्रन्थियों (Cephalic glands) के स्राव के साथ मिलाकर पतला करके अपने मैण्डिबिल (Mandible) की सहायता से छत्ते के कक्षों (Cells) का निर्माण करती हैं। मोम की पपड़ी को उदर की स्टरनल प्लेटों (Sternal plates) मे खुरचने के लिए मक्खियों के मध्य पैर की टीबिया (Tibia) पर अन्दर की तरफ एक काँटा (Spine) पाया जाता है। कक्ष षटभुजाकार (Hexagonal) आकृति के बनाए जाते हैं। छत्ते मे दायी तथा बायीं दोनों तरफ षटभुजाकार कक्ष ऊपर से नीचे समानान्तर क्रम में व्यवस्थित रहते हैं। छत्ते के ऊपर भाग के कक्षों में शहद तथा उससे नीचे के कक्षों में पराग (Pollens) एकत्रित किया जाता है। इसके नीचे के कक्षों को जनन कक्ष कहते हैं क्योंकि इनमें अण्डों तथा लार्वों का पालन किया जाता है। ये जनन कक्ष नर, रानी तथा श्रमिकों के लिए अलग–अलग आकार के होते हैं। श्रमिकों के कक्ष आकार में सबसे छोटे परन्तु संख्या में सबसे अधिक होते हैं। नर मक्खियाँ के कक्ष अपेक्षाकृत बड़े एवं गहरे होते हैं। बन्द होने पर इसके ढक्कन (Cap) बीच में उभरे हुए रहते हैं। तथा इनके मध्य में प्रायः एक छिद्र बना रहता है। रानी मक्खी के कक्ष सबसे बड़े आकार के, अधिक गहरे, अनियमित, मूँगफली की आकृति के बनाए जाते हैं। प्रत्येक कक्ष की गहराई लगभग एक सेमी होती है। रानी के अतिरिक्त सभी प्रौढ़ छत्ते के ऊपर रेंगते हैं क्योंकि कक्षों में उनके रहने के लिए कोई स्थान नहीं होता हैं।

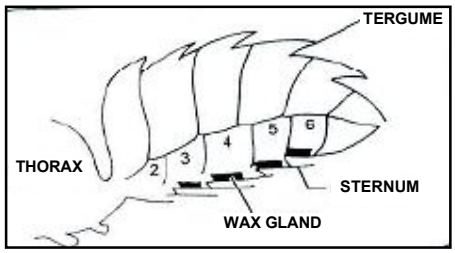

चित्र क्र. 5.9: Location of wax glands

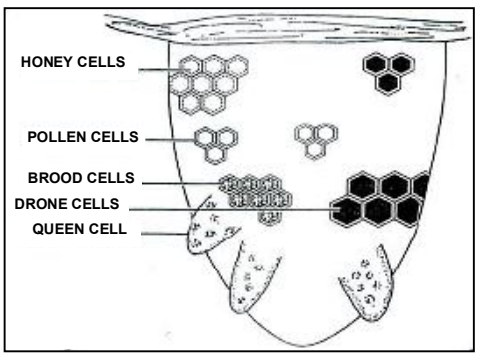

चित्र क्र. 5.10: A Bee hive showing different types of cells

टिप्पणी

प्रोपालिस तथा बाम (Propolis and Balm)– प्रोपोलिस एक चिपचिपा (Resinous) पदार्थ होता है। जो श्रमिकों द्वारा पौधों की कलियों (Buds) से एकत्रित किया जाता है। इसका उपयोग श्रमिक मधुमक्खियाँ छत्ते की दरारें बन्द करने तथा छत्ते की मरम्मत करने में करती हैं। कक्षों की आन्तरिक सतह को चिकना एवं पॉलिश करने के लिए भी एक विशेष प्रकार के प्रोपोलिस का प्रयोग किया जाता हैं जिसे बाम (Balm) कहते हैं।

पराग संचयन (Pollen Collection)– मधुमक्खियाँ फूलों से पराग का संचयन अपने पैरों की सहायता से करती हैं जिसके लिए इनके पैरों में वांछित रूपान्तरण (modification) पाया जाता है। प्रत्येक पैर कोक्सा (Coxa), ट्रोकेण्टर (Trochanter), फीमर (Femur), टीबिया (Tibia), पाँच टार्सोमियर्स से बना टार्सस (Tarsus) तथा प्रीटार्सस (Pretarsus) का बना होता है। प्रीटार्सस पर एक जोड़ी नखर (Claws) पाए जाते हैं।

पश्च पैर (Hind leg) की टीबिया (Tibia) तथा बेसीटार्सस (Basitarsus) चपटी होती है। चपटी टीबिया की बाहरी सतह पर एक नाली (Groove) पायी जाती है जो काँटों से ढकी रहती हैं इसे पराग टोकरी (Pollen basket) कहते है। टीबिया के अन्तिम भाग के किनारे–किनारे मजबूत काँटों की एक कतार पायी जाती हैं जिसे रेक (Rake) कहते हैं। चपटी बेसीटार्सस की अन्दरुनी सतह पर काँटों की कतारें पायी जाती हैं जो पराग एकत्र करने में सहायता करती हैं। इन्हें पराग कंघा (Pollen comb) कहते हैं। बेसीटार्सस के अगल सिरे पर एक उभार निकला रहता है जिसे पराग प्रेस (Pollen press) कहते हैं। बेसीटार्सस पर स्थित पराग कंघा (Pollen comb) फूल से पराग कणों को ब्रुश की तरह एकत्र करता है। एक तरफ के पराग कंघे से दूसरे तरफ के पश्च पैर की रेक पराग कणों को अलग कर लेती हैं और फिर पराग प्रेस की (Pollen press) सहायता से ये पराग कण पराग टोकरी (Pollen basket) में स्थानान्तरित कर दिए जाते हैं। कॉलोनी में आकर पराग टोकरी के पराग कण मध्य पैर की सहायता से निकालकर पराग कक्ष में भर दिए जाते है।

मधुमक्खी के अग्र पैर की मेटाटार्सस पर एक खाँच (Notch) पायी जाती है। जिसके किनारे–किनारे काँटे की तरह के बाल पाए जाते हैं। टीबिया की अन्तिम सिरे से निकला एक चपटा प्रवर्ध जिसे फीबुला (Fibula) कहते हैं, मेटाटार्सस की खाँच के ऊपर फिट हो जाता है। इस प्रकार से एक छल्ले रूपी (Ring) रचना बन जाती है। इस छल्ले रूपी रचना को प्रसाधन अंग (Toilet organ) कहते हैं। यह प्रसाधन अंग एण्टिना (Antenna) तथा मुखांगों पर चिपके पराग कणों को छुड़ाने के काम मे लाया जाता है।

टिप्पणी

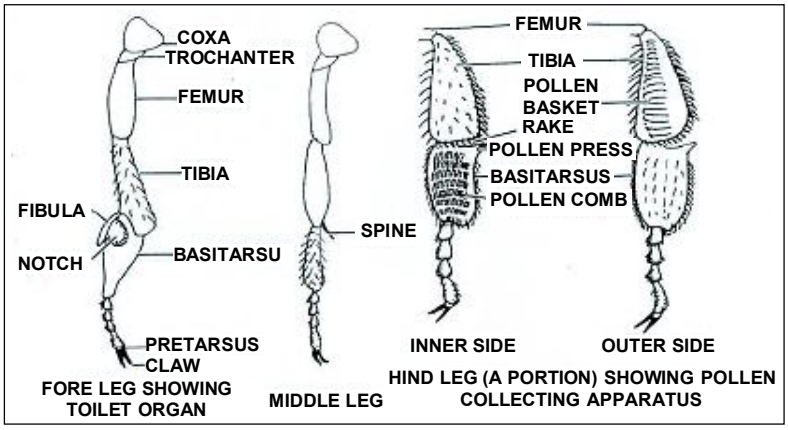

चित्र क्र. 5.11: Legs of honey bee

5.7 मधुमक्खी के उत्पाद (Products of Honey Bee)

मधुमक्खियाँ शहद तथा मोम का उत्पादन करती हैं–

1. शहद या मधु (Honey)– श्रमिक मधुमक्खियाँ फूलों की मकरन्द ग्रन्थियों (Nectar glands or Nectaries) द्वारा स्रावित मकरन्द (Nectar) से शहद का निर्माण करती है। ये मधुमक्खियाँ अपने काटने और चूसने वाले मुखांगों (Biting and sucking mouth parts) के शुण्ड (Proboscis) द्वारा फूलों से मकरन्द चूसकर अपने अन्नपुट में एकत्रित करती हैं। अन्नपुट (Corp) में लार ग्रन्थियों से लार आकर मकरन्द में मिल जाती है। लार में उपस्थित एन्जाइम्स मकरन्द के साथ रासायनिक क्रिया करके मकरन्द को शहद में बदल देते हैं। वास्तव में मकरन्द में उपस्थित सुक्रोज (Sucrose) शर्करा इन्वर्टेज (Invertase) एन्जाइम द्वारा डेक्स्ट्रोज या ग्लूकोज (Dextrose of glucose) तथा लेव्यूलोज या फ्रक्टोज (Levulose or fructose) में परिवर्तित कर दी जाती है। इसके साथ ही इसमें से जल की मात्रा कम हो जाती है। मधुमक्खियाँ इस शहद को छत्ते में उगल (Regurgitate) देती हैं फिर श्रमिक पंखों से हवा करके जल का वाष्पीकरण करके शहद को गाढ़ा कर देती हैं। इसके पश्चात् कक्ष को मोक के ढक्कन से बन्द कर देती है। गाढ़ा किया गया शहद ही परिपक्व शहद होता है।

शहद मीठे स्वाद वाला एक गाढ़ा तरल (Viscuos fluid) पदार्थ है जो रंगहीन अथवा गहरे बादामी रंग का होता है। इसकी सुगन्ध विभिन्न फूलों से एकत्र किए गए मकरन्द के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। शहद का रासायनिक संघटन (Chemical constitution) निम्न प्रकार से होता है–

संघटक (Constituents)	**प्रतिशत**
जल	17
फ्रक्टोज (लेव्यूलोज)	38
ग्लुकोज	32

टिप्पणी

सूक्रोज	1.3
अन्य शर्कराएँ (माल्टोज, रैफीनोज आदि)	9
सभी अम्ल	0.57
ऐश	0.17
नाइट्रोजन	0.64
अन्य (एन्जाइम्स, विटामिन्स, रंग, लवण आदि)	2.92

शहद में लगभग 1 प्रतिशत खनिज लवण तथा सूक्ष्म तत्व पाए जाते हैं जिनमें कैल्शियम, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, सल्फर, फॉस्फोरस, लौह, आयोडीन, कॉपर, सिलिकन प्रमुख है। विटामिनों में प्रायः सभी विटामिन 'बी' समूह (Vitamin B Complex) तथा विटामिन 'सी' (Vitamin C) प्रमुख रूप से पाए जाते हैं।

एक किलोग्राम शहद में लगभग 3,500 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है जो अन्य खाद्य पदार्थों की तुलना में बहुत अधिक है।

मधुमक्खी एक चक्कर में लगभग 1 से 3 किमी की दूरी तय करती हैं और लगभग 400 ग्राम मकरन्द एकत्रित करने के लिए इसे लगभग 40,000 से 80,000 चक्कर लगाने पड़ते हैं जो पृथ्वी के दो चक्कर लगाने के बराबर है।

कणिकायन (Granulation)– लम्बे समय तक शहद को संचित करने पर इसका कणिकायन हो जाता है। यह शुद्ध शहद का एक प्रामाणिक लक्षण है। ये कणिकाएँ ग्लूकोज के जल से मिल जाने के कारण बनती है। लेव्यूलोज जल में कम घुलनशील होता हैं अतः यह ऊपर बना रहता है।

किण्वन (Fermentation)– कणिकायन के बाद शहद का किण्वन हो जाता है। यह किण्वन वायु, पराग तथा मिट्टी में उपस्थित यीस्ट (Yeasts) द्वारा शर्कराओं पर क्रिया करने के कारण होता है।

शहद के उपयोग (Uses of Honey)– शहद अत्याधिक पौष्टिक पदार्थ है। इसमें उपस्थित ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज कार्बोहाइड्रेट मनुष्य के लिए ऊर्जा के सर्वोत्तम स्रोत हैं। मानव रक्त में पाए जाने वाले अधिकतर खनिज तत्व शहद में भी पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त विटामिन 'बी' समूह के अधिकतर विटामिन तथा कुछ अन्य विटामिन भी शहद में पाए जाते हैं। बच्चों एवं बुजुर्गों के लिए यह एक प्राकृतिक पौष्टिक टॉनिक का कार्य करता है।

शहद बैक्टीरियारोधी (Antibacterial) भी होता है। अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा किए गए प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला है कि टाइफॉइड (Typhoid), निमोनिया (Pneumonia), पेचिश (Dysentery) तथा अन्य बीमारियों से सम्बन्धित जीवाणु शुद्ध शहर में शीघ्र ही मर जाते हैं अतः यह एक अच्छे प्रतिजैविक (Antibiotic) का कार्य करता है। इसका उपयोग दवाई बनाने में भी किया जा रहा है।

टिप्पणी

शरीर पर चोट लगने या जल जाने पर शहद को रोगाणुरोधक (Antiseptic) तथा प्रतिजैविक (Antibiotic) मलहम के रूप में प्रयोग किया जाता हे। बेकिंग (Baking) तथा मिठाई उद्योग (Confectionary) में इसका प्रयोग किया जाता है। त्वचा को सुन्दर एवं कोमल बनाये रखने के लिए भी यह प्रयुक्त होता है।

2. मधुमक्खी मोम (Bee Wax)– मधुमक्खियों के उदर में अधर तल पर स्थित मोम ग्रन्थियों से मोम स्रावित होता है। यह हल्के पीले रंग का होता है। इसका विशिष्ट घनत्व (Specific gravity) 0.955–0.975 गलनांक (Melting point) 62–65°C, आदृढ़नांक (Setting point) 61–62°C, अम्लीय मान (Acid value) 15–19 तथा ईस्टर मान (Easter Value) 70–80 होती है। मधुमक्खी मोम का रासायनिक संघटन अग्रलिखित होता है –

रासायनिक संघटक	प्रतिशत (लगभग)
वसीय तथा मोमी अम्लों के एल्काइल ईस्टर	73.0
वसीय अम्लों के कोलेस्टोराइल ईस्टर	1.0
लैक्टोन्स	0.5
स्वतन्त्र मोमी अम्ल	13.0
हाइड्रोकार्बन्स	12.0
नमी	1.0

एपिस मेलीफेरा *(Apis mellifera)*– का मोम सबसे अच्छा होता है। भारत मे लगभग 70–80 प्रतिशत मोम ऐपिस डॉर्सेटा (Apis dorsata) से उत्पादित हेाता है। ए. डॉर्सेटा तथा ए. इण्डिका द्वारा उत्पादित मोम का अम्लीय मान कम तथा ईस्टर मान अधिक होता है।

मधुमक्खी मोम का उपयोग (Use of Bee Wax)– सम्पूर्ण विश्व में कुल उत्पादित मधुमक्खी मोम के लगभग 70 प्रतिशत भाग का उपयोग प्रसाधन सामग्री (Cosmetics) बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त औषधीय (Pharmaceutical) उद्योग में यह मलहम (Ointment) बनाने तथा गोलियों के आवरण (Coating of pills) बनाने के काम मे आता है। घरेलू मोमबत्ती, विभिन्न प्रकार की, पॉलिश (Polish) जलरोधी एवं कार्बन पेपर, स्याही, पेण्ट (Paint), बिजली का सामान बनाने में भी मधुमक्खी मोम प्रयुक्त होता है।

3. मधुमक्खी विष (Bee Venom)– रानी तथा श्रमिक मधुमक्खियों की डंक ग्रंन्थि (Sting gland) या विष ग्रन्थि (Poison gland) में विष बनता है जिसें ये डंक (Poison sting) की सहायता से दुश्मन के शरीर में पहुँचा कर सुरक्षा का कार्य करती है। मधुमक्खी के विष को होम्योपैथी, एलोपैथी तथा प्राकृतिक उपचार पद्धतियों में प्रयोग किया जाता है तथा इस दिशा में कई स्थानों पर विभिन्न प्रकार के परीक्षण भी किए जा रहे हैं।

5.8 मधुमक्खी पालन (Bee Keeping)

टिप्पणी

मधुमक्खी पालन की निम्नलिखित दो विधियाँ हैं–

1. पुरातन या देशी विधि (Primitive or Indigenous Method)
2. आधुनिक विधि (Modern Method)

1. पुरातन या देशी विधि (Primitive or Indigenous Method)

पहले मधुमक्खियों को पालने हेतु अनेक प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाता था परन्तु ये साधन किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं तैयार किए जाते थे। इसके अतिरिक्त मधुमक्खी पालन में भी अनिश्चय (Uncertainty) की स्थिति बनी रहती थी। क्योकि यह निश्चित नहीं रहता था कि उपलब्ध कराए गए साधन में मधुमक्खियाँ रहें या न रहें और यदि रहें भी तो उसमें बनी रहें।

मधुमक्खियाँ या तो किसी दीवार अथवा पेड़ के खोखलों में छत्ते बनाती हैं या छत्ता निर्मित करने हेतु कोई टोकरी, बक्सा या अन्य उपयुक्त खोखला स्थान उपलब्ध कराया जाता है। प्रथम प्रकार के छत्ते को स्थिर छत्ता (Fixed hive) कहते हैं। जिसमें मधुमक्खियों के आवागमन के लिए एक ही छिद्र होता है। द्वितीय प्रकार के छत्ते को चल छत्ता (Movable hive) कहते हैं जिसपें मधुमक्खियों के आगम एवं निर्गम हेतु अलग–अलग व्यवस्था बनायी जाती हैं।

देशी विधि में छत्ते से शहद निकालने की विधि भी अत्यंत दूषित होती थी। इस विधि में पहले छत्ते के पास किसी जलती हुई वस्तु को ले जाते है जिससे कुछ मक्खियाँ मर जाती हैं और शेष भाग जाती है। इसके अतिरिक्त छत्ते के नीचे धुआँ (Smoke) करके भी मधुमक्खियों को भगा दिया जाता है। छत्ते से मधुमक्खियों को भगाने के बाद उसे निकाल लेते हैं। अब छत्ते को कसकर निचोड़ा (Squeeze) जाता है जिससे शहद निकल आता है। इस प्रकार से शहद निकालने के कई नुकसान होते हैं। एक तो शहद दूषित हो जाता है। दूसरे मधुमक्खियों के अण्डे तथा लार्वा भी नष्ट हो जाते हैं तीसरे मधुमक्खियों को फिर से छत्ता बनाना पड़ता है जिसमें अतिरिक्त ऊजा लगाने के कारण शहद का उत्पादन भी कम हो जाता है।

2. आधुनिक विधि (Modern Method)

आधुनिक विधि से मधमुक्खी पालन में सर्वाधिक महत्व मधुमक्खी गृह (Bee hive) को दिया जाता है। 1851 में लैंग्स्ट्रॉथ (Langstroth) ने यह खोज की कि मधुमक्खियाँ दो मधुकोशों (Combs) के मध्य 0.62–0.96 सेमी की जगह छोड़ती है। इस रिक्त जगह को मौनान्तर (Bee space) कहते है। दो मधुकोशो के मध्य का यह मौनान्तर इतना अधिक नहीं होता कि इसमें मधुमक्खियाँ नया मधुकोश (Comb) निर्मित कर सकें परन्तु यह जगह इनके आवागमन के लिए पर्याप्त होती है। यह भी देखा गया है कि यदि मौनान्तर 0.50 सेमी से कम हो तो मधुमक्खियाँ इसे प्रोपोलिस (Propolis) से भर देती हैं। लैंग्स्ट्रॉथ की इसी खोज ने फ्रेमयुक्त

चल मधुमक्खी गृहों या छत्तों (Movable hives with frames) के निर्माण को दिशा दी।

टिप्पणी

चल मधुमक्खी गृहों (Moveble hives) में मधुमक्खियों को मधुकोशों (Combs) के निर्माण हेतु चौखटें (Frames) उपलब्ध करायी जाती है। प्रत्येक छत्ते में 2 या 2 से अधिक डिब्बे (Boxes) होते है जिनमें चौखटें व्यवस्थित की जाती है। निचले बक्से या डिब्बे जनन कक्ष (Brood chamber) का कार्य करते हैं तथा ऊपरी बक्से या डिब्बे शहद कक्ष (Honey chamber) का कार्य करते है। विभिन्न जगहों पर विभिन्न प्रकार के फ्रेमयुक्त छत्ते (Frame hives) तैयार (Design) किए गए हैं परन्तु सब एक ही सिद्धान्त पर आधारित है केवल उनके आकार एवं चौखटों (Frames) की संख्या में विभिन्नता पायी जाती हैं, कुछ छत्तों के विवरण सारणी 5.1 में दिए जा रहे हैं।

सारणी क्र. 5.1

छत्तो के प्रकार (Types of hives)	**जनन कक्ष में चौखटों की संख्या (Number of Frames in Brood Chamber)**	**जनन कक्ष में चौखटों का आकार (सेमी) (Size of Frames in Brood Chamber (cm)**
1. न्यूटन छत्ता (Newton Hive)	7	20.6 × 14.5
2. लैंग्स्ट्रॉथ छत्ता (Langstroth hive)	10–11	44.8 × 23
3. परिवर्तित डेडेण्ट (Modified dedant)	11–12	46.2 × 28.1
4. ज्यूलकोट (Jeolilot)	8–10	30 × 18

आजकल भारत मे प्रारूपी चल छत्ते (Typical movable hive) का उपयोग किया जाता है जिसे आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा बनाया जा सकता है। इसलिए इसे कहीं भी किसी भी प्रकार की जलवायु में प्रयोग में लाया जा सकता है।

5.9 आधुनिक विधि से मधुमक्खी पालन हेतु आवश्यक उपकरण (Necessary Equipments for Modern Frame Hive Method)

आधुनिक विधि से मधुमक्खी पालन हेतु निम्नलिखित उपकरणों की आवश्यकता होती है–

1. मधुमक्खी छत्ता (Bee hive)
2. रानी अपवर्जक (Queen excluder)
3. छत्ता आधार (Comb foundation)
4. ढक्कन खोलने का चाकू (Encapping knife)
5. शहद निष्कर्षक (Honey extraction)
6. अन्य उपकरण (Other equipments)

1. **मधुमक्खी छत्ता (Bee hive)**– यह लकड़ी का बना दुमंजिली (Double storeyed) बक्सा होता है। जिसमें दो कक्ष होते हैं। निचले तीन चौथाई हिस्से मे जनन कक्ष (Breed chamber) होता है जबकि उपर एक चौथाई भाग में शहद कक्ष (Honey chamber) होता है। दोनों कक्षों को एक दूसरे से अलग किया जा सकता है। दोनों कक्षों के मध्य रानी अपवर्जक (Queen excluder) लगा रहता है। जनन कक्ष अण्डों एवं शिशुओं के लिए तथा शहद कक्ष केवल शहद एकत्रित करने के लिए प्रयुक्त होता है। यह दुमंजिला बक्सा एक स्टैण्ड (Stand) पर रखा जाता है जिसके पायों को कटोरों (bowls) में रखकर जल भर दिया जाता है ताकि चीटियां न चढ़ सकें।

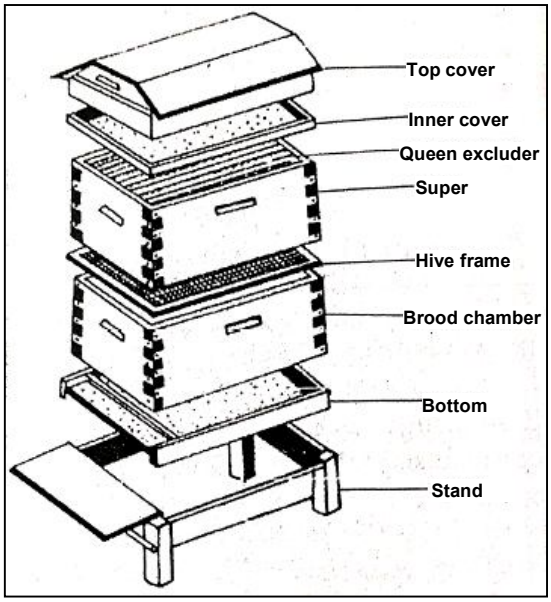

चित्र क्र. 5.12: Typical Movable Hive

टिप्पणी

निचले भाग में व्यवस्थित बड़े आकार के जनन कक्ष में ऊर्ध्वाधर स्थिति में 5 से 10 चौखटें एक–दूसरे से 0.96 सेमी के मौनान्तर पर रखे जाते हैं। प्रत्येक फ्रेम मे तारों की सहायता से मोमी छत्ताधार (Comb foundation) लगाया जाता है। जिसमें बने षट्कोणीय निशानों को आधार बनाकर श्रमिक छत्ते का निर्माण करते हैं। ये छत्ते दोनों दिशाओं में बनाये जाते हैं।

ऊपरी भाग में व्यवस्थित छोटे आकार के शहद कक्ष में भी जनन कक्ष की तरह छत्ताधार युक्त चौखटें लगी रहती हैं परन्तु इन चौखटों की गहराई कम होती है।

जनन कक्ष में एक छोटा प्रवेश छिद्र होता है जिसके द्वारा एक समय में एक ही मधुमक्खी प्रवेश कर सकती है या बाहर निकल सकती है।

शहद कक्ष को ऊपर से दो आवरणों द्वारा ढका जाता है। अन्दर वाले आवरण में अनेक छिद्र होते हैं जिनके द्वारा निरन्तर स्वच्छ वायु संचारित होती रहती है। ऊपरवाला आवरण तिरछा या ढालू होता है जो वर्षा होने पर जल अन्दर नहीं जाने देता।

2. **रानी अपवर्जक (Queen excluder)**– यह छिद्रित जिंक शीट (Pertorated Zinc Sheet) अथवा तार की जाली का बना होता है। जिसके छिद्रो का आकार 2.3–3.5 मिमी होता है। यह रानी अपवर्जक जनन कक्ष को शहद कक्ष से अलग करती है। इसके छिद्रों से श्रमिक मधुमक्खियाँ तो आ–जा सकती हैं परन्तु रानी मधुमक्खी नहीं निकल सकती क्योंकि रानी मधुमक्खी का वक्ष 4.3–4.5 मिमी चौड़ा होता है जो कि छिद्रों के आकार से अधिक है। इस प्रकार जनन कक्ष सें श्रमिक ही शहद कक्ष में शहद एकत्रित करने हेतु जा पाते हैं।

3. **छत्ता आधार (Comb foundation)**– यह मधुमक्खी के मोम से आलेपित शीट होती हैं जिस पर षट्कोणीय निशान बने रहते हैं जो श्रमिकों को कक्ष बनाने के लिए आधार प्रदान करते हैं। विभिन्न प्रजातियों की मधुमक्खिों के लिए विभिन्न आकार के षट्कोणीय निशानों वाली छत्ता आधार शीट बनायी जाती है। यह छत्ता आधार मोमी शीट की एक मशीन के दो बेलनों, जिनमें षट्कोणीय उभार बने होते हैं, के मध्य से गुजार कर बनाया जाता है।

4. **ढक्कन खोलने का चाकू (Encapping Knife)**– यह चौड़े फलक एवं सुकोले नोक वाला चाकू होता है। जिसे गर्म करके शहद के कक्षो की टोपी पर छुआने से टोपी पिघलकर खुल जाती है।

5. **शहद निष्कर्षक (Honey extraction)**– यह एक बड़ा ड्रम होता है। जिसके अन्दर एक जालीदार डिब्बा लगा रहता है। जिसे ड्रम के बाहर लगी जाली द्वारा घुमाया जा सकता है। ड्रम की पेंदी अन्दर की तरफ उभरी रहती है। तथा शहद बाहर निकालने के लिए एक टोटी भी लगी रहती है। अन्दर के जालीदार डिब्बे में शहद से भर छत्ते को रखकर डिब्बे को घुमाया जाता है जिससे अपकेन्द्रीय बल (Centrifugal force) के कारण

कक्षों से शहद बाहर आकर जाली से होता हुआ इस में एकत्रित हो जाता है।

टिप्पणी

6. **अन्य उपकरण (Other equipments)**– उपर्युक्त उपकरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे मोटे उपकरणों की आवश्यकता होती है जिनके नाम नीचे दिए जा रहे हैं–

   (i) मुख वरण– यह जाली का बना मुखौटा होता है जिसे मक्खियों के डंक से बचने के लिए चेहरे को ढ़कने हेतु पहना जाता है।

   (ii) दस्ताने– ये प्लास्टिक अथवा चमड़े के बने होते हैं।

   (iii) छत्ता उपकरण– यह लोहे की मजबूत पट्टी होती है जो एक ओर धारदार होती है। इसकी सहायता से फ्रेमों को अलग किया जाता है तथा प्रोपोलिस हटाया जाता है।

   (iv) खुरचनी– यह भी मजबूत टीन की पत्ती होती है जो एक सिरे पर मुड़ी हुई तथा पैनी होती है जिनसे खुरचकर छत्ते की सफाई की जाती है।

   (v) धुँआरा– यह एक नोजल (Nozzle) युक्त टीन का डिब्बा होता है जिसके अन्दर से बिसराने वाली धुएँ की सहायता से मधुमक्खियाँ बी शान्त किया जाता है।

   (vi) हथ जाल– इसका प्रयोग मधुमक्खियों को पकड़ने के लिए किया जाता है।

   (vii) रानी पिंजड़ा– इसे रानी मधुमक्खी के परिवहन हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

5.9.1 छत्ते का प्रबन्धन (Management of Hive)

मधुमक्खी पालन के लिए मधुमक्खियों की व्यवस्था करना एक प्रमुख चरण हैं। मधुमक्खियों को पकड़ने का सबसे उपयुक्त समय तब होता है जब वृन्दन (Swarming) के उपरान्त ये किसी स्थान पर नया छत्ता बनाने के लिए बैठती हैं। ऐसी जगह एक जालीदार कपड़े की बनी टोकरीनुमा थेले को लटका देते हैं। थैले के अन्दर की सतह पर शहद लगा देते हैं। कुछ ही समय में मधुमक्खियाँ थैले में आकर बैठ जाती हैं जिन्हे छत्तें के जनन कक्ष में स्थानान्तरित कर देते हैं साथ ही चीनी के घोल में डूबी रूई (Cotton) रख देते है। धीरे–धीरे मधुमक्खियाँ छत्ता आधार पर छत्ते का निर्माण कर लेती है।

उपर्युक्त विधि के अतिरिक्त कॉलोनी स्थापन के लिए किसी स्थापित छत्ते को निकालकर उसके टुकड़ों को जनन कक्ष के चौखटों में छत्ताधार (Comb foundation) के साथ लगा देते हैं। आहार के रूप में चीनी के घोल की व्यवस्था कर देते है। रानी मधुमक्खी के पंख के दो–तिहाई भाग को काट दिया जाता है।

रानी मधुमक्खी जब पुरानी पड़ जाती है या उसकी अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है तब रानी मधुमक्खी को प्रतिस्थापित करना आवश्यक होता है। ऐसे समय

टिप्पणी

पुरानी रानी मधुमक्खी को छत्ते से निकाल लेते हैं तथा उसके स्थान पर नयी रानी मधुमक्खी को रख देते है। इसके लिए तार की जाली का एक बेलनाकार बर्तन लेते हैं जिसके छिद्र इतने छोटे होते हैं कि उसमें से होकर श्रमिक मधुमक्खियाँ अन्दर न जा सकें। अब इस बर्तन के एक सिरे पर कॉर्क का ढ़क्कन लगा कर बन्द कर देते है। अब इसमें रानी मधुमक्खी रखकर दूसरे सिरे को कागज के टुकड़े से बन्द कर देते हैं। रानी सहित यह बर्तन छत्ते के जनन कक्ष में रख देते हैं। रानी मधुमक्खी श्रमिकों के लिए रानी पदार्थ (Queen substance) निकालती है। जिसके बदले में श्रमिक उसे भोजन कराती है। कुछ समय बाद श्रमिक कागज के ढक्कन को काट देती हैं और रानी मधुमक्खी को मुक्त करा लेती है। इस प्रकार नई रानी मधुमक्खी को श्रमिक स्वीकार कर लेती हैं।

छत्ते को ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ भोजन एवं जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो। छत्ते का समय–समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिए। गर्मी में या तेज धूप के समय छत्ते को छायादार ठण्डे स्थान पर स्थानान्तरित करते रहना चाहिए। रानी मधुमक्खी को प्रत्येक वर्ष बदलते रहना चाहिए। इस प्रकार उपर्युक्त बातों का यदि ध्यान रखकर मधुमक्खियों को अनुकूलतम वातावरण उपलब्ध कराया जाता है तो मधुमक्खियाँ वृन्दन (Swarming) नहीं करती हैं। और छत्ते की उत्पादकता अच्छी बनी रहती है।

5.9.2 मधुमक्खियों की बीमारियाँ (Diseases of Honey Bee)

मधुमक्खियों में अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती है। जिनमें निम्नलिखित बीमारियाँ प्रमुख हैं–

1. **नॉसीमा रोग (Nosema disease)**– यह रोग नॉसीमा एपिस (Nosema apis) नामक स्पोरोजोआ वर्ग (Class Sporozoa) के प्रोटोजोअन (Protozoan) द्वारा होता है। यह परजीवी मधुमक्खी की मध्य आन्त्र (Midgut) की एपिथीलियम (Epithelium) पर आक्रमण करता है जिससे मधुमक्खी को दस्त होने लगते हैं तथा उसका पेट फूल जाता है। संक्रमित मक्खी के मल के साथ निकले परजीवी सफाई के दौरान श्रमिकों के आहार नाल में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार संक्रमण लगातार बढ़ता चला जाता है। यह बीमारी मुख्यतया ठण्डे देशों में होती है। गर्म देशों मे सर्दी की ऋतु में इस संक्रामक बीमारी का प्रकोप होता है।

   इस बीमारी से मधुमक्खियों को बचाने के लिए जनन कक्षों एवं चौखटों को ग्लेसियल ऐसीटिक अम्ल (Glacial acetic acid) या 40 प्रतिशत फॉर्मेलीन (Formaline) से धूमण (Fumigate) करना चाहिए। परन्तु ऐसे समय मधुमक्खियों को नए स्थान पर स्थानान्तरित कर देना चाहिए।

2. **एकैरीन बीमारी (Acarine disease)**– यह बीमारी एकेरेपिस वूडाई (Acarapis woodi) नामक परजीवी बरूथी (Mite) के मधुमक्खियों की ट्रैकिया (Trachea) में घुस जाने से होती है। यह बरूथी ट्रैकिया में अण्डे दे देती है जिससे मधुमक्खी का श्वसन अवरूद्ध हो जाता है और वह मर

जाती है। प्रभावित मधुमक्खी के पंख खुलकर अंग्रेजी के अक्षर के 'K' के आकार में हो जाते हैं। इसके उपचार के लिए मिथाइल सैलीसिलेट (Methyl salycilate) के घोल मे रूई डुबाकर छत्ते के नीचे रख देना चाहिए। रूई से निकलने वाली मिथाइल सैलीसिलेट की घूम से बरूथी मर जाती है। इस बीमारी को आइसल ऑफ ह्वाइट (Isle of Wight) भी कहते है।

3. **अमीबीय बीमारी (Amoebic disease)**– यह बीमारी भी मालपिगअमीबा मेलीफिसी (Malpighamoeba mellificae) नामक अमीबा के संक्रमण से होती है। यह अमीबा मधुमक्खियों के माल्पीजियन नलिकाओं (Malpighian tubules) में रहता है और इसके प्रभाव से मधुमक्खियों को पेचिश होने लगती है। इस अमीबा के कोष्ठ (Cyst) मधुमक्खी के मल के साथ बाहर आते हैं और नई मधुमक्खियों में प्रवेश कर जाते हैं। इस बीमारी की रोकथाम नॉसीमा रोग की तरह की जाती है।

4. **लकवा (Paralysis)**– यह बीमारी विषाणुओं (Virus) के संक्रमण से होती है। इस बीमारी में मधुमक्खी लड़खड़ाने एवं कॉपने लगती है। वह उड़ नहीं पाती और रेंगते–रेंगते मर जाती है। इस बीमारी का कोई सन्तोषजनक उपचार नहीं हैं केवल नियमित पौष्टिक आहार देने पर एवं साफ सफाई रखकर इस बीमारी से मधुमक्खियों को बचाया जा सकता है।

5. **शिशु बीमारियाँ (Brood diseases)**– पेरीसिस्टिक एपिस (Pericystic apis) एवं एस्पर्जिलस फ्लेवस (Aspergillus/flavus) नामक कवक मधुमक्खी के लार्वों को संक्रमित करते हैं। तथा इनके माइसीलियम (Mycelium) वृद्धि करके लार्वों के शरीर को भर देते हैं जिससे लार्वों की मृत्यु हो जाती है। इस बीमारी का कोई भी उपचार नहीं है। इससे बचने के लिए छत्ते में नमी होने देना चाहिए तथा छत्ते की सफाई करते रहना चाहिए। संक्रमित छत्ते को तुरन्त अलग करके नष्ट कर देना चाहिए।

इसी प्रकार बैसिलस लार्वे (Bacillus larvae) एवं स्ट्रेप्टोकोकस एपिस (Streptococcus apis) नामक जीवाणु भी मधुमक्खी के लार्वों को संक्रमित करके मार देते हैं। संक्रमित लार्वों से दुर्गन्ध आने लगती है। ये जीवाणु बीजाणुओं (spores) के माध्यम से संक्रमण करते हैं जो शहद के साथ मधुमक्खियों में प्रवेश करते हैं। एक बार संक्रमित हो जाने पर यह बीमारी फैलती चली जाती है। और मधुमक्खियों के लार्वों की सामूहिक मृत्यु हो जाती है। ये जीवाणु जनित बीमारियाँ ठण्डे देशों में होती हैं। गर्म देशों में बहुत कम संक्रमण होता है। बीमारी का कोई उपचार नहीं है। केवल संक्रमित अवस्थाओं को छत्ते या मधुकोशों सहित मिट्टी में दबा देना चाहिए अथवा जला देना चाहिए।

5.9.3 मधुमक्खियों के शत्रू (Enemies of Honey Bees)

भारत में मधुमक्खी पालन उद्योग को परजीवियों की तुलना में प्राकृतिक शत्रुओं से कहीं अधिक खतरा रहता है। मधुमक्खियों के निम्नलिखित शत्रु प्रमुख थे–

टिप्पणी

1. **चींटियाँ (Ants)**– चींटियों की कई प्रजातियाँ, जैसे– लाल चींटी, डोराइलस लेबियेटस (Red ant, Dorylus labiatus), काली चींटी, डोराइलस ओरिएन्टेलिस (Black ant, Dorylus orientalis), बढ़ई चींटी, कॉम्पोनोटस कम्प्रेसस (Carpenter ant, Componotus compresus) आक्रमणकारी होती हैं जो अण्डों, लार्वों, शहद एवं पराग को खा जाती हैं और भारी नुकसान करती हैं अतः छत्ते के आस–पास स्थित चींटियों के घोंसलो (Nests) को नष्ट कर देना चाहिए। कोरोसिव सब्लीमेंट (Corrosive sublimate); जैसे – विकर्षकों (Repellent) का प्रयोग करना चाहिए।

2. **बर्रे (Wasps)**– बर्रों की कई प्रजातियाँ; जैसे – फिलेन्थस रामक्रिष्नी (Philanthus ramkrishnae), फिलेन्थस ट्राइएन्गलम (Philanthus trianglum), वेस्पा ओरिएन्टेलिस (Vespa orientalis) वेस्पा मैग्नीफेरा (Vespa magnifera) आदि मधुमक्खियों को उड़ते समय या छत्ते से पकड़कर खा जाती हैं और भारी नुकसान पहुँचाती है। अतः इन बर्रों के छत्तों को मधुमक्खी ग्रह के आस–पास से हटा देनी चाहिए।

3. **शलभ (Moths)**– चींटियों तथा बर्रों की भाँति शलभों की भी कई प्रजातियाँ मधुमक्खियों को भारी क्षति पहुँचाती हैं। डेय्स हेड हॉक शलभ, एकेरॉन्सिया स्टिक्स (Death's Head Hawk Moth, Acherontia styx) काफी बड़े आकार का शलभ होता है जो रात के समय शहद एवं छत्ते को नुकसान पहुँचाता है। यह शहद को चूस जाता हैं। इसके अतिरिक्त वृहद् मोमी शलभ, गैलेरिया मेलोनेला (Greater Wax Moth, Galleria mellonella) अपने अण्डे छत्तों पर देती है। अण्डों से निकलने वाले लार्वा छत्तें की भेदकर अन्दर पहुँच जाते हैं और पराग खाते है। इसके अतिरिक्त शलभ के ये लार्वा रेशम स्रावित करते हैं जो अपने जाल में मधुकोशों को फँसाकर बन्द कर दे हैं। वैसे तो मधुमक्खियाँ स्वयं इन लार्वों को पकड़कर हटाती रहती हैं परन्तु आवश्यकता पड़ने पर पैराडाइक्लोरोबेन्जीन (Paradichlorobenzene) नामक विकर्षक (Repellent) का प्रयोग करके इन शलभों से मधुमक्खियों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

4. **बीटल (Beetles)**– टेनिब्रियोनिडी कुल (tenebrionidae Family) का कीट प्लेटीबोलियम अल्वेयेरियम (Platybolium alvearium) छत्तों से शहद चुनकर खा जाते हैं। पैराडाइक्लोरोबेन्जीन के प्रयोग से इस बीटल को रोका जा सकता है।

5. **वैराआ (Varroa)**– यह एक बरूथी (Mite) है जो मधुमक्खियों के शरीर के विभिन्न भागों से चिपककर अपना भोजन चूसती है। गन्धक (Sulphur) के छिड़काव (Dusting) से इनसे मधुमक्खियों को बचाया जा सकता है।

6. **छिपकली तथा मेंढ़क (Lizards and Frogs)**– ये कीटभक्षी जन्तु मधुमक्खियों की विभिन्न अवस्थाओं को खाते हैं अतः इनसे मधुमक्खियों को

बचाने हेतु छत्ते को स्टैन्ड (Stand) पर रखना चाहिए तथा लगातार निगरानी रखनी चाहिए।

टिप्पणी

7. **पक्षी (Birds), कौवे (Crows)**– मेरोप्स (Merops)– नीलकण्ठ आदि पक्षी मधुमक्खियों को खाते है। अतः लगातार निगरानी करके इन पक्षियों के आक्रमण से मधुमक्खियों को बचाया जा सकता है।
8. **स्तनी (Mammals)**– काँटेदार चूहा हेजहॉग (Hedgehog), चूहे (Mice), भालू (Bear), आदि कई स्तनी जन्तु भी शहद की मक्खियों के दुश्मन है।

5.10 भारत मे मधुमक्खी पालन (Apiculture in India)

शहद उत्पादन कृषि उद्योग की श्रेणी में आता है। संयुक्त राष्ट्र कृषि एवं खाद्य संगठन के अनुसार शहद भी सोने की तरह मुद्रा अर्जित करने का अच्छा स्रोत है। यह एक कायाकल्पकारी जीवन्त और लाभकारी पदार्थ है। अतः विश्व बाजार में इसकी कीमत बढ़ती जा रही है। भारत में मधुमक्खी पालन एवं शहद उत्पादन अपनी शिशु अवस्था में ही है। आज भी भारत के कई राज्यों में लोग पुराने तरीके से शहद निकालते है। ऐसे मधुमक्खी पालकों को मधुमक्खी पालन के आधुनिक तरीकों का प्रशिक्षण देना आवश्यक हैं। खादी एवं ग्रामोद्योग कमीशन (Khadi and Village Industries Commission, KVIC) इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील है। भारत में निम्नलिखित स्थानों पर मधुमक्खी पालन हेतु प्रशिक्षण दिया जा रहा है–

1. राजकीय मौनग्रह, ज्यूलीकोट, नैनीताल (Government Apiary, Jeolikote, Nainital)
2. मागनवाडी मौनग्रह, वर्धा (Maganwadi Apiary, Wardha)
3. राजकीय मधुमक्खी फार्म, कुलू (Government Bee Farm, Kulu)
4. कृशि महाविद्यालय, कोयम्बटूर (Agriculture College, Coimbatore)
5. मधुमक्खी पालन केन्द्र, महाबलेश्वर, (Bee Keeping Centre, Mahabaleshwar)

उपर्युक्त के अतिरिक्त अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग कमीशन, मुम्बई (All India Khadi and Village Industries Commission, Mumbai) भी मधुमक्खियों एवं मधुमक्खी पालन से सम्बन्धित सभी जानकारियाँ उपलब्ध करा रहा है।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

14. एपीकल्चर के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है–

(अ) शहद का उत्पादन करना (ब) रेशम का उत्पादन करना

(क) मछली उत्पादन करना (ड) उपरोक्त सभी।

टिप्पणी

15. भारत में आधुनिक मधुमक्खी पालन का जनक कहा जाता है।
(अ) जान डगलस (ब) फ्रान्सिस न्यूटन
(क) एल. लैग्स्ट्रांथ (ड) जे. मेहरिंग।

16. सबसे बड़े आकार की मधुमक्खी होती है।
(अ) एपिस इंडिका (ब) एपिस फ्लोरियो
(क) एपिस डॉर्सेटा (ड) एपिस मेलीफेरा।

17. Rocey चट्टानी मधुमक्खी है।
(अ) Apis florae (ब) Apis indica
(क) Apis mellifera (ड) Apis dorsata।

18. शहद के मुख्य संघटक है।
(अ) Labulose and dextrose (ब) Sucrose and dextrose
(क) glucose and maltose (ड) Glucose and water।

19. मधुमक्खियाँ निम्न पदार्थ से छत्ते की मरम्मत करती है।
(अ) प्रोपोलिस (ब) सिपलिस
(क) मोम (ड) राल।

20. निषेचित अण्डे से विकसित होते है–
(अ) नर एवं रानी (ब) नर एवं श्रमिक
(क) रानी एवं श्रमिक (ड) उपरोक्त सभी।

21. यदि विकासशील लार्वों को लगातार रॉयल जेली खिलायी जाये तो वे विकसित होंगे–
(अ) नर में (ब) रानी में
(क) श्रमिकों में (ड) किसी में भी।

22. मधुमक्खी में परोग टोकरी तथा पराग कंघा पाया जाता है।
(अ) अग्र पैर में (ब) मध्य पैर में
(क) पश्च पैर में (ड) उदर में।

23. मधुमक्खी में विशेष प्रकार का नृत्य किस उद्देश के लिए होता है।
(अ) Reproduction
(ब) Discovery of Food
(क) To give information of food sources
(ड) all above these।

24. मधुमक्खी में लकवा का कारण है।
(अ) नॉसीमा एपिस (ब) विषाणु
(क) A carapis woodi (ड) None।

5.11 लाख कीट की वर्गीकृत स्थिति (Systematic Position or Classification of Lac-insect)

टिप्पणी

- **Phylum–** Arthropoda
- **Class–** Insecta/or Hexapoda
- **Order–** Hemiptera
- **Sub Order–** Homoptera
- **Super family–** Coccidae
- **Family–** Lacciferidae
- **Genus–** Tachardia / Laccifer
- **Specles–** Lacca

लाख कीट की कुल 6 श्रेणियाँ है जिनमें से 5 श्रेणियाँ लाख का स्रावण करती है, किन्तु व्यापारिक रूप से उत्पादन के लिए लैसीकर लक्का (Laccifer lacca) को सबसे ज्यादा अनुकूल माना गया है।

वितरण (Distribution) – यह भारत में सर्वाधिक रूप से पाया जाता है भारत अपने उत्पादन का कुल 90 प्रतिशत भाग विदेशों का निर्यात कर रहा है। भारत के अतिरिक्त अन्य लाख उत्पादक देशों में थाईलैण्ड, श्रीलंका, म्यांमार, चीन, पाकिस्तान तथा नेपाल प्रमुख है। भारत के असम, बंगाल, बिहार, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा उड़ीसा प्रान्तों के अनेक स्थानों पर लाख कीटों का पालन एवं उत्पादन किया जा रहा है।

5.11.1 लाख कीट की संरचना (Structure of Lac Insect)

लाख कीट छोटे आकार का रेंगने वाला (Crawling) शल्कीय कीट (Sale insect) है जो स्वयं द्वारा स्रावित लाख से बने आवरण में बन्द रहता है। लाख का यह आवरण इसे सुरक्षित रखता है। लाख कीट में लैंगिक द्विरूपता (Sexual dimorphism) पायी जाती हैं अर्थात् बाहर से देखने पर नर (Male) तथा मादा (Female) लाख कीट को आसानी से पहचाना जा सकता है।

टिप्पणी

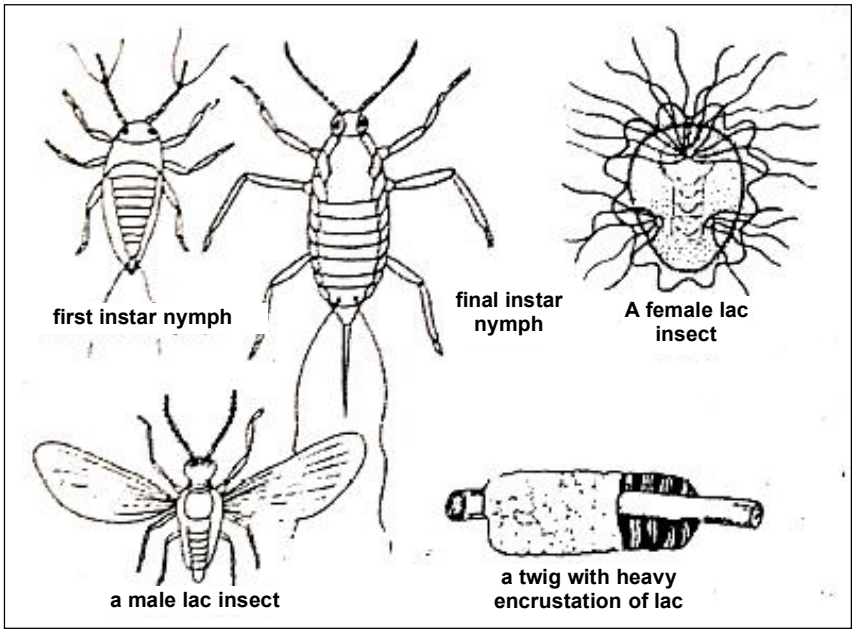

चित्र क्र. 5.13: Life cycle lac of insect

नर लाख कीट (Male Lac Insect)– ये गुलाबी रंग के होते हैं तथा आकार में मादा से छोटे होते हैं। नर दो प्रकार के होते हैं – सपक्ष (Winged) तथा पक्षहीन (Wingless)। 1–1.5 मिमी. लम्बा शरीर सिर (Head), वक्ष (Thorax), एवं उदर (Abdomen) में विभाजित होता है। सिर पर एक जोड़ी साधारण नेत्र, एक जोड़ी 10 खण्डीय, पतले रोमयुकत श्रृगिकाएँ (Antennae) तथा चुभोने एवं चूसने वाले (Piercing and sucking) क्षीण मुखांग (Atrophied mouth parts) पाये जाते हैं। वक्ष पर तीन जोड़ी रोमयुक्त पैर लगे रहते हैं। सपक्ष नरों (Winged males) में एक जोड़ी मध्यवक्षीय पंख (Mesothoracic wings) पाये जाते हैं। ये पंख काचाभ (Hyaline) तथा कम शिराओं वाले होते हैं। उदर 8 खण्डों का बना होता है जिसके अन्त में एक लम्बा शिश्न (Penis) एवं पार्श्व में एक जोड़ी गुदा लूम (Anal cerci) पाये जाते है। ये भोजन नहीं करते। अपने 3–4 दिन के जीवन काल में ये अधिक से अधिक मादाओं के साथ संगम (Mating) करते हैं।

मादा लाख कीट (Female Lac Insect)– मादा 3–4 मिमी लम्बी, गुलाबी रंग की तथा नाखरूपी (Pyriform) शरीर वाली होती है। शरीर का पृष्ठ भाग उन्नतोदर (Convex) तथा अधर तल चपटा होता है। यह एक ही स्थान पर अपने लाख कक्ष के अन्दर बन्द रहती है। शरीर का सिर, वक्ष एवं उदर में विभाजन स्पष्ट नहीं होता है। सिर पर एक जोड़ी ह्रासित (Degenerate) श्रृंगिकाएँ (Antennae) तथा चुभोने एवं चूसने वाले (Piercing and sucking) मुखांग पाये जाते हैं। इनमें दो खण्डीय चोंच (Rostrum) पाया जाता है। नेत्र अनुपस्थित होते हैं। वक्ष पर पंख तथा पैर नहीं पाये जाते। उदर के पृष्ठ तल पर एक पृष्ठीय काँटा (Dorsal spine) होता है जिसके पार्श्व में नीचे की ओर दो श्वसन प्रवर्ध (Respiratory process) होते हैं जिनके आधार पर श्वसन रन्ध्र (Spiracles) खुलते हैं। उदर के अन्तिम सिरे पर गुदा (Anus) स्थित होती हैं। मुख, गुदा तथा दोनों

श्वसन रन्ध्रों को छोड़कर शेष शरीर से लाख स्रावित होता है। मुख, गुदा, एवं श्वसन रन्ध्रों के चारों और स्थित ग्रन्थियों से मोमी धागे (Waxy filaments) स्रावित होते है जो छिद्रों पर एक जाल बना लेते हैं जिससे वहाँ पर लाख जमा नहीं हो पाती है। जिस लाख कक्ष में मादा कीट रहती है उसी में अण्डें देने के पश्चात् भर जाती है।

5.11.2 जीवन वृत्त (Life History)

मादाओं की संख्या नर की संख्या से अधिक होती है। इनकी संख्या का अनुपात 3:1 होता है। प्रौढ़ नर अपने लाख कक्ष से निकलकर मादा कीटों के कक्ष में जाकर मैथुन करते हैं। मादा कीट का शरीर बहुत तीव्रता से वृद्धि करता है। अण्डे देने के समय मादा का शरीर एक तरफ को सिकुड़ने लगता है जिससे मादा कक्ष के अन्दर अण्डे देने के लिए उपयुक्त स्थान बन जाता है। इसी समय मादा मोम तथा मोम के रेशे उत्पन्न करती है। जो अण्डे देने हेतु बनाये गये स्थान में भर जाते है। अब मादा अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है। इसी समय कक्ष के अन्तिम भाग पर पीले रंग के दो बिन्दु उत्पन्न होते हैं जो शीघ्र ही बड़े होकर नारंगी रंग के हो जाते हैं। ये बिन्दु इस बात के द्योतक हैं कि लाख कक्ष के अन्दर मादा ने अण्डे दे दिये है।

एक मादा लगभग 300 अण्डे देती है। यह संख्या बढ़कर 1,000 तक हो सकती है। प्रत्येक अण्डा लगभग 0.4 मिमी लम्बा तथा 0.2 मिमी चौड़ा तथा गुलाबी रंग का होता है। मादा लाख कीट तीन प्रकार के होते है– प्रथम प्रकार की मादाएँ ऐसे अण्डें देती हैं जिनसे नर तथा मादा लाख कीट समान संख्या में विकसित होते है। द्वितीय प्रकार की मादाएँ ऐसे अण्डे देती है जिनसे नर अधिक संख्या में तथा मादाएँ कम संख्या में विकसित होते हैं। तृतीय प्रकार की मादाएँ ऐसे अण्डे देती हैं जिनमें मादाएँ अधिक संख्या में तथा नर कम संख्या में विकसित होते हैं। मादाएँ अंडजरायुज (Ovoviviparous) होती हैं जो लगभग पूर्ण विकसित अण्डे देती हैं। अण्डे देने के कुछ ही घण्टों के अन्दर अंडोद्भेदन (Hatching) होता हैं जिसके परिणामस्वरूप 0.5 मिमी लम्बे गुलाबी रंग के प्रथम इंस्टार निम्फ (First instar nymph) बाहर निकल आते हैं जिन्हें क्रॉलर (Crawler) कहते हैं। अण्डे देने तथा अण्डोद्भेदन की क्रिया पर ताप का विशेष प्रभाव पड़ता है। सर्दियों में 15°C से कम तथा गर्मियों में 27°C से अधिक ताप होने पर अण्डे देने की क्रिया रूक जाती है।

अण्डोद्भेदन के परिणामस्वरूप निकले प्रथम इंस्टार निम्फ मादाओं द्वारा छोड़े गये छिद्रों से निकलकर बाहर आ जाते हैं तथा रेंगकर पोषक पौधे के कोमल भागों में पहुँच जाते हैं। इनके झुण्डों में निकलने को वृन्दन (Swarming) कहते हैं। वृन्दन की क्रिया लगभग 5 हफ्ते तक चलती है। ये निम्फ नाव के आकार के छोटे तथा कोमल शरीर वाले होते हैं जिनका आकार 0.5 x 0.25 मिमी होता है। निम्फ के सिर पर एक जोड़ी छोटी श्रृंगिकाएँ (Antennae), एक जोड़ी नेत्रक (Ocelli), तथा चुभोने एवं चूसने वाले (Piercing and sucking) मुखांग पाए जाते हैं। वक्ष पर

टिप्पणी

तीन जोड़ी पैर तथा उदर के अन्तिम सिरे पर एक जोड़ी पुच्छीय शूक (Caudal setae) पाए जाते हैं। निम्फों के झुण्ड के झुण्ड पोषक पौधे के कोमल भाग पर पहुँचकर अपने मुखांगों को चुभोकर भोजन चूसने लगते हैं। एक इंच क्षेत्र में 200–300 निम्फ चिपक जाते हैं। निम्फ के मुखांगों, श्वसन छिद्रों एवं गुदा क्षेत्र को छोड़कर सम्पूर्ण शरीर पर चर्मीय ग्रन्थियों (Dermal glands) के रूप में लाख ग्रन्थियाँ (Lac glands) पायी जाती है। इन ग्रन्थियों से एक रालदार पदार्थ स्रावित होता है जो वायु के सम्पर्क में आने पर सूख जाता है इसे ही लाख कहते हैं। इस प्रकार निम्फ लाख के आवारण में ढक जाते है। वयस्क बनने से पूर्व ये निम्फ तीन बार निर्मोचन करते हैं। निर्मोचन (Moulting) का समय पोषक पौधे, ताप तथा आर्द्रता पर निर्भर करता है।

प्रथम निर्मोचन के उपरान्त निम्फ से नेत्र, श्रृंगिकाएँ तथा पैर विलुप्त हो जाते हैं और यह अपकर्षित (Degenerate) हो जाता है। इस अवस्था में नर तथा मादा के कक्षों को पहचाना जा सकता है। नर कक्ष लम्बे तथा सिगार के आकार के (Cigar shaped) तथा मादा कक्ष गोल अथवा अण्डाकार तथा नीचे से ऊपर की तरफ वृद्धि करते हैं। नर लाख कक्ष में पीछे की ओर एक ढीला ढक्कन चढ़ा रहता है इसी ढक्कन को खोलकर नर लाख कीट कक्ष से बाहर निकलता हे। दूसरा निर्मोचन लाख कक्ष के अन्दर होता हे। द्वितीय निर्मोचन के बाद नर निम्फ में नेत्र, श्रृंगिकाएँ एवं पैर पुनः उत्पन्न हो जाते है तथा मुखांग अपकर्षित होने लगते हैं। अब यह भोजन करना बन्द कर देता है। अब निम्फ तीसरी बार निर्मोचन करके सपक्ष (Winged) अथवा अपक्ष (Wingless) वयस्क में बदल जाता है जो नर लाख कक्ष के ढक्कन को तोड़कर बाहर आ जाता है। वे मादा की अपेक्षा आधे समय में परिपक्व हो जाते है। शीघ्र ही ये एक या एक से अधिक मादाओं के साथ संगम (Mating) करके मर जाते हैं।

मादा निम्फ में दूसरे निर्मोचन के बाद विखण्डन अस्पष्ट होने लगता है तथा तीसरे निर्मोचन के बाद पूर्णतया विलुप्त हो जाता है। श्रृंगिकाएँ अत्यन्त सूक्ष्म रह जाती हैं जबकि पैर पूर्णरूप से विलुप्त हो जाते हैं। शरीर मोटा होकर थेली जैसा हो जाता है। उदर के पश्च सिरे पर श्वसन प्रवर्ध बन जाते हैं तथा गुदा उभार के रूप में उठ जाती है। श्वसन प्रवर्धों के मध्य में पृष्ठीय काँटा (Dorsal spine) बन जाता है। यह पूर्णरूप से परिपक्व व मोटी हो जाती है। अब यह नर कीट के साथ संगम करके अण्डे देने योग्य हो जाती है। इस समय यह बहुत तीव्रता से लाख का स्रावण करती है।

इस प्रकार निम्फ गर्मी के दिनों में एक से दो माह में तथा सर्दी के दिनों में चार से पाँच माह में प्रौढ़ बनते हैं। सामान्य अवस्था में अनुकूल वातावरण में निम्फ काल 6–7 सप्ताह का होता है। लाख कीट में अपूर्ण कार्यान्तरण (Incomplete metamorphosis) पाया जाता है तथा एक वर्ष में सामान्यतया दो पीढ़ियाँ पायी जाती है।

टिप्पणी

5.11.3 पोषक पौधे (Host Plants)

लाख कीट अपने पोषक पौधे से चिपककर उसका रस चूसते हैं इस दृष्टि से ये पीड़क (Pest) की तरह कार्य करते हैं परन्तु चूँकि लाख कीट के पोषक पौधों का आर्थिक महत्व कम और लाख का आर्थिक महत्व अधिक होता है अतः इन कीटों की पीड़कों के सवर्ग में नहीं रखा गया है। भारत में पाए जाने वाले पौधों की लगभग 100 प्रजातियाँ लाख कीट के पोषक का कार्य करती है जिनमें से लगभग 12 प्रजातियों का उपयोग ही लाख कीट पालन हेतु किया जाता है। अग्रलिखित पोषक पौधों में प्रथम चार पोषक पौधों को लाख उत्पादन हेतु विशेष महत्व दिया जाता है –

1. कुसम, **श्लीचेरा आलियोसा** (Kusum, *Schleichera oleosa*),
2. पलास, **बूटिया मोनास्पर्मा** (Palas, *Butea monosperma*),
3. बेर, **जिजीफस जुजूबा** (Ber, *Zizyphus jujuba*),
4. खैर, **एकेशिया कटेचू** (Khair, *Acacia, catechu*)
5. बबूल, **एकेशिया अरेबिका** (Babul, *Acacia, arabica*)
6. साल, **शोरिया रोबस्टा** (Sal, *Shorea robusta*),
7. सीसम, **डल्बर्जिया सिस्सू** (Seesam, *Dalbergia sisso*),
8. अंजीर, **फाइकस कैरिका** (Fig, *Ficus carica*),
9. पीपल, **फाइकस रेलिजियोसा** (Peepal, *Ficus religiosa*),
10. आम, **मैन्जीफेरा इण्डिका** (Mango, *Mangifera indica*),
11. अरहर, **कैजेनस कजान** (Pigeon pea, *Cajanus cajan*),
12. घोंट, **ज़िजीफस ज़ाइलोपाइरा** (Ghont, *Zizyphus xylopyra*),

5.12 लाख (Lac)

लाख एक रालदार (Resinous) पदार्थ है जो लाख कीटों की लाख ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होता है। ये लाख ग्रन्थियाँ चर्मीय ग्रन्थियों (Dermal glands) के रूप में त्वचा में स्थित होती हैं। नर लाख कीट लाख उत्पादित नहीं करते परन्तु सभी प्रकार के निम्फ एवं मादा लाख कीट लाख का उत्पादन करते हैं। मादा लाख कीट जीवन–पर्यन्त लाख उत्पादन करती हैं अतः इसी के द्वारा अधिकतम लाख उत्पादित किया जाता है। लाख ग्रन्थियों द्वारा स्रावित किया गया रालदार पदार्थ वायु के सम्पर्क में आने पर कड़ा व ठोस हो जाता है। इस प्रकार से बना लाख एक आवरण के रूप में कीट की सुरक्षा करता है। लाख का रंग बादामी या लाल होता है। पौधों की टहनियों पर उत्पन्न लाख एक प्रकार का अपरिष्कृत पदार्थ (Crude substance) होता है जिसमें राल (Resin) के अतिरिक्त और भी

टिप्पणी

कई पदार्थ मिश्रित होते हैं। लाख का रासायनिक संघटन निम्नलिखित प्रकार से होता है –

1. राल लाख (Resin lac) 68–75%
2. रंजक (Dyes) 6%
3. मोम (Wax) 6%
4. एल्ब्यूमिनस पदार्थ (Albuminous material) 10–12 %
5. खनिज पदार्थ (Mineral matter) 2–4 %
6. अन्य (Others) 2%

5.12.1 लाख के उपयोग (Uses of Lac)

मनुष्य के लिए लाख का उपयोग अत्यन्त विस्तृत है–

1. वार्निश (Varnish), पॉलिश (Polish) तथा पेण्ट (Paint) बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है।
2. ग्रामोफोन रिकार्ड बनाने में लाख का प्रयोग किया जाता है।
3. विद्युत् रोधक (Electric insulator) होने के कारण विद्युत् कुचालक तथा कुचालक पॉलिश बनाने के काम मे लाया जाता है।
4. सौन्दर्य प्रसाधनों (Cosmetics); जैसे– नेल पॉलिश (Nail Polish) बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है।
5. गहने (Ornaments), खिलौने (Toys), बटन (Buttons) तथा बर्तन (Pottery) बनाने में प्रयुक्त होता है।
6. सीलिंग मोम (Sealing wax) बनाने में प्रयुक्त होता है।
7. फोटोग्राफी के सामान, छपाई की स्याही बनाने के काम आता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी अन्य कई उद्योगों में लाख की खपत होती है।

5.12.2 लाख कीट की किस्में एवं फसलें (Varieties and Crops of Lac Insect)

लाख कीट की दो किस्में पायी जाती हैं तथा प्रत्येक किस्म से दो फसलें प्राप्त होती हैं –

1. लैसिफर लाक्का कुसुमी (Laccifer lacca kusumi)– ये कीट कुसुम, **श्लीचेरा ओलियोसा** (Kusum, *Schleichera oleosa*) के पेड़ पर पाले जाते हैं। ये कीट वर्ष में दो फसलें देते हैं – अगहनी फसल (Agahni crop) तथा जेठवी फसल (Jethvi corp)। दोनों फसलें 6 महनें मे पक जाती है। अगहनी फसल जून–जुलाई से जनवरी–फरवरी तक रहती है अर्थात् वृन्दन करने वाले निम्फों (Swarming nymphs) का संचारण (Inoculation) जून–जुलाई में होता हैं

तथा जनवरी–फरवरी के महीने में फसंल ली जाती है। इसी प्रकार जेठवी फसल के लिए संचारण जनवरी–फरवरी में किया जाता है और फसल जून–जुलाई के महीने में ली जाती है।

2. लैसिफर लाक्का रंगीनी (Laccifer lacca rangeeni)– ये कीट कुसुम के अतिरिक्त अन्य पोषक पौधों पर पाले जाते हैं। ये भी वर्ष में दो फसलें देते हैं– कार्तिकी फसल (Kartiki crop) तथा बैसाखी फसल (Baisakhi crop)। कार्तिकी फसल चार महीने की हो जाती है। इसके लिए संचारण (Inoculation) जून जुलाई में किया जाता है तथा फसल अक्टूबर–नवम्बर के महीने में ली जाती है। वैसाखी फसल आठ महीने की होती है। इसके लिए संचारण अक्टूबर–नवम्बर में किया जाता है तथा फसल जून–जुलाई में ली जाती है।

भारत में होने वाली कुल लाख का 90 प्रतिशत भाग रंगीनी किस्म से प्राप्त होता है जबकि कुसुमी किस्म से केवल 10 प्रतिशत लाख प्राप्त होता है। रंगीनी किस्म की बैसाखी फसल कार्तिकी की अपेक्षा अच्छी उपज देती है। कुल रंगीनी फसल का 85 प्रतिशत भाग बैसाखी फसल से प्राप्त होता है।

5.12.3 लाख की खेती (Cultivation of Lac)

लाख की खेती के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जहाँ पर पोषक पौधें अच्छी प्रकार से लागए जा सकें और स्वस्थ रह सकें। उस स्थान पर न अधिक सर्दी पड़ती हो और न अधिक गर्मी। इसके अतिरिक्त उपयुक्त मात्रा में वर्शा होती हो। लाख की खेती के लिए निम्नलिखित चरण महत्वपूर्ण होते हैं–

1. काट–छाँट (Pruning)
2. संचारण (Inoculation)
3. फसल काटना (Harvesting)

1. काट छाँट (Pruning) –पोषक पौधों से पुरानी, कमजोर या बीमार शाखाओं को काटकर अलग करने को काट–छाँट (Pruning) कहते हैं। काट–छाँट करने से पोषक पौधे पर नयी कोमल एवं रसीली शाखाएँ निकल आती हैं जिन पर लाख कीटों को भोजन प्राप्त करने में आसानी होती हैं और लाख उत्पादन अच्छा होता है। कटाई–छँटाई पैने औजारों (Sharp instruments) की सहायता से करनी चाहिए। पौधे की ऐसी मोटी शाखाएँ जिनका व्यास 2.5 सेमी से अधिक हो उन्हें नहीं काटना चाहिए। 1.25–2.50 सेमी अर्थात् आधे से एक इंच व्यास वाली शाखाओं को ही काटना चाहिए। कटाई इस प्रकार से करनी चाहिए कि काटने के बाद भी कम से कम 3.5 सेमी लम्बी शाखा बच जाए। कुसुम के पौधों को वर्ष में केवल एक बार जुलाई के महीने में काटा जाता है, जबकि पलास के पौधों को कार्तिकी फसल लेने के लिए फरवरी में काटा जाता है ताकि जून–जुलाई में फसल लेने के लिए संचारण किया जा सके। बेर के पौधों को अप्रैल–मई में काटा जाता है। यदि बैसाखी फसल लेनी हो तो पलास तथा बेर दोनों की कटाई अप्रैल में की जाती है और अक्टूबर–नवम्बर में संचारण किया जाता है।

टिप्पणी

कूपे विधि (Coupe System)– जब सभी पोषक पौधों पर निरन्तर लाख कीट पाले जाते हैं और उनकी लगातार काट–छाँट की जाती हैं तो ऐसे पौधे कमजोर हो जाते हैं तथा दो–तीन वर्ष बाद उनसे कोमल शाखाओं के निकलने की गति मन्द पड़ जाती है। इन सभी कारणों से लाख का उत्पादन कम हो जाता है। इस स्थिति से निपटने के लिए वर्तमान में कूपे विधि विकसित की गई है। कूपे विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि बजाय सभी पोषक पौधों पर एक साथ फसल लेने के कुछ पौधों पर ही फसल ली जाए और कुछ पौधों को अपनी खोई शक्ति प्राप्त करने हेतु आराम करने दिया जाए। इस प्रकार पौधों को समूहों में विभाजित कर देते हैं और प्रत्येक समूह को कूपे कहते हैं। प्रत्येक कूपे में पौधों की संख्या अथवा पंक्तियाँ (Rows) लाख कीट की प्रजाति, किस्म, पोषक पौधे की प्रजाति एवं स्थानीय अवस्थाओं पर निर्भर करती है।

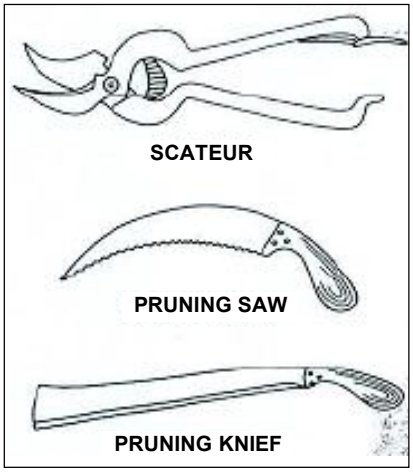

चित्र क्र. 5.14: Pruning and cutting instruments

कुसुम के पौधों में वृद्धि बहुत मन्द गति से होती है अतः प्रत्येक कूपे में कुसुम के पौधों की चार दोहरी कतारें रखी जाती हैं और प्रत्येक दोहरी कतार पर दो वर्षों में एक बार लाख की फसल ली जाती है। इस प्रकार कूपे की प्रत्येक दोहरी कतार के पौधों को 18 माह का विश्राम मिल जाता है। इतने समय में वे फिर से स्वस्थ वृद्धि करके कीट पालने लायक हो जाते है।

इसी प्रकार रंगीनी किस्म के लिए पलास, बेर आदि पोषक पौधों के तीन कूपे बनाते हैं जिनमें पौधों का अनुपात 3:1:3 रखा जाता है। दोनों बड़े कूपों के पौधों पर एक वर्ष के अन्तराल पर बैसाखी फसल के कीट पाले जाते हैं यह फसल अक्टूबर–नवम्बर से जून–जुलाई तक रहती है। छोटे वाले कूपे के पौधों पर प्रत्येक वर्ष कार्तिकी फसल के कीट पाले जाते हैं। अतः इस फसल के लिए पौधे जून–जुलाई से लेकर अक्टूबर–नवम्बर तक घिरे रहते हैं और शेष समय में वृद्धि करके फिर से कीट पालने लायक हो जाते हैं। मल्होत्रा 1963 ने एक अन्य विधि प्रस्तावित की जिसके अनुसार पोषक पौधों की तीन बराबर की पंक्तियाँ बनाकर दो पंक्तियों पर बीजी लाख (Seed lac) तथा तीसरी पंक्ति पर व्यापारिक लाख पैदा की जा सकती है। इस विधि में उत्पन्न लाख की फसल को अप्रैल–मई के महीने में कच्चा (Ari lac) ही उतार लेते हैं।

2. संचारण (Inoculation)– लाख कीटों की नए पोषक पौधे पर पहुँचाने की क्रिया को संचारण (Inoculation) कहते है। संचारण प्राकृतिक भी होता है ओर कृत्रिम भी।

प्राकृतिक संचारण (Natural inoculation) में निम्फ प्राकृतिक रूप से गति करते हुए एक शाखा से दूसरे शाखा पर अथवा एक पौधे से दूसरे पौधें पर संचारित हो जाते हैं। इस प्रकार निम्फों के वृन्द (Swarm) एक ही पौधे पर बार–बार रस चूसते हैं जिससे पौधा कमजोर हो जाता है और लाख का उत्पादन कम हो जाता है।

कृत्रिम संचारण (Artificial inoculation) मानव के माध्यम से किया जाता है। नर कीट से संगम (Mating) करने के उपरान्त जब मादा अण्डे देने के लिए तैयार हो जाती है तो उस समय लाख कक्ष में इनके शरीर के पश्च भाग पर एक पीला बिन्दु (Yellow spot) बन जाता है। अब मादा अपने शरीर को सिकोड़कर जगह बनाती है। इसी जगह पर अपने अण्डे भर लेती है। अण्डोद्भेदन से पूर्व ही ऐसी टहनियों को 6 इंच की लंबाई में काट लेना चाहिए। इसे जनन लाख कहते हैं। अण्डोद्भेदन के परिणामस्वरुप निकले निम्फ गिरन न पायें और सुगमता से बैठ सकें।

3. फसल काटना (Harvesting)– लाख जमी हुई टहनियों को पोषक पौधे से काटकर एकत्रित करने को फसल काटना (Harvesting) कहते हैं। लाख की फसल तभी काटनी चाहिए जब वह परिपक्व (Mature) हो जाए। अपरिपक्व फसल (Immature corp) काटने से जो लाख प्राप्त होती है उसे एरी लाख (Ari lac) कहते हैं। अपरिपक्व फसल काटने से लाख कीटों की संख्या प्रभावित होती है जिससे आगे चलकर लाख उत्पादन भी प्रभावित होता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि लाख की सम्पूर्ण फसल काटी जाए अन्यथा छोड़ी गयी टहनियों पर शत्रुओं के आक्रमण का खतरा बना रहता है।

परिपक्व फसल (Mature crop) वह फसल होती है जो निम्फों के निर्गमन (Emergence) से ठीक पहले ली जाती है। परिपक्व लाख की पहचान यह है कि लाख कक्ष के पश्च भाग पर स्थित पीला बिन्दु (Yellow spot) क्रमशः फैलने लगता है और अन्त में आधे से अधिक लाख कक्ष पर फैल जाता है। पीले बिन्दु के फैलने के समय ही लाख की फसल काटना सर्वोत्तम होता है। परिपक्व लाख (Mature lac) को स्टिक लाख (Stick lac) या जनन लाख (Brood lac) कहते हैं। इस जनन लाख से निम्फों के निर्गमन के पश्चात् जब लाख एकत्रित कर लेते हैं तब इसे फंकी लाख (Phunki lac) कहते हैं। इस फंकी लाख को कूटकर जल से अच्छी प्रकार से धोया जाता है ताकि धूल–मिट्टी, मृत कीट एवं रंग पदार्थ छूट जाए। फिर धोकर साफ की गयी इस लाख को वायु में सुखा लेते हैं इस दानेदार (Granular) लाख को बीज लाख (Seed lac) कहते हैं। इस बीज लाख को कपड़े के बड़े थैले में रखकर लकड़ी के कोयले की आँच (Charcoal fire) में पिघलाते हैं। लाख के पिघल जाने के बाद कपड़े के थैलों को मरोड़कर (Twisting) लाख छान लेते हैं। छनी हुई लाख शुद्ध लाख (Pure lac) या बटन लाख (Button lac)

टिप्पणी

कहलाती है। थैलों में शेष बची अशुद्ध लाख को किरी लाख (Kirri lac) कहते हैं। शुद्ध लाख (Pure lac) को गर्म करके दबाकर चपटी परत (Sheet) के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। शुद्ध लाख की इस चपटी पर्त को चपड़ा (Shellac) कहते हैं। चपड़ा या शेलैक (Shellac) बनाने के लिए ऑटोक्लेव (Autoclave) का प्रयोग किया जाता है। इसके लिये बीज लाख को लोहे की जालीदार थैलियों में भरकर ऑटोक्लेव में रखा जाता है। गर्म होने पर बीज लाख पिघल कर लोह की जाली से निकलकर ऑटोक्लेव के निचले भाग में जमा होती रहती है। जिसे बाहर निकाल कर पतली–पतली परतों में जमाकर सुखा लेते हैं। इसे ही चपड़ा (Shellac) कहते हैं। इसी प्रकार बीज लाख को ऐल्कोहॉल (Alcohol) में घोलकर आसवन (Distillation) करके भी शुद्ध लाख प्राप्त की जाती है परन्तु यह विधि महँगी एवं आग लगने के भय के कारण बहुत कम प्रयोग में लायी जाती है।

5.12.4 लाख कीट के शत्रु (Enemies of Lac culture)

लाख उत्पादकों के लिए लाख (कीट) कृषि के शत्रु बडी समस्या होते है, क्योंकि ये केवल लाख कीटों की संख्या को ही कम नहीं करते है बल्कि लाख के उत्पादन एवं उसकी गुणवत्ता पर भी बुरा/हानिकारक प्रभाव डालते हैं। Biotic एवं Abiotic जैविक एवं अजैविक कारक, परिस्थितियाँ निम्नप्रकार हानि पहुँचाते हैं–

1. **अजैविक कारक (Abiotic Factor)**– सूर्य का ताप, तेज प्रकाश, उच्च तापक्रम, आर्द्रता प्रतिशत, भारी वर्षा, तेज हवा आदि लाख की खेती को काफी नुकसान पहुँचाति है।
2. **जैविक कारक (Biotic Factor)**– इसके अंतर्गत अधिकांश शत्रु स्तनधारी जैसे चूहे, गिलहरियाँ तथा बंदर आदि। अन्य कीट भी लाख कीट के शक्तिशाली दुश्मन होते हैं। प्रतिवर्ष 4 लाख टन लाख का नुकसान पहुँचाते है।

ये जैविक शत्रु दो प्रकार के होते हैं –

(A) परजीवी (Parasites)– कीट-परजीवी चैल्सिड (Chalcid) कीट है, जिनमें टैकार्डीफेगस टैकार्डी (*Tachardiaephagus tachardie*), **यूपेल्मस टैकार्डी** (*Eupelmus Tachardiae*) आदि कुछ प्रमुख जातियाँ हैं।

(B) शिकारी/या परभक्षी (Predators)– लाख कीट का शिकार दो मॉथ प्रजातियाँ (सफेद मॉथ – **यूब्लेम्मा ऐमैबिलिस** (*Eublemma amabilis*) तथा ब्लैकिश – ग्रेमॉथ– हैकोसिरा पुलवेक्लिया करती है। इनकी मादायें लाख– कोषाओं के समीप ही अण्डनिक्षेपण करती है। विकसित होकर लार्वे अण्डों से बाहर आकर लाख कीटों को खाते हैं।

नियन्त्रण के उपाय (Control Measures)-

उपरोक्त वर्णित शत्रुओं द्वारा की गई हानि को कई विधियों द्वारा कम किया जा सकता है –

(A) सांस्कृतिक विधि (Cultural Method)

(i) निषेचन में प्रयुक्त की जाने वाली भूण टहनी परजीवी तथा शिकारियों से मुक्त होना चाहिए।

(ii) पेड़ से छुड़ाये गये लाख को शत्रुओं द्वारा संक्रमित क्षेत्रों से बाहर रखना चाहिए।

(iii) संक्रमित टहनियों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।

(B) रासायनिक विधि (Chemical Method)

फसल को काटने के तुरन्त बाद घूम्रन अथवा जल–डोबन अर्थात् घुआँ द्वारा या जल में डुबोकर उन्हें शत्रुओं के मुक्त किया जाता है।

(C) जैववैज्ञानिक विधि (Biological Method)

परजीवी कीटों को नष्ट करने के लिए फसल में उनके परजीवी (अर्थात् अतिपरजीवी) जीवों को आवश्यक संख्या (मात्रा) में छोड़ देना चाहिए ताकि अतिपरजीवी लाख कीट के परजीवियों को नष्ट कर दें।

5.12.5 लाख के उपयोग एवं आर्थिक महत्व (Uses of Lac) (Economic Importance)

1. ग्रामोफोन का रिकार्ड बनाने में।
2. सुनार इसका उपयोग गहनों के खोखले भागों को भरने में।
3. पॉलिश, पेण्ट तथा वार्निश बनाने में।
4. विद्युत सामान, विद्युत रोधन (Insulation) बनाने में।
5. फोटोग्राफी के समान में।
6. मोहर के मोम (Sealing wax) को बनाने में ।
7. खिलौने, बटन तथा वर्तन बनाने में।
8. लाख का मुख्यतः उपयोग (Wood finishing) में चिन्हित (Marking)। वार्निशिंग तथा पॉलिश करने में आता है।
9. कृत्रिम चमड़ा बनाने वाले उद्योगों में बहुतायत प्रयोग किया जाता है।
10. कृत्रिम–सौन्दर्य प्रसाधन क्षेत्रों, चूडियाँ बनाने, डिजाइनिंग एवं चिपकाने के लिए किया जाता है। सोने के ज़वरों में खाली स्थानों में भरने के काम आता है।

5.13 भारत में लाख उद्योग (Lac Industry in India)

भारत में लाख उद्योग एक लघु उद्योग के रूप में विकसित हैं। चूँकि इसमें पूँजी लागत कम होती है और समय भी कम लगता है। अतः कम आय वर्ग के किसान

टिप्पणी

भी इसे सहायक उद्योग के रूप में संचालित कर रहे हैं। लाख की फसल नकद फसल (Cash crop) मानी जाती है इसलिए भी लाख की खेती गरीब किसानों एवं आदिवासी क्षेत्रों में अधिक प्रचलित है। लाख का सर्वाधिक उत्पादन बिहार में होता है जहाँ देश के कुल लाख उत्पादन का लगभग 42 प्रतिशत भाग उत्पादित होता है। बिहार के बाद मध्य प्रदेश में सर्वाधिक 26.5 प्रतिशत लाख उत्पादित होता है। लाख उत्पादन करने वाले अन्य प्रान्त हैं– पश्चिम बंगाल (21 प्रतिशत), महाराष्ट्र (6 प्रतिशत) तथा उत्तर प्रदेश (2 प्रतिशत)। अन्य प्रान्तों में; जैसे– ओडिशा, असम, पंजाब, कर्नाटक में थोड़ी मात्रा में लाख उत्पादित होता है। छत्तीसगढ़ में रायपुर, बिलासपुर, मध्यप्रदेश में जबलपुर, छिन्दवाड़ा तथा उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर जिले में अधिक लाख उत्पादन होता है।

भारत में सन् 1921 में लाख अनुसन्धान संगठन (Association for Lac Research) स्थापित किया गया। इसी संगठन ने सन् 1925 में नामकुम (राँची) में भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान (Indian Lac Research Institute) स्थापित किया। बाद में इसे लाख उत्पादन एवं अनुसन्धान के अतिरिक्त क्रय–विक्रय व निर्यात पर नियन्त्रण का अधिकार देकर भारतीय लाख उपकर समिति (Indian Lac Cess Committee) में परिवर्तित कर दिया गया। लगातार हो रहे अनुसन्धानों, तकनीकी विकास एवं प्रोत्साहन के परिणामस्वरुप आज भारत लाख उत्पादन के क्षेत्र में विश्व का अग्रणी देश बन गया है। जहाँ विश्व का कुल 80 प्रतिशत लाख उत्पादित हो रहा है।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

25. भारत में सर्वाधिक लाख का उत्पादन किया जाता निम्न मे से कहाँ–
    (अ) उ.प्र., (ब) म.प्र,
    (क) बिहार में (ड) प. बंगाल।
26. लाख कीट का वैज्ञानिक नाम है –
    (अ) Laccifer Lacca,
    (ब) Tachardia Lacca, Bombyx mori,
    (क) Honey bee,
    (ड) (अ) एवं (ब) दोनों।
27. लाख का स्रावण करने वाली अवस्थाएँ है–
    (अ) नर, मादा तथा निम्फ (ब) मादा तथा निम्फ,
    (क) नर एवं निम्फ, (ड) नर तथा मादा।
28. लाख स्रावित होता है–
    (अ) रूपान्तरित लाख ग्रंथियों से, (ब) ग्रसनीय ग्रंन्थियों से,
    (क) चर्मीय ग्रंन्थियों से, (ड) गुदा द्वार से।

29. निम्फ के निर्गमन के बाद प्राप्त की गई लाख कहलाती है।

(अ) जनन लाख, (ब) स्टिक लाख,

(क) फंकी लाख, (ड) बटन लाख।

30. भारतीय लाख अनुसंन्धान संस्थान स्थित है –

(अ) जबलपूर, (ब) राँची में,

(क) मिर्जापूर, (ड) मैसूर में।

31. नर लाख कीट होता है –

(अ) सपक्ष, (ब) अपक्ष,

(क) सपक्ष एवं अपक्ष, दोनों (ड) अपकर्शित।

32. लाख है

(अ) रेसिन, (ब) अकार्बनिक,

(क) तैलीय अवस्था, (ड) गोंद।

33. मादा लाख कीट एक बार में लगभग कितने अण्डे देती हैं?

(अ) 150–250, (ब) 300–350,

(क) 400–450, (ड) 200–300।

34. भारतीय लाख अनुसन्धान संस्था (ILRI) की स्थापना किस वर्ष हुई?

(अ) 1930, (ब) 1960,

(क) 1925 (ड) 1999।

35. लाख उत्पादन के क्षेत्र में भारत के बाद दूसरा स्थान हैं–

(अ) चीन का, (ब) थाईलैण्ड का,

(क) ब्राजील का (ड) श्रीलंका का।

5.14 सीटोफिलस ओराइजे लिन्नेस (Sitophilus Oryzae Linn.)

वर्गीकरण (Classification):-

संघ (Phylum) : आर्थोपोडा (Arthropoda)

वर्ग (Class) : इन्सेक्टा (Insecta)

उप–वर्ग (Sub class) : टेरीगोटा (Pterygota)

टिप्पणी

प्रभाग (Division) : एण्डोप्टेरीगोटा (Endopterygota)

कुल (Family) : कुर्कूलियोनिडी (Curculionidae)

सामान्य नाम (Common Name) : चावल का घुन (Rice Weevil), सुरसुरी (sursuri)

वितरण (Distribution) : भारत में सभी स्थानों पर पाया जाता हैं।

पोषक अन्न (Food Grains) : चावल (Rice), गेंहूँ (Wheat), मक्का (Maize), जौ (Barle), ज्वार (Jowar) आदि।

पहचान (Identification)– वयस्क घुन 3.5 मिमी लम्बा, बेलनाकार एवं भूरे रंग का होता है। इसका थुथुन (Rostrum) 1 मिमी लम्बा होता है। सिर पर एक जोडी मजबूत, मुड़ी हुई (Elbowed) मुग्दराकार (Clavate) श्रृंगिकाएँ पायी जाती हैं जिनके आधार पर संयुक्त नेत्र स्थित होते है। उदर पूर्ण रूप से इलाइट्रा (Elytra) से ढँका होता है जिस पर चार हल्के लाल या पीले रंग के धब्बे पाये जाते हैं। पैर लम्बे होते हैं।

सारणी क्र. 5.2: (Pests of Stored Grains)

क्र. स.	पीड़क का सामान्य नाम	पीड़क का वैज्ञानिक नाम	भण्डारित अनाज
1.	चवल का घुन या सुरसरी (Rice Weevil or Sursuri)	**सीटोफिलस औराइजे** (*Sitophilus oryzae*)	चावल, **ओराइजा सैटाइवा** (Rice, *Oryza sativa*) गैहूँ, **ट्रिटिकम एस्टाइवम** (Wheat, *Triticum aestivum*) मक्का, **जिया मेज** (Maize, *Zea mays*) जौ, **हॉरडियम वल्गेयर** (Barley, *Hordeum vulgare*) ज्वार, **सॉरघम वल्गेयर** (Jawar, *Sorglum valgare*)
2.	खपरा बीटल (Khapra Beetle)	**ट्रोगोडर्मा ग्रैनेरियम** (*Trogoderma granarium*)	गेहूँ, मक्का, जौ, चावल आदि।
3.	दाल का बीटल या ढोरा (Pulse Beetle or Dhora)	**कैलोसोब्रूकस चाइनेन्सिस** (*Callosobruchus chinensis*)	चना, **साइसर, एरीटिनम** (Gram, *Cicer arietinum*) मटर, **पाइसम सैटाइवम** (Pea, *Pisum sativum*) अरहर, **कैरोनस कजान** (Pigeon pea, *Cajanus*

			cajan) मूँग, **फेसियोलस मुन्गो** (Moong, *Phaseolus mungo*) उर्द, **फेसियोलस रेडियेटस** (Urd, *Phaseolus radiates*)
4.	आटे का लाल बीटल या सुरसरी (Red Flour Beetle)	**ट्राइबोलियम कैस्टेनियम** (*Tribolium castaneum*)	आटा, मैदा एवं सूजी।
5.	लेसर ग्रेन बोरर (Lesser Grain Borer)	**राइजोपर्था डोमिनिका** (*Rhizopertha dominica*)	गेहूँ, चावल, दाल, ज्वार, मक्का आदि।
6.	एन्गोमोएस ग्रेन मॉथ (Angoumois Grain Moth)	**सीटोट्रोगा सीरियेलेला** (*Sitotroga cerealella*)	गेहूँ, धान, जौ, ज्वार, मक्का आदि।
7.	इण्डियन मील मॉथ (Indian Meal Moth)	**प्लोडिया इण्टरपंकटेला** (*Plodia interpunctella*)	अनाज (Grains), आटा (Meal) , सूखे मेवे (Dry Fruits), काष्ठ फल (Nuts)
8.	चवल का शलभ (Rice Moth)	**कॉरसाइरा सिफैलोनिका** (*Corcyra cephalonica*)	चावल (Rice), दलहन (Pulses), तिलहन (Oil seeds), सूखे मेवे (Dry Fruits)।

5.14.1 जीवन वृत्त (Life History)

वयस्क बनने के लगभग एक सप्ताह बाद मादा अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है। अण्डे देने के लिए मादा अपने छोटे परन्तु पैन मैण्डिबिल द्वारा अनाज के दाने में एक बारीक छिद्र बनाती है जिसमें अण्डा रखने के बाद यह छिद्र को एक चिपचिपे पदार्थ से बन्द कर देती है। कभी कभी एक ही दाने में 2 से तीन अण्डे तक देती है। एक मादा लगभग 250–300 अण्डे देती है। प्रत्येक अण्डा 0.7 मिमी लम्बा 0.3 मिमी चौड़ा, सफेद रंग का तथा अर्ध– पारदर्शक होता है। गर्मियों में उद्भवन काल (Incubation period) 2–5 दिन तथा सर्दियों में 6–10 दिन का होता है।

टिप्पणी

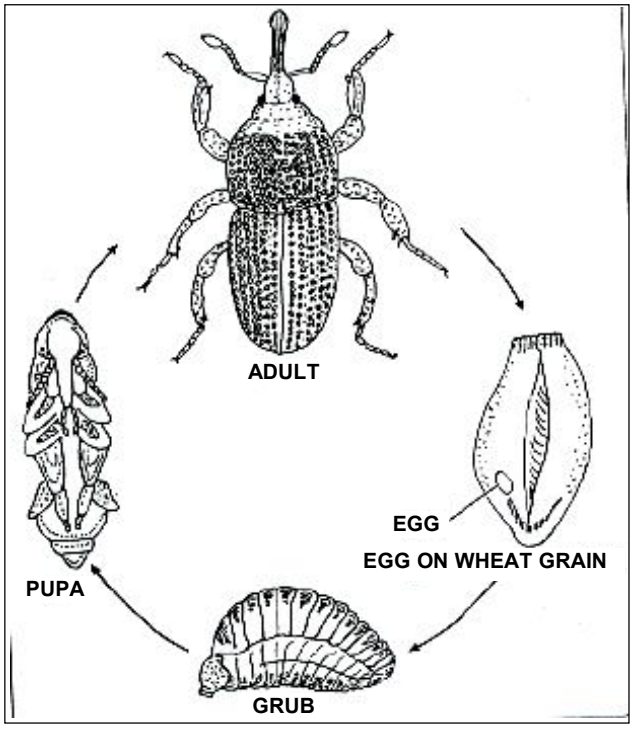

चित्र क्र. 5.15: Life history of Sitophilus oryzae

अण्डे से निकला ग्रब (Grub) पीले–सफेद रंग का 0.8 मिमी लम्बा लार्वा होता है जो अण्डोद्भेदन होते ही दाने के अन्दर भोजन करने लगता है। 25–35 दिन की लार्वल अवधि में यह तीन बार निर्मोचन करके चौथे लार्वल इंस्टार में परिवर्तित हो जाता है। पूर्ण विकसित ग्रब लगभग 3 मिमी लम्बा, पीले– भूरे रंग का पैर रहित (Apodous) लार्वा होता है जिसके मुखांग काटने एवं चबाने वाले होते है।

दाने के अन्दर ही ग्रब प्यूपा (Pupa) में परिवर्तित हो जाता है। प्यूपा भूरे रंग का तथा 2.5 मिमी लम्बा होता है। गर्मियो में प्यूपल अवधि 4–7 दिन तथा सर्दियों में 14–21 दिन होती है उसके बाद प्यूपा से वयस्क घुन निकल आता है।

एक वर्ष में इस कीट की 3–4 पीढ़ियाँ मिलती हैं। यह अप्रैल से अक्टूबर तक प्रजनन करता है। ग्रब तथा वयस्क दोनों अवस्थाएँ शीतनिष्क्रियता में जाती हैं।

इस कीट की एक दूसरी जाति सिटोफिलस ग्रैनेरियस (Sitophilus granarius) होती है जो सा. ओराइजे की तरह उड नही सकती तथा इसके इलाइट्रा पर निशान या धब्बे नही पाये जाते।

क्षति की प्रकृति एवं विस्तार (Nature and Extent of Damage)– इस कीट के ग्रब तथा वयस्क दोनों ही अपने काटने तथा चबाने वाले मुखांगो से अनाज के दानो को अन्दर से खाकर खोखला कर देते है तथा भारी नुकसान पहुँचाते है। पैर रहित ग्रब एक दाने से दुसरे दाने तक नही पहुँच पाता परन्तु वयस्क घुन उड़कर अपना स्थान बदल लेते है। अधिक नमी इनके लिए बहुत सुविधाजनक होती है। नमी होने के कारण खाये हुए दानों में कवकों का आक्रमण

हो जाता है जिससे दाने काले पड़ जाते हैं। इनका आक्रमण इतनी अधिक संख्या में होता हैं कि भण्डारित अनाज पूरी तरह से नष्ट हो जाता है।

टिप्पणी

नियन्त्रण (Control)

1. अनाज भण्डारण से पूर्व उस स्थान की अच्छी तरह से सफाई कर लेनी चाहिए तथा कूडा –करकट को जला देना चाहिए। गोदाम में दरारों को सीमेन्ट या अन्य उपयुक्त पदार्थ से बन्द कर देना चाहिए।
2. गोदाम में चूहों के सभी बिलों को टूटे काँच के टुकड़ो एवं मिट्टी के मिश्रण से बन्द कर देना चाहिए तथा उसके ऊपर से सीमेन्ट का प्लास्टर कर देना चाहिए।
3. भण्डारण के लिए पूसा बिन (Pusa bin), हापुर बिन (Hapur bin) या पन्तनगर कुठला (Pantnagar Kuthla) का उपयोग करना चाहिए।
4. यदि भण्डारण धातु की बनी संरचनाओं अथवा टाट के पुराने बोरों (Gunny bags) में करना हो तो उन्हे पहले गर्म जल में धोकर साफ कर लेना चाहीए तथा बोरों को मैलाथियॉन के 1 प्रतिशत घोल में 10 मिनट तक रखने के पश्चात् धूप में भली भाँति सुखा लेना चाहिए।
5. भण्डारण से पूर्व गोदाम में 1.0 प्रतिशत मैलाथियॉन (Malathion) 50 EC का छिडकाव (Spraying) 3 लिटर प्रति 100 वर्ग मीटर की दर से कर लेना चाहिए। गोदाम की पगडण्डियो (Alleyways) पर मैलाथियॉन 50 EC के घोल का छिडकाव 10 मिली प्रति लीटर जल की दर से करना चाहिए।
6. भण्डारण करते समय गोदाम के सभी रोशनदानों एवं खिडकियों को कसकर बन्द कर देना चाहिए तथा दरवाजों के नीचे के खाली स्थानों को जाली लगाकर बन्द कर देना चाहिए ताकि चूहों के प्रवेश को रोका जा सके।
7. अनाज भण्डारण से पूर्व उसे अच्छी प्रकार से सुखा लेना चाहिए जिससे उसमें नमी न रहे। 9 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर अनाज के पीड़को से प्रभावित होने का खतरा बना रहता है।
8. संग्रहित अनाज में उपस्थित टूटे अथवा क्षतिग्रस्त दानों को पृथक् कर देना चाहिए।
9. भण्डारण से पूर्व अनाज को इथिलीन डाइक्लोराइड तथा कार्बन टेट्राक्लाराइड के मिश्रण (EDCT) से 15 लीटर प्रति 400 क्विन्टल की दर से उपचारित करना चाहिए। इसके साथ ही भण्डारण से पूर्व गोदाम को इथिलीन डाइक्लोराइड तथा कार्बन टेट्रोक्लोराइड तथा कार्बन बाइसल्फाइड के मिश्रण से 8 लीटर प्रति एक हजार घन फुट की दर से 24 घण्टे तक धूमित (Fumigate) करना चाहिए।
10. भण्डारित अनाज को एलुमिनियम फॉस्फाइड (Aluminium phosphide) या सेल्फॉस (Celphos) की एक गोली प्रति मीट्रिक टन की दर से अथवा ई.

डी. बी. (EDB) 3 मिली प्रति क्विन्टल की दर से धूमित करने से पीड़को से छुटकारा पाया जा सकता है।

टिप्पणी

11. यदि सम्भव हो तो गोदाम का ताप या तो 150°C से कम अथवा 400°C से कुछ अधिक बनाये रखना चाहिए।
12. गोदाम में अनाज के बोरों के चट्टे (Stakes) उचित रीति से बनाये जाने चाहिए।

5.15 ट्राइबोलियम कैस्टेनियम हर्बस्ट (Tribolium Castaneum Herbst)

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम (Phylum) : आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)

क्लास (Class) : इन्सेक्टा (Insecta)

उपवर्ग (Sub class) : टेरीगोटा (Pterygota)

प्रभाग (Division) : एण्डोप्टेरीगोटा (Endopterygota)

गण (Order) : कोलियोप्टेरा (Coleoptera)

कुल (Family) : टेनिब्रियोनिडी (Tenebrionidae)

सामान्य नाम (Common Name) : आटे का लाल बीटल (Red Flour Beetle) या आटे की सुरसुरी

वितरण (Distribution) – भारत के सभी प्रान्तों में पाया जाता है।

पोषक (Host)– सामान्यतया आटे में पाया जाता है परन्तु आटे के अतिरिक्त मैदा, सूजी, दाल एवं सूखे मेंवो पर भी पाया जा सकता है।

पहचान (Identification)– लाल भूरे रंग का कीट है जिसके शरीर की लम्बाई 3–4 मिमी तथा चौडाई 1.2 मिमी होती है। शरीर स्पष्ट रूप से सिर, वक्ष एवं उदर में बँटा दिखायी देता है। सिर एवं वक्ष पर सूक्ष्म गड्ढे दिखाई देते है। सिर पर मुग्दराकार (Clavate) शृंगिकाएँ पायी जाती हैं जिनके अन्तिम तीन खण्ड चौड़े होते हैं। अग्र वक्ष की पृष्ठ प्लेट (Tergum) बाहर की तरफ निकली दिखायी देती है। इलाइट्रा पर खड़ी धारियाँ दिखाई देती हैं। इसकी एक अन्य प्रजाति ट्राइबोलियम कन्फ्यूसम (Tribolium confusum) होती है जो इससे आकार में छोटी होती है परन्तु उड़ सकती है।

5.15.1 जीवन वृत्त (Life History)

टिप्पणी

वयस्क मादा मैथून के 24–48 घण्टे बाद आटे या दानों के मध्य अण्डे देती है। ये अण्डे बेलनाकार एवं सफेद रंग के होते हैं। एक मादा लगभग 400 अण्डे देती है। 4–10 दिन की उद्‌भवन अवधि के बाद अण्डोद्‌भेदन द्वारा ग्रब बाहर आता है।

अण्डे से निकला ग्रब लगभग 1 मिमी लम्बा तथा सफेद पीला रंग का होता है। यह भोजन करता है और वृद्वि करता है। 21–28 दिन के अन्दर यह 4–5 बार निर्मोचन करके पूर्ण विकसित हो जाता है। पूर्ण विकसित ग्रब लाल रंग का 6 मिमी लम्बा लार्वा होता है जिसके शरीर पर रोम पाये जाते है। इसके मुखांग काटने एवं चबाने वाले होते हैं।

आटे में ही पूर्ण विकसित ग्रब प्यूपा मे परिवर्तित हो जाता है जिसका रंग भूरा होता है। 5–10 दिन की प्यूपल अवधि के पश्चात् वयस्क बीटल बाहर निकल आता है।

यह कीट अप्रैल से अक्टूबर तक प्रजनन करता है। इसका जीवन वृत्त 26–30 दिन का होता है तथा एक वर्ष में इसकी 4–5 पीढियाँ पायी जाती हैं।

क्षति की प्रकृति एवं विस्तार (Nature and Extent of Damage)– यह कीट आटे एवं आटे से बने पदार्थो; जैसे – मैदा, सूजी तथा अन्य कीटों द्वारा क्षतिग्रस्त दानों को नुकसान पहुँचाता है। वर्षा ऋतु में उमसभरी गर्मी के दिनों में यह पीड़क सर्वाधिक क्षति पहुँचाता है। इसकी उपस्थिती के कारण आटा पीले –सिलेटी रंग का हो जाता है जिससे दुर्गन्ध आने लगती है और यह मानव के खाने योग्य नही रहता। आटे में जाला पड जाता है।

नियन्त्रण (Control)

1. भण्डारण से पूर्व गोदाम मे 1.0% मैलाथियॉन (malathion) 50 EC का छिडकाव (Spraying) 3 लीटर प्रति 100 वर्ग मी की दर से कर लेना चाहिए।
2. भण्डारण करते समय गोदाम के सभी रोशनदानों एवं खिडकियों को कसकर बन्द कर देना चाहिए।
3. अनाज भण्डारण करने के पूर्व अनाजों को भली भाँति सुखा लेना चाहिए।
4. संग्रहित अनाजों में उपस्थित टूटे अथवा क्षतिग्रस्त दानों को पृथक कर देना चाहिए।
5. यदि सम्भव हो तो गोदाम का ताप 15^0C – 40^0C के नजदीक होना चाहिए।

टिप्पणी

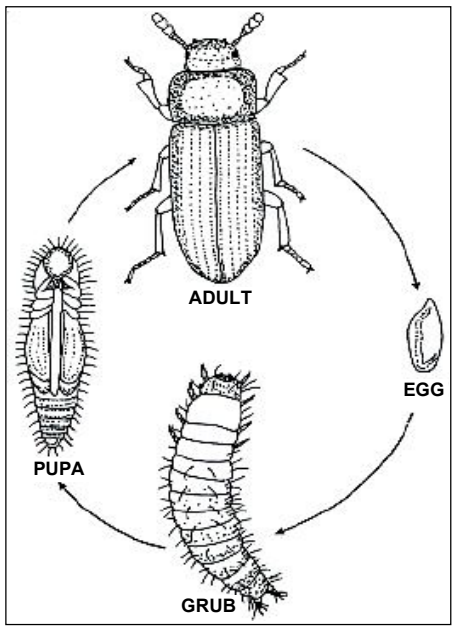

चित्र क्र. 5.16: Life History of Tribolium castaneum

5.16 सब्जियों के पीड़क (Pests of Vegetables)

सब्जियाँ मनुष्यों के लिए मुख्य भोज्य पदार्थों का निर्माण करती है तथा यह वृद्धि तथा सामान्य स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक होती है। यह बहुत सारे पोषक पदार्थों, जैसे – आयरन कॅल्शियम, तथा विटामिन्स से परिपूर्ण होती है। आजकल सब्जियों की खेती कृषि तथा आर्थिकी में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। अर्बन क्षेत्रो (Urban regions) में कई परिवार, घरों में ताजी सब्जियों की खेती करते है जो बहुत उपयोगी होती है।

कीट भारी मात्रा में सब्जियों पर आक्रमण करके उनकी संख्या तथा गुणवत्ता दोनो को ही नष्ट कर देते हैं। सब्जियों की संख्या तथा उत्पादन को तभी बढ़ाया जा सकता है, जब हम कीटो की वृद्धि पर पूर्णरूप से नियन्त्रण कर पायेंगे।

पृथ्वी पर कीटो की उत्पत्ति आज से लगभग 360 मि. वर्ष पूर्व हुई, जबकि मानव की उत्पत्ति हुए केवल 12 मि. वर्ष ही हुए है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त प्रकार के जन्तुओं की कुल संख्या का 70 प्रतिशत भाग अकेले कीटो का है। कीटों की इस अद्‌भूत सफलता का मुख्य कारण कीटों का विभिन्न वातावरण, जैसे थल, जल एवं वायु में रहनें एवं विभिन्न प्रकार के भोजन को खाने के प्रति पूर्णतया अनुकूलित होना है। कीटों के मुखांग विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को खाने हेतू भिन्न भिन्न प्रकार से रूपान्तरित हो गए हैं। बहुत से कीटो की प्रजातियाँ बहुभोजीय (Polyphagous) होती है। इन सभी कीट विशेषताओं का ही परिणाम है कि ये मानव को विभिन्न प्रकार से नुकसान पहुँचाते हैं। मानव के कुल खाद्य उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत भाग कीट खा जाते है। इसके अतिरिक्त ये भण्डारित उत्पादों, पशुधन (Live stock) एवं अन्य उपयोगी वस्तुओं (Commodities) को भी भारी मात्रा में नुकसान पहुँचाते हैं। ऐसे जीव जो प्रत्यक्ष

(Direct) या अप्रत्यक्ष (Indirect) रूप से मानव को आर्थिक क्षति पहुँचाते हैं, पीड़क कहलाते हैं।

टिप्पणी

पाक प्रयोजन (Culinary purpose) हेतु उपयोग में लाए जाने वाले शाकीय पौधों के उत्पादों को सब्जियाँ (Vegetables) कहते हैं। पौधों के विभिन्न भागों का प्रयोग सब्जियों के रूप में किया जाता हैं; जैसे– जड (गाजर, मूली); कन्द (Tuber) (आलू); घनकन्द (Corm) (कचालू, जिमीकन्द); शल्क कन्द (Bulb) (प्याज, लहसून), पत्तियाँ (सलाद, पालक, बन्दगोभी); पुष्प (फुलगोभी, ब्रोकली); फल (कद्दू, टमाटर,बैंगन, फलियाँ, भिण्डी) तथा बीज (मटर)। अधिकतर सब्जियाँ रेशों विटामिनों तथा खनिजों की अच्छी स्रोत होती हैं। अनेक प्रकार के पीड़क विभिन्न प्रकार की सब्जियों पर आक्रमण करके उन्हे क्षतिग्रस्त करते है और भारी नुकसान पहुँचाते हैं।

प्रमुख सब्जियों की फसलों को हानि पहुँचाने वाले पीड़को की सूची सारणी मे दी गई है परन्तु पाठ्यक्रम को दृष्टीगत रखते हुए प्रस्तुत अध्याय में केवल दो पीड़को का ही वर्णन किया जा रहा है।

5.17 पियरिस ब्रेसिके लिन्नेस (Pieris Brassicae Linn.)

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम (Phylum) : आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)

क्लास (Class) : इन्सेक्टा (Insecta)

उपवर्ग (Sub class) : टेरीगोटा (Pterygota)

प्रभाग (Division) : एण्डोप्टेरीगोटा (Endopterygota)

गण (Order) : लेपीडोप्टेरा (Lepidoptera)

कुल (Family) : पियरिडी (Pieridae)

सामान्य नाम (Common Name) : गोभी की तितली (Cabbage Butterfly)

सारणी क्र. 5.3: सब्जियों के पीड़को की सूची (Pests of Vegetables)

क्र. सं.	पीड़क का सामान्य नाम	पीड़क का वैज्ञानिक नाम	फसल का नाम
1.	आलू का कन्द शलभ (Potato Tuber Moth)	**थोरीमिया =(नॉरीमॉस्चीमा) ऑपरकुलेला** (Pthorimia =*Gnorimoschema) operculella*)	आलू, **सोलेनम द्यूबरोसम** (Potato, *Solanum tuberosum*) टमाटर, **लाइकोपर्सिकम इस्कुलेन्टम** (Tomato, *Lycopersicum esculentum*) बैंगन, **सोलेनम मेलोंजीना** (Brinjal, *Solanum melongena*) आलू (Potato)

टिप्पणी

2.	आलू का सुनहरा कृमि (Golden Potato Nematode)	**हेटरोडेरा रॉस्टोचाइनेन्सिस** (*Heterodera rostochinensis*)	आलू (Potato)
3.	चितकबरा पत्ती बीटल या हड्डा बीटल (Spotted Leaf Beetle or Hadda Beetle)	**इपीलैक्ना विजिन्टीऑक्टोपंकटेटा** (*Epilachna viginitioctopunclata*)	आलू, टमाटर, वैंगन, भिण्डी, **एबिलमॉस्कस इस्कुलेन्टस** (*Ladyfinger Abelmoschus esculentus*)
4.	बैंगन का तना एवं फल बेधक (Brinjal Shoot and Fruit Borer)	**ल्यूसिनोडिस ऑरबोनैलिस** (*Leucinodes orbonalis*)	बैंगन
5.	फल की मक्खी (Fruit Fly)	डेकस कुकरबिटे (Dacus cucurbitae)	कद्दू, **कुकरबिटा मॉस्चेटा** (Pumpkin, *Cucurbita moschata*) लौकी, **लैजीनेरिया सिसीरेरिया** (Lauki, *Lagenaria siceraria*) ककड़ी, **कुकुमिस यूटिलिसिमस** (Kakri, *Cucumis utilissimus*) खीरा, **कुकुमिस सैटाइवस** (Kheera, *Cucums sativus*) करेला, **मोमोर्डिका कैरेन्सिया** (Karela, *Momordica charantia*) खरबूजा, **कुकुमिस मेलो** (Kharbju, *Cucumis melo*) तरबूज, **सिट्रुलस वल्गैरिस** (Tarbooj, *Citrullus vulgaris*)
6	कद्दू का लाल बीटल (Red Pumpkin Beetle)	**रेफिडोपैल्पा (अलैकोफोरा) फोवीकोलिस** *Raphidopalpa* (*=Aulacophora) faveicolis*)	कद्दू
7.	गोभी का तितली (Cabbage Butterfly)	**पियरिस ब्रेसिके** (*Pieris brassicae*)	फूलगोभी, बन्दगोभी, शलजम, मूली, **रेफैनस सैटाइवस** (Radish, *Raphanus sativus*) शलजम, **ब्रेसिका रापा** (Turnip, *Brassica rapa*
8.	कपास का लाल बग (Red Cotton Bug)	**डिस्डरकस कोयेन्जाई** (*Dysdercus koenigii*)	भिण्डी, कपास, **गॉसीपियम**, (Cotton, *Gossypium* sp.)

9.	प्याज का थ्रिप्स (Onion Thrips)	**थ्रिप्स टबेकाई** (*Thrips tabaci*)	प्यास, **एलियम सेपा** (Onion, *Allium cepa*) लहसुन, **एलियम सेटाइवम** (Garlic, *Allium sativum*)
10.	तम्बाकू की सूंडी (Tobacco Caterpillar)	**स्पोडोप्टेरा (प्रोडीनिया) लिटूरा** (*Spodoptera* (=*Prodenia*) *Litura*	तम्बाकू, (Nioctiana) फूलगोभी, मूली।

वितरण (Distribution)– भारतवर्ष के उन सभी स्थानों में जहाँ क्रूसीफेरी कुल (Cruciferae family) की शाक– सब्जियाँ उगाई जाती है, यह तितली पायी जाती है।

पोषक पौधे (Host Plants)– इस तितली का कैटरपिलर फूलगोभी (Cauliflower), बन्दगोभी (Cabbage), नाल खॉल (Nol-khol), शलजम (Turnip), मूली (Radish), तथा तोरई (Toria) आदि के पौधों पर भोजन करता है।

पहचान (Identification)– यह पीले सफेद रंग की बडे आकार की तितली होती है जिसके पृष्ठ तल का रंग धुएँ जैसा होता है। इसके पंखो का विस्तार 6–7 सेमी होता है। अग्र पंख के शीर्ष कोण (Apical angle) पर एक काला निशान पाया जाता है। इसके अतिरिक्त नर तितली के अग्र पंख के पृष्ठ तल पर दो काले बिन्द पाए जाते हैं, जबकि मादा तितली में ये काले बिन्दु अग्र पंख के अधर तल पर पाए जाते हैं। उत्तर भारत में मार्च –अप्रैल के महीने में जब मौसम गर्म होने लगता है यह तितली ठण्डे स्थानों को चली जाती है तथा अक्टूबर– नवम्बर के महीने में फिर से वापस आ जाती हैं।

5.17.1 जीवन चक्र (Life Cycle)

मादा तितली पत्तियों पर समूहों में अण्डे देती है। एक मादा लगभग 170 अण्डे देती है। ये अण्डे पीले सफेद रंग के होते हैं जिनका गोल होता है। गर्मी के दिनो में अण्डोद्भेदन 3 से 7 दिनों में तथा सर्दी के दिनों 11 से 17 दिनों में होता है। अण्डोद्भेदन के परिणामस्वरूप छोटे– छोटे कैटरपिलर बाहर आ जाते हैं।

प्रथम इंस्टार कैटरपिलर हरे रंग के होते हैं और झुण्डों में रहते हैं। ये कैटरपिलर अपने काटने एवं चबाने वाले मुखांगो की सहायता से तेजी से पौधों को खाने एवं वृद्धि करने लगते है। गर्मियों में 15–20 दिन तथा सर्दियों में 30–40 दिन के अन्दर कैटरपिलर 4 बार निर्मोचन करके पूर्ण विकसित कैटरपिलर में परिवर्तित हो जाते है। पूर्ण विकसित कैटरपिलर 3–4 सेमी लम्बा एवं हरे पीले रंग का होता है जिसके शरीर पर छोटे छोटे रोम पाये जाते हैं।

टिप्पणी

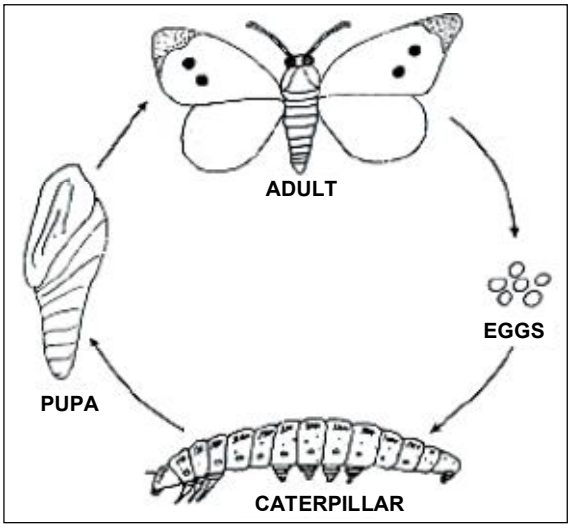

चित्र क्र. 5.17: Life Cycle of Pieris brassicae

कैटरपिलर पत्ती के ऊपर या पौधे के पास प्यूपा में बदल जाता है इसका प्यूपा नग्न अवस्था में रहता है जिसे क्राइसैलिस (Chrysalis) कहते हैं जो एक गर्डिल (Girdle) द्वारा पौधे की टहनी से बँधा रहता है। गर्मियों में प्यूपल अवस्था 7–14 दिन तथा सर्दियों में 20 से 28 दिन तक रहती है। उसके पश्चात् वयस्क तितली बाहर निकल आती है। वयस्क तितली 2–10 दिन तक जीवित रहती है प्रतिवर्ष इस तितली की 4 पीढ़ियाँ मिलती हैं।

क्षति की प्रकृति एवं विस्तार (Nature and Extent of Damage)– केवल कैटरपिलर ही पौधों को क्षति पहुँचाते हैं। ये कैटरपिलर पत्तियों को किनारे से खाना प्रारम्भ करते है और बीच तक खाते चले जाते है। इस प्रकार ये पत्तियों का पूर्ण रूप से सफाया कर देते हैं जिससे उत्पादन बहुत कम हो जाता हैं।

नियन्त्रण (Control)

1. कैटरपिलरों के आक्रमण के समय उनको पकडकर मार देना चाहिए।
2. 0.05 प्रतिशत मैलाथिऑन (Malathion), 0.02 प्रतिशत डाइजिनॉन (Diazinon) के घोल का छिडकाव (Spraying) करने से कैटरपिलर मर जाते हैं।

5.18 डेकस कुकरबिटे कॉक (Dacus Cucurbitae Coq.)

वर्गीकरण (Classification)

संघ (Phylum) : आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)

वर्ग (Class) : इन्सेक्टा (Insecta)

उपवर्ग (Sub class) : टेरीगोटा (Pterygota)

प्रभाग (Division) : एण्डोप्टेरीगोटा (Endopterygota)

टिप्पणी

गण (Order) : डिप्टेरा (Diptera)

कुल (Family) : टेफ्रीटिडी (Tephritidae), ट्राईपेटिडी (Tripetidae)

सामान्य नाम (Common Name) : फल की मक्खी (Fruit Fly)

वितरण (Distribution)– भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में यह मक्खी पायी जाती है।

पोषक पौधे (Host plants)– यह मक्खी कुकरबिटेसी कुल (Cucurbitaceae family) के पौधों; जैसे कद्दू, लौकी (Pumpkins), खीरा, ककडी (Cucumbers), करेला, कुंदरू, तोरई, टिण्डा (Gourds) आदि पर पायी जाती है। इसके अतिरिक्त यह खरबूजा, तरबूज (Melons), टमाटर (Tomato) आदि पर भी आक्रमण करती है।

पहचान (Identification)– वयस्क मक्खी भूरे लाल रंग की होती है। इसका शरीर 7 मिमी लम्बा तथा 3 मिमी चौडा होता है तथा पंखों का विस्तार 14 मिमी होता है सिर पर एक जोडी विकसित संयुक्त नेत्र, तीन नेत्रक (Ocelli), एक जोडी एरिस्टेट (Aristate) श्रृंगिकाएँ एवं स्पंजिंग (Sponging) मुखांग पाये जाते है। वक्ष पर तीन जोडी पैर तथा केवल अग्र पंख पाया जाता है। पश्च पंख अविकसित हाल्टर्स (Halters) के रूप में होते हैं अग्र पंख पारदर्शी होते है जिन पर बादामी या सिलेटी रंग के धब्बे पाये जाते है। नर के उदर का पश्च भाग गोल तथा मादा के उदर का पश्च भाग अण्ड – निक्षेपक (Ovipositor) के कारण नुकीला होता है।

5.18.1 जीवन वृत्त (Life History)

इसके जीवन–चक्र में पूर्ण कायान्तरण (Complete metamorphosis) पायी जाती है। मैथून के बाद मादा मक्खी अपने नुकीले अण्ड –निक्षेपक की सहायता से फल के गुदे में 4–10 अण्डे देती है। सिगार की आकृति के ये अण्डे चिकने, चमकीले सफेद रंग के होते है और इनकी लम्बाई 0.6 मिमी होती है। अण्डे एक –एक करके (Singly) या 5–12 के समूह में दिए जाते हैं। अण्डे देने के बाद मादा फल से एक चिपचिपा पदार्थ निकालकर छिद्र को बन्द कर देती है जिससे अण्डे सुरक्षित हो जाते है। एक मादा 15 दिन में लगभग 200–300 अण्डे देती है।

अण्डे देने के 6–9 दिन के अन्दर अण्डोद्भेदन द्वारा लार्वा या मैगॉट (Maggot) बाहर निकल आता है। 1 मिमी लम्बा यह मैगॉट सफेद रंग का होता है तथा इसका शरीर 11 खण्डो का बना होता है इसका अगला सिरा पतला तथा पिछला सिरा चौडा है। इसके मुखांग काटने एवं चबाने वाले होते है। यह पैर रहित (Apodus) होता है परन्तु सभी खण्डों के निचले तल पर गद्दी रूपी (Pad like) रचनाएँ पायी जाती हैं। मैगॉट फल के गूदे को खाकर सुरंग बनाते जाते है और वृद्धि करते जाते हैं। पूर्ण विकसित मैगॉट 10 मिमी लम्बा, 2 मिमी चौड़ा तथा मटमैले सफेद रंग का होता हैं। पूर्ण विकसित मैगॉट फलो से बाहर निकल मिट्टी में पहुँच जाते हैं जहाँ वे 6 से 24 घण्टे के अन्दर प्यूपा में परिवर्तित हो जाते हैं।

टिप्पणी

प्यूपा (Pupa) बादामी रंग का नाल के आकार का (Barrel shaped) होंता है। इसकी लम्बाई लगभग 6 मिमी तथा चौडाई 1 मिमी होती है और इस पर 11 खण्ड दिखाई देते हैं। 6–8 दिन में प्यूपा वयस्क मक्खी में परिवर्तित हो जाता है। सर्दियों में प्यूपा से वयस्क मक्खी बनने में लगभग 30 दिन का समय लगता है।

इस मक्खी का जीवन वृत्त गर्मियों में 12–15 दिन के अन्दर तथा सर्दियों में 30–40 दिन के अन्दर पूरा होता है। वयस्क मक्खी का जीवन काल 2–4 महिने का होता है। मादा मक्खी नर की अपेक्षा अधिक समय तक जीवित रहती है। सर्दियों में प्यूपल अवस्था में यह शीतनिष्क्रियता (Hibernation) में रहती हैं।

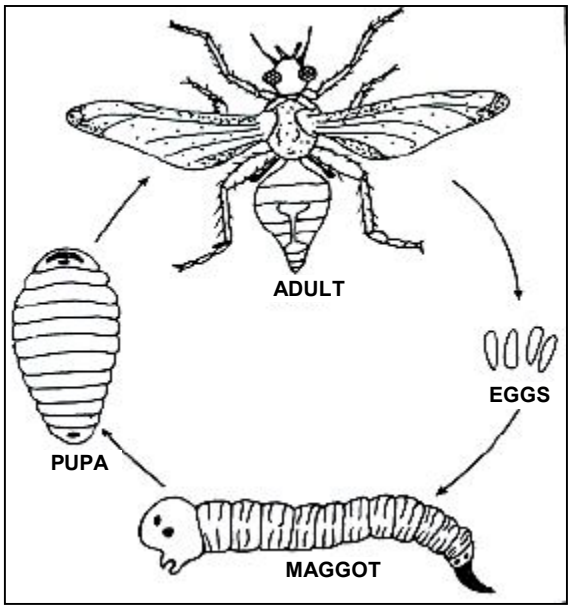

चित्र क्र. 5.18: Life history of Dacus cucurbitae

क्षति की प्रकृति एवं विस्तार (Nature and Extent of Damage)– इस मक्खी के मैगॉट फलों के गूदे खाकर भारी नुकसान पहुँचाते हैं। इनका प्रकोप फरवरी से अक्टूबर तक होता है। नम वातावरण तथा गर्मी का मौसम इनके लिए सर्वथा अनुकूल होता है। पोषक पौधों के फलों के अन्दर अण्डे देने एवं मैगॉट द्वारा गूदे को खाने के कारण फल क्षतिग्रस्त होकर कमजोर हो जाता है तथा इस पर काले धब्बे पड़ जाते है। क्षतिग्रस्त भाग पर जीवाणुओं एवं कवकों के संक्रमण से फल सडने लगते है तथा उनमें से दुर्गन्ध आने लगती है। इस प्रकार ये कुल उत्पादन का 50–100 प्रतिशत भाग क्षतिग्रस्त कर देती हैं।

नियन्त्रण (Control)

1. यह मक्खी देर से पकने वाली किस्मों की फसलों को अधिक नुकसान पहुँचाती है अतः जल्दी पकने वाली किस्मों को बोने से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है।
2. प्रभावित फलों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए।
3. मिट्टी को उलटते रहना चाहिए तथा बुआई से पूर्व गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे भूमि में उपस्थित अपरिपक्व अवस्थाएँ नष्ट हो जायें।

टिप्पणी

4. जहरीले प्रलोभकों (Poison baits) जैसे शीरे में सोडीयम आर्सीनेट मिलाकर अथवा यीस्ट में मैलाथिऑन मिलाकर रखने से वयस्क मक्खियों को मारा जा सकता है।
5. कीमोस्टेरीलेण्ट जैसे टेपा (Chemosterilants like Tepa) के 0.15 प्रतिशत घोल का छिडकाव करने से मक्खियों को नपुंसक बनाया जा सकता हैं।

5.19 तिलहन फसलों के पीड़क (Pest of Oil Seed Crops)

सारणी क्र. 5.4: तिलहन फसलों के पीड़क (Pests of Oil Seed Crops)

क्र.सं.	पीड़क का सामान्य नाम	पीड़क का वैज्ञानिक नाम	फसल का नाम
A	चितेरा कीट (Painted Bug)	**बग्राडा क्रूसीफेरैरम** (*Bagrada cruciferarum*)	सरसों, **ब्रासिका कैम्पेस्ट्रिस** (Mustard, *Brassica compestris*)
	मान्हू (Manhu), Mahu चेपा (Chempa) सरसों की आरा मक्खी	लाइपेफिस इटीसिनाई अर्थेलिया लूगेन्स प्राक्सिमा	
B	अलसी गाल–मिज (Linseed Gall-midge)	**डेसीन्यूरा सिसेमाई** (*Dasyneura sesami*)	अलसी, **लिनम यूसीटेटासिमम** (Linssed, *Linum usitatasssimum*)
C	तिल लीफ वेबर (Til Leaf Webber)	**एण्टीगैस्ट्रा कैटालाउनैलिस** (*Antigastra catalaunalis*)	तिल, **सिसेमम इन्डिकम** (Til, *Sesamum indicum*)
D.	सफेद लट (White Grub)	**होलोट्रिकिया कन्सैन्विनिया** (*Holotrichia consanguinea*)	मूँगफली, **ऐरैकिस, हाइपोजिया** (Groundnut, *Arachis hypogaea*)
	मूँगफली का तना वेधक (Groundnut Stem Borer)	**स्फीनॉप्टेरा पेरोटेटी** (*Sphenoptera perotetti*)	
E.	अरण्डी अर्धकुण्डलक (Castor Semilooper)	**एकीया जनाटा** (*Achaea janata*)	अरण्डी, **रिसिनस कम्यूनिस** (Castor, *Ricinus communis*)
	अरण्डी सफेद मक्खी (Castor Whitefly)	**ट्राइल्यूरोडिस रिसिनाई** (*Trileurodes ricini*)	

टिप्पणी

F.	कुसुम्भ कलीमक्खी (Safflower Budfly)	**एकैन्थियोफिलस हेलियेन्थाई** (*Aconthiophilus helianthi*)	कुसुम्भ, **कैन्थेमस टिन्क्टोरियम** (Safflower, *Canthamus tinctorium*)

5.19.1 तिलहन फसलों के प्रमुख पीड़क (Marin Pests of Oil-seed Crops)

(1) अथेलिया लूगेन्स प्रॉक्सिमा क्लग (Athalia Lugens Proxima Klug)

वर्गीकरण (Classification)

प्रभाग (Division) – एण्डोप्टेरीगोटा (Endopterygota)

गण (Order) – हाइमेनॉप्टेरा (Hymenoptera)

कुल (Family) – टेन्थ्रेडिनिडी (Tenthredinidae)

सामान्य नाम (Common name)– सरसों की आरा मक्खी (Mustard Sawfly)

वितरण (Distribution)– यह पीड़क पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसाम, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक प्रान्तों में पाया जाता है।

बाहय संरचना (External Structure)– यह 4.5 मिमी लम्बी चमकदार काले रंग की मक्खी होती है जिसके समस्त शरीर पर पीले–नारंगी धब्बे तथा धारियाँ पायी जाती है। मादा मक्खी का अण्ड–निक्षेपक (Ovipositor) आरी की आकृति (Saw-like) का होता है।

जीवन–वृत्त (Life History)–

मादा 2–130 तक अण्डे देती है। 5–6 दिन की उद्‌भवन अवधि (Incubation period) के पश्चात् अण्डोद्‌भेदन (Hatching) होता है। अण्डों से अण्डोद्‌भेदन के परिणाम स्वरूप लार्वा बाहर आता है जो 13–18 दिनों में चार बार निर्मोचन करके पाँचवें इंस्टार लार्वा में बदल जाता है। पूर्ण विकसित लार्वा मिट्टी में गिरकर अपने चारों ओर अण्डाकार रेशम का कोकून बना लेता है, जिस पर धूल–मिट्टी चिपक जाती है। 4 दिन तक निश्चल रहने के बाद यह प्रीप्यूपा पुनः फिर प्यूपा में बदल जाता है। 10–15 दिनों में यह प्यूपा (Pupa) वयस्क में परिवर्तित होकर कोकून से बाहर निकल आता है। कभी कभी इस कीट में अनेक जनन Parthenogenesis द्वारा नर बन जाते है।

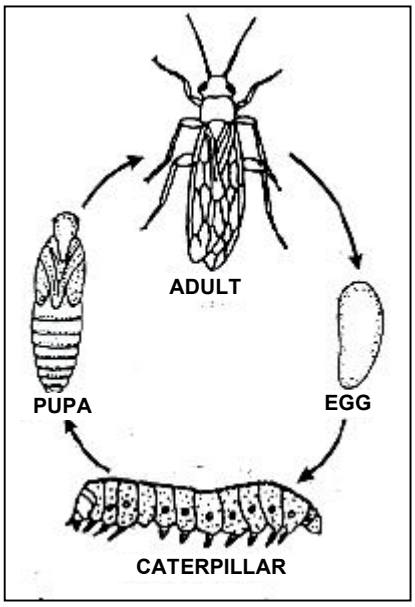

चित्र क्र. 5.19: अथेलिया लूगेन्स प्रॉक्सिमा का जीवन चक्र

Life-cycle of Athalia lugens proxima

हानि (Damage)– इस कीट के लार्वा या कैटरपिलर क्रूसीफेरी कुल के पौधों की पत्तियों को खाते हैं, जिससे पत्तियों में छिद्र बन जाते हैं। परिणामस्वरुप पौधा पीला पड़ जाता है तथा वृद्धि बहुत मन्द पड़ जाती है। कभी–कभी पौधा सूख भी जाता है। गम्भीर रूप से प्रभावित क्षेत्रों में पौधे पूर्णरूप से खाए हुए दिखायी देते हैं। पूरी खेती नष्ट हो जाती है।

बचाव और नियन्त्रण (Preservation and Control)

1. अण्डों तथा लार्वा से ग्रसित पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।
2. **इचन्यूमोनिड हाइमेनॉप्टेरा**, ***पेरीलिसस सिन्गुलेटर*** **(Ichneumoid Hymenoptera**, *Perilisus cingulator*) नामक कीट इस पीड़क के लार्वों में अण्डे देता है, अतः इसकी सहायता से इस पीड़क का जैविक नियन्त्रण किया जा सकता है।
3. यह पीड़क 10 प्रतिशत बी.एच.सी. (BHC) की धूल को 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर बुरक देने पर समाप्त हो जाते हैं।

(2) बग्राडा क्रूसीफेरैरम किरकाल्डी (Bagrada Cruciferarum Kirkaldy)

वर्गीकरण (Classification)

संघ (Phylum) : आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)

वर्ग (Class) : इन्सेक्टा (Insecta)

उपवर्ग (Sub class) : टेरीगोटा (Pterygota)

प्रभाग (Division) : एक्सोप्टेरीगोटा (Exopterygota)

टिप्पणी

गण (Order) : हेमिप्टेरा (Hemiptera)

उप–गण (Sub-order) : हेटेरोप्टेरा (Heteroptera)

कुल (Family) : पेन्टाटोमिडी (Pentatomidae)

सामान्य नाम (Common Name) : चितेरा कीट (Painted bug), सुन्दर (Sunder), Jhanga (झांगा)

वितरण (Distribution)– भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में जहाँ पर भी क्रूसीफेरी (Cruciferae) कुल की फसलें उगायी जाती हैं, यह पीड़क पाया जाता है।

बाहय संरचना (External Features)– वयस्क कीट 5–7 मिमी लम्बे होते हैं। इनका शरीर चमकीला काला होता है तथा पृष्ठ भाग पर नारंगी तथा लाल रंग के चकत्ते (Markings) पाये जाते हैं। सिर पर दो नेत्रक (Ocelli), पाँच खण्डीय श्रृंगिकायें (Antennae) तथा चुभोने एवं चूसने (Piercing and sucking) वाले मुखांग पाये जाते हैं।

जीवन वृत्त (Life History)

वयस्क मादा अक्टूबर के महीने से अण्डे देना प्रारम्भ करती है। अण्डे लगभग 1 मिमी लम्बे तथा 0.5 मिमी चौड़े होते हैं। सात दिन की उद्‌भवन अवधि (Incubation period) के उपरान्त अण्डोद्‌भेदन (Hatching) के परिणामस्वरूप निम्फ (Nymph) बाहर आते हैं। पाँच बार निर्मोचन करके निम्फ वयस्क में बदल जाता है।

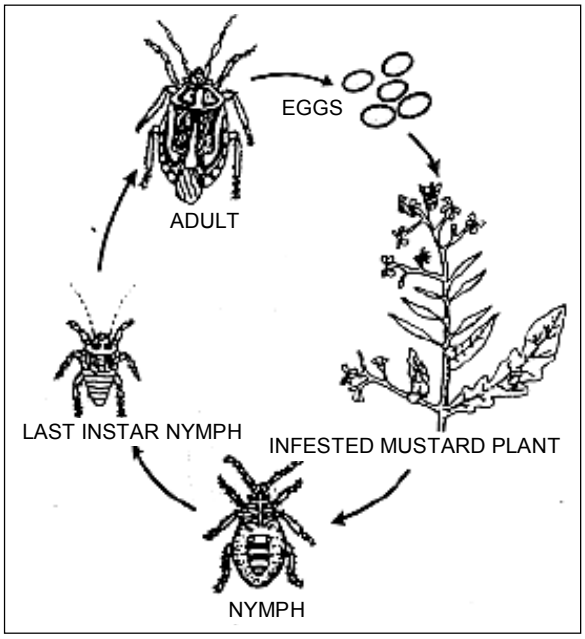

चित्र क्र. 5.20: बग्राडा क्रूसीफरैरम का जीवन–चक्र

(Life History of bagrada cruciferarum)

हानि (Damage)– निम्फ तथा वयस्क पौधों की पत्तियों, फूलों, फलियों इत्यादि का रस चूसते हैं, जिससे पौधा पीला पड़कर मुरझा जाता है।

बचाव और नियन्त्रण (Prevention and Control)

टिप्पणी

1. वयस्क कीटों एवं निम्फों को पकडकर नष्ट कर देना चाहिए।
2. अण्डों का परजीवी टाइफोडाइट्स तथा निम्फ एवं वयस्क का परजीवी एकोफेरा के प्रोत्साहन से जैविक नियंत्रण किया जा सकता है।

(3) होलोट्रिकिया कन्सैन्विनिया ब्लैन्कार्ड (Holotrichia Consanguinea Blanchard)

वर्गीकरण (Classification)

प्रभाग (Division) : एण्डोप्टेरीगोटा (Endopterygota)

कुल (Family) : मेलोलॉन्थिडी (Melolonthidae)

गण (Order) : कोलियोप्टेरा (Coleoptera)

सामान्य नाम (Common Name) : सफेद लट (White grub)

वितरण (Distribution)– भारत में यह पीड़क पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, बिहार, गुजरात, राजस्थान एवं तमिलनाडु में पाया जाता है।

बाहय संरचना (External Features)– यह कीट रात्रिचर (Nocturnal) होते हैं, जिनमे शरीर की लम्बाई 1.5–2 सेमी तथा चौड़ाई लगभग 1 सेमी होती है। इन्हें सामान्यतया कॉक–शैफर्स (Cock-chafers) या जून बीटल (June Beetle) कहते हैं। इनके उदर पर केवल 6 खण्ड दिखायी देते हैं।

जीवन वृत्त (Life History)– जून के महीने में मानसून की प्रथम वर्षा होने पर जब मिट्टी नम हो जाती है तब वयस्क बीटल मिट्टी से बाहर निकलते हैं। बाहर आने के बाद ये संगम (Mating) करते हैं।

मादा (Female) बीटल मिट्टी में 12–15 सेमी की गहराई पर छोटे–छोटे कक्ष (Cell) बनाकर अण्डे देती है। 7–10 दिन के अन्दर अण्डोद्भेदन (Hatching) द्वारा लार्वा बाहर निकल आता है, जिसे लट या ग्रब (Grub) कहते है। यह ग्रब या लट पोषक पौधों की जड़ें खाना प्रारम्भ कर देता है। जैसे–जैसे जड़ें नीचे बढ़ती जाती हैं, लट भी नीचे बढ़ता जाता है। लार्वा 56–70 दिनों में पूर्ण विकसित तृतीय इंस्टार लार्वा में बदल जाता है। लार्वा सितम्बर के महीने में प्यूपा (Pupa) में परिवर्तित हो जाता है। 7–12 दिन की प्यूपल अवधि (Pupal stage) के उपरान्त यह वयस्क में बदल जाता है।

टिप्पणी

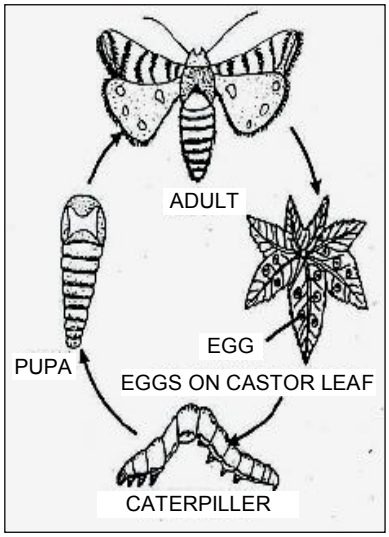

चित्र क्र. 5.21: ऐकीया जनाटा का जीवन चक्र

(Life History of Achaea janata)

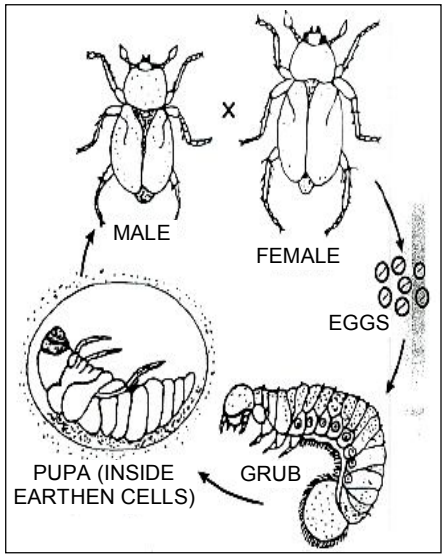

चित्र क्र. 5.22: होलोट्रिकिया कन्सैन्गिवनिया का जीवन चक्र

(Life History of Holotrichia consanguinea)

हानि (Damage)– वयस्क बीटल रात के समय पेड़ों की पत्तियों को खाकर भारी क्षति पहुँचाते हैं। ये नीम, अमरूद, बरगद, बेर आदि की पत्तियों को खाकर पूर्णरूप से पर्णरहित कर देते हैं। लट पोषक पौधे की जड़ों को खाते है।

बचाव और नियन्त्रण (Prevention and Control)

1. लाइट ट्रेप (Light trap) की सहायता से निर्गमन के समय वयस्कों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए। यह विधि नियन्त्रण की सर्वोत्तम विधि होती है, क्योंकि इसमें अण्डनिक्षेपण के पूर्व ही वयस्क मादायें नष्ट हो जाती है।
2. खेतों में पानी भर देने से मिट्टी में उपस्थित विभिन्न अवस्थायें मर जाती हैं।
3. क्लोरपाइरीफॉस (Chlorphyriphos) के 0.05 प्रतिशत अथवा एण्डोसल्फान (Endosulfan) के 0.07 प्रतिशत घोल का छिडकाव (Spray) करने से वयस्क बीटल को नियन्त्रित किया जा सकता है।

(4) ऐकीया जनाटा लिन्न (Achaea Janata Linn.)

वर्गीकरण (Classification)

संघ (Phylum) : आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)

वर्ग (Class) : इन्सेक्टा (Insecta)

प्रभाग (Division) : एन्डोप्टेरीगोटा (Endopterygota)

गण (Order) : लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera)

कुल (Family) : नोक्लूडिआ (Nocluidae)

टिप्पणी

सामान्य नाम (Common Name) : एरण्डी अर्धकुण्डलक (Castor Semiloger)

वितरण (Distribution)– यह पीड़क पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा दिल्ली में प्रमुखता से पाया जाता है।

बाहय संरचना (External Features)– वयस्क शलभ भूरे लाल या बादामी रंग के होते हैं। यह भी रात्रिचर होता है।

जीवन वृत्त (Life History)– मादा 2–6 अण्डे देती है। 2–5 दिन की उद्भवन अवधि के उपरान्त अण्डोद्भेदन द्वारा प्रथम इन्सटार लार्वा (1st Instar Caterpillar Larva) बाहर आता है। लगातार 15–20 दिन तक ये लार्वा भोजन एवं निर्मोचन करके पौधे से नीचे उतरकर मिट्टी में रेशम के धागों का कोकून बनाता है। इसके बाद 10–15 दिनों की प्यूपा अवस्था के पश्चात् वयस्क शलभ बाहर आ जाता है।

हानि एवं बचाव (Damage and its control)

1. ये फलों का रस चूस कर भारी नुकसान पहुँचाते हैं। इनके कैटरपिलर पत्तियों को खाते है।

   इनसे बचाव के लिए कीटनाशी दवाओं का छिडकाव करना चाहिए।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

36. ओराइजा सैटाइवा किस अनाज का पीड़क है?
   (अ) आलू, (ब) कद्दू,
   (क) सरसों (ड) चावल।
37. सरसों के पीड़क का नाम निम्नमें से कौन सा है?
   (अ) अथेलिया लूगेन्स, (ब) रैफिडोफाल्पा फोनेाकोडिलस,
   (क) कैलोबून्क्स चाइनैन्सिस (ड) पीरित वैसीका।
38. निम्नलिखित में से आटे का घुन है–
   (अ) ट्राइवोलियम, (ब) साइटोफिकस,
   (क) कैलीसोबुन्कस, (ड) इनमें से कोई नहीं।
39. साइटोफिलस ओराइजी का सामान्य नाम है–
   (अ) सुरसरी, (ब) लेसर ग्रेन बोरर,
   (क) खपरा बीडल, (ड) दाल का बीडल।
40. अनाज संग्रहित करने से पूर्व करना चाहिए–
   (अ) अनाज को सुखा लेना चाहिए,
   (ब) गोदाम को कीटनाशक से घूमित करना चाहिए,

टिप्पणी

(क) उपरोक्त सभी कार्य करना चाहिए,

(ड) उपरोक्त मे से कोई नहीं।

41. पीड़क कहते है–

(अ) किसी हानिकारक कीट को,

(ब) किसी हानिकारक जन्तू को,

(क) क्षति पहुँचाने वाले किसी भी जीव को,

(ड) उपरोक्त मे से कोई नहीं।

42. डेकस कुकरविरा का सामान्य नाम है।

(अ) फल की मक्खी, (ब) कद्दु का लाल बीटल,

(क) हुड्डा बीटल, (ड) इनमे से कोई नहीं।

43. कीटों में सामान्यतः प्रजनन क्रिया निम्न विधि द्वारा होती है –

(अ) Sexual Reproduction, (ब) Parthenogenesis,

(क) Asexual Reproduction, (ड) Binary fission।

44. आँसू गैस कहते है–

(अ) Chloropicrin (ब) Carbon tetrachloride,

(क) Hydrogen oxide (ड) fumigants।

45. किसी परजीवी द्वारा पीड़क के नियन्त्रण को कहते है –

(अ) जैविक नियन्त्रण, (ब) यान्त्रिक नियन्त्रण,

(क) परजीवी नियन्त्रण, (ड) रासायनिक नियन्त्रण।

5.20 कीटपीड़कों का जैविक नियन्त्रण (Biological Control of Insect-Pests)

5.20.1 जैविक नियन्त्रण के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Biological Control)

किसी जैविक नियन्त्रण प्रोग्राम की सफलता के लिए उसमें निम्नलिखित तत्वों का शामिल होना आवश्यक होता है –

1. किसी उपयुक्त प्राकृतिक शत्रु का चयन कीट–पीड़क की प्राकृतिक दशाओं के अनुसार किया जाना चाहिए, जिससे चयनित भौतिक शत्रु कीट–पीड़क के पर्यावरण में स्वयं को स्थापित कर सकने में सक्षम हो सके।

टिप्पणी

2. परजीवियों, परभक्षियों तथा रोगजनकों को अधिक सक्षम बनाने हेतु उनके वन्य भण्डार (Wild stock) से अधिक उच्चता (Superiority) वाले आनुवंशिक विभेदों (Genetic strains) का विकास किया जाना चाहिए।
3. कीट–पीड़कों की तुलना में उनके प्राकृतिक शत्रु उच्च जनन क्षमता, मादाओं की उच्च संख्या, अल्प जीवनकाल तथा शीघ्र पक्वता प्राप्त करने वाले होने चाहिए।
4. जैविक नियन्त्रण हेतु प्राकृतिक शत्रुओं में पोषद कीट–पीड़क (Host insect pest) को ठीक प्रकार तलाश करने की पूर्ण वास्तविक क्षमता होनी चाहिए।
5. परजीवी तथा रोगजनक शत्रुओं में उच्च प्रवेशण क्षमता तथा उग्रता (Virulence) होनी चाहिए।
6. परभक्षी एवं परजीवी कीटों तथा अन्य कारकों को प्रयोगशाला में लगाकर उन्हें पालकर एवं उनकी जनसंख्या में वृद्धि करके ऐसे स्थानों पर छोड़ना जहाँ उनके पोषकों की संख्या अधिक हो।

जैविक नियन्त्रण के लिए पूर्वापेक्षाएँ (Prerequisites of Biological Control)

जैविक नियन्त्रण की सफलता के लिए निम्नलिखित जानकारी होना आवश्यक होता है –

1. सर्वप्रथम हमें यह जान लेना चाहिए कि नियन्त्रित किए जाने वाले पीड़क की जाति उप–जाति (Sub species) या प्रजाति (Race) क्या है।
2. सम्बन्धित कीट या पीड़क के भौगोलिक वितरण की सही एवं सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।
3. पीड़क तथा उससे सम्बन्धित परजीवी तथा परभक्षी कीट के जीवन चक्र का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा इस बात की भी सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए कि पोषक की किस अवस्था पर शत्रु की कौन–सी अवस्था आक्रमण करती है।
4. शत्रु कीट के बारे में यह भी जानना आवश्यक है कि वह प्रमुख कीटहारी (Entomophagous) कीट ही है। उस पर उच्च पराश्रयी कीट नहीं होना चाहिए।
5. नियन्त्रित किए जाने वाले कीट के क्षेत्रीय एवं देशी प्राकृतिक शत्रुओं की भी जानकारी होनी चाहिए।

प्राकृतिक शत्रुओं की प्रभावी विशेषताएँ (Effective Qualities of Natural Enemies)

जैविक नियन्त्रण के लिए प्रयुक्त होने वाले प्राकृतिक शत्रु में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए–

1. प्राकृतिक शत्रु में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह अपने पोषक को तीव्रता से खोज ले, भले ही पोषक कम संख्या में हों।

टिप्पणी

2. प्राकृतिक शत्रु में नए वातावरण के अनुकूल अपने को ढालने की क्षमता होनी चाहिए।
3. प्राकृतिक शत्रु के पोषक कम–से–कम हों ताकि लाभदायक कीटों को नुकसान न होने पाए।
4. प्राकृतिक शत्रु में तीव्र प्रजनन क्षमता होनी चाहिए तथा इसका जीवन चक्र संक्षिप्त होना चाहिए जिससे कम से कम समय में यह अपनी जनसंख्या बढ़ा सके।
5. उपयोग किए जाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं पर उच्च–पराश्रयी (Hyperparasites) नहीं होने चाहिए।
6. इनमें कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता पायी जाती हो।
7. ये आसानी से पाले जा सकते हों।

5.20.2 जैविक नियन्त्रण के कारक (Agents of Biological Control)

निम्नलिखित प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोग जैविक नियन्त्रण के कारकों के रूप में किया जाता हैं–

1. परभक्षी कशेरूक (Predatory vertebrates)
2. परभक्षी एवं परजीवी कीट (Predatory and parasitic insects)
3. सूक्ष्मजीव (Micro-organisms)
4. खरपतवारों का नियन्त्रण (Control of weeds)
5. आनुवंशिक नियन्त्रण (Genetic control)
6. नर बन्ध्यता तकनीक (Male sterility technique)

1. **परभक्षी कशेरूक (Predatory vertebrates)**– विभिन्न प्रकार के कशेरुक जन्तु भिन्न भिन्न प्रकार के कीटों का भक्षण करते हैं। इस प्रकार ये बहुत से हानिकारक किटों का प्राकृतिक नियन्त्रण करते रहते है, जैसे मछलियाँ, मेंढ़क, कछूआ, साँप, छिपकली, पक्षी, चमगादड, चुहे आदि। गम्बूसिया एफिनिस (Gambusia affinis) मछली मच्छरों के अण्डो, लार्वों एवं प्युपों को खाकर मच्छरों का नियन्त्रण करती है। मेंढको के टैडपोल (Tedpoles) मच्छरों के लार्वों के आवासीय परास (Habitat range) मे पाये जाते हैं। टैडपोल मच्छरों के लार्वों का भक्षण करते हैं, जबकि वयस्क मेंढक वयस्क मच्छरों का शिकार करते हैं। राना टिग्रीना (Rana tigrina) के टैडपोल मच्छरों की प्युपा अवस्था को अधिक महत्व देते है। हवाई द्वीप (hawaii island) तथा फिलिपिन्स (Philippines) में गन्ने (Sugar cane) पर लगने वाले सफेद लटों (White grubs) के नियन्त्रण के

लिए मैक्सिको के वृहत टोड (Giant toad of Miexico) का उपयोग किया गया।

कीटभक्षी कशेरुकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान पक्षियों का है। अधिकतर पक्षियों का प्रमुख भोजन कीट है। खेतों मे किसानों द्वारा जुताई करते समय मिट्टी मे उपस्थित कीट तथा लार्वा अनावृत हो जाते है जिन्हें ये पक्षी खा जाते है। दक्षिण भारत में टेट्रोडा हिस्टेरॉयडिस (Tetroda histeroides) नामक धान के पीड़क के नियन्त्रण के लिए धान के खेतो में बतखों को छोड़ा जाता है। ये बतखें टेट्रोडा बग को बड़ी संख्या में खाकर नियन्त्रण करती हैं।

2. परभक्षी एवं परजीवी कीट (Predatory and parasitic insects)

(i) परभक्षी कीट (Predatory insects)– ये किट अपने शिकार से बड़े आकार के होते है तथा संपूर्ण जीवन स्वतंत्रतापूर्वक व्यतित करते हैं। ये अपने शिकार की विभिन्न अवस्थाओं का भक्षण करते है या उसके शरीर का रस (Body sap) चुस लेते है। परभक्षी कीट अपनी वयस्क या अवयस्क अथवा दोनो ही अवस्थाओं मे कीटों का भक्षण करते हैं। सर्वाधिक परभक्षी किट कोलीयोप्टेरा (Coleoptera) गण (Order) के अन्तर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त मैण्टिड्स, (Mantids), न्युरोप्टेरन्स (Neuropterans), कुछ बग (Bugs) तथा कुछ डिप्टेरन्स (Dipterans) भी परभक्षी होते हैं। अनेक परभक्षी किट जैसे ड्रेगनफ्लाई के लार्वा (Dragonfly larvae) तथा जलिय बीटल (Aquatic beetles) मच्छरों के लार्वों का भक्षण करते हैं परन्तु ये मच्छरों के जनसंख्या घनत्व को बहुत प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित नहीं कर पाते हैं। कीटों के अतिरिक्त अनेक साइक्लोप्वाएड कोपीपॉड्स (Cyclopoid copepods) मच्छरों के लार्वो का भक्षण करते हैं। इनके उपयोग से डेंगू वाहकों (Dengue vectors) का जैविक नियन्त्रण सफलतापूर्वक किया जा चुका है।

परपोषियों के आधार पर परभक्षी कीटों को निम्नलिखित प्रकारों मे बाँटा गया है –

(अ) एकाहारी परभक्षी (Monophagous predator)– इस प्रकार के परभक्षी एक विशिष्ट प्रकार एवं उसके अत्यधिक निकट के परपाषी का भक्षण करते हैं। रोडोलिया कार्डिनेलिस (Rodolia cardinalis) एकाहारी परभक्षी है जो कॉटनी-कुशन स्केल (Cattony-cushion scale) का भक्षण करता है।

(ब) सीमितहारी परभक्षी (Stenophagous predator)– ये परभक्षी कुछ सीमित परपोषियों का ही भक्षण करते हैं, जैसे कॉक्सीनेलिड्स एवं सिरफिडस् (Coccinellids and Syrphids)

टिप्पणी

(स) बहुहारी परभक्षी (Oligophagous predator)– ये परभक्षी विभिन्न प्रकार के परपोषियों का भक्षण करते हैं, जैसे मैण्टिड्स एवं न्यूरोप्टेरन्स् (Mantids and neuropterans)।

(ii) परजीवी कीट (Parasitic insects)– परजीवी किट सामान्यतया अपने पोषक से आहार मे छोटे होते है। एक परजीवी कीट अपने पोषक को नहीं मार पाता अपितु समुहों में ये पोषक को कमजोर करके मार देते हैं। कुछ परजीवी अपना संपूर्ण जीवन एक ही पोषक पर बिताते हैं, जबकी कुछ अपना जीवन कई पोषकों पर पूरा करते है।

परजीवीयों मे एक विशेष संवर्ग परजीव्यामों (Parasitoid) का होता है जो सामान्यतया आकार मे पोषक के समान होते हैं एवं केवल एक ही पोषक पर आश्रित होते हैं। ये परजीव्याम अपनी अविकसित अवस्थाओं में ही परजीवी होते हैं तथा इनके वयस्क बनने के साथ ही पोषक की मृत्यु हो जाती है और वयस्क स्वतन्त्र होकर जीवन बिताते हैं। अधिकांश परजीव्याम हायमेनोप्टेरा एवं डिप्टेरा गण (Order Hymenoptera and Diptera) के अन्तर्गत आते हैं। कभी–कभी एक ही परपोषी पर एक ही जाती के अनेक परजीव्याम पाये जाते हैं जिनमें से अधिकतर परजीव्याम समाप्त हो जाते हैं और केवल थोडे से परजीव्याम परिपक्व हो पाते हैं। इन्हे महापरजीव्याम (Superparasitodis) कहते हैं तथा यह अवस्था महापरजीविता (Superparasitism) कहलाती हैं। कभी कभी एक ही परपोषी पर अन्दर अथवा बाहर एक से अधिक परजीव्याम जातीयाँ एक साथ रहती हैं तब इस दशा को बहुपरजीव्यामता (Multiparasitoidism) कहते हैं। इस अवस्था में जो परजीव्याम जीवन संघर्ष मे असफल हो जाते हैं वे समाप्त हो जाते हैं और एक ही परजीव्याम जाति अपना जीवन–चक्र पूरा कर पाती है। उपर्युक्त के अतिरिक्त कुछ परजीव्याम ऐसे भी होते हैं जो दूसरे परजीव्यामों पर परजीवी होते हैं। ऐसे परजीव्यामों को परात्परजीवी परजीव्याम (Hyperparasitoid) कहते है। परात्परजीवी परजीव्याम अपने पोषक परजीव्याम की शक्ती को कम कर देते हैं।

भारत में विभिन्न पीडकों के नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित परभक्षी एवं परजीवी कीटों का उपयोग किया जा रहा है–

सारणी क्र. 5.5

क्र.सं.	परभक्षी तथा परजीवी कीट	पीड़क
1	**रोडोलिया कार्डिनेलिस** (परभक्षी) (*Rodolia cardinalis*)	कॉटनी कुशन स्केल, **इसर्या परचेसाई** (Cottony cushion scale, *Icerya purchasi*)
2	**ब्रेकन जिलेची** (परजीवी) (*Bracon gelechiae*)	पोटेटो ट्यूबर मॉथ, **नॉरीमॉस्चीमा ऑपरकुलेला** (Potato tuber moth, *Gnorimoschema operculella*)
3	**ट्राइकोग्रामा माइन्यूटम** (परजीवी) (*Trichogramma minutum*)	गन्ने का बेधक, **काइलो इनफस्केटेलस** (Sugarcane borer, *Chilo infuscatellus*)

4	**एफीलिनस माली** (परजीवी) (*Aphelinus mali*)	वूली माहू, **इरियोसोमा लेनीजेरम** (Wooly aphid, *Erisoma lanigerum*)
5	**ऐपेन्टिलिस फ्लेवीपेस** (परजीवी) (*Apanteles flavipes*)	ज्वार का तना बेधक, **काइलो पार्टेलस** (Jowar stem borer, *Chilo partellus*)
6	**टेलीनोमस नवाई** (परजीवी) (*Telenomus nawai*)	कैस्टर सेमीलूपर, **एकीया जनाटा** (Castor semilooper, *Achaea janata*)
7	**स्पोगोसीटा बेजियाना** (परजीवी) (*Spoggosita bezziana*)	कोकोनट कैटरपिलर, **नीफैन्टिस सेरीनोपा** (Coconut caterpillar, *Nephantis serinopa*)
8	**ओपियस वैण्डेन्बोसाई** (परजीवी) (*Opius vandenboschi*)	फल की मक्खी, **डेकस प्रजाति** (Fruit fly, *Dacus*, sps)
9	**एफाइटिस माइटीलैस्पिडिस** (परजीवी) (*Aphytis mytilaspidis*)	सैन्जोस स्केल, **क्वाड्रेस्पीडियोटस पर्निसियोसस** (Sanjose scale, *Quadraspidiotus perniciosus*)
10	**सिनगेमिया हीमोरॉयडैलिस** (*syngamia haemorrhoidalis*)	**लैण्टाना वीड** (*lantana weed*)

3. **सूक्ष्मजीव (Micro-organisms)**– कई प्रकार के सूक्ष्मजीवों जैसे जीवाणु, विषाणु, कवक, प्रोटोजोन तथा सूत्रकृमीयों द्वारा भी जैविक नियन्त्रण किया जाता है, जिसके कारण इसे **सूक्ष्मजीवी नियन्त्रण (Microbial control)** कहते हैं।

(i) जीवाणु (Bacteria)– अनेक प्रकार के जीवाणु विभिन्न प्रकार के कीटों पर आक्रमण करते हैं। **डी हेरेली** (de Herelle) ने 1911 मे सर्वप्रथम टिड्डी (Locust) के नियंत्रण के लिए **कोकोबेसिलस एक्रीडियोरम** (*Coccobacillus acridiorum*) नामक जीवाणु का उपयोग किया और सफलता प्राप्त की। **बैसिलस पॉपीलिये** (*Bacillus popilliae*) तथा **बैसिलस लेण्टीमॉर्बस** (*Bacillus lentimorbus*) नामक जीवाणु कोलियोप्टेरा के ग्रब (Grub) तथा लेपिडोप्टेरा के कैटरपिलर (Caterpillar) पर आक्रमण करके मिल्की रोग (Milky disease) उत्पन्न करते हैं। इस रोग के प्रभाव से पोषक का रक्त या हीमोलिम्फ (Haemolymph) दूधीया सफेद (Milky white) हो जाता है तथा अवरुद्ध हो जाता है जिससे पोषक की मृत्यु हो जाती है। जापानी बीटल, **पौपीलिया जैपोनिकम** (Japanese beetle, *Popillia japonicum*) तथा सफेद लट (White grubs) के नियन्त्रण हेतु इनका प्रयोग किया जा रहा है। बाजार में दूधिया रोग के जीवाणु डस्ट (Dust) के रूप मे मिलते है जिसे किसी वाहक (Carrier) के साथ मिश्रित करके प्रयोग किया जाता है।

बैसिलस थूरिनजियेन्सिस (*Bacillus thuringiensis*) नामक जीवाणु का प्रयोग भी जैविक नियन्त्रण में किया जा रहा है। यह जीवाणु बीजाणु (Spore) बनाते समय जहरीले प्रोटीन के रवे (Crystals) उत्पन्न करता है जिसके कारण सर्वप्रथम कीट की मध्यान्त्र (Midgut) लकवाग्रस्त (Paralyze) हो जाती है तथा

टिप्पणी

कुछ समय बाद पूरा शरीर लकवाग्रस्त हो जाता है और कीट की मृत्यु हो जाती है। इस जीवाणु द्वारा बहुत से कीटों विशेषकर कोलियोप्टेरा एवं लेपिडोप्टेरा का नियन्त्रण किया जाता है। बाजार में डस्ट के रूप मे यह उपलब्ध है।

(ii) विषाणु (Virus)– विषाणु केवल जीवित कोशिका पर आक्रमण करते है तथा इनका पोषक भी विशिष्ट (Host specific) होता है। जैविक नियन्त्रण में विषाणु के उपयोग का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। सर्वप्रथम बाल्च (Balch) ने 1946 मे स्प्रूस सॉफ्लाई, **डिप्रिऑन हर्सानी** (Spruce swafly, *Diprion hercyniae*) के नियन्त्रण के लिए विषाणु का प्रयोग किया। लगभग 250 प्रकार के विषाणु विभिन्न प्रकार के किटों पर आक्रमण करते हैं जिनमें दो प्रकार के विषाणु प्रमुख है– पॉलीहेड्रोसेस विषाणु (Polyhedroses virus) तथा ग्रैनुलोसेस विषाणु (Granuloses virus)। पॉलिहेड्रोसेस विषाणु प्रभावित कीट के ऊतको में बहुफलीय काय (Polyhedral bodies) बनाते हैं। ये बहुफलकीय काय केन्द्रक तथा जीवद्रव्य में बनती है। प्रभावीत कीट निस्तेज हो जाता है तथा भोजन करना बन्द कर देता है। शीघ्र ही कीट की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु से ठीक पहले अथवा बाद में कीट की त्वचा फट जाती है जिससे द्रवरूपी पदार्थ रिसता है जो अन्य किटो में संक्रमण फैलाने का कार्य करता है। ग्रैनुलोसस विषाणु प्रभावित कीट के ऊतको में कणिकामय काय बनाते है। दोनों प्रकार के विषाणुओं द्वारा जिन कीटों के नियन्त्रण प्रयोग सफल सिद्ध हुए है उनके नाम है– स्पोडॉप्टेरा लिटूरा (Spodoptera litura), हेलियोथिस आर्मीजेरा (Heliothes armigera), नियोडिप्रिऑन सर्टीफर (Neodiprion sertifer), डायक्रीसिया ऑब्लीकुआ (Diacrisia obliqua) आदि।

(iii) कवक (Fungi)– सूक्ष्मजीवों द्वारा किटों मे व्याधि उत्पन्न करने की बात सर्वप्रथम कवकों के सन्दर्भ में तब ज्ञात हुई जब रेशम कीटों पर ब्युवेरिया बेसियाना (Beauveria bassiana) नामक कवक का संक्रमण देखा गया। बाद में इसी कवक का उपयोग चिन्च बग, ब्लेसस ल्यूकप्टेरस (Chinch bug, Blessus lucpterous) के नियन्त्रण में किया गया। इसके बाद मेटाराइजियम एनाइसोप्लिया (Metarrhizium anisopliae) नामक कवक का प्रयोग गेहूँ के कॉकचैफर, एनाइसोल्पिया ऑस्ट्रियेका (Cockchafer, Anisoplia austriaca), के विरुद्ध किया गया। इसी कवक का प्रयोग आजकल कोकोनट बीटल के नियन्त्रण के लिए किया जा रहा है। कवकों के सभी समूह, जैसे– फायकोमाइसिटीज, एस्कोमाइसिटीज, बेसिडियोमाइसिटीज तथा ड्यूटेरोमाईसिटीज (Phycomycetes, Ascomycetes, Basidiomycetes and Deuteromycetes) अनेक कीटों पर आक्रमण करते हैं। परन्तु ब्लास्टोक्लैडियेल्स (Blastocladiales) तथा एण्टमाफ्थोरेल्स (Entomophthorales) समूह के फाइकोमाइसिटीज कवकों का कीट नियन्त्रण में महत्वपूर्ण स्थान है। कवकों के माइसीलियम त्वचा के माध्यम से शरीर में प्रवेश करके पूरे शरीर में फैल जाते हैं। इनसे निकले एन्जाइम त्वचा की काइटिन (Chitin) को मुलायम कर देते हैं। कवकों से निकले विषैले पदार्थ (Mycotoxins) कीट में टेटनस जैसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार माइसीलियम के शरीर में फैलने से किट की दम घुट जाती है। दम घुटने एवं विषैले पदार्थ के प्रभाव से पोषक कीट की मृत्यु हो जाती है।

(iv) प्रोटोजोआ (Protozoa)– प्रोटोजोआ की बहुत सी जातियाँ कीटों परजीवी होती है। टनाडा (Tanada) ने 1959 में कीटों के जैविक नियन्त्रण में प्रोटोजोआ की उपयोगिता पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला परन्तु इनके उत्पादन एवं अन्य समस्याओं के कारण इस दिशा में बहुत सकारात्मक कार्य नहीं हो सका। कुछ प्रोटोजोन; जैसे– **पेरीजिया पाइरॉस्टी** (*Perezia pyraustae*) का उपयोग ज्वार तथा मक्का के तना बेधक, **ऑस्ट्रीनिया नीबिलेलिस** (*Ostrinia nobilalis*) के नियन्त्रण के लिए किया गया है। **मैलेमीबा लोकस्टी** (*Malamoeba locustae*) तथा **नॉसीमा लोकस्टी** (*Nosema locustae*) नामक प्रोटोजोन परजीवी को टिड्डे के नियन्त्रण हेतु प्रयोग में लाया जा रहा है।

(V) सूत्रकृमि (Nematode)– सूत्रकृमियों की कई जातियाँ कीटों पर परजीवी होती हैं विशेषकर टिड्डा, कॉकरोच, मॉथ एवं बीटल अतः आजकल सूत्रकृमियों के माध्यम से कीटों के जैविक नियन्त्रण हेतु प्रयोग एवं परीक्षण किए जा रहे हैं। DD-136 **नियोप्लेक्टाना कार्पोकैप्सी** (*Neoplectana carpocapse*) को जापान से आयात करके कई पीड़कों विशेषकर लेपिडोप्टेरा समूह के पीड़कों के विरुद्ध किया जा रहा है। भारत में **नियोटाइलेन्कस** (*Neotylenchus*), **रैब्डाइटिस** (*Rhabditis*), **स्यूडोनीमस** (*Pseudonymus*) नामक सूत्रकृमियों द्वारा पीड़कों के नियन्त्रण की सम्भावनाओं का पता लगाया जा रहा है।

4. **खरपतवारों का नियन्त्रण (Control of weeds)**– खरपतवार फसलों के लिए अत्यन्त हानिकारक होते हैं। इनका जैविक नियन्त्रण कीटों द्वारा किया जा सकता है। परन्तु नियन्त्रण हेतु ऐसे कीटों का चुनाव करना चाहिए जो आर्थिक महत्व के पौधों को नुकसान नहीं पहुँचाते हों। भारत के पहाड़ी एवं मैदानी क्षेत्रों में पाया जाने वाला **लैण्टाना कैमरा** (*Lantana camera*) नामक विनाशकारी खरपतवार को **ऑर्थीजिया इनसिग्निस** (*Orthezia insignis*) नामक बग द्वारा नियन्त्रित करने में सफलता प्राप्त हुई है। इसी प्रकार कँटीली नागफनी (Prinkly pear cactus) **ओपन्सिया वुल्गैरिस** (*Opuntia vulgaris*) को लंका से आयातित मीली बग (Mealy bug) **डैक्टाइलोपियस टोमेण्टोसस** (Dactlopius tomentosus) नामक **कोचीनियल कीट** (*Cochineal insect*) द्वारा समाप्त किया गया। इसी प्रकार 1939 में दक्षिणी अमेरिका से आकर ऑस्ट्रेलिया में पनप गयी **ओपन्सिया स्ट्रिक्टा** (*Opuntia stricta*) नामक नागफनी को **कैक्टोब्लास्टिस कैक्टोरम** (*Cactoblastis cactonum*) नामक शलभ द्वारा नष्ट करने में सफलता प्राप्त की गयी। उत्तरी अर्जेण्टाइना निवासी इस शलभ की वर्ष में दो पीढ़ियाँ पायी जाती हैं। मादा शलभ औसतन 100 अण्डे देती है तथा वयस्क लगभग दो हफ्ते जीवित रहते हैं। इस शलभ के कैटरपिलर नागफनी को बेधकर अन्दर से खाकर सुरंग बनाते हैं इसके कारण बहुत से जीवाणु तथा कवक भी नागफनी में प्रवेश करके संक्रमण फैलाते है। **कैक्टोब्लास्टिस** के सहयोग से नागफनी का नियन्त्रण करने में एक फायदा यह भी है कि इस शलभ के अण्डे पौधे पर ढेर के रूप में

टिप्पणी

दिये जाते हैं तथा इसके कैटरपिलर 2 मीटर से अधिक की दूरी पर स्थित पौधे तक नहीं पहुँच पाते अतः अन्य पौधे सुरक्षित बने रहते हैं।

हवाई द्वीप मे ऑस्ट्रेलिया से आकर फैल गयी **जैन्थियम** (*Xanthium*) नाम की खरपतवार को **नप्शेवा एण्टीनेटा** (*Nupsheeva antennata*) तथा **मीको** (*Mecuo sp.*) नामक कीटों द्वारा नियन्त्रित किया गया। कैलीफोर्निया में **हाइपेरीसीमा पर्फोरेटम** (*Hypericema Perforatum*) नामक खरपतवार को **क्राइसोलिना क्वाड्रीजेमिना** (*Chrysolina Quadrigemina*) नामक बीटल द्वारा नियंत्रित किया गया।

सन् 1939 मे दक्षिणी अमेरिका में पायी जाने वाली प्लावी फर्न, **साल्विनिया मोलेस्टा** (Floating ferm, *Salvinia molesta*) कोलम्बो विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के माध्यम से श्रीलंका में सन्निविष्ट हुई और 1990 तक यह फर्न अफ्रीका, भारत, दक्षिण पूर्व एशिया तथा ऑस्ट्रेलिया में फैल गयी। यह फर्न जल क्षेत्रों में लगभग एक मीटर मोटी पर्त बना लेती है जिससे सिंचाई व्यवस्था के साथ–साथ मत्स्यकी पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इस फर्न का नियन्त्रण **सिरटोबेगस साल्विनी** नामक घुन (Weevil, *Cyrtobagous salviniae*) द्वारा सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इस घुन का घनत्व 1000 वयस्क प्रति वर्ग मीटर तक पहुँच जाता है। इसके वयस्क कली (Bud) तथा लार्वा जड़ों एवं प्रकंदों (Rhizomes) को खाकर पौधों को समाप्त कर देते है।

5. **आनुवंशिक नियन्त्रण (Genetic control)**– आनुवंशिक नियन्त्रण एक प्रकार का जैविक नियन्त्रण है जिसमें पीड़कों की समस्या से निपटने के लिए दो योजनाओं के अन्तर्गत कार्य किया जाता है। प्रथम योजना के अन्तर्गत सम्बन्धित फसल के पौधों का इस प्रकार से आनुवंशिक परिचालन (Genetic manipulation) किया जाता है कि पीड़कों के प्रति उनकी प्रतिरोधात्मक क्षमता में वृद्धि हो जाये। दूसरी योजना के अन्तर्गत पीड़कों में ऐसे आनुवंशिक परिवर्तन किये जाते हैं कि या तो वे बांझ (Sterile) हो जाते हैं अथवा उनकी प्रजननशीलता कम हो जाती है, परिणामस्वरूप पीड़कों की संख्या में पर्याप्त कमी हो जाती है। फसलों की पीड़क प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग पीड़क नियन्त्रण की अत्यन्त प्राचीन एवं सफल तकनीकों में से एक है। सन् 1861 में उत्तरी अमेरिका से यूरोप में प्रविष्ट **फिल्लोसेरा** (*Phillocera*) **नामक मांहू** (*Aphid)* ने वहाँ की **वाइटिस विनीफेरा** (*Vitis vinifera*) नामक अंगूर की फसल को नष्ट कर फ्रांस के शराब उद्योग को भारी नुकसान पहुँचाया। अमेरिकी अंगूर की **वाइटिस लेब्रस्का** (*Vitis labrusca*) प्रजाति में **फिल्लोसेरा** मांहू के विरुद्ध प्रतिरोधी क्षमता पायी जाती हैं अतः अमेरिकन प्रजाति के प्रकंदो (*Root stocks*) पर यूरोपिन प्रजाति का आरोपण (*Grafting*) करके कृत्रिम कलमज संकर (Graft hybrid) पौधा तैयार किया गया जो फिल्लोसेरा के आक्रमण से पूर्णतया मुक्त पाया गया।

इसी प्रकार चयनित प्रजनन द्वारा अनेक शस्य पौधों (Crop plants) की प्रतिरोधी किस्मों को विकसित किया गया है। इसके लिए पीड़क प्रभावित क्षेत्र से ऐसे पौधों को खोजा जाता है जो क्षतिग्रस्त न किये गये हों। फिर ऐसे पौधों की ग्रीन हाउस में लाकर चयनित प्रजनन कराया जाता हैं। यदि ग्रीन हाउस में प्रतिरोधी क्षमता वंशानुगत हो जाती है तब इस चयनित किस्म का उपयोग व्यावसायिक उत्पादन के लिए किया जाता है। आजकल आनुवंशिक अभियान्त्रिकी द्वारा प्रतिरोधी शस्य पौधों का विकास किया जा रहा है। ऐसी जीनों को जो एक प्रजाति में प्रतिरोधात्मक क्षमता उत्पन्न करती हैं, को शस्य पौधे में सन्निविष्ट कराकर पीड़क विशेष के प्रति प्रतिरोधी बनाया जाता है। जैव पीड़कनाशी जीनों के वैकल्पिक वाहक (Vehicles) के रूप में जीवाणु का उपयोग भी किया जा सकता है। इसके लिए **बैसिलस थूरिन्जियेन्सिस** (*Bacillus thuringiensis*) प्रमुख रूप से कारगर साबित हुआ है।

6. **नर बन्ध्यता तकनीक (Male sterility technique)**– पौधों की आनुवंशिक संरचना में परिवर्तन करने के अतिरिक्त पीड़क प्रजाति के जीनोम में भी परिवर्तन करके पीड़क नियन्त्रण किया जा सकता है। इस प्रकार पीड़क प्रजाति का बन्ध्यीकरण (Sterilization) करना पीड़क नियन्त्रण का सबसे सरल उपाय हैं। बन्ध्यता या बांझपन (Sterility) उत्पन्न करने के अनेक उपाय हैं परन्तु सामान्यतया किरणन (Irradiation) अथवा रसायनों के माध्यम से पीड़क व्यष्टियों की वृहद् संख्या का बन्ध्यीकरण किया जाता है। सर्वप्रथम नर कीट को गामा किरणों (Gamma rays) द्वारा नपुंसक बना दिया जाता है फिर इन नपुंसक नर कीटों को प्रभावित स्थानों पर छोड़ दिया जाता है जहाँ से ये सामान्य मादाओं से संगम (Mating) करते हैं। इस प्रकार से हुए संगम के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए अण्डे अनिशेचित रहते हैं और विकसित नहीं होते जिससे पीड़क की जीवसंख्या कम हो जाती है। अमेरिका जैसे विकसित देशों में स्क्रवर्म फ्लाई (Screw worm fly), क्यूलैक्स (Culex) तथा एनाफिलीज (Anopheles) मच्छरों के नियन्त्रण हेतु इस तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। फ्लोरिडा जैसे छोटे द्वीप पर क्यूलैक्स पीपियेन्स क्विन्क्वीफैसियेटस (Culex pipiens quinquefasciatus) मच्छर को बन्ध्यता तकनीक से ही नियन्त्रित किया गया है। भारत में भी मच्छरों के नियन्त्रण के लिए इस तकनीक के प्रयोग पर कार्य किया जा रहा है।

5.20.3 जैविक नियन्त्रण की योजना (Strategy of Biological Control)

जैविक नियन्त्रण निम्नलिखित तीन प्रकार से किया जाता है।

1. संरक्षण (Conservation)
2. आदर्श जैविक नियन्त्रण (Classical biological control)

टिप्पणी

3. आवर्धन (Augmentation)

1. **संरक्षण (Conservation)**– प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण जैविक नियन्त्रण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आसान उपाय है। प्राकृतिक शत्रु सभी जगह पाये जाते हैं तथा ये स्थानीय वातावरण के साथ–साथ लक्ष्य पीड़क के प्रति पूर्णतया अनुकूलित होते हैं। इनका संरक्षण न केवल आसान होता है अपितु इसमें लागत भी कम आती है। उदाहरण के लिए माहू की कॉलोनी (Aphid colony) में लेसविंग्स (Lacewings), लेडी बीटल्स (Lady beetles), हॉवर फ्लाई (Hover fly) तथा परजीवियों से ग्रसित एफिड ममी (Parasitized aphid mummies) सदैव पायी जाती है। इसी प्रकार उच्च आर्द्रता वाले मौसम में कवक संक्रमित वयस्क मक्खियों की उपस्थिति सामान्य बात है। प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले जैविक नियन्त्रण के उपर्युक्त सभी कारक उन पीड़कनाशियों के प्रति अतिसंवेदनशील होते हैं जिन्हें उनके पोषकों को नियन्त्रित करने हेतु उपयोग में लाया जाता है। ऐसे प्राकृतिक शत्रुओं के अनावश्यक उन्मूलन को रोकना संरक्षण के अन्तर्गत आता है।

2. **आदर्श जैविक नियन्त्रण (Classical biological control)**– प्राकृतिक शत्रुओं को ऐसे नये स्थानों में प्रवेश कराना जहाँ वे प्राकृतिक रूप से न तो पाये जाते हों और न ही उत्पन्न हुए हों, आदर्श जैविक नियन्त्रण कहलाता है। बहुत से उदाहरण ऐसे मिलते हैं जहाँ कीट पीड़कों से सम्बन्धित प्राकृतिक शत्रु अपर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं। ऐसा विशेष रूप से तब होता है जब कोई पीड़क संयोगवश नये भौगोलिक क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है और इस दशा में उस क्षेत्र में वह अपने प्राकृतिक शत्रुओं से मुक्त होता है। इस प्रकार से प्रविष्ट हुए पीड़कों को विदेशी पीड़क (Exotic pests) कहते हैं। उत्तरी अमेरिका में प्रविष्ट हुआ यूरोपीय कॉर्न बेधक, ऑस्ट्रिनिया नूबिलेलिस (European corn borer, Ostrinia nubilalis) इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस श्रेणी के पीड़कों के नियन्त्रण हेतु ही आदर्श जैविक नियन्त्रण योजना का क्रियान्वयन किया जाता है। इसके अन्तर्गत विदेशी पीड़क के प्राकृतिक शत्रुओं को आयातित करके सम्बन्धित क्षेत्र में मुक्त किया जाता है। इस प्रक्रिया को देशज कीट पीड़कों (Native insect pests) के नियन्त्रण हेतु प्रयोग किया जाता है। प्रथम चरण में प्रविष्ट हुए पीड़क की उत्पत्ति का निर्धारण किया जाता है तत्पश्चात् उस पीड़क अथवा उससे नजदीक से सम्बन्धित प्रजाति के प्राकृतिक शत्रुओं को एकत्रित किया जाता है। एकत्रित प्राकृतिक शत्रुओं का गहन संगरोधन (Quarantine) किया जाता है ताकि उनके साथ कोई अन्य अवांछित जीव जैसे परात्परजीवी परजीव्याम (Hyper parasitoid) प्रवेश न पा सके। इन सब प्रारम्भिक प्रक्रियाओं के पश्चात् ही इनको बड़े पैमाने पर पैदा करके मुक्त किया जाता है। मुक्त करने के पश्चात् उत्तरवर्ती प्रक्रिया के अन्तर्गत इस बात का निर्धारण करना अत्यन्त आवश्यक होता है कि प्रविष्ट कराया गया

कारक सफलतापूर्वक स्थापित हो सका है कि नहीं तथा उसकी उपस्थिति का आगे चलकर कितना लाभ प्राप्त होगा।

टिप्पणी

आदर्श जैविक नियन्त्रण के दीर्घगामी प्रभाव होते हैं तथा यह कम खर्चीला होता है। एक बार जब प्राकृतिक शत्रु अपने को स्थापित कर लेता है तो उसे किसी अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता नहीं पड़ती और यह अपना कार्य बिना किसी व्यवधान अथवा मानवीय सहायता के करता रहता है। आदर्श जैविक नियन्त्रण सदैव सफल उपयोगी साबित नहीं होता। यह देशज कीट पीड़कों की अपेक्षा विदेशी कीट पीड़कों के लिए अधिक सफल साबित होता है। इसके प्रमुख कारण हैं– मुक्त किए जाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या कम होना, नये वातावरण के प्रति अच्छीतरह से अनुकूलितन हो पाना तथा प्राकृतिक शत्रु एवं उसके पोषक के जीवन चक्र समक्रमिक (Synchronize) न होना।

3. **आवर्धन (Augmentation)**– आवर्धन का तात्पर्य प्राकृतिक शत्रुओं की अनुपूरक मुक्ति (Supplemental release) से होता है। आवर्धन की प्रक्रिया निम्नलिखित तीन प्रकार से अपनायी जाती हैं –

   (i) सीजन (Season)– के उपयुक्त समय पर प्राकृतिक शत्रुओं को अपेक्षाकृत कम संख्या में मुक्त करना अर्थात् संचरण मुक्ति (Inoculative release) अनेक फसलों के ग्रीन हाउस उत्पादन में संचरण मुक्ति का उपयोग किया जाता है; जैसे – ग्रीन हाउस व्हाइटफ्लाई (Whitefly) के नियन्त्रण हेतु परजीव्याम एनकार्सिया फॉरमोसा (Parasitoid, Encarsia Formosa) को समय–समय पर मुक्त करना।

   (ii) प्राकृतिक शत्रुओं को लाखों की संख्या में मुक्त करना अर्थात् भरमार मुक्ति (Inundative release)। लेडी बीटल्स, लेसविंग्स ट्राइकोग्रामा (Trochogramma) जैसे परिजीव्यामों को 5,000–2,00,000 प्रति एकड़ प्रति सप्ताह की दर से मुक्त किया जाता है। इसी प्रकार मिट्टी में रहने वाले कीट पीड़कों के नियन्त्रण हेतु प्रति एकड़ लाखों–अरबों सूत्रकृमियों (Nematodes) को मुक्त किया जाता है।

   (iii) प्राकृतिक शत्रुओं को आवर्धित करने अथवा उन्हें अधिक प्रभावी बनाने हेतु फसल तन्त्र (Cropping system) का भी रूपान्तरण किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को आवासी परिचालन (Habitat manipulation) भी कहते हैं; जैसे– बगीचे में घास–फूस के तिनकों (Straw) अथवा लकड़ी की छीलन (Wood wool) से भरा फूलदान या कोई अन्य बर्तन उल्टा लटका कर प्राकृतिक परभक्षी डरमैप्टेरन कीटों (Dermapteran Insects) को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसी प्रकार अनेक परभक्षियों एवं परजीव्यामों को आकर्षित करने हेतु मकरन्द (Nector) का प्रयोग किया जा सकता है।

टिप्पणी

फूल वाले पौधों को खेत के किनारे–किनारे लगाकर अथवा मिश्रित पौधारोपण न केवल अतिरिक्त आश्रय उपलब्ध कराते हैं अपितु वैकल्पिक खाद्य स्रोतों का भी कार्य करते हैं। ये सभी साधन छोटे पैमाने के लिए सर्वथा अनुकूल होते हैं

5.20.4 जैविक नियन्त्रण के प्रभाव (Effects of Biological Control)

1. **देशज जैव–विविधता पर प्रभाव (Effect on Native Biodiversity)**– जैविक नियन्त्रण जैव–विविधता को सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों तरह से प्रभावित कर सकता है। जब भी जैविक नियन्त्रण प्रक्रिया किसी भी नये क्षेत्र में प्रारम्भ की जाती है तो उपयोग में लाये गये नियन्त्रण कारक की शिकार या पोषक विशिष्टता (Prey or host specificity) का अपना विशिष्ट महत्व होता है; जैसे– बहुहारी परभक्षी (Oligophagous predators) बहुधा बहुत दुर्बल जैविक नियन्त्रण कारक साबित होते हैं और अक्सर आक्रामक प्रजाति (Invasive species) का कार्य करने लगते हैं। यही कारण है कि सभी सम्भावित जैविक नियन्त्रण कारकों को मुक्त करने से पूर्व उनका गहन परीक्षण एवं संगरोधन (Testing and Quarantinve) आवश्यक होता है। यदि कोई प्रजाति सन्निविष्ट होने के पश्चात् देशज प्रजाति (Native species) पर आक्रमण करती है तब उस क्षेत्र की जैव–विविधता प्रभावशाली तरीके से कम हो सकती है। देशज प्रजाति के समाप्त होने से उससे सम्बन्धित निकेत (Niche) समाप्त हो जाता है जिससे उस क्षेत्र का सम्पूर्ण इकोतन्त्र (Ecosystem) प्रभावित होता है। जैसे ऑस्ट्रेलिया में केन बीटल (Cane beetle) के नियन्त्रण हेतु केन टोड, बुफो मैरिनस (Cane toad, Bufo marinus) के सन्निवेशन (Introduction) के पश्चात् यह पाया गया कि इस टोड ने न केवल केन बीटलों का भक्षण किया अपितु अन्य कीटों को खाकर देशज आवास (Native habitat) में स्थापित हो गया। इस केन टोड से वहाँ के देशज सरीसृपों में विदेशी बीमारी फैल गई। टोड खतरा महसूस करने पर अपनी पैरोटिड ग्रन्थियों से एक विषाक्त रसायन की फुहार छोड़ता है जो स्वच्छ जलीय जन्तुओं के लिए घातक होता है। इस प्रकार एक ही जन्तु के सन्निवेशन से इकोतन्त्र की जैव–विविधता पूरी तरह से प्रभावित होती है।

2. **भविष्य पर प्रभाव (Effect on Future)**– कृषि में जैविक नियन्त्रण का उपयोग बहुत कम होता है। सम्पूर्ण विश्व में पीड़क नियन्त्रण पर खर्च की जा रही कुल धनराशि का 1 प्रतिशत से भी कम भाग जैविक नियन्त्रण पर खर्च हो रहा है। इसका एक प्रमुख कारण जैविक नियन्त्रण से प्राप्त होने वाले लाभ का कम होना है। एक अध्ययन के अनुसार कुम्हड़े (Pumpkin) पर लगे अनासा ट्रिसटिस (Anasa tristis) बग को परिजीव्याम ग्रिऑन पेन्सिलवानिकम (Gryon pennsylvanicum) द्वारा नियन्त्रित करने पर कीटनाशक फेनवैलरेट (Fenvalerate) के उपयोग की अपेक्षा प्रथम वर्ष 18

टिप्पणी

प्रतिशत तथा द्वितीय वर्ष 20 प्रतिशत कम लाभ हुआ। अन्य प्रयोगों में भी यह देखा गया है कि जैविक नियन्त्रण पर होने वाला खर्च कीटनाशक के उपयोग से दो गुना अधिक महँगा होता है। स्वीट कॉर्न (Sweet corn) पर लगे पीड़क ऑस्ट्रिनिया नुबिलेसिस (Ostrinia nubilasis) को ट्राइकोग्रामा (Trichogramma) द्वारा नियन्त्रित करने पर पीड़कनाशी नियन्त्रण से लगभग 6 गुना अधिक लागत पायी गई। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैविक नियन्त्रण रासायनिक नियन्त्रण से अधिक खर्चीला साबित होता है।

भविष्य में अधिक–से–अधिक वैज्ञानिक प्रयोगों एवं शोध कार्यों के परिणामस्वरूप पीड़क नियन्त्रण के क्षेत्र में जैविक नियन्त्रण महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसका जितना अधिक उपयोग होगा पीड़कनाशियों एवं शाकनाशियों का प्रयोग उतना ही कम होता जायेगा तथा जैविक नियन्त्रण के क्षेत्र में नौकरियों एवं शोध कार्यों की सम्भावनाएँ भी बढ़ जायेंगी। अधिक–से–अधिक लोगों में जैविक नियन्त्रण के प्रति जागरूकता भविष्य में नई शोधों का कारण बनेगी। इससे न केवल विभिन्न रसायनों के अतिप्रयोग (overuse) को रोका जा सकेगा अपितु इससे उत्पन्न विभिन्न पकार के प्रदूषणों एवं अन्य दुष्पपरिणामों को भी कम किया जा सकेगा।

5.20.5 जैविक नियन्त्रण समस्याएँ (Problems of Biological Control)

1. जैविक नियन्त्रण के विभिन्न कारक मुख्यतया विशिष्ट प्रकार के कीटों को ही मारते हैं अर्थात् मारक संकुचित स्पेक्ट्रम (Narrow spectrum) के आधार पर कार्य करते हैं।
2. नियन्त्रण के लिए कारकों की बड़ी संख्या में आवश्यकता होती है जिसके लिए काफी समय तक प्रतिक्षा करनी पड़ती है।
3. बड़ी संख्या में कारकों की आवश्यकता होने के कारण उनको पालने एवं रखने की तकनीकी जटिलता होती है।
4. प्रयोगकर्ता को शिक्षित होना चाहिए।
5. धन का अधिक व्यय होता है।
6. कभी– कभी प्रयुक्त होने वाले कारकों के भी शिकारी एवं परजीवी कीट होते हैं। जिसके कारण जैविक नियन्त्रण में पूर्ण सफलता नहीं मिल पाती है।
7. कुछ कारकों के लिए विशेष प्रकार के अनुकूल मौसम की आवश्यकता होती है अतः अनुकूल मौसम आने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
8. बाहर से आयातित कीट प्रायः उचित जलवायु के अभाव में स्थापित नहीं हो पाते इससे सम्बन्धित अध्ययन के लिए अतिरिक्त समय की आवश्यकता होती है।

5.20.6 जैविक नियन्त्रण के लाभ (Advantages of Biological Control)

टिप्पणी

1. कीट विषों की तरह कीट अवरोधी होने का डर नहीं रहता।
2. पर्यावरणीय सुरक्षा तथा पारिस्थितिकी नियन्त्रण की दिशा में यह महत्वपूर्ण विकल्प है।
3. जैविक नियन्त्रण का प्रभाव स्थायी होता है। अर्थात् प्रकृति में एक बार व्यवस्थित होने के बाद यह स्वतः क्रियाशील रहते हैं।
4. इसके अन्तर्गत प्रयोग किये जाने वाले कारक न तो विषैले होते हैं और न ही कोई हानिकारक अपशिष्ट छोड़ते हैं। मनुष्य, जानवरों, वनस्पतियों आदि पर इनका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता है।
5. नॉन–टार्गेट जीवों (Non-target organisms) पर इनका प्रभाव नहीं पड़ता।
6. कुछ कारकों को आसानी से कम खर्चे में पैदा करके प्रयोग में लाया जा सकता है।
7. सूक्ष्मजीवों में प्राकृतिक रूप से जन्तुओं में रोग फैलाने की क्षमता होती है तथा ये मिट्टी में आसानी से लम्बे समय तक जीवित बने रहते हैं।
8. जो पीड़क कीटनाशकों के प्रभाव में आने से बच जाते हैं उनको नियन्त्रित करने के लिए प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोग करने से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।
9. पारिस्थितिकी नियन्त्रण (Ecological control) एवं पर्यावरणीय सुरक्षा (Environmental protection) की दिशा में जैविक नियन्त्रण एक महत्वपूर्ण विकल्प है।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

46. जैविक नियन्त्रण किया जाता है–

    (अ) परभक्षी कीटो द्वारा, (ब) सूक्ष्म जीवों द्वारा,

    (क) परजीवी कीटों द्वारा (ड) उपरोक्त तीनों के द्वारा।

47. DD-136 जैविक नियन्त्रण संबंधित है –

    (अ) विषाणुओं से (ब) कवकों से,

    (क) जीवाणुओं से, (ड) निमैटोड से।

48. मच्छरों के जैविक नियन्त्रण में सहायक है।

    (अ) Gambusia Fish, (ब) Arivus,

    (क) Ophiocephalu, (ड) All of these ।

49. गन्ना के टॉप बोरर (Top-borer) में किस परजीवी द्वारा जैविक नियन्त्रण कारगर सिद्ध हुआ है?

(अ) इक्नियोमोनिड, (ब) इलैस्मल मेकैन्टाइडिस,

(क) ब्रेकॉनब्रेबीकार्निस, (ड) (अ) व (ब) दोनों।

50. 'Biological control' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया

(अ) Smith (ब) Odum,

(क) Darwin (ड) None of these।

5.21 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1. (ब)	14. (अ)	27. (ब)	40. (क)
2. (क)	15. (ब)	28. (क)	41. (क)
3. (अ)	16. (क)	29. (क)	42. (ब)
4. (ड)	17. (ड)	30. (ब)	43. (क)
5. (अ)	18. (अ)	31. (क)	44. (अ)
6. (क)	19. (अ)	32. (अ)	45. (अ)
7. (ड)	20. (क)	33. (ड)	46. (ड)
8. (अ)	21. (ब)	34. (क)	47. (अ)
9. (ब)	22. (क)	35. (ब)	48. (अ)
10. (अ)	23. (क)	36. (ड)	49. (ड)
11. (क)	24. (ब)	37. (अ)	50. (अ)
12. (ड)	25. (क)	38. (अ)	
13. (क)	26. (ब)	39. (अ)	

5.22 सारांश (Summary)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रेशम कीट पालन विज्ञान (Sericulture) की एक महत्वपूर्ण शाखा है। जिसके अंतर्गत् रेशम कीट का पालन–पोषण करना एवं इससे व्यापारिक महत्व वाले रेशम के धागे प्राप्त करने में किया जाता है। आर्थिक रुप से यह लाभदायक शाखा है। इसमें भविष्य मे अनेक रोजगार के अवसर सुलभ है।

टिप्पणी

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मधुमक्खी पालन का मुख्य उद्देश्य शहद एवं मोम (Honey and Wax) प्राप्त करने के लिए किया जाता है। क्योंकि शहद भोजन का प्रमुख घटक होता है। इसका प्रयोग भोजन के साथ साथ अनेक औषधियों के रूप उपयोग में लाया जाता है। अतः इसका पालन पोषण में वृद्धि कर इनसे आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि लाख संवर्धन का अत्याधिक रूप से व्यापारिक एवं आर्थिक दोनों रूपों में सर्वाधिक महत्व है। क्योंकि इसके अनेक कीमती आभूषणों में, जेवरों में, वार्निश, पेण्टिग, फोटोग्राफिक एवं विद्युत उपकरणों में कुचालन सामग्री के रूप इस्तेमाल किया जाता है। अतः लाख कृषि को संवर्धन करने के परिणाम स्वरूप भविष्य में इससे रोजगार के कई अवसर प्राप्त हो रहे है।

उपरोक्त सभी वर्णन से स्पष्ट है कि संग्रहित अनाज, सब्जी तथा तिलहनों के प्रमुख रोगजन कों का नियन्त्रण करना परमावश्यक है। क्योंकि इनकी थोड़ी सी मात्रा भी (कीट-पीड़कों) हानिकारक होती है। क्योंकि किटों की प्रजनन क्षमता अधिक होती है। इनके अण्डे, लार्वा, वयस्क एवं प्यूपा आदि सभी अवस्थाएँ फसलों को भारी क्षति पहुँचाती है। अतः हमारी कीमती फसलें भी नष्ट न हो और लाभदायक कीट भी नष्ट न हो इस बात का भी ध्यान देना चाहिए और पर्यावरण को भी क्षति न पहुँचे, ऐसे कीट नाशक, दवाओं, रासायनों का छिड़काव करना चाहिए जिससे कृषि उत्पादन, चाहे वो किसी भी प्रकार की फसल हो में वृद्धि किया जा सके ताकि क्रातिकारी परिवर्तन लाया जा सके।

5.23 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- अनिशेक जनन (Parthenogenesis) = Fertilization occur without having sex (बिना लिंग के जनन)
- **कीटनाशक** : कीटों को मारनेवाली दवा (रसायन)
- **पीड़क** : ऐसे सभी तत्व या जीव चाहे वे जैविक हों या अजैविक जो फसलों, अनाजों, सब्जियों आदि को नुकसान पहुँचाते है।
- **टहनी** : डाली / या पौधे की एक छोटी शाखा
- **रेजिन** : एक चिपचिपा पदार्थ जो कि प्रोटीन का बना होता है जो अघुलनशील होता है।
- **संवर्धन** : उत्पादन करना या पैदा करना
- **मुखांग** : मुख मे पाये जाने वाले अंग
- **शिश्न** : प्रजनन अंग
- **श्वसन रंध्र** : साँस लेने वाले अंग जिनमें छिद्र होते हैं
- **कॉट–छांट** : अवांछनीय तत्वों या कारकों को अलग करना

5.24 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

टिप्पणी

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. रेशम कीट पालन क्या है? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. रेशम की विभिन्न किस्मों का वर्णन कीजिए।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –
   (i) रेशम (सिल्क) ग्रन्थि एवं रेशम की संरचना व प्रकार
   (ii) कोकून निर्माण।
   (iii) कोकून से रेशम धागे को प्राप्त करने की क्रियविधि।
   (iv) रेशम उत्पादन में उपयोगी कीटों के नाम तथा उनका संक्षिप्त विवरण।
4. बॉम्बिक्स मोराई के जीवन चक्र का वर्णन कीजिए।
5. संक्षिप्त वर्णन किजिए –
   (i) शहतूत रेशम (ii) टसर रेशम
   (iii) मूगा रेशम (iv) एरी रेशम।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –
   (i) कोकून (ii) कैटरपिलर
   (iii) रेशम ग्रन्थि तथा रेशम (iv) मस्करडीन रोग।
7. भारत में रेशम उद्योग विषय पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
8. रेशम कीट के कैटरपिलरों के पालन पोषण पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
9. टसर रेशम कीट पर टिप्पणी लिखिए।
10. रेशम कीट पर होने वाले रोगों पर टिप्पणी लिखिए।
11. संग्रहित अनाजों के कीट पीड़कों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
12. संग्रहीत अनाजों के किन्हीं तीन पीड़कों के सामान्य एवं वैज्ञानिक नाम लिखिए।
13. सब्जियों के पीड़कों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।
14. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
   (i) कीट जैविक नियन्त्रण एवं इसकी पूर्वापेक्षाऐं
   (ii) परभक्षी एवं परजीवी कीट
   (iii) नर बन्धयता तकनीक
   (iv) आनुवंशिक नियन्त्रण

टिप्पणी

(v) जैविक नियन्त्रण की सुविधाओं एव असुविधाओं पर संक्षिप्त लेख लिखो।

(vi) रासायनिक एवं जैविक नियन्त्रण पर अंतर लिखो।

15. लाख संवर्धन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
16. लैंगिक द्विरुपता से आप क्या समझते हैं? लाख कोट के सन्दर्भ मे समझाओ।
17. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये –
    (i) लाख –कीट के शत्रु
    (ii) लाख कीट की किस्में एवं फसल
    (iii) लाख कीट में अण्डनिक्षेपण एवं वृन्दन
    (iv) संचारण
    (v) लाख के प्रकार एवं संगठन एवं उपयोग।
    (vi) Harvesting of Crop of Lac insect
18. मधुमक्खी के सामाजिक संगठन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।
19. मधुमक्खी के जीवन चक्र का केवल नामांकित चित्र बनाईये।
20. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो –
    (i) मधुमक्खी का छत्ता (Hive)
    (ii) मधुमक्खी मोम
    (iii) मधुमक्खी शहद

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. रेशम उद्योग पर एक निबन्ध लिखिए।
2. रेशम कीट की रचना एवं जीवन चक्र का वर्णन कीजिए।
3. रेशम कीट के जीवन चक्र का सचित्र वर्णन कीजिए और सेरीकल्चर की प्रक्रिया पर टिप्पणी लिखिए।
4. रेशम कीट की विभिन्न प्रजातियों के नाम देते हुए उनकी जैविकी का वर्णन कीजिए।
5. रेशम कीट पालन पर एक निबन्ध लिखिए।
6. रेशम कीट की विभिन्न व्याधियों का वर्णन करते हुए उनकी रोकथाम बातइए।
7. रेशम क्या है? रेशम कीट रेशम का उत्पादन क्यों और कैसे करता है? वर्णन कीजिए।
8. रेशम उद्योग एवं इसके प्रबन्धन का वर्णन करिए।

9. रेशम उत्पादन पर निबन्ध लिखिए।
10. रेशम किस प्रकार तैयार किया जाता है। सविस्तर वर्णन कीजिए।
11. रेशम कीट पालन से आप क्या समझते हैं? रेशम कीट पालन की विधि का वर्णन कीजिए।
12. कीट–पीड़कों के जैविक नियन्त्रण पर निबम्ध लिखिए।
13. शिकारी (परभक्षी) एवं परजीवी कीटो की जैविक नियन्त्रण में भूमिका पर प्रकाश डालिए।
14. पीड़कों के जैविक नियन्त्रण को समझाइये।
15. परजीवियों द्वारा जैविक नियन्त्रण की समस्याओं पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
16. कीट–पीड़कों के जैविक नियन्त्रण पर सकारात्मक प्रभावों का वर्णन कीजिए।
17. लाख–कीट के जीवन–चक्र की सचित्र वर्णन कीजिए।
18. लाख का उत्पादन किस कीट से होता है? लाख की फसल तैयार करने की विधि, पोषक पौधों (Host plant) तथा लाख उद्योग के उत्पादों का वण्रन कीजिए है।
19. लाख–कीट पर निबंध लिखिए।
20. ''भारत में लाख उद्योग'' पर विस्तृत वर्णन कीजिए।
21. भारत में कितने प्रकार की लाख फसलें होती है? लाख के प्रक्रमण (Processing), उसके गुणधर्मों तथा रासायनिक संघटन का वर्णन कीजिए।
22. मधुमक्खी पालन पर एक निबन्ध लिखिए।
23. मधुमक्खी पालन से आप क्या समझते हैं? मुधमक्खी पालन पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
24. मधुमक्खी के रख–रखाव पर तथ्य परक निबन्ध लिखिए।
25. मधुमक्खी के जीवन चक्र का सचित्र वर्णन कीजिए।
26. मधुमक्खी पालन की आधुनिक विधि में काम आने वाले औजारों तथा उपकरणों का वर्णन कीजिए।
27. मधुमक्खियों के सामाजिक संगठन का वर्णन कीजिए।
28. मधुमक्खियों में होने वाली विभिन्न व्याधियों एवं उनके विभिन्न शत्रुओं का वर्णन कीजिए। एवं उनके उपचार एवं रोकथाम लिखिए।

टिप्पणी

5.25 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

टिप्पणी

1. Fundamental of Ecology by – E.P. Odum & G.W. Barret.
2. Ecology and Applied Zoology by – S.M. Saxena & Mukesh Dixit.
3. Unified text book Zoology by – J.K. Awasthi.
4. Ecology and Applied Zoology by – Shivesh Pratap Singh & H.N. Baijal.
5. A Text book of Applied Zoology of Apiculture, Sericulture, and their Pest control by – Pradip V. Jabde.
6. Aquaculture by – N. Arumugam.
7. Wild Life in Central India by – S.K. Tiwari.
8. Fish and Fisheries of India by – Jhingaran.
9. Fresh water Aquaculture by – R.S. Rath.
10. Ecology and Environmental Biology by – Pranav Kumar.
11. Ecology and Applied Zoology by – Himalaya Publishing House.

.